पार्श्वनाथ विद्याश्रम ग्रन्थमाला
: २९ :

जैन प्रतिमाविज्ञान

लेखक
डा० मारुतिनन्दन प्रसाद तिवारी
व्याख्याता, कला-इतिहास विभाग,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध-संस्थान
वाराणसी—२२१००५
१९८१

भारतीय इतिहास अनुसन्धान परिषद्, नई दिल्ली द्वारा आर्थिक सहायता प्राप्त

प्रकाशक एवं प्राप्ति-स्थान
पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध-संस्थान
आई० टी० आई० रोड
वाराणसी-२२१००५

प्रकाशन-वर्ष
१९८१

मूल्य: रु० १२०/-

मुद्रक
पाठ—तारा प्रिंटिंग वर्क्स, कमच्छा, वाराणसी
चित्र—खण्डेलवाल प्रेस, मानमन्दिर, वाराणसी

प्रकाशकीय

जैन प्रतिमाविज्ञान पर हिन्दी भाषा में अद्यावधि दो-तीन लघुकाय कृतियां ही प्रकाशित हुई हैं। डॉ० मारुतिनन्दन प्रसाद तिवारी की यह विशालकाय कृति न केवल गवेषणापूर्ण अध्ययन पर आधारित है, अपितु विषय को काफी गहराई से एवं व्यापक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करती है। आशा है विद्वत् जगत् में इस कृति को समुचित स्थान प्राप्त होगा।

भारतीय मूर्तिकला के क्षेत्र में जैन प्रतिमाओं का ऐतिहासिकता एवं कला-पक्ष दोनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण स्थान रहा है। जैन प्रतिमाविज्ञान में जिन प्रतिमाओं के साथ-साथ यक्ष-यक्षी युगलों, विद्यादेवियों और सरस्वती आदि की प्रतिमाओं का भी विशिष्ट स्थान रहा है। डॉ० तिवारी ने इन सबको अपने ग्रन्थ में समाहित किया है। मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि डॉ० मारुतिनन्दन प्रसाद तिवारी पार्श्वनाथ विद्याश्रम के शोध छात्र रहे हैं और उनको अपने शोध-प्रबन्ध 'उत्तर भारत में जैन प्रतिमाविज्ञान' पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा ई० सन् १९७७ में पी-एच० डी० की उपाधि प्रदान की गयी। प्रस्तुत कृति उनकी उक्त गवेषणा का संशोधित रूप है जिसको प्रकाशित कर पाठकों के हाथों में प्रस्तुत करते हुए मुझे अति प्रसन्नता हो रही है।

प्रस्तुत कृति के प्रकाशन हेतु भारतीय इतिहास अनुसन्धान परिषद, नई दिल्ली एवं जीवन जगन् चैरिटेबल ट्रस्ट, फरीदाबाद ने आर्थिक सहयोग प्रदान किया है; इस हेतु मैं उनका अत्यन्त आभारी हूं। इस सहायता के कारण ही प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रकाशन सम्भव हो सका है। मैं लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद; जैन जर्नल, कलकत्ता तथा भारत कला भवन, वाराणसी का भी आभारी हूं, जिन्होंने प्रस्तुत कृति के प्रकाशन हेतु कुछ चित्रों के ब्लाक्स उपलब्ध कराकर सहयोग प्रदान किया है।

मैं संस्थान के निदेशक, डॉ० सागरमल जैन, डॉ० मारुतिनन्दन प्रसाद तिवारी एवं डॉ० हरिहर सिंह का भी आभारी हूं जिन्होंने ग्रन्थ के मुद्रण एवं प्रूफरीडिंग सम्बन्धी उत्तरदायित्वों का निर्वाह कर इस प्रकाशन को सम्भव बनाया है।

अन्त में मैं संस्थान के मानद् मन्त्री भाई भूपेन्द्रनाथ के प्रति आभार व्यक्त करता हूं जिनके प्रयत्नों के कारण ही संस्थान के प्रकाशन कार्यों में अपेक्षित प्रगति हो रही है।

शादीलाल जैन
अध्यक्ष
पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान,
वाराणसी–२२१००५

जैन विद्या के निष्काम सेवक

एवं

पार्श्वनाथ विद्याश्रम

के

मानद् मन्त्री

लाला हरजसरायजी

को

सादर समर्पित

जिन्हें यह ग्रन्थ समर्पित है—

जैनविद्या के निष्काम सेवक लाला हरजसरायजी जैन : एक परिचय

भगवान् पार्श्वनाथ की जन्म स्थली एवं विद्यानगरी काशी में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के समीप जैन धर्म और दर्शन के उच्चतम अध्ययन केन्द्र के रूप में पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान को मूर्तरूप देने एवं विकसित करने का श्रेय यदि किसी व्यक्ति को है, तो वह लाला हरजसरायजी जैन को है जिनके अथक परिश्रम से इस संस्थान के प्रेरक पं सुखलालजी का चिर प्रतीक्षित सुन्दर स्वप्न साकार हो सका।

लाला हरजसरायजी का जन्म अमृतसर के प्रसिद्ध एवं सम्मानित लाला उत्तमचन्दजी जैन के परिवार में हुआ, जो अपनी दानशीलता तथा मर्यादा की रक्षा के लिए प्रसिद्ध रहा है। आपका जन्म अमृतसर में आसोज सुदी ७ मंगलवार सम्वत् १९५३, तदनुसार दिनांक १३ अक्तूबर १८९६ ई० को हुआ। आपके पिता का नाम लाला जगन्नाथजी जैन था। ये अपने पिता के द्वितीय पुत्र हैं। इनके अन्य भ्राता स्व० लाला रतनचन्दजी जैन तथा लाला हंसराजजी जैन थे।

सन् १९११ में १५ वर्ष की आयु में इनका विवाह-संस्कार श्रीमती लाभदेवी से सम्पन्न हुआ, जो स्यालकोट (अब पाकिस्तान में) के प्रसिद्ध हकीम लाला बेलीरामजी जैन की पुत्री थीं। यह परिवार भी अपने मानवीय एवं उदार गुणों के लिए प्रसिद्ध रहा है। श्रीमती लाभदेवी के भाई लाला गोपालचन्द्रजी जैन विभाजन के पश्चात् भी पाकिस्तान में ही रहे तथा अपनी योग्यता के कारण पाकिस्तान सरकार से सम्मानित भी हुए।

आपने सन् १९१९ में गवर्नमेन्ट कालेज, लाहौर से बी० ए० की शिक्षा पूर्ण की। वह युग राष्ट्रीय आन्दोलनों का युग था। गांधीजी के आह्वान पर सम्पूर्ण देश में सामाजिक व राजनीतिक पुनर्जागरण की हवा फैल रही थी। पराधीन भारत में देशभक्ति को प्रोत्साहन देने के लिए देश में निर्मित वस्तुओं के उपभोग पर बल दिया जा रहा था तथा विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार किया जा रहा था। इन सबका प्रभाव युवक हरजसराय पर भी पड़ा। वे उसी समय से खद्दरधारी हो गए एवं देश में धार्मिक तथा सामाजिक कुरीतियों को मिटाने और राजनैतिक चैतन्यता लाने के कार्य में जुट गये। राष्ट्रीय पद्धति पर शिक्षा देने के लिए १९२९ में अमृतसर में श्रीराम आश्रम हाई स्कूल की स्थापना हुई। बाबू हरजसरायजी इसके प्रथम मंत्री बने। समाज के अग्रगण्य व्यक्तियों द्वारा मुक्तहस्त से दिये गये दान से यह संस्था पुष्पित तथा पल्लवित हुई। इसकी सबसे प्रमुख विशेषता सहशिक्षा थी। सामाजिक तथा धार्मिक अन्धविश्वास को जड़ से समाप्त करने का सबसे सुन्दर उपाय यही था कि नर और नारी दोनों को समान शिक्षा दी जाय। यह संस्था अब भी बहुत ही सुचारु रूप से चल रही है।

१९२९ में सम्पूर्ण आजादी का नारा देने के लिए आहूत लाहौर कांग्रेस में आपने एक सदस्य के रूप में सक्रिय भाग लिया। इसके अतिरिक्त आप कई प्रमुख समितियों के सदस्य रहे, जैसे सेवा समिति, अमृतसर स्काउट एसोसिएशन आदि।

१९३५ में पूज्य श्री सोहनलालजी म० सा० के देहावसान पर समाज ने उनका स्मारक बनाने के लिए २५०००) रु० एकत्र किया तथा हरजसरायजी को इसकी व्यवस्था का कार्यभार सौंपा। आपने इस कार्य को बहुत सुन्दर ढंग से पूर्ण किया। १९४१ में ये बम्बई जैन युवक कांग्रेस के प्रधान बने तथा अखिल स्थानकवासी जैन कांफ्रेन्स में खुलकर भाग लिया। समग्र क्रान्ति के प्रणेता श्री जयप्रकाश नारायण से भी आपका घनिष्ठ सम्पर्क रहा तथा कई अवसरों पर उन्हें सामाजिक कार्यों के लिए आर्थिक सहयोग भी प्रदान किया।

पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान के निर्माण में भी आपका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। १९३६ में श्री सोहनलाल जैन धर्म प्रचारक समिति की स्थापना के उपरान्त इसके कार्यक्षेत्र को विस्तृत रूप देने के लिए आपने कुछ मित्रों की सलाह तथा शतावधानी मुनि श्री रत्नचन्द्रजी म० सा० के आदेश से पं० सुखलालजी से बनारस में सम्पर्क स्थापित किया। पण्डितजी के निर्देशन के आधार पर समिति ने जैनविद्या के विकास एवं प्रचार-प्रसार को अपना मुख्य लक्ष्य बनाया तथा उन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति हेतु विद्यानगरी काशी में १९३७ में पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान की नींव डाली। समिति को प्राप्त दान के अतिरिक्त भी हरजसरायजी ने इस पुण्य कार्य में व्यक्तिगत रूप से काफी आर्थिक सहयोग प्रदान किया।

बाबू हरजसरायजी से मेरा प्रथम परिचय उन्हीं के सुयोग्य भतीजे लाला शादीलालजी के माध्यम से स्व० व्याख्यान वाचस्पति श्री मदनलालजी म० के सान्निध्य में दिल्ली में हुआ था। दिनों-दिन यह सम्बन्ध प्रगाढ़ होता गया, फिर तो उनके साथ पार्श्वनाथ विद्याश्रम के कोषाध्यक्ष के रूप में वर्षों कार्य करना पड़ा। मैंने पाया कि लालाजी स्वभाव से अत्यन्त मृदु, अल्पभाषी और संकोची हैं। किन्तु कर्तव्यनिष्ठा और लगन उनमें कूट-कूट कर भरी हुई है। आपने समाज सेवा तो की, किन्तु नाम की कोई कामना नहीं रखी, सेवा का ढोल कभी नहीं पीटा। अलिप्त और निष्काम भाव से सेवा करना ही उनके जीवन का मूल मन्त्र रहा है। सामाजिक संस्थाओं में कार्य करते हुए भी आर्थिक मामलों में सदैव सजग और प्रामाणिक रहना उनकी सबसे बड़ी विशेषता है। संस्था का एक कागज भी अपने निजी उपयोग में न आये इसके लिए न केवल स्वयं सजग रहते किन्तु परिवार के लोगों को भी सावधान रखते। लालाजी केवल विद्या-प्रेमी ही नहीं हैं, अपितु स्वयं विद्वान् भी हैं। यह बात सम्भवतः बहुत कम ही लोग जानते हैं कि शतावधानी पं० रत्नचन्द्र जी म० सा० द्वारा निर्मित अर्धमागधी कोश के अंग्रेजी अनुवाद का कार्य स्वयं लालाजी ने किया था।

यह उन्हीं के परिश्रम का मीठा फल है कि पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान जैन धर्म और जैनविद्या की निर्मल ज्योति फैला रहा है।

पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान परिवार लाला हरजसरायजी जैन के उत्तम स्वास्थ्य एवं दीर्घ जीवन की कामना करता है, ताकि उनकी तपस्विता एवं निष्काम सेवावृत्ति से हमलोगों को सतत् प्रेरणा मिलती रहे।

—गुलाबचंद्र जैन

आमुख

जैन धर्म पर देश-विदेश में पर्याप्त शोध कार्य हुए हैं, पर जैन प्रतिमाविज्ञान पर अभी तक समुचित विस्तार से कोई कार्य नहीं हुआ है। जैन प्रतिमाविज्ञान पर उपलब्ध सामग्री के एक क्रमबद्ध एवं सम्यक् अध्ययन के आकर्षण ने ही मुझे इस विषय पर कार्य करने के लिए प्रेरित किया।

किसी भी ऐतिहासिक अध्ययन के लिए क्षेत्र तथा काल की सीमा का निर्धारण एक अनिवार्य आवश्यकता है। प्रस्तुत ग्रन्थ में जैन प्रतिमाविज्ञान के विकास को क्षेत्रीय दृष्टि से मुख्यतः उत्तर भारत की परिधि में रखा गया है और इसमें प्रारम्भ से लगभग बारहवीं शती ई० तक के विकास का निरूपण किया गया है। तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से दक्षिण भारत की भी स्थान-स्थान पर चर्चा की गई है।

जैन देवकुल यथेष्ट विस्तृत है तथा विभिन्न देवी-देवताओं के अंकन की दृष्टि से जैनकला प्रचुर मात्रा में समृद्ध भी है। अतः एक ही ग्रन्थ में जैन देवकुल के सभी देवी-देवताओं का स्वतन्त्र एवं विस्तृत प्रतिमानिरूपण अनेक कारणों से कठिन प्रतीत हुआ। तीर्थंकर (या जिन) ही जैन देवकुल के केन्द्र बिन्दु हैं और सभी दृष्टियों से उन्हीं का सर्वाधिक महत्व है, अस्तु प्रस्तुत ग्रन्थ में केवल जिनों और उनसे संश्लिष्ट यक्ष और यक्षियों के ही स्वतन्त्र एवं विस्तृत प्रतिमानिरूपण किये गये हैं। जैन देवकुल के अन्य देवी-देवताओं का केवल सामान्य निरूपण किया गया है।

उपर्युक्त काल और क्षेत्र के चौखट में ग्रन्थ में आद्यन्त ऐतिहासिक के साथ-साथ तुलनात्मक दृष्टिकोण अपनाया गया है। यह तुलनात्मक विवेचन उत्पत्ति-विकास, प्राचीन तथा अपेक्षाकृत अर्वाचीन ग्रन्थों एवं मूर्ति अवशेषों, श्वेतांबर तथा दिगंबर मान्यताओं आदि के अध्ययन तक विस्तृत है। श्वेतांबर और दिगंबर ग्रन्थों तथा पुरातात्विक स्थलों की सामग्रियों का अलग-अलग अध्ययन कर प्रतिमाविज्ञान की दृष्टि से दोनों के समान तत्वों और भिन्नताओं को भी स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। प्रतिमानिरूपण से सम्बन्धित सभी उपलब्ध जैन ग्रन्थों का यथासंभव अध्ययन और उनकी सामग्री का समुचित उपयोग किया गया है। प्रकाशित ग्रन्थों के अतिरिक्त कुछ महत्वपूर्ण पाण्डुलिपियों का भी उपयोग किया गया है। इसी संदर्भ में कई महत्वपूर्ण श्वेतांबर एवं दिगंबर पुरातात्विक स्थलों की यात्रा कर वहां की मूर्ति सम्पदा का विस्तृत अध्ययन भी प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में कुल सात अध्याय हैं। प्रथम दो अध्याय पृष्ठभूमि-सामग्री प्रस्तुत करते हैं और अगले अध्यायों में जैन देवकुल के विकास तथा प्रतिमाविज्ञान विषयक अध्ययन हैं। प्रथम अध्याय में विषय से सम्बन्धित विस्तृत प्रस्तावना दी गयी है, जिसमें क्षेत्र-सीमा, काल-निर्धारण, पूर्ववर्ती शोधकार्य, अध्ययन-स्रोत एवं शोध-प्रणाली आदि पर विस्तार से चर्चा है। द्वितीय अध्याय में जैन प्रतिमाविज्ञान की राजनीतिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का ऐतिहासिक अध्ययन है। इसमें जैन धर्म एवं कला को विभिन्न युगों में प्राप्त होनेवाले राजकीय और राजेतर लोगों के प्रोत्साहन और संरक्षण तथा धार्मिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि पर विचार किया गया है।

तृतीय अध्याय में जैन देवकुल के विकास का अध्ययन है। इसमें आवश्यकतानुसार मूर्तियों के उदाहरण भी दिये गये हैं और जैन देवकुल पर हिन्दू एवं बौद्ध देवकुलों तथा तान्त्रिक प्रभाव को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। एक स्थल पर सम्पूर्ण जैन देवकुल के विकास के निरूपण का सम्भवतः यह प्रथम प्रयास है।

चतुर्थ अध्याय में उत्तर भारत के जैन मूर्ति अवशेषों का ऐतिहासिक सर्वेक्षण प्रस्तुत किया गया है। विभिन्न प्रकाशित स्रोतों से प्राप्त सामग्रियों के उपयोग के साथ ही खजुराहो, देवगढ़, ग्यारसपुर, ओसिया, आबू, जालोर, कुम्भारिया, तारंगा, राज्य संग्रहालय, लखनऊ, पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा और राजपूताना संग्रहालय, अजमेर जैसे पुरातात्विक स्थलों

एवं संग्रहालयों की यात्रा कर वहां की जैन मूर्तियों का विस्तार से अध्ययन और उपयोग भी किया गया है। ग्रन्थ के लिए यह ऐतिहासिक सर्वेक्षण अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है। ओसिया की विद्याओं एवं जीवन्तस्वामी की मूर्तियां और जिनों के जीवनदृश्यों के अंकन, खजुराहो की विद्या (?), बाहुबली और द्वितीर्थी जिन मूर्तियां, देवगढ़ की २४ यक्षी, भरत,बाहुबली, द्वितीर्थी, त्रितीर्थी एवं चौमुखी जिन मूर्तियां, कुम्भारिया के वितानों के जिनों के जीवनदृश्य तथा जिनों के माता-पिता एवं विद्याओं की मूर्तियां प्रस्तुत अध्ययन की कुछ उपलब्धियां हैं। इसी अध्ययन के क्रम में कतिपय ऐसे जैन देवताओं का भी सम्भवतः इसी ग्रन्थ में पहली बार विवेचन है जिनका जैन परम्परा में तो कोई उल्लेख नहीं प्राप्त होता परन्तु जो पुरातात्विक सामग्री के आधार पर यथेष्ट लोकप्रिय ज्ञात होते हैं।

पंचम अध्याय में जिन-प्रतिमाविज्ञान का विस्तार से अध्ययन है। प्रारम्भ में जिन मूर्तियों के विकास की संक्षिप्त रूपरेखा दी गयी है और उसके बाद २४ जिनों के मूर्तिवैज्ञानिक विकास को व्यक्तिशः निरूपित किया गया है। इस अध्याय में प्रारम्भ से सातवीं शती ई० तक के उदाहरणों का अध्ययन कालक्रम में तथा उसके बाद का क्षेत्र के सन्दर्भ में और स्थानीय विशेषताओं को दृष्टिगत करते हुए किया गया है। यक्ष-यक्षी से सम्बन्धित षष्ठ अध्याय में भी यही पद्धति अपनायी गयी है। २४ जिनों के स्वतन्त्र मूर्तिविज्ञानपरक अध्ययन के बाद जिनों की द्वितीर्थी, त्रितीर्थी एवं चौमुखी मूर्तियों और चतुर्विंशति-जिन-पट्टों तथा जिन-समवसरणों का भी अलग-अलग अध्ययन किया गया है। जिनों के प्रतिमा-निरूपण में उनके जीवनदृश्यों के मूर्त अंकनों तथा द्वितीर्थी और त्रितीर्थी मूर्तियों के विस्तृत उल्लेख सम्भवतः यहीं पर पहली बार किये गये हैं।

षष्ठ अध्याय में जिनों के यक्षों एवं यक्षियों के प्रतिमाविज्ञान का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। यक्षों एवं यक्षियों के उल्लेख युगलशः एवं जिनों के पारम्परिक क्रम के अनुसार हैं। पहले यक्ष और उसके बाद सहयोगिनी यक्षी का प्रतिमानिरूपण किया गया है। प्रारम्भ में यक्षों एवं यक्षियों के मूर्तिवैज्ञानिक विकास को समग्र दृष्टि से आकलित किया गया है और उसके बाद उनका अलग-अलग अध्ययन प्रस्तुत है। यक्षों एवं यक्षियों के प्रतिमानिरूपण में स्वतन्त्र मूर्तियों के साथ ही सर्वप्रथम जिन-संयुक्त मूर्तियों के भी विस्तृत अध्ययन का प्रयास किया गया है।

सप्तम अध्याय निष्कर्ष के रूप में है जिसमें समग्र अध्ययन की प्राप्तियों को क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत किया गया है।

ग्रन्थ में परिशिष्ट के रूप में चार तालिकाएं दी गयी हैं, जिनमें २४ जिनों, यक्ष-यक्षियों एवं महाविद्याओं की सूचियां तथा पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या दी गयी है। अन्त में विस्तृत सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची, चित्र-सूची, शब्दानुक्रमणिका और चित्रावली दी गई हैं। चित्रों के चयन में मूर्तियों के केवल प्रतिमाविज्ञानपरक विशेषताओं का ही ध्यान रखा गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखन एवं प्रकाशन में जिन कृपालु व्यक्तियों एवं संस्थाओं से सहायता मिली है, उनके प्रति यहां दो शब्द कहना अपना कर्तव्य समझता हूं।

प्रस्तुत विषय पर कार्य के आरम्भ से समापन तक सतत उत्साहवर्धन एवं विभिन्न समस्याओं के समाधान में कृपापूर्ण सहायता और मार्गदर्शन के लिए मैं अपने गुरुवर डा० लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी, रीडर, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय (का० हि० वि० वि०), का आजीवन ऋणी रहूंगा।

प्रो० दलसुख मालवणिया, भूतपूर्व अध्यक्ष, एल० डी० इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डोलाजी, अहमदाबाद, डा० यू०पी० शाह, भूतपूर्व उपनिदेशक, ओरियण्टल इन्स्टिट्यूट, बड़ौदा, श्री मधुसूदन ढाकी, सहनिदेशक (शोध), अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, डा० जे० एन० तिवारी, रीडर, प्रा० भा० इ० सं० एवं पुरातत्व विभाग, का० हि० वि० वि० और डा० हरिहर सिंह, व्याख्याता, सान्ध्य महाविद्यालय, का० हि० वि० वि० के प्रति भी मैं अपने को ऋणी पाता हूं, जिन्होंने अनेक अवसरों पर तत्परतापूर्वक अपनी सहायता एवं परामर्शों से मुझे लाभ पहुंचाया है।

इस प्रसंग में मैं अपने मित्र श्री पिनाकपाणि प्रसाद शर्मा, आई० पी० एस०, सहायक पुलिस अधीक्षक, नान्देड़ (महाराष्ट्र), को विशेष रूप से धन्यवाद देना चाहता हूं, जिनसे मुझे निरंतर परामर्श, सहायता और उत्साहवर्धन मिला है। यहां मैं अनुज श्री दुर्गानन्दन तिवारी और अपने विद्यार्थी श्री चन्द्रदेव सिंह को भी समय-समय पर उनसे प्राप्त सहायता के लिए धन्यवाद देता हूं।

ग्रन्थ के प्रकाशन में दी गयी बहुविध सहायता के लिए मैं डा० (श्रीमती) कमल गिरि, प्राध्यापिका, कला-इतिहास विभाग, का० हि० वि०वि०, का भी हृदय से आभारी हूं।

ग्रन्थ के प्रकाशन के निमित्त वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिए मैं भारतीय इतिहास अनुसन्धान परिषद, नई दिल्ली तथा जीवन जगन चैरिटेबल ट्रस्ट, फरीदाबाद का भी आभारी हूं। ग्रन्थ के प्रकाशन के लिए पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी को मैं हृदय से धन्यवाद देता हूं। संस्थान के अध्यक्ष डा० सागरमल जैन ने जिस तत्परता से ग्रन्थ के प्रकाशन की व्यवस्था की उसके लिए मैं विशेषरूप से उनके प्रति आभार प्रकट करता हूं। तारा प्रिंटिंग वर्क्स, वाराणसी के व्यवस्थापक, श्री रमाशंकर पण्ड्या और खण्डेलवाल प्रेस, वाराणसी के व्यवस्थापक भी धन्यवाद के पात्र हैं, जिन्होंने क्रमशः पाठ और चित्रों का मुद्रण कार्य सुरुचिपूर्ण ढंग से किया है। चित्रों एवं ब्लाक्स की व्यवस्था के लिए मैं अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, आर्किअलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, दिल्ली तथा जैन जर्नल, कलकत्ता का विशेष रूप से आभारी हूं।

राष्ट्रभाषा हिन्दी में भारतीय प्रतिमाविज्ञान पर प्रकाशित ग्रन्थों की संख्या अत्यन्त सीमित है। जैन प्रतिमा-विज्ञान पर तो हिन्दी में सम्भवतः कोई समुचित ग्रन्थ है ही नहीं। मातृभाषा हिन्दी में इस विषय पर ग्रन्थ लेखन की मेरी प्रबल इच्छा थी। प्रस्तुत ग्रन्थ के माध्यम से मैंने इस दिशा में एक विनम्र प्रयास किया है। इस दृष्टि से हिन्दी जगत में भी प्रस्तुत ग्रन्थ का स्वागत होगा, ऐसी आशा करता हूं।

श्रावण पूर्णिमा (रक्षाबन्धन), २०३८,
१५ अगस्त, १९८१

—मारुतिनन्दन प्रसाद तिवारी

विषय-सूची

संकेत-सूची

अ०ला०बु०	दि अड्यार लाइब्रेरी बुलेटिन
आ०स०इं०ऐ०रि०	आर्किअलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, ऐनुअल रिपोर्ट
इण्डि०एण्टि०	इण्डियन एण्टिक्वेरी
इण्डि०क०	इण्डियन कल्चर
इं०हि०क्वा०	इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली
ईस्ट वे०	ईस्ट ऐण्ड वेस्ट
उ०हि०रि०ज०	उड़ीसा हिस्टारिकल रिसर्च जर्नल
एपि०इण्डि०	एपिग्राफिया इण्डिका
ऐंशि०इं०	ऐन्शियण्ट इण्डिया : बुलेटिन ऑव दि आर्किअलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया
ओ०आर्ट०	ओरियण्टल आर्ट
का०इं०इ०	कार्पस इन्स्क्रिप्शनम इण्डिकेरम
क्वा०ज०मि०सो०	क्वार्टर्ली जर्नल ऑव दि मिथिक सोसाइटी
क्वा०ज०मै०स्टे०	क्वार्टर्ली जर्नल ऑव दि मैसूर स्टेट
छवि०	छवि : गोल्डेन जुबिली वाल्यूम ऑव दि भारत कला भवन, वाराणसी (सं० आनन्द कृष्ण)
ज०आं०हि०रि०सो०	जर्नल ऑव दि आन्ध्र हिस्टारिकल रिसर्च सोसाइटी
ज०इं०म्यू०	जर्नल ऑव दि इण्डियन म्यूजियम्स, बंबई
ज०इं०सो०ओ०आ०	जर्नल ऑव दि इण्डियन सोसाइटी ऑव ओरियण्टल आर्ट
ज०इं०हि०	जर्नल ऑव इण्डियन हिस्ट्री
ज०एम०एस०यू०ब०	जर्नल ऑव दि एम० एस० यूनिवर्सिटी ऑव बड़ौदा
ज०ए०सो०	जर्नल ऑव दि एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता
ज०ए०सो०बं०	जर्नल ऑव दि एशियाटिक सोसाइटी ऑव बंगाल
ज०ओ०इं०	जर्नल ऑव दि ओरियण्टल इन्स्टिट्यूट ऑव बड़ौदा
ज०गु०रि०सो०	जर्नल ऑव दि गुजरात रिसर्च सोसाइटी
ज०बां०ब्रा०रा०ए०सो०	जर्नल ऑव दि बाम्बे ब्रांच ऑव दि रायल एशियाटिक सोसाइटी
ज०बि०उ०रि०सो०	जर्नल ऑव दि बिहार, उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी
ज०बि०रि०सो०	जर्नल ऑव दि बिहार रिसर्च सोसाइटी
ज०यू०पी०हि०सो०	जर्नल ऑव दि यू०पी० हिस्टारिकल सोसाइटी
ज०यू०बां०	जर्नल ऑव दि यूनिवर्सिटी ऑव बाम्बे
ज०रा०ए०सो०	जर्नल ऑव दि रायल एशियाटिक सोसाइटी, लन्दन
जि०इ०दे०	दि जिन इमेजेज ऑव देवगढ़ (ले० क्लाज ब्रुन)
जै०क०स्था०	जैन कला एवं स्थापत्य (३ खण्ड, सं० अमलानंद घोष, भारतीय ज्ञानपीठ)
जैन एण्टि०	जैन एण्टिक्वेरी
जै०शि०सं०	जैन शिलालेख संग्रह (भाग १–५–क्रमशः सं० हीरालाल जैन, विजयमूर्ति, विजयमूर्ति, विद्याधर जोहरापुरकर, विद्याधर जोहरापुरकर)

जै०स०प्र०	जैन सत्यप्रकाश
जै०सि०भा०	जैन सिद्धान्त भास्कर, आरा
त्रि०श०पु०च०	त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र (हेमचन्द्रकृत)
पा०टि०	पाद टिप्पणी
पु०मु०	पुनर्मुद्रित
पू०नि०	पूर्वनिर्दिष्ट
प्रो०ट्रां०ओ०कां०	प्रोसिडिंग्स ऐण्ड ट्रान्जेक्शन्स ऑव दि आल इण्डिया ओरियण्टल कान्फरेन्स
प्रो०रि०आ०स०इ०वे०स०	प्रोग्रेस रिपोर्ट ऑव दि आर्किअलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, वेस्टर्न सर्किल
बु०ड०का०रि०इं०	बुलेटिन ऑव दि डॅकन कालेज रिसर्च इन्स्टिट्यूट, पूना
बु०प्रि०वे०म्यू०वे०इं०	बुलेटिन ऑव दि प्रिंस ऑव वेल्स म्यूजियम ऑव वेस्टर्न इण्डिया, बम्बई
बु०ब०म्यू०	बुलेटिन ऑव दि बड़ौदा म्यूजियम
बु०म०ग०म्यू०न्यू०सि०	बुलेटिन ऑव दि मद्रास गवर्नमेन्ट म्यूजियम, न्यू सिरीज
बु०म्यू०पि०गै०	बुलेटिन म्यूजियम ऐण्ड पिक्चर गैलरी, बड़ौदा
म०जै०वि०गो०जु०वा०	महावीर जैन विद्यालय गोल्डेन जुबिली वाल्यूम, बंबई (भाग १, सं० ए०एन०उपाध्ये आदि)
मे०आ०स०इं०	मेम्वायर्स ऑव दि आर्किअलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया
वा०अहिं०	दि वायस ऑव अहिंसा
वि०इं०ज०	विश्वेश्वरानन्द इण्डोलाजिकल जर्नल, होशियारपुर
सं०पु०प०	संग्रहालय पुरातत्व पत्रिका, लखनऊ
स्ट०जै०आ०	स्टडीज इन जैन आर्ट (ले० यू०पी०शाह)

प्रथम अध्याय

प्रस्तावना

जैन कला एवं प्रतिमाविज्ञान पर पर्याप्त सामग्री सुलभ है। लेकिन अभी तक इस विषय पर अपेक्षित विस्तार से कार्य नहीं हुआ है। इसी दृष्टि से प्रस्तुत ग्रन्थ में मुख्यतः उत्तर भारत में जैन प्रतिमाविज्ञान के विस्तृत अध्ययन का प्रयास किया गया है। यद्यपि तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से ग्रन्थ में यथासंभव दक्षिण भारत के जैन प्रतिमविज्ञान की भी स्थान-स्थान पर चर्चा की गई है। उत्तर भारत से तात्पर्य विन्ध्यपर्वत श्रेणियों के उत्तर के भारतीय उपमहाद्वीप के क्षेत्र से है जो पश्चिम में गुजरात एवं पूर्व में उड़ीसा तक विस्तीर्ण है। जैन प्रतिमाविज्ञान की दृष्टि से उत्तर भारत का सम्पूर्ण क्षेत्र किन्हीं विशेषताओं के सन्दर्भ में एक सूत्र में बंधा है, और जैन प्रतिमाविज्ञान के विकास की प्रारम्भिक और परवर्ती अवस्थाओं तथा उनमें होने वाले परिवर्तनों की दृष्टि से यह क्षेत्र महत्वपूर्ण भी है। जैन धर्म की दृष्टि से भी इसका महत्व है। इसी क्षेत्र में वर्तमान अवसर्पिणी युग के सभी चौबीस जिनों ने जन्म लिया, यही उनकी कार्य-स्थली थी, तथा यहीं उन्होंने निर्वाण भी प्राप्त किया। सम्भवतः इसी कारण प्रारम्भिक जैन ग्रंथों की रचना एवं कलात्मक अभिव्यक्तियों का मुख्य क्षेत्र भी उत्तर भारत ही रहा है। जैन आगमों का प्रारम्भिक संकलन एवं लेखन यहीं हुआ तथा प्रतिमाविज्ञान की दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रारम्भिक ग्रन्थ **कल्पसूत्र, पउमचरिय, अंगविज्जा, वसुदेवहिण्डी, आवश्यक निर्युक्ति** आदि भी इसी क्षेत्र में लिखे गये।

प्रतिमा लक्षणों के विकास की दृष्टि से भी उत्तर भारत का विविधतापूर्ण अग्रगामी योगदान है। इस विकास के तीन सन्दर्भ हैं : पारम्परिक, अपारम्परिक और अन्य धर्मों की कला परम्पराओं का प्रभाव।

जैन प्रतिमाविज्ञान के पारम्परिक विकास का हर चरण सर्वप्रथम इसी क्षेत्र में परिलक्षित होता है। जैन कला का उदय भी इसी क्षेत्र में हुआ। महावीर की जीवन्तस्वामी मूर्ति इसी क्षेत्र से मिली है, जिसके निर्माण की परम्परा साहित्यिक साक्ष्यों के अनुसार महावीर के जीवनकाल (छठीं शती ई० पू०) से ही थी।[1] प्रारम्भिक जिन मूर्तियां लोहानीपुर (पटना) एवं चौसा (भोजपुर) से मिली हैं। मथुरा में शुंग-कुषाण युग में प्रचुर संख्या में जैन मूर्तियां निर्मित हुई। ऋषभ की लटकती जटा, पार्श्व के सात सर्पफण, जिनों के वक्षःस्थल में श्रीवत्स चिह्न और शीर्ष भाग में उष्णीष[2] एवं जिन मूर्तियों में अष्ट-प्रातिहार्यों[3] और ध्यानमुद्रा[4] के प्रदर्शन की परम्परा मथुरा में ही प्रारम्भ हुई।

जिन मूर्तियों में लांछनों एवं यक्ष-यक्षी युगलों का चित्रण भी सर्वप्रथम इसी क्षेत्र में प्रारम्भ हुआ। जिनों के जीवनदृश्यों, विद्याओं, २४ यक्ष-यक्षियों, १४ या १६ मांगलिक स्वप्नों, भरत, बाहुबली, सरस्वती, क्षेत्रपाल, २४ जिनों के

---

१ शाह, यू० पी०, 'ए यूनीक जैन इमेज ऑव जीवन्तस्वामी', ज०ओ०इं०, खं० १, अं० १, पृ० ७२-७९

२ दक्षिण भारत की जिन मूर्तियों में उष्णीष नहीं प्रदर्शित हैं। श्रीवत्स चिह्न भी वक्षःस्थल के मध्य में न होकर सामान्यतः दाहिनी ओर उत्कीर्ण है। दक्षिण भारत की जिन मूर्तियों में श्रीवत्स चिह्न का अभाव भी दृष्टिगत होता है।
उन्निथन, एन० जी०, 'रेलिक्स ऑव जैनिजम-आलतूर', ज०इं०हि०, खं० ४४, भाग १, पृ० ५४२; जै०क०स्था०, खं० ३, पृ० ५५६

३ सिंहासन, अशोकवृक्ष, प्रभामण्डल, छत्रत्रयी, देवदुन्दुभि, सुरपुष्प-वृष्टि, चामरधर, दिव्यध्वनि।

४ मथुरा के आयागपटों पर सर्वप्रथम ध्यानमुद्रा में आसीन जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हुई। इसके पूर्व की मूर्तियों (लोहानीपुर, चौसा) में जिन कायोत्सर्ग-मुद्रा में खड़े हैं।

माता-पिता, अष्ट-दिक्पालों, नवग्रहों, एवं अन्य देवों के प्रतिमा-निरूपण से सम्बन्धित उल्लेख और उनकी पदार्थगत अभिव्यक्ति भी सर्वप्रथम इसी क्षेत्र में हुई ।[१]

उत्तर भारत का क्षेत्र परम्परा-विरुद्ध और परम्परा में अप्राप्य प्रकार के चित्रणों की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण था ।[२] देवगढ़ एवं खजुराहो की द्वितीर्थी, त्रितीर्थी जिन मूर्तियां, कुछ जिन मूर्तियों में परम्परा सम्मत यक्ष-यक्षियों की अनुपस्थिति,[३] देवगढ़ एवं खजुराहो की बाहुबली मूर्तियों में जिन मूर्तियों के समान अष्ट-प्रातिहार्यों एवं यक्ष-यक्षी का अंकन, देवगढ़ की त्रितीर्थी जिन मूर्तियों में जिनों के साथ बाहुबली, सरस्वती एवं भरत चक्रवर्ती का अंकन इस कोटि के कुछ प्रमुख उदाहरण हैं । कुछ स्थलों (जालोर एवं कुम्भारिया) की मूर्तियों में चक्रेश्वरी एवं अम्बिका यक्षियों और सर्वानुभूति यक्ष के मस्तक पर सर्पफण प्रदर्शित हैं । कुम्भारिया, विमलवसही, तारंगा, लूणवसही आदि श्वेताम्बर स्थलों पर ऐसे कई देवों की मूर्तियां हैं जिनके उल्लेख किसी जैन ग्रन्थ में नहीं प्राप्त होते ।

जैन शिल्प में एकरसता के परिहार के लिए, स्थापत्य के विशाल आयामों को तदनुरूप शिल्पगत वैविध्य से संयोजित करने के लिए एवं अन्य धर्मावलम्बियों को आकर्षित करने के लिए अन्य सम्प्रदायों के कुछ देवों को भी विभिन्न स्थलों पर आकलित किया गया । खजुराहो का पार्श्वनाथ जैन मन्दिर इसका एक प्रमुख उदाहरण है । मन्दिर के मण्डोवर पर ब्रह्मा, विष्णु, शिव, राम एवं बलराम आदि की स्वतन्त्र एवं शक्तियों के साथ आलिंगन मूर्तियां हैं ।[४] मथुरा की एक अम्बिका मूर्ति में बलराम, कृष्ण, कुबेर एवं गणेश का, मथुरा एवं देवगढ़ की नेमि मूर्तियों में बलराम-कृष्ण का, विमलवसही की एक रोहिणी मूर्ति में शिव और गणेश का, ओसिया की देवकुलिकाओं और कुम्भारिया के नेमिनाथ मन्दिर पर गणेश का,[५] विमलवसही और लूणवसही में कृष्ण के जीवनदृश्यों का एवं विमलवसही में षोडश-भुज नरसिंह का अंकन ऐसे कुछ अन्य उदाहरण हैं ।

जटामुकुट से शोभित वृषभवाहना देवी का निरूपण श्वेताम्बर स्थलों पर विशेष लोकप्रिय था । देवी की दो भुजाओं में सर्प एवं त्रिशूल हैं । देवी का लाक्षणिक स्वरूप पूर्णतः हिन्दू शिवा से प्रभावित है ।[६] कुछ श्वेताम्बर स्थलों पर प्रज्ञप्ति महाविद्या की एक भुजा में कुक्कुट प्रदर्शित है, जो हिन्दू कौमारी का प्रभाव है ।[७] कुछ उदाहरणों में गौरी महाविद्या का वाहन गोधा के स्थान पर वृषभ है । यह हिन्दू माहेश्वरी का प्रभाव है ।[८] राज्य संग्रहालय, लखनऊ (६६.२२५, जी ३१२) की दो अम्बिका मूर्तियों में देवी के हाथों में दर्पण, त्रिशूल-घण्टा और पुस्तक प्रदर्शित हैं, जो उमा और शिवा का प्रभाव है ।[९]

---

१ दक्षिण भारत के मूर्ति अवशेषों में विद्याओं, २४ यक्षियों, आयागपट, जीवन्तस्वामी महावीर, जैन युगल एवं जिनों के माता-पिता की मूर्तियां नहीं हैं ।

२ उत्तर भारत में होने वाले परिवर्तनों से दक्षिण भारत के कलाकार अपरिचित थे ।

३ गुजरात-राजस्थान की जिन मूर्तियों में सभी जिनों के साथ सर्वानुभूति एवं अम्बिका निरूपित हैं जो जैन परम्परा में नेमि के यक्ष-यक्षी हैं । ऋषभ एवं पार्श्व की कुछ मूर्तियों में पारंम्परिक यक्ष-यक्षी भी अंकित हैं ।

४ ब्रुन, क्लाज़, 'दि फिगर ऑव दि टू लोअर रिलीफ्स ऑन दि पार्श्वनाथ टेम्पल् ऐट खजुराहो', **आचार्य श्रीविजय-वल्लभ सूरि स्मारक ग्रन्थ**, बम्बई, १९५६, पृ० ७–३५

५ उल्लेखनीय है कि गणेश की लाक्षणिक विशेषताएँ सर्वप्रथम १४१२ ई० के जैन ग्रन्थ **आचारदिनकर** में ही निरूपित हुईं ।

६ राव, टी० ए० गोपीनाथ, **एलिमेण्ट्स ऑव हिन्दू आइकानोग्राफी**, खण्ड १, भाग २, वाराणसी, १९७१ (पु० मु०), पृ० ३६६

७ वही, पृ० ३८७–८८

८ वही, पृ० ३६६, ३८७

९ वही, पृ० ३६०, ३६६, ३८७

इस क्षेत्र में श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों परम्परा के ग्रन्थ एवं महत्वपूर्ण कला केन्द्र हैं।[1] इस प्रकार इस क्षेत्र की सामग्री के अध्ययन से श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों के ही प्रतिमाविज्ञान के तुलनात्मक एवं क्रमिक विकास का निरूपण सम्भव है। इससे उनके आपसी सम्बन्धों पर भी प्रकाश पड़ सकता है। इस क्षेत्र में एक ओर उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, उड़ीसा एवं बंगाल में दिगम्बर सम्प्रदाय के कलावशेष और दूसरी ओर गुजरात एवं राजस्थान में श्वेताम्बर कलाकेन्द्र स्वतन्त्र रूप से पल्लवित और पुष्पित हुए। गुजरात और राजस्थान में दिगम्बर सम्प्रदाय की भी कलाकृतियाँ मिली हैं, जो दोनों सम्प्रदायों के सहअस्तित्व की सूचक हैं। गुजरात और राजस्थान में **हरिवंशपुराण, प्रतिष्ठासारसंग्रह, प्रतिष्ठासारोद्धार** आदि कई महत्त्वपूर्ण दिगम्बर जैन ग्रन्थों की भी रचना हुई। इस क्षेत्र में ऐसे अनेक समृद्ध जैन कला केन्द्र भी स्थित हैं, जहाँ कई शताब्दियों की मूर्ति सम्पदा सुरक्षित है। इनमें मथुरा, चौसा, देवगढ़, राजगिर, अकोटा, कुम्भारिया, तारंगा, ओसिया, विमलवसही, लूणवसही, जालोर, खजुराहो एवं उदयगिरि-खण्डगिरि उल्लेखनीय हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ की समय-सीमा प्रारम्भिक काल से बारहवीं शती ई० तक है।

पूर्वगामी शोधकार्य

सर्वप्रथम कनिंघम की रिपोर्ट्स में उत्तर भारत के कई स्थलों की जैन मूर्तियों के उल्लेख मिलते हैं। इन रिपोर्ट्स में ग्वालियर, बूढ़ी चांदेरी, खजुराहो एवं मथुरा आदि की जैन मूर्तियों के उल्लेख हैं।[2] खजुराहो के पार्श्वनाथ मन्दिर के वि० सं० १०११ (=९५४ ई०) और शान्तिनाथ मन्दिर की विशाल शान्ति प्रतिमा के वि० सं० १०८५ (=१०२८ ई०) के लेखों का उल्लेख सर्वप्रथम कनिंघम की रिपोर्ट्स में हुआ है। कनिंघम ने ऋषभ, शान्ति, पार्श्व एवं महावीर की कुछ मूर्तियों की पहचान भी की है।

प्रारम्भिक विद्वानों के कार्य मुख्यतः जैन प्रतिमाविज्ञान के सर्वाधिक महत्वपूर्ण और प्रारम्भिक स्थल कंकाली टीला (मथुरा) की शिल्प सामग्री पर हैं। यहाँ से ल० १५० ई० पू० से १०२३ ई० के मध्य की सामग्री मिली है। कंकाली टीले की जैन मूर्तियों को प्रकाश में लाने और राज्य संग्रहालय, लखनऊ में सुरक्षित कराने का श्रेय फ्यूरर को है। फ्यूरर ने प्राविन्शियल म्यूज़ियम, लखनऊ के १८८९ एवं १८९०-९१ की वार्षिक रिपोर्ट्स में कंकाली टीला की जैन मूर्तियों का उल्लेख किया है।[3] फ्यूरर ने ही सर्वप्रथम मूर्ति लेखों के आधार पर मथुरा की जैन शिल्प सामग्री की समय-सीमा १५० ई० पू० से १०२३ ई० बतायी और १५० ई० पू० से भी पहले मथुरा में एक जैन मन्दिर की विद्यमानता का उल्लेख किया।[4] ब्यूहलर ने मथुरा की कुछ विशिष्ट जैन मूर्तियों के अभिप्रायों की विद्वत्तापूर्ण विवेचना की है। इनमें आयागपटों एवं महावीर के गर्भापहरण के दृश्य से सम्बन्धित फलक प्रमुख हैं।[5] ब्यूहलर ने मथुरा के जैन अभिलेखों को भी प्रकाशित किया है, जिनसे मथुरा में जैन धर्म और संघ की स्थिति पर प्रकाश पड़ता है और यह भी ज्ञात होता है कि किस सीमा तक शासक वर्ग, व्यापारी, विदेशी एवं सामान्य जनों का जैन धर्म एवं कला को समर्थन मिला।[6] वी० ए० स्मिथ ने मथुरा के जैन स्तूप और अन्य सामग्री पर एक पुस्तक प्रकाशित की है, जिसमें उन्होंने साहित्यिक साक्ष्यों को विश्वसनीय मानते हुए मथुरा के जैन स्तूप को भारत का प्राचीनतम स्थापत्यगत अवशेष माना है।[7] स्मिथ ने जैन आयागपटों, विशिष्ट फलकों एवं कुछ

---

१ दक्षिण भारत की जैन मूर्तिकला दिगम्बर सम्प्रदाय से सम्बद्ध है।

२ कनिंघम, ए०, आ०स०इं०रि०, १८६४-६५, खं० २, पृ० ३६२-६५, ४०१-०४, ४१२-१४, ४३१-३५; १८७१-७२, खं० ३, पृ० १९-२०, ४५-४६

३ स्मिथ, वी० ए०, **दि जैन स्तूप ऐण्ड अदर एण्टिक्विटीज़ ऑव मथुरा**, वाराणसी, १९६९ (पु० मु०), पृ० २-४

४ वही, पृ० ३

५ ब्यूहलर, जी०, 'स्पेसिमेन्स ऑव जैन स्कल्पचर्स फ्राम मथुरा', **एपि० इण्डि०**, खं० २, पृ० ३११-२३

६ ब्यूहलर, जी०, 'न्यू जैन इन्स्क्रिप्शन्स फ्राम मथुरा', **एपि० इण्डि०**, खं० १, पृ० ३७१, ९३; 'फर्दर जैन इन्स्क्रिप्शन्स फ्राम मथुरा', **एपि० इण्डि०**, खं० १, पृ० ३९३-९७; खं० २, पृ० १९५-२१२

७ स्मिथ, वी० ए०, पू० नि०, पृ० १२-१३

जिन मूर्तियों के उल्लेख किये हैं जिनमें आयागपटों के उल्लेख विशेष महत्वपूर्ण हैं। इन्होंने कुछ जिन मूर्तियों की महावीर से गलत पहचान की है। स्मिथ ने सिंहासन के सूचक सिंहों को महावीर का सिंह लांछन मान लिया है।[1]

डी० आर० भण्डारकर पहले भारतीय विद्वान् हैं जिन्होंने जैन प्रतिमाविज्ञान पर कुछ कार्य किया है। ओसिया[2] के मन्दिरों पर लिखे लेख में उस स्थल के जैन मन्दिर का भी उल्लेख है। दो अन्य लेखों में भण्डारकर ने जैन ग्रन्थों के आधार पर मुनिसुव्रत के जीवन की दो महत्वपूर्ण घटनाओं (अश्वावबोध और शकुनिका विहार) का चित्रण करनेवाले पट्ट एवं जिन-समवसरण की विस्तृत व्याख्या की है।[3] ए० के० कुमारस्वामी ने जैन कला पर एक लेख लिखा है, जिसमें जैन कल्पसूत्र के कुछ चित्रों के विवरण भी हैं।[4] यक्षों पर लिखी पुस्तक में कुमारस्वामी ने संक्षेप में जैन धर्म में भी यक्ष पूजा के प्रारम्भिक स्वरूप की विवेचना की है।[5] यह अध्ययन जैन धर्म में यक्ष पूजा की प्राचीनता और उसके प्रारम्भिक स्वरूप के अध्ययन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। एफ० कीलहार्न[6] और एन० सी० मेहता[7] ने क्रमशः नेमि और अजित की विदेशी संग्रहालयों में सुरक्षित मूर्तियों पर लेख लिखे हैं।

जैन कला पर आर० पी० चन्दा के भी कुछ महत्वपूर्ण कार्य हैं। इनमें पहला राजगिर के जैन कलावशेष से सम्बन्धित है।[8] लेख में नेमि की एक लांछनयुक्त गुप्तकालीन मूर्ति का उल्लेख है। यह मूर्ति लांछनयुक्त प्राचीनतम जिन मूर्ति है। एक अन्य लेख में मोहनजोदड़ो की मुहरों और हड़प्पा की एक नग्न मूर्तिका के उत्कीर्णन में प्राप्त मुद्रा (जो कायोत्सर्ग के समान है) के आधार पर सैंधव सभ्यता में जैन धर्म की विद्यमानता की सम्भावना व्यक्त की गई है।[9] यह सम्भावना कायोत्सर्ग-मुद्रा के केवल जैन धर्म और कला में ही प्राप्त होने की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। चंदा की ब्रिटिश संग्रहालय की मूर्तियों पर प्रकाशित पुस्तक में संग्रहालय की जैन मूर्तियों के भी उल्लेख हैं।[10] इनमें उड़ीसा से मिली कुछ जैन मूर्तियाँ महत्वपूर्ण हैं।

एच० एम० जानसन ने एक लेख में त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र के आधार पर २४ यक्ष-यक्षियों के लाक्षणिक स्वरूपों का निरूपण किया है।[11] मुहम्मद हमीद कुरैशी ने बिहार और उड़ीसा के प्राचीन वास्तु अवशेषों पर एक पुस्तक लिखी है।[12] इसमें उड़ीसा की उदयगिरि-खण्डगिरि जैन गुफाओं की सामग्री का विस्तृत विवरण है। जैन मूर्तिविज्ञान की दृष्टि से नवमुनि एवं बारभुजी गुफाओं की जिन एवं यक्षी मूर्तियों के विवरण विशेष महत्व के हैं।

---

१ वही, पृ० ४९, ५१-५२
२ भण्डारकर, डी० आर०, 'दि टेम्पल्स ऑव ओसिया', आ०स०इं०ऐ०रि०, १९०८-०९, पृ० १००-१५
३ भण्डारकर, डी० आर०, 'जैन आइकानोग्राफी', आ०स०इं०ऐ०रि०, १९०५-०६, पृ० १४१-४९; इण्डि० एण्टि०, खं० ४०, पृ० १२५-३०
४ कुमारस्वामी, ए० के०, 'नोट्स ऑन जैन आर्ट', जर्नल ऑव दि इण्डियन आर्ट ऐण्ड इण्डस्ट्री, खं० १६, अं० १२०, पृ० ८१-९७
५ कुमारस्वामी, ए० के०, यक्षज, दिल्ली, १९७१ (पु० मु०)
६ कीलहार्न, एफ०, 'ऑन ए जैन स्टैचू इन दि हार्निमन म्यूजियम', ज०रा०ए०सो०, १८९८, पृ० १०१-०२
७ मेहता, एन० सी०, 'ए मेडिवल जैन इमेज ऑव अजितनाथ—१०५३ ए० डी०', इण्डि० एण्टि०, खं० ५६, पृ० ७२—७४
८ चंदा, आर० पी०, 'जैन रिमेन्स ऐट राजगिर', आ०स०इं०ऐ०रि०, १९२५—२६, पृ० १२१—२७
९ चंदा, आर० पी०, 'सिन्ध फाइव थाऊजण्ड इयर्स एगो', माडर्न रिव्यू, खं० ५२, अं० २, पृ० १५१—६०
१० चंदा, आर० पी०, मेडिवल इण्डियन स्कल्पचर इन दि ब्रिटिश म्यूजियम, लन्दन, १९३६
११ जानसन, एच० एम०, 'श्वेताम्बर जैन आइकानोग्राफी', इण्डि० एण्टि०, खं० ५६, पृ० २३—२६
१२ कुरैशी, मुहम्मद हमीद, लिस्ट ऑव ऐन्शण्ट मान्युमेण्ट्स इन दि प्राविन्स ऑव बिहार ऐण्ड उड़ीसा, कलकत्ता, १९३१

टी० एन० रामचन्द्रन ने तिरुपरुत्तिकुणरम (तमिलनाडु) के मन्दिरों पर एक पुस्तक लिखी है। इस पुस्तक में उस स्थल की जैन सामग्री के विस्तृत उल्लेख हैं और साथ ही जैन देवकुल और प्रतिमाविज्ञान के विभिन्न पक्षों की विवेचना भी की गई है।[1] उल्लेखनीय है कि रामचन्द्रन के पूर्व के सभी कार्य किसी स्थल विशेष की जैन मूर्ति सामग्री, स्वतन्त्र जिन मूर्तियों एवं जैन प्रतिमाविज्ञान के किसी पक्ष विशेष के अध्ययन से सम्बन्धित हैं। सर्वप्रथम रामचन्द्रन ने ही समग्र दृष्टि से जैन प्रतिमाविज्ञान पर कार्य किया। इस ग्रन्थ के लेखन में मुख्यतः दक्षिण भारत के ग्रन्थों एवं मूर्ति अवशेषों से सहायता ली गई है। अतः दक्षिण भारत के जैन प्रतिमाविज्ञान के अध्ययन की दृष्टि से इस ग्रन्थ का विशेष महत्व है। ग्रन्थ में जिनों एवं अन्य शलाका-पुरुषों, २४ यक्ष-यक्षियों एवं अन्य देवों के लाक्षणिक स्वरूपों के उल्लेख हैं। लेकिन विद्याओं एवं जीवन्तस्वामी महावीर की कोई चर्चा नहीं है। रामचन्द्रन की एक अन्य पुस्तक में उत्तर और दक्षिण भारत के कुछ प्रमुख जैन स्थलों की मूर्तियों के उल्लेख हैं।[2] प्रारम्भ में जैन प्रतिमाविज्ञान का संक्षिप्त परिचय भी दिया गया है, जिसमें जैन देवकुल पर हिन्दू देवकुल के प्रभाव की चर्चा से सम्बन्धित अंश विशेष महत्वपूर्ण है। एक लेख में रामचन्द्रन ने मोहनजोदड़ो की मुहरों एवं हड़प्पा की मूर्ति की नग्नता एवं खड़े होने की मुद्रा (कायोत्सर्ग के समान) के आधार पर सैन्धव सभ्यता में जैन धर्म एवं जिन मूर्ति की विद्यमानता की सम्भावना व्यक्त की है।[3] उन्होंने सैन्धव सभ्यता में प्रथम जिन ऋषभनाथ की विद्यमानता स्वीकार की है, जो ऐतिहासिक प्रमाणों के अभाव में स्वीकार्य नहीं है।

डब्ल्यू० नार्मन ब्राउन ने जैन कल्पसूत्र के चित्रों पर एक पुस्तक लिखी है।[4] के० पी० जैन[5] और त्रिवेणीप्रसाद[6] ने जिन प्रतिमाविज्ञान पर संक्षिप्त किन्तु महत्वपूर्ण लेख लिखे हैं। इनमें जिन मूर्तियों से सम्बन्धित सभी महत्वपूर्ण पक्षों, यथा मुद्राओं, अष्ट-प्रातिहार्यों, श्रीवत्स आदि की साहित्यिक सामग्री के आधार पर विवेचना की गई है। के० पी० जायसवाल[7] एवं ए० बनर्जी-शास्त्री[8] ने लोहानीपुर की जिन मूर्ति पर लेख लिखे हैं। इन लोगों ने विभिन्न प्रमाणों के आधार पर लोहानीपुर जिन मूर्ति का समय मौर्यकाल माना है। आज सभी विद्वान् इसे प्राचीनतम जिन मूर्ति मानते हैं। बी० भट्टाचार्य ने जैन प्रतिमाविज्ञान पर एक संक्षिप्त लेख लिखा है, जिसमें जैन देवकुल की विभिन्न देवियों की सूची विशेष महत्व की है।[9]

टी० एन० रामचन्द्रन के बाद जैन प्रतिमाविज्ञान पर दूसरा महत्वपूर्ण कार्य बी० सी० भट्टाचार्य का है, जिन्होंने जैन प्रतिमाविज्ञान पर एक पुस्तक लिखी है।[10] भट्टाचार्य ने ग्रन्थ में केवल उत्तर भारत की स्रोत सामग्री का उपयोग

---

१ रामचन्द्रन, टी० एन, तिरुपरुत्तिकुणरम ऐण्ड इट्स टेम्पल्स, बु०म०ग०म्यू०, न्यू०सि०, खं० १, भाग ३, मद्रास, १९३४

२ रामचन्द्रन, टी० एन०, जैन मान्युमेण्ट्स ऐण्ड प्लेसेज ऑव फर्स्ट क्लास इम्पार्टेन्स, कलकत्ता, १९४४

३ रामचन्द्रन, टी० एन०, 'हड़प्पा ऐण्ड जैनिजम', (हिन्दी अनुवाद), अनेकान्त, वर्ष १४, जनवरी १९५७, पृ० १५७–६१

४ ब्राउन, डब्ल्यू० एन, ए डेस्क्रिप्टिव ऐण्ड इलस्ट्रेटेड केटलॉग ऑव मिनियेचर पेण्टिंग्स ऑव दि जैन कल्पसूत्र, वाशिंगटन, १९३४

५ जैन, कामताप्रसाद, 'जैन मूर्तियाँ', जैन एण्टि०, खं० २, अं० १, पृ० ६–१७

६ प्रसाद, त्रिवेणी, 'जैन प्रतिमा-विधान', जैन एण्टि०, खं० ४, अं० १, पृ० १६–२३

७ जायसवाल, के० पी०, 'जैन इमेज ऑव मौर्य पिरियड', ज०बि०उ०रि०सो०, खं० २३, भाग १, पृ० १३०-३२

८ बनर्जी-शास्त्री, ए०, 'मौर्यन स्कल्पचर्स फ्राम लोहानीपुर, पटना', ज०बि०उ०रि०सो०, खं० २६, भाग २, पृ० १२०–२४

९ भट्टाचार्य, बी०, 'जैन आइकानोग्राफी', जैनाचार्य श्रीआत्मानन्द जन्म शताब्दी स्मारक ग्रन्थ, बम्बई, १९३६, पृ० ११४–२१

१० भट्टाचार्य, बी० सी०, दि जैन आइकानोग्राफी, लाहौर, १९३९

किया है। लेखक ने २४ जिनों एवं यक्ष-यक्षियों के साथ ही १६ विद्याओं, सरस्वती, अष्ट-दिक्पालों, नवग्रहों एवं जैन देवकुल के अन्य देवों के प्रतिमा लक्षणों की विस्तृत चर्चा की है। सर्वप्रथम उन्होंने ही उत्तर भारत के कई महत्वपूर्ण श्वेताम्बर एवं दिगम्बर लाक्षणिक ग्रन्थों तथा मथुरा की जैन मूर्तियों का समुचित उपयोग किया है। किन्तु पुस्तक में मथुरा के अतिरिक्त अन्य स्थलों से प्राप्त पुरातात्विक सामग्री का उपयोग नगण्य है, अतः इस पुरातात्विक साक्ष्य के तुलनात्मक अध्ययन का भी अभाव है। भट्टाचार्य ने जैनेतर एवं प्रारम्भिक जैन ग्रन्थों का भी उपयोग नहीं किया है। पुस्तक में जैन धर्म के प्रचलित प्रतीकों, समवसरण, बाहुबली, भरत चक्रवर्ती, ब्रह्मशान्ति यक्ष, जीवन्तस्वामी महावीर एवं कुछ अन्य विषयों की चर्चा ही नहीं है। गुप्त युग में यक्ष-यक्षियों के चित्रण की नियमितता, यक्षियों के स्वरूप निर्धारण के बाद विद्याओं का स्वरूप निर्धारण, कल्पसूत्र में जिन-लांछनों का उल्लेख एवं मथुरा की गुप्तकालीन जैन मूर्तियों में जिनों के लांछनों का प्रदर्शन—ये भट्टाचार्य की कुछ ऐसी स्थापनाएँ हैं जो साहित्यिक और पुरातात्विक प्रमाणों के परिप्रेक्ष्य में स्वीकार्य नहीं हैं। जैन प्रतिमा-विज्ञान पर अब तक का सबसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ होने के बाद भी उपर्युक्त कारणों से इसकी उपयोगिता सीमित है।

एच० डी० संकलिया ने जैन प्रतिमाविज्ञान एवं सम्बन्धित पक्षों पर कई लेख लिखे हैं। इनमें 'जैन आइकानोग्राफी' शीर्षक लेख विशेष महत्वपूर्ण है।[1] इसमें प्रारम्भ में जैन देवकुल के सदस्यों का प्रतिमा-निरूपण किया गया है, तदुपरान्त बम्बई के सेण्ट जेवियर संग्रहालय की जैन धातु मूर्तियों का विवरण दिया गया है। संकलिया के अन्य महत्वपूर्ण लेख जैन यक्ष-यक्षियों, देवगढ़ के जैन अवशेषों एवं गुजरात-काठियावाड़ की प्रारम्भिक जैन मूर्तियों से सम्बन्धित हैं।[2] इनमें विभिन्न स्थलों की जैन मूर्ति-सामग्री का उल्लेख है। काठियावाड़ की धांक गुफा की दिगम्बर जैन मूर्तियाँ यक्ष-यक्षी युगलों से युक्त प्रारम्भिक जिन मूर्तियाँ है।

जैन प्रतिमाविज्ञान पर सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्य यू० पी० शाह ने किया है।[3] पिछले ३० वर्षों से अधिक समय से वे मुख्यतः जैन प्रतिमाविज्ञान पर ही कार्य कर रहे है। शाह ने प्रारम्भिक जैन ग्रन्थों और विभिन्न पुरातात्विक स्थलों की सामग्री एवं उत्तर और दक्षिण भारत के जैन ग्रन्थों और शिल्प सामग्री का समुचित उपयोग किया है। अब तक का उनका अध्ययन उनकी दो पुस्तकों एवं ३० से अधिक लेखों में प्रकाशित है। उनकी पहली पुस्तक 'स्टडीज इन जैन आर्ट' में जैन कला मे प्रचलित प्रमुख प्रतीकों, यथा अष्टमांगलिक चिह्नों, समवसरण, मांगलिक स्वप्नों, स्तूप, चैत्यवृक्ष, आयागपटों, के विकास की मीमांसा की गई है।[4] साथ ही प्रारम्भ में उत्तर भारत के जैन मूर्ति अवशेषों का संक्षिप्त सर्वेक्षण भी प्रस्तुत किया गया है। दूसरी पुस्तक 'अकोटा ब्रोन्जेज' में उन्होंने अकोटा से प्राप्त जैन कांस्य मूर्तियों (लगभग ५वीं से ११वीं शती ई०) का विवरण दिया है।[5] अकोटा की मूर्तियाँ प्रारम्भिकतम श्वेताम्बर जैन मूर्तियाँ हैं। जीवन्तस्वामी महावीर एवं यक्ष-यक्षी से युक्त जिन मूर्ति के प्रारम्भिकतम उदाहरण भी अकोटा से ही मिले हैं। जैन प्रतिमाविज्ञान की दृष्टि से इन मूर्तियों का विशेष महत्व है।

---

१ संकलिया, एच० डी०, 'जैन आइकानोग्राफी', न्यू इण्डियन एण्टिक्वेरी, खं० २, १९३९–४०, पृ० ४९७–५२०

२ संकलिया, एच० डी०, 'जैन यक्षज ऐण्ड यक्षिणीज', बु०ड०का०रि०इं०, खं० १, अं० २–४, पृ० १५७–६८; 'जैन मान्युमेण्ट्स फ्राम देवगढ़', ज०इं०सो०ओ०आ०, खं० ९, १९४१, पृ० ९७–१०४; 'दि, अर्लिएस्ट जैन स्कल्पचर्स इन काठियावाड़', ज०रा०ए०सो०, जुलाई १९३८, पृ० ४२६–३०

३ जैन प्रतिमाविज्ञान पर शाह का शोध प्रबन्ध भी है, किन्तु अप्रकाशित होने के कारण हम उससे लाभ नहीं उठा सके।

४ शाह, यू० पी०, स्टडीज इन जैन आर्ट, बनारस, १९५५

५ शाह, यू० पी०, अकोटा ब्रोन्जेज, बम्बई, १९५९

विभिन्न जैन देवों के प्रतिमा लक्षण पर लिखे शाह के कुछ प्रमुख लेख अम्बिका, सरस्वती, १६ महाविद्याओं, हरिनैगमेषिन्, ब्रह्मशान्ति, कपर्दि यक्ष, चक्रेश्वरी एवं सिद्धायिका से सम्बन्धित हैं।[1] इन लेखों में श्वेताम्बर और दिगम्बर ग्रन्थों एवं पदार्थगत अभिव्यक्ति के आधार पर देवों की प्रतिमा लाक्षणिक विशेषताएँ निरूपित हैं। शाह ने विभिन्न देवों की मूर्ति के वैज्ञानिक विकास का अध्ययन काल और क्षेत्र के परिप्रेक्ष्य में करने के स्थान पर सामान्यतः भुजाओं की संख्या के आधार पर देवों को वर्गीकृत करके किया है। ऐसे अध्ययन से वास्तविक विकास का आकलन सम्भव नहीं है।

शाह ने जैन प्रतिमाविज्ञान के कुछ दूसरे महत्वपूर्ण पक्षों पर भी लेख लिखे हैं, जिनमें जीवन्तस्वामी की मूर्ति, प्रारम्भिक जैन साहित्य में यक्ष पूजन, जैन धर्म में शासनदेवताओं के पूजन का आविर्भाव एवं जैन प्रतिमाविज्ञान का प्रारम्भ प्रमुख हैं।[2] जीवन्तस्वामी विषयक लेखों में जीवन्तस्वामी महावीर मूर्ति की साहित्यिक परम्परा की विस्तृत चर्चा की गई है, और अकोटा की गुप्तकालीन जीवन्तस्वामी मूर्ति के आधार पर साहित्यिक साक्ष्यों की विश्वसनीयता प्रमाणित की गई है। यक्ष पूजन और शासनदेवताओं से सम्बन्धित लेख यक्ष-यक्षी पूजन की प्राचीनता, उनके मूर्त अंकन एवं २४ यक्ष-यक्षी युगलों की धारणा एवं उनके विकास और स्वरूप निरूपण के अध्ययन की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण हैं।

जैन प्रतिमाविज्ञान से सम्बन्धित सभी महत्वपूर्ण पक्षों की विवेचना में साहित्यिक साक्ष्यों के यथेष्ट उपयोग और विश्लेषण में शाह ने नियमितता बरती है। प्रारम्भिक एवं मध्ययुगीन प्रतिमा लाक्षणिक ग्रन्थों के समुचित एवं सुव्यवस्थित उपयोग का उनका प्रयास प्रशंसनीय है। जैन प्रतिमाविज्ञान के कई विषयों पर उनकी स्थापनाएँ महत्वपूर्ण हैं। उन्होंने ही प्रतिपादित किया कि महाविद्याओं की कल्पना यक्ष-यक्षियों की अपेक्षा प्राचीन है और उनके मूर्तिविज्ञानपरक तत्व भी यक्ष-यक्षियों से पूर्व ही निर्धारित हुए। यक्ष पूजा ई० पू० में भी लोकप्रिय थी और माणिभद्र-पूर्णभद्र यक्ष एवं बहुपुत्रिका यक्षी सर्वाधिक लोकप्रिय थे। इन्हीं से कालान्तर में जैन देवकुल के प्रारम्भिक यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति (कुबेर या मातंग) और अम्बिका विकसित हुए। गुप्त युग में सर्वानुभूति यक्ष और अम्बिका यक्षी का प्रथम निरूपण एवं आठवीं-नवीं शती ई० तक २४ यक्ष-यक्षी युगलों की कल्पना उनकी अन्य महत्वपूर्ण स्थापनाएँ हैं। जीवन्तस्वामी महावीर, ब्रह्मशान्ति यक्ष, कपर्दि यक्ष एवं अन्य कई महत्वपूर्ण विषयों पर सर्वप्रथम शाह ने ही कुछ लिखा है।

जैन प्रतिमाविज्ञान के अध्ययन में शाह का निश्चित ही सर्वप्रमुख योगदान है। किन्तु विभिन्न स्थलों की पुरातात्विक सामग्री के उपयोग में उन्होंने अपेक्षित नियमितता नहीं बरती है। उन्होंने सामग्री के प्राप्तिस्थल के सम्बन्ध में विस्तृत सन्दर्भ प्रायः नहीं दिये हैं, जिससे सामग्री का पुनर्परीक्षण दुःसाध्य हो जाता है। किसी स्थल के कुछ उदाहरणों का उल्लेख करते हुए भी उसी स्थल के दूसरे उदाहरणों का वे विवेचन नहीं करते। इसका कारण सम्भवतः यह है कि इन स्थलों की सम्पूर्ण मूर्ति सम्पदा का उन्होंने अध्ययन नहीं किया है। ओसिया, कुंभारिया, देवगढ़, खजुराहो जैसे महत्वपूर्ण स्थलों

---

१ शाह, यू० पी०, 'आइकानोग्राफी ऑव दि जैन गाडेस अम्बिका', ज०यू०बां०, खं० ९, पृ० १४७–६९; 'आइकानोग्राफी ऑव दि जैन गाडेस सरस्वती', ज०यू०बां०, खं० १० (न्यू सिरीज), पृ० १९५–२१८; 'आइकानोग्राफी ऑव दि सिक्सटीन जैन महाविद्याज', ज०इं०सो०ओ०आ०, खं० १५, १९४७, पृ० ११४–७७; 'हरिनैगमेषिन्', ज०इं०सो०ओ०आ०, खं० १९, १९५२–५३, पृ० १९–४१; 'ब्रह्मशान्ति ऐण्ड कपर्दि यक्षज', ज०एम०एस०यू०ब०, खं० ७, अं० १, पृ० ५९–७२; 'आइकानोग्राफी ऑव चक्रेश्वरी, दि यक्षी ऑव ऋषभनाथ', ज०ओ०इं०, खं० २०, अं० ३, पृ० २८०–३११; 'यक्षिणी ऑव दि ट्वेन्टीफोर्थ जिन महावीर', ज०ओ०इं०, खं० २२, अं० १–२, पृ० ७०–७८

२ शाह, यू० पी०, 'ए यूनीक जैन इमेज ऑव जीवन्तस्वामी', ज०ओ०इं०, खं० १, अं० १, पृ० ७२–७९; 'यक्षज वरशिप इन अर्ली जैन लिट्रेचर', ज०ओ०इं०, खं० ३, अं० १, पृ० ५४–७१; 'इण्ट्रोडक्शन ऑव शासनदेवताज इन जैन वरशिप', प्रो०ट्रां०ओ०कां०, २० वां अधिवेशन, भुवनेश्वर, पृ० १४१–५२; 'बिगिनिंग्स ऑव जैन आइकानोग्राफी', सं०पु०प०, अं० ९, पृ० १–१४

की मूर्ति सामग्री का नहीं के बराबर उपयोग किया गया है। अतः बहुत सी महत्वपूर्ण जानकारियाँ उनके लेखों में समाविष्ट नहीं हो सकी हैं। उनके महाविद्या सम्बन्धित लेख में कुम्भारिया के शान्तिनाथ मन्दिर की १६ महाविद्याओं के सामूहिक अंकन का उल्लेख नहीं है, जो महाविद्याओं के सामूहिक चित्रण का प्रारम्भिकतम उदाहरण है। इसी प्रकार जीवन्तस्वामी मूर्ति विषयक लेख में ओसिया की विशिष्ट जीवन्तस्वामी मूर्तियों का भी कोई उल्लेख नहीं है। ओसिया की जीवन्तस्वामी मूर्तियों में अन्यत्र दुर्लभ कुछ विशेषताएँ प्रदर्शित हैं। जिन मूर्तियों के समान इन जीवन्तस्वामी मूर्तियों में अष्ट-प्रातिहार्य, यक्ष-यक्षी एवं महाविद्या निरूपित हैं। शाह के मूर्त उदाहरण मुख्यतः राजस्थान और गुजरात के मन्दिरों से ही लिये गये हैं। शाह ने साहित्यिक साक्ष्यों और पुरातात्विक सामग्री के तुलनात्मक अध्ययन में स्थान एवं काल की दृष्टि से क्रम, संगति एवं सामञ्जस्य पर भी सतर्क दृष्टि नहीं रखी है।

के० डी० वाजपेयी ने मथुरा की जैन मूर्तियों पर कुछ लेख लिखे हैं, जिनमें कुषाणकालीन सरस्वती मूर्ति से सम्बन्धित लेख विशेष महत्वपूर्ण है,[1] क्योंकि जैन शिल्प में सरस्वती की यह प्राचीनतम मूर्ति है। एक अन्य लेख में वाजपेयी ने मध्यप्रदेश के जैन मूर्ति अवशेषों का संक्षेप में सर्वेक्षण किया है।[2] वी० एस० अग्रवाल ने भी जैन कला पर पर्याप्त कार्य किया है, जो मुख्यतः मथुरा के जैन शिल्प से सम्बन्धित है। उन्होंने मथुरा संग्रहालय की जैन मूर्तियों की सूची प्रकाशित की है[3], जो प्रारम्भिक जैन मूर्तिविज्ञान के अध्ययन की दृष्टि से विशेष महत्व की है। इसके अतिरिक्त आयागपटों एवं नैगमेषी पर भी उनके महत्वपूर्ण लेख हैं।[4] एक अन्य लेख में उन्होंने लखनऊ संग्रहालय के एक पट्ट की दृश्यावली की पहचान महावीर के जन्म से की है।[5] अधिकांश विद्वान् दृश्यावली को ऋषभ के जीवन से सम्बन्धित करते हैं। जे० ई० वान ल्युजे-डे-ल्यू की 'सीथियन पिरियड' पुस्तक में कुषाणकालीन जिन एवं बुद्ध मूर्तियों के समान मूर्तिवैज्ञानिक तत्वों की व्याख्या, उनके मूल स्रोत एवं इस दृष्टि से एक के दूसरे पर प्रभाव की विवेचना की गयी है।[6] इस अध्ययनसे यह स्थापित किया गया है कि प्रारम्भिक स्थिति में कोई भी कला साम्प्रदायिक नहीं होती, विषय वस्तु अवश्य ही विभिन्न सम्प्रदायों से अलग-अलग प्राप्त किये जाते हैं, किन्तु उनके मूर्त अंकन में प्रयुक्त विभिन्न तत्वों का मूल स्रोत वस्तुतः एक होता है। देबला मित्रा ने दो महत्वपूर्ण लेख लिखे हैं। एक लेख में बांकुड़ा (बंगाल) से मिली प्राचीन जैन मूर्तियों का उल्लेख है।[7] दूसरा लेख खण्डगिरि (उड़ीसा) की बारभुजी और नवमुनि गुफाओं की यक्षी मूर्तियों से सम्बन्धित है।[8] लेखिका ने बारभुजी गुफा की २४ एवं नवमुनि गुफा की ७ यक्षी मूर्तियों का विस्तृत विवरण देते हुए दिगम्बर ग्रन्थों के आधार पर यक्षियों की पहचान तथा सम्भावित हिन्दू प्रभाव के आकलन का प्रयास किया है।

---

१ वाजपेयी, के० डी०, 'जैन इमेज ऑव सरस्वती इन दि लखनऊ म्यूजियम', जैन एण्टि०, खं० ११, अं० २, पृ० १-४

२ वाजपेयी, के० डी०, 'मध्यप्रदेश की प्राचीन जैन कला', अनेकान्त, वर्ष १७, अं० ३, पृ० ९८-९९; वर्ष २८, १९७५, पृ० ११५-१६, १२०

३ अग्रवाल, वी० एस०, कैटलाग ऑव दि मथुरा म्यूजियम, भाग ३, ज०यू०पी०हि०सो०, खं० २३, पृ० ३५-१४७

४ अग्रवाल, वी० एस०, 'मथुरा आयागपटज', ज०यू०पी०हि०सो०, खं० १६, भाग १, पृ० ५८-६१; 'ए नोट आन दि गाड नैगमेष', ज०यू०पी०हि०सो०, खं० २०, भाग १-२, १९४७, पृ० ६८-७३

५ अग्रवाल, वी० एस०, 'दि नेटिविटी सीन ऑन ए जैन रिलीफ फ्राम मथुरा', जैन एण्टि०, खं० १०, पृ० १-४

६ ल्युजे-डे-ल्यू, जे० ई० वान, दि सीथियन पिरियड, लिडेन, १९४९, पृ० १४५-२२२

७ मित्रा, देबला, 'सम जैन एन्टिक्विटीज फ्राम बांकुड़ा, वेस्ट बंगाल', ज०ए०सो०बं०, खं० २४, अं० २, पृ० १३१-३४

८ मित्रा, देबला, 'शासन देवीज इन दि खण्डगिरि केव्स', ज०ए०सो०, खं० १, अं० २, पृ० १२७-३३

आर० सी० अग्रवाल ने जैन प्रतिमाविज्ञान के विभिन्न पक्षों पर कई लेख लिखे हैं। इनमें जैन देवी सच्चिका के प्रतिमा लक्षण से सम्बन्धित लेख महत्वपूर्ण है।[1] लेख में सच्चिका देवी पर हिन्दू महिषमर्दिनी का प्रभाव आकलित किया गया है। एक अन्य महत्वपूर्ण लेख में अग्रवाल ने विदिशा की तीन गुप्तकालीन जिन मूर्तियों का उल्लेख किया है।[2] दो मूर्तियों के लेखों में क्रमशः पुष्पदन्त एवं चन्द्रप्रभ के नाम हैं। ये मूर्तियां गुप्तकाल में कुषाणकाल की मूर्ति लेखों में जिनों के नामोल्लेख की परम्परा की अनवरतता की साक्षी हैं। कुछ अन्य लेखों में अग्रवाल ने राजस्थान के विभिन्न स्थलों की कुबेर, अम्बिका एवं जीवन्तस्वामी महावीर मूर्तियों के उल्लेख किये हैं।[3]

क्लाज ब्रुन ने जैन शिल्प पर चार लेख एवं एक पुस्तक लिखी है। एक लेख खजुराहो के पार्श्वनाथ मन्दिर की बाह्य भित्ति की मूर्तियों से सम्बन्धित है।[4] लेख में भित्ति की मूर्तियों पर हिन्दू प्रभाव की सीमा निर्धारित करने का सराहनीय प्रयास किया गया है। पर किन्हीं मूर्तियों के पहचान में लेखक ने कुछ भूलें की हैं, जैसे उत्तर भित्ति की राम-सीता मूर्ति को कुमार की मूर्ति से पहचाना गया है। एक लेख महावीर के प्रतिमानिरूपण से सम्बन्धित है।[5] दो अन्य लेखों में ब्रुन ने दुदही एवं चाँदपुर की जैन मूर्तियों का उल्लेख किया है।[6] ब्रुन का सबसे महत्वपूर्ण कार्य देवगढ़ की जिन मूर्तियों पर उनकी पुस्तक है।[7] ब्रुन ने देवगढ़ की जिन मूर्तियों को कई वर्गों में विभाजित किया है, पर यह विभाजन प्रतिमा लाक्षणिक आधार पर नहीं किया गया है, जिसकी वजह से देवगढ़ की जिन मूर्तियों के प्रतिमा लाक्षणिक अध्ययन की दृष्टि से यह पुस्तक बहुत उपयोगी नहीं है। जिन मूर्तियों में लांछनों, अष्ट-प्रातिहार्यों एवं यक्ष-यक्षी युगलों के महत्व को नहीं आकलित किया गया है। जिन मूर्तियो के कुछ विशिष्ट प्रकारो (द्वितीर्थी, त्रितीर्थी, चौमुख) एवं बाहुबली, भरत चक्रवर्ती, क्षेत्रपाल, कुबेर, सरस्वती आदि की मूर्तियों के भी उल्लेख नहीं हैं। पुस्तक में मन्दिर १२ की भित्ति की २४ यक्षी मूर्तियो के विस्तृत उल्लेख हैं, जो जैन मूर्तिविज्ञान के अध्ययन की दृष्टि से पुस्तक की सर्वाधिक महत्वपूर्ण सामग्री है। ब्रुन ने इन यक्षियो में से कुछ पर श्वेताम्बर महाविद्याओं के प्रभाव को भी स्पष्ट किया है।

उपर्युक्त महत्वपूर्ण कार्यों के अतिरिक्त १९४५ से १९७९ के मध्य अन्य कई विद्वानों ने भी जैन प्रतिमाविज्ञान या सम्बन्धित पक्षों पर विभिन्न लेख लिखे हैं। इनमें विभिन्न पुरातात्विक स्थलों एवं संग्रहालयों से सम्बन्धित लेख भी हैं।

---

१ अग्रवाल, आर०सी०, 'आइकानोग्राफी ऑव दि जैन गाडेस सच्चिका', जैन एण्टि०, खं०२१, अं० १, पृ० १३-२०

२ अग्रवाल, आर० सी०, 'न्यूली डिस्कवर्ड स्कल्पचर्स फ्राम विदिशा', ज०ओ०इं०, खं० १८, अं० ३, पृ० २५२-५३

३ अग्रवाल, आर० सी०, 'सम इण्टरेस्टिंग स्कल्पचर्स ऑव दि जैन गाडेस अम्बिका फ्राम मारवाड़', इं०हि०क्वा०, खं०३२, अं०४, पृ० ४३४-३८; 'सम इन्टरेस्टिंग स्कल्पचर्स ऑव यक्षज ऐण्ड कुबेर फ्राम राजस्थान', इं०हि०क्वा०, खं० ३३, अं० ३, पृ० २००-०७; 'ऐन इमेज ऑव जीवन्तस्वामी फ्राम राजस्थान', अ०ला०बु०, खं० २२, भाग १-२, पृ० ३२-३४; 'गाडेस अम्बिका इन दि स्कल्पचर्स ऑव राजस्थान', क्वा०ज०मि०सो०, खं०४९, अं०२, पृ० ८७-९१

४ ब्रुन, क्लाज, 'दि फिगर ऑव दि टू लोअर रिलीफ्स ऑन दि पार्श्वनाथ टेम्पल ऐट खजुराहो', आचार्य श्रीविजय-वल्लभ सूरि स्मारक ग्रन्थ, बम्बई, १९५६, पृ० ७–३५

५ ब्रुन, क्लाज, 'आइकानोग्राफी ऑव दि लास्ट तीर्थंकर महावीर', जैनयुग, वर्ष १, अप्रैल १९५८, पृ० ३६–३७

६ ब्रुन, क्लाज, 'जैन तीर्थज इन मध्यदेश : दुदही', जैनयुग, वर्ष १, नवम्बर १९५८, पृ० २९–३३; 'जैन तीर्थज इन मध्यदेश : चाँदपुर', जैनयुग, वर्ष २, अप्रैल १९५९, पृ० ६७–७०

७ ब्रुन, क्लाज, दि जिन इमेजेज ऑव देवगढ़, लिडेन, १९६९

इनमें ब्रजेन्द्रनाथ शर्मा[1], मधुसूदन ढाकी[2], कृष्णदेव[3] एवं बालचन्द्र जैन[4] आदि मुख्य हैं। भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा 'जैन कला एवं स्थापत्य' शीर्षक से तीन खण्डों में प्रकाशित ग्रन्थ (१९७५) जैन कला, स्थापत्य एवं प्रतिमाविज्ञान पर अब तक का सबसे विस्तृत और महत्वपूर्ण कार्य है।[5]

अध्ययन-स्रोत

प्रस्तुत अध्ययन में तीन प्रकार के स्रोतों का उपयोग किया गया है—अनुगामी, साहित्यिक और पुरातात्विक।

अनुगामी स्रोत के रूप में आधुनिक विद्वानों द्वारा जैन प्रतिमाविज्ञान पर १९७९ तक किये गये शोध कार्यों का, जिनकी ऊपर विवेचना की गयी है, समुचित उपयोग किया गया है। आर्किअलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया की ऐनुअल रिपोर्ट्स, वेस्टर्न सर्किल की प्रोग्रेस रिपोर्ट्स एवं अन्य उपलब्ध प्रकाशनों का भी यथासम्भव उपयोग किया गया है। विभिन्न संग्रहालयों की जैन सामग्री पर प्रकाशित पुस्तकों एवं लेखों से भी पूरा लाभ उठाया गया है। उत्तर भारत के जैन प्रतिमाविज्ञान से सीधे सम्बन्धित सामग्री के अतिरिक्त अनुगामी स्रोत के रूप में अन्य कई प्रकार की सामग्री का भी उपयोग किया गया है जो आधुनिक ग्रन्थ एवं लेख सूची में उल्लिखित हैं। जैन धर्म, साहित्य और देवकुल के अध्ययन की दृष्टि से जैन धर्म की महत्वपूर्ण पुस्तकों एवं लेखों से लाभ उठाया गया है। तिथि एवं कुछ अन्य विवरणों की दृष्टि से स्थापत्य से सम्बन्धित; जैन प्रतिमाविज्ञान के विकास में राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि के अध्ययन की दृष्टि से भारतीय इतिहास से सम्बन्धित; एवं दक्षिण भारत के जैन प्रतिमाविज्ञान से तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से दक्षिण भारत के जैन मूर्तिविज्ञान से सम्बन्धित महत्वपूर्ण ग्रन्थों एवं लेखों से भी आवश्यकतानुसार सहायता ली गयी है। इसी प्रकार हिन्दू एवं बौद्ध प्रतिमाविज्ञान से तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से हिन्दू एवं बौद्ध मूर्तिविज्ञान पर लिखी पुस्तकों का भी समुचित उपयोग किया गया है।

मूल स्रोत के रूप में यथासम्भव सभी उपलब्ध साहित्यिक ग्रन्थों के समुचित उपयोग का प्रयास किया गया है। सम्पूर्ण साहित्यिक ग्रन्थों को सुविधानुसार हम चार वर्गों में विभाजित कर सकते हैं।

पहले वर्ग में ऐसे प्रारम्भिक जैन ग्रन्थ हैं, जिनमें प्रसंगवश प्रतिमाविज्ञान से सम्बन्धित सामग्री प्राप्त होती है। जिनों, विद्याओं, यक्ष-यक्षियों एवं कुछ अन्य देवों के प्रारम्भिक स्वरूप के अध्ययन की दृष्टि से ये ग्रन्थ अतीव महत्त्व के हैं। प्रारम्भिक जैन कला में अभिव्यक्ति की सामग्री इन्हीं ग्रन्थों से प्राप्त की गई। इस वर्ग में महावीर के समय से सातवीं शती ई० तक के ग्रन्थ हैं। इनमें आगम ग्रन्थ, **कल्पसूत्र**, **अंगविज्जा**, **पउमचरियं**, **वसुदेवहिण्डी**, **आवश्यक चूर्णि**, **आवश्यक निर्युक्ति** आदि प्रमुख हैं।

दूसरे वर्ग में ल० आठवीं से सोलहवीं शती ई० के मध्य के श्वेताम्बर और दिगम्बर जैन ग्रन्थ हैं। इनमें मूर्तिविज्ञान से सम्बन्धित विस्तृत सामग्री है। इन ग्रन्थों में २४ जिनों एवं अन्य शलाका-पुरुषों, २४ यक्ष-यक्षी युगलों, १६ महाविद्याओं, सरस्वती, अष्ट-दिक्पालों, नवग्रहों, गणेश, क्षेत्रपाल, शांतिदेवी, ब्रह्मशान्ति यक्ष आदि के लाक्षणिक स्वरूप निरूपित हैं। इन व्यवस्थापक ग्रन्थों के आधार पर ही शिल्प में जैन देवों को अभिव्यक्ति मिली। श्वेताम्बर परम्परा के

---

१ शर्मा, ब्रजेन्द्रनाथ, 'अन्पब्लिश्ड जैन ब्रोन्जेज इन दि नेशनल म्यूजियम', ज०ओ०इं०, खं० १९, अं० ३, पृ० २७५-७८; **जैन प्रतिमाएं**, दिल्ली, १९७९

२ ढाकी, मधुसूदन, 'सम अर्ली जैन टेम्पल्स इन वेस्टर्न इण्डिया', **म०जै०वि०गो०जु०वा०**, बम्बई, १९६८, पृ० २९०-३४७

३ कृष्ण देव, 'दि टेम्पल्स ऑव खजुराहो इन सेन्ट्रल इण्डिया', **एंशि०इं०**, अं० १५, १९५९, पृ० ४३-६५'; 'माला देवी टेम्पल् ऐट ग्यारसपुर', म०जै०वि०गो०जु०वा०, बम्बई, १९६८, पृ० २६०-६९

४ जैन, बालचन्द्र, **जैन प्रतिमाविज्ञान**, जबलपुर, १९७४

५ घोष, अमलानन्द (संपादक), **जैन कला एवं स्थापत्य** (३ खण्ड), भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, १९७५

मुख्य ग्रन्थ चतुर्विंशतिका (बप्पभट्टिसूरिकृत), चतुर्विंशति स्तोत्र (शोभनमुनिकृत), निर्वाणकलिका, त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र, मंत्राधिराजकल्प, चतुर्विंशतिजिन-चरित्र (या पद्मानन्द महाकाव्य), प्रवचनसारोद्धार, आचारदिनकर एवं विविधतीर्थकल्प हैं। दिगम्बर परम्परा के प्रमुख ग्रन्थ हरिवंशपुराण, आदिपुराण, उत्तरपुराण, प्रतिष्ठासारसंग्रह, प्रतिष्ठासारोद्धार और प्रतिष्ठातिलकम् हैं।

तीसरे वर्ग में जैनेतर प्रतिमा लाक्षणिक ग्रन्थ हैं। ऐसे ग्रन्थों में हिन्दू देवकुल के सदस्यों के साथ ही जैन देवकुल के सदस्यों की भी लाक्षणिक विशेषताएँ विवेचित हैं। इनमें अपराजितपृच्छा, देवतामूर्तिप्रकरण और रूपमण्डन मुख्य हैं।

चौथे वर्ग में दक्षिण भारत के जैन ग्रन्थ हैं, जिनका उपयोग तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से किया गया है। इनमें मानसार और टी० एन० रामचन्द्रन की पुस्तक 'तिरुपरुत्तिकुणरम ऐण्ड इट्स टेम्पल्स' प्रमुख हैं।

ग्रन्थ की तीसरी महत्वपूर्ण स्रोत सामग्री पुरातात्विक स्थलों की जैन मूर्तियाँ हैं। पुरातात्विक सामग्री के संकलन हेतु कुछ मुख्य जैन स्थलों की यात्रा एवं वहाँ की मूर्ति सम्पदा का एकैकशः विशद अध्ययन भी किया गया है। ग्रन्थों में निरूपित विवरणों के वस्तुगत परीक्षण की दृष्टि से पुरातात्विक स्थलों की सामग्री का विशेष महत्व है, क्योंकि मूर्त धरोहर कलात्मक एवं मूर्तिवैज्ञानिक वृत्तियों के स्पष्ट साक्षी होते हैं। अध्ययन की दृष्टि से सामान्यतः ऐसे स्थलों को चुना गया है जहाँ कई शताब्दी की प्रभूत मूर्ति सम्पदा सुरक्षित है। इस चयन में श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों ही सम्प्रदायों के स्थल सम्मिलित हैं। जिन स्थलों की यात्रा की गई है उनमें अधिकांश ऐसे हैं जिनकी मूर्ति सम्पदा का या तो अध्ययन नहीं किया गया है, या फिर कुछ विशेष दृष्टि से किये गये अध्ययन की उपयोगिता प्रस्तुत ग्रन्थ की दृष्टि से सीमित है। इनमें राजस्थान में ओसिया, घाणेराव, सादरी, नाडोल, नाडलाई, जालोर, चन्द्रावती, विमलवसही, लूणवसही, और गुजरात में कुंभारिया एवं तारंगा के श्वेताम्बर स्थल; तथा उत्तरप्रदेश में देवगढ़ एवं राज्य संग्रहालय, लखनऊ और पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा (जहाँ मथुरा के कंकाली टीले की जैन मूर्तियाँ सुरक्षित हैं) एवं मध्यप्रदेश में ग्यारसपुर और खजुराहो के दिगम्बर स्थल मुख्य हैं।

उत्तर भारत के कुछ प्रमुख पुरातात्विक संग्रहालयों की जैन मूर्तियों का भी विस्तृत अध्ययन किया गया है। उल्लेखनीय है कि जहाँ किसी पुरातात्विक स्थल की सामग्री काल एवं क्षेत्र की दृष्टि से सीमाबद्ध होती है, वहीं संग्रहालय की सामग्री इस प्रकार की सीमा से सर्वथा मुक्त होती है। राज्य संग्रहालय, लखनऊ एवं पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा के अतिरिक्त राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली, राजपूताना संग्रहालय, अजमेर, भारत कला भवन, वाराणसी एवं पुरातात्विक संग्रहालय, खजुराहो के जैन संग्रहों का भी अध्ययन किया गया है। कल्पसूत्र के चित्रों पर प्रकाशित कुछ सामग्री का भी उपयोग हुआ है। विभिन्न पुरातात्विक स्थलों एवं संग्रहालयों की जैन मूर्तियों के प्रकाशित चित्रों को भी दृष्टिगत किया गया है। साथ ही आर्किअलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, दिल्ली एवं अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी के चित्र संग्रहों से भी आवश्यकतानुसार लाभ उठाया गया है।

कार्य-प्रणाली

ग्रंथ के लेखन में दो दृष्टियों से कार्य किया गया है। प्रथम, सभी प्रकार के साक्ष्यों के समन्वय एवं तुलनात्मक अध्ययन का प्रयास है। यह दृष्टि न केवल साहित्यिक और पुरातात्विक साक्ष्यों के मध्य, वरन् दो साहित्यिक या कला परम्पराओं के मध्य भी अपनायी गयी है। द्वितीय, ग्रन्थों एवं पुरातात्विक स्थलों की सामग्री के स्वतन्त्र अध्ययन में उनका एकशः, विशद और समग्र अध्ययन किया गया है। समूचा अध्ययन क्षेत्र एवं काल के चौखट में प्रतिपादित है।

आरम्भिक स्थिति में मूर्त अभिव्यक्ति के विषयवस्तु के प्रतिपादन की दृष्टि से ग्रन्थों का महत्व सीमित था। ग्रन्थों से केवल विषयवस्तु या देवों की धारणा ग्रहण की जाती थी। इस अवस्था में विभिन्न सम्प्रदायों की कला के मध्य क्षेत्र एवं काल के सन्दर्भ में परस्पर आदान-प्रदान हुआ।[1] प्रारम्भिक जैन कला के अध्ययन में विषयवस्तु की पहचान हेतु

१ ब्रूने-जे-स्यू, जे०ई०आर्ट, पू०नि०, पृ० १५१-५२

प्रारम्भिक जैन ग्रन्थों से सहायता ली गई है और साथ ही मूर्त अंकन में समकालीन एवं पूर्ववर्ती साहित्यिक एवं कला परम्पराओं के प्रभाव निर्धारण का भी यत्न किया गया है।

कुषाण शिल्प में ऋषभ एवं पार्श्व की मूर्तियों के लक्षणों और ऋषभ एवं महावीर के जीवनदृश्यों की विषय सामग्री ग्रन्थों से प्राप्त की गई। जिन मूर्ति के निर्माण की प्राचीन परम्परा (ल०तीसरी शती ई०पू०) होने के बाद भी मथुरा में शुंग-कुषाण युग में बौद्ध कला के समान ही जैन कला भी सर्वप्रथम प्रतीक रूप में अभिव्यक्त हुई। जैन आयागपटों के स्तूप, स्वस्तिक, धर्मचक्र, त्रिरत्न, पद्म, श्रीवत्स आदि चिह्न प्रतीक पूजन की लोकप्रियता के साक्षी हैं। मथुरा की प्राचीनतम जिन मूर्ति भी आयागपट (ल०पहली शती ई०पू०)[1] पर ही उत्कीर्ण है। इन आयागपटों के अष्टमांगलिक चिह्न पूर्ववर्ती साहित्यिक और कला परम्पराओं से प्रभावित हैं, क्योंकि जैन ग्रन्थों में गुप्तकाल से पहले अष्टमांगलिक चिह्नों की सूची नहीं मिलती।[2] साथ ही जैन सूची के अष्टमांगलिक चिह्नों[3] में धर्मचक्र, पद्म, त्रिरत्न (या तिलकरत्न), वैजयंती (या इन्द्रयष्टि) जैसे प्रतीक सम्मिलित नहीं हैं, जबकि आयागपटों पर इनका बहुलता से अंकन हुआ है।

ल० आठवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य जैन देवकुल में हुए विकास के कारण जैन देवकुल के सदस्यों के स्वतन्त्र लाक्षणिक स्वरूप निर्धारित हुए जिसकी वजह से साहित्य पर कला की निर्भरता विभिन्न देवताओं के पहचान और उनके मूर्त चित्रणों की दृष्टि से बढ़ गई। तुलनात्मक अध्ययन में इस बात के निर्धारण का भी यत्न किया गया है कि विभिन्न क्षेत्रों और कालों में कलाकार किस सीमा तक ग्रन्थों के निर्देशों का निर्वाह कर रहा था। इस दृष्टि के कारण यह निश्चित किया जा सका है कि जहाँ ग्रन्थों में २४ जिनों के यक्ष-यक्षी युगलों का निरूपण आवश्यक विषयवस्तु था, वहीं शिल्प में सभी यक्ष-यक्षी युगलों को स्वतन्त्र अभिव्यक्ति नहीं मिली। विभिन्न स्थलों पर किस सीमा तक जैन परम्परा में अवर्णित देवों को अभिव्यक्ति प्रदान की गई, इसके निर्धारण का भी प्रयास किया गया है।

दो या कई पुरातात्विक स्थलों के मूर्ति-अवशेषों की क्षेत्रीय वृत्तियों और समान तत्वों की दृष्टि से तुलनात्मक परीक्षा की गई है। ऐसे अध्ययन के कारण ही यह निश्चित किया जा सका है कि देवगढ़ के मन्दिर १२ की २४ यक्षी मूर्तियों में से कुछ पर ओसिया के महावीर मन्दिर की महाविद्या मूर्तियों का प्रभाव है। यह प्रभाव श्वेताम्बर स्थल (ओसिया) के दिगम्बर स्थल (देवगढ़) पर प्रभाव की दृष्टि से और भी महत्वपूर्ण है। प्रतिहार शासकों के समय के दो कला केन्द्रों पर विषयवस्तु एवं प्रतिमा लाक्षणिक वृत्तियों की दृष्टि से क्षेत्रीय सन्दर्भ में प्राप्त भिन्नताओं का निर्धारण भी तुलनात्मक अध्ययन से ही हो सका है। ओसिया (राजस्थान) में जहाँ महाविद्याओं एवं जीवन्तस्वामी को प्राथमिकता दी गई, वहीं देवगढ़ (उत्तर प्रदेश) में २४ यक्षियों, भरत, बाहुबली एवं क्षेत्रपाल आदि को चित्रित किया गया। यह तुलनात्मक अध्ययन हिन्दू एवं बौद्ध सम्प्रदायों और साथ ही दक्षिण भारत के मूर्तिवैज्ञानिक तत्वों तक विस्तृत है।

जैन देवकुल के २४ जिनों एवं यक्ष-यक्षी युगलों के स्वतन्त्र मूर्तिविज्ञान के अध्ययन में साहित्यिक साक्ष्यों एवं पदार्थगत अभिव्यक्तियों के आधार पर, कालक्रम के अनुसार उनके स्वरूप में हुए क्रमिक विकास का अध्ययन किया गया है। प्रतिमा लाक्षणिक विवेचन में, पहले संक्षेप में जिनों एवं यक्ष-यक्षियों की समूहगत सामान्य विशेषताओं का ऐतिहासिक सर्वेक्षण है। तदुपरान्त समूह के प्रत्येक देवी-देवता के प्रतिमा लक्षण की स्वतन्त्र विवेचना की गई है।

सारांशतः, कार्य प्रणाली के लिए काल, क्षेत्र, साहित्य एवं पुरातत्व के बीच सामंजस्य, विभिन्न धर्मों की समकालीन परम्पराओं का परस्पर प्रभाव, विकास के क्रम में होनेवाले पारंपरिक और अपारम्परिक परिवर्तन आदि तथ्यों, वृत्तियों एवं आयामों को आधार के रूप में अपनाया गया है।

● ● ●

---

१ राज्य संग्रहालय, लखनऊ, जे२५३; स्ट०जै०आ०, पृ० ७७–७८

२ विस्तार के लिए द्रष्टव्य, स्ट०जै०आ०, पृ० १०९–१२

३ जैन सूची के अष्टमांगलिक चिह्न स्वस्तिक, श्रीवत्स, नन्द्यावर्त, वर्धमानक, भद्रासन, कलश, दर्पण और मत्स्य (या मत्स्ययुग्म) हैं; औपपातिक सूत्र ३१; त्रि०श०पु०च०, खं० १, गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज ५१, बड़ौदा, १९३१, पृ० ११२, १९०

द्वितीय अध्याय

राजनीतिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि

राजनीतिक एवं सांस्कृतिक स्थिति किसी भी देश की कला एवं स्थापत्य की नियामक होती है। कलात्मक अभिव्यक्ति अपनी विषय-वस्तु एवं निर्माण-विधा में समाज की धारणाओं एवं तकनीकों का प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करती है। ये धारणाएं एवं तकनीकें संस्कृति का अंग होती हैं। भारतीय कला, स्थापत्य एवं प्रतिमाविज्ञान के प्रेरक एवं पोषक तत्वों के रूप में भी इन पक्षों का महत्वपूर्ण स्थान है। समर्थ प्रतिभाशाली शासकों के काल में कला एवं स्थापत्य की नई शैलियाँ अस्तित्व में आती हैं, पुरानी नवीन रूप ग्रहण करती हैं तथा उनका दूसरे क्षेत्रों पर प्रभाव पड़ता है। राजा की धार्मिक आस्था अथवा अभिरुचि ने भी धर्म प्रधान भारतीय कला के इतिहास को प्रभावित किया है।

भारतीय कला लोगों की धार्मिक मान्यताओं का ही मूर्त रूप रही है। समाज और आर्थिक स्थिति ने भी विभिन्न सन्दर्भों एवं रूपों में भारतीय कला एवं स्थापत्य की धारा को प्रभावित किया है। एक निश्चित अर्थ एवं उद्देश्य से युक्त समस्त भारतीय कला पूर्व परम्पराओं के निश्चित निर्वाह के साथ ही साथ धर्म एवं सामाजिक धारणाओं में हुए परिवर्तनों से भी सदैव प्रभावित होती रही है।[1] भारतीय कला धार्मिक एवं सामाजिक आवश्यकता की पूर्ति रही है। अनुकूल आर्थिक परिस्थितियों में ही कला की अबाध अभिव्यक्ति और फलतः उसका सम्यक् विकास सम्भव होता है। यजमान एवं कलाकार के अहं एवं कल्पना की साकारता कलाकार की क्षमता से पूर्व यजमान के आर्थिक सामर्थ्य पर निर्भर करती है, यजमान चाहे राजा हो या साधारण जन। भारतीय कला को राजा से अधिक सामान्य लोगों से प्रश्रय मिला है। यह तथ्य जैन कला, स्थापत्य एवं प्रतिमाविज्ञान के विकास के सन्दर्भ में विशेष महत्वपूर्ण है।

उपर्युक्त सन्दर्भ में इस अध्याय में जैन मूर्ति निर्माण एवं प्रतिमाविज्ञान की राजनीतिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का ऐतिहासिक विवेचन किया गया है। इसमें विभिन्न समयों में जैन धर्म एवं कला को प्राप्त होनेवाले राजकीय एवं राजेतर लोगों के संरक्षण, प्रश्रय अथवा प्रोत्साहन का इतिहास विवेचित है। काल और क्षेत्र के सन्दर्भ में धार्मिक एवं आर्थिक स्थितियों में होने वाले विकास या परिवर्तनों को समझने का भी प्रयास किया गया है, जिससे समय-समय पर उभरी उन नवीन सांस्कृतिक प्रवृत्तियों का संकेत मिलता है, जिन्होंने समकालीन जैन कला और प्रतिमाविज्ञान के विकास को प्रभावित किया। इसके अतिरिक्त जैन धर्म में मूर्ति निर्माण की प्राचीनता, इसकी आवश्यकता तथा इन सन्दर्भों में कलात्मक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि की विवेचना भी की गई है।

उपरिनिर्दिष्ट अध्ययन प्रारम्भ से सातवीं शती ई० के अन्त तक कालक्रम से तथा आठवीं से बारहवीं शती ई० तक क्षेत्र के सन्दर्भ में किया गया है। गुप्त युग के अन्त (ल० ५५० ई०) तक जैन कलाकेन्द्रों की संख्या तथा उनसे प्राप्त सामग्री (मथुरा के अतिरिक्त) स्वल्प है। राजनीतिक दृष्टि से मौर्यकाल से गुप्तकाल तक उत्तर भारत एक सूत्र में बंधा था। अतः अन्य धर्मों एवं उनसे सम्बद्ध कलाओं के समान ही जैन धर्म तथा कला का विकास इस क्षेत्र में समरूप रहा। गुप्त युग के बाद से सातवीं शती ई० के अन्त तक के संक्रमण काल में भी संस्कृति एवं विभिन्न धर्मों से सम्बद्ध कला के विकास में मूल धारा का ही परवर्ती अविभक्त प्रवाह दृष्टिगत होता है, जिसके कारण पूर्व परम्पराओं की सामर्थ्य तथा उत्तर भारत के एक बड़े भाग पर हर्षवर्धन के राज्य की स्थापना है। किन्तु आठवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य उत्तर भारत के राजनीतिक मंच पर विभिन्न राजवंशों का उदय हुआ, जिनके सीमित राज्यों में विभिन्न आर्थिक एवं धार्मिक सन्दर्भों में जैन धर्म, कला, स्थापत्य एवं प्रतिमाविज्ञान के विकास की स्वतन्त्र जनपदीय या क्षेत्रीय धाराएं उद्भूत एवं विकसित हुईं, जिनसे जैन

---

१ कुमारस्वामी, ए० के०, इन्ट्रोडक्शन टू इण्डियन आर्ट, दिल्ली, १९६९, प्रस्तावना

कलाकेन्द्रों का मानचित्र पर्याप्त परिवर्तित हुआ। इन्हीं सन्दर्भों में राजनीतिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के अध्ययन में उपर्युक्त दो दृष्टियों का प्रयोग अपेक्षित प्रतीत हुआ।

आरम्भिक काल (प्रारम्भ से ७वीं शती ई० तक)

प्रारम्भ से सातवीं शती ई० तक के इस अध्ययन में पार्श्वनाथ एवं महावीर जिनों और मौर्य, कुषाण, गुप्त और अन्य शासकों के काल में जैन धर्म एवं कला की स्थिति और उसे प्राप्त होनेवाले राजकीय एवं सामान्य समर्थन का उल्लेख है। जैन धर्म में मूर्ति पूजन की प्राचीनता की दृष्टि से जीवन्तस्वामी मूर्ति की परम्परा एवं अन्य प्रारम्भिक जैन मूर्तियों का भी संक्षेप में उल्लेख किया गया है।

पार्श्वनाथ एवं महावीर का युग

जैनों ने सम्पूर्ण कालचक्र को उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी इन दो युगों में विभाजित किया है, और प्रत्येक युग में २४ तीर्थंकरों (या जिनों) की कल्पना की है। वर्तमान अवसर्पिणी युग के २४ तीर्थंकरों में से केवल अन्तिम दो तीर्थंकरों, पार्श्वनाथ एवं महावीर, की ही ऐतिहासिकता सर्वमान्य है। साहित्यिक परम्परा के अनुसार पार्श्वनाथ के समय (ल० ८वीं शती ई० पू०) में भी जैन धर्म विभिन्न राज्यों एवं शासकों द्वारा समर्थित था। पार्श्वनाथ वाराणसी के शासक अश्वसेन के पुत्र थे। उनका वैवाहिक सम्बन्ध प्रसेनजित के राजपरिवार में हुआ था। जैन ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि महावीर के समय में भी मगध के आसपास पार्श्वनाथ के अनुयायी विद्यमान थे।[1] किन्तु यह उल्लेखनीय है कि पार्श्वनाथ एवं महावीर के बीच के २५० वर्षों के अन्तराल में जैन धर्म से सम्बद्ध किसी प्रकार की प्रामाणिक ऐतिहासिक सूचना नहीं प्राप्त होती है।

अन्तिम तीर्थंकर महावीर भी राजपरिवार से सम्बद्ध है। पटना के समीप स्थित कुण्डग्राम के ज्ञातृवंशीय शासक सिद्धार्थ उनके पिता और वैशाली के शासक चेटक की बहन त्रिशला उनकी माता थी। उनका जन्म पार्श्वनाथ के २५० वर्ष पश्चात्[2] ल० ५९९ ई० पू० में हुआ था और निर्वाण ५२७ ई० पू० में।[3] वैशाली के शासक लिच्छवियों के कारण ही महावीर को सर्वत्र एक निश्चित समर्थन मिला। महावीर ने मगध, अंग, राजगृह, वैशाली, विदेह, काशी, कोशल, वंग, अवन्ति आदि स्थलों पर विहार कर अपने उपदेशों से जैन धर्म का प्रसार किया।

साहित्यिक परम्परा के अनुसार महावीर ने अपने समकालीन मगध के शासकों, बिम्बिसार एवं अजातशत्रु, को अपना अनुयायी बनाया था। बिम्बिसार का महावीर के चामरधर के रूप में उल्लेख किया गया है। अजातशत्रु के उत्तराधिकारी उदय या उदायिन को भी जैन धर्म का अनुयायी बताया गया है जिसकी आज्ञा से पाटलिपुत्र में एक जैन मन्दिर का निर्माण हुआ था।[4] किन्तु इन शासकों द्वारा जैन एवं बौद्ध धर्मों को समान रूप से दिये गये संरक्षण से स्पष्ट है कि राजनीतिक दृष्टि से विभिन्न धर्मों के प्रति उनका समभाव था।

महावीर से पूर्व तीर्थंकर मूर्तियों के अस्तित्व का कोई भी साहित्यिक या पुरातात्विक साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। जैन ग्रन्थों में महावीर की यात्रा के सन्दर्भ में उनके किसी जैन मन्दिर जाने या जिन मूर्ति के पूजन का अनुल्लेख है। इसके विपरीत यक्ष-आयतनों एवं यक्ष-चैत्यों (पूर्णभद्र और माणिभद्र) में उनके विश्राम करने के उल्लेख प्राप्त होते हैं।[5]

---

१ शाह, सी० जे०, *जैनिज्म इन नार्थ इण्डिया*, लन्दन, १९३२, पृ० ८३

२ *आवश्यक निर्युक्ति*, गाथा १७, पृ० २४१; *आवश्यक चूर्णि*, गाथा १७, पृ० २१७

३ महावीर की तिथि निर्धारण का प्रश्न अभी पूर्णतः स्थिर नहीं हो सका है। विस्तार के लिए द्रष्टव्य, जैन, के० सी०, *लार्ड महावीर ऐण्ड हिज टाइम्स*, दिल्ली, १९७४, पृ० ७२-८८

४ शाह, सी० जे०, *पू०नि०*, पृ० १२७

५ शाह, यू० पी०, 'बिगिनिंग्स आव जैन आइकानोग्राफी,' *सं०पु०प०*, अं० ९, पृ० २

जैन धर्म में मूर्ति पूजन की प्राचीनता से सम्बद्ध सबसे महत्वपूर्ण वह उल्लेख है जिसमें महावीर के जीवनकाल में ही उनकी मूर्ति के निर्माण का उल्लेख है। साहित्यिक परम्परा से ज्ञात होता है कि महावीर के जीवनकाल में ही उनकी चन्दन की एक प्रतिमा का निर्माण किया गया था। इस मूर्ति में महावीर को दीक्षा लेने के लगभग एक वर्ष पूर्व राजकुमार के रूप में अपने महल में ही तपस्या करते हुए अंकित किया गया है। चूँकि यह प्रतिमा महावीर के जीवनकाल में ही निर्मित हुई, अतः उसे जीवन्तस्वामी या जीवितस्वामी संज्ञा दी गई। साहित्य और शिल्प दोनों ही में जीवन्तस्वामी को मुकुट, मेखला आदि अलंकरणों से युक्त एक राजकुमार के रूप में निरूपित किया गया है। महावीर के समय के बाद की भी ऐसी मूर्तियों के लिए जीवन्तस्वामी शब्द का ही प्रयोग होता रहा।

जीवन्तस्वामी मूर्तियों को सर्वप्रथम प्रकाश में लाने का श्रेय यू० पी० शाह को है।[१] साहित्यिक परम्परा को विश्वसनीय मानते हुए शाह ने महावीर के जीवनकाल से ही जीवन्तस्वामी मूर्ति की परम्परा को स्वीकार किया है।[२] उन्होंने साहित्यिक परम्परा की पुष्टि में अकोटा (गुजरात) से प्राप्त जीवन्तस्वामी की दो गुप्तयुगीन कांस्य प्रतिमाओं का भी उल्लेख किया है।[३] इन प्रतिमाओं में जीवन्तस्वामी को कायोत्सर्ग-मुद्रा में खड़ा और वस्त्राभूषणों से सज्जित दरशाया गया है। पहली मूर्ति ल० पाँचवीं शती ई० की है और दूसरी लेखयुक्त मूर्ति ल० छठी शती ई० की है। दूसरी मूर्ति के लेख में 'जिवंतसामी' खुदा है।[४]

जैन धर्म में मूर्ति-निर्माण एवं पूजन की प्राचीनता के निर्धारण के लिए जीवन्तस्वामी मूर्ति की परम्परा की प्राचीनता का निर्धारण अपेक्षित है। आगम साहित्य एवं *कल्पसूत्र* जैसे प्रारम्भिक ग्रन्थों में जीवन्तस्वामी मूर्ति का उल्लेख नहीं प्राप्त होता है। जीवन्तस्वामी मूर्ति के प्राचीनतम उल्लेख आगम ग्रन्थों से सम्बन्धित छठी शती ई० के बाद की उत्तर-कालीन रचनाओं, यथा—निर्युक्तियों, टीकाओं, भाष्यों, चूर्णियों आदि में ही प्राप्त होते हैं।[५] इन ग्रन्थों से कोशल, उज्जैन, दशपुर (मंदसोर), विदिशा, पुरी, एवं वीतभयपट्टन में जीवन्तस्वामी मूर्तियों की विद्यमानता की सूचना प्राप्त होती है।[६]

जीवन्तस्वामी मूर्ति का उल्लेख सर्वप्रथम वाचक संघदासगणि कृत *वसुदेवहिण्डी* (६१० ई० या ल० एक या दो शताब्दी पूर्व की कृति)[७] में प्राप्त होता है। ग्रन्थ में आर्या सुव्रता नाम की एक गणिनी के जीवन्तस्वामी मूर्ति के पूजनार्थ उज्जैन जाने का उल्लेख है।[८] जिनदासकृत *आवश्यक चूर्णि* (६७६ ई०) में जीवन्तस्वामी की प्रथम मूर्ति की कथा प्राप्त होती है। इसमें अच्युत इन्द्र द्वारा पूर्वजन्म के मित्र विद्युन्माली को महावीर की मूर्ति के पूजन की सलाह देने, विद्युन्माली के गोशीर्ष चन्दन की मूर्ति बनाने एवं प्रतिष्ठा करने, विद्युन्माली के पास से मूर्ति के एक वणिक के हाथ लगने, कालान्तर में महावीर के समकालीन सिन्धु सौवीर में वीतभयपत्तन के शासक उदायन एवं उसकी रानी प्रभावती द्वारा उसी मूर्ति के

---

१ शाह, यू० पी०, 'ए यूनीक जैन इमेज आव जीवन्तस्वामी,' ज०ओ०इं०, खं० १, अं० १, पृ० ७२–७९; शाह, 'साइड लाइट्स ऑन दि लाइफ-टाइम सेण्डलवुड इमेज ऑव महावीर', ज०ओ०इं०, खं० १, अं० ४, पृ० ३५८–६८; शाह, 'श्रीजीवन्तस्वामी' (गुजराती), जै०स०प्र०, वर्ष १७, अं०५–६, पृ०९८–१०९; शाह, *अकोटा ब्रोन्ज़ेज*, बंबई, १९५९, पृ० २६–२८

२ शाह, 'श्रीजीवन्तस्वामी,' जै०स०प्र०, वर्ष १७, अं० ५–६, पृ० १०४

३ शाह, 'ए यूनीक जैन इमेज ऑव जीवन्तस्वामी,' ज०ओ०इं०, खं० १, अं० १, पृ० ७९

४ शाह, यू० पी०, *अकोटा ब्रोन्ज़ेज*, पृ० २६–२८, फलक ९ ए, बी, १२ ए

५ जैन, हीरालाल, *भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान*, भोपाल, १९६२, पृ० ७२

६ जैन, जे० सी०, *लाईफ इन ऐन्शण्ट इण्डिया : ऐज डेपिक्टेड इन दि जैन केनन्स*, बंबई, १९४७, पृ० २५२, ३००, ३२५

७ शाह, यू० पी०, 'श्रीजीवन्तस्वामी,' जै०स०प्र०, वर्ष १७, अं० ५–६, पृ० ९८

८ *वसुदेवहिण्डी*, खं० १, भाग १, पृ० ६१

वणिक से प्राप्त करने एवं रानी प्रभावती द्वारा मूर्ति की भक्तिभाव से पूजा करने का उल्लेख है। यही कथा हरिभद्रसूरि की आवश्यक वृत्ति में भी वर्णित है।

इसी कथा का उल्लेख हेमचन्द्र (११६९–७२ ई०) ने **त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र** (पर्व १०, सर्ग ११) में कुछ नवीन तथ्यों के साथ किया है। हेमचन्द्र ने स्वयं महावीर के मुख से जीवंतस्वामी मूर्ति के निर्माण का उल्लेख कराते हुए लिखा है कि क्षत्रियकुण्ड ग्राम में दीक्षा लेने के पूर्व छद्मस्थ काल में महावीर का दर्शन विद्युन्माली ने किया था। उस समय उनके आभूषणों से सुसज्जित होने के कारण ही विद्युन्माली ने महावीर की अलंकरण युक्त प्रतिमा का निर्माण किया।[1] अन्य स्रोतों से भी ज्ञात होता है कि दीक्षा लेने का विचार होते हुए भी अपने ज्येष्ठ भ्राता के आग्रह के कारण महावीर को कुछ समय तक महल में ही धर्म-ध्यान में समय व्यतीत करना पड़ा था। हेमचन्द्र के अनुसार विद्युन्माली द्वारा निर्मित मूल प्रतिमा विदिशा में थी। हेमचन्द्र ने यह भी उल्लेख किया है कि चौलुक्य शासक कुमारपाल ने वीतभयपट्टन में उत्खनन करवाकर जीवंतस्वामी की प्रतिमा प्राप्त की थी। जीवंतस्वामी मूर्ति के लक्षणों का उल्लेख हेमचन्द्र के अतिरिक्त अन्य किसी भी जैन आचार्य ने नहीं किया है। क्षमाश्रमण संघदास रचित **बृहत्कल्पभाष्य** के भाष्य गाथा २७५३ पर टीका करते हुए क्षेमकीर्ति (१२७५ ई०) ने लिखा है कि मौर्य शासक सम्प्रति को जैन धर्म में दीक्षित करनेवाले आर्य सुहस्ति जीवंतस्वामी मूर्ति के पूजनार्थ उज्जैन गये थे। उल्लेखनीय है कि किसी दिगम्बर ग्रन्थ में जीवंतस्वामी मूर्ति की परम्परा का उल्लेख नहीं प्राप्त होता।[2] इसका एक सम्भावित कारण प्रतिमा का वस्त्राभूषणों से युक्त होना हो सकता है।

सम्पूर्ण अध्ययन से स्पष्ट है कि पाँचवीं-छठी शती ई० के पूर्व जीवंतस्वामी के सम्बन्ध में हमें किसी प्रकार की ऐतिहासिक सूचना नहीं प्राप्त होती है। इस सन्दर्भ में महावीर के गणधरों द्वारा रचित आगम साहित्य में जीवंतस्वामी मूर्ति के उल्लेख का पूर्ण अभाव जीवंतस्वामी मूर्ति की धारणा की परवर्ती ग्रन्थों द्वारा प्रतिपादित महावीर की समकालिकता पर एक स्वाभाविक सन्देह उत्पन्न करता है। **कल्पसूत्र** एवं ई० पू० के अन्य ग्रन्थों में भी जीवंतस्वामी मूर्ति का अनुल्लेख इसी सन्देह की पुष्टि करता है। वर्तमान स्थिति में जीवंतस्वामी मूर्ति की धारणा को महावीर के समय तक ले जाने का हमारे पास कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है।

मौर्य-युग

बिहार जैन धर्म की जन्मस्थली होने के साथ-साथ भद्रबाहु, स्थूलभद्र, यशोभद्र, सुधर्मन, गौतमगणधर एवं उमास्वाति जैसे जैन आचार्यों की मुख्य कार्यस्थली भी रही है। जैन परम्परा के अनुसार जैन धर्म को लगभग सभ. समर्थ मौर्य शासकों का समर्थन प्राप्त था। चन्द्रगुप्त मौर्य का जैन धर्मानुयायी होना तथा जीवन के अन्तिम वर्षों में भद्रबाहु के साथ दक्षिण भारत जाना सुविदित है।[3] **अर्थशास्त्र** में जयन्त, वैजयन्त, अपराजित एवं अन्य जैन देवों की मूर्तियों का उल्लेख है।[4] अशोक बौद्ध धर्मानुयायी होते हुए भी जैन धर्म के प्रति उदार था। उसने निर्ग्रन्थों एवं आजीविकों को दान दिए थे।[5] सम्प्रति को भी जैन धर्म का अनुयायी कहा गया है।[6] किन्तु मौर्य शासकों से सम्बद्ध इन परम्पराओं के विपरीत पुरातात्विक साक्ष्य के रूप में लोहानीपुर से प्राप्त केवल एक जिन मूर्ति ही है, जिसे मौर्य युग का माना जा सकता है।

---

१ त्रि०श०पु०च० १०. ११. ३७९–८०

२ शाह, यू०पी०, पू०नि०, पृ० १०९ : जैन ग्रन्थों के आधार पर लिया गया यू० पी० शाह का निष्कर्ष दिगम्बर कलाकेन्द्रों में जीवंतस्वामी के मूर्त चित्रणाभाव से भी समर्थित होता है।

३ मुखर्जी, आर० के०, **चन्द्रगुप्त मौर्य ऐण्ड हिज टाइम्स**, दिल्ली, १९६६ (पु०मु०), पृ० ३९–४१

४ भट्टाचार्य, बी० सी०, **दि जैन आइकानोग्राफी**, लाहौर, १९३९, पृ० ३३

५ थापर, रोमिला, **अशोक ऐण्ड दि डिक्लाइन आव दि मौर्यज**, आक्सफोर्ड, १९६३ (पु०मु०), पृ० १३७–८१; मुखर्जी, आर० के०, **अशोक**, दिल्ली, १९७४, पृ० ५४–५५

६ **परिशिष्टपर्वन** ९.५४ : थापर, रोमिला, पू०नि०, पृ० १८७

पटना के समीपस्थ लोहानीपुर से मौर्ययुगीन चमकदार आलेप से युक्त ल० तीसरी शती ई० पू० का एक नग्न कबन्ध प्राप्त हुआ है, जो सम्प्रति पटना संग्रहालय में है। कबन्ध की दिगम्बरता एवं कायोत्सर्ग-मुद्रा इसके तीर्थंकर मूर्ति होने के प्रमाण हैं। चमकदार आलेप के अतिरिक्त उसी स्थल से उत्खनन में प्राप्त होनेवाली मौर्ययुगीन ईंटें एवं एक रजत आहतमुद्रा भी मूर्ति के मौर्यकालीन होने के समर्थक साक्ष्य हैं।[1] इस मूर्ति के निरूपण में यक्ष मूर्तियों का प्रभाव दृष्टिगत होता है। यक्ष मूर्तियों की तुलना में मूर्ति की शरीर रचना में भारीपन के स्थान पर सन्तुलन है, जिसे जैन धर्म में योग के विशेष महत्व का परिणाम स्वीकार किया जा सकता है। शरीर रचना में प्राप्त संतुलन, मूर्ति के मौर्य युग के उपरान्त निर्मित होने का[2] नहीं वरन् उसके तीर्थंकर मूर्ति होने का सूचक है। मौर्य शासकों द्वारा जैन धर्म को समर्थन प्रदान करना और अर्थशास्त्र एवं कलिंग शासक खारवेल के लेख के उल्लेख लोहानीपुर मूर्ति के मौर्ययुगीन मानने के अनुमोदक तथ्य हैं।

शुंग-कुषाण युग

उदयगिरि-खण्डगिरि की पहाड़ियों (पुरी, उड़ीसा) पर दूसरी-पहली शती ई० पू० की जैन गुफाएँ प्राप्त होती हैं। उदयगिरि की हाथीगुम्फा में खारवेल का ल० पहली शती ई० पू० का लेख उत्कीर्ण है।[3] यह लेख अरहंतों एवं सिद्धों को नमस्कार से प्रारम्भ होता है और अरहंतों के स्मारिका अवशेषों का उल्लेख करता है। लेख में इस बात का भी उल्लेख है कि खारवेल ने अपनी रानी के साथ कुमारी (उदयगिरि) स्थित अर्हतों के स्मारक अवशेषों पर जैन साधुओं को निवास की सुविधा प्रदान की थी।[4] लेख में उल्लेख है कि कलिंग की जिस जिन प्रतिमा को नन्दराज 'तिवससत' वर्ष पूर्व कलिंग से मगध ले गया था, उसे खारवेल पुनः वापस ले आया। 'तिवससत' शब्द का अर्थ अधिकांश विद्वान् ३०० वर्ष मानते हैं।[5] इस प्रकार लेख के आधार पर जिन मूर्ति की प्राचीनता ल० चौथी शती ई० पू० तक जाती है।

ल० दूसरी-पहली शती ई० पू० में जैन धर्म गुजरात में भी प्रवेश कर चुका था। इसकी पुष्टि कालकाचार्य कथा से होती है। कथा में उल्लेख है कि कालक ने भड़ौंच जाकर लोगों को जैन धर्म की शिक्षा दी। साहित्यिक स्रोतों में ऋषभनाथ और नेमिनाथ के क्रमशः शत्रुंजय एवं गिरनार पहाड़ियों पर तपस्या करने तथा नेमिनाथ के गिरनार पर ही कैवल्य प्राप्त करने का उल्लेख प्राप्त होता है। गुजरात में ये दोनों ही पहाड़ियां सर्वाधिक धार्मिक महत्व की स्थलियां रही हैं।[6]

लोहानीपुर जिन मूर्ति के बाद की पार्श्वनाथ की दूसरी जिन मूर्ति प्रिंस आव वेल्स संग्रहालय, बम्बई में संगृहीत है, जो ल० प्रथम शती ई० पू० की कृति है। लगभग इसी समय की पार्श्वनाथ की दूसरी जिन मूर्ति बक्सर जिले के चौसा ग्राम से प्राप्त हुई है। बक्सर की गंगा के तट पर स्थिति के कारण उसका व्यापारिक महत्व था।[7]

ल० दूसरी शती ई० पू० के मध्य में जैन कला को प्रथम पूर्ण अभिव्यक्ति मथुरा में मिली। यहां शुंग युग से मध्ययुग (१०२३ ई०) तक की जैन मूर्ति सम्पदा का वैविध्यपूर्ण भण्डार प्राप्त होता है, जिसमें जैन प्रतिमाविज्ञान के विकास की प्रारम्भिक अवस्थाएं प्राप्त होती हैं। जैन परम्परा में मथुरा की प्राचीनता सुपार्श्वनाथ के समय तक प्रतिपादित की गई है जहां कुबेरा देवी ने सुपार्श्व की स्मृति में एक स्तूप बनवाया था। विविधतीर्थकल्प (१४ वीं शती ई०) में उल्लेख है कि पार्श्वनाथ के समय में सुपार्श्व के स्तूप का विस्तार और पुनरुद्धार हुआ था, तथा बप्पभट्टिसूरि ने वि० सं० ८२६

---

१ जायसवाल के० पी०, 'जैन इमेज ऑव मौर्य पिरियड', ज०बि०उ०रि०सो०, खं० २३, भाग १, पृ० १३०–३२

२ रे, निहाररंजन, मौर्य ऐण्ड शुंग आर्ट, कलकत्ता, १९६५, पृ० ११५

३ सरकार, डी० सी०, सेलेक्ट इन्स्क्रिप्शन्स, खं० १, कलकत्ता, १९६५, पृ० २१३

४ वही, पृ० २१३–२१

५ वही, पृ० २१५, पा० टि० ७

६ विविधतीर्थकल्प, पृ० १-१०

७ मोती चन्द्र, सार्थवाह, पटना, १९५३, पृ० १५

(=७६९ ई०) में पुनः उसका जीर्णोद्धार करवाया।[१] इस परवर्ती साहित्यिक परम्परा की एक कुषाणकालीन तीर्थंकर मूर्ति से पुष्टि होती है, जिसकी पीठिका पर यह लेख (१६७ ई०) है कि यह मूर्ति देवनिर्मित स्तूप में स्थापित की गयी।[२]

मथुरा मे तीनों प्रमुख धर्मों (ब्राह्मण, बौद्ध एवं जैन) में आराध्य देवों के मूर्त अंकनों के मूल में भक्ति आन्दोलन ही था। जिन मूर्ति का निर्माण मौर्य युग में ही प्रारम्भ हो चुका था पर उनके निर्माण की क्रमबद्ध परम्परा मथुरा में शुंग-कुषाण युग से प्रारम्भ हुई। तात्पर्य यह कि जैन धर्म में मूर्ति पूजा का प्रारम्भ जैन धर्म की जन्मस्थली बिहार में न होकर भक्ति की जन्मस्थली मथुरा में हुआ। ईसा के कई शताब्दी पूर्व ही मथुरा वासुदेव-कृष्ण पूजन से सम्बद्ध भक्ति सम्प्रदाय का प्रमुख केन्द्र बन चुका था।[३] जैन धर्म में मूर्ति निर्माण पर भागवत सम्प्रदाय के प्रभाव की पुष्टि कुछ कुषाणकालीन जिन मूर्तियों में कृष्ण-वासुदेव एवं बलराम के उत्कीर्णन से भी होती है।

शुंग शासकों द्वारा जैन धर्म एवं कला को समर्थन के प्रमाण नहीं प्राप्त होते। कुषाण युग में भी जैन धर्म को राजकीय समर्थन के प्रमाण नही प्राप्त होते। पर शासकों की धर्म सहिष्णु नीति मथुरा में जैन धर्म एवं कला के विकास में सहायक रही है। कुषाण युग में मथुरा में प्रचुर संख्या में जैन मूर्तियों का निर्माण हुआ और जैन प्रतिमाविज्ञान की कई विशेषताओं का सर्वप्रथम निरूपण एवं निर्धारण हुआ।[४] जैन कला के विकास की इस पृष्ठभूमि में मथुरा के शासक वर्ग, व्यापारियों एवं सामान्य जनों का समर्थन रहा है। एक लेख में ग्रामिक जयनाग की पत्नी सिंहदत्ता (दत्ता) के एक आयागपट दान करने का उल्लेख है।[५] एक अन्य लेख में गोतिपुत्र की पत्नी शिवमित्रा द्वारा जैन मूर्ति निर्माण का उल्लेख है।[६] कुछ जैन मूर्ति लेखों में ब्राह्मणों का भी उल्लेख प्राप्त होता है। मथुरा के लेखों से जैन मूर्ति निर्माण में स्त्रियों के योगदान का भी ज्ञान होता है। जैन लेखों में अकका, ओघा, ओखरिका और उझटिका जैसे स्त्री नाम विदेशी मूल के प्रतीत होते हैं।[७]

कुषाण शासन में आन्तरिक शान्ति एवं व्यवस्था के कारण व्यापार को पर्याप्त प्रोत्साहन मिला। देश में और विशेषतः विदेशों में होने वाले व्यापार से व्यापारियों एवं व्यवसायियों ने प्रभूत धन अर्जित किया, जिसे उन्होंने धार्मिक स्मारकों एवं मूर्तियों के निर्माण में भी लगाया। मथुरा प्रमुख व्यापारिक केन्द्र के साथ कुषाण शासकों की दूसरी राजधानी और कनिष्क के समय कला का सबसे बड़ा केन्द्र भी था। मथुरा से प्राप्त तीनों सम्प्रदायों की मूर्तियों के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट होता है कि राजकीय संरक्षण के अभाव में भी जैन मूर्तियों की संख्या बौद्ध एवं हिन्दू मूर्तियों की तुलना में कम नहीं है। ल्यूडर द्वारा प्रकाशित मथुरा के कुल १३२ लेखों में से ८४ जैन और केवल ३३ बौद्ध मूर्तियों से सम्बद्ध हैं। शेष लेखों का इस प्रकार का निर्धारण सम्भव नही है।[८]

मथुरा अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण देश के लगभग सभी व्यापारिक महत्व के स्थलों, राजगृह, तक्षशिला, उज्जैन, भरुकच्छ, शूर्पारक, से जुड़ा था जो आर्थिक विकास की दृष्टि से महत्वपूर्ण था।[९] जैन ग्रन्थों में मथुरा का प्रसिद्ध

---

१ विविधतीर्थकल्प, पृ० १८–१९

२ राज्य संग्रहालय, लखनऊ : जे२०। लेखक को देवनिर्मित शब्द का सन्दर्भ कई मध्ययुगीन मूर्ति-अभिलेखों में भी देखने को मिला है।

३ अग्रवाल, वी० एस०, इण्डियन आर्ट, भाग १, वाराणसी, १९६५, पृ० २३०

४ इनमें जिनों की बहुसंख्यक मूर्तियां, ऋषभ एवं महावीर के जीवनदृश्य, चौमुख, नैगमेषी, सरस्वती आदि प्रमुख हैं।

५ विजयमूर्ति (सं०), जै०शि०सं०, भाग २, बम्बई, १९५२, पृ० ३३–३४, लेख सं० ४२

६ एपि०इण्डि०, खं० १, लेख सं० ३३

७ एपि०इण्डि०, खं० १, पृ० ३७१–९७; खं० २, पृ० १९५-२१२; खं० १९, पृ० ६७

८ ल्यूजे-डे-ल्यू, जे०ई०वान, दि सीथियन पिरियड, लिडेन, १९४९, पृ० १४९, पा० टि० १६

९ मोती चंद्र, पू०नि०, पृ० १५–१६, २४

व्यापारिक केन्द्र के रूप में उल्लेख किया गया है, जो वस्त्र निर्माण की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण था।[१] कुषाण काल में मथुरा के जैन समाज में व्यापारियों एवं शिल्पकर्मियों की प्रमुखता की पुष्टि जैन मूर्तियों पर उत्कीर्ण अनेक लेखों से होती है, जिनसे जैन धर्म एवं कला में उनका योगदान स्पष्ट है। ब्यूहलर के अध्ययन के अनुसार मथुरा के जैन अधिक संख्या में, सम्भवतः सर्वाधिक संख्या में, व्यापारी एवं व्यवसायी वर्ग के थे।[२] जैन मूर्तियों के पीठिका-लेखों में प्राप्त दानकर्ताओं की विशिष्ट उपाधियां उनके व्यवसाय की सूचक हैं। लेखों में श्रेष्ठिन्, सार्थवाह, गन्धिक आदि के अतिरिक्त सुवर्णकार, वर्धकिन (बढ़ई), लौहकर्मक शब्दों के भी उल्लेख हैं। साथ ही नाविक (प्रातारिक), वैश्याओं, नर्तकों के भी उल्लेख प्राप्त होते हैं।[3]

पहली-दूसरी शती ई० के सोनभण्डार गुफा (राजगिर) के एक लेख में मुनि वैरदेव (श्वेताम्बर आचार्य वज्र : ५७ ई०) द्वारा जैन मुनियों के निवास के लिए गुफाओं के निर्माण का उल्लेख है जिसमें तीर्थंकर मूर्तियां भी स्थापित की गईं।[४]

दूसरी शती ई० के अन्त (ल० १७६ ई०) में कुषाणों के पतन के उपरान्त मथुरा के राजनीतिक मंच पर नागवंश का उदय हुआ। दूसरी क्षेत्रीय शक्तियों का भी उदय हुआ। भिन्न राजनीतिक मानचित्र एवं परिस्थिति में व्यापार शिथिल पड़ गया। पूर्व की तुलना में इस युग के कलावशेषों में तीर्थंकर या अन्य जैन मूर्तियों की संख्या बहुत कम है तथा तीर्थंकरों के जीवनदृश्यों, नैगमेषी एवं सरस्वती के अंकनों का पूर्ण अभाव है, जो जैन मूर्ति निर्माण की क्षीणता का द्योतक है। तथापि पारम्परिक एवं व्यापारिक पृष्ठभूमि के कारण जैन समुदाय अब भी सुसंगठित और धार्मिक क्षेत्र में क्रियाशील था, जिसकी पुष्टि चौथी शती ई० के प्रारम्भ या कुछ पूर्व आर्य स्कन्दिल के नेतृत्व में मथुरा में आगम साहित्य के संकलन हेतु हुए द्वितीय वाचन से होती है।[५]

गुप्त-युग

चौथी शती ई० के प्रारम्भ से छठीं शती ई० के मध्य तक गुप्तों के शासन काल में संस्कृति एवं कला का सर्वपक्षीय विकास हुआ। समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त द्वितीय एवं स्कन्दगुप्त जैसे पराक्रमी शासकों ने उत्तर भारत को एकसूत्र में बांधे रखा। शांतिपूर्ण वातावरण में व्यवसायों एवं देशव्यापी व्यापार का पुनरुत्थान हुआ और आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हुई। गुप्त युग में भड़ौंच, उज्जैनी, विदिशा, वाराणसी, पाटलिपुत्र, कौशाम्बी, मथुरा आदि व्यापारिक महत्व के प्रमुख नगर स्थल मार्ग से एक दूसरे से सम्बद्ध थे। ताम्रलिप्ति (आधुनिक तामलुक) बंगाल का प्रमुख बंदरगाह था, जहां से विदेशों से व्यापार होता था।[६] इस युग में मिस्र, ग्रीस, रोम, पर्सिया, सीरिया, सीलोन, कम्बोडिया, स्याम, चीन, सुमात्रा आदि अनेक देशों से भारत का व्यापार हो रहा था।[७]

गुप्त शासक मुख्यतः ब्राह्मण धर्मावलंबी होते हुए भी अन्य धर्मों के प्रति उदार थे। तथापि अभिलेखिक एवं साहित्यिक साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि इस युग में जैन धर्म की बहुत उन्नति नहीं हुई। फाह्यान के यात्रा विवरण में भी जैन धर्म का अनुल्लेख है। रामगुप्त (?) के अतिरिक्त अन्य किसी भी गुप्त शासक द्वारा जैन मूर्ति निर्माण का उल्लेख नहीं मिलता है। विदिशा से प्राप्त ल० चौथी शती ई० की तीन जिन मूर्तियों मे से दो के पीठिका-लेखों में महाराजाधिराज

---

१ जैन, जे० सी०, पूर्वनि०, पृ० ११४–१५

२ सिंह, जे० पी०, आस्पेक्ट्स ऑव अर्ली जैनिज्म, वाराणसी, १९७२, पृ० ९०, पा०टि० ३

३ एपि०इण्डि०, खं० १, लेख सं० १, २, ७, २१, २९; खं० २, लेख सं० ५, १६, १८, ३९

४ आ०स०इं०ऐ०रि०, १९०५–०६, पृ० ९८, १६६

५ शाह, यू० पी०, 'बिगिनिंग्स ऑव जैन आइकानोग्राफी', सं०पु०प०, अं० ९, पृ० २

६ अल्तेकर, ए० एस०, 'इकनामिक कण्डीशन', दि वाकाटक गुप्त एज, दिल्ली, १९६७, पृ० ३५७–५८

७ मैती, एस० के०, इकनामिक लाईफ ऑव नार्दर्न इण्डिया इन दि गुप्त पिरियड, कलकत्ता, १९५७, पृ० १२०

और रामगुप्त द्वारा उन मूर्तियों के निर्माण कराने का उल्लेख है।[1] गुप्त संवत् तिथियों वाली कुछ मूर्तियां चन्द्रगुप्त द्वितीय, कुमारगुप्त प्रथम एवं स्कन्दगुप्त के समय की हैं। मथुरा से प्राप्त एक मूर्ति लेख (गुप्त सं० ११३ = ४३२ ई०) में श्यामाढ्या नामक स्त्री द्वारा मूर्ति समर्पण अंकित है।[2] उदयगिरि गुफा लेख गुप्त सं० १०६ = ४२५ ई०) के अनुसार पार्श्वनाथ की मूर्ति शंकर नाम के व्यक्ति द्वारा स्थापित की गयी थी।[3] कहौम (गोरखपुर, उ० प्र०) लेख (गुप्त सं० १४१ = ४६० ई०) के अनुसार मूर्ति के दानकर्ता मद्र के हृदय में ब्राह्मणों एवं धर्माचार्यों के प्रति विशेष सम्मान था।[4] पहाड़पुर (राजशाही, बांगला देश) से प्राप्त लेख (गुप्त सं० १५९ = ४७८ ई०) में एक ब्राह्मण युगल द्वारा अर्हत् के पूजन एवं वट गोहालि के विहार में विहारगृह बनाने के लिए भूमिदान का उल्लेख है।[5]

मथुरा के अतिरिक्त अन्य कई स्थलों से भी गुप्तकालीन जैन मूर्तियों के अवशेष प्राप्त होते हैं। अपने बन्दरगाहों के कारण गुजरात व्यापारियों का प्रमुख कार्य क्षेत्र हो गया था। गुप्त युग में ही ल० पांचवीं शती ई० के मध्य या छठीं शती ई० के प्रारम्भ में वलभी में तीसरा और अन्तिम वाचन सम्पन्न हुआ जिसमें सभी उपलब्ध जैन ग्रन्थों को लिपिबद्ध किया गया।[6] अकोटा से रोमन कांस्य पात्र प्राप्त होते हैं, जो उस स्थल के व्यापारिक महत्व का संकेत देते हैं। गुजरात के अकोटा एवं वलभी नामक स्थलों से गुप्तयुगीन जैन मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। बिहार में राजगिर का विभिन्न स्थलों से सम्बद्ध होने के कारण विशेष व्यापारिक महत्व था। गुप्त युग से निरन्तर बारहवीं शती ई० तक राजगिर (वैभार पहाड़ी और सोनभण्डार-गुफा) में जैन मूर्तियों का निर्माण होता रहा। मध्यप्रदेश में विदिशा प्राचीन काल से ही व्यापारिक महत्व की नगरी थी।[7] व्यापार की दृष्टि से वाराणसी का भी महत्व था[8] जहां से छठी-सातवी शती ई० की कुछ जैन मूर्तियां प्राप्त होती हैं।

सातवीं शती ई० के दो गुर्जर शासकों—जयभट्ट प्रथम एवं दद्द द्वितीय ने तीर्थंकरों से सम्बद्ध वीतराग एवं प्रशान्तराग उपाधियां धारण की थीं। ह्वेनसांग के विवरण से ज्ञात होता है कि सातवीं शती ई० में श्वेताम्बर एवं दिगम्बर सम्प्रदाय के साधु पश्चिम में तक्षशिला एवं पूर्व में विपुल तक और दिगम्बर निर्ग्रन्थ बंगाल में समतट एवं पुण्ड्रवर्धन तक फैले थे।[9]

मध्य-युग (ल० ८वीं शती ई० से १२वीं शती ई० तक)

हर्ष के बाद (ल० ६४६ ई०) का युग किन्हीं अर्थों में ह्रास का युग है। किसी केन्द्रीय शक्ति के अभाव में उत्तर भारत के विभिन्न क्षेत्रों में स्वतन्त्र शक्तियां उठ खड़ी हुईं। कन्नौज पर अधिकार करने के लिए इनमें से प्रमुख, पाल, प्रतिहार और राष्ट्रकूट राजवंशों के मध्य होने वाला त्रिकोणात्मक संघर्ष इस काल की महत्वपूर्ण घटना है। ग्यारहवीं शती ई० का इतिहास अनेक स्वतन्त्र राजवंशों से सम्बद्ध है, जिनमें से अधिकांश ने अपना राजनीतिक जीवन प्रतिहारों के अधीन प्रारम्भ किया था। इनमें राजस्थान में चाहमान, गुजरात में चौलुक्य (सोलंकी) और मालवा में परमार प्रमुख हैं। साथ ही गहड़वाल, चन्देल और कल्चुरि एवं पूर्व में पाल भी महत्वपूर्ण हैं, जिन्होंने नवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य शासन किया। इन राजवंशों के शासकों में सत्ता एवं राज्यविस्तार के लिए आपस में निरन्तर संघर्ष होता रहा। अन्त में ११९३ ई० में

---

१ गाई, जी० एस०, 'थ्री इन्स्क्रिप्शन्स ऑव रामगुप्त', ज०ओ०इं०, खं० १८, अं ३, पृ० २४७–५१; अग्रवाल, आर० सी०, 'न्यूली डिस्कवर्ड स्कल्पचर्स फ्राम विदिशा', ज०ओ०इं०, खं० १८, अं० ३, पृ० २५२–५३

२ एपि०इण्डि०, खं० २, पृ० २१०-११, लेख सं० ३९

३ का०इं०इं०, खं० ३, पृ० २५८-६०, लेख सं० ६१

४ वही, पृ० ६५–६८, लेख सं० १५

५ एपि०इण्डि०, खं० २०, पृ० ६१

६ विण्टरनित्ज, एम०, *ए हिस्ट्री ऑव इण्डियन लिट्रेचर*, खं० २, कलकत्ता, १९३३, पृ० ४३२

७ मैती, एस० के०, पू०नि०, पृ० १२३; जैन, जे० सी०, पू०नि०, पृ० ११५

८ मोती चन्द्र, पू०नि०, पृ० १७

९ भट्टे, ए० एम०, 'जैनिज्म', दि क्लासिकल एज, बंबई, १९५४, पृ० ४०५–०६

मुहम्मद घोरी ने पृथ्वीराज तृतीय एवं जयचन्द को पराजित किया, जिसके साथ ही भारत में हिन्दू शासन समाप्त हो गया। सन् १२०६ ई० में मुसलमानों ने मामलुक वंश की स्थापना की।

विभिन्न क्षेत्रों के शासकों के मध्य निरन्तर चलनेवाले संघर्ष के परिणामस्वरूप गुप्तयुग की शान्ति एवं व्यवस्था विलुप्त हो गयी। तथापि भारतीय संस्कृति के विभिन्न पक्षों का विकास अबाध गति से चलता रहा, यद्यपि उस विकास का स्वरूप एवं उसकी गति विभिन्न राजवंशों के अन्तर्गत भिन्न रही। मौर्य, कुषाण एवं गुप्त युगों की तुलना में इस युग में विभिन्न राजवंशों के अन्तर्गत हुए साहित्य और कला के विकास का महत्व किसी भी प्रकार कम नहीं है। सीमित क्षेत्र में समर्थ शासक का संरक्षण किसी भी धर्म और कला की उन्नति एवं विकास में अधिक सहायक होता है। इसका प्रमाण प्रतिहार, चंदेल और चौलुक्य शासकों के काल में निर्मित जैन मन्दिरों की संख्या एवं प्रतिमाविज्ञान की प्रभूत सामग्री में निहित है। इस युग में ही गुजरात, राजस्थान, मध्यप्रदेश और उत्तर प्रदेश में सर्वाधिक जैन मन्दिरों का निर्माण हुआ और समस्त उत्तर भारत में अनेक जैन कलाकेन्द्र स्थापित हुए जहाँ प्रभूत संख्या में जैन मूर्तियां निर्मित हुईं। फलतः इस काल में प्रतिमाविज्ञान की दृष्टि से विषय की सर्वाधिक विविधता एवं विकास भी दृष्टिगत होता है। उदयगिरि-खंडगिरि (नवमुनि एवं बारभुजी गुफाएं), देवगढ़, मथुरा, ग्वालियर, खजुराहो, ओसिया, दिलवाड़ा (विमलवसही एवं लूणवसही), कुंभारिया, तारंगा, राजगिर आदि जैन प्रतिमाविज्ञान के अध्ययन की दृष्टि से अतीव महत्व के स्थल हैं।

प्रतिहार शासक नागभट द्वितीय[1] और चौलुक्य शासक कुमारपाल के अतिरिक्त अन्य किसी भी शासक के जैन धर्म स्वीकार करने का उल्लेख नहीं प्राप्त होता। पर बौद्ध धर्मावलम्बी पालवंश के अतिरिक्त अन्य सभी राजवंशों का जैन धर्म एवं कला को किसी न किसी रूप में समर्थन प्राप्त था। जैन देवकुल में राम, कृष्ण, बलराम, गणेश, सरस्वती, चक्रेश्वरी, अष्ट-दिक्पाल एवं नवग्रहों जैसे हिन्दू देवों को विशेष महत्व दिया गया था।[2] जैन धर्म के इस उदार स्वरूप ने निश्चितरूपेण हिन्दू शासकों को जैन धर्म के समर्थन के लिए आकृष्ट किया होगा। जयसिंह सूरि (१४ वीं शती ई०) कृत *कुमारपालचरित* में उल्लेख है कि जैन आचार्य हेमचन्द्र को सलाह पर ही कुमारपाल ने हेमचन्द्र के साथ सोमनाथ जाकर शिव का पूजन किया था। वहीं शिव ने प्रकट होकर जैन धर्म की प्रशंसा की थी।[3] हेमचन्द्र ने शिव महादेव की प्रशंसा में काव्य रचना भी की थी। *गणधरसार्द्धशतकबृहद्वृत्ति* के अनुसार एक अच्छे जैन विद्वान् के लिए ब्राह्मण और जैन दोनों ही दर्शनों का पूरा ज्ञान आवश्यक है।[4] अहिंसा पर बल देने के साथ ही जैन धर्म युद्ध विरोधी नहीं था। तभी कुमारपाल, सिद्धराज एवं विमल जैसे शासक उसकी परिधि में आ सके।

जैन धर्म व्यापारियों एवं व्यवसायियों के मध्य विशेष लोकप्रिय था। सम्भवतः इसके हिन्दू शासकों द्वारा समर्थित होने का यह भी एक कारण था। जैन धर्म में जाति व्यवस्था को धर्म की दृष्टि से महत्व नहीं दिया गया था, और सम्भवतः इसी कारण वैश्यों ने काफी संख्या में जैन धर्म स्वीकार किया था, जिनका मुख्य कार्य व्यापार या व्यवसाय था। इन वैश्यों को जैन समाज में पूर्ण प्रतिष्ठा प्राप्त थी। दण्डनायक विमल, वास्तुपाल, तेजपाल, पाहिल्ल एवं जगडु को शासन में

---

१ अय्यंगर, कृष्णस्वामी, 'दि बप्पभट्टि-चरित ऐण्ड दि अर्ली हिस्ट्री ऑव दि गुर्जर एम्पायर,' ज०बां०ब्रां०रा०ए०सो०, खं० ३, अं० १-२, पृ० ११३; पुरी, बी० एन०, दि हिस्ट्री ऑव दि गुर्जर-प्रतिहारज, बम्बई, १९५७, पृ० ४७-४८

२ जैन स्थिति के ठीक विपरीत स्थिति बौद्धों की थी, जिन्होंने प्रमुख हिन्दू देवताओं को अपने देवकुल में निम्न स्थान दिया : द्रष्टव्य, बनर्जी, जे० एन०, *दि डिवलप्मेण्ट ऑव हिन्दू आइकानोग्राफी*, कलकत्ता, १९५६, पृ० ५४० और आगे; भट्टाचार्य, बेनायतोष, *दि इण्डियन बुद्धिस्ट आइकानोग्राफी*, कलकत्ता, १९६८, पृ० १३६, १७३-७४, १८५-८८, २४९-५०

३ *कुमारपालचरित* ५.५, पृ० २४ और आगे; ७.५, पृ० ५७७ और आगे

४ शर्मा, ब्रजेन्द्रनाथ, *सोशल ऐण्ड कल्चरल हिस्ट्री ऑव नार्दर्न इण्डिया*, दिल्ली, १९७२, पृ० ४६; जै०क०स्था०, खं० २, पृ० २५४, पा० टि० २

महत्वपूर्ण पद या शासकों का सम्मान प्राप्त था। व्यापारियों के जैन धर्म एवं कला को संरक्षण प्रदान करने की पुष्टि खजुराहो, जालोर और ओसिया जैसे स्थलों से प्राप्त लेखों से भी होती है। गुजरात, राजस्थान, उत्तर प्रदेश एवं मध्यप्रदेश में होनेवाले जैन कला के प्रभूत विकास के मूल में उन क्षेत्रों की व्यापारिक पृष्ठभूमि ही थी। गुजरात के भड़ौंच, कैंबे और सोमनाथ जैसे व्यापारिक महत्व के बन्दरगाहों; राजस्थान में पोरवाड़, श्रीमाल, ओसवाल, मोढेरक जैसी व्यापारिक जैन जातियों; एवं मध्यप्रदेश और उत्तर प्रदेश में विदिशा, उज्जैन, मथुरा, कौशाम्बी जैसे महत्वपूर्ण व्यापारिक स्थलों ने इन क्षेत्रों में जैन मन्दिरों एवं प्रचुर संख्या में मूर्तियों के निर्माण का आधार प्रस्तुत किया।

छठीं शती ई० से दसवीं शती ई० के मध्य का संक्रमण काल अन्य धर्मों एवं कलाओं के साथ ही जैन धर्म एवं कला में भी नवीन प्रवृत्तियों के उदय का युग था। सातवीं शती ई० के बाद कला में क्षेत्रीय वृत्तियां उभरने लगीं, और तीनों प्रमुख धर्मों को तान्त्रिक प्रवृत्तियों ने किसी न किसी रूप में प्रभावित किया। अन्य धर्मों के समान जैन धर्म में भी देवकुल की वृद्धि हुई। बौद्ध और हिन्दू धर्मों की तुलना में जैन धर्म में तान्त्रिक प्रभाव कम और मुख्यतः मन्त्रवाद के रूप में था। जैन धर्म तान्त्रिक पूजाविधि, मांस, शराब और स्त्रियों से मुक्त रहा। यही कारण है कि जैन धर्म में देवताओं को शक्ति के साथ आलिंगन मुद्रा में नहीं व्यक्त किया गया। जैन आचार्यों ने तान्त्रिक विद्या के घिनौने आचरणों को पूर्णतः अस्वीकार करके तन्त्र में प्राप्त केवल योग एवं साधना के महत्व को स्वीकार किया।

आगम ग्रन्थों में भूतों, डाकिनियों एवं पिशाचों के उल्लेख हैं। समराइच्चकहा, तिलकमञ्जरी एवं बृहत्कथाकोश में मन्त्रवाद, विद्याधरों, विद्याओं एवं कापालिकों के वेताल साधनों की चर्चा है जिनकी उपासना से साधकों को दिव्य शक्तियों या मनोवांछित फलों की प्राप्ति होती थी।[1] तान्त्रिक प्रभाव में कई एक जैन ग्रन्थों की रचनाएँ हुईं, जिनमें कुछ प्रमुख ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं—ज्वालिनीमाता, निर्वाणकलिका, प्रतिष्ठासारोद्धार, आचारदिनकर, भैरवपद्मावतीकल्प, अद्भुत पद्मावती आदि। परम्परागत जैन साहित्य और शिल्प में १६ महाविद्याएं तान्त्रिक देवियां मानी गई हैं।[2]

उत्तर भारत में गुजरात, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, बिहार, बंगाल से ही जैन कला के अवशेष प्राप्त हुए हैं।[3] इन राज्यों से प्राप्त जैन मूर्तियों के सम्यक् अध्ययन की दृष्टि से पृष्ठभूमि के रूप में इन राज्यों के राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास का अलग-अलग अध्ययन अपेक्षित है।

गुजरात

आठवीं शती ई० के अन्त तक गुजरात में जैन धर्म का प्रभाव तेजी से बढ़ने लगा।[4] प्रतिहार शासक नागभट द्वितीय (आमराज) ने जीवन के अन्तिम वर्षों में जैन धर्म स्वीकार किया था तथा मोढेरा एवं अण्हिलपाटक में जैन मन्दिरों और शत्रुन्जय एवं गिरनार पर तीर्थस्थलियों का निर्माण कराया था। वनराज चापोत्कट ने ७४६ ई० में अण्हिलपाटक में पंचासर चैत्य का निर्माण कराकर उसमें पार्श्वनाथ की प्रतिमा प्रतिष्ठित करवायी और जैन आचार्य शीलगुणसूरि का सम्मान किया।[5]

गुजरात में जैन धर्म एवं कला के विकास में चौलुक्य (या सोलंकी) राजवंश (९६१–१३०४ ई०) का सर्वाधिक योगदान रहा। इस राजवंश के शासकों के संरक्षण में कुंभारिया, तारंगा एवं जालोर में कई जैन मन्दिरों का निर्माण

---

१ शर्मा, बृजनारायण, सोशल लाइफ इन नार्दर्न इण्डिया, दिल्ली, १९६६, पृ० २१२–१३

२ शाह, यू० पी०, 'आइकानोग्राफी ऑव दि सिक्सटीन जैन महाविद्याज', ज०इं०सो०ओ०आ०, खं० १५, पृ० ११४

३ शेष उत्तर भारत में जम्मू-कश्मीर, पंजाब और असम से जैन मूर्तियों की प्राप्तियां सन्देहास्पद प्रकार की हैं। ८वीं शती ई० की कुछ दिगम्बर तीर्थंकर मूर्तियां असम के ग्वालपाड़ा जिले के सूर्य पहाड़ी की गुफाओं से मिली हैं, नार्दर्न इण्डिया पत्रिका, अक्तूबर २९, १९७५, पृ० ८; जै०क०स्था०, खं० १, पृ० १७४

४ विरजी, के० के० जे०, ऐन्शण्ट हिस्ट्री ऑव सौराष्ट्र, बंबई, १९५२, पृ०१८३

५ चौधरी, गुलाबचन्द्र, पालिटिकल हिस्ट्री ऑव नार्दर्न इण्डिया फ्राम जैन सोर्सेज, अमृतसर, १९६३, पृ० २००

हुआ। जैन धर्म को अजयपाल (११७३–७६ ई०) के अतिरिक्त सभी शासकों का समर्थन मिला। मूलराज प्रथम (९४२–९५ ई०) ने अणहिलपाटक में दिगम्बर सम्प्रदाय के लिए मूलवसतिका प्रासाद और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के लिए मूलनाथ जिनदेव मन्दिर का निर्माण कराया। प्रभावकचरित के अनुसार चामुण्डराज जैन आचार्य वीराचार्य से प्रभावित था और युवराज के रूप में ही ९७६ ई० में उसने वरुणशर्मक (मेहसाणा) के जैन मन्दिर को दान दिया था। भीमदेव प्रथम (१०२२–६४ ई०) ने सुराचार्य, शान्तिसूरि, बुद्धिसागर तथा जिनेश्वर जैसे जैन विद्वानों को अपने दरबार में प्रश्रय दिया। कर्ण (१०६४–९४ ई०) ने टाकवधी या टाकोवी (तकोडि) के सुमतिनाथ जिन मन्दिर को भूमिदान दिया। जयसिंह सिद्धराज (१०९४–११४४ ई०) के काल में श्वेताम्बर धर्म गुजरात में भलीभांति स्थापित हो चुका था। जयसिंह के ही नाम पर जैन आचार्य हेमचन्द्र ने सिद्ध-हेम-व्याकरण की रचना की थी। जयसिंह की ही उपस्थिति में श्वेताम्बरों एवं दिगम्बरों ने शास्त्रार्थ किया, जिसमें दिगम्बरों ने पराजय स्वीकार की। द्वयाश्रयकाव्य (हेमचन्द्रकृत) में जयसिंह के सिद्धपुर में महावीर मन्दिर के निर्माण कराने और अर्हत् संघ को स्थापित करने का उल्लेख है। ग्रन्थ में पुत्र प्राप्ति हेतु जयसिंह के रैवतक (गिरनार) और शत्रुंजय पहाड़ियों पर जाने और नेमिनाथ एवं ऋषभदेव के पूजन करने का भी उल्लेख है।[1]

कुमारपाल (११४४–७४ ई०) जैन धर्म एवं कला का महान् समर्थक था। प्रबन्धों में उसके जैन धर्म स्वीकार करने का उल्लेख है। मेरुतुंगकृत प्रबन्धचिन्तामणि (१३०६ ई०) के अनुसार इसने 'परमार्हत्' उपाधि धारण की।[2] अशोक के समान कुमारपाल ने विभिन्न स्थानों पर कुमार विहारों का निर्माण करवाया तथा इनके माध्यम से जैन धर्म का प्रचार और प्रसार किया। कुमारपाल को १४४० जैन मन्दिरों का निर्माणकर्ता कहा गया है। यह संख्या अतिशयोक्तिपूर्ण है, फिर भी इससे कुमारपाल द्वारा निर्मित जैन मन्दिरों की पर्याप्त संख्या का आभास मिलता है, जिसका पुरातात्विक प्रमाण भी समर्थन करते हैं।[3] कुमारपाल ने तारंगा (मेहसाणा) में अजितनाथ और जालोर के कांचनगिरि (सुवर्णगिरि) पर पार्श्वनाथ मन्दिरों का निर्माण कराया।[4] कुमारपाल द्वारा निर्मित जैन मन्दिर (कुमार विहार) जालोर से प्रभास तक के पर्याप्त विस्तृत क्षेत्र के सभी महत्वपूर्ण जैन केन्द्रों में निर्मित हुए।[5] कुमारपाल के उपरान्त गुजरात में जैन धर्म को राजकीय समर्थन नहीं मिला।

चौलुक्य शासकों के मन्त्रियों, सेनापतियों एवं अन्य विशिष्ट जनों और व्यापारियों ने भी जैन धर्म और कला को समर्थन प्रदान किया। भीमदेव के दण्डनायक विमल ने शत्रुंजय और आरासण (कुंभारिया) में दो मंदिरों का निर्माण कराया। कर्णदेव के प्रधान मन्त्री सान्तू ने अणहिलपाटक एवं कर्णावती में सान्तू वसतिका का निर्माण करवाया, कर्णदेव के ही मन्त्री मुंजला (जो बाद में जयसिंह सिद्धराज के भी मन्त्री रहे) के १०९३ ई० के पूर्व अणहिलपाटक में मुन्जलवसती, मन्त्री उदयन के कर्णावती में उदयन विहार (१०९३ ई०), स्तंभ तीर्थ में उदयनवसती और धवलकक्क (धोल्क) में सीमन्धर जिन मन्दिर (१११९ ई०), सोलाक मन्त्री के अणहिलपाटक में सोलाकवसती, दण्डनायक कपर्दी के अणहिलपाटक में ही जिन मन्दिर (१११९ ई०), जयसिंह के दण्डनायक सज्जन के गिरनार पर्वत पर नेमिनाथ मन्दिर (११२९ ई०), कुमारपाल के मन्त्री पृथ्वीपाल के सायणवाड़पुर में शान्तिनाथ मन्दिर एवं आबू के विमलवसही में रंगमण्डप एवं देवकुलिकाएं संयुक्त कराने के उल्लेख प्राप्त होते हैं। उदयन के पुत्र एवं मन्त्री वाग्भट्ट ने शत्रुंजय पर्वत पर प्राचीन मन्दिर के स्थान पर नवीन आदिनाथ मन्दिर (११५५–५७ ई०) का निर्माण कराया।[6] कुमारपाल के दण्डनायक के पुत्र अभयद को जैन धर्म के प्रति आस्थावान बताया गया है। गम्भूय के समृद्ध व्यापारी निन्नय ने अणहिलपाटक में ऋषभदेव का एक मन्दिर बनवाया।[7]

---

१ वही, पृ० २४०, २५५, २५७; ढाकी, एम० ए०, 'सम अर्ली जैन टेम्पल्स इन वेस्टर्न इण्डिया', म०जै०वि०गो०जु०वा०, पृ० २९४
२ प्रबन्धचिन्तामणि, पृ० ८६
३ मजूमदार, ए० के०, चौलुक्याज ऑव गुजरात, बंबई, १९५६, पृ० ३१७–१९
४ नाहर, पी० सी०, जैन इन्स्क्रिप्शन्स, भाग १, कलकत्ता, १९१८, पृ० २३९, लेख सं० ८९९
५ ढाकी, एम० ए०, पू०नि०, पृ० २९४
६ वही, पृ० २९६–९७
७ चौधरी, गुलाबचन्द्र, पू०नि०, पृ० २०१, २९५

मुसलमान यात्रियों, भौगोलिकों (मार्कोपोलो) के वृत्तान्तों एवं गुजरात के प्रबन्ध काव्यों में उल्लेख है कि मध्य-युग में गुजरात में कृषि, व्यवसाय, व्यापार एवं वाणिज्य पूर्णतः विकसित था। पूर्वी एवं पश्चिमी देशों के साथ गुजरात का व्यापार था। भड़ौच, कैंबे और सोमनाथ गुजरात के तीन महत्वपूर्ण बंदरगाह थे जिनके कारण इस क्षेत्र का विदेशों से होने वाले व्यापार पर प्रभाव था।[१]

राजस्थान

जैन धर्म एवं कला की दृष्टि से दूसरा महत्वपूर्ण क्षेत्र राजस्थान था, जहां जैन धर्म को अधिकांश राजवंशों का समर्थन मिला। आठवीं से बारहवीं शती ई० तक राजस्थान और गुजरात राजनीतिक दृष्टि से पर्याप्त सीमा तक एक दूसरे से सम्बद्ध थे। गुर्जर-प्रतिहार एवं चौलुक्य शासकों की राजनीतिक गतिविधियां दोनों ही राज्यों से सम्बद्ध थीं। इसी कारण दोनों राज्यों का जैन धर्म एवं कला को योगदान तथा दोनों क्षेत्रों में होने वाला इनका विकास लगभग समान रहा।

गुर्जर-प्रतिहार शासकों का जैन धर्म को समर्थन प्राप्त था। जैन परम्परा में सत्यपुर (संचोर) एवं कोरण्ट (कोर्टा) के महावीर मन्दिरों के निर्माण का श्रेय नागभट प्रथम को दिया गया है।[२] ओसिया के जैन मन्दिर के ९५६ ई० के लेख में वत्सराज (७७०–८००ई०) का उल्लेख है, जिसके शासनकाल में यह मन्दिर विद्यमान था।[३] मिहिरभोज ने जैन आचार्यों, नन्नसूरि एवं गोविन्दसूरि, के प्रभाव में जैन धर्म को संरक्षण प्रदान किया। मण्डोर के प्रतिहार शासक कक्कुक (८६१ ई०) ने रोहिन्सकूप में एक जिन मन्दिर का निर्माण करवाया।[४]

प्रारम्भिक चाहमान शासकों का जैन धर्म से सम्बन्ध स्पष्ट नहीं है, किन्तु परवर्ती चाहमान शासक निश्चित ही जैन धर्म के प्रति उदार थे। पृथ्वीराज प्रथम ने रणथम्भोर के जैन मन्दिर पर तथा अजयराज ने अजमेर के पार्श्वनाथ मन्दिर पर कलश स्थापित कराया। अजयराज धर्मघोषसूरि (श्वेताम्बर) एवं गुणचन्द्र (दिगम्बर) के मध्य हुए शास्त्रार्थ में निर्णायक भी था। अर्णोराज ने पार्श्वनाथ के एक विशाल मन्दिर के लिए भूमि दी और जिनदत्तसूरि को सम्मानित किया।[५] बिजोलिया के लेख (११६९ ई०) में पृथ्वीराज द्वितीय एवं सोमेश्वर द्वारा पार्श्वनाथ मन्दिर के लिए दो ग्रामों के दान देने का उल्लेख है।[६]

नाडोल के चाहमान शासकों के समय में नाडोल में नेमिनाथ, शान्तिनाथ एवं पद्मप्रभ मन्दिरों का निर्माण हुआ। सेवाड़ी (जोधपुर) के महावीर मन्दिर के लेख (१११५ ई०) में कटुकराज के शान्तिनाथ के पूजन हेतु वार्षिक अनुदान देने का उल्लेख है।[७] कीर्त्तिपाल ने नड्डुलडागिका (नाड्लई) के महावीर मन्दिर को ११६० ई० में दान दिया।[८] कीर्त्तिपाल के पुत्रों, लखनपाल एवं अभयपाल; ने रानी महीबलादेवी के साथ शान्तिनाथ का महोत्सव मनाने के लिए दान दिया था।[९] नाड्लाई के आदिनाथ मन्दिर के एक लेख (११३२ ई०) में रायपाल के दो पुत्रों, रुद्रपाल और अमृतपाल के अपनी माता

---

१ मजूमदार, ए० के०, पू०नि०, पृ० २६५; गोपाल, एल०, दि इकनामिक लाइफ ऑव नार्दर्न इण्डिया, वाराणसी, १९६५, पृ० १४२, १४८; जैन, जे० सी०, पू०नि०, पृ० ३३९

२ ढाकी, एम० ए०, पू०नि०, पृ० २९४–९५

३ नाहर, पी० सी०, पू०नि०, पृ० १९२–९४, लेख सं० ७८८; भण्डारकर, डी० आर०, 'दि टेम्पल्स ऑव ओसिया', आ०स०इ०ऐ०रि०, १९०८–०९, पृ० १०८

४ शर्मा, दशरथ, राजस्थान थ्रू दि एजेज, खं० १, बीकानेर, १९६६, पृ० ४२०

५ जैन, के० सी०, जैनिजम इन राजस्थान, शोलापुर, १९६३, पृ० १९

६ एपि०इण्डि०, खं० २६, पृ० १०२; जोहरापुरकर, विद्याधर (सं०), जै०शि०सं०, भाग ४, वाराणसी, महावीर निर्वाण सं० २४९१, पृ० १९६

७ चौधरी, गुलाबचन्द्र, पू०नि०, पृ० १५१

८ ढाकी, एम० ए०, पू०नि०, पृ० २९५–९६

९ एपि०इण्डि०, खं० ९, पृ० ४९–५१

मानलदेवी के साथ मन्दिर को दान देने का उल्लेख है।[१] केल्हण (११६१-९२ ई०) के शासनकाल के ६ जैन अभिलेखों में भी विभिन्न जैन मन्दिरों को दिए गए दानों का उल्लेख है। केल्हण की माता ने भी महावीर मन्दिर के लिए भूमिदान किया था।[२]

परमार शासकों ने भी जैन धर्म एवं कला को संरक्षण दिया। कृष्णराज के शासनकाल में एक गोष्ठी द्वारा वर्धमान की मूर्ति स्थापित की गई।[३] धारावर्ष की रानी शृंगार देवी ने झालोडी के महावीर मन्दिर को भूमिदान दिया। कुंकण (सम्भवतः आबू के परमार शासक अरण्यराज का मन्त्री) ने चन्द्रावती में किसी जिन मन्दिर का निर्माण करवाया। गुहिल शासक अल्लट के एक मन्त्री ने आघाट (अहार) में पार्श्वनाथ मन्दिर का निर्माण करवाया।[४]

जैन धर्म को हस्तिकुण्डी के राष्ट्रकूट शासकों का भी समर्थन प्राप्त था। हरिवर्मन के पुत्र विदग्धराज ने हस्तिकुण्डी में ऋषभदेव का मन्दिर बनवाया और उसे भूमिदान किया। उसके पुत्र एवं पौत्र मम्मट तथा धवल ने भी इस मन्दिर को दान दिया।[५] बयाना के शूरसेन शासक कुमारपाल ने शान्तिनाथ मन्दिर (११५४ई०) के शिखर पर स्वर्णकलश स्थापित किया था।[६] शूरसेन शासकों ने प्रद्युम्नसूरि, धनेश्वरसूरि एवं दुर्गदेव जैसे जैन आचार्यों का सम्मान भी किया था। जैसलमेर राज्य की राजधानी लोद्रवा के शासक सागर के समय में जिनेश्वरसूरि वहां (९९४ ई०) पधारे थे और सागर के दो पुत्रों, श्रीधर एवं राजधर ने वहां एक पार्श्वनाथ मन्दिर का निर्माण भी करवाया था।[७]

शासकों के अतिरिक्त उद्योतनसूरि, बप्पभट्टिसूरि, हरिभद्रसूरि, सिद्धर्षिसूरि, जिनेश्वरसूरि, धनेश्वरसूरि, अभयदेव, आशाधर, जिनदत्तसूरि, जिनपाल और सुमतिगणि जैसे जैन आचार्यों ने भी जैन धर्म के प्रचार और प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया था।

राजस्थान में व्यापार काफी समुन्नत स्थिति में था। राजस्थान से सम्बन्धित सभी प्रमुख वणिक वंशो ने जिनका मुख्य व्यवसाय व्यापार था, जैन धर्म स्वीकार किया था। जैन धर्म स्वीकार करनेवाले वणिक वंशों में आबू के पूर्वी क्षेत्र के प्राग्वाट् (पोरवाड़), उकेश (ओसिया) के उकेशवाल (ओसवाल), भिन्नमाल (श्रीमाल) के श्रीमाली, पल्लिका (पाली) के पल्लिवाल, मोरढेरक (मोढेरा) के मोढ एवं गुर्जर मुख्य हैं।[८]

अभिलेखिक साक्ष्यों से व्यापारियों एवं उनकी गोष्ठियों के भी जैन धर्म एवं कला को संरक्षण प्रदान करने की पुष्टि होती है। ओसिया के महावीर मन्दिर के लेख में मन्दिर की गोष्ठी का उल्लेख है। लेख में जिनदक नाम के व्यापारी द्वारा ९९६ ई० मे बलानक के पुनरुद्धार कराने की भी चर्चा है।[९] बीजापुर लेख (१०वी शती ई०) से हस्तिकुण्डी की गोष्ठी द्वारा स्थानीय ऋषभदेव मन्दिर के पुनरुद्धार करवाने का ज्ञान होता है।[१०] दियाणा के शान्तिनाथ मन्दिर के लेख (९६७ई०) में एक

---

१ एपि०इण्डि०, खं० ११, पृ० ३४; जै०शि०सं०, भाग ४, पृ० १५९

२ एपि०इण्डि०, खं० ९, पृ० ४६-४९

३ जयन्तविजय (सं०), अर्बुद प्राचीन जैन लेख सन्दोह, भाग ५, भावनगर, वि०स०२००५, पृ०१६८, लेख सं०४८६

४ ढाकी, एम० ए०, पू०नि०, पृ० २९८

५ नाहर, पी० सी०, पू०नि०, लेख सं० ८९८

६ जैन, के० सी०, पू०नि०, पृ० २८

७ नाहर, पी० सी०, जैन इन्स्क्रिप्शन्स, भाग ३, १९२९, पृ० १६०, लेख सं० २५४३

८ ढाकी, एम० ए०, पू०नि०, पृ० २९८

९ भण्डारकर, डी० आर०, आ०स०इं०ऐ०रि०, १९०८-०९, पृ०१०८, नाहर, पी० सी०, जैन इन्स्क्रिप्शन्स, भाग १, पृ० १९२-९४

१० एपि०इण्डि०, खं० १०, पृ० १७ और आगे, लेख सं० ५; नाहर, पी० सी०, जैन इन्स्क्रिप्शन्स, भाग १, पृ० २३३, लेख सं० ८९८

गोष्ठी द्वारा वर्धमान की प्रतिमा के प्रतिष्ठित किये जाने का उल्लेख है।[1] अर्थुणा के एक लेख (११०९ ई०) में उल्लेख है कि वहां नगर महाजन भूषण ने ऋषभनाथ के मन्दिर का निर्माण करवाया। जालोर के एक लेख (११८२ ई०) में अपने भाई एवं गोष्ठी के सदस्यों के साथ श्रीमालवंश के सेठ यशोवीर द्वारा एक मण्डप के निर्माण का उल्लेख है। जालोर के एक अन्य लेख (११८५ ई०) से ज्ञात होता है कि भण्डारि यशोवीर ने कुमारपाल निर्मित पार्श्वनाथ मन्दिर का पुनर्निर्माण करवाया।[2]

राजस्थान उत्तर भारत के विभिन्न भागों से स्थल मार्ग से सम्बद्ध था, जो व्यापार की दृष्टि से महत्वपूर्ण था।[3] राजस्थान के व्यापारी देश के विभिन्न भागों के अतिरिक्त विदेशों के साथ भी व्यापार करते थे। राजस्थान के साहित्य में दो बन्दरगाहों, शूर्पारक (आधुनिक सोपारा) और ताम्रलिप्ति (आधुनिक तामलुक) का अनेकशः उल्लेख प्राप्त होता है, जहां से राजस्थान के व्यापारी स्वर्णद्वीप, चीन, जावा जैसे देशों में व्यापार के लिए जाते थे।[4]

उत्तर प्रदेश

उत्तर प्रदेश में जैन धर्म को राजकीय समर्थन के कुछ प्रमाण केवल देवगढ़ से ही प्राप्त होते हैं। देवगढ़ के मन्दिर १२ (शान्तिनाथ मन्दिर) के अर्धमण्डप के एक स्तम्भ लेख (८६२ ई०) में प्रतिहार शासक भोजदेव के शासन काल और लुअच्छगिरि (देवगढ़) के शासक महासामन्त विष्णुराम का उल्लेख है।[5] लेख में 'गोष्ठिक-वजुआगगाक' का भी नाम है, जो मन्दिर की व्यवस्थापक समिति का सदस्य था। ९९४ ई० एवं ११५३ ई० के देवगढ़ के दो अन्य लेखों में क्रमशः 'श्रीउजरवट-राज्ये' एवं 'महासामन्त श्रीउदयपालदेव' के उल्लेख प्राप्त होते हैं, जिनके विषय में कुछ भी जानकारी नहीं है। देवगढ़ के विभिन्न लेखों से स्पष्ट है कि वहां के अधिकतर मन्दिर एवं मूर्तियां मध्यमवर्ग के लोगों के दान एवं सहयोग के प्रतिफल हैं। व्यापार की दृष्टि से भी देवगढ़ का महत्व स्पष्ट नहीं है। किन्तु ४०० वर्षों तक लगातार प्रभूत संख्या में निर्मित होने वाली जैन मूर्तियां क्षेत्र की अच्छी आर्थिक स्थिति और देवगढ़ के धार्मिक महत्व की सूचक है। यहां के लेखों में दिगम्बर सम्प्रदाय के कुछ महत्वपूर्ण आचार्यों (वसन्तकीर्ति, विशालकीर्ति, शुभकीर्ति) तथा कुछ ऐसे आचार्यों के नाम जो जैन परम्परा में अज्ञात हैं, प्राप्त होते हैं।[6]

कुछ प्रमुख जैन स्थलों की व्यापारिक पृष्ठभूमि का ज्ञान भी अपेक्षित है। प्रमुख नगर होने के अतिरिक्त कौशाम्बी, श्रावस्ती, मथुरा एवं वाराणसी की स्थिति व्यापारिक मार्ग पर थी। भड़ौच से आनेवाले मार्ग के कारण कौशाम्बी का विशेष व्यापारिक महत्व था।[7] कौशाम्बी से कोशल और मगध तथा माहिष्मती के माध्यम से दक्षिणापथ एवं विदिशा को मार्ग जाते थे। जैन परम्परा के अनुसार पार्श्वनाथ, महावीर, आर्य सुहस्ति तथा महागिरि ने कौशाम्बी (वत्स) की यात्रा की थी।[8] श्रावस्ती भी व्यापारिक महत्व की नगरी थी।[9]

मध्य प्रदेश

मध्य प्रदेश में व्यापारिक समृद्धि के अनुकूल वातावरण के साथ ही विभिन्न राजवंशों के धर्म सहिष्णु शासकों द्वारा दिया गया समर्थन भी जैन धर्म को प्राप्त था। प्रतिहार शासकों के काल में ही दसवीं शती ई० के प्रारम्भ में ग्यारसपुर में मालादेवी जैन मन्दिर निर्मित हुआ। परमार शासकों के जैन धर्म के प्रश्रयदाता होने की पुष्टि धनपाल, धनेश्वर सूरि, अमितगति, प्रभाचन्द्र, शान्तिषेण, राजवल्लभ, शुभशील, महेन्द्रसूरि जैसे जैन आचार्यों के उनके दरबार में होने से होती है।

---

१ जयन्तविजय (सं०), **अर्बुद प्राचीन जैन लेख सन्दोह**, भाग ५, पृ० १६८, लेख सं० ४८६

२ एपि०इण्डि०, खं० ११ पृ० ५२–५४

३ मोती चन्द्र, पू०नि०, पृ० २३

४ शर्मा, दशरथ, पू०नि०, पृ० ४९२; गोपाल, एल०, पू०नि०, पृ० ९१; शर्मा, ब्रजेन्द्रनाथ, पू०नि०, पृ० १४९

५ एपि०इण्डि०, खं० ४, पृ० ३०९–१०

६ जि०इ०दे०, पृ० ६१

७ मोतीचन्द्र, पू०नि०, पृ० १५–१७, २४

८ जैन, जे० सी०, पू०नि०, पृ० २५४

९ मोतीचन्द्र, पू०नि०, पृ० १७–१८

शैव धर्मावलम्बी होने के बाद भी भोज (१०१०–१०६२ ई०) ने जैन धर्म एवं साहित्य को संरक्षण दिया था। भोज ने जैन आचार्य प्रभाचन्द्र के चरणों की वन्दना की थी।[१] खजुराहो के जैन मन्दिरों (पार्श्वनाथ, घण्टई, आदिनाथ) के अतिरिक्त चन्देल राज्य में सर्वत्र प्राप्त होने वाली जैन मूर्तियां एवं मन्दिर भी उनके जैन धर्म के प्रति उदार दृष्टिकोण की पुष्टि करते हैं। धंग के महाराजगुरु वासवचन्द्र जैन थे।[२]

जैन धर्म को ग्वालियर एवं दुबकुण्ड के कच्छपघाट शासकों का भी समर्थन प्राप्त था। वज्रदामन ने ९७७ ई० में ग्वालियर में एक जैन मूर्ति प्रतिष्ठित कराई। दुबकुण्ड के एक जैन लेख (१०८८ ई०) में विक्रमसिंह द्वारा वहां के एक जैन मन्दिर को दिए गए दान का उल्लेख है।[३] कल्चुरी शासकों के जैन धर्म के समर्थन से सम्बन्धित केवल एक लेख बहुरिबन्ध से प्राप्त होता है, जिसमें गयाकर्ण के राज्य में सर्वधर के पुत्र महाभोज (?) द्वारा शान्तिनाथ के मन्दिर के निर्माण का उल्लेख है।[४]

देश के मध्य में इस क्षेत्र की स्थिति व्यापार की दृष्टि से महत्वपूर्ण थी। लगभग सभी क्षेत्रों के व्यापारी इस क्षेत्र से होकर दूसरे प्रदेशों को जाते थे। व्यापारियों ने जैन मूर्तियों के निर्माण में पूरा योगदान दिया था। खजुराहो के पार्श्वनाथ मन्दिर को पांच वाटिकाओं का दान देने वाला व्यापारी पाहिल्ल श्रेष्ठी देदू का पुत्र था।[५] दुबकुण्ड जैन लेख (१०८८ ई०) में दो जैन व्यापारियों, ऋषि एवं दाहृद की वंशावली दी है, जिन्हें विक्रमसिंह ने श्रेष्ठी की उपाधि दी थी।[६] दाहृद ने विशाल जैन मन्दिर का निर्माण भी करवाया था। खजुराहो के एक मूर्ति लेख (१०७५ ई०) में श्रेष्ठी बीवनशाह की भार्या पद्मावती द्वारा आदिनाथ की मूर्ति स्थापित कराने का उल्लेख है।[७] खजुराहो के ११४८ ई० के एक अन्य मूर्ति लेख में श्रेष्ठी पाणिधर के पुत्रों, त्रिविक्रम, आल्हण तथा लक्ष्मीधर के नामों का[८], तथा ११५८ ई० के एक तीसरे लेख में पाहिल्ल के वंशज एवं ग्रहपति कुल के साधु साल्हे द्वारा सम्भवनाथ की मूर्ति की स्थापना का उल्लेख है।[९] परमर्दि के शासनकाल के अहाड़ लेख (११८० ई०) में ग्रहपति वंश के जैन व्यापारी जाहृद की वंशावली दी है। जाहृद ने मदनेशसागरपुर के मन्दिर में विशाल शांतिनाथ प्रतिमा प्रतिष्ठित करायी थी।[१०] धुबेला संग्रहालय की एक नेमिनाथ मूर्ति (क्रमांक : ७) के लेख (११४२ ई०) से ज्ञात होता है कि मूर्ति की स्थापना श्रेष्ठी कुल के मल्हण द्वारा हुई थी।

बिहार-उड़ीसा-बंगाल

मध्ययुग मे जैनधर्म को बिहार में किसी भी प्रकार का शासकीय समर्थन नहीं मिला, जिसका प्रमुख कारण पालों का प्रबल बौद्ध धर्मावलम्बी होना था। इसी कारण इस क्षेत्र में राजगिर के अतिरिक्त कोई दूसरा विशिष्ट एवं लम्बे इतिहास वाला कला केन्द्र स्थापित नहीं हुआ। जिनों की जन्मस्थली और भ्रमणस्थली होने के कारण राजगिर पवित्र माना गया।[११] पाटलिपुत्र (पटना) के समीप राजगिर की स्थिति भी व्यापार की दृष्टि से महत्वपूर्ण थी।[१२] राजगिर व्यापारिक मार्गों से वाराणसी, मथुरा, उज्जैन, चेदि, श्रावस्ती और गुजरात से सम्बद्ध था।

---

१ भाटिया, प्रतिपाल, **दि परमारज**, दिल्ली, १९७०, पृ० २६७–७२; चौधरी, गुलाबचन्द्र, **पू०नि०**, पृ० ९४, ९७, १०७

२ जेनास, ई० तथा आबोयर, जे०, **खजुराहो**, हेग, १९६०, पृ० ६१

३ **एपि०इण्डि०**, खं० २, पृ० २३२–४०

४ मिराशी, वी०वी०, **का०इं०इं०**, खं० ४, भाग १, पृ० १६१

५ विजयमूर्ति (सं०), **जै०शि०सं०**, भाग ३, बंबई, १९५७, पृ० १०८

६ **एपि०इण्डि०**, खं० २, पृ० २३७–४०

७ शास्त्री, परमानन्द जैन, 'मध्य भारत का जैन पुरातत्व', **अनेकान्त**, वर्ष १९, अं० १–२, पृ० ५७

८ विजयमूर्ति (सं०), **जै०शि०सं०**, भाग ३, पृ० ७९

९ **वही**, पृ० १०८

१० चौधरी, गुलाबचन्द्र, **पू०नि०**, पृ० ७०

११ जैन, जे०सी०, **पू०नि०**, पृ० ३२६-२७

१२ गोपाल, एल०, **पू०नि०**, पृ० ९१

ह्वेनसांग ने कलिंग में जैन धर्म की विद्यमानता का उल्लेख किया है, किन्तु खारवेल के पश्चात् केशरी वंश के उद्योतकेशरी (१०वीं–११वीं शती ई०) के अतिरिक्त किसी अन्य शासक ने जैन धर्म को स्पष्ट संरक्षण या समर्थन नहीं दिया। पर प्राचीन परम्परा एवं व्यापारिक पृष्ठभूमि के कारण ल० आठवीं–नवीं शती ई० से बारहवीं शती ई० तक जैन धर्म उड़ीसा में (विशेषकर उदयगिरि-खण्डगिरि गुफाओं में) जीवित रहा जिसकी साक्षी विभिन्न क्षेत्रों से प्राप्त होनेवाली जैन मूर्तियां हैं। उद्योत केशरी के ललितेन्दु केशरो गुफा (या सिन्धराजा गुफा) लेख से ज्ञात होता है कि उसने कुमार पर्वत (खण्डगिरि का पुराना नाम) पर खण्डित तालाबों एवं मन्दिरों का पुनर्निर्माण करवा कर २४ जिनों की मूर्तियां स्थापित करवाईं।[1] लेख से यह भी ज्ञात होता है कि उस क्षेत्र में धार्मिक नियमों का कठोरता से पालन करने वाले अनेक जैन साधु रहते थे। कटक जिले में जाजपुर स्थित अखंडलेश्वर मन्दिर एवं मैत्रक मन्दिर समूह में सुरक्षित जैन मूर्तियां प्रमाणित करती हैं कि इस शाक्त क्षेत्र में भी जैन धर्म लोकप्रिय था। पुरी जिले में स्थित उदयगिरि-खण्डगिरि की जैन गुफाओं के निर्माण की व्यापारिक पृष्ठभूमि भी थी। जैन ग्रंथों में पुरिमा या पुरिया (पुरी) का व्यापार के केन्द्र के रूप में उल्लेख है।[2]

प्रस्तुत अध्ययन में बंगाल, विभाजन के पूर्व के बंगाल का सूचक है। सातवीं शती ई० के बाद बंगाल में जैन धर्म की स्थिति की सूचना देने वाले साहित्यिक एवं अभिलेखिक साक्ष्य नहीं प्राप्त होते। फिर भी विभिन्न क्षेत्रों से प्राप्त होने वाली मूर्तियां जैन धर्म की विद्यमानता प्रमाणित करती है। बौद्ध धर्मावलंबी पाल शासकों के कारण बंगाल में जैन धर्म का पराभव हुआ। पर जैन ग्रंथ **बप्पभट्टिचरित** में एक स्थल पर उल्लेख है कि विद्या के महान प्रेमी धर्मपाल ने बौद्ध विद्वानों एवं आचार्यों के अतिरिक्त हिन्दू एवं जैन विद्वानों का भी सम्मान किया था। जैन आचार्य बप्पभट्टि का उसके दरबार में सम्मान था।[3] बंगाल का पर्याप्त व्यापारिक महत्व भी था। व्यापार के अनुकूल वातावरण के कारण ही राजकीय संरक्षण के अभाव में भी जैन धर्म बंगाल में किसी न किसी रूप में बारहवीं शती ई० तक विद्यमान रहा। ताम्रलिप्ति प्रमुख सामुद्रिक बन्दरगाहों में से था।[4]

● ● ●

---

१ एपि०इण्डि०, खं० १३, पृ० १६५–६६, लेख सं० १६; जै०शि०सं०, भाग ४, पृ० ९३

२ जैन, जे०सी०, पू०नि०, पृ० ३२५

३ प्रभावक चरित, पृ० ९४-९७; चौधरी, गुलाबचन्द्र, पू०नि०, पृ० ५६

४ जैन, जे०सी०, पू०नि०, पृ० ३४२; गोपाल, एल०, पू०नि०, पृ० १२६

तृतीय अध्याय

जैन देवकुल का विकास

भारतीय कला तत्वतः धार्मिक है। अतः सम्बन्धित धर्म या सम्प्रदाय में होने वाले परिवर्तनों अथवा विकास से शिल्प की विषयवस्तु में भी परिवर्तन हुए हैं। प्रतिमाविज्ञान धर्म से सम्बद्ध मानवेतर विशिष्ट व्यक्तियों—देवी-देवताओं, शलाका-पुरुषों (मिथकों में वर्णित जनों)—के स्वरूप एवं स्वरूपगत विकास का ऐतिहासिक अध्ययन है। इस अध्ययन के दो पक्ष हैं—शास्त्र-पक्ष एवं कला-पक्ष। शास्त्र-पक्ष धार्मिक एवं अन्य साहित्य में वर्णित स्वरूपों को विवेचना से, तथा कला-पक्ष कलावशेषों में प्राप्त मूर्त स्वरूपों के अध्ययन से सम्बद्ध हैं। इसी दृष्टि से प्रतिमाविज्ञान 'धार्मिक कला के व्याख्या पक्ष' से सम्बन्धित है।[1]

जैन प्रतिमाविज्ञान के अध्ययन की दृष्टि से जैन साहित्य में प्राप्त जैन देवकुल के क्रमिक विकास का ज्ञान नितान्त आवश्यक है। प्रस्तुत अध्ययन में जैन साहित्य का अवगाहन कर जैन देवकुल के क्रमिक विकास का निरूपण एवं जैन देवकुल में समय-समय पर हुए परिवर्तनों और नवीन देवों के आगमन के कारणों के उद्घाटन का प्रयास किया गया है। इसके अतिरिक्त साहित्य में प्राप्त जैन देवकुल का विकास कला में किस प्रकार और कहां तक समाहित किया गया, इस पर भी संक्षेप में दृष्टिपात किया गया है। कालक्रम की दृष्टि से यह अध्ययन दो भागों में विभक्त है। प्रथम भाग की स्रोतसामग्री पांचवीं शती ई० तक का प्रारम्भिक जैन साहित्य है और दूसरे भाग का आधार १२ वी शती ई० तक का परवर्ती जैन साहित्य है।

(क) प्रारम्भिक काल (प्रारम्भ से पांचवीं शती ई० तक)

प्रारम्भिक जैन साहित्य में महावीर के समय (ल० छठीं शती ई०पू०) से पांचवीं शती ई० के अन्त तक के ग्रंथ सम्मिलित हैं। प्रारम्भिक जैन ग्रंथों की सीमा पांचवी शती ई० तक दो दृष्टियों से रखी गयी है। प्रथमतः, जैन धर्म के सभी ग्रन्थ ल० पांचवीं शती ई० के मध्य या छठीं शती ई० के प्रारम्भ में[2] देवर्द्धिगणि-क्षमाश्रमण के नेतृत्व में वलभी (गुजरात) वाचन में लिपिबद्ध किये गये। दूसरे, इन ग्रन्थों में जैन देवकुल की केवल सामान्य धारणा ही प्रतिपादित है।

आगम ग्रन्थ[3] जैनों के प्राचीनतम ग्रन्थ हैं। उपलब्ध आगम ग्रन्थों के प्राचीनतम अंश ल० चौथी शती ई० पू० के अन्त और तीसरी शती ई० पू० के प्रारम्भ के हैं।[4] काफी समय तक श्रुत परम्परा में सुरक्षित रहने के कारण कालक्रम के साथ इन प्रारम्भिक आगम ग्रन्थों में प्रक्षेपों के रूप में नवीन सामग्री जुड़ती गई। इसकी पुष्टि **भगवतीसूत्र** (पांचवां अंग) में पांचवीं शती ई०[5], रायपसेणिय (राजप्रश्नीय-दूसरा उपांग) में कुषाण कालीन[6] और **अंगविज्जा** में कुषाण-गुप्त सन्धि-

---

१ बनर्जी, जे० एन०, **दि डीवेलप्मेण्ट ऑव हिन्दू आइकानोग्राफी**, कलकत्ता, १९५६, पृ० २

२ महावीर निर्वाण के ९८० या ९९३ वर्ष बाद (४५४ या ५१४ई०) : द्रष्टव्य, जैकोबी, एच०, **जैन सूत्रज**, भाग १, सेक्रेड बुक्स ऑव दि ईस्ट, खं० २२, दिल्ली, १९७३ (पु०मु०), प्रस्तावना, पृ० ३७; विण्टरनित्ज, एम०, **ए हिस्ट्री ऑव इण्डियन लिट्रेचर**, खं० २, कलकत्ता, १९३३, पृ० ४३२

३ इसमें द्वादश अंगों के अतिरिक्त १२ उपांग, ४ छेद, ४ मूल और १ आवश्यक ग्रन्थ सम्मिलित थे। महावीर के मूल उपदेशों का संकलन द्वादश अंगों में था (**समवायांगसूत्र** १ और १३६)।

४ जैकोबी, एच०, पू०नि०, पृ० ३७-४४; विण्टरनित्ज, एम०, पू०नि०, पृ० ४३४

५ सिकदर, जे० सी०, **स्टडीज इन दि भगवती सूत्र**, मुजफ्फरपुर, १९६४, पृ० ३२-३८

६ शर्मा, आर० सी०, 'आर्ट डेटा इन रायपसेणिय', सं०पु०प०, अं० ९, पृ० ३८

कालीन[1] सामग्रियों की प्राप्ति से होती है। जहां श्वेताम्बरों ने आगमों को संकलित कर यथाशक्ति सुरक्षित रखने का यत्न किया वहीं दिगम्बर परम्परा के अनुसार महावीर निर्वाण के ६८३ वर्ष बाद (१५६ ई०) आगमों का मौलिक स्वरूप विलुप्त हो गया।[2]

आगम साहित्य के अतिरिक्त कल्पसूत्र और पउमचरिय भी प्रारम्भिक ग्रन्थ हैं। जैन परम्परा में कल्पसूत्र के कर्ता भद्रबाहु की मृत्यु का समय महावीर निर्वाण के १७० वर्ष बाद (ई० पू० ३५७) है।[3] पर ग्रन्थ की सामग्री के आधार पर यू० पी० शाह इसे तीसरी शती ई० के कुछ पहले की रचना मानते हैं।[4] पउमचरिय के कर्ता विमलसूरि के अनुसार पउमचरिय की तिथि ४ ई० (महावीर निर्वाण के ५३० वर्ष बाद) है। ग्रन्थ की सामग्री के आधार पर जैकोबी इसे तीसरी शती ई० की रचना मानते हैं।[5]

चौबीस जिनों की धारणा

चौबीस जिनों की धारणा जैन धर्म की धुरी है। जैन देवकुल के अन्य देवों की कल्पना सामान्यतः इन्हीं जिनों से सम्बद्ध एवं उनके सहायक रूप में हुई है। जिनों को देवाधिदेव[6] और इन्द्र आदि देवों के मध्य वन्दनीय होने के कारण श्रेष्ठ कहा गया है। जिनों को ईश्वर का अवतार या अंश नहीं माना गया है। इनका जीव भी अतीत में सामान्य व्यक्ति की तरह ही वासना और कर्म बन्धन में लिप्त था, पर आत्म मनन, साधना एवं तपश्चर्या के परिणामस्वरूप उसने कर्मबन्धन से मुक्त होकर केवल-ज्ञान की प्राप्ति की।[7] कर्म एवं वासना पर विजय प्राप्ति के कारण इन्हें 'जिन' कहा गया, जिसका शाब्दिक अर्थ विजेता है। कैवल्य प्राप्ति के पश्चात् साधु-साध्वियों एवं श्रावक-श्राविकाओं के सम्मिलित तीर्थ की स्थापना करने के कारण इन्हें 'तीर्थंकर' भी कहा गया। जिनों एवं अन्य मुक्त आत्माओं में आन्तरिक दृष्टि से कोई भेद नहीं है। सामान्य मुक्त आत्माएं केवल स्वयं को ही मुक्त करती हैं, वे जिनों के समान धर्म प्रचारक नहीं होती।

विद्वान् २४ जिनों में केवल अन्तिम दो जिनों, पार्श्वनाथ एवं महावीर (या वर्धमान) को ही ऐतिहासिक मानते हैं। उत्तराध्ययनसूत्र (अध्याय २३) में पार्श्वनाथ और महावीर के दो शिष्यों, केसी और गौतम, के मध्य जैन संघ के सम्बन्ध में हुए वार्तालाप का उल्लेख[8] तथा महावीर की यह उक्ति कि 'जो कुछ पूर्व तीर्थंकर पार्श्व ने कहा है मैं वही कह रहा हूं[9]', पार्श्वनाथ की ऐतिहासिकता सिद्ध करते हैं।

२४ जिनों की प्राचीनतम सूची सम्प्रति समवायांगसूत्र (चौथा अंग) में प्राप्त होती है। इस सूची में ऋषभ, अजित, सम्भव, अभिनंदन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, सुविधि (पुष्पदन्त), शीतल, श्रेयांश, वासुपूज्य, विमल, अनंत, धर्म, शान्ति, कुंथु, अर, मल्लि, मुनिसुव्रत, नमि, नेमि, पार्श्व एवं वर्धमान के नाम हैं।[10] इस सूची को ही कालान्तर में

---

१ अंगविज्जा, सं० मुनिपुण्यविजय, बनारस, १९५७, पृ०५७ २ विण्टरनित्ज, एम०, पू०नि०, पृ० ४३३

३ वर्तमान कल्पसूत्र में तीन अलग-अलग ग्रन्थों को एक साथ संकलित किया गया है, जिन सबका कर्ता भद्रबाहु को नहीं स्वीकार किया जा सकता—विण्टरनित्ज, एम०, पू०नि०, पृ० ४६२

४ शाह, यू० पी०, 'बिगिनिंग्स ऑव जैन आइकानोग्राफी', सं०पु०प०, अं० ९, पृ० ३

५ पउमचरिय, भाग १, सं० एच० जैकोबी, वाराणसी, १९६२, पृ० ८

६ समवायांग सूत्र १८, पउमचरिय १.१-२, ३८-४२

७ हस्तीमल, जैन धर्म का मौलिक इतिहास, खं० १, जयपुर, १९७१, पृ० ४६-४७

८ जैकोबी, एच०, जैन सूत्रज, भाग २, सेक्रेड बुक्स ऑव दि ईस्ट, खं० ४५, दिल्ली, १९७३ (पु०मु०), पृ०११९-२९

९ व्याख्या प्रज्ञप्ति ५.९.२२७

१० जम्बुद्दीवे णं दीवे भारहे वासे इमीसे णं ओसप्पिणीए चउवीसं तित्थगरा होत्था, तं जहा—उसभ, अजिय, सम्भव, अभिनन्दण, सुमइ, पउमप्पह, सुपास, चन्दप्पह, सुविहिपुप्फदंत, सायल, सिज्जंस, वासुपुज्ज, विमल, अनन्त, धम्म, सन्ति, कुंथु, अर, मल्लि, मुनिसुव्वय, णमि, णेमि, पास, वद्धमाणोय। समवायांगसूत्र १५७

इसी रूप में स्वीकार कर लिया गया। भगवतीसूत्र (५वां अंग),[1] कल्पसूत्र,[2] चतुर्विंशतिस्तव (या लोगस्ससुत्त-भद्रबाहुकृत)[3] एवं पउमचरियं में[4] भी २४ जिनों की सूची प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त भगवतीसूत्र में मुनिसुव्रत, ज्ञाताधर्मकथाओं में नारी तीर्थंकर मल्लिनाथ[5] एवं कल्पसूत्र में ऋषभ, नेमि (अरिष्टनेमि), पार्श्व एवं महावीर[6] के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं के विस्तृत उल्लेख हैं। स्थानांगसूत्र (तीसरा अंग) में जिनों के वर्णों के सन्दर्भ में पद्मप्रभ, वासुपूज्य, चन्द्रप्रभ, पुष्पदन्त, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रत, अरिष्टनेमि एवं पार्श्व के उल्लेख हैं।[7] समवायांग, भगवती एवं कल्प सूत्रों और चतुर्विंशतिस्तव जैसे प्रारम्भिक ग्रन्थों में प्राप्त २४ जिनों की सूची के आधार पर यह कहा जा सकता है कि २४ जिनों की सूची ईसवी सन् के प्रारम्भ के पूर्व ही निर्धारित हो चुकी थी।

प्रारम्भिक जैन ग्रन्थों में जहां २४ जिनों की सूची एवं उनसे सम्बन्धित कुछ अन्य उल्लेख अनेकशः प्राप्त होते हैं, वहीं जिन मूर्तियों से सम्बन्धित उल्लेख केवल राजप्रश्नीय[8] एवं पउमचरियं[9] में हैं। मथुरा में कुषाण काल में जिन मूर्तियों का निर्माण हुआ। यहां से ऋषभ,[10] सम्भव,[11] मुनिसुव्रत,[12] नेमि[13], पार्श्व[14] एवं महावीर[15] जिनों की कुषाण-कालीन मूर्तियां प्राप्त होती हैं (चित्र १६, ३०, ३४)।[16]

शलाका-पुरुष

प्रारम्भिक ग्रंथों में २४ जिनों के अतिरिक्त अन्य शलाका[17] (या उत्तम) पुरुषों का भी उल्लेख है। जिनों सहित इनकी कुल संख्या तिरसठ है। स्थानांगसूत्र में उल्लेख है कि जम्बूद्वीप में प्रत्येक अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी युग में अर्हन्त

---

१ भगवतीसूत्र २०.८.५८–५९, १६, ५

२ कल्पसूत्र २, १८४–२०३

३ शाह, यू० पी०, पू०नि०, पृ० ३

४ पउमचरियं १.१-७, ५.१४५-४८ : चंद्रप्रभ एवं सुविधिनाथ की वंदना क्रमशः शशिप्रभ एवं कुसुमदंत नामों से है।

५ ग्रन्थ में १९वें जिन मल्लिनाथ को नारी रूप में निरूपित किया गया है। यह परम्परा केवल श्वेताम्बरों में ही मान्य है, क्योंकि दिगम्बर परम्परा में नारी को कैवल्य प्राप्ति की अधिकारिणी नहीं माना गया है—विण्टरनित्ज, एम०, पू०नि०, पृ० ४४७–४८

६ कल्पसूत्र १–१८३, २०४–२७ : ज्ञातव्य है कि मथुरा के कुषाण शिल्प में कल्पसूत्र में विस्तार से वर्णित ऋषभ, नेमि, पार्श्व एवं महावीर जिनों की ही सर्वाधिक मूर्तियां निर्मित हुईं।

७ स्थानांगसूत्र ५१

८ शर्मा, आर० सी०, पू०नि०, पृ० ४१

९ पउमचरियं ११.२–३, २८.३८–३९, ३३.८९

१० ऋषभ सदैव लटकती केशावलि से शोभित हैं (कल्पसूत्र १९५)। तीन उदाहरणों में मूर्ति लेखों में 'ऋषभ' नाम भी उत्कीर्ण है।

११ राज्य संग्रहालय, लखनऊ—जे १९; एक मूर्ति का उल्लेख यू० पी० शाह ने भी किया है, सं०पु०प०, अं०९, पृ०६

१२ राज्य संग्रहालय, लखनऊ—जे २०

१३ चार उदाहरणों में नेमि के साथ बलराम एवं कृष्ण आमूर्तित हैं और एक में (राज्य संग्रहालय, लखनऊ-जे ८) 'अरिष्टनेमि' उत्कीर्ण है।

१४ पार्श्व सप्त सर्पफणों के छत्र से युक्त हैं (पउमचरियं १.६)।

१५ पीठिका लेखों में 'वर्धमान' नाम से युक्त ६ महावीर मूर्तियां राज्य संग्रहालय, लखनऊ में संकलित हैं।

१६ ज्योतिप्रसाद जैन ने मथुरा से प्राप्त एवं कुषाण संवत् के छठें वर्ष (=८४ ई०) में तिथ्यंकित एक सुमतिनाथ (५वें जिन) मूर्ति का भी उल्लेख किया है—जैन, ज्योतिप्रसाद, दि जैन सोर्सेज ऑव दी हिस्ट्री ऑव ऐन्शण्ट इण्डिया, दिल्ली, १९६४, पृ० २६८

१७ वे महान् आत्माएं जिनका मोक्ष प्राप्त करना निश्चित है।

(जिन), चक्रवर्ती, बलदेव और वासुदेव उत्तम पुरुष उत्पन्न हुए ।[1] समवायांगसूत्र में २४ जिनों के साथ १२ चक्रवर्ती, ९ बलदेव, ९ वासुदेव और ९ प्रतिवासुदेव के उल्लेख हैं; पर उत्तम पुरुषों की संख्या ६३ के स्थान पर ५४ ही कही गई । ९ प्रतिवासुदेवों को उत्तम पुरुषों में नहीं सम्मिलित किया गया है ।[2] कल्पसूत्र में भी तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव एवं वासुदेव का उल्लेख है,[3] किन्तु यहां इनकी संख्या नहीं दी गई है ।

६३–शलाका-पुरुषों की पूरी सूची सर्वप्रथम पउमचरिय में प्राप्त होती है ।[4] इसमें २४ जिनों के अतिरिक्त १२ चक्रवर्ती[5] (भरत, सागर, मघवा, सनत्कुमार, शान्ति, कुंथु, अर, सुभूम, पद्म, हरिषेण, जयसेन, ब्रह्मदत्त), ९ बलदेव (अचल, विजय, भद्र, सुप्रभ, सुदर्शन, आनन्द, नन्दन, पद्म या राम, बलराम), ९ वासुदेव (त्रिपृष्ठ, द्विपृष्ठ, स्वयंभु, पुरुषोत्तम, पुरुषसिंह, पुरुष पुण्डरीक, दत्त, नारायण या लक्ष्मण, कृष्ण), और ९ प्रतिवासुदेव (अश्वग्रीव, तारक, मेरक, निशुम्भ, मधुकैटभ, बलि, प्रह्लाद, रावण, जरासन्ध) सम्मिलित हैं । इस सूची को ही कालान्तर में बिना किसी परिवर्तन के स्वीकार किया गया । जैन शिल्प में सभी ६३–शलाका-पुरुषों का निरूपण कभी भी लोकप्रिय नहीं रहा । कुषाणकालीन जैन शिल्प में केवल कृष्ण और बलराम निरूपित हुए । इन्हें नेमिनाथ के पार्श्वों में आमूर्तित किया गया । मध्ययुग में कृष्ण एवं बलराम के अतिरिक्त राम और भरत चक्रवर्ती (चित्र ७०) के भी मूर्त चित्रणों के कुछ उदाहरण प्राप्त होते हैं । पउमचरिय में राम-रावण और भरत चक्रवर्ती की कथा का विस्तृत वर्णन है ।

कृष्ण-बलराम

कृष्ण-बलराम २२ वें जिन नेमिनाथ के चचेरे भाई है । यहां हिन्दू धर्म से भिन्न कृष्ण-बलराम को सर्वशक्तिमान देवता के रूप में न मानकर बल, ज्ञान एवं बुद्धि में नेमिनाथ से हीन बताया गया है ।[6] उत्तराध्ययनसूत्र (ल० चौथी-तीसरी शती ई० पू०)[7] के रथनेमि शीर्षक २२ वें अध्याय में कृष्ण से सम्बन्धित कुछ उल्लेख है ।[8] सौर्यपुर नगर में वसुदेव और समुद्रविजय दो शक्तिशाली राजकुमार थे । वसुदेव की रोहिणी और देवकी नाम की दो पत्नियां थीं, जिनसे क्रमशः राम (बलराम) और केशव (कृष्ण) उत्पन्न हुए । समुद्रविजय की पत्नी शिवा से अरिष्टनेमि (नेमिनाथ या रथनेमि) उत्पन्न हुए । केशव ने एक शक्तिशाली शासक की पुत्री राजीमती के साथ अरिष्टनेमि का विवाह निश्चित किया । पर विवाह के पूर्व ही रथनेमि ने रैवतक (गिरनार) पर्वत पर दीक्षा ग्रहण की, जहां राम और केशव ने अरिष्टनेमि के प्रति श्रद्धा व्यक्त की । उत्तराध्ययनसूत्र के विवरण को ही कालान्तर में सातवीं शती ई० के बाद के जैन ग्रन्थों (हरिवंशपुराण, महापुराण —पुष्पदंतकृत, त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र) में विस्तार से प्रस्तुत किया गया । नायाधम्मकहाओ में भी कृष्ण से सम्बन्धित उल्लेख हैं, जो मुख्यतः पाण्डवों की कथा से सम्बन्धित है ।[9] अन्तगड्दसाओ (८वां अंग) में कृष्ण से सम्बन्धित उल्लेख द्वारवती

---

१ स्थानांगसूत्र २२

२ ग्रन्थ में केवल २४ जिनो एवं १२ चक्रवर्तियों की ही सूची है । अन्य के लिए मात्र इतना उल्लेख है कि त्रिपृष्ठ से कृष्ण तक ९ वासुदेव और अचल से राम तक नौ बलदेव होंगे । समवायांगसूत्र १३२, १५८, २०७

३ कल्पसूत्र १७ : ''''अरहन्ता वा चक्कवट्टी वा बलदेवा वा वासुदेवा''''''''''''।

४ पउमचरिय ५. १४५–५७

५ १२ चक्रवर्तियों की सूची में तीन (शान्ति, कुंथु, अर) जिन भी सम्मिलित हैं । ये जिन एक ही भव में जिन और चक्रवर्ती दोनों हुए ।

६ वैशालीय, महेन्द्रकुमार, 'कृष्ण इन दि जैन कैनन,' भारतीय विद्या, खं० ८, अं० ९–१०, पृ० १२३

७ दोशी, बेचरदास, जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग १, वाराणसी, १९६६, पृ० ५५

८ जैकोबी, एच०, जैन सूत्रज, भा० २, पृ० ११२–१९; विण्टरनिरज, एम०, हु०नि०, पृ० ४६९

९ नायाधम्मकहाओ ६८

(द्वारका) नगर के विवरण के सन्दर्भ में प्राप्त होता है, जहां के शासक कृष्ण-वासुदेव थे।[1] ग्रन्थ में कृष्ण द्वारा अरिष्टनेमि के प्रति श्रद्धा व्यक्त करने और अरिष्टनेमि की उपस्थिति में ही दीक्षा लेने के उल्लेख हैं।

इन प्रारम्भिक उल्लेखों से स्पष्ट है कि ईसवी सन् के पूर्व ही कृष्ण-बलराम को जैन धर्म में सम्मिलित कर लिया गया था।[2] जैसा पूर्व में उल्लेख है मथुरा की कुछ कुषाणकालीन नेमिनाथ मूर्तियों में भी कृष्ण-बलराम आमूर्तित हैं।[3]

लक्ष्मी

जिनों की माताओं द्वारा देखे शुभ स्वप्नों के उल्लेख के सन्दर्भ में कल्पसूत्र में श्री लक्ष्मी का उल्लेख है। शीर्ष भाग में दो गजों से अभिषिक्त श्री लक्ष्मी को पद्मासीन और दोनो करों में पद्म धारण किये निरूपित किया गया है।[4] भगवतीसूत्र में एक स्थल पर लक्ष्मी की मूर्ति का उल्लेख है।[5] जैन शिल्प में लक्ष्मी का मूर्त चित्रण ल० नवीं शती ई० के बाद ही लोकप्रिय हुआ जिसके उदाहरण खजुराहो, देवगढ़, ओसिया, कुंभारिया, दिलवाड़ा आदि स्थलों से प्राप्त होते हैं।

सरस्वती

प्रारम्भिक जैन ग्रन्थों में सरस्वती का उल्लेख मेधा एवं बुद्धि के देवता या श्रुत देवता के रूप में प्राप्त होता है। भगवतीसूत्र[6] एवं पउमचरिय[7] में बुद्धि देवी का उल्लेख श्री, ह्री, धृति, कीर्ति और लक्ष्मी के साथ किया गया है। अंगविज्जा में मेधा एवं बुद्धि के देवता के रूप में सरस्वती का उल्लेख है।[8] जिनों की शिक्षाएं जिनवाणी आगम या श्रुत के रूप में जानी जाती थी, और सम्भवतः इसी कारण जैन आगमिक ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती की भुजा में पुस्तक के प्रदर्शन की परम्परा प्रारम्भ हुई।[9] जैन शिल्प में सरस्वती की प्राचीनतम ज्ञात मूर्ति कुषाण काल (१३२ ई०) की है,[10] जिसमे देवी की एक भुजा में पुस्तक प्रदर्शित है। सरस्वती का लाक्षणिक स्वरूप आठवीं शती ई० के बाद के जैन ग्रन्थों में विवेचित है। जैन शिल्प में यक्षी अम्बिका एवं चक्रेश्वरी के बाद सरस्वती ही सर्वाधिक लोकप्रिय रहीं।

इन्द्र

जैन परम्परा में इन्द्र[11] को जिनों का प्रधान सेवक स्वीकार किया गया है। स्थानांगसूत्र में नामेन्द्र, स्थापनेन्द्र, द्रव्येन्द्र, ज्ञानेन्द्र, दर्शनेन्द्र, चारित्रेन्द्र, देवेन्द्र, असुरेन्द्र और मनुष्येन्द्र आदि कई इन्द्रों के उल्लेख हैं।[12] ग्रन्थ में यह भी उल्लेख है कि जिनों के जन्म, दीक्षा और कैवल्य प्राप्ति के अवसरों पर देवेन्द्र का शीघ्रता से पृथ्वी पर आगमन होता है।[13] कल्पसूत्र में वज्र धारण करनेवाले और ऐरावत गज पर आरूढ़ शक्र का देवताओं के राजा के रूप में उल्लेख है।[14] पउमचरिय में

१ विण्टरनित्ज, एम०, पू०नि०, पृ० ४५०–५१; अन्तगड्दसाओ, सं० एल० डी० बर्नेट, वाराणसी, १९७३ (पु० मु०), पृ० १२ और आगे

२ जैकोबी, एच, जैन सूत्रज, भाग १, प्रस्तावना, पृ० ३१, पा० टि० २

३ श्रीवास्तव, वी० एन०, 'सम इन्टरेस्टिंग जैन स्कल्पचर्स इन दि स्टेट म्यूजियम, लखनऊ,' सं०पु०प०, अं० ९, पृ० ४५–५२

४ कल्पसूत्र ३७

५ भगवतीसूत्र ११.११.४३०

६ वही, ११.११.४३०

७ पउमचरिय ३.५९

८ अंगविज्जा—एकाणंसा सिरी बुद्धी मेधा कित्ती सरस्सती एवमादीयाओ उवलद्धव्वाओ भवन्ति : अध्याय ५८, पृ० २२३ और ८२

९ जैन, ज्योतिप्रसाद, 'जेनिसिस ऑव जैन लिट्रेचर ऐण्ड दि सरस्वती मूवमेण्ट', सं०पु०प०, अं० ९, पृ० ३०–३३

१० राज्य संग्रहालय, लखनऊ—जे२४

११ जैन ग्रन्थों में इन्द्र का देवेन्द्र और शक्र नामों से भी उल्लेख है।

१२ स्थानांगसूत्र १

१३ वही, सू० १३

१४ कल्पसूत्र १४

इन्द्र द्वारा जिनों के जन्म अभिषेक और समवसरण के निर्माण के उल्लेख हैं।[1] जिनों के जीवनवृत्तों[2] के अंकन में ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० में इन्द्र को आकृतित किया गया। इसके उदाहरण ओसिया, कुंभारिया और विमलवसही के जैन मन्दिरों में प्राप्त होते हैं।

नैगमेषी

जैन देवकुल में अजमुख नैगमेषी (या हरिनैगमेषी या हरिणैगमेषी) इन्द्र के पदाति सेना के सेनापति हैं।[3] अन्तगडदसाओ एवं कल्पसूत्र में नैगमेषी को बालकों के जन्म से भी सम्बन्धित बताया गया है। कल्पसूत्र में उल्लेख है कि शक्रेन्द्र ने महावीर के भ्रूण को ब्राह्मणी देवानन्दा के गर्भ से क्षत्रियाणी त्रिशला के गर्भ में स्थापित करने का कार्य अपनी पदाति सेना के अधिपति हरिणैगमेषी देव को दिया।[4] अन्तगडदसाओ में पुत्र प्राप्ति के लिए हरिणैगमेषी के पूजन और प्रसन्न होकर देवता द्वारा गले का हार देने के उल्लेख हैं।[5] उपर्युक्त परम्परा के कारण ही जैन शिल्प में नैगमेषी के साथ लम्बा हार एवं बालक प्रदर्शित हुए। मथुरा से नैगमेषी की कई कुषाण कालीन स्वतन्त्र मूर्तियां मिली हैं। मथुरा से प्राप्त महावीर के गर्भापहरण के दृश्य का चित्रण करने वाले एक कुषाण कालीन फलक[6] पर भी अजमुख नैगमेषी निरूपित है (चित्र ३९)। लेख में 'भगवा नेमेसो' उत्कीर्ण है। कुषाण युग के बाद नैगमेषी की स्वतन्त्र मूर्तियां नहीं प्राप्त होतीं। पर जिनों के जन्म से सम्बन्धित दृश्यों में नैगमेषी का अंकन श्वेताम्बर स्थलों पर आगे भी लोकप्रिय रहा।

यक्ष

प्राचीन भारतीय साहित्य में यक्षों के अनेक उल्लेख हैं। ये उपकार और अपकार के कर्ता माने गये हैं। कुमारस्वामी के अनुसार यक्षों और देवों के बीच कोई विशेष भेद नहीं था और यक्ष शब्द देव का समानार्थी था।[7] पवाया की माणिभद्र यक्ष मूर्ति (पहली शती ई० पू०) भगवान् के रूप में पूजित थी। जैन ग्रन्थों में भी यक्षों का अधिकांशतः देव के रूप में उल्लेख है।[8] उत्तराध्ययनसूत्र में उल्लेख है कि संचित सत्कर्मों के प्रभाव को भोगने के बाद यक्ष पुनः मनुष्य रूप में जन्म लेते हैं।[9]

जैन साहित्य में भी यक्षों के प्रचुर उल्लेख हैं।[10] भगवतीसूत्र में वैश्रमण के प्रति पुत्र के समान आज्ञाकारी १३ यक्षों की सूची दी है।[11] ये पुन्नभद्द, माणिभद्द, शालिभद्द, सुमणभद्द, चक्क, रक्ख, पुण्णरक्ख, सव्वन (सर्वण्ह ?), सव्वजस, समिद्ध, अमोह, असंग और सव्वकाम हैं। तत्त्वार्थसूत्र[12] (उमास्वातिकृत) में भी एक स्थल पर १३ यक्षों की सूची है।[13] इसमें पूर्णभद्र, माणिभद्र, सुमनोभद्र, श्वेतभद्र, हरिभद्र, व्यतिपातिकभद्र, सुभद्र, सर्वतोभद्र, मनुष्ययक्ष, वनाधिपति, वनाहार, रूपयक्ष और यक्षोतम के नाम हैं।[14]

---

१ पउमचरिय ३.७६–८८ २ जन्म, दीक्षा एवं कैवल्य प्राप्ति से सम्बन्धित दृश्यांकन।

३ हिन्दू देवकुल में स्कन्द देवताओं के सेनापति हैं—विस्तार के लिए द्रष्टव्य, अग्रवाल, वी० एस०, 'ए नोट आन दि गाड नैगमेष', ज०यू०पी०हि०सो०, खं० २०, भाग १–२, पृ० ६८–७३; शाह, यू० पी०, 'हरिनैगमेषिन्', ज०इं०सो०ओ०आ०, खं० १९, पृ० १९–४१

४ कल्पसूत्र २०–२८ ५ अन्तगडदसाओ, पृ०६६–६७

६ राज्य संग्रहालय, लखनऊ–जे ६२६ ७ कुमारस्वामी, यक्षज, भाग १, दिल्ली, १९७१ (पु० मु०), पृ०३६-३७

८ वही, पृ० ११, २८ ९ उत्तराध्ययनसूत्र ३.१४–१८

१० शाह, यू० पी०, 'यक्षज वरशिप इन अर्ली जैन लिट्रेचर', ज०ओ०इं०, खं० ३, अं० १, पृ० ५४-७१

११ भगवतीसूत्र ३.७.१६८; कुमारस्वामी, पू०नि०, पृ० १०-११

१२ तत्त्वार्थसूत्र, सं० सुखलाल संघवी, बनारस, १९५२, पृ० ११९ १३ वही, पृ० १४६

१४ तत्त्वार्थसूत्र की सूची के प्रथम तीन यक्षों के नाम भगवतीसूत्र में भी हैं।

जैन आगमों में विभिन्न स्थलों के चैत्यों के उल्लेख हैं जहां अपने भ्रमण के दौरान महावीर विश्राम करते थे।[१] इनमें दूतिपलाश, कोष्ठक, चन्द्रावतरण, पूर्णभद्र, जम्बूक, बहुपुत्रिका, गुणशिल, बहुशालक, कुण्डियायन, नन्दन, पुष्पवती, अंगमन्दिर, प्राप्तकाल, शंखवन, छत्रपलाश आदि प्रमुख हैं।[२] इस सूची में आये पूर्णभद्र, बहुपुत्रिका एवं गुणशिल जैसे चैत्य निश्चित ही यक्ष चैत्य थे क्योंकि आगम ग्रन्थों में ही अन्यत्र इनका यक्षों के रूप में उल्लेख है। जैन ग्रन्थों में यक्ष जिनों के चामरधर सेवकों के रूप में भी निरूपित हैं।[३]

जैन ग्रन्थों में माणिभद्र और पूर्णभद्र यक्षों एवं बहुपुत्रिका यक्षी को विशेष महत्व दिया गया। माणिभद्र और पूर्णभद्र यक्षों को व्यंतर देवों के यक्ष वर्ग का इन्द्र बताया गया है। इन यक्षों ने चम्पा में महावीर के प्रति श्रद्धा व्यक्त की थी।[४] अंतगड्दसाओ और औपपातिकसूत्र में चम्पानगर के पुण्णभद्द (पूर्णभद्र) चैत्य का उल्लेख है।[५] पिण्डनिर्युक्ति में सामिल्लनगर के बाहर स्थित माणिभद्र यक्ष के आयतन का उल्लेख है।[६] पउमचरिय में पूर्णभद्र और माणिभद्र यक्षों का शान्तिनाथ के सेवक रूप में उल्लेख है।[७] भगवतीसूत्र में विशाला (उज्जैन या वैशाली)[८] के समीप स्थित बहुपुत्रिका के मन्दिर का उल्लेख है। ग्रन्थ में बहुपुत्रिका को माणिभद्र और पूर्णभद्र यक्षेन्द्रों की चार प्रमुख रानियों में एक बताया गया है।[९] यू० पी० शाह की धारणा है कि जैन देवकुल के प्राचीनतम यक्ष-यक्षी, सर्वानुभूति (या मातंग या गोमेध)[१०] और अम्बिका की कल्पना निश्चित रूप से माणिभद्र-पूर्णभद्र यक्ष और बहुपुत्रिका यक्षी के पूजन की प्राचीन परम्परा पर आधारित है।[११] जहां बौद्ध धर्म में जंभल (कुबेर) और हारिती की मूर्तियां कुषाण काल में निर्मित हुई, वहीं जैन धर्म में सर्वानुभूति और अम्बिका का चित्रण गुप्त युग के बाद ही लोकप्रिय हुआ। शिल्प में सर्वानुभूति यक्ष का तुन्दीलापन प्रारम्भिक यक्ष मूर्तियों की तुन्दीली आकृतियों से सम्बन्धित रहा है।[१२] जैन यक्षी अम्बिका के साथ दो पुत्रों का प्रदर्शन बहुपुत्रिका यक्षी के नाम से प्रभावित रहा हो सकता है।[१३]

विद्यादेवियां

प्रारम्भिक जैन ग्रन्थों में विद्याओं से सम्बन्धित अनेक उल्लेख हैं।[१४] पर जैन शिल्प में ल० आठवीं-नवीं शती ई० से ही इनका चित्रण प्राप्त होता है। पूर्ण विकसित विद्याओं के नामों एवं लाक्षणिक स्वरूपों की धारणा प्रारम्भिक ग्रन्थों में ही प्राप्त होती है। आगम ग्रन्थों में विद्याओं का आचरण जैन आचार्यों के लिए वर्जित था। पर कालान्तर में विद्यादेवियां ग्रन्थ एवं शिल्प की सर्वाधिक लोकप्रिय विषयवस्तु बन गईं। जैन परम्परा में इन विद्याओं की संख्या ४८ हजार तक बतायी गयी है।[१५]

बौद्ध एवं जैन साहित्य बुद्ध एवं महावीर के समय में जादू, चमत्कार, मन्त्रों एवं विद्याओं का उल्लेख करते हैं।[१६] औपपातिकसूत्र के अनुसार महावीर के अनुयायी थेरों (स्थविरों) को विज्जा (विद्या) और मंत (मन्त्र) का ज्ञान

---

१ आगम ग्रन्थों में कहीं भी महावीर द्वारा जिन मूर्ति के पूजन या जिन मन्दिर में विश्राम का उल्लेख नहीं है—शाह, यू० पी०, 'बिगिनिंग्स ऑव जैन आइकानोग्राफी', सं०पु०प०, अं० ९, पृ० २

२ शाह, यू० पी०, 'यक्षज वरशिप इन अर्ली जैन लिट्रेचर', ज०ओ०इं०, खं० ३, अं० १, पृ० ६२-६३

३ वही, पृ० ६०-६४

४ वही, पृ० ६०-६१

५ अंतगड्दसाओ, पृ० १, पा० टि० २; औपपातिकसूत्र २

६ पिण्डनिर्युक्ति ५.२४५

७ पउमचरिय ६७.२८-४९

८ शाह, यू० पी०, पू०नि०, पृ० ६१, पा० टि० ४३

९ भगवतीसूत्र १८.२, १०.५

१० प्रारम्भ में यक्ष का कोई एक नाम पूर्णतः स्थिर नहीं हो सका था।

११ शाह, यू० पी०, पू०नि०, पृ० ६१-६२

१२ सर्वानुभूति यक्ष की भुजा में धन के थैले का प्रदर्शन सम्भवतः प्रारम्भिक यक्षों के व्यापारियों के मध्य लोकप्रियता (पचाया मूर्ति) से सम्बन्धित हो सकता है—कुमारस्वामी, ए० के०, पू०नि०, पृ० २८

१३ शाह, यू० पी०, पू०नि०, पृ० ६५-६६

१४ विस्तार के लिए द्रष्टव्य, शाह, यू० पी०, 'आइकानोग्राफी ऑव दि सिक्सटीन जैन महाविद्याज', ज०इं०सो०ओ०आ०, खं० १५, पृ० ११४-७७

१५ वही, पृ० ११४-११७

१६ वही, पृ० ११४

था ।[1] नायाधम्मकहाओ में उत्पतनी (उप्पयनी) एवं चोरों की सहायक विद्याओं का उल्लेख है । ग्रन्थ में महावीर के प्रमुख शिष्य सुधर्मा को मंत्र एवं विद्या का ज्ञाता बताया गया है ।[2] स्थानांगसूत्र में जांगोलि एवं मातंग विद्याओं के उल्लेख हैं ।[3] सूत्रकृतांगसूत्र के पापश्रुतों में वैताली, अर्धवैताली, अवस्वपनी, तालुग्घादणी, श्वापाकी, सोवारी, कलिंगी, गौरी, गान्धारी, अवेदनी, उत्पतनी एवं स्तम्भनी आदि विद्याओं के उल्लेख हैं ।[4] सूत्रकृतांग के गौरी और गान्धारी विद्याओं को कालान्तर में १६ महाविद्याओं की सूची में सम्मिलित किया गया ।

पउमचरिय में ऋषभदेव के पौत्र नमि और विनमि को धरणेन्द्र द्वारा बल एवं समृद्धि की अनेक विद्याएं प्रदान किये जाने का उल्लेख है ।[5] ग्रन्थ में विभिन्न स्थलों पर प्रज्ञप्ति, कौमारी, लघिमा, वज्रोदरी, वरुणी, विजया, जया, वाराही, कौबेरी, योगेश्वरी, चण्डाली, शंकरी, बहुरूपा, सर्वकामा आदि विद्याओं के नामोल्लेख हैं ।[6] एक स्थल पर महालोचन देव द्वारा पद्म (राम) को सिंहवाहिनी विद्या और लक्ष्मण को गरुड़ विद्या दिये जाने का उल्लेख है ।[7] कालान्तर में उपर्युक्त विद्याओं से गरुडवाहिनी अप्रतिचक्रा और सिंहवाहिनी महामानसी महाविद्याओं की धारणा विकसित हुई ।

लोकपाल

पउमचरिय में लोकपालों से घिरे इन्द्र के ऐरावत गज पर आरूढ़ होने का उल्लेख है ।[8] इन्द्र ने ही शशि (सोम) की पूर्व, वरुण की पश्चिम, कुबेर की उत्तर और यम की दक्षिण दिशा में स्थापना की ।[9]

अन्य देवता

आगम ग्रन्थों में देवताओं को भवनवासी (एक स्थल पर निवास करनेवाले), व्यंतर या वाणमन्तर (भ्रमणशील), ज्योतिष्क (आकाशीय: नक्षत्र से सम्बन्धित) एवं वैमानिक या विमानवासी (स्वर्ग के देव), इन चार वर्गों में विभाजित किया गया है ।[10] पहले वर्ग में १०, दूसरे में ८, तीसरे में ५ और चौथे में ३० देवता हैं । देवताओं का यह विभाजन निरन्तर मान्य रहा । पर शिल्प में इन्द्र, यक्ष, अग्नि, नवग्रह एवं कुछ अन्य का ही चित्रण प्राप्त होता है ।

जैन ग्रन्थों में ऐसे देवों के भी उल्लेख हैं जिनकी पूजा लोक परम्परा में प्रचलित थी, और जो हिन्दू एवं बौद्ध धर्मों में भी लोकप्रिय थे ।[11] इनमें रुद्र, शिव, स्कन्द, मुकुन्द, वासुदेव, वैश्रमण (या कुबेर), गन्धर्व, पितर, नाग, भूत, पिशाच, लोकपाल (सोम, यम, वरुण, कुबेर), वैश्वानर (अग्निदेव) आदि देव, और श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, अज्जा (पार्वती या आर्या या चण्डिका), कोट्टकिरिया (महिषासुरवधिका) आदि देवियां प्रमुख हैं ।[12]

प्रारम्भिक ग्रन्थों के अध्ययन से स्पष्ट है कि पांचवीं शती ई० के अन्त तक जैन देवकुल के मूल स्वरूप का निर्धारण काफी कुछ पूरा हो चुका था । इन ग्रन्थों में जिनों, शलाका-पुरुषों, यक्षों, विद्याओं, सरस्वती, लक्ष्मी, कृष्ण-बलराम, नैगमेषी एवं लोक धर्म में प्रचलित देवों की स्पष्ट धारणा प्राप्त होती है ।

---

१ औपपातिकसूत्र १६

२ नायाधम्मकहाओ, सं० पी० एल० वैद्य, १·४, पृ० १, १४·१०४, पृ० १५२, १६·१२९, पृ० १८९, १८·१४१, पृ० २०९

३ स्थानांगसूत्र ८·३·६११, ९·३·६७८; पउमचरिय ७·१४२

४ सूत्रकृतांगसूत्र २·२·१५

५ पउमचरिय ३·१४४–४९

६ शाह, यू० पी०, पूर्वनि०, पृ० ११७

७ पउमचरिय ५९·८३–८४

८ पउमचरिय ७·२२

९ पउमचरिय ७·४७

१० समवायांगसूत्र १५०, तत्त्वार्थसूत्र, पृ० १३७–३८, आचारांगसूत्र २·१५·१८

११ शाह, यू० पी०, 'बिगिनिंग्स ऑव जैन आइकानोग्राफी', सं०पु०प०, अं० ९, पृ० १०

१२ भगवतीसूत्र ३·१·१३४; अंगविज्जा, अध्याय ५१ (भूमिका—वी० एस० अग्रवाल, पृ० ७८)

(ख) परवर्ती काल (छठीं से १२ वीं शती ई० तक)

परवर्ती काल में विवरणों एवं लाक्षणिक विशेषताओं की दृष्टि से जैन देवकुल का विकास हुआ। इस काल में जैन देवकुल के विकास के अध्ययन के लिए छठीं से बारहवीं शती ई० या आवश्यकतानुसार उसके बाद[1] की सामग्री का उपयोग किया गया है। आगम ग्रन्थों में प्रतिपादित विषयों को संक्षेप या विस्तार से समझाने के लिए छठीं-सातवीं शती ई० में निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि और टीका ग्रन्थों की रचना की गई जिन्हें आगम का अंग माना गया।[2]

आठवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य ६३-शलाका-पुरुषों के जीवन से सम्बन्धित कई श्वेताम्बर और दिगम्बर ग्रन्थों की रचना की गई। **कहावली** (भद्रेश्वरकृत-श्वेताम्बर) और **तिलोयपण्णत्ति** (यतिवृषभकृत-दिगम्बर) ६३-शलाका-पुरुषों के जीवन से सम्बन्धित ल० आठवीं शती० ई० के दो प्रारम्भिक ग्रन्थ है। ६३-शलाका-पुरुषों से सम्बन्धित अन्य प्रमुख ग्रन्थ **महापुराण** (जिनसेन एवं गुणभद्र कृत–९ वीं शती ई०), **तिसट्ठि-महापुरिसगुणलंकार** (पुष्पदन्तकृत–९६५ ई०) एवं **त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र**[3] (हेमचन्द्रकृत–१२ वीं शती ई० का उत्तरार्ध) है।[4]

ल० छठीं शती ई० से चरित एवं पुराण ग्रन्थों की रचना भी प्रारम्भ हुई। श्वेताम्बर रचनाओं को 'चरित' और दिगम्बर रचनाओं को 'पुराण' एवं 'चरित' दोनों की संज्ञा दी गई। इनमें किसी जिन या शलाका-पुरुष का जीवन चरित विस्तार से वर्णित है। मुख्यतः ऋषभ, सुमति, सुपार्श्व, विमल, धर्म, वासुपूज्य, शान्ति, नेमि, पार्श्व एवं महावीर जिनों के चरित ग्रन्थ प्राप्त होते हैं।[5] इनके अतिरिक्त **चतुर्विंशतिका** (बप्पभट्टिसूरिकृत–७४३–८३८ ई०), **निर्वाणकलिका** (ल०११ वीं-१२वीं शती ई०),**प्रतिष्ठासारसंग्रह** (१२वीं शती ई०),**मन्त्राधिराजकल्प** (ल०१२ वीं शती ई०), **त्रिषष्टिशलाका-पुरुषचरित्र**, **चतुर्विंशति-जिन-चरित्र** (अमरचन्दसूरि–१२४१ ई०), **प्रतिष्ठासारोद्धार** (१३ वीं शती ई० का पूर्वार्ध), **प्रतिष्ठा-तिलकम्** (१५४३ ई०) एवं **आचारदिनकर** (१४१२ ई०) जैसे प्रतिमा-लाक्षणिक ग्रन्थों की भी रचना हुई, जिनमें प्रतिमा-निरूपण से सम्बन्धित विस्तृत उल्लेख हैं। सभी उपलब्ध जैन लाक्षणिक ग्रन्थों की रचना गुजरात और राजस्थान में हुई।

देवकुल में वृद्धि और उसका स्वरूप

ल० छठीं से दसवीं शती ई० के मध्य का संक्रमण काल अन्य धर्मों एवं सम्बधित कलाओं के समान जैन धर्म एवं कला में भी नवीन प्रवृत्तियों एवं तान्त्रिक प्रभाव का युग रहा है। तान्त्रिक प्रभाव के परिणामस्वरूप जैन धर्म में देवकुल के देवों की संख्या और उनके धार्मिक कृत्यों में तीव्रगति से वृद्धि और परिवर्तन हुआ। विभिन्न लाक्षणिक ग्रन्थों की रचना के कारण कला में परम्परा के निश्चित निर्वाह की बाध्यता से एक यांत्रिकता सी आ गई।[6] श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों सम्प्रदायों में जैन देवकुल का विकास मूलतः समरूप रहा।[7] परवर्ती युग में जैन देवकुल में २४ जिन एवं उनके यक्ष-यक्षी युगल, ६३-शलाका-पुरुष, १६ महाविद्या, अष्ट-दिक्पाल, नवग्रह, क्षेत्रपाल, गणेश, ब्रह्मशान्ति एवं कपर्दि यक्ष, ६४-योगिनी, शान्तिदेवी, जिनों के माता-पिता एवं बाहुबली आदि सम्मिलित थे। इसी समय इन देवों की स्वतन्त्र लाक्षणिक विशेषताएं भी निर्धारित हुईं।

जैन धर्म प्रारम्भ से ही व्यापारियों एवं व्यवसायियों में विशेष लोकप्रिय था। जिनों के पूजन से भौतिक या सांसारिक सुख-समृद्धि की प्राप्ति सम्भव न थी, जब कि व्यापारियों एवं सामान्य जनों में इसकी आकांक्षा बढ़ती जा रही

---

१ इनमें **आचारदिनकर** (१४१२ ई०), **रूपमण्डन** और **देवतामूर्तिप्रकरण** (१५ वी शती ई०), तथा **प्रतिष्ठातिलकम्** (१५४३ ई०) प्रमुख हैं।

२ जैन, हीरालाल, **भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान**, भोपाल, १९६२, पृ० ७२–७३

३ ग्रन्थ की रचना ११६० से ११७२ ई० के मध्य हुई–विण्टरनित्स, एम०, पू०नि०, पृ० ५०५

४ ८६८ ई० के **चउपन्नमहापुरिसचरिय** (शीलांकाचार्यकृत) में ५४ महापुरुषों का ही चरित्र वर्णित है।

५ विण्टरनित्स, एम०, पू०नि०, पृ० ५१०–१७

६ स्ट०जै०आ०, पृ० १९

७ केवल देवों के प्रतिमा लाक्षणिक स्वरूपों के सन्दर्भ में भिन्नता प्राप्त होती है।

थी। उपर्युक्त स्थिति में व्यापारियों एवं सामान्यजनों में जैन धर्म की लोकप्रियता बनाये रखने के लिए ही सम्भवतः जैन देवकुल में यक्ष-यक्षी युगलों एवं महाविद्याओं को महत्ता प्राप्त हुई जिनकी आराधना से भौतिक सुख की प्राप्ति सम्भव थी।

जिन या तीर्थंकर

धर्मतीर्थ की स्थापना करने वाले तीर्थंकर उपास्य देवों में सर्वोच्च हैं। हेमचन्द्र ने अभिधानचिन्तामणि में उन्हें देवाधिदेव कहा है।[1] विभिन्न पुराणों एवं चरित ग्रन्थों में जिनों के जीवन से सम्बन्धित घटनाओं का विस्तार से उल्लेख है।[2] गुजरात और राजस्थान[3] के ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० के मन्दिरों के वितानों, वेदिकाबन्धों एवं स्वतन्त्र पट्टों पर ऋषभ, शान्ति, मुनिसुव्रत, नेमि, पार्श्व एवं महावीर जिनों के जीवन की घटनाओं, मुख्यतः पंचकल्याणकों[4] को विस्तार से उत्कीर्ण किया गया (चित्र १२-१४, २२, २९, ३९-४१)।

ल० आठवीं-नवीं शती ई० तक जिनों के लांछनों का निर्धारण पूर्ण हो गया। तिलोयपण्णत्ति[5] एवं प्रवचनसारोद्धार[6] में जिन लांछनों की प्राचीनतम सूची प्राप्त होती है।[7] लांछन-युक्त प्राचीनतम जिन मूर्तियां गुप्तकाल की हैं। ये मूर्तियां राजगिर (नेमिनाथ)[8] और भारत कला भवन, वाराणसी (क्र० १६१-महावीर)[9] की हैं (चित्र ३५)। आठवीं शती ई० के बाद की जिन मूर्तियों में लांछनों का नियमित अंकन प्राप्त होता है।

यक्ष-यक्षी

ल० छठीं शती ई० में जिनों के साथ यक्ष-यक्षी युगलों (शासनदेवताओं) को सम्बद्ध करने की धारणा विकसित हुई।[10] ये यक्ष-यक्षी जिनों के सेवक देव के रूप में संघ की रक्षा करते हैं।[11] यक्ष-यक्षी युगल से युक्त प्राचीनतम जिन मूर्ति छठीं शती ई० की है।[12] अकोटा (गुजरात) से प्राप्त इस ऋषभ मूर्ति में यक्ष सर्वानुभूति (या कुबेर) और यक्षी अम्बिका हैं। ल० आठवीं-नवीं शती ई० तक २४ जिनों के स्वतन्त्र यक्ष-यक्षी युगलों की सूची निर्धारित हो गयी।[13] यक्ष-यक्षी युगलों की प्रारम्भिक सूची तिलोयपण्णत्ति[14] (दिगम्बर), कहावली[15] (श्वेताम्बर) एवं प्रवचनसारोद्धार (पवयणसारुद्धार-श्वेताम्बर)[16] में प्राप्त होती है। तिलोयपण्णत्ति की २४-यक्ष-यक्षियों की सूची इस प्रकार है :

---

१ अभिधानचिन्तामणि : देवाधिदेवकाण्ड २४-२५ २ विण्टरनित्ज, एम०, पू०नि०, पृ० ५१०-१७

३ ये चित्रण ओसिया की देवकुलिकाओं, जालोर के पार्श्वनाथ मन्दिर, विमलवसही, लूणवसही और कुंभारिया के शान्तिनाथ एवं महावीर मन्दिरों पर हैं।

४ च्यवन (जन्म के पूर्व), जन्म, दीक्षा, कैवल्य और निर्वाण।

५ तिलोयपण्णत्ति ४.६०४-६०५ ६ प्रवचनसारोद्धार ३८१-८२

७ इसके पूर्व केवल आवश्यक निर्युक्ति में ही ऋषभ के शरीर पर वृषभ चिह्न का उल्लेख है-शाह,यू०पी०, 'बिगिनिंग्स ऑव जैन आइकानोग्राफी', सं०पु०प०, अं ९, पृ० ६

८ चन्दा, आर० पी०, 'जैन रिमेन्स ऐट राजगिर', आ०स०इं०ऐ०रि०, १९२५-२६, पृ० १२५-२६

९ शाह, यू० पी०, 'ए फ्यू जैन इमेजेज इन दि भारत कला भवन, वाराणसी', छवि, १९७१, वाराणसी, पृ० २३४

१० शाह, यू० पी०, 'इण्ट्रोडक्शन ऑव शासनदेवताज इन जैन वरशिप', प्रो०ट्रां०ओ०कां०, २०वां अधिवेशन, १९५९, पृ० १४१-४३ ११ हरिवंशपुराण ६५.४३-४५; तिलोयपण्णत्ति ४.९३६

१२ शाह, यू० पी०, अकोटा ब्रोन्जेज, बम्बई, १९५९, पृ० २८-२९, फलक १०-११

१३ शाह, यू० पी०, 'आइकानोग्राफी ऑव चक्रेश्वरी, दि यक्षी ऑव ऋषभनाथ', ज०ओ०इं०, खं० २०, अं० ३, पृ० ३०६

१४ वही, पृ० ३०४; जैन, ज्योतिप्रसाद, पू०नि०, पृ० १३८

१५ शाह, यू० पी०, 'इण्ट्रोडक्शन ऑव शासनदेवताज इन जैन वरशिप', पृ० १४७-४८

१६ मेहता, मोहनलाल तथा कापड़िया, हीरालाल, जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग ४, वाराणसी, १९६८, पृ० १७४-७९

यक्ष—गोवदन, महायक्ष, त्रिमुख, यक्षेश्वर, तुम्बुरव, मातंग, विजय, अजित, ब्रह्म, ब्रह्मेश्वर, कुमार, षण्मुख, पाताल, किन्नर, किंपुरुष, गरुड, गन्धर्व, कुबेर, वरुण, भृकुटि, गोमेध, पार्श्व, मातंग और गुह्यक।[1]

यक्षियां—चक्रेश्वरी, रोहिणी, प्रज्ञप्ति, वज्रशृंखला, वज्रांकुशा, अप्रतिचक्रेश्वरी, पुरुषदत्ता, मनोवेगा, काली, ज्वालामालिनी, महाकाली, गौरी, गांधारी, वैरोटी, सोलसा, अनन्तमती, मानसी, महामानसी, जया, विजया, अपराजिता, बहुरूपिणी, कुष्माण्डी, पद्मा और सिद्धायिनी।[2]

प्रवचनसारोद्धार में प्राप्त २४ यक्ष-यक्षियों की सूची निम्नलिखित है :

यक्ष—गोमुख, महायक्ष, त्रिमुख, ईश्वर, तुंबरु, कुसुम, मातंग, विजय, अजित, ब्रह्मा, मनुज (ईश्वर), सुरकुमार, षण्मुख, पाताल, किन्नर, गरुड, गन्धर्व, यक्षेन्द्र, कूबर, वरुण, भृकुटि, गोमेध, वामन (पार्श्व) और मातंग।[3]

यक्षियां—चक्रेश्वरी, अजिता, दुरितारि, काली, महाकाली, अच्युता, शान्ता, ज्वाला, सुतारा, अशोका, श्रीवत्सा (मानवी), प्रवरा (चंडा), विजया (विदिता), अंकुशा, पन्नगा (कन्दर्पा), निर्वाणी, अच्युता (बला), धारणी, वैरोट्या, अच्छुप्ता (नरदत्ता), गांधारी, अम्बा, पद्मावती और सिद्धायिका।[4]

२४—यक्ष-यक्षी युगलों के लाक्षणिक स्वरूपों का विस्तृत निरूपण सर्वप्रथम ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० के ग्रन्थों, निर्वाणकलिका, त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र एवं प्रतिष्ठासारसंग्रह में प्राप्त होता है।[5] जैन शिल्प में केवल यक्षियों के ही सामूहिक उत्कीर्णन के प्रयास किये गये जिसका प्रथम उदाहरण देवगढ़ (ललितपुर, उ० प्र०) के शान्तिनाथ मन्दिर

---

१ गोवदणमहाजक्खा तिमुहो जक्खेसरो य तुंबुरओ।
मादंगविजयअजिओ बम्हो बम्हेसरो य कोमारो॥
छम्मुहओ पादालो किण्णरकिंपुरुसगरुडगंधव्वा।
तह य कुबेरो वरुणो भिउडीगोमेधपासमातंगा॥
गुज्झकओ इदि एदे जक्खा चउवीस उसहपहुदीणं।
तित्थयराणं पासे चेट्ठंते भत्तिसजुत्ता॥ तिलोयपण्णत्ति ४.९३४–३६

२ जक्खीओ चक्केसरिरोहिणीपण्णत्तिवज्जसिखलया।
वज्जंकुसा य अप्पदिचक्केसरिपुरिसदत्ता य॥
मणवेगाकालीओ तह जालामालिणी महाकाली।
गउरीगंधारीओ वेरोटी सोलसा अणंतमदी॥
माणसिमहमाणसिया जया य विजयापराजिदाओ य।
बहुरूपिणि कुम्भंडी पउमासिद्धायिणीओ त्ति॥ तिलोयपण्णत्ति ४.९३७–३९

३ जक्खो गोमुह महजक्ख तिमुह ईसरतुंबरु कुसुमो।
मायंगो विजया जिय बंभो मणुओ य सुर कुमारो॥
छमुह पायाल किन्नर गरुडो गंधव्व तह य जक्खिंदो।
कूबर वरुणो भिउडी गोमेहो वामण मायंगो॥ प्रवचनसारोद्धार ३७५–७६

४ देवी य चक्केसरी। अजिया दुरियारि काली महाकाली।
अच्चुय संता जाला। सुतारयाऽसोय सिरिवच्छा॥
पवर विजयां कुसा। पणत्ति निव्वाणी अच्चुया धरणी।
वइरोट्ट छुत्त गंधारि। अंब पउमावई सिद्धा॥ प्रवचनसारोद्धार ३७७–७८

५ श्वेताम्बर और दिगम्बर ग्रन्थों में इन यक्ष-यक्षियों के नामों एवं लाक्षणिक विशेषताओं के सन्दर्भ में पर्याप्त अन्तर है।

(मन्दिर १२, ८९२ ई०) से प्राप्त होता है। दूसरा उदाहरण (११ वीं–१२ वीं शती ई०) खण्डगिरि (पुरी, उड़ीसा) की बारभुजी गुफा में है। दोनों उदाहरण दिगम्बर सम्प्रदाय से सम्बन्धित हैं।

विद्यादेवियां

विद्यादेवियों से सम्बन्धित उल्लेख **वसुदेवहिण्डी** (ल० छठीं शती ई०), **आवश्यकचूर्णि** (ल० ६७७ ई०), **आवश्यक निर्युक्ति** (८ वीं शती ई०), **हरिवंशपुराण** (७८३ ई०), **चउपन्नमहापुरुषचरियम्** (८९८ ई०) एवं **त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र** में हैं। इनमें **पउमचरिय** की कथा का ही विस्तार है।[1] **हरिवंशपुराण**[2] एवं **त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र**[3] में उल्लेख है कि धरण ने नमि और विनमि को विद्याधरों पर स्वामित्व और ४८ हजार विद्याओं का वरदान दिया।

वसुदेवहिण्डी (संघदासकृत) में विद्याओं को गन्धर्व एवं पन्नगों से सम्बद्ध कहा गया है और महारोहिणी, प्रज्ञप्ति, गौरी, महाज्वाला, बहुरूपा, विद्युन्मुखी एवं वेयाल आदि विद्याओं का उल्लेख किया गया है। **आवश्यकचूर्णि** (जिनदासकृत) एवं **आवश्यक निर्युक्ति** (हरिभद्रसूरिकृत) में गौरी, गांधारी, रोहिणी और प्रज्ञप्ति का प्रमुख विद्याओं के रूप में उल्लेख है।[4] नवीं शती ई० के अन्त में निश्चित १६ महाविद्याओं की सूची में[5] उपर्युक्त चार विद्याएं भी सम्मिलित हैं। **पद्मचरित** (रविषेणकृत–६७६ ई०) में नमि-विनमि की कथा और प्रज्ञप्ति विद्या का उल्लेख है। **हरिवंशपुराण** में प्रज्ञप्ति, रोहिणी, अंगारिणी, महागौरी, गौरी, सर्वविद्याप्रकर्षिणी, महाश्वेता, मायूरी, हारी, निर्वज्ञशाड्वला, तिरस्कारिणी, छायासंक्रामिणी, कूष्माण्ड गणमाता, सर्वविद्याविराजिता, आर्यकूष्माण्ड देवी, अच्युता, आर्यवती, गान्धारी, निर्वृति, दण्डाध्यक्षगण, दण्डभूत-सहस्रक, भद्रकाली, महाकाली, काली और कालमुखी आदि विद्याओं का उल्लेख है।[6]

चतुर्विंशतिका (बप्पभट्टिसूरिकृत–७४३-८३८ ई०) में २४ जिनों के साथ २४ यक्षियों के स्थान पर महाविद्याओं[7], वाग्देवी सरस्वती एवं कुछ यक्षियों और अन्य देवों के उल्लेख हैं।[8] ग्रन्थ में १६ के स्थान पर केवल १५ महाविद्याओं का ही स्वरूप विवेचित है।[9] १६ महाविद्याओं की सूची ल० नवीं शती ई० के अन्त तक निश्चित हुई। १६ महाविद्याओं की सूची में अधिकांशतः पूर्ववर्ती ग्रन्थों में उल्लिखित विद्याएं ही सम्मिलित हैं। **तिजयपहुत्त** (मानदेवसूरिकृत–९वीं शती ई०), **संहितासार** (इन्द्रनन्दिकृत–९३९ ई०) एवं **स्तुति चतुर्विंशतिका** (या शोभन स्तुति–शोमनमुनिकृत–

---

१ शाह, यू० पी०, 'आइकानोग्राफी ऑव सिक्सटिन जैन महाविद्याज', ज०इं०सो०ओ०आ०, खं० १५, पृ० ११५

२ **हरिवंशपुराण** २२.५४–७३

३ **त्रि०श०पु०च०** १.३.१२४-२२६ : ग्रन्थ में गौरी, प्रज्ञप्ति, मनुस, गान्धारी, मानवी, कौशिकी, भूमितुण्ड, मूलवीर्य, संकुका, पाण्डुकी, काली, श्वपाकी, मातंगी, पार्वती, वंशालया, पाम्शुमूल एवं वृक्षमूल विद्याओं के उल्लेख हैं।

४ शाह, यू० पी०, पू०नि०, पृ० ११६-१७

५ जैन ग्रन्थों में अनेक विद्यादेवियों के उल्लेख हैं। ल० नवीं शती ई० में १६ विद्यादेवियों की सूची तैयार हुई। विभिन्न लाक्षणिक ग्रन्थों में इन्हीं १६ विद्यादेवियों का निरूपण हुआ एवं पुरातात्विक स्थलों पर भी इन्हीं को मूर्त अभिव्यक्ति मिली। जैन विद्यादेवियों के समूह में इनकी लोकप्रियता के कारण इन्हें महाविद्या कहा गया।

६ **हरिवंशपुराण** २२.६१-६६

७ जिनों की प्रशंसा में लिखे स्तोत्रों में यक्ष-यक्षी युगलों के स्थान पर महाविद्याओं का निरूपण इस सम्भावना की ओर संकेत देता है कि १६ महाविद्याओं की सूची २४-यक्ष-यक्षियों की अपेक्षा कुछ प्राचीन थी। दिगम्बर परम्परा की २४ यक्षियों में से अधिकांश के नाम भी महाविद्याओं से ग्रहण किये गये।

८ नेमि और पार्श्व दोनों ही के साथ यक्षी के रूप में अम्बिका निरूपित है। अजित के साथ सर्पफणों से युक्त यक्षी, और ऋषभ, मल्लि एवं मुनिसुव्रत के साथ वाग्देवी सरस्वती निरूपित हैं।

९ सर्वास्त्र-महाज्वाला का अनुल्लेख है। मानसी के नाम से वर्णित देवी में महाज्वाला एवं मानसी दोनों की विशेषताएं संयुक्त हैं।

ल० ९७३ ई०) में १६ महाविद्याओं की प्रारम्भिक सूची प्राप्त होती है[1] जिसे बाद में उसी रूप में स्वीकार कर लिया गया। १६ महाविद्याओं की अन्तिम सूची में निम्नलिखित नाम हैं :

रोहिणी, प्रज्ञप्ति, वज्रशृंखला, वज्रांकुशा, चक्रेश्वरी या अप्रतिचक्रा (जाम्बुनदा-दिगम्बर), नरदत्ता या पुरुषदत्ता, काली या कालिका, महाकाली, गौरी, गान्धारी, सर्वास्त्र-महाज्वाला या ज्वाला (ज्वालामालिनी-दिगम्बर), मानवी, वैरोट्या (वैरोटी-दिगम्बर), अच्छुप्ता (अच्युता-दिगम्बर), मानसी एवं महामानसी।

महाविद्याओं के लाक्षणिक स्वरूपों का निरूपण सर्वप्रथम बप्पभट्टि की चतुर्विंशतिका एवं शोभनमुनि की स्तुति चतुर्विंशतिका में किया गया है। जैन शिल्प में महाविद्याओं के स्वतन्त्र उत्कीर्णन का प्राचीनतम उदाहरण ओसिया (जोधपुर, राजस्थान) के महावीर मन्दिर (ल०८ वीं-९ वीं शती ई०) से प्राप्त होता है। नवीं शती ई० के बाद गुजरात एवं राजस्थान के श्वेताम्बर जैन मन्दिरों पर महाविद्याओं का नियमित चित्रण प्राप्त होता है। गुजरात एवं राजस्थान के बाहर महाविद्याओं का निरूपण लोकप्रिय नहीं था।[2] १६ महाविद्याओं के सामूहिक चित्रण के उदाहरण कुम्भारिया (बनासकांठा, गुजरात) के शान्तिनाथ मन्दिर (११वीं शतीई०), विमलवसही (दो समूह : रंगमण्डप एवं देवकुलिका ४१,१२वीं शती ई०) एवं लूणवसही (रंगमण्डप, १२३० ई०) से प्राप्त होते हैं (चित्र ७८)।[3]

राम और कृष्ण

राम और कृष्ण-बलराम को जैन ग्रन्थकारों ने विशेष महत्व दिया। इसी कारण इनके जीवन की घटनाओं का विस्तार से उल्लेख करने वाले स्वतन्त्र ग्रन्थों की रचना की गई। वसुदेवहिण्डी, पद्मपुराण, महाबली, उत्तरपुराण (गुणभद्र-कृत—९ वीं शती ई०); महापुराण (पुष्पदन्तकृत—९६५ ई०), पउमचरिउ (स्वयम्भूदेवकृत—९७७ ई०) और त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र आदि ग्रन्थों में रामकथा, और हरिवंशपुराण (जिनसेनकृत), हरिवंशपुराण (धवलकृत—११ वीं-१२ वीं शती ई०) एवं त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र आदि में कृष्ण-बलराम से सम्बन्धित विस्तृत उल्लेख हैं। जैन शिल्प में राम का चित्रण केवल खजुराहो के पार्श्वनाथ मन्दिर पर प्राप्त होता है।[4] कृष्ण-बलराम का निरूपण देवगढ़ (मन्दिर २) एवं राज्य संग्रहालय, लखनऊ (क्र० ६६.५३) की नेमिनाथ मूर्तियों में प्राप्त होता है (चित्र २७,२८)। विमलवसही, लूणवसही और कुंभारिया के महावीर मन्दिर के वितानों पर भी नेमिनाथ के जीवनदृश्यों में और स्वतन्त्र रूप में कृष्ण-बलराम के चित्रण हैं (चित्र २२,२९)।[5]

भरत और बाहुबली

जैन ग्रन्थों में ऋषभनाथ के दो पुत्रों, भरत और बाहुबली के युद्ध के विस्तृत उल्लेख हैं।[6] युद्ध में विजय के पश्चात् बाहुबली ने संसार त्याग कर कठोर तपस्या की और भरत ने चक्रवर्ती के रूप में शासन किया। जीवन के अन्तिम वर्षों में भरत ने भी दीक्षा ग्रहण की।[7] दोनों ने कैवल्य प्राप्त किया। जैन शिल्प में भरत—बाहुबली के युद्ध का चित्रण

१ शाह, यू० पी०, पू०नि०, पृ० ११९—२०

२ गुजरात और राजस्थान के बाहर १६ महाविद्याओं के सामूहिक शिल्पांकन का एकमात्र सम्भावित उदाहरण खजुराहो के आदिनाथ मन्दिर (११ वीं शती ई०) के मण्डोवर पर है।

३ तिवारी, एम० एन० पी०, 'दि आइकानोग्राफी ऑव दि सिक्सटीन जैन महाविद्याज ऐज डेपिक्टेड इन दि शांतिनाथ टेम्पल, कुंभारिया', संबोधि, खं० २, अं० ३, पृ० १५—२२

४ तिवारी, एम० एन० पी०, 'ए नोट आन ऐन इमेज ऑव राम ऐण्ड सीता आन दि पार्श्वनाथ टेम्पल, खजुराहो', जैन जर्नल, खं० ८, अं० १, पृ० ३०-३२

५ तिवारी, एम० एन० पी०, 'जैन साहित्य और शिल्प में कृष्ण', जै०सि०भा०, भाग २६, अं० २, पृ० ५—११; तिवारी, एम०एन०पी०, 'ऐन अपब्लिश्ड इमेज ऑव नेमिनाथ फ्राम देवगढ़', जैन जर्नल, खं०८, अं०२, पृ०८४-८५

६ पउमचरिय ४.५४-५५; हरिवंशपुराण ११.९८-१०२; आदिपुराण ३६.१०६-८५; त्रि०श०पु०च० ५.७४०-९८

७ हरिवंशपुराण १३.१-६

विमलवसही एवं कुंभारिया के शान्तिनाथ मन्दिर में है (चित्र १४)। भरत की स्वतन्त्र मूर्तियां केवल देवगढ़ (१० वीं-१२ वीं शती ई०)[1] में और बाहुबली की स्वतन्त्र मूर्तियां (९ वीं–१२ वीं शती ई०) जूनागढ़ संग्रहालय, देवगढ़ (मन्दिर २, ११ एवं साहु जैन संग्रहालय, देवगढ़), खजुराहो (पार्श्वनाथ मन्दिर), बिल्हरी (म०प्र०) एवं राज्य संग्रहालय, लखनऊ (क्र० ९४०) में हैं (चित्र ७०, ७१–७५)।[2] देवगढ़ में बाहुबली को विशेष प्रतिष्ठा प्रदान की गई। इसी कारण एक त्रितीर्थी मूर्ति में बाहुबली दो जिनों (मन्दिर २, चित्र ७५) एवं एक अन्य में यक्ष-यक्षी युगल (मन्दिर ११) के साथ निरूपित हैं।

जिनों के माता-पिता

जिनों के माता-पिता की गणना महान् आत्माओं में की गई है।[3] समवायांगसूत्र में वर्णित माता-पिता की सूची ही कालान्तर में स्वीकृत हुई।[4] ग्रन्थों में जिनों की माताओं की उपासना से सम्बन्धित उल्लेख पिताओं की तुलना में अधिक हैं। जैन शिल्प एवं चित्रों में भी जिनों की माताओं के चित्रण की परम्परा ही विशेष लोकप्रिय थी, जिसका प्राचीनतम उदाहरण ओसिया (१०१८ ई०) से प्राप्त होता है। अन्य उदाहरण पाटण, आबू, गिरनार, कुंभारिया (महावीर मन्दिर) एवं देवगढ़ से प्राप्त होते हैं। इनमें प्रत्येक स्त्री आकृति की गोद में एक बालक अवस्थित है। २४ जिनों के माता-पिता के सामूहिक चित्रण के प्रारम्भिक उदाहरण (११वीं शती ई०) कुंभारिया के शान्तिनाथ एवं महावीर मन्दिरों के वितानों पर उत्कीर्ण हैं। इनमें आकृतियों के नीचे उनके नाम भी उल्लिखित हैं।

पंच परमेष्ठि

जैन देवकुल के पंचपरमेष्ठियों में अर्हत्, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु सम्मिलित थे।[5] पंचपरमेष्ठियों में से प्रथम दो मुक्त आत्माएं हैं, जिनमें अर्हत् शरीर युक्त और सिद्ध निराकार हैं। तीर्थों की स्थापना कर कुछ अर्हत् तीर्थंकर कहलाते हैं। पंचपरमेष्ठियों के पूजन की परम्परा काफी प्राचीन है। परवर्ती युग में सिद्धचक्र या नवदेवता के रूप में इनके पूजन की धारणा विकसित हुई।[6] पंचपरमेष्ठियों में आचार्य, उपाध्याय एवं साधु की मूर्तियां (१०वी-१२वी शती ई०) विमलवसही, लूणवसही, कुंभारिया, ओसिया (देवकुलिका), देवगढ़, खजुराहो एवं ग्वालियर से प्राप्त होती हैं।

दिक्पाल

दिशाओं के स्वामी दिक्पालों या लोकपालों का पूजन वास्तुदेवताओं के रूप में भी लोकप्रिय था।[7] ल० आठवीं-नवीं शती ई० में जैन देवकुल में दिक्पालों की धारणा विकसित हुई। दिक्पालों के प्रतिमानिरूपण से सम्बन्धित प्रारंभिक उल्लेख निर्वाणकलिका एवं प्रतिष्ठासारसंग्रह में हैं। पर जैन मन्दिरों पर इनका उत्कीर्णन ल० नवीं शती० ई० में ही प्रारम्भ हो गया जिसका एक उदाहरण ओसिया के महावीर मन्दिर पर है। जैन शिल्प मे अष्ट-दिक्पालों का उत्कीर्णन ही लोकप्रिय

१ मन्दिर २ एवं मन्दिर १२ की चहारदीवारी

२ तिवारी, एम० एन० पी०, 'ए नोट आन सम बाहुबली इमेजेज फ्राम नार्थ इण्डिया', ईस्ट वे०, खं०२३, अं०३-४, पृ० ३४७-५३

३ शाह, यू० पी०, 'पेरेण्ट्स ऑव दि तीर्थंकरज', बु०प्रि०वे०म्यू०वे०इं०, अं० ५, १९५५-५७, पृ० २४-३२

४ समवायांगसूत्र १५७

५ पंचपरमेष्ठि जैन देवकुल के पांच सर्वोच्च देव हैं। इन्हें जिनों के समान महत्व प्राप्त था—शाह, यू० पी०, 'बिगिनिंग्स ऑव जैन आइकानोग्राफी', सं०पु०प०, अं० ९, पृ० ८-९

६ ल० नवीं शती ई० में पंचपरमेष्ठिन् की सूची में चार पूजित पदों के रूप में श्वेतांबर सम्प्रदाय में ज्ञान, दर्शन, चरित्र और तप को; एवं दिगंबर सम्प्रदाय में चैत्य (जिन प्रतिमा), चैत्यालय (जिन मन्दिर), धर्मचक्र और श्रुत (जिनों की शिक्षा) को सम्मिलित किया गया।

७ भट्टाचार्य, बी० सी०, जैन आइकानोग्राफी, लाहौर, १९३९, पृ० १४८

आ[1] पर जैन ग्रन्थों में दस दिक्पालों के उल्लेख मिलते हैं। ये दस दिक्पाल इन्द्र (पूर्व), अग्नि (दक्षिण-पूर्व), यम (दक्षिण), निर्ऋति (दक्षिण-पश्चिम), वरुण (पश्चिम), वायु पश्चिम-उत्तर), कुबेर (उत्तर), ईशान् (उत्तर-पूर्व), ब्रह्मा (आकाश) एवं नागदेव (या धरणेन्द्र-पाताल) हैं। जैन दिक्पालों की लाक्षणिक विशेषताएं काफी कुछ हिन्दू दिक्पालों से प्रभावित हैं।

नवग्रह

प्रारम्भिक जैन ग्रन्थों की सूर्य, चन्द्र, ग्रह आदि ज्योतिष्क देवों की धारणा ही पूर्वमध्य युग में नवग्रहों के रूप में विकसित हुई। दसवीं शती ई० के बाद के लगभग सभी प्रतिमा लाक्षणिक ग्रन्थों में नवग्रहों (सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु, केतु) के लाक्षणिक स्वरूपों का निरूपण किया गया। पर जैन शिल्प में दसवीं शती ई०[2] में ही नवग्रहों का चित्रण प्रारम्भ हुआ जो दिगम्बर स्थलों पर अधिक लोकप्रिय था (चित्र ५७)।[3] जिन मूर्तियों की पीठिका या परिकर में भी नवग्रहों का उत्कीर्णन लोकप्रिय था।

क्षेत्रपाल

ल० ग्यारहवीं शती ई० में क्षेत्रपाल को जैन देवकुल में सम्मिलित किया गया।[4] क्षेत्रपाल की लाक्षणिक विशेषताएं जैन दिक्पाल निर्ऋति एवं हिन्दू देव भैरव से प्रभावित हैं। क्षेत्रपाल की मूर्तियां (११वीं-१२वीं शती ई०) केवल खजुराहो एवं देवगढ़ जैसे दिगम्बर स्थलों से ही मिली हैं।

६४-योगिनियां

मध्य-युग में हिन्दू देवकुल के समान ही जैन देवकुल में भी ६४-योगिनियों की कल्पना की गयी। ये योगिनियां क्षेत्रपाल की सहायक देवियां हैं। जैन देवकुल के योगिनियों की दो सूचियां बी० सी० भट्टाचार्य ने दी हैं।[5] इन सूचियों के कुछ नाम जहां हिन्दू योगिनियों से मेल खाते हैं, वहीं कुछ अन्य केवल जैन धर्म में ही प्राप्त होते हैं। जैन शिल्प में इन्हें कभी लोकप्रियता नहीं प्राप्त हुई।

शान्तिदेवी

जैन धर्म एवं संघ की उन्नतिकारिणी शान्तिदेवी की धारणा दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० में विकसित हुई। देवी के प्रतिमा-निरूपण से सम्बन्धित प्रारम्भिक उल्लेख **स्तुति चतुर्विंशतिका**[6] (शोभनसूरिकृत) एवं **निर्वाणकलिका**[7] में हैं। जैन शिल्प में शान्तिदेवी श्वेताम्बर स्थलों पर ही लोकप्रिय थीं।[8] गुजरात एवं राजस्थान के श्वेताम्बर स्थलों पर स्वतन्त्र मूर्तियों में और जिन मूर्तियों के सिंहासन के मध्य[9] में शान्तिदेवी आमूर्तित हैं। देवी की दो भुजाओं में या तो पद्म है, या फिर एक में पद्म और दूसरी में पुस्तक है।

---

१ शिल्प में नवें-दसवें दिक्पालों, ब्रह्मा एवं धरणेन्द्र के उत्कीर्णन का एकमात्र ज्ञात उदाहरण घाणेराव (१० वीं शती ई०) के महावीर मन्दिर पर है।

२ खजुराहो के पार्श्वनाथ, देवगढ़ के शान्तिनाथ एवं घाणेराव के महावीर मन्दिरों के प्रवेश-द्वारों पर नवग्रह निरूपित हैं।

३ नवग्रहों के चित्रण का एकमात्र श्वेताम्बर उदाहरण घाणेराव के महावीर मन्दिर के प्रवेश-द्वार पर है।

४ निर्वाणकलिका २१.२; आचारदिनकर—भाग २, क्षेत्रपाल, पृ० १८०

५ भट्टाचार्य, बी० सी०, पू०नि०, पृ० १८३-८४

६ स्तुति चतुर्विंशतिका १२.४, पृ० १३७ ७ निर्वाणकलिका २१, पृ० ३७

८ खजुराहो की भी कुछ जिन मूर्तियों में सिंहासन के मध्य में शान्तिदेवी निरूपित हैं।

९ वास्तुविद्या (११वीं-१२वीं शती ई०) में सिंहासन के मध्य में वरदमुद्रा एवं पद्म धारण करनेवाली आदिशक्ति की द्विभुज आकृति के उत्कीर्णन का विधान है (२२.१०)।

गणेश

हिन्दू देवकुल के लोकप्रिय देवता गणेश या गणपति को ल० ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० में जैन देवकुल में सम्मिलित किया गया।[1] यद्यपि अभिधान-चिन्तामणि (१२वीं शती ई०) में गणेश का उल्लेख है[2] पर उनकी लाक्षणिक विशेषताएं सर्वप्रथम आचारदिनकर में विवेचित हैं।[3] जैन ग्रन्थों में निरूपण के पूर्व ही ग्यारहवीं शती ई० में ओसिया की जैन देव-कुलिकाओं के प्रवेश-द्वारों एवं भित्तियों पर गणेश का मूर्त अंकन देखा जा सकता है। यह तथ्य एवं जैन गणेश की लाक्षणिक विशेषताएं[4] स्पष्टतः हिन्दू गणेश के प्रभाव का संकेत देती हैं। पुरातात्विक संग्रहालय, मथुरा की ल० दसवीं शती ई० की एक अम्बिका मूर्ति (क्र० ०० डी ७) में गणेश की मूर्ति भी अंकित है। बारहवीं शती ई० की कुछ स्वतन्त्र मूर्तियां कुंभारिया (नेमिनाथ मन्दिर) एवं नाडलई से प्राप्त होती हैं (चित्र ७७)। गणेश की लोकप्रियता श्वेताम्बरों तक सीमित थी।

ब्रह्मशान्ति यक्ष

स्तुति चतुर्विंशतिका (शोभनसूरिकृत)[5] एवं निर्वाणकलिका[6] में ही सर्वप्रथम ब्रह्मशान्ति यक्ष की लाक्षणिक विशेषताएं वर्णित हैं। विविधतीर्थकल्प (जिनप्रभसूरिकृत) के सत्यपुर तीर्थकल्प में ब्रह्मशान्ति यक्ष के पूर्व जन्म की कथा दी है।[7] दसवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की ब्रह्मशान्ति यक्ष की मूर्तियां घाणेराव के महावीर, कुंभारिया के शान्तिनाथ, महावीर एवं पार्श्वनाथ मन्दिरों और विमलवसही से प्राप्त होती हैं। ब्रह्मशान्ति यक्ष केवल श्वेताम्बरों के मध्य ही लोकप्रिय थे। जटा-मुकुट, छत्र, अक्षमाला, कमण्डलु और कभी-कभी हंसवाहन का प्रदर्शन ब्रह्मशान्ति पर हिन्दू ब्रह्मा का प्रभाव दर्शाता है।

कपर्दी यक्ष

स्तुति चतुर्विंशतिका में कपर्दी यक्ष का यक्षराज के रूप में उल्लेख है।[8] विविधतीर्थकल्प एवं शत्रुंजय-माहात्म्य (धनेश्वरसूरिकृत—ल० ११०० ई०) में कपर्दी यक्ष से सम्बन्धित विस्तृत उल्लेख है।[9] शत्रुंजय पहाड़ी एवं विमलवसही से कपर्दी यक्ष के मूर्त चित्रण प्राप्त होते हैं। कपर्दी यक्ष की लोकप्रियता श्वेताम्बरों तक सीमित थी। यू० पी० शाह ने कपर्दी यक्ष को शिव से प्रभावित माना है।[10]

• • •

---

१ तिवारी, एम० एन० पी०, 'सम अन्पब्लिश्ड जैन स्कल्पचर्स ऑव गणेश फ्राम वेस्टर्न इण्डिया', जैन जर्नल, खं० ९, अं० ३, पृ० ९०-९२ २ अभिधानचिन्तामणि २.१२१

३ आचारदिनकर, भाग २, गणपतिप्रतिष्ठा १-२, पृ० २१०

४ हिन्दू गणेश के समान ही जैन गणेश भी गजमुख एवं लम्बोदर और मूषक पर आरूढ़ हैं। उनके करों में स्वदंत, परशु, मोदकपात्र, पद्म, अंकुश, एवं अभय-या-वरद-मुद्रा प्रदर्शित है।

५ स्तुति चतुर्विंशतिका १६.४, पृ० १७९ ६ निर्वाणकलिका २१, पृ० ३८

७ विविधतीर्थकल्प, पृ० २८-३० ८ स्तुति चतुर्विंशतिका १९.४, पृ० २१५

९ शाह, यू० पी०, 'ब्रह्मशान्ति ऐण्ड कपर्दी यक्षज'; ज०एम०एस०यू०ब०, खं० ७, अं० १, पृ० ६५-६८

१० वही, पृ० ६८

चतुर्थ अध्याय

उत्तर भारत के जैन मूर्ति अवशेषों का ऐतिहासिक सर्वेक्षण

इस अध्याय में उत्तर भारत के जैन मूर्ति अवशेषों का ऐतिहासिक सर्वेक्षण किया गया है। इसमें विषय एवं लक्षणों के विकास के अध्ययन की दृष्टि से क्षेत्र तथा काल दोनों की पृष्ठभूमि का ध्यान रखते हुए सभी उपलब्ध स्रोतों का उपयोग किया गया है। कई स्थलों एवं संग्रहालयों की अप्रकाशित सामग्री का निजी अध्ययन भी इसमें समाविष्ट है। इस प्रकार यहां देश और काल के प्रभावों का विश्लेषण करते हुए उत्तर भारतीय जैन मूर्ति अवशेषों का एक यथासम्भव पूर्ण एवं तुलनात्मक अध्ययन कर जैन प्रतिमा-निरूपण का क्रमबद्ध इतिहास प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। द्वितीय अध्याय के समान ही यह अध्याय भी दो भागों में विभक्त है। प्रथम भाग में प्रारम्भ से सातवीं शती ई० तक और द्वितीय में आठवीं से बारहवीं शती ई० तक के जैन मूर्ति अवशेषों का सर्वेक्षण है। दूसरे भाग में स्थलगत वैशिष्ट्य एवं मौलिक लाक्षणिक वृत्तियों पर अधिक बल दिया गया है।

(१)

आरम्भिक काल (प्रारम्भ से ७ वीं शती ई० तक)

मोहनजोदड़ो से प्राप्त ५ मुहरों पर कायोत्सर्ग-मुद्रा के समान ही दोनों हाथ नीचे लटका कर सीधी खड़ी पुरुष आकृतियां[१] और हड़प्पा से प्राप्त एक पुरुष आकृति[२] (चित्र १) सिन्धु सभ्यता के ऐसे अवशेष हैं जो अपनी नग्नता और मुद्रा (कायोत्सर्ग के समान) के सन्दर्भ में परवर्ती जिन मूर्तियों का स्मरण दिलाते हैं।[3] किन्तु सिन्धु लिपि के अन्तिम रूप से पढ़े जाने तक सम्भवतः इस सम्बन्ध में कुछ भी निश्चय से नहीं कहा जा सकता है।

मौर्य-शुंग काल

प्राचीनतम जिन मूर्ति मौर्यकाल की है जो पटना के समीप लोहानीपुर से मिली है और सम्प्रति पटना संग्रहालय में सुरक्षित है (चित्र २)।[४] नग्नता और कायोत्सर्ग-मुद्रा[५] इसके जिन मूर्ति होने की सूचना देते हैं। मूर्ति के सिर, भुजा और जानु के नीचे का भाग खण्डित हैं। मूर्ति पर मौर्ययुगीन चमकदार आलेप है। लोहानीपुर से शुंग काल या कुछ बाद की एक अन्य जिन मूर्ति भी मिली है जिसमें नीचे लटकती दोनों भुजाएं सुरक्षित हैं।[६]

---

१ मार्शल, जान, मोहनजोदड़ो ऐण्ड दि इण्डस सिविलिजेशन, खं० १, लंदन, १९३१, फलक १२, चित्र १३, १४, १८, १९, २२

२ वही, पृ० ४५, फलक १०

३ चंदा, आर० पी०, 'सिन्ध फाइव थाऊजण्ड इयर्स एगो', माडर्न रिव्यू, खं० ५२, अंक २, पृ० १५१–६०; रामचन्द्रन, टी० एन०,'हरप्पा ऐण्ड जैनिजम' (हिन्दी अनु०), अनेकान्त, वर्ष १४, जनवरी १९५७, पृ० १५७-६१; स्ट०जै०आ०, पृ० ३–४

४ जायसवाल, के० पी०, 'जैन इमेज ऑव मौर्य पिरियड', ज०बि०उ०रि०सो०, खं० २३, भाग १, पृ० १३०–३२; बनर्जी-शास्त्री, ए०, 'मौर्यन स्कल्पचर्स फ्राम लोहानीपुर, पटना', ज०बि०उ०रि०सो०, खं० २६, भाग २, पृ० १२०–२४

५ कायोत्सर्ग-मुद्रा में जिन समभंग में सीधे खड़े होते हैं और उनकी दोनों भुजाएं लंबवत घुटनों तक प्रसारित होती हैं। यह मुद्रा केवल जिनों के मूर्त अंकन में ही प्रयुक्त हुई है।

६ जायसवाल, के० पी०, पू०नि०, पृ० १३१

उड़ीसा की उदयगिरि-खण्डगिरि पहाड़ियों की रानी गुंफा, गणेश गुंफा, हाथी गुंफा एवं अनन्त गुंफा में ई० पू० की दूसरी-पहली शती के जैन कलावशेष हैं।[1] इन गुफाओं में वर्धमानक, स्वस्तिक एवं त्रिरत्न जैसे जैन प्रतीक चित्रित हैं। रानी एवं गणेश गुफाओं में अंकित दृश्यों की पहचान सामान्यतः पार्श्व के जीवन-दृश्यों से की गई है।[2] वी० एस० अग्रवाल इसे वासवदत्ता और शकुन्तला की कथा का चित्रण मानते हैं।[3]

ल० दूसरी-पहली शती ई० पू० की पार्श्वनाथ की एक कांस्य मूर्ति प्रिंस ऑव वेल्स संग्रहालय, बम्बई में सुरक्षित है[4] जिसमें मस्तक पर पांच सर्पफणों के छत्र से युक्त पार्श्व निर्वस्त्र और कायोत्सर्ग-मुद्रा में खड़े हैं।[5] ल० पहली शती ई०पू० की एक पार्श्वनाथ मूर्ति बक्सर (भोजपुर, बिहार) के चौसा ग्राम से भी मिली है, जो पटना संग्रहालय (६५३१) में संगृहीत है।[6] मूर्ति में पार्श्व सात सर्पफणों के छत्र से शोभित और उपर्युक्त मूर्ति के समान ही निर्वस्त्र एवं कायोत्सर्ग-मुद्रा में हैं। इन प्रारम्भिक मूर्तियों में वक्षःस्थल में श्रीवत्स चिह्न नहीं उत्कीर्ण है।[7] जिन मूर्तियों के वक्षःस्थल पर श्रीवत्स चिह्न का उत्कीर्णन ल० पहली शती ई०पू० में मथुरा में ही प्रारम्भ हुआ। लगभग इसी समय मथुरा में जिनों के निरूपण में ध्यानमुद्रा भी प्रदर्शित हुई।

चौसा से शुंगकालीन धर्मचक्र एवं कल्पवृक्ष के चित्रण भी मिले हैं, जो पटना संग्रहालय (६५४०, ६५५०) में सुरक्षित हैं।[8] यू० पी० शाह इन अवशेषों को कुषाणकालीन मानते है।[9] इन प्रतीकों से मथुरा के समान ही चौसा में भी शुंग-कुषाणकाल में प्रतीक पूजन की लोकप्रियता सिद्ध होती है।

कुषाण काल

चौसा—चौसा से नौ कुषाणकालीन जिन मूर्तियां मिली हैं, जो पटना संग्रहालय में हैं। इनमें से ६ उदाहरणों में जिनों की पहचान सम्भव नहीं है। दो उदाहरणों में लटकती जटा (६५३८, ६५३९) एवं एक में सात सर्पफणों के छत्र (६५३३) के आधार पर जिनों की पहचान क्रमशः ऋषभ और पार्श्व से की गई है।[10] सभी जिन मूर्तियां निर्वस्त्र और कायोत्सर्ग-मुद्रा में हैं।

मथुरा—साहित्यिक और आभिलेखिक साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि मथुरा का कंकाली टीला एक प्राचीन जैन स्तूप था।[11] कंकाली टीले से एक विशाल जैन स्तूप के अवशेष और विपुल शिल्प सामग्री मिली है।[12] यह शिल्प सामग्री

---

१ कुरेशी, मुहम्मद हमीद, लिस्ट ऑव ऐन्शण्ट मान्युमेण्ट्स इन दि प्राविन्स ऑव बिहार ऐण्ड उड़ीसा, कलकत्ता, १९३१, पृ० २४७ २ स्ट०जै०आ०, पृ० ७–८

३ अग्रवाल, वी० एस०, 'वासवदत्ता ऐण्ड शकुन्तला सीन्स इन दि रानीगुंफा केव इन उड़ीसा', ज०इं०सो०ओ०आ०, खं० १४, १९४६, पृ० १०२–१०९ ४ स्ट०जै०आ०, पृ० ८–९

५ शाह, यू० पी०, 'ऐन अर्ली ब्रोन्ज इमेज ऑव पार्श्वनाथ इन दि प्रिंस ऑव वेल्स म्यूजियम, बंबई', बु०प्रि०वे०म्यू०वे०इं०, अं० ३, १९५२–५३, पृ० ६३-६५

६ प्रसाद, एच० के०, 'जैन ब्रोन्जेज इन दि पटना म्यूजियम', म०जै०वि०गो०जु०वा०, बंबई, १९६८, पृ० २७५–८०; शाह, यू० पी०, अकोटा ब्रोन्जेज, बंबई, १९५९, फलक १ बी

७ वक्षःस्थल में श्रीवत्स चिह्न का उत्कीर्णन जिन मूर्तियों की अभिन्न विशेषता है।

८ प्रसाद, एच० के०, पू०नि०, पृ० २८० : चौसा से कुषाण एवं गुप्तकाल की मूर्तियां भी मिली हैं।

९ शाह, यू० पी०, पू०नि०, फलक ३ १० प्रसाद, एच० के०, पू०नि०, पृ० २८०–८२

११ विविधतीर्थकल्प, पृ० १७; स्मिथ, वी० ए०, दि जैन स्तूप ऐण्ड अदर एण्टिक्विटीज ऑव मथुरा, वाराणसी, १९६९, पृ० १२–१३

१२ कनिंघम, ए०, आ०स०इं०रि०, १८७१–७२, खं० ३, वाराणसी, १९६६ (पु०मु०), पृ० ४५–४६

ल० १५० ई० पू० से १०२३ ई० के मध्य की है।[1] इस प्रकार मथुरा की जैन मूर्तियां आरम्भ से मध्ययुग तक के प्रतिमाविज्ञान की विकास शृङ्खला उपस्थित करती हैं। मथुरा की शिल्प सामग्री में आयागपट (चित्र ३), जिन मूर्तियां, सर्वतोभद्रिका प्रतिमा (चित्र ६६), जिनों के जीवन से सम्बन्धित दृश्य (चित्र १२, ३९) एवं कुछ अन्य मूर्तियां प्रमुख हैं।[2]

आयागपट—आयागपट मथुरा की प्राचीनतम जैन शिल्प सामग्री है। इनका निर्माण शुंग-कुषाण युग में प्रारम्भ हुआ। मथुरा के अतिरिक्त और कहीं से आयागपटों के उदाहरण नहीं मिले हैं। मथुरा में भी कुषाण युग के बाद इनका निर्माण बन्द हो गया। आयागपट वर्गाकार प्रस्तर पट्ट हैं जिन्हें लेखों में आयागपट या पूजाशिलापट कहा गया है। आयागपट जिनों (अर्हतों) के पूजन के लिए स्थापित किये गये थे।[3] एक आयागपट के महावीर के पूजन के लिए स्थापित किये जाने का उल्लेख है।[4] आयागपट उस संक्रमण काल की शिल्प सामग्री है जब उपास्य देवों का पूजन प्रतीक और मानवरूप में साथ-साथ हो रहा था।[5] आयागपटों पर जैन प्रतीक या प्रतीकों के साथ जिन मूर्ति भी उत्कीर्ण है। आयागपटों की जिन मूर्तियां श्रीवत्स से युक्त और ध्यानमुद्रा में निरूपित हैं। एक उदाहरण (राज्य संग्रहालय, लखनऊ–जे २५३) में मध्य में सप्त सर्पफणों के छत्र से युक्त पार्श्वनाथ हैं।

मथुरा से कम से कम १० आयागपट मिले हैं (चित्र ३)।[6] इनमें अमोहिनि (राज्य संग्रहालय, लखनऊ–जे १) एवं स्तूप (राज्य संग्रहालय, लखनऊ–जे २५५) का चित्रण करने वाले पट प्राचीनतम हैं।[7] दो आयागपटों पर स्तूप[8] एवं अन्य पर पद्म, धर्मचक्र, स्वस्तिक, श्रीवत्स, त्रिरत्न, मत्स्ययुगल, वैजयन्ती, मंगलकलश, भद्रासन, रत्नपात्र, देवगृह जैसे मांगलिक चिह्न उत्कीर्ण हैं।

अमोहिनि द्वारा स्थापित आर्यवती पट[9] पर आर्यवती देवी (?) निरूपित है। लेख में 'नमो अर्हतो वर्धमानस' उत्कीर्ण है। छत्र से शोभित आर्यवती देवी की वाम भुजा कटि पर है और दक्षिण अभयमुद्रा में है। यू०पी० शाह ने लेख में आये वर्धमान नाम के आधार पर आकृति की पहचान वर्धमान की माता से की है।[10] आर्यवती की पहचान कल्पसूत्र की आर्य यक्षिणी[11] और भगवतीसूत्र की अज्जा या आर्या देवी[12] से भी की जा सकती है। हरिवंशपुराण में महाविद्याओं की सूची में भी आर्यवती का नामोल्लेख है।[13] ल्यूजे-डे-ल्यू ने आर्यवती शब्द को आयागपट का समानार्थी माना है।[14]

जिन मूर्तियां—मथुरा की कुषाण कला में जिनों को चार प्रकार से अभिव्यक्ति मिली है। ये अंकन आयागपटों पर ध्यान-मुद्रा में, जिन चौमुखी (सर्वतोभद्रिका) मूर्तियों में कायोत्सर्ग-मुद्रा में[15], स्वतन्त्र मूर्तियों के रूप में, और जीवन-दृश्यों

---

१ स्ट०जै०आ०, पृ० ९

२ मथुरा की जैन मूर्तियों का अधिकांश भाग राज्य संग्रहालय, लखनऊ एवं पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा में सुरक्षित है।

३ एपि०इण्डि०, खं० २, पृ० ३१४

४ स्मिथ, वी० ए०, पू०नि०, पृ० १५, फलक ८

५ शर्मा, आर०सी०, 'प्रि-कनिष्क बुद्धिस्ट आइकानोग्राफी ऐट मथुरा', आर्किअलाजिकल कांग्रेस ऐण्ड सेमिनार पेपर्स, नागपुर, १९७२, पृ० १९३–९४

६ मथुरा से प्राप्त तीन आयागपट क्रमशः पटना संग्रहालय, राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली एवं बुडापेस्ट (हंगरी) संग्रहालय में सुरक्षित हैं। अन्य आयागपट पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा एवं राज्य संग्रहालय, लखनऊ में हैं।

७ स्मिथ, वी०ए०, पू०नि०, पृ० १९, २१

८ पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा-क्यू २; राज्य संग्रहालय, लखनऊ-जे २५५

९ ल्यूजे-डे-ल्यू, जे०ई० वान, दि सीथियन पिरियड, लिडेन, १९४९, पृ० १४७; स्मिथ, वी०ए०, पू०नि०, पृ० २१, फलक १४; एपि०इण्डि०, खं० २, पृ० १९९, लेख सं० २

१० स्ट०जै०आ०, पृ० ७९

११ कल्पसूत्र १६६

१२ भगवतीसूत्र ३.१.१३४

१३ हरिवंशपुराण २२.६१–६६

१४ ल्यूजे-डे-ल्यू, जे०ई०वान, पू०नि०, पृ० १४७

१५ जिन चौमुखी के १० से अधिक उदाहरण राज्य संग्रहालय, लखनऊ और पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा में हैं।

के अंकन के रूप में हैं। आयागपटों की जिन मूर्तियों का उल्लेख आयागपटों के अध्ययन में किया जा चुका है। अब शेष तीन प्रकार के जिन अंकनों का उल्लेख किया जायगा।

प्रतिमा-सर्वतोभद्रिका या जिन चौमुखी—मथुरा में जिन चौमुखी मूर्तियों का उत्कीर्णन पहली-दूसरी शती ई० में विशेष लोकप्रिय था (चित्र ६६)। लेखों में ऐसी मूर्तियों को 'प्रतिमा सर्वतोभद्रिका',[1] 'सर्वतोभद्र प्रतिमा',[2] 'शवदोभद्रिक'[3] एवं 'चतुर्बिम्ब'[4] कहा गया है। प्रतिमा-सर्वतोभद्रिका या सर्वतोभद्र-प्रतिमा ऐसी मूर्ति है जो सभी ओर से शुभ या मंगल-कारी है।[5] इन मूर्तियों में चारों दिशाओं में कायोत्सर्ग-मुद्रा में चार जिन आकृतियां उत्कीर्ण रहती हैं। इन चार में से केवल दो ही जिनों की पहचान सम्भव है। ये जिन लटकती केशावलियों एवं सप्त सर्पफणों के छत्र से युक्त ऋषभ और पार्श्व हैं। गुप्त युग में जिन चौमुखी की लोकप्रियता कम हो गई थी।

स्वतन्त्र जिन मूर्तियां—मथुरा को कुषाणकालीन जिन मूर्तियां संवत् ५ से सं० ९५ (८३-१७३ ई०) के मध्य की हैं (चित्र १६, ३०, ३४)। श्रीवत्स से युक्त जिन या तो कायोत्सर्ग-मुद्रा में खड़े हैं या ध्यानमुद्रा में आसीन हैं।[6] इनके साथ अष्ट-प्रातिहार्यों में से केवल ६ प्रातिहार्य-सिंहासन[7], भामण्डल[8], चैत्य वृक्ष, चामरधर सेवक, उड्डीयमान मालाधर एवं छत्र उत्कीर्ण है। इनमें भी सिंहासन, भामण्डल एवं चैत्यवृक्ष का ही चित्रण नियमित है। सभी आठ प्रातिहार्य गुप्त युग के अन्त में निरूपित हुए।[9]

ध्यानमुद्रा में आसीन मूर्तियों में पार्श्ववर्ती चामरधर सेवक सामान्यतः नहीं उत्कीर्ण हैं। कुछ उदाहरणों में चामरधरों के स्थान पर दानकर्ताओं (राज्य संग्रहालय, लखनऊ-जे ८, १९) या जैन साधुओं की आकृतियां बनी हैं। जिनों के केश गुच्छकों के रूप में हैं या पीछे की ओर संवारे हैं, या फिर मुण्डित हैं। सिंहासन के मध्य में हाथ जोड़ या पुष्प लिये हुए साधु-साध्वियों, श्रावक-श्राविकाओं एवं बालकों की आकृतियों से वेष्टित धर्मचक्र उत्कीर्ण है। जिनों की हथेलियों, तलुओं एवं उंगलियों पर त्रिरत्न, धर्मचक्र, स्वस्तिक और श्रीवत्स जैसे मंगल-चिह्न बने है। सभी जिन मूर्तियां निर्वस्त्र हैं।[10]

इन मूर्तियों में लटकती जटाओं और सप्त सर्पफणों के छत्र के आधार पर क्रमशः ऋषभ[11] और पार्श्व की पहचान सम्भव है (चित्र ३०)। मथुरा से इन्हीं दो जिनों की सर्वाधिक कुषाणकालीन मूर्तियां मिली हैं। बलराम-कृष्ण की पार्श्ववर्ती आकृतियों के आधार पर कुछ मूर्तियों (राज्य संग्रहालय, लखनऊ-जे ४७, ६०, ११७) की पहचान नेमि से की गई है।[12]

---

१ एपि०इण्डि०, खं० १, पृ० ३८२, लेख सं० २; खं० २, पृ० २०३, लेख सं० १६

२ वही, खं० २, पृ० २०२, लेख सं० १३

३ वही, खं० २, पृ० २०९-१०, लेख सं० ३७

४ वही, खं० २, पृ० २११, लेख सं० ४१

५ वही, खं० २, पृ० २०२-०३, २१०; भट्टाचार्य, बी०सी०, **दि जैन आइकानोग्राफी**, लाहौर, १९३९, पृ० ४८; अग्रवाल, वी०एस०, **मथुरा म्यूजियम केटलाग**, भाग ३, वाराणसी, १९६३, पृ० २७

६ ध्यानमुद्रा में आसीन जिन मूर्तियां तुलनात्मक दृष्टि से अधिक है।

७ कुछ कायोत्सर्ग मूर्तियों (राज्य संग्रहालय, लखनऊ-जे २, ८) में सिंहासन नहीं उत्कीर्ण है।

८ भामण्डल हस्तिनख (या अर्धचन्द्रावलि) एवं पूर्ण विकसित पद्म के अलंकरण से युक्त है।

९ शाह, यू०पी०, 'बिगिनिंग्स ऑव जैन आइकानोग्राफी', सं०पु०प०, अं० ९, पृ० ६

१० महावीर के गर्भापहरण का दृश्यांकन जिसका उल्लेख केवल श्वेताम्बर परम्परा में ही हुआ है (राज्य संग्रहालय, लखनऊ-जे ६२६), एवं कुछ नग्न साधु आकृतियों (राज्य संग्रहालय, लखनऊ-जे १७५) की भुजा में वस्त्र का प्रदर्शन मथुरा की कुषाणकला में श्वेताम्बरों और दिगम्बरों के सहअस्तित्व के सूचक हैं।

११ लटकती जटा से युक्त दो मूर्तियों (राज्य संग्रहालय, लखनऊ-जे २६, ६९) में ऋषभ का नाम भी उत्कीर्ण है।

१२ श्रीवास्तव, वी० एन०, पू०नि०, पृ० ४९-५२

एक मूर्ति (राज्य संग्रहालय, लखनऊ-जे ८) में 'अरिष्टनेमि' का नाम भी उत्कीर्ण है। संभव,[1] मुनिसुव्रत[2] एवं महावीर[3] की पहचान पीठिका लेखों में उत्कीर्ण नामों से हुई है (चित्र ३४)। इस प्रकार मथुरा की कुषाण कला में ऋषभ, संभव, मुनिसुव्रत, नेमि, पार्श्व एवं महावीर की मूर्तियां निर्मित हुई।

जिनों के जीवनदृश्य—कुषाण काल में जिनों के जीवनदृश्य भी उत्कीर्ण हुए। राज्य संग्रहालय, लखनऊ में सुरक्षित एक पट्ट (जे ६२६) पर महावीर के गर्भापहरण का दृश्य है (चित्र ३९)।[4] राज्य संग्रहालय, लखनऊ के एक अन्य पट्ट (जे ३५४) पर इन्द्र सभा की नर्तकी नीलांजना ऋषभ के समक्ष नृत्य कर रही है (चित्र १२)। ज्ञातव्य है कि नीलांजना के नृत्य के कारण ही ऋषभ को वैराग्य उत्पन्न हुआ था।[5] राज्य संग्रहालय, लखनऊ के एक और पट्ट (बी २०७) पर स्तूप और जिन मूर्ति के पूजन का दृश्य उत्कीर्ण है।[6]

सरस्वती एवं नैगमेषी मूर्तियां—सरस्वती की प्राचीनतम मूर्ति (१३२ ई०) जैन परम्परा की है और मथुरा (राज्य संग्रहालय, लखनऊ-जे २४) से मिली है।[7] द्विभुज देवी की वाम भुजा में पुस्तक है और अभयमुद्रा प्रदर्शित करती दक्षिण भुजा में अक्षमाला है।[8] अजमुख नैगमेषी एवं उसकी शक्ति की ६ से अधिक मूर्तियां मिली हैं। लम्बे हार से सज्जित देवता की गोद में या कन्धों पर बालक प्रदर्शित हैं। एक पट्ट (राज्य संग्रहालय, लखनऊ-जे ६२३) पर सम्भवतः कृष्ण वासुदेव के जीवन का कोई दृश्य उत्कीर्ण है।[9] पट्ट पर ऊपर की ओर एक स्तूप और चार ध्यानस्थ जिन मूर्तियां उत्कीर्ण है। इनमें एक जिन मूर्ति पार्श्वनाथ की है। नीचे, दाहिनी भुजा से अभयमुद्रा व्यक्त करती एक स्त्री आकृति खड़ी है जिसे लेख में 'अनघश्रेष्ठी विद्या' कहा गया है। बायीं ओर की साधु आकृति को लेख में 'कण्ह श्रमण' कहा गया है जिसके समीप नमस्कार मुद्रा में सात सर्पफणों के छत्र से युक्त एक पुरुष आकृति चित्रित है। अंतगडदसाओ में कृष्ण का 'कण्ह वासुदेव' के नाम से उल्लेख है। साथ ही यह भी उल्लेख है कि कण्ह वासुदेव ने दीक्षा ली थी।[10] पट्ट की कण्ह श्रमण की आकृति दीक्षा ग्रहण करने के बाद कृष्ण का अंकन है। समीप की सात सर्पफणों के छत्र वाली आकृति बलराम की हो सकती है।

गुजरात की जूनागढ़ गुफा (ल० दूसरी शती ई०) में मंगलकलश, श्रीवत्स, स्वस्तिक, भद्रासन, मत्स्ययुगल आदि मांगलिक चिह्न उत्कीर्ण हैं।[11]

गुप्तकाल

गुप्तकाल में जैन मूर्तियों की प्राप्ति का क्षेत्र कुछ विस्तृत हो गया। कुषाणकालीन कलावशेष जहां केवल मथुरा एवं चौसा से ही मिले हैं, वहां गुप्तकाल की जैन मूर्तियां मथुरा एवं चौसा के अतिरिक्त राजगिर, विदिशा, उदयगिरि, अकोटा, कहौम और वाराणसी से भी मिली हैं। कुषाणकाल की तुलना में मथुरा में गुप्तकाल में कम जैन मूर्तियां उत्कीर्ण

---

१ १२६ ई० की एक मूर्ति (राज्य संग्रहालय, लखनऊ-जे १९) में संभवनाथ का नाम उत्कीर्ण है।

२ १५७ ई० की एक मूर्ति (राज्य संग्रहालय, लखनऊ-जे २०) 'अर्हत नन्द्यावर्त' को समर्पित है। के० डी० वाजपेयी ने इसकी पहचान मुनिसुव्रत से की है। फ्यूरर ने नन्द्यावर्त को प्रतीक का सूचक मानकर जिन की पहचान अरनाथ से की है—शाह, यू० पी०, पू०नि०, पृ० ७; स्मिथ, वी० ए०, पू०नि०, पृ० १२–१३

३ छः उदाहरणों में 'वर्धमान' का नाम उत्कीर्ण है। एक उदाहरण (राज्य संग्रहालय, लखनऊ-जे २) में 'महावीर' का नाम भी उत्कीर्ण है।

४ ब्यूहलर, जी०, 'स्पेसिमेन्स ऑव जैन स्कल्पचर्स फ्राम मथुरा', एपि०इण्डि०, खं० २, पृ० ३१४–१८

५ पउमचरिय ३.१२२–२६

६ श्रीवास्तव, वी० एन०, पू०नि०, पृ० ४८–४९

७ वाजपेयी, के० डी०, 'जैन इमेज ऑव सरस्वती इन दि लखनऊ म्यूजियम', जैन एण्टि०, खं० ११, अं० २, पृ० १-४

८ अक्षमाला के केवल आठ ही मनके सम्प्रति अवशिष्ट हैं।

९ स्मिथ, वी० ए०, पू०नि०, पृ० २४, फलक १७, चित्र २

१० अंतगडदसाओ (अनु० एल० डी० बर्नेट), पृ० ६१ और आगे

११ स्ट०जै०आ०, पृ० १३

हुईं। इनमें कुषाणकालीन विषय वैविध्य का भी अभाव है। गुप्तकाल में मथुरा में केवल जिनों की स्वतन्त्र एवं कुछ जिन चौमुखी मूर्तियां ही निर्मित हुईं। जिनों के साथ लांछनों[१] एवं यक्ष-यक्षी युगलों[२] के निरूपण की परम्परा भी गुप्तयुग में ही प्रारम्भ हुई।

मथुरा

मथुरा में गुप्तकाल में पार्श्व की अपेक्षा ऋषभ की अधिक मूर्तियां उत्कीर्ण हुईं। ऋषभ एवं पार्श्व की पहचान पहले ही की तरह लटकती जटाओं एवं सात सर्पफणों के छत्र के आधार पर की गई है। ऋषभ की जटाएं पहले से अधिक लम्बी हो गईं (चित्र ४)। एक खण्डित मूर्ति (राज्य संग्रहालय, लखनऊ-जे ८९) में दाहिनी ओर की वनमाला, तथा सर्पफणों एवं हल से युक्त बलराम की मूर्ति के आधार पर जिन की पहचान नेमि से की गई है। एक दूसरी नेमि मूर्ति में भी (राज्य संग्रहालय, लखनऊ-जे १२१) बलराम एवं कृष्ण आमूर्तित हैं (चित्र २५)।[३] इस प्रकार गुप्तकाल में मथुरा में केवल ऋषभ, नेमि और पार्श्व की ही मूर्तियां उत्कीर्ण हुईं। पीठिका लेखों में जिनों के नामोल्लेख की कुषाणकालीन परम्परा गुप्तकाल में समाप्त हो गई। जिन मूर्तियां निर्वस्त्र हैं। जिनों की ध्यानस्थ मूर्तियां तुलनात्मक दृष्टि से संख्या में अधिक हैं। गुप्तकाल में पार्श्ववर्ती चामरधर सेवकों एवं उड्डीयमान मालाधरों के चित्रण में नियमितता आ गई। अष्ट-प्रातिहार्यों में त्रिछत्र[४] एवं दिव्यध्वनि के अतिरिक्त अन्य का नियमित चित्रण होने लगा। प्रभामण्डल के अलंकरण पर विशेष ध्यान दिया गया।[५] पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा (बी ६८) में एक जिन चौमुखी भी सुरक्षित है। गुप्तकालीन जिन चौमुखी का यह अकेला उदाहरण है। कुषाणकालीन चौमुखी मूर्ति के समान ही यहां भी केवल ऋषभ एवं पार्श्व की ही पहचान सम्भव है।

राजगिर

राजगिर (बिहार) से ल० चौथी शती ई० की चार जिन मूर्तियां मिली हैं। एक मूर्ति की पीठिका पर गुप्त लिपि में लिखे एक लेख में चन्द्रगुप्त (द्वितीय) का नाम है।[६] ध्यानमुद्रा में सिंहासन पर विराजमान जिन की पीठिका के मध्य में चक्रपुरुष और उसके दोनों ओर शंख उत्कीर्ण हैं। शंख नेमि का लांछन है। अतः मूर्ति नेमि की है। जिन-लांछन का प्रदर्शन करने वाली यह प्राचीनतम ज्ञात मूर्ति है। शंख लांछन के समीप ही ध्यानस्थ जिनों की दो लघु मूर्तियां भी उत्कीर्ण हैं।[७] राजगिर की तीन अन्य मूर्तियों में जिन कायोत्सर्ग में निर्वस्त्र खड़े हैं।[८]

विदिशा

विदिशा (म० प्र०) से तीन गुप्तकालीन जिन मूर्तियां मिली है, जो सम्प्रति विदिशा संग्रहालय में है।[९] इन मूर्तियों के पीठिका-लेखों में महाराजाधिराज रामगुप्त का उल्लेख है जो सम्भवतः गुप्त शासक था। मूर्तियों की निर्माण शैली, लेख की लिपि एवम् 'महाराजाधिराज' उपाधि के साथ रामगुप्त का नामोल्लेख मूर्तियों के चौथी शती ई० में निर्मित होने के समर्थक प्रमाण हैं। ध्यानमुद्रा में सिंहासन पर आसीन जिन आकृतियां पार्श्ववर्ती चामरधरों से वेष्टित हैं। दो मूर्तियों के पीठिका-लेखों में उनके नाम (पुष्पदन्त एवं चन्द्रप्रभ) उत्कीर्ण है। इन मूर्ति लेखों से स्पष्ट है कि पीठिका लेखों

---

१ राजगिर की नेमिनाथ एवं भारत कला भवन, वाराणसी (१६१) की महावीर मूर्तियां

२ अकोटा की ऋषभनाथ मूर्ति   ३ श्रीवास्तव, वी० एन०, पू०नि०, पृ० ४९-५२

४ केवल राजगिर की एक जिन मूर्ति में त्रिछत्र उत्कीर्ण है—स्ट०जै०आ०, चित्र ३३

५ इसमें हस्तिनख की पंक्ति, विकसित पद्म, पुष्पलता, पद्मकलिकाएं, मनके एवं रज्जु आदि अभिप्राय प्रदर्शित हैं।

६ चन्दा, आर० पी०, 'जैन रिमेन्स ऐट राजगिर', आ०स०इं०ऐ०रि०, १९२५-२६, पृ० १२५-२६, फलक ५६, चित्र ६

७ सिंहासन छोरों या धर्मचक्र के दोनों ओर दो ध्यानस्थ जिनों के चित्रण गुप्तकालीन मूर्तियों में लोकप्रिय थे।

८ चन्दा, आर० पी०, पू०नि०, पृ० १२६; स्ट०जै०आ०, पृ० १४

९ अग्रवाल, आर० सी०, 'न्यूली डिस्कवर्ड स्कल्पचर्स फाम विदिशा', ज०ओ०इं०, खं १८, अं० ३, पृ० २५२-५३

में जिनों के नामोल्लेख की कुषाणकालीन परम्परा गुप्त युग में मथुरा में तो नहीं, पर विदिशा में अवश्य लोकप्रिय थी। मध्य प्रदेश के सिरा पहाड़ी (पन्ना जिला)[1] एवं बेसनगर (ग्वालियर)[2] से भी कुछ गुप्तकालीन जिन मूर्तियां मिली हैं।

कहौम

कहौम (देवरिया, उ० प्र०) के ४६१ ई० के एक स्तम्भ लेख में पांच जिन मूर्तियों के स्थापित किये जाने का उल्लेख है।[3] स्तम्भ की पांच कायोत्सर्ग एवं दिगम्बर जिन मूर्तियों की पहचान ऋषभ, शान्ति, नेमि, पार्श्व एवं महावीर से की गई है।[4] सीतापुर (उ० प्र०) से भी एक जिन मूर्ति मिली है।[5]

वाराणसी

वाराणसी से मिली ल० छठीं शती ई० की एक ध्यानस्थ महावीर मूर्ति भारत कला भवन, वाराणसी (१६१) में संगृहीत है (चित्र ३५)।[6] राजगिर की नेमि मूर्ति के समान ही इसमें भी धर्मचक्र के दोनों ओर महावीर के सिंह लांछन उत्कीर्ण हैं। वाराणसी से मिली और राज्य संग्रहालय, लखनऊ (४९–१९९) में सुरक्षित ल० छठीं-सातवीं शती ई० की एक अजितनाथ की मूर्ति में भी पीठिका पर गज लांछन की दो आकृतियां उत्कीर्ण हैं।[7]

अकोटा

अकोटा (बड़ौदा, गुजरात) से चार गुप्तकालीन कांस्य मूर्तियां मिली हैं।[8] पांचवीं-छठीं शती ई० की इन श्वेतांबर मूर्तियों में दो ऋषभ की और दो जीवन्तस्वामी महावीर की हैं (चित्र ५, ३६)। सभी में मूलनायक कायोत्सर्ग में खड़े हैं। एक ऋषभ मूर्ति में धर्मचक्र के दोनों ओर दो मृग और पीठिका छोरों पर यक्ष-यक्षी निरूपित हैं।[9] यक्ष-यक्षी के निरूपण का यह प्राचीनतम ज्ञात उदाहरण है। द्विभुज यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका हैं।[10] खेड्ब्रह्मा एवं वलभी से भी छठीं शती ई० की कुछ जैन मूर्तियां मिली हैं।[11]

चौसा

चौसा से ६ गुप्तकालीन जिन मूर्तियां मिली हैं, जो सम्प्रति पटना संग्रहालय में है।[12] दो उदाहरणों में (पटना संग्रहालय ६५५३, ६५५४) लटकती केश वल्लरियों से युक्त जिन ऋषभ हैं। दो अन्य जिनों (पटना संग्रहालय ६५५१,

---

१ वाजपेयी, के० डी०, 'मध्यप्रदेश की प्राचीन जैन कला', अनेकान्त, वर्ष १७, अं० ३, पृ० ११५–१६

२ स्ट०जै०आ०, पृ० १४

३ का०इं०इं०, खं० ३, पृ० ६५–६८

४ शाह, सी० जे०, जैनिज्म इन नार्थ इण्डिया, लन्दन, १९३२, पृ० २०९

५ निगम, एम० एल०, 'ग्लिम्प्सेस ऑव जैनिज़्म थ्रू आर्किअलाजी इन उत्तर प्रदेश', म०जै०वि०गो०जु०वा०, बंबई, १९६८, पृ० २१८

६ शाह, यू० पी०, 'ए फ्यू जैन इमेजेज इन दि भारत कला भवन, वाराणसी', छवि, पृ० २३४; तिवारी, एम० एन० पी०, 'ऐन अन्पब्लिश्ड जिन इमेज इन दि भारत कला भवन, वाराणसी', वि०इं०ज०, खं० १३, अं० १–२, पृ० ३७३–७५

७ शर्मा, आर० सी०, 'जैन स्कल्पचर्स ऑव दि गुप्त एज इन दि स्टेट म्यूजियम, लखनऊ', म०जै०वि०गो०जु०वा०, बम्बई, १९६८, पृ० १५५

८ शाह, यू० पी०, अकोटा ब्रोन्जेज, बम्बई, १९५९, पृ० २६–२९–अकोटा की जैन मूर्तियां श्वेताम्बर परम्परा की प्राचीनतम जैन मूर्तियां हैं।

९ वही, पृ० २८-२९, फलक १० ए, बी०, ११

१० देवताओं के आयुधों की गणना यहां एवं अन्यत्र निचली दाहिनी भुजा से प्रारम्भ कर घड़ी की सुई की गति के अनुसार की गई है।

११ स्ट०जै०आ०, पृ० १६-१७

१२ प्रसाद, एच० के०, पू०नि०, पृ० २८२-८३

६५५२) की पहचान एच० के० प्रसाद ने भामण्डल के ऊपर अंकित अर्धचन्द्र के आधार पर चन्द्रप्रभ से की है[1] जो दो कारणों से ठीक नहीं प्रतीत होती। प्रथम, शीर्षभाग में जिन-लांछन के अंकन की परम्परा अन्यत्र कहीं नहीं प्राप्त होती। दूसरे, जिनों के साथ लटकती जटाएं प्रदर्शित हैं जो उनके ऋषभ होने की सूचक हैं।

गुप्तोत्तर काल

राजघाट (वाराणसी) से ल० सातवीं शती ई० की एक ध्यानस्थ जिन मूर्ति मिली है, जो भारत कला भवन, वाराणसी (२१२) में संगृहीत है (चित्र २६)।[2] मूर्ति के सिंहासन के नीचे एक वृक्ष (कल्पवृक्ष) उत्कीर्ण है जिसके दोनों ओर द्विभुज यक्ष-यक्षी की मूर्तियां हैं। वाम भुजा में बालक से युक्त यक्षी अम्बिका है।[3] यक्षी अम्बिका की उपस्थिति के आधार पर जिन की सम्भावित पहचान नेमि से की जा सकती है। देवगढ़ के मन्दिर २० के समीप से ल० सातवीं शती ई० की एक जिन मूर्ति मिली है।[4] राजस्थान के सिरोही जिले के वसंतगढ़, नंदिय मन्दिर (महावीर मन्दिर) एवं भटेवा (पार्श्व मूर्ति) से भी सातवीं शती ई० की जैन मूर्तियां मिली हैं। रोहतक (दिल्ली के समीप) से मिली पार्श्व की श्वेताम्बर मूर्ति भी ल० सातवीं शती ई० की है।[5]

(२)

मध्य-युग (ल० ८वीं शती ई० से १२वीं शती ई० तक)

द्वितीय अध्याय के समान प्रस्तुत अध्याय में भी जैन मूर्ति अवशेषों का अध्ययन आधुनिक राज्यों के अनुसार किया गया है।

गुजरात

गुजरात के सभी क्षेत्रों से जैन स्थापत्य एवं मूर्तिविज्ञान के अवशेष प्राप्त होते हैं। कुम्भारिया एवं तारंगा के जैन मन्दिरों की शिल्प सामग्री प्रस्तुत अध्ययन की दृष्टि से विशेष महत्व की है। गुजरात की जैन शिल्प सामग्री श्वेताम्बर सम्प्रदाय से सम्बन्धित है। दिगम्बर मूर्तियां केवल धांक से ही मिली हैं। गुजरात की जैन मूर्तियों में जिन मूर्तियों की संख्या सबसे अधिक है। ऋषभ एवं पार्श्व की मूर्तियां सर्वाधिक हैं। मन्दिरों में २४ देवकुलिकाओं को संयुक्त करने की परम्परा थी जो निश्चित ही २४ जिनों की अवधारणा से प्रभावित थी। जिनों के जीवनदृश्यों एवं समवसरणों का चित्रण विशेष लोकप्रिय था। जिनों के बाद लोकप्रियता के क्रम में महाविद्याओं का दूसरा स्थान है। यक्ष-यक्षी युगलों में सर्वानुभूति एवं अम्बिका सर्वाधिक लोकप्रिय थे। अधिकांश जिनों के साथ यही यक्ष-यक्षी युगल निरूपित है। गोमुख-चक्रेश्वरी एवं धरणेन्द्र-पद्मावती यक्ष-यक्षी युगलों की भी कुछ मूर्तियां मिली हैं। सरस्वती, शान्तिदेवी, ब्रह्मशान्ति यक्ष, गणेश (चित्र ७७) अष्ट-दिक्पाल, क्षेत्रपाल एवं २४ जिनों के माता-पिता की भी मूर्तियां प्राप्त हुई हैं।

धांक (सौराष्ट्र) की जैन गुफाओं में ल० आठवीं शती ई० की ऋषभ, शान्ति, पार्श्व एवं महावीर जिनों की दिगम्बर मूर्तियां उत्कीर्ण हैं।[6] पार्श्व के साथ यक्ष-यक्षी कुबेर एवं अम्बिका हैं।[7] अकोटा की जैन कांस्य मूर्तियों (ल० छठीं

---

१ वही, पृ० २८३

२ तिवारी, एम० एन० पी०, 'ए नोट आन दि आइडेन्टिफिकेशन ऑव ए तीर्थंकर इमेज ऐट भारत कला भवन, वाराणसी', जैन जर्नल, खं० ६, अं० १, पृ० ४१-४३

३ अम्बिका की भुजा में आम्रलुम्बि नहीं प्रदर्शित है। ज्ञातव्य है कि अम्बिका की भुजा में आम्रलुम्बि ८ वीं-९ वीं शती ई० की कुछ अन्य मूर्तियों में भी नहीं प्रदर्शित है। ४ जि०इ०दे०, पृ० ५२

५ स्ट०जै०आ०, पृ० १६-१७; ढाकी, एम० ए०, पू०नि०, पृ० २९३

६ संकलिया, एच०डी०, 'दि अर्लिएस्ट जैन स्कल्पचर्स इन काठियावाड़', ज०रा०ए०सो०, जुलाई १९३८, पृ० ४२६-३०

७ स्ट०जै०आ०, पृ० १७

से ११ वीं शती ई०) में ऋषभ एवं पार्श्व की सर्वाधिक मूर्तियां हैं। अकोटा से अम्बिका, सर्वानुभूति, सरस्वती एवं अच्छुप्ता विद्या की भी मूर्तियां मिली हैं।[1] थान (सौराष्ट्र) में दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० के दो जैन मन्दिर एवं जिन और अम्बिका की मूर्तियां हैं। घोघा (भावनगर) से ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० की कई जैन मूर्तियां मिली हैं।[2] अहमदाबाद से भी कुछ जैन मूर्तियां मिली हैं जिनमें धराद (धारापद्र) की १०५३ ई० की अजित मूर्ति मुख्य है।[3] वड्नगर और सेजकपुर में दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० के जैन मन्दिर हैं। कुंभारिया एवं तारंगा में ग्यारहवीं से तेरहवीं शती ई० के जैन मन्दिर हैं, जिनकी शिल्प सामग्री का यहां कुछ विस्तार से उल्लेख किया जायगा। गिरनार एवं शत्रुंजय पहाड़ियों पर कुमारपाल के काल के नेमिनाथ एवं आदिनाथ मन्दिर हैं। भद्रेश्वर (कच्छ) में जगडु शाह के काल का बारहवीं शती ई० का एक जैन मन्दिर है।

कुंभारिया

कुंभारिया गुजरात के बनासकांठा जिले में स्थित है। यहां चौलुक्य शासकों के काल के ५ श्वेताम्बर जैन मंदिर हैं। ये मन्दिर (११ वीं–१३ वीं शती ई०) सम्भव, शान्ति, नेमि, पार्श्व एवं महावीर को समर्पित हैं।[4] यहां महाविद्याओं, सरस्वती, महालक्ष्मी एवं शान्तिदेवी का चित्रण सर्वाधिक लोकप्रिय था। महाविद्याओं में रोहिणी, अप्रतिचक्रा, अच्छुप्ता एवं वैरोट्या सर्वाधिक, और मानवी, गान्धारी, काली, सर्वास्त्रमहाज्वाला एवं मानसी अपेक्षाकृत कम लोकप्रिय थीं। सर्वानुभूति-अम्बिका सर्वाधिक लोकप्रिय यक्ष-यक्षी युगल था। गोमुख-चक्रेश्वरी एवं धरणेन्द्र-पद्मावती की भी कुछ मूर्तियां हैं। इनके अतिरिक्त ब्रह्मशान्ति यक्ष, गणेश, जिनों के जीवनदृश्य और २४ जिनों के माता-पिता भी निरूपित हुए।[5] प्रत्येक मन्दिर की शिल्प सामग्री संक्षेप में इस प्रकार है :

शान्तिनाथ मन्दिर—देवकुलिका ९ की जिन मूर्ति के वि० सं० ११११० (=१०५३ ई०) के लेख से शांतिनाथ मन्दिर कुंभारिया का सबसे प्राचीन मन्दिर सिद्ध होता है। पर इस मन्दिर की चार जिन मूर्तियों के वि० सं० ११३३ के लेख के आधार पर इसे १०७७ ई० में निर्मित माना गया है।[6] १६ देवकुलिकाओं और ८ रथिकाओं सहित मन्दिर चतुर्विंशति जिनालय है। अधिकांश देवकुलिकाओं की जिन मूर्तियों में मूलनायक की मूर्ति खण्डित है। जिन मूर्तियों में परिकर की आकृतियों एवं यक्ष-यक्षी के चित्रण में विविधता का अभाव और एकरसता दृष्टिगत होती है।

मूलनायक के पार्श्वों में चामरधर सेवक या कायोत्सर्ग में दो जिन आमूर्तित हैं। पार्श्ववर्ती जिन आकृतियां या तो लांछन रहित हैं, या फिर पांच और सात सर्पफणों के छत्र से युक्त सुपार्श्व और पार्श्व की हैं। परिकर में भी कुछ लघु जिन आकृतियां उत्कीर्ण हैं। पार्श्ववर्ती आकृतियों के ऊपर वेणु और वीणा वादन करती दो आकृतियां हैं। मूलनायक के शीर्ष भाग में त्रिछत्र, कलश और नमस्कार-मुद्रा में एक मानव आकृति है। मानव आकृति के दोनों ओर वाद्य-वादन करती (मुख्यतः दुन्दुभि) और गोमुख आकृतियां निरूपित हैं। परिकर में दो गज भी उत्कीर्ण हैं जिनके शुण्ड में कभी-कभी अभिषेक हेतु कलश प्रदर्शित हैं। सिंहासन के मध्य में चतुर्भुज शान्तिदेवी निरूपित हैं[7] जिसके दोनों ओर दो गज और सिंहासन की सूचक दो सिंह आकृतियां उत्कीर्ण हैं।[8] शान्तिदेवी की आकृति के नीचे दो मृगों से वेष्टित धर्मचक्र उत्कीर्ण है।[9]

---

१ शाह, यू० पी०, अकोटा ब्रोन्जेज, पृ० ३०-३१, ३३-३४, ३६-३७, ४३, ४६, ४८, ४९, ५२

२ इण्डियन आर्किअलाजी–ए रिव्यू, १९६१-६२, पृ० ९७

३ मेहता, एन० सी०, 'ए मेडिवल जैन इमेज ऑव अजितनाथ–१०५३ ए० डी०', इण्डि०एण्टि०, खं०५६, पृ०७२-७४

४ तिवारी, एम०एन०पी०, 'ए ब्रीफ सर्वे ऑव दि आइकानोग्राफिक डेटा ऐट कुंभारिया, नार्थ गुजरात', संबोधि, खं २, अं० १, पृ० ७–१४

५ जिनों के जीवनदृश्यों एवं माता-पिता के सामूहिक अंकन के प्राचीनतम उदाहरण कुंभारिया मन्दिर में हैं।

६ सोमपुरा, कान्तिलाल फूलचन्द, दि स्ट्रक्चरल टेम्पल्स ऑव गुजरात, अहमदाबाद, १९६८, पृ० १२९

७ शान्तिदेवी वरदमुद्रा, पद्म, पद्म (या पुस्तक) और फल (या कमण्डलु) से युक्त हैं।

८ खजुराहो की दो जिन मूर्तियों (मन्दिर १ और २) में भी सिंहासन के मध्य में शान्तिदेवी निरूपित हैं।

९ सिंहासन पर दो गजों, मृगों एवं शान्तिदेवी, तथा परिकर में वाद्य-वादन करती और गोमुख आकृतियों के चित्रण गुजरात-राजस्थान की श्वेताम्बर जिन मूर्तियों में ही प्राप्त होते हैं।

मूर्तियों में सामान्यतः जिनों के लांछन नहीं प्रदर्शित हैं। केवल लटकती जटाओं एवं पांच और सात सर्पफणों के छत्रों के आधार पर क्रमशः ऋषभ, सुपार्श्व एवं पार्श्व की पहचान सम्भव है। लांछनों के चित्रण के स्थान पर पीठिका लेखों में जिनों के नामोल्लेख की परम्परा लोकप्रिय थी।[1] सिंहासन छोरों पर अधिकांशतः यक्ष-यक्षी के रूप में सर्वानुभूति एवं अम्बिका आमूर्तित हैं। कुछ उदाहरणों में ऋषभ एवं पार्श्व के साथ पारम्परिक यक्ष-यक्षी भी निरूपित हैं। गुजरात-राजस्थान के अन्य क्षेत्रों की श्वेताम्बर जिन मूर्तियों में भी यही सामान्य विशेषताएं प्रदर्शित हैं। मन्दिर की भ्रमिका के वितानों पर जिनों के जीवनदृश्यों,मुख्यतः पंचकल्याणकों के विशद चित्रण हैं। इनमें ऋषभ, अर (?)[2], शान्ति,नेमि,पार्श्व एवं महावीर के जीवनदृश्य हैं (चित्र १४, २९, ४१)। दक्षिण-पूर्वी कोने की देवकुलिका में १२०९ ई० का एक जिन समवसरण है। पश्चिमी भ्रमिका के वितान पर २४ जिनों के माता-पिता भी आमूर्तित हैं। आकृतियों के नीचे उनके नाम खुदे हैं। माता की गोद में एक बालक (जिन) आकृति बैठी है। कुंभारिया के महावीर मन्दिर के वितान पर भी जिनों के माता-पिता चित्रित हैं।

मन्दिर के विभिन्न भागों पर रोहिणी, वज्रांकुशा, वज्रशृंखला, अप्रतिचक्रा, पुरुषदत्ता, वैरोट्या, अच्छुप्ता, मानसी और महामानसी महाविद्याओं की अनेक मूर्तियां हैं। महाविद्या मानवी की एक भी मूर्ति नहीं है। पूर्वी भ्रमिका के वितान पर १६ महाविद्याओं का सामूहिक चित्रण है (चित्र ७८)। १६ महाविद्याओं के सामूहिक चित्रण का यह प्राचीनतम, और गुजरात के सन्दर्भ में एकमात्र उदाहरण है।[3] ललितमुद्रा में आसीन इन महाविद्याओं के साथ वाहन नहीं प्रदर्शित है। उनके निरूपण में पारम्परिक क्रम का भी निर्वाह नहीं किया गया है। मानसी एवं महामानसी के अतिरिक्त महाविद्या समूह की अन्य सभी आकृतियों की पहचान सम्भव है।

महाविद्याओं के अतिरिक्त सरस्वती[4] एवं शान्तिदेवी[5] की भी कई मूर्तियां हैं। पश्चिमी शिखर के समीप द्विभुज अम्बिका की एक मूर्ति है। त्रिकमण्डप के वितान पर ब्रह्मशान्ति यक्ष, क्षेत्रपाल और अग्नि निरूपित हैं। त्रिकमण्डप के सोपान की दीवार पर भी ब्रह्मशान्ति यक्ष की एक मूर्ति है।[6] मन्दिर में ऐसी भी दो देवियां हैं जिनकी पहचान संभव नहीं है। एक देवी की भुजाओं में अंकुश एवं पाश है और वाहन गज या सिंह है। देवी सर्वानुभूति यक्ष की मूर्तिवैज्ञानिक विशेषताओं से प्रभावित प्रतीत होती है। दूसरी देवी की भुजाओं में त्रिशूल एवं सर्प है और वाहन वृषभ है।[7] देवी हिन्दू शिवा के लाक्षणिक स्वरूप से प्रभावित है। ये देवियां न केवल कुंभारिया वरन् गुजरात-राजस्थान के अन्य श्वेताम्बर स्थलों पर भी लोकप्रिय थीं।

महावीर मंदिर—१०६२ई० का महावीर मन्दिर भी चतुर्विंशति जिनालय है।[8] देवकुलिकाओं की जिन मूर्तियां १०८३ ई० से ११२९ ई० के मध्य की हैं। देवकुलिका ७ और १५ की पांच और सात सर्पफणों के छत्रों से युक्त सुपार्श्व

---

१ पीठिका लेखों के आधार पर शान्ति (देवकुलिका १) और पद्मप्रभ (देवकुलिका ७) की पहचान सम्भव है।

२ अर के जीवनदृश्य की सम्भावित पहचान केवल लेख के 'सुदर्शन' एवं 'देवी' नामों के आधार पर की जा सकती है जिनका जैन परम्परा में अर के पिता और माता के रूप में उल्लेख है।

३ तिवारी, एम०एन०पी०, 'दि आइकानोग्राफी ऑव दि सिक्सटीन जैन महाविद्याज् ऐज् रिप्रेजेन्टेड इन दि सीलिंग ऑव दि शान्तिनाथ टेम्पल्, कुंभारिया', संबोधि, खं० २, अं० ३, पृ० १५–२२

४ पद्म, पुस्तक, वीणा एवं स्रुक में से कोई दो सामग्री ऊपरी भुजाओं में, और अभय-(या वरद-) मुद्रा एवं कमण्डलु निचली भुजाओं में हैं।

५ शान्तिदेवी की ऊपरी दो भुजाओं में पद्म हैं।

६ ब्रह्मशान्ति यक्ष के करों में अक्षमाला, छत्र, पुस्तक एवं कमण्डलु प्रदर्शित हैं।

७ त्रिशूल, सर्प एवं वृषभ वाहन से युक्त देवी की एक मूर्ति पार्श्वनाथ मन्दिर के मूलप्रासाद की भित्ति पर भी है।

८ सोमपुरा, कान्तिलाल फूलचन्द, पूर्वो०, पृ० १२७

एवं पार्श्व की मूर्तियों में यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका हैं। पश्चिमी भ्रमिका के वितानों पर ऋषभ, शांति, नेमि, पार्श्व और महावीर के जीवनदृश्य उत्कीर्ण हैं (चित्र १३, २२, ४०)। एक वितान पर २४ जिनों के माता-पिता की मूर्तियां अंकित हैं। मन्दिर के पश्चिमी और उत्तरी प्रवेश-द्वारों के समीप २४ जिनों की माताओं का चित्रण करने वाले दो पट्ट भी सुरक्षित हैं। प्रत्येक स्त्री आकृति की दाहिनी भुजा में फल और बायीं में बालक स्थित हैं। १२८१ई० के एक पट्ट पर मुनि-सुव्रत के जीवन की शकुनिका विहार की कथा उत्कीर्ण है।[1] शान्तिनाथ मन्दिर के समान ही यहां भी महाविद्याओं, शान्ति-देवी, सरस्वती, अम्बिका, सर्वानुभूति एवं ब्रह्मशान्ति की अनेक मूर्तियां हैं (चित्र ८९)। यहां मानवी महाविद्या की भी मूर्तियां मिली हैं।

पार्श्वनाथ मन्दिर—पार्श्वनाथ मन्दिर का निर्माण बारहवीं शती ई० में हुआ।[2] देवकुलिकाओं में ११७९ ई० से १२०२ई० के मध्य की २४ जिन मूर्तियां सुरक्षित हैं। गूढ़मण्डप की दो पार्श्व मूर्तियों में यक्ष और यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका हैं, पर यहां उनके सिरों पर सर्पफणों के छत्र प्रदर्शित हैं। गूढ़मण्डप ही में अजित और शान्ति (१११९-२० ई०) की भी दो मूर्तियां हैं (चित्र २०)। महाविद्याओं में ज्वालापात्र से युक्त ज्वालामालिनी विशेष लोकप्रिय थी। मानवी, गान्धारी[3] एवं मानसी[4] की केवल एक-एक मूर्ति है। सरस्वती, अम्बिका एवं शान्तिदेवी की भी कई मूर्तियां हैं। मन्दिर में चार ऐसी भी चतुर्भुज देवियां हैं जिनकी पहचान सम्भव नहीं है।[5] देवकुलिका ५ की ऐसी एक मयूरवाहना देवी की भुजाओं में वरदमुद्रा, त्रिशूल, स्रुक एवं फल हैं। दूसरी वृषभवाहना देवी के करों में वरदमुद्रा, पाश, ध्वज एवं फल हैं। तीसरी देवी की ऊपरी भुजाओं में त्रिशू ल, एवं चौथी देवी की ऊपरी भुजाओं में शूल एवं अंकुश प्रदर्शित हैं।

नेमिनाथ मन्दिर—नेमिनाथ मन्दिर भी बारहवीं शती ई० में बना। यह भी चतुर्विंशति जिनालय है।[6] यह कुंभारिया का विशालतम जैन मन्दिर है। गूढ़मण्डप के एक पट्ट (१२५३ ई०) पर १७२ जिनों की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। गूढ़मण्डप में पांच और सात सर्पफणों के छत्रों वाली सुपार्श्व (स्वस्तिक लांछन सहित) एवं पार्श्व (११५७ ई०) की दो मूर्तियां हैं। दोनों उदाहरणों में यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका है। जटाओं से शोभित गूढ़मण्डप की दो ऋषभ मूर्तियों (१२५७ ई०) में यक्षी चक्रेश्वरी है पर यक्ष सर्वानुभूति ही है। त्रिकमण्डप की रथिका में १२६५ ई० का एक नन्दीश्वर पट्ट है।

मन्दिर की भीत्ति पर महाविद्याओं, यक्षियों, चतुर्भुज दिक्पालों एवं गणेश की आकृतियां उत्कीर्ण हैं। महा-विद्याओं में केवल रोहिणी, प्रज्ञप्ति, गांधारी, मानसी एवं महामानसी की मूर्तियां नहीं उत्कीर्ण हैं। ऊपरी भुजाओं में त्रिशूल या पाश धारण करने वाली मन्दिर की कुछ देवियों की पहचान सम्भव नहीं है। कुछ मूर्तियों में देवी की दो भुजाओं में धन का थैला प्रदर्शित है। देवी का स्वरूप सर्वानुभूति यक्ष से प्रभावित प्रतीत होता है। अधिष्ठान पर चतुर्भुज गणेश की भी एक मूर्ति है। कुंभारिया में गणेश की मूर्ति का यह अकेला उदाहरण है (चित्र ७७)। मूषकारूढ़ गणेश के करों में स्वदंत, परशु, सनालपद्म और मोदकपात्र हैं। मुखमण्डप की पूर्वी भित्ति पर चतुर्भुज महालक्ष्मी की ध्यानमुद्रा में आसीन मूर्ति है। मूर्ति-लेख में देवी को 'महालक्ष्मी' कहा गया है। देवकुलिकाओं की पश्चिमी भित्ति पर मयूरवाहना सरस्वती[7] और पद्मावती यक्षी (२)[8] निरूपित हैं (चित्र ५६, ७६)।

---

१ दो पूर्ववर्ती उदाहरण जालोर के पार्श्वनाथ मन्दिर और लूणवसही में हैं।

२ मन्दिर का प्राचीनतम लेख ११०४ ई० का है।

३ देवकुलिका १८—मुसल और वज्र से युक्त।

४ देवकुलिका ५—हंसवाहना एवं वज्र और पाश से युक्त।

५ इन चतुर्भुज मूर्तियों में देवियों की निचली भुजाओं में अभय-(या वरद-) मुद्रा और फल (या कलश) प्रदर्शित हैं।

६ मन्दिर का प्राचीनतम लेख वि०सं० ११९१ (= ११३४ ई०) का है—सोमपुरा, कान्तिलाल फूलचन्द, पूर्वनि०, पृ० १५८

७ सरस्वती के साथ मयूर वाहन का उल्लेख केवल दिगम्बर परम्परा में है।

८ कोष्ठ की संख्या यहां और अन्यत्र मूर्ति-संख्या की सूचक है।

सम्भवनाथ मन्दिर—सम्भवनाथ मन्दिर का निर्माण तेरहवीं शती ई० में हुआ।[1] मन्दिर की भित्ति पर महाविद्याओं, सरस्वती एवं शान्तिदेवी की मूर्तियां हैं।[2] महाविद्याओं में केवल रोहिणी, चक्रेश्वरी(२), वज्रांकुशा(३), महाकाली एवं सर्वास्त्रमहाज्वाला (मेषवाहना) ही आमूर्तित हैं। जंघा और अधिष्ठान की दो देवियों की पहचान सम्भव नहीं है। एक की ऊपरी भुजाओं में गदा और वज्र, तथा दूसरी की भुजाओं में धन का थैला और अंकुश प्रदर्शित हैं।

तारंगा

अजितनाथ मन्दिर—मेहसाणा जिले की तारंगा पहाड़ी पर चौलुक्य शासक कुमारपाल (११४३–७२ ई०) के शासनकाल में निर्मित अजितनाथ का विशाल श्वेताम्बर जैन मन्दिर है (चित्र ७९)।[3] गर्भगृह एवं गूढ़मण्डप में तेरहवीं-चौदहवीं शती ई० की जिन मूर्तियां हैं। मन्दिर की मूर्तियां चार से दस भुजाओं वाली हैं। मन्दिर में महाविद्याओं की सर्वाधिक मूर्तियां हैं। महाविद्याओं के साथ वाहनों का नियमित प्रदर्शन नहीं हुआ है। महाविद्याओं के निरूपण में सामान्यतः *निर्वाणकलिका* एवं *आचारदिनकर* के निर्देशों का पालन किया गया है। मन्दिर की महाविद्या मूर्तियों की संख्या के आधार पर उनकी लोकप्रियता का क्रम इस प्रकार है–अप्रतिचक्रा (१७), रोहिणी (८), वज्रशृंखला (८), महाकाली (६), वज्रांकुशा (४), प्रज्ञप्ति(३), गौरी(३), नरदत्ता(३), महामानसी (३), काली (२), वैरोट्या (२) एवं सर्वास्त्रमहाज्वाला (१)। अन्यत्र विशेष लोकप्रिय गांधारी, मानवी, अच्छुप्ता एवं मानसी की एक भी मूर्ति नहीं उत्कीर्ण है। सरस्वती (१४) और शान्तिदेवी (२१) की भी मूर्तियां हैं।

अन्य श्वेताम्बर स्थलों के समान यहां भी यक्षी चक्रेश्वरी और महाविद्या अप्रतिचक्रा के मध्य स्वरूपगत भेद कर पाना कठिन है।[4] अम्बिका यक्षी की केवल दो मूर्तियां हैं। सिंहवाहना अम्बिका के करों में वरदमुद्रा, आम्रलुम्बि, पाश एवं बालक हैं। मन्दिर में गोमुख (१) एवं सर्वानुभूति (३) यक्षों और क्षेत्रपाल (१) की भी मूर्तियां हैं। श्मश्रु युक्त क्षेत्रपाल की दो भुजाओं में गदा और सर्प हैं। भित्ति पर अष्ट-दिक्पाल मूर्तियों के तीन समूह उत्कीर्ण हैं। मन्दिर पर ऐसे कई देवों की भी मूर्तियां हैं जिनकी पहचान सम्भव नहीं है। ऐसी एक महिषारूढ़ देवता(३) की मूर्ति में अवशिष्ट भुजाओं में वरदमुद्रा, पाश और फल हैं। देवियों में दो ऊपरी भुजाओं में त्रिशूल एवं सर्प,या अंकुश एवं पाश धारण करने वाली देवियां विशेष लोकप्रिय थीं। इनकी निचली भुजाओं में वरदमुद्रा एवं फल (या कलश) हैं। स्मरणीय है कि ये देवियां गुजरात एवं राजस्थान के अन्य मन्दिरों में भी लोकप्रिय थीं। एक कुक्कुटवाहना देवी (दक्षिणी भित्ति) की अवशिष्ट भुजाओं में वरदमुद्रा, पद्म एवं दण्ड हैं। सिंहवाहना एक देवी (पश्चिमी जंघा) की भुजाओं में वरदमुद्रा, परशु, पाश और फल हैं। एक मयूरवाहना देवी (उत्तरी भित्ति) की सुरक्षित भुजा में त्रिशूल-घण्ट है। वृषभवाहना एक देवी (पश्चिमी भित्ति) की अवशिष्ट भुजाओं में वज्र और जलपात्र हैं। उत्तरी भित्ति की एक हंसवाहना (?) देवी के हाथों में वरदमुद्रा, अभयमुद्रा, पद्म, सर्प, त्रिशूल और कमण्डलु है। मन्दिर के अधिष्ठान पर भी ऐसी तीन देवियां उत्कीर्ण हैं जिनकी पहचान सम्भव नहीं है। पहली देवी (उत्तरी) की भुजाओं में वरदमुद्रा, अंकुश, सनालपद्म, कमण्डलु, दूसरी देवी (दक्षिण) की भुजाओं में वरदमुद्रा, पाश, वज्र एवं फल; और तीसरी देवी (उत्तरी) की भुजाओं में वरदमुद्रा, परशु, घण्ट एवं फल हैं।

राजस्थान

ल० आठवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों में विपुल संख्या में जैन मन्दिरों एवं

---

१ सोमपुरा, कान्तिलाल फूलचन्द, पू०नि०, पृ० १५८

२ तिवारी, एम०एन०पी०, 'कुंभारिया के सम्भवनाथ मन्दिर की जैन देवियां', *अनेकान्त*,वर्ष २५,अं०३, पृ० १०१-०३

३ सोमपुरा, कान्तिलाल फूलचन्द, 'दि आर्किटेक्चरल ट्रीटमेन्ट ऑव दि अजितनाथ टेम्पल् ऐट तारंगा', *विद्या*, खं० १४, अं० २, पृ० ५०–५७

४ गरुडवाहना देवी के करों में वरद-(या अभय-)मुद्रा, शंख, चक्र एवं गदा प्रदर्शित हैं।

मूर्तियों का निर्माण हुआ।[१] राजस्थान में भी महाविद्याओं का चित्रण ही सर्वाधिक लोकप्रिय था। महाविद्याओं की प्राचीनतम मूर्तियां इसी क्षेत्र में उत्कीर्ण हुईं।[२] इस क्षेत्र के भी सर्वाधिक लोकप्रिय यक्ष-यक्षी युगल सर्वानुभूति एवं अम्बिका ही थे। जिनों के जीवनदृश्यों, सर्वानुभूति एवं ब्रह्मशान्ति यक्षों, चक्रेश्वरी, अम्बिका, पद्मावती, सिद्धायिका यक्षियों और सरस्वती, शान्तिदेवी, जीवन्तस्वामी महावीर, गणेश एवं कृष्ण की भी इस क्षेत्र में प्रचुर संख्या में मूर्तियां उत्कीर्ण हुईं। जिनों के लांछनों के चित्रण के स्थान पर पीठिका लेखों में जिनों के नामोल्लेख की परम्परा ही लोकप्रिय थी। केवल ऋषभ एवं पार्श्व के साथ क्रमशः जटाओं एवं सर्पफणों का प्रदर्शन हुआ है। राजस्थान में इन्हीं दो जिनों की सर्वाधिक मूर्तियां उत्कीर्ण हुईं। इस क्षेत्र में श्वेताम्बर स्थलों का प्राधान्य है। केवल भरतपुर, कोटा, बांसवाड़ा, अलवर एवं बिजौलिया आदि स्थलों से दिगम्बर मूर्तियां मिली हैं।

ओसिया

महावीर मन्दिर—ओसिया (ओसपुर) का महावीर मन्दिर (श्वेतांबर) राजस्थान का प्राचीनतम सुरक्षित जैन मन्दिर है।[३] महावीर मन्दिर के समक्ष एक तोरण और बलानक (या नालमण्डप) है। बलानक के पूर्वी भाग में एक देवकुलिका संयुक्त है। महावीर मन्दिर के पूर्व और पश्चिम में चार अन्य देवकुलिकाएं भी हैं। बलानक में ९५६ ई० (वि०सं०१०१३) का एक लेख है।[४] लेख, स्थापत्य एवं शिल्प के आधार पर विद्वानों ने महावीर मन्दिर को आठवीं[५] और नवीं[६] शती ई० का निर्माण माना है। ९५६ ई० के कुछ बाद ही बलानक से जुड़ी पूर्वी देवकुलिका (१० वीं शती ई०) निर्मित हुई। महावीर मन्दिर के समीप की पूर्वी और पश्चिमी देवकुलिकाएं एवं तोरण (१०१८ ई०) ग्यारहवीं शती ई० में बने।[७] जैन प्रतिमाविज्ञान के अध्ययन की दृष्टि से महावीर मन्दिर की महाविद्या मूर्तियां विशेष महत्व की हैं। ये महाविद्या की आरम्भिक मूर्तियां हैं। महाविद्याओं के अतिरिक्त सर्वानुभूति एवं पार्श्व यक्षों, और अम्बिका एवं पद्मावती यक्षियों की भी मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। साथ ही द्विभुज अष्ट-दिक्पालों, सरस्वती, महालक्ष्मी और जैन युगलों की भी मूर्तियां मिली हैं। महावीर मन्दिर के समान ही देवकुलिकाओं पर भी महाविद्याओं, सर्वानुभूति यक्ष, अम्बिका यक्षी, गणेश और जीवन्तस्वामी महावीर की मूर्तियां हैं।

महावीर मन्दिर की द्विभुज एवं चतुर्भुज महाविद्याएं वाहनों से युक्त हैं। यहां प्रज्ञप्ति, नरदत्ता, गांधारी, महाज्वाला, मानवी एवं मानसी महाविद्याओं के अतिरिक्त अन्य सभी महाविद्याओं की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। महाविद्याओं के निरूपण में सामान्यतः बप्पभट्टि की चतुर्विंशतिका के निर्देशों का पालन किया गया है।[८] मन्दिर में महालक्ष्मी (१), पद्मावती (१),

१ जैन, के० सी०, जैनिज्म इन राजस्थान, शोलापुर, १९६३, पृ० १११ : हमने अपने अध्ययन में लूणवसही (१२३०ई०) की शिल्प सामग्री का भी उल्लेख किया है क्योंकि विषयवस्तु एवम् लाक्षणिक विशेषताओं की दृष्टि से लूणवसही की सामग्री पूर्ववर्ती विमलवसही (१०३१ ई०) की अनुगामिनी है।

२ ये मूर्तियां ओसिया के महावीर मन्दिर पर हैं।

३ ढाकी, एम० ए०, 'सम अर्ली जैन टेम्पल्स इन वेस्टर्न इण्डिया', म०जै०वि०गो०जु०वा०, बंबई, १९६८, पृ० ३१२

४ नाहर, पी० सी०, जैन इन्स्क्रिप्शन्स, भाग १, कलकत्ता, १९१८, पृ० १९२-९४, लेख सं० ७८८

५ भण्डारकर, डी० आर०, 'दि टेम्पल्स ऑव ओसिया', आ०स०ई०ऐ०रि०, १९०८-०९, पृ० १०८; प्रो०रि०आ०स०ई०,वे०स०, १९०७, पृ० ३६-३७; ब्राउन, पर्सी, इण्डियन आर्किटेक्चर, बम्बई, १९७१ (पु० मु०), पृ०१३५; कृष्ण देव, टेम्पल्स ऑव नार्थ इण्डिया, दिल्ली, १९६९, पृ० ३१; ढाकी, एम० ए०, पू०नि०, पृ० ३२४-२५

६ त्रिपाठी, एल० के०, एवोल्यूशन ऑव टेम्पल् आर्किटेक्चर इन नार्दर्न इण्डिया, पीएच्० डी० की अप्रकाशित थीसिस, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, १९६८, पृ० १५४, १९९-२०३

७ भण्डारकर, डी० आर०, पू०नि०, पृ० १०८; ढाकी, एम० ए०, पू०नि०, पृ० ३२५-२६

८ पर गौरी गोधा के स्थान पर वृषभवाहना है। गजवाहना वज्रांकुशी की भुजाओं में ग्रन्थ के निर्देशों के विरुद्ध जलपात्र एवं मुद्रा प्रदर्शित हैं। ग्रन्थ में वज्र एवं अंकुश के प्रदर्शन का निर्देश है।

सरस्वती (४), सर्पफणों के छत्र से युक्त पार्श्व यक्ष, तथा अर्द्धमण्डप के पूर्वी छज्जे पर मुनिसुव्रत के वरुण यक्ष की भी मूर्तियां दृष्टिगत होती हैं।[1] मन्दिर पर तीन ऐसी भी मूर्तियां हैं जिनकी पहचान सम्भव नहीं है। अर्द्धमण्डप के उत्तरी छज्जे पर सर्वानुभूति एवं अम्बिका से युक्त ऋषभ की एक मूर्ति है।[2] गूढ़मण्डप के प्रवेश-द्वार के दहलीज पर भी सर्वानुभूति और अम्बिका निरूपित हैं। सर्वानुभूति की दो अन्य मूर्तियां गूढ़मण्डप की पश्चिमी भित्ति पर हैं। मन्दिर की भित्ति पर त्रिभंग में खड़ी द्विभुज अष्ट-दिक्पालों की सवाहन मूर्तियां भी हैं।[3] गूढ़मण्डप में सुपार्श्व एवं पार्श्व की दो मूर्तियां हैं।

देवकुलिकाओं[4] की सवाहन महाविद्या मूर्तियां द्विभुज, चतुर्भुज एवं षड्भुज[5] हैं। इनमें मानवी और महाज्वाला महाविद्याओं की एक भी मूर्ति नहीं है। हंसवाहना मानसी की केवल एक ही मूर्ति (देवकुलिका ४) है। देवकुलिकाओं की महाविद्या मूर्तियों के निरूपण में महावीर मन्दिर की पूर्ववर्ती मूर्तियों एवं चतुर्विंशतिका के प्रभाव स्पष्ट हैं। देवकुलिकाओं पर सरस्वती (६), अम्बिका यक्षी (२),[6] सर्वानुभूति यक्ष, अष्ट-दिक्पालों, गणेश (३) एवं जीवन्तस्वामी महावीर की मूर्तियां हैं। सरस्वती की भुजाओं मे पद्म और पुस्तक प्रदर्शित हैं। एक मूर्ति (देवकुलिका १) में सरस्वती के दोनों हाथों में वीणा है। देवकुलिकाओं की गणेश मूर्तियां जैन शिल्प में गणेश की प्राचीनतम ज्ञात मूर्तियां हैं। इनमें चतुर्भुज एवं गजमुख गणेश परशु (या शूल), स्वदंत (या अंकुश), पद्म एवं मोदकपात्र से युक्त हैं।[7] पाश और शंख से युक्त एक द्विभुज देवी की पहचान सम्भव नहीं है। देवकुलिका १ के दक्षिणी अधिष्ठान पर श्मश्रु एवं जटामुकुट से शोभित और ललितमुद्रा में आसीन ब्रह्मशान्ति यक्ष की एक चतुर्भुज मूर्ति उत्कीर्ण है। ब्रह्मशान्ति की भुजाओं में वरदमुद्रा, स्रुक, पुस्तक एवं जलपात्र हैं। बलानक में १०१९ ई० की एक विशाल पार्श्वनाथ मूर्ति रखी है।

देवकुलिकाओं और तोरणद्वार पर जीवन्तस्वामी महावीर की कुल आठ मूर्तियां हैं (चित्र ३७)। इनमें मुकुट एवं हार आदि आभूषणों से सज्जित जीवन्तस्वामी महावीर कायोत्सर्ग में खड़े हैं। जीवन्तस्वामी की तीन स्वतन्त्र मूर्तियां (११वीं शती ई०) बलानक में भी सुरक्षित हैं।[8] इन मूर्तियों में जीवन्तस्वामी के साथ अष्ट-प्रातिहार्य,[9] यक्ष-यक्षी युगल, महाविद्याएं एवं लघु जिन आकृतियां भी निरूपित हैं। देवकुलिका १ और ३ के वेदिकाबन्धों पर जिनों के जीवनदृश्य उत्कीर्ण हैं। ये जीवनदृश्य सम्भवतः ऋषभ और पार्श्व से सम्बन्धित हैं। देवकुलिका २ के वेदिकाबन्ध पर किसी जिन के जन्म अभिषेक का दृश्य है। बलानक के एक पट्ट (१२०२ ई०) पर २२ जिनों की माताओं की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं जिनकी गोद में एक-एक बालक बैठा है। ओसिया के हिन्दू मन्दिरों पर भी दो जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं जो उस स्थल पर हिन्दुओं एवं जैनों के मध्य की सौमनस्यता की साक्षी हैं। एक मूर्ति (पार्श्वनाथ) सूर्य मन्दिर की पूर्वी भित्ति पर है और दूसरी पूर्वी समूह के पंचरथ मन्दिर पर है।

---

१ ढाकी, एम० ए०, पू०नि०, पृ० ३१७

२ सर्वानुभूति धन के थैले और अम्बिका आम्रलुम्बि एवं बालक से युक्त है।

३ दो भुजाओं में शूल एवं सर्प से युक्त ईशान् चतुर्भुज है, और कुबेर एवं यम की दो-दो मूर्तियां हैं।

४ पूर्वी और पश्चिमी समूहों की उत्तरी (प्रथम) देवकुलिकाओं को क्रमशः १ और २ एवं उसी क्रम में दूसरी देवकुलिकाओं को ३ और ४ की संख्याएं देकर अभिव्यक्त किया गया है। बलानक की पूर्वी देवकुलिका की संख्या ५ है।

५ केवल महामानसी ही षड्भुज है।

६ देवकुलिकाओं (१ और २) पर अम्बिका की लाक्षणिक विशेषताओं से प्रभावित ५ द्विभुज स्त्री मूर्तियां हैं जो सम्भवतः मातृदेवियों की मूर्तियां हैं। इन आकृतियों की एक भुजा में बालक और दूसरी में फल या जलपात्र है। देवकुलिका १ की दक्षिण जंघा की एक मूर्ति में बालक के स्थान पर आम्रलुम्बि भी प्रदर्शित है।

७ एक उदाहरण में वाहन गज है।

८ तिवारी, एम० एन० पी०, 'ओसिया से प्राप्त जीवन्तस्वामी की अप्रकाशित मूर्तियां', विश्वभारती, खं० १४, अं० ३, पृ० २१५-१८

९ यहां अष्ट-प्रातिहार्यों में सिंहासन नहीं उत्कीर्ण है।

मण्डोर में नाहडराओ गुफा के समीप दसवीं शती ई० का एक जैन मन्दिर है।[१] नवसर (सुरपुर) में भी प्राचीन जैन मन्दिर हैं।[२] नाणा (बाली) में ९६० ई० का एक महावीर मन्दिर है।[3] आहाड़ (उदयपुर) में ल० दसवीं शती ई० का आदिनाथ मन्दिर है। मन्दिर की भित्तियों पर भरत, सरस्वती, चक्रेश्वरी एवं अन्य जैन देवियों की मूर्तियां हैं। भद्रेसर एवं उथमण में ग्यारहवीं शती ई० के जैन मन्दिर हैं।[४] बीकानेर, तारानगर (९५२ ई०), राणी, नोहर एवं पालू में दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० के कई जैन मन्दिर हैं।[५] पल्लू से कई चतुर्भुज सरस्वती मूर्तियां मिली हैं जो कलात्मक अभिव्यक्ति एवं मूर्तिवैज्ञानिक दृष्टि से मध्यकाल की सर्वोत्कृष्ट सरस्वती मूर्तियां हैं। इनमें हंसवाहना सरस्वती सामान्यतः वरदाक्ष, पद्म, पुस्तक एवं कमण्डलु से युक्त हैं।[६]

नागदा (मेवाड़) में ९४६ ई० का एक पद्मावती मन्दिर (दिगंबर) है।[७] प्रतापगढ़ के समीप वीरपुर से नवीं-दसवीं शती ई० के जैन मन्दिरों के अवशेष मिले हैं। रामगढ़ (कोटा) के समीप आठवीं-नवीं शती ई० की जैन गुफाएं हैं। कृष्णविलास या विलास (कोटा) में आठवीं से दसवीं शती ई० के मध्य के जैन मन्दिरों (दिगंबर) के अवशेष हैं। जयपुर (चाट्सु) एवं अलवर के आसपास के क्षेत्रों में दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० के कुछ जैन मन्दिर हैं।[८] जगत (उदयपुर) में भी दसवी शती ई० का एक अम्बिका मन्दिर है।[९] पाली में ग्यारहवीं शती ई० का नवलखा पार्श्वनाथ मन्दिर है।[१०]

घाणेराव

महावीर मन्दिर—घाणेराव (पाली) का महावीर मन्दिर दसवीं शती ई० का श्वेताम्बर जैन मन्दिर है।[११] ११५६ ई० में मन्दिर में २४ देवकुलिकाओं का निर्माण किया गया। मन्दिर में १४ महाविद्याओं, दिक्पालों, गोमुख (१), सर्वानुभूति (५), ब्रह्मशान्ति (१), चक्रेश्वरी (२), अम्बिका (२), गणेश और नवग्रहों की मूर्तियां हैं। मन्दिर की जंघा पर द्विभुज दिक्पालों की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। दिक्पालों के अतिरिक्त मन्दिर की अन्य सभी मूर्तियां चतुर्भुज हैं। जैन परम्परा के अनुरूप यहां दस दिक्पालों की मूर्तियां हैं। नवें और दसवें दिक्पाल क्रमशः ब्रह्मा एवं अनन्त हैं। त्रिमुख ब्रह्मा जटामुकुट एवं श्मश्रु, और अनन्त पांच सर्पफणों के छत्र से युक्त हैं। जटामुकुट से युक्त चतुर्भुज ब्रह्मशान्ति (अधिष्ठान) की भुजाओं में वरदाक्ष, पद्म, छत्र एवं जलपात्र हैं। अधिष्ठान पर महालक्ष्मी और वैरोट्या की भी मूर्तियां हैं।

अर्धमण्डप की सीढ़ियों के समीप ऐसी दो देवियां उत्कीर्ण हैं जिनकी पहचान सम्भव नहीं है। एक देवी की भुजाओं में पद्म, अंकुश, पाश एवं फल हैं।[१२] दूसरी देवी के पार्श्व में एक घट (वाहन) और भुजाओं में फल, पद्म, दण्ड (?) एवं जलपात्र हैं। गूढ़मण्डप की द्वारशाखा की कूर्मवाहना देवी की पहचान भी सम्भव नहीं है। देवी के करों में अभयमुद्रा, पाश, दण्ड (?) एवं कमल हैं। गूढ़मण्डप एवं गर्भगृह के प्रवेश-द्वारों पर द्विभुज एवं चतुर्भुज महाविद्याओं की सवाहन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। इनमें मानवी एवं सर्वास्त्रमहाज्वाला के अतिरिक्त अन्य सभी महाविद्याओं की मूर्तियां हैं। इनके

---

१ प्रो०रि०आ०स०इं०, वे०स०, १९०६-०७, पृ० ३१

२ वही, १९११-१२, पृ० ५३

३ वही, १९०७-०८, पृ० ४८-४९

४ जैन, के० सी०, पू०नि०, पृ० ११३

५ वही, पृ० ११३-१४; गोयत्ज, एच०, दि आर्ट ऐण्ड आर्किटेक्चर ऑव बीकानेर स्टेट, आक्सफोर्ड, १९५०, पृ० ५८

६ शर्मा, ब्रजेन्द्रनाथ, जैन प्रतिमाएं, दिल्ली, १९७९, पृ० १०-१९

७ प्रो०रि०आ०स०इं०, वे०स०, १९०४-०५, पृ० ६१

८ जैन, के० सी०, पू०नि०, पृ० ११४-१५

९ ढाकी, एम० ए०, पू०नि०, पृ० ३०५

१० प्रो०रि०आ०स०इं०, वे०स०, १९०७-०८, पृ० ४२; ढाकी, एम० ए०, पू०नि०, पृ० ३३३-३४

११ प्रो०रि०आ०स०इं०, वे०स०, १९०७-०८, पृ० ५९; कृष्ण देव, पू०नि०, पृ० ३९; ढाकी, एम० ए०, पू०नि०, पृ० ३२८-३२

१२ मन्दिर के गूढ़मण्डप की द्वारशाखा पर भी इस देवी की एक मूर्ति है।

चित्रण में निर्वाणकलिका के निर्देशों का पालन किया गया है। गूढ़मण्डप के उत्तरंग पर स्थानक मुद्रा में द्विभुज नवग्रहों की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं।[1] गूढ़मण्डप के एक स्तम्भ पर चतुर्भुज गणेश एवं ललाट-बिम्ब पर सुपार्श्वनाथ की मूर्तियां हैं। देवकुलिकाओं की भित्तियों पर वैरोट्या, चक्रेश्वरी, वज्रांकुशी एवं सरस्वती की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं।

सादरी

पार्श्वनाथ मन्दिर—सादरी (पाली) का पार्श्वनाथ मन्दिर ग्यारहवीं शती ई० का है।[2] मन्दिर पर चतुर्भुज महाविद्याओं, सरस्वती, दिक्पालों, अप्सराओं एवं जैन ग्रन्थों में अवर्णित देवियों की मूर्तियां हैं। सर्वानुभूति एवं अम्बिका या किसी अन्य यक्ष-यक्षी की एक भी मूर्ति नहीं उत्कीर्ण है। मन्दिर पर केवल ११ महाविद्याएं निरूपित हुई। ये रोहिणी, वज्रांकुशी, वज्रशृंखला, अप्रतिचक्रा, गौरी, पुरुषदत्ता, काली, महाकाली, महाज्वाला, वैरोट्या एवं महामानसी हैं।[3]

पूर्वी वरण्ड पर एक चतुर्भुज देवता की मूर्ति है। देवता के हाथों में छल्ला, पद्म, पद्म और कमण्डलु हैं। देवता की पहचान सम्भव नहीं है। महाविद्याओं के बाद सर्वाधिक मूर्तियां शान्तिदेवी की हैं। शान्तिदेवी के दो हाथों में पद्म हैं। मन्दिर पर जैन परम्परा में अनुल्लिखित नौ चतुर्भुज देवियां भी उत्कीर्ण हैं। इनकी निचली भुजाओं में सर्वदा अभय- (या वरद-) मुद्रा एवं फल (या जलपात्र) हैं। पहली गजवाहना देवी की ऊपरी भुजाओं में त्रिशूल एवं शूल, दूसरी देवी की भुजाओं में सनालपद्म एवं खेटक, तीसरी देवी की भुजाओं में त्रिशूल, चौथी देवी की भुजाओं में खड्ग एवं अभयमुद्रा, पांचवीं देवी की भुजाओं में पाश एवं पद्म, छठीं सिंहवाहना देवी की भुजाओं में अंकुश एवं धनुष, सातवीं गजवाहना देवी की भुजाओं में शूल एवं पाश, आठवीं देवी की भुजाओं में गदा एवं पाश, और नवीं सिंहवाहना देवी की भुजाओं में अंकुश एवं पाश प्रदर्शित हैं। ल० ग्यारहवीं शती ई० का एक नन्दीश्वर द्वीप पट्ट मन्दिर की चहारदीवारी के समीप की दीवार पर उत्कीर्ण है। नन्दीश्वर द्वीप पट्ट का सम्भवतः यह प्राचीनतम ज्ञात उदाहरण है।[4]

वर्माण

महावीर मन्दिर—वर्माण (पाली) में परवर्ती नवीं शती ई० का एक महावीर मन्दिर है।[5] इस श्वेताम्बर मन्दिर में २४ देवकुलिकाएं संयुक्त हैं। मन्दिर में महावीर, अम्बिका एवं महालक्ष्मी की मूर्तियां हैं।

सेवड़ी

महावीर मन्दिर—सेवड़ी (पाली) का महावीर मन्दिर (श्वेताम्बर) ग्यारहवीं शती ई० का चतुर्विंशति जिनालय है।[6] मन्दिर की भीत्तियों पर द्विभुज अप्रतिचक्रा एवं वैरोट्या महाविद्याओं, जीवन्तस्वामी महावीर, क्षेत्रपाल, ब्रह्मशान्ति यक्ष एवं महावीर की मूर्तियां हैं। द्विभुज क्षेत्रपाल निर्वस्त्र है और गदा एवं सर्प से युक्त है। श्मश्रु एवं पादुका से युक्त ब्रह्मशान्ति के हाथों में अक्षमाला एवं जलपात्र हैं। गूढ़मण्डप के द्वारशाखाओं पर चक्रेश्वरी, निर्वाणी एवं पद्मावती यक्षियों की मूर्तियां हैं। गर्भगृह के प्रवेश-द्वार पर यक्षियों एवं महाविद्याओं की मूर्तियां हैं। महाविद्याओं में रोहिणी, वज्रांकुशा, गांधारी, वैरोट्या, अच्छुप्ता, प्रज्ञप्ति एवं महामानसी की पहचान सम्भव है। उत्तरंग की जिन आकृति के पार्श्वों में पुरुषदत्ता, चक्रेश्वरी एवं काली महाविद्याओं की मूर्तियां हैं। तीन देवियों की पहचान सम्भव नहीं है। पहली नरवाहना

---

१ श्वेताम्बर मन्दिरों में नवग्रहों का चित्रण अन्यत्र दुर्लभ है।

२ ढाकी, एम० ए०, पू०नि०, पृ० ३४५-४६

३ अन्यत्र विशेष लोकप्रिय प्रज्ञप्ति, अच्छुप्ता एवं मानसी महाविद्याओं की एक भी मूर्ति नहीं है।

४ १३वीं-१४वीं शती ई० के दो अन्य उदाहरण कुंभारिया के नेमिनाथ एवं राणकपुर के आदिनाथ (चौमुखी) मंदिरों में हैं—स्ट०जै०आ०, पृ० ११९-२१

५ ढाकी, एम०ए०, पू०नि०, पृ० ३२७-२८

६ प्रो०रि०आ०स०ई०,वे०स०, १९०७-०८, पृ० ५३; ढाकी, एम० ए०, पू०नि०, पृ० ३३७-४०

देवी की दो भुजाओं में पुस्तक, दूसरी नागवाहना देवी की भुजाओं में पात्र एवं दण्ड, और तीसरी अजवाहना देवी की भुजाओं में खड्ग एवं फलक हैं।

नाडोल

नाडोल या नड्डुल (पाली) में पद्मप्रभ, नेमिनाथ एवं शान्तिनाथ को समर्पित ग्यारहवीं शती ई० के तीन श्वेताम्बर जैन मन्दिर हैं।[1]

नेमिनाथ मन्दिर—नेमिनाथ मन्दिर के शिखर पर चक्रेश्वरी एवं शान्तिदेवी की चतुर्भुज मूर्तियां हैं। दक्षिणी शिखर पर किसी जिन के जन्म-कल्याणक का दृश्य है जिसमें एक बालक (जिन) चतुर्भुज इन्द्र की गोद में बैठा है। इन्द्र ध्यानमुद्रा में विराजमान हैं और उनकी निचली भुजायें गोद में हैं तथा ऊपरी में अंकुश एवं वज्र हैं। जगती की एक वृषभवाहना (?) देवी की भुजाओं में गदा प्रदर्शित है। देवी की पहचान सम्भव नहीं है। गूढ़मण्डप की पश्चिमी भित्ति पर चतुर्भुज कृष्ण निरूपित हैं। कृष्ण समभंग में खड़े हैं और किरीटमुकुट, छन्नवीर और वनमाला से अलंकृत हैं। उनकी ऊपरी भुजाओं में गदा और चक्र हैं। सम्भवत: नेमिनाथ मन्दिर होने के कारण ही कृष्ण को यहां आमूर्तित किया गया।

शान्तिनाथ मन्दिर—मन्दिर की भित्ति पर स्त्री दिक्पालों की आकृतियां हैं।[2] जंघा की मूर्तियों में केवल गौरी महाविद्या की ही पहचान सम्भव है। भित्ति की गजवाहना और भुजाओं में वरदमुद्रा, परशु, मुद्गर एवं जलपात्र, तथा वरदाक्ष, त्रिशूल, नाग एवं फल से युक्त दो देवियों की पहचान सम्भव नहीं है।

पद्मप्रभ मन्दिर—पद्मप्रभ मन्दिर नाडोल का विशालतम जैन मन्दिर है। मन्दिर की भित्तियों पर अप्रतिचक्रा, वैरोट्या एवं वज्रश्रृंखला महाविद्याओं एवं अष्ट-दिक्पालों की मूर्तियां हैं। अधिष्ठान पर सर्वानुभूति यक्ष एवं अम्बिका यक्षी की भी मूर्तियां हैं। अधिष्ठान की पद्म, खड्ग और जलपात्र से युक्त एक यक्ष की पहचान सम्भव नहीं है। यहां शान्तिदेवी की सर्वाधिक स्वतन्त्र मूर्तियां (११) हैं। शान्तिदेवी की ऊपरी भुजाओं में सनाल पद्म और निचली में वरदमुद्रा एवं फल (या जलपात्र) प्रदर्शित हैं। वीणा और पुस्तक धारिणी सरस्वती की भी चार मूर्तियां हैं। अधिष्ठान पर वज्रांकुशा (१), वज्रश्रृंखला (१), अप्रतिचक्रा (३), महाकाली[3] (१), काली (१)[4] महाविद्याओं एवं महालक्ष्मी की भी मूर्तियां हैं। त्रिशूल, सर्प, फल; दो ऊपरी भुजाओं में स्रुक; और गदा एवं धनुष धारण करने वाली तीन देवियों की पहचान सम्भव नहीं है।

नाड्लाई

नाड्लाई (पाली) में दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० के श्वेताम्बर जैन मन्दिर हैं।[5] यहां के मुख्य मन्दिर आदिनाथ, शान्तिनाथ, नेमिनाथ एवं पार्श्वनाथ को समर्पित हैं। इनमें आदिनाथ मन्दिर विशालतम एवं प्राचीन है। मन्दिर के लेख से ज्ञात होता है कि मन्दिर मूलतः महावीर को समर्पित था। इसका निर्माण दसवीं शती ई० के अन्त में हुआ।[6] मन्दिर के गर्भगृह की दहलीज पर सर्वानुभूति एवं अम्बिका की द्विभुज मूर्तियां हैं। नेमिनाथ एवं पार्श्वनाथ मन्दिरों का निर्माण ग्यारहवीं शती ई० में हुआ। इन पर मूर्तियां नहीं उत्कीर्ण हैं। केवल शान्तिनाथ मन्दिर (११वीं शती ई०) पर ही जैन देवों की मूर्तियां हैं।

---

१ ढाकी, एम० ए०, मू०शि०, पृ० ३४३-४५   २ वही, पृ० ३४३

३ देवी वरदमुद्रा, अंकुश, त्रिशूल-घण्टा एवं कुण्डिका से युक्त हैं।

४ काली की ऊपरी भुजाओं में गदा एवं सनाल पद्म हैं। विमलवसही के रंगमण्डप की मूर्ति में भी काली की भुजाओं में गदा एवं सनाल पद्म प्रदर्शित हैं।

५ ढाकी, एम० ए०, मू०शि०, पृ० ३४१-४२। शान्तिनाथ मन्दिर के अतिरिक्त अन्य मन्दिरों पर मूर्तियां नहीं उत्कीर्ण हैं।

६ साहित्यिक परम्परा में इस मन्दिर के निर्माण की तिथि ९०८ ई० है—ढाकी, एम०ए०, मू०शि०,पृ० ३४१

शान्तिनाथ मन्दिर की मूर्तियां केवल अधिष्ठान पर उत्कीर्ण हैं। इनमें चतुर्भुज महाविद्याओं, शान्तिदेवी, सरस्वती एवं यक्षों की मूर्तियां हैं। वरदमुद्रा, त्रिशूल, सर्प एवं जलपात्र; और वरदमुद्रा, दण्ड, पद्म एवं जलपात्र से युक्त दो देवताओं की सम्भावित पहचान क्रमशः ईश्वर और ब्रह्मशान्ति यक्षों से की जा सकती है। महाविद्याओं में केवल रोहिणी, वज्रांकुशी[1] एवं अप्रतिचक्रा[2] की ही मूर्तियां हैं। दो उदाहरणों में देवियों की पहचान सम्भव नहीं है। पहली देवी वरदमुद्रा, अंकुश एवं जलपात्र, और दूसरी वरदमुद्रा, पाश, पद्म एवं धनुष (?) से युक्त है। वेदिकाबन्ध पर काम-क्रिया में रत ५० युगलों की मूर्तियां भी उत्कीर्ण हैं।[3]

आबू

विमलवसही—आबू (सिरोही) स्थित विमलवसही आदिनाथ को समर्पित है। यह श्वेताम्बर मन्दिर अपने शिल्प वैभव के लिए विश्व प्रसिद्ध है। विमलवसही के मूलप्रासाद और गूढ़मण्डप चौलुक्य शासक भीमदेव प्रथम के दण्डनायक विमल द्वारा ग्यारहवीं शती ई० के प्रारम्भ (१०३१ई०) में बनवाये गये। रंगमण्डप, भ्रमिका और ५४ देवकुलिकाओं का निर्माण कुमारपाल के मन्त्री पृथ्वीपाल एवं पृथ्वीपाल के पुत्र धनपाल के काल (११४५–८९ ई०) में हुआ।[4]

कुंभारिया के जैन मन्दिरों की भांति विमलवसही की जिन मूर्तियां भी मूलप्रासाद, गूढ़मण्डप एवं देवकुलिकाओं में स्थापित है। देवकुलिकाओं की जिन मूर्तियों पर १०६२ ई० से ११८८ ई० के लेख हैं। विमलवसही की जिन मूर्तियों की सामान्य विशेषताएं कुंभारिया की जिन मूर्तियों के समान हैं।[5] अधिकांशतः जिन ध्यानमुद्रा में आसीन हैं। सिंहासन के मध्य की शान्तिदेवी की भुजाओं में वरदमुद्रा, पद्म, पद्म (या पुस्तक) एवं कमण्डलु हैं।[6] सुपार्श्व और पार्श्व के साथ क्रमशः पांच और सात सर्पफणों के छत्र प्रदर्शित हैं। अन्य जिनों की पहचान के आधार पीठिका लेखों में उत्कीर्ण उनके नाम हैं। पार्श्ववर्ती चामरधरों की एक भुजा में चामर है और दूसरी में घट है या जानु पर स्थित है। मूलनायक के पार्श्वों में जिन मूर्तियों के उत्कीर्ण होने पर चामरधरों की मूर्तियां मूर्ति छोरों पर बनी हैं। मूलनायक के पार्श्वों में सामान्यतः सुपार्श्व या पार्श्व निरूपित हैं। ऊपर दो ध्यानस्थ जिन भी आमूर्तित हैं। सिंहासन छोरों पर यक्ष-यक्षी युगल निरूपित हैं। ऋषभ, सुपार्श्व एवं पार्श्व की कुछ मूर्तियों के अतिरिक्त अन्य उदाहरणों में सभी जिनों के साथ यक्ष-यक्षी रूप में सर्वानुभूति एवं अम्बिका निरूपित हैं। देवकुलिकाओं एवं गूढ़मण्डप के दहलीजों पर भी सर्वानुभूति एवं अम्बिका ही है।[7] गर्भगृह एवं देवकुलिका २१ की दो ऋषभ मूर्तियों में यक्ष-यक्षी गोमुख एवं चक्रेश्वरी हैं। देवकुलिका १९ की सुपार्श्व मूर्ति में गजारूढ़ यक्ष सर्वानुभूति है पर यक्षी पारम्परिक है। देवकुलिका ४ की पार्श्व मूर्ति (११८८ ई०) में यक्ष-यक्षी धरणेन्द्र एवं पद्मावती हैं।

देवकुलिका १७ में एक जिन चौमुखी है। पीठिका लेखों के आधार पर चौमुखी के तीन जिनों की पहचान क्रमशः ऋषभ, चन्द्रप्रभ एवं महावीर से सम्भव है। तीन जिनों के साथ यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका हैं, पर ऋषभ के साथ

---

१ गजारूढ़ एवं वरदमुद्रा, अंकुश (?), पाश और जलपात्र से युक्त।

२ वरदमुद्रा, चक्र, चक्र एवं जलपात्र से युक्त।

३ पूर्व-मध्यकालीन कुछ जैन ग्रन्थों में भी ऐसे उल्लेख हैं जिनसे कलाकारों ने काम-क्रिया से सम्बन्धित मूर्तियों के जैन मन्दिरों पर अंकन की प्रेरणा प्राप्त की होगी—हरिवंशपुराण (जिनसेन कृत) २९.१–५।

४ जयन्तविजय, मुनिश्री, होली आबू (अनु० यू० पी० शाह), भावनगर, १९५४, पृ० २८–२९; ढाकी, एम० ए०, 'विमलवसही की डेट की समस्या' (गुजराती), स्वाध्याय, खं० ९, अं० ३, पृ० ३४९–६४

५ मूलनायक की मूर्तियां अधिकांश उदाहरणों में गायब हैं।

६ एक जिन चौमुखी (देवकुलिका १७) में वज्रांकुशी भी उत्कीर्ण है।

७ गूढ़मण्डप के दक्षिणी प्रवेश-द्वार पर चक्रेश्वरी उत्कीर्ण है।

गोमुख एवं चक्रेश्वरी निरूपित हैं। देवकुलिका २० में एक जिन समवसरण भी सुरक्षित है। भ्रमिका के वितानों पर जिनों के जीवनदृश्य उत्कीर्ण हैं। देवकुलिका ९ और १६ के वितानों पर जिनों के पंचकल्याणकों के अंकन हैं। पर इनमें जिनों की पहचान सम्भव नहीं है। देवकुलिका १० के वितान पर नेमि और देवकुलिका १२ के वितान पर शान्ति के जीवनदृश्य उत्कीर्ण हैं। बारहवीं शती ई० के एक पट्ट पर १७० जिन आकृतियां बनी हैं।

अन्य श्वेताम्बर स्थलों के समान ही विमलवसही में भी महाविद्याओं का चित्रण ही सर्वाधिक लोकप्रिय था। यहां १६ महाविद्याओं के सामूहिक अंकन के दो उदाहरण हैं। एक उदाहरण रंगमण्डप में और दूसरा देवकुलिका ४१ के वितान पर है। रंगमण्डप के १६ महाविद्याओं के निरूपण में पारम्परिक वाहन एवं आयुध प्रदर्शित हैं।[1] महाविद्याएं दोनों उदाहरणों में त्रिभंग में खड़ी हैं। रंगमण्डप के उदाहरण में महाविद्याएं चतुर्भुज और देवकुलिका ४१ के उदाहरण में षड्भुज हैं। रंगमण्डप की कुछ महाविद्याओं के निरूपण में हिन्दू देवकुल के मूर्ति-वैज्ञानिक-तत्वों का अनुकरण किया गया है। प्रज्ञप्ति की भुजा में शक्ति के स्थान पर कुक्कुट का प्रदर्शन हिन्दू कौमारी का प्रभाव है।[2] गौरी का वाहन गोधा के स्थान पर वृषभ है जो हिन्दू शिवा का प्रभाव है। अप्रतिचक्रा की केवल दो भुजाओं में चक्र, महाकाली के वाहन के रूप में नर के स्थान पर हंस, महाज्वाला के साथ बिडाल या शूकर के स्थान पर सिंहवाहन, काली की भुजा में पुस्तक, गांधारी की भुजा में पाश, और मानसी के वाहन के रूप में हंस के स्थान पर मेष के चित्रण कुछ ऐसी विशेषताएं हैं जिनका जैन ग्रन्थों में उल्लेख नहीं मिलता। अच्छुप्ता की भुजाओं में खड्ग और फलक भी नहीं प्रदर्शित हैं।

देवकुलिका ४१ की षड्भुज महाविद्याओं की मध्य की दो भुजाओं से सामान्यतः ज्ञानमुद्रा व्यक्त है, और उनकी निचली भुजाओं में वरदमुद्रा और फल (या कमण्डलु) हैं। इस प्रकार महाविद्याओं के विशिष्ट आयुध केवल दो ऊपरी भुजाओं में ही प्रदर्शित हैं। इनमें वाहन भी नहीं उत्कीर्ण है। रंगमंडप की महाविद्याओं और देवकुलिका४१ की महाविद्याओं के मूर्ति लक्षणों में पर्याप्त अन्तर दृष्टिगत होता है। यहां अप्रतिचक्रा की दो मूर्तियां हैं। एक में ऊपरी भुजाओं में चक्र, एवं दूसरे में गदा और चक्र हैं। अंकुश-पाश, त्रिशूल-चक्र, वीणा-पुस्तक एवं स्रुक-पुस्तक धारण करने वाली चार महाविद्याओं की पहचान सम्भव नही है। केवल रोहिणी, वज्रांकुशा, अप्रतिचक्रा, प्रज्ञप्ति, वज्रशृंखला, पुरुषदत्ता, गौरी, मानवी एवं महाकाली महाविद्याओं की ही पहचान सम्भव है। महाविद्याओं के सामूहिक अंकनों के अतिरिक्त उनकी अनेक स्वतन्त्र मूर्तियां भी हैं। इनमें मुख्यतः रोहिणी, अप्रतिचक्रा,वज्रांकुशा, वज्रश्रृङ्खला, वैरोट्या,[3] पुरुषदत्ता, अच्छुप्ता[4] एवं महामानसी की मूर्तियां हैं। मानवी, गौरी, गांधारी एवं मानसी की केवल कुछ ही मूर्तियां हैं। षोडशभुज रोहिणी (देवकुलिका ११), अच्छुप्ता (देवकुलिका ४३), वैरोट्या (देवकुलिका ४९) एवं विंशतिभुज महामानसी (देवकुलिका ३९) की मूर्तियां लाक्षणिक दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण हैं।

महाविद्याओं के अतिरिक्त अम्बिका, सरस्वती, शान्तिदेवी[5] एवं महालक्ष्मी की भी अनेक मूर्तियां हैं। सिंहवाहना अम्बिका की द्विभुज और चतुर्भुज मूर्तियां हैं (चित्र ५४)। हंसवाहना सरस्वती की भुजाओं में वरदाक्ष (कमण्डलु), सनाल-पद्म, पुस्तक और वीणा (या स्रुक) हैं। सरस्वती की एक षोडशभुज मूर्ति देवकुलिका ४४ के वितान पर है। महालक्ष्मी सर्वदा ध्यानमुद्रा में विराजमान है और उसके शीर्ष भाग में दो गजों की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। देवी की निचली भुजाएं गोद में हैं और ऊपरी भुजाओं में पद्म प्रदर्शित हैं। देवी के पद्मासन पर कभी-कभी नवनिधि के सूचक नौ घट उत्कीर्ण हैं।

---

१ रंगमण्डप की महाविद्याओं के निरूपण में मुख्यतः निर्वाणकलिका के निर्देशों का पालन किया गया है।

२ विमलवसही की ही कुछ मूर्तियों में प्रज्ञप्ति के दोनों हाथों में शूल भी प्रदर्शित है।

३ रंगमण्डप से सटे वितान पर वैरोट्या की एक विशिष्ट मूर्ति है। सहस्रफण पार्श्व मूर्ति के समान ही इसमें भी वैरोट्या चारों ओर सर्प की कुण्डलियों से वेष्टित है। उसके हाथों में खड्ग, सर्प, खेटक और सर्प हैं।

४ अच्छुप्ता की भुजाओं में खड्ग और खेटक के स्थान पर धनुष और बाण हैं।

५ शान्तिदेवी की सर्वाधिक मूर्तियां हैं।

सर्वानुभूति[1] एवं ब्रह्मशान्ति यक्षों और अष्ट-दिक्पालों की भी कई मूर्तियां हैं। एक षड्भुज मूर्ति में ब्रह्मशान्ति यक्ष का वाहन हंस है और उसकी भुजाओं में वरदमुद्रा, अभयमुद्रा, छत्र, सनालपद्म, पुस्तक एवं कमण्डलु हैं। रंगमण्डप से सटे वितान पर इन्द्र की दशभुज मूर्तियां हैं। रंगमण्डप के उत्तर और दक्षिण के छज्जों पर १० ऐसी मूर्तियां हैं जिनकी पहचान सम्भव नहीं है। देवकुलिका ४० के वितान पर महालक्ष्मी की एक मूर्ति है जिसके चारों ओर षड्भुज अष्ट-दिक्पालों की स्थानक आकृतियां बनी हैं।

विमलवसही में १६ ऐसी देवियां हैं जिनकी पहचान सम्भव नहीं है। प्रारम्भ की तीन देवियां विमलवसही के अतिरिक्त कुंभारिया, तारंगा एवं अन्य श्वेताम्बर स्थलों पर भी लोकप्रिय थीं।[2] अधिकांश देवियां चतुर्भुज हैं और उनकी निचली भुजाओं में कोई मुद्रा (अभय या वरद) एवं कमण्डलु (या फल) प्रदर्शित हैं। अतः यहां हम केवल ऊपरी भुजाओं की ही सामग्री का उल्लेख करेंगे। पहली वृषभवाहना देवी की भुजाओं में त्रिशूल एवं सर्प हैं। दूसरी देवी की भुजाओं में त्रिशूल हैं। दोनों देवियों पर हिन्दू शिवा का प्रभाव है। तीसरी सिंहवाहना देवी की भुजाओं में अंकुश एवं पाश हैं। चौथी देवी ने पद्मकलिका एवं पाश धारण किया है। पांचवीं देवी गदा एवं पुस्तक[3], और छठीं देवी पुस्तक एवं त्रिशूल से युक्त हैं। सातवीं गजवाहना देवी की भुजाओं में अंकुश है। आठवीं देवी के हाथों में गदा और पाश, और नवीं देवी के हाथों में कलश हैं। दसवीं गोवाहना देवी की भुजाओं में ध्वज है। ग्यारहवीं देवी की भुजाओं में त्रिशूल-घंट, और बारहवीं देवी की भुजाओं में धन का थैला है। तेरहवीं सिंहवाहना देवी की भुजाओं में पाश हैं। चौदहवीं सिंहवाहना देवी वज्र एवं मुसल से युक्त हैं। पन्द्रहवीं षड्भुज देवी का वाहन मृग है, और उसके करों में शंख एवं धनुष हैं। सोलहवीं गजवाहना देवी ने शंख एवं चक्र धारण किया है।

रंगमण्डप के समीप के अर्धमण्डप के वितान पर भरत एवं बाहुबली के युद्ध, और बाहुबली की तपश्चर्या के अंकन हैं। समीप ही आर्द्रकुमार की कथा भी उत्कीर्ण है।[4] देवकुलिका २९ के वितान पर कृष्ण के जीवन की कुछ प्रमुख घटनाओं, जैसे कालियदमन, चाणूर-युद्ध, कन्दुकक्रीड़ा के दृश्य भी उत्कीर्ण हैं। देवकुलिका ४६ के वितान पर षोडशभुज नरसिंह की मूर्ति है। नरसिंह को हिरण्यकश्यपु का उदर विदीर्ण करते हुए दिखाया गया है।

लूणवसही—आबू (सिरोही) स्थित लूणवसही का निर्माण चौलुक्य शासक वीरधवल के महामन्त्री तेजपाल ने १२३० ई० (वि० सं० १२८७) में कराया।[5] यह श्वेताम्बर मन्दिर नेमिनाथ को समर्पित है। लूणवसही की भ्रमन्तिका में कुल ४८ देवकुलिकाएं हैं, जिनमें १२३० ई० से १२३६ ई० के मध्य की जैन मूर्तियां सुरक्षित हैं। कुछ रथिकाओं में १२४० ई० की भी मूर्तियां हैं। विमलवसही के समान ही लूणवसही में भी जिनों, महाविद्याओं, अम्बिका यक्षी एवं शान्तिदेवी की मूर्तियां और जिनों एवं कृष्ण के जीवनदृश्य हैं।

जिन मूर्तियों की सामान्य विशेषताएं विमलवसही और कुंभारिया की जिन मूर्तियों के समान हैं। मूलनायक के पार्श्वों में कायोत्सर्ग में जिनों के उत्कीर्णन की परम्परा यहां लोकप्रिय नहीं थी। गर्भगृह की नेमि-मूर्ति के अतिरिक्त अन्य किसी उदाहरण में लांछन नहीं उत्कीर्ण है। केवल सुपार्श्व एवं पार्श्व के साथ सर्पफणों के छत्र प्रदर्शित हैं। अन्य जिनों की पहचान केवल पीठिका लेखों में उत्कीर्ण नामों के आधार पर की गई है। सभी जिनों के साथ यक्ष-यक्षी रूप में सर्वानुभूति एवं अम्बिका निरूपित हैं। रंगमण्डप के वितान पर ध्यानस्थ जिनों की ७२ मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। यह वर्तमान, भूत एवं भविष्य के जिनों का सामूहिक अंकन प्रतीत होता है। ऐसा ही एक पट्ट देवकुलिका ४१ में भी सुरक्षित है। हस्तिशाला में तीन मंजिली नेमि की एक जिन चौमुखी सुरक्षित है। देवकुलिकाओं के वितानों पर जिनों के जीवनदृश्य हैं। देवकुलिका ९ और

---

१ सर्वानुभूति यक्ष की सर्वाधिक मूर्तियां हैं।

२ प्रथम दो देवियों के अतिरिक्त अन्य देवियों की मूर्तियां केवल प्रवेश-द्वारों पर ही हैं।

३ रंगमण्डप की काली-मूर्ति से तुलना के आधार पर इसे काली से पहचाना जा सकता है।

४ जयन्तविजय, मुनिश्री, पू०नि०, पृ० ५६-६३ ५ वही, पृ० ९१-९२

११ के वितानों पर नेमि के जीवनदृश्य उत्कीर्ण हैं। देवकुलिका १६ के वितान पर पार्श्व के जीवनदृश्य हैं। देवकुलिका १९ में एक पट्ट है जिस पर मुनिसुव्रत के जीवन से सम्बन्धित अश्वावबोध एवं शकुनिका विहार की कथाएं उत्कीर्ण हैं।

रंगमण्डप के वितान पर १६ महाविद्याओं की चतुर्भुज मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। वज्रांकुशी, काली, पुरुषदत्ता, मानवी, वैरोट्या, अच्छुप्ता, मानसी एवं महामानसी महाविद्याओं के अतिरिक्त अन्य सभी महाविद्याओं की मूर्तियां नवीन हैं। महाविद्याओं की लाक्षणिक विशेषताएं विमलवसही के रंगमण्डप की १६ महाविद्या मूर्तियों के समान हैं। विमलवसही से भिन्न यहां मानवी की ऊपरी भुजाओं में अंकुश और पाश प्रदर्शित हैं। रोहिणी, पुरुषदत्ता, गौरी, काली, वज्रशृंखला एवं अच्छुप्ता महाविद्याओं की कई स्वतन्त्र मूर्तियां भी उत्कीर्ण हैं।

अम्बिका (७), महालक्ष्मी (५) और शान्तिदेवी की भी कई मूर्तियां हैं। देवकुलिका २४ की अम्बिका मूर्ति के परिकर में रोहिणी, मानवी, पुरुषदत्ता, अप्रतिचक्रा आदि महाविद्याओं एवं ब्रह्मशान्ति यक्ष की लघु आकृतियां उत्कीर्ण हैं। रंगमण्डप के समीप के वितान पर अष्टभुज महालक्ष्मी की चार मूर्तियां हैं। इनमें देवी की पांच भुजाओं में पद्म और शेष में पाश, अभयमुद्रा और कलश हैं। हंसवाहना सरस्वती की कई चतुर्भुज एवं षड्भुज मूर्तियां हैं। इनमें देवी वीणा, पद्म एवं पुस्तक से युक्त है। चक्रेश्वरी यक्षी की केवल एक मूर्ति (देवकुलिका १०) है। गरुडवाहना यक्षी अष्टभुज है और उसके करों में वरदमुद्रा, चक्र, व्याख्यानमुद्रा, छल्ला, छल्ला, पद्मकलिका, चक्र एवं फल हैं। गूढ़मण्डप के प्रवेश-द्वार पर पद्मावती की दो मूर्तियां हैं। चतुर्भुजा पद्मावती वरदाक्ष, सर्प, पाश एवं फल से युक्त है और उसका वाहन सम्भवतः नक्र है। ब्रह्मशान्ति यक्ष की एक षड्भुज मूर्ति रंगमण्डप से सटे वितान पर है। श्मश्रु एवं जटामुकुट से शोभित ब्रह्मशान्ति का वाहन हंस है और उसकी भुजाओं में वरदाक्ष, अभयमुद्रा, पद्म, स्रुक, वज्र और कमण्डलु प्रदर्शित हैं। धरणेन्द्र यक्ष की एक चतुर्भुज मूर्ति गूढ़मण्डप के प्रवेश-द्वार (दक्षिणी) के चौखट पर है। धरणेन्द्र की तीन अवशिष्ट भुजाओं में वरदाक्ष, सर्प एवं सर्प है।

लूणवसही में चार ऐसी भी देवियां है जिनकी पहचान सम्भव नहीं है। पहली देवी की ऊपरी भुजाओं में पाश एवं अंकुश, दूसरी की भुजाओं में धन का थैला, तीसरी की भुजाओं में गदा एवं अंकुश, और चौथी की भुजाओं में दण्ड हैं। रंगमण्डप से सटे वितान पर त्रिशूल एवं शूल से युक्त एक षड्भुज देवता निरूपित है। देवता के दोनों पार्श्वों में सिंह और शूकर की आकृतियां हैं। यह सम्भवः कपर्दि यक्ष है। गूढ़मण्डप के पश्चिमी प्रवेश-द्वार की चौखट पर सर्पवाहन से युक्त एक चतुर्भुज देवता की मूर्ति है। देवता की भुजाओं में बाण, गदा एवं शंख हैं। देवता की पहचान सम्भव नहीं है। सर्वानुभूति यक्ष की एक भी स्वतन्त्र मूर्ति नहीं है। अजमुख नैगमेषी की कई मूर्तियां हैं। नैगमेषी की एक भुजा में सदैव एक बालक प्रदर्शित है। रंगमण्डप के समीप के वितान पर कृष्ण-जन्म एवं उनकी बाल-क्रीड़ा के कुछ दृश्य उत्कीर्ण हैं।

जालोर

जालोर की पहाड़ियों पर बारहवीं-तेरहवीं शती ई० के तीन श्वेतांबर जैन मन्दिर हैं, जो आदिनाथ, पार्श्वनाथ एवं महावीर को समर्पित हैं।[1] महावीर मन्दिर चौलुक्य शासक कुमारपाल के शासनकाल का है।[2] महावीर मन्दिर जालोर के जैन मन्दिरों में विशालतम और शिल्प सामग्री की दृष्टि से समृद्ध भी है। आदिनाथ और पार्श्वनाथ मन्दिर तेरहवीं शती ई० के हैं। सभी मन्दिरों की मूर्तियां खण्डित हैं। पार्श्वनाथ मन्दिर के गूढ़मण्डप की दीवार में बारहवीं शती ई० का एक पट्ट है जिस पर मुनिसुव्रत के जीवन की अश्वावबोध एवं शकुनिका विहार की कथाएं उत्कीर्ण हैं। यहां केवल महावीर मन्दिर की मूर्तिवैज्ञानिक सामग्री का ही उल्लेख किया जायगा।

---

१ प्रो०रि०आ०स०इं०,वे०स०, १९०७-०८, पृ० ३४-३५; जैन, के० सी०, पू०नि०, पृ० १२०

२ जालोर लेख (११६४ ई०) से ज्ञात होता है कि महावीर मन्दिर मूलतः पार्श्वनाथ को समर्पित था। मन्दिर के गर्भगृह में आज १७ वीं शती ई० की महावीर मूर्ति है—नाहर, पी० सी०, जैन इन्स्क्रिप्शन्स, भाग १, कलकत्ता, १९१८, पृ० २३९, लेख सं० ८९९

मन्दिर पर शान्तिदेवी (४०), महालक्ष्मी (७), महाविद्याओं, अम्बिका, सरस्वती एवं दिक्पालों की चतुर्भुज मूर्तियां हैं। शान्तिदेवी की भुजाओं में वरदमुद्रा, पद्म, पद्म और जलपात्र हैं। दो गजों से अभिषिक्त महालक्ष्मी के करों में अभयाक्ष (या वरदाक्ष), पद्म, पद्म एवं जलपात्र हैं। पद्मासन में विराजमान महालक्ष्मी के आसन के नीचे नौ घट (नवनिधि के सूचक) उत्कीर्ण हैं। जंघा पर महाविद्याओं की सवाहन मूर्तियां हैं। इनमें केवल रोहिणी (३), वज्रांकुशी (७), अप्रतिचक्रा (३), महाकाली (२), गौरी (३), मानवी (२), अच्छुप्ता (१) एवं मानसी (५) की ही मूर्तियां हैं। महाकाली का वाहन मानव के स्थान पर पद्म है। गौरी के साथ वाहन रूप में गोधा और वृषभ दोनों ही प्रदर्शित हैं। हंसवाहना मानसी की ऊपरी भुजाओं में वज्र के स्थान पर खड्ग एवं पुस्तक प्रदर्शित हैं।

मन्दिर पर अष्ट-दिक्पालों के दो समूह उत्कीर्ण हैं। इनमें सामान्य पारम्परिक विशेषताएं प्रदर्शित हैं। गूढ़मण्डप की दक्षिणी भित्ति पर जटामुकुट एवं मेषवाहन (?) से युक्त ब्रह्मशान्ति यक्ष (?) की एक मूर्ति है। यक्ष की तीन अवशिष्ट भुजाओं में स्रुक, पुस्तक एवं पद्म हैं। अम्बिका की दो मूर्तियां हैं। अधिष्ठान की एक मूर्ति में सिंहवाहना अम्बिका की निचली भुजाओं में आम्रलुंबि एवं बालक और ऊपरी भुजाओं में दो चक्र प्रदर्शित हैं। गूढ़मण्डप की पूर्वी देवकुलिका के प्रवेश-द्वार की अप्रतिचक्रा एवं वज्रांकुशी महाविद्याओं की मूर्तियों में तीन और पांच सर्पफणों के छत्र भी प्रदर्शित हैं। सम्भव है देवकुलिकाओं की सुपार्श्व या पार्श्व की मूर्तियों के कारण महाविद्याओं के मस्तक पर सर्पफणों के छत्र प्रदर्शित हुए हों। सम्प्रति इन देवकुलिकाओं में सत्रहवीं शती ई० की जिन मूर्तियां हैं।

मन्दिर में कुछ ऐसी भी देवियां हैं जिनकी पहचान सम्भव नहीं है। गूढ़मण्डप की पश्चिमी भित्ति की वृषभ-वाहना (?) देवी की ऊपरी भुजाओं में दो वज्र हैं। गूढ़मण्डप की दक्षिणी जंघा की दूसरी वृषभवाहना देवी वरदाक्ष, शूल, पद्मकलिका एवं जलपात्र से युक्त है। गूढ़मण्डप एवं मूलप्रासाद की पश्चिमी भित्तियों पर ऊपरी भुजाओं में बाण और खेटक धारण करनेवाली दो देवियां उत्कीर्ण हैं। एक उदाहरण में वाहन पद्म है और दूसरे में नर। गूढ़मण्डप की पूर्वी जंघा की सिंहवाहना देवी की तीन अवशिष्ट भुजाओं में वरदाक्ष, घण्टा और घण्टा प्रदर्शित हैं। गूढ़मण्डप की पूर्वी देवकुलिका की गजवाहना देवी वरदमुद्रा, अंकुश, पाश एवं जलपात्र से युक्त है।

आबू रोड स्टेशन से लगभग ६ किलोमीटर दूर स्थित चन्द्रावती (सिरोही) से ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० की दस जैन मूर्तियां मिली हैं। इनमें द्विभुज अम्बिका एवं जिनों की मूर्तियां हैं।[1] सिरोही जिले के आसपास के अन्य कई क्षेत्रों से भी जैन मूर्तियां मिली हैं। झरोला का शान्तिनाथ मन्दिर, नडियाद का महावीर मन्दिर एवं झाडोली और मुंगथला के जैन मन्दिर ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० के हैं। चित्तौड़ जिले का सम्मिधेश्वर मन्दिर बारहवीं शती ई० का है। इस मन्दिर पर अप्रतिचक्रा, वज्रांकुशी और वज्रश्रृंखला महाविद्याओं एवं दिक्पालों की मूर्तियां हैं। कोजरा, बाघिण, पालधी, फलोदी, सुरपुर, सांगानेर, झालरापाटन, अटरू, लोद्रवा, कृष्णविलास, नागोर, बघेरा एवं मारोठ आदि स्थलों से भी ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० की जैन मूर्तियां मिली हैं।[2] भरतपुर में भरतपुर, कटरा, बयाना, जघीना; कोटा में शेरगढ़; बांसवाड़ा में तलवर एवं अर्थूणा और अलवर में परानगर एवं बहादुरपुर से ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० की अनेक दिगंबर जैन मूर्तियां मिली हैं। बिजौलिया में चाहमान शासकों के काल में निर्मित पार्श्वनाथ के पांच मन्दिरों के भग्नावशेष हैं।[3]

उत्तर प्रदेश

देवगढ़ (ललितपुर) एवं मथुरा उत्तर प्रदेश के सर्वाधिक महत्वपूर्ण मध्ययुगीन जैन स्थल हैं। यहां से आठवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की प्रचुर शिल्प सामग्री मिली है। उत्तर प्रदेश की जैन मूर्तियां दिगंबर सम्प्रदाय से सम्बद्ध

---

१ तिवारी, एम० एन० पी०, 'चन्द्रावती का जैन पुरातत्व', अनेकान्त, वर्ष १५, अं० ४-५, पृ० १४५-४७

२ प्रो०रि०आ०स०ई०,वे०स०,१९०९, पृ० ६०,१९०९-१०, पृ० ४७,१९११-१२, पृ०५३; जैन, के०सी०, पूर्वोनि०, पृ० ११७-१८, १२०-२२, १३२

३ टाड, जेम्स, एनाल्स ऐण्ड ऐन्टिक्विटीज ऑव राजस्थान, खं० २, लन्दन, १९५७, पृ० ५९५

हैं।[1] इस क्षेत्र में जिनों की सर्वाधिक मूर्तियां उत्कीर्ण हुईं। जिनों में ऋषभ[2] और पार्श्व सबसे अधिक लोकप्रिय थे। लोकप्रियता के क्रम में ऋषभ और पार्श्व के बाद महावीर एवं नेमि की मूर्तियां हैं। अजित, सम्भव, सुपार्श्व, विमल, चन्द्रप्रभ, सुविधि, शान्ति, मल्लि[3] एवं मुनिसुव्रत की भी कई मूर्तियां मिली हैं। जिन मूर्तियों में अष्ट-प्रातिहार्यों, लांछनों एवं यक्ष-यक्षी युगलों का नियमित चित्रण हुआ है। ऋषभ, नेमि एवं कुछ उदाहरणों में पार्श्व, महावीर और शान्ति के साथ वैयक्तिक विशिष्टताओं वाले पारम्परिक या अपारम्परिक यक्ष-यक्षी निरूपित हैं। अन्य जिनों के साथ सामान्य लक्षणों वाले यक्ष-यक्षी या सर्वानुभूति एवं अम्बिका आमूर्तित हैं। नेमि के साथ देवगढ़, मथुरा एवं बटेश्वर की कुछ मूर्तियों में बलराम और कृष्ण भी आमूर्तित हैं (चित्र २७, २८)।[4] चक्रेश्वरी, अम्बिका, पद्मावती एवं सिद्धायिका यक्षियों की स्वतन्त्र मूर्तियां भी मिली हैं। सर्वानुभूति यक्ष, बाहुबली, भरत चक्रवर्ती, सरस्वती, क्षेत्रपाल, जैन युगल, जिन चौमुखी एवं जिन चौबीसी की भी अनेक मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। ल० नवीं शती ई० तक इस क्षेत्र की सभी जिन मूर्तियों में यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका हैं। पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा (डी७) की ल० दसवीं शती ई० की एक द्विभुज अम्बिका मूर्ति में बलराम, कृष्ण, गणेश एवं कुबेर की भी मूर्तियां उत्कीर्ण हैं।

राज्य संग्रहालय, लखनऊ की दो ऋषभ (जे ७८) और मुनिसुव्रत (जे ७७६) मूर्तियों में बलराम और कृष्ण की भी मूर्तियां बनी हैं। इसी संग्रहालय की १००६ ई० की एक मुनिसुव्रत मूर्ति (जे ७७६) के परिकर में वस्त्राभूषणों से सज्जित जीवन्तस्वामी की दो लघु मूर्तियां चित्रित हैं। जीवन्तस्वामी की दो आकृतियां इस बात का संकेत देती हैं कि महावीर के अतिरिक्त भी अन्य जिनों के जीवन्तस्वामी स्वरूप की कल्पना की गई थी। इलाहाबाद संग्रहालय में कौशाम्बी, पभोसा एवं लच्छगिरि आदि स्थलों से प्राप्त दसवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की ९ जैन मूर्तियां सुरक्षित हैं। इनमें चन्द्रप्रभ, शान्ति एवं जिन चौमुखी मूर्तियां हैं (चित्र १७, १९)।[5] सारनाथ संग्रहालय में विमल की एक मूर्ति (२३६) है (चित्र १८)।

देवगढ़

देवगढ़ (ललितपुर) में नवीं (८६२ ई०) से बारहवीं शती ई० के मध्य की वैविध्यपूर्ण एवं प्रचुर जैन मूर्ति सम्पदा सुरक्षित है। किसी समय इस स्थल पर ३५ से ४० जैन मन्दिर थे। सम्प्रति यहां ३१ जैन मन्दिर हैं। यहां लगभग १०००–११०० जैन मूर्तियां हैं। इनमें स्तम्भों, प्रवेश-द्वारों आदि की लघु आकृतियां सम्मिलित नहीं हैं।[6] देवगढ़ की जैन शिल्प सामग्री दिगंबर सम्प्रदाय से सम्बन्धित है। मन्दिर १२ (शान्तिनाथ मन्दिर) एवं मन्दिर १५ नवीं शती ई० के हैं।[7]

जैन मूर्तिविज्ञान के अध्ययन की दृष्टि से मन्दिर १२ की भित्ति की २४ यक्षियां सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं (चित्र ४८)।[8] २४ यक्षियों के सामूहिक चित्रण का यह प्राचीनतम उदाहरण है। मन्दिर की भित्ति पर कुल २५ देवियां हैं। इनमें दो देवियों की मूर्तियां पश्चिम की देवकुलिकाओं की दीवारों के पीछे छिपी हैं।[9] भित्ति की यक्षियां त्रिभंग में हैं और उनके शीर्ष भाग में ध्यानस्थ जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। जिनों एवं यक्षियों के नाम उनकी आकृतियों के नीचे लिखे हैं। जिनों के साथ लांछन नहीं उत्कीर्ण हैं। यहां तक कि ऋषभ की जटाएं और सुपार्श्व एवं पार्श्व के सर्पफण भी नहीं प्रदर्शित हैं। २४ जिनों की सूची में तीन जिनों (अजित, सम्भव, सुमति) के नाम नहीं हैं। दो उदाहरणों में नाम स्पष्ट

---

१ राज्य संग्रहालय, लखनऊ में कुछ श्वेतांबर मूर्तियां भी हैं–जे १४२, १४३, १४४, १४५, ७७६, ८८५, ९४९

२ ऋषभ की लोकप्रियता की पुष्टि न केवल मूर्तियों की संख्या वरन् ऋषभ के साथ अम्बिका एवं लक्ष्मी जैसी लोकप्रिय देवियों के निरूपण से भी होती है।

३ राज्य संग्रहालय, लखनऊ–जे ८८५

४ राज्य संग्रहालय, लखनऊ-जे ७९३, ६५.५३, पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा ३७.२७३८, देवगढ़ (मन्दिर २)

५ चंद्र, प्रमोद, स्टोन स्कल्पचर इन दि एलाहाबाद म्यूजियम, बम्बई, १९७०, पृ० १३८, १४२-४४, १४७, १५३, १५८

६ जि०इ०दे०, पृ० १

७ कृष्ण देव, पू०मि०, पृ० २५

८ जि०इ०दे०, पृ० ९८–१०७

९ दोनों आकृतियां स्तन से युक्त हैं। अतः उनका देवियां होना निश्चित है।

नहीं हैं और पश्चिमी देवकुलिका के पीछे की जिन मूर्ति के नाम की जानकारी सम्भव नहीं है। पहले जिन ऋषभ से सातवें जिन सुपार्श्व की मूर्तियां पारम्परिक क्रम में भी नहीं उत्कीर्ण हैं।[1]

यक्षियों में केवल चक्रेश्वरी, अनन्तवीर्या, ज्वालामालिनी, बहुरूपिणी, अपराजिता, तारादेवी, अम्बिका, पद्मावती एवं सिद्धायि के ही नाम दिगम्बर परम्परासम्मत हैं।[2] अन्य यक्षियों के नाम किसी साहित्यिक परम्परा में नहीं प्राप्त होते। यह भी उल्लेखनीय है कि केवल चक्रेश्वरी, अम्बिका एवं पद्मावती ही परम्परा के अनुसार सम्बन्धित जिनों (ऋषभ, नेमि, पार्श्व) के साथ निरूपित हैं। लाक्षणिक विशेषताओं के अध्ययन से ज्ञात होता है कि केवल अम्बिका का ही लाक्षणिक स्वरूप नियत हो सका था।[3] कुछ यक्षियों के निरूपण में जैन महाविद्याओं की लाक्षणिक विशेषताओं का अनुकरण किया गया है। पर उनके नाम महाविद्याओं से भिन्न हैं। साहित्यिक साक्ष्य में परिचित कुछ यक्षियों के अंकन करने, मयूरवाहिनी एवं सरस्वती नामों से सरस्वती और भिन्न नामों से महाविद्याओं के स्वरूप का अनुकरण करने के बाद भी चौबीस की संख्या पूरी न होने पर अन्य यक्षियां सादी, समरूप एवं व्यक्तिगत विशिष्टताओं से रहित हैं। इस प्रकार देवगढ़ में प्रत्येक जिन के साथ एक यक्षी की कल्पना तो की गई पर अम्बिका के अतिरिक्त अन्य किसी यक्षी की मूर्तिवैज्ञानिक विशेषताएं सुनिश्चित नहीं हुई।

देवगढ़ की स्वतन्त्र जिन मूर्तियां अष्ट-प्रातिहार्यों, लांछनों एवं यक्ष-यक्षी युगलों से युक्त हैं (चित्र ८,१५,३८)।[4] जिन मूर्तियों में लघु जिन आकृतियों एवं नवग्रहों के चित्रण विशेष लोकप्रिय थे। कभी-कभी परिकर की २३ लघु जिन मूर्तियां मूलनायक के साथ मिलकर जिन चौबीसी का चित्रण करती हैं। ऋषभ की कुछ मूर्तियों में स्कन्धों के नीचे तक लटकती लम्बी जटाएं प्रदर्शित हैं। पार्श्व की सर्पकुण्डलियां भी घुटनों या चरणों तक प्रसारित हैं। एक उदाहरण में (मन्दिर ६) पार्श्व के दोनों ओर नाग आकृतियां और दूसरे (मन्दिर १२ की पश्चिमी चहारदीवारी) में पार्श्व के आसन पर लांछन रूप में कुक्कुट-सर्प अंकित हैं (चित्र ३१, ३२)। देवगढ़ में केवल ११ जिनों की मूर्तियां मिली हैं। ये जिन ऋषभ (७० से अधिक), अजित (६), सम्भव (१०),अभिनन्दन (१),पद्मप्रभ (१),सुपार्श्व (४),चन्द्रप्रभ (१०), शान्ति (६), नेमि (२६), पार्श्व (५० से अधिक) एवं महावीर (९) हैं (चित्र ८, १५, २७, ३१, ३२, ३८)।[5] पारम्परिक यक्ष-यक्षी केवल ऋषभ,[6] नेमि एवं पार्श्व के साथ निरूपित हैं। चन्द्रप्रभ, शान्ति एवं महावीर के साथ स्वतन्त्र किन्तु परम्परा में अवर्णित यक्ष-यक्षी आमूर्तित हैं। अन्य जिनों के साथ सामान्य लक्षणों वाले यक्ष-यक्षी उत्कीर्ण हैं। कुछ उदाहरणों में ऋषभ एवं महावीर के साथ भी यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका हैं।[7] सर्वानुभूति एवं अम्बिका देवगढ़ के सर्वाधिक लोकप्रिय यक्ष-यक्षी हैं। लोकप्रियता के क्रम में गोमुख-चक्रेश्वरी का दूसरा स्थान है।[8] मन्दिर २ की ल० दसवीं शती ई० की एक नेमि मूर्ति में बलराम और कृष्ण भी आमूर्तित हैं (चित्र २७)।

जिनों की स्वतन्त्र मूर्तियों के अतिरिक्त देवगढ़ में द्वितीर्थी (५०), त्रितीर्थी (१५), चौमुखी (५०) मूर्तियां एवं चौबीसी पट्ट भी हैं (चित्र ६२, ६४, ६५, ७५)। द्वितीर्थी एवं त्रितीर्थी जिन मूर्तियों में दो या तीन जिन कायोत्सर्ग-

---

१ ऋषभ के पूर्व अभिनन्दन और बाद में वर्धमान का उल्लेख हुआ है। २ तिलोयपण्णत्ति ४.९३७-३९

३ यक्षियों की विस्तृत लाक्षणिक विशेषताएं छठें अध्याय में विवेचित हैं।

४ ऋषभ एवं पार्श्व की कुछ विशाल मूर्तियों में यक्ष-यक्षी नहीं निरूपित हैं। पार्श्व के साथ लांछन एक ही उदाहरण में उत्कीर्ण है।

५ एक त्रितीर्थी जिन मूर्ति में कुंथु और शीतल की भी मूर्तियां उत्कीर्ण हैं।

६ मन्दिर ४ की १०वीं शती ई० की एक ऋषभ मूर्ति में यक्ष अनुपस्थित है और सिंहासन छोरों पर अम्बिका एवं चक्रेश्वरी निरूपित हैं।

७ मन्दिर ४, ८ और ११ की ऋषभ, शान्ति एवं महावीर मूर्तियों में यक्षी अम्बिका है। एक में अम्बिका के मस्तक पर सर्पफण का छत्र भी प्रदर्शित है।

८ मन्दिर १ की चन्द्रप्रभ मूर्ति में यक्ष गोमुख है। मन्दिर १६ की नेमि मूर्ति में यक्ष-यक्षी गोमुख एवं चक्रेश्वरी हैं।

मुद्रा में साधारण पीठिका या सिंहासन पर प्रातिहार्यों एवं लांछनों के साथ खड़े हैं। कुछ उदाहरणों में (मन्दिर १,१९,२८, ल० ११वीं-१२वीं शती ई०) में यक्ष-यक्षी युगल भी चित्रित हैं। मन्दिर १ और २ की ल० ग्यारहवीं शती ई० की दो त्रितीर्थी मूर्तियों में जिनों के साथ क्रमशः सरस्वती और बाहुबली की मूर्तियां भी उत्कीर्ण हैं (चित्र ६५, ७५)।[1] जिन चौमुखी मूर्तियों में सामान्यतः केवल दो ही जिनों की पहचान क्रमशः ऋषभ एवं पार्श्व (या सुपार्श्व) से सम्भव है। केवल एक चौमुखी (मन्दिर २६) में वृषभ, कपि, अर्धचन्द्र एवं मृग लांछनों के आधार पर सभी जिनों की पहचान सम्भव है। दो उदाहरणों (मन्दिर १२ की पश्चिमी चहारदीवारी) में चारों जिनों के साथ यक्ष-यक्षी भी आमूर्तित हैं। स्थानीय साहू जैन संग्रहालय में एक जिन चौबीसी पट्ट भी है। पट्ट की २४ जिन मूर्तियां लांछनों, अष्ट-प्रातिहार्यों एवं यक्ष-यक्षी युगलों से युक्त हैं। मन्दिर ५ में १००८ जिनों का चित्रण करने वाली एक विशाल प्रतिमा (११वीं शती ई०) है।

देवगढ़ में ऋषभ पुत्र बाहुबली की छह मूर्तियां (१० वीं–१२ वीं शती ई०) हैं (चित्र ७४, ७५)।[2] बाहुबली कायोत्सर्ग-मुद्रा में खड़े हैं और उनकी भुजाओं, चरणों एवं वक्षस्थल से माधवी लिपटी है। शरीर पर वृश्चिक एवं सर्प आदि जन्तु भी उत्कीर्ण हैं।[3] ऋषभ पुत्र भरत चक्रवर्ती की भी चार (१० वीं–१२ वीं शती ई०) मूर्तियां हैं (चित्र ७०)। इनमें भरत कायोत्सर्ग में खड़े हैं और उनके आसन पर गज एवं अश्व आकृतियां, और पार्श्वों में कुबेर, नवनिधि के सूचक नवघट एवं चक्रवर्ती के अन्य लक्षण (चक्र, वज्र, खड्ग) चित्रित हैं।[4]

यक्षियों में अम्बिका सर्वाधिक लोकप्रिय थी। उसकी ५० से भी अधिक मूर्तियां मिली हैं (चित्र ५१)। अम्बिका के बाद सर्वाधिक मूर्तियां चक्रेश्वरी की हैं। चक्रेश्वरी की चतुर्भुज से विंशतिभुज मूर्तियां हैं (चित्र ४५, ४६)। रोहिणी, पद्मावती एवं सिद्धायिका (मन्दिर ५, उत्तरंग) यक्षियों और सरस्वती एवं लक्ष्मी की भी कई मूर्तियां हैं (चित्र ४७, ६५)। मन्दिर १२ के अर्धमण्डप के स्तम्भ (९वीं शती ई०) पर ब्रह्मशान्ति यक्ष (या अग्नि) की एक चतुर्भुज मूर्ति है। देवता की भुजाओं में अभयमुद्रा, स्रुक, पुस्तक एवं कलश प्रदर्शित हैं। यहां क्षेत्रपाल (६) और कुबेर (? मन्दिर ८) की भी मूर्तियां हैं। मन्दिर १२ के प्रवेश-द्वार पर १६ मांगलिक स्वप्न उत्कीर्ण हैं। मन्दिर ५, १२ और ३१ के प्रवेश-द्वारों, स्वतन्त्र उत्तरंगों एवं जिन मूर्तियों पर नवग्रहों की आकृतियां बनी हैं। द्वारशाखाओं पर मकरवाहिनी गंगा और कूर्म-वाहिनी यमुना की मूर्तियां हैं। जैन युगलों की ४० मूर्तियां हैं, जिनमें पुरुष एवं स्त्री दोनों की एक भुजा में बालक, और दूसरे में पुष्प (या फल या कोई मुद्रा) प्रदर्शित हैं। मन्दिर ४ और ३० में जिनों की माताओं की दो मूर्तियां (११ वीं शती ई०) हैं। देवगढ़ में जैन आचार्यों का चित्रण विशेष लोकप्रिय था। स्थापना के समीप विराजमान जैन आचार्यों की दाहिनी भुजा से व्याख्यान-(या ज्ञान-या-अभय-) मुद्रा व्यक्त है और बायीं में पुस्तक है।

देवगढ़ के मन्दिर १८ की द्वारशाखाओं पर जैन-परम्परा-विरुद्ध कुछ चित्रण हैं। मयूर पीच्छिका से युक्त एक नग्न जैन साधु को एक स्त्री के साथ आलिंगन की मुद्रा में दिखाया गया है।

देवगढ़ के अतिरिक्त मदनपुर, दुदही, चांदपुर एवं सिरोनी खुर्द आदि स्थलों से भी ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० की जैन मूर्तियां मिली हैं। इन स्थलों से मुख्यतः ऋषभ, पार्श्व, शान्ति, सम्भव, चन्द्रप्रभ, चक्रेश्वरी, अम्बिका, सरस्वती एवं क्षेत्रपाल की मूर्तियां मिली हैं।[5]

---

१ तिवारी, एम० एन० पी०, 'ए यूनीक त्रि-तीर्थिक जिन इमेज फ्राम देवगढ़', ललितकला, अं० १७, पृ० ४१–४२; 'ए नोट आन सम बाहुबली इमेजेज फ्राम नार्थ इण्डिया', ईस्ट वे०, खं० २३, अं० ३–४, पृ० १५२–५३

२ तिवारी, एम०एन०पी०, 'बाहुबली', पू०नि०, पृ० १५२–५३

३ जिन मूर्तियों के समान ही बाहुबली के साथ भी अष्ट-प्रातिहार्य और यक्ष-यक्षी युगल (मन्दिर २, ११) प्रदर्शित हैं।

४ १०वीं–११वीं शती ई० की दो मूर्तियां मन्दिर २ और १, एवं एक मूर्ति मन्दिर १२ की चहारदीवारी पर हैं।

५ शास्त्री, परमानन्द जैन, 'मध्य भारत का जैन पुरातत्व', अनेकान्त, वर्ष १९, अं०१–२, पृ० ५७–५८; ब्रुन, क्लाज, 'जैन तीर्थज इन मध्य देश : दुदही, चांदपुर', जैनयुग, वर्ष १, नवम्बर १९५८, पृ० २९–३३, वर्ष २, अप्रैल १९५९, पृ० ६७–७०

मध्य प्रदेश

मध्य प्रदेश में लगभग सभी क्षेत्रों में आठवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य के जैन मन्दिर एवं मूर्ति अवशेष मिले हैं। ये अवशेष मुख्यतः ग्यारसपुर, खजुराहो, गंधावल, अहाड़, पधावली, नरवर, ऊन, नवागढ़, ग्वालियर, सतना (पतियानदाई मन्दिर), अजयगढ़, चन्देरी, उज्जैन, गुना, शिवपुर, शहडोल, तेरही, दमोह, बानपुर आदि स्थलों पर हैं। मध्य प्रदेश का जैन शिल्प दिगंबर सम्प्रदाय से सम्बद्ध है।

मध्य प्रदेश में जिन मूर्तियां सर्वाधिक हैं। इनमें ऋषभ, पार्श्व एवं महावीर की मूर्तियां सबसे अधिक हैं। अजित, सम्भव, सुपार्श्व, पद्मप्रभ, शान्ति, मुनिसुव्रत एवं नेमि की भी पर्याप्त मूर्तियां हैं। जिन मूर्तियों में लांछनों, अष्ट-प्रातिहार्यों[1] एवं यक्ष-यक्षी युगलों का नियमित अंकन हुआ है। कुछ उदाहरणों में नवग्रह भी उत्कीर्ण हैं। पारम्परिक यक्ष-यक्षी केवल ऋषभ, नेमि, पार्श्व एवं कुछ उदाहरणों में महावीर के साथ निरूपित हैं। अन्य जिनों के साथ सामान्य लक्षणों वाले यक्ष-यक्षी हैं। जिनों की द्वितीर्थी, त्रितीर्थी, चौमुखी एवं चौबीसी मूर्तियां भी मिली हैं। ७२ और १०८ जिनों का अंकन करने वाले पट्ट भी मिले हैं।

यक्षियों में केवल चक्रेश्वरी, अम्बिका, पद्मावती एवं सिद्धायिका की ही स्वतन्त्र मूर्तियां मिली हैं। इनमें अम्बिका एवं चक्रेश्वरी की सर्वाधिक मूर्तियां हैं। पतियानदाई मन्दिर (सतना) की ग्यारहवीं शती ई० की एक अम्बिका मूर्ति के परिकर में अन्य २३ यक्षियां भी निरूपित हैं (चित्र ५३)। यह मूर्ति सम्प्रति इलाहाबाद संग्रहालय (ए०एम० २९३) में है।[2] यक्षों में केवल गोमुख एवं सर्वानुभूति की ही स्वतन्त्र मूर्तियां मिली हैं। महाविद्याओं के चित्रण का एकमात्र सम्भावित उदाहरण खजुराहो के आदिनाथ मन्दिर के मण्डोवर पर देखा जा सकता है।[3] सरस्वती, लक्ष्मी, जैन युगलों, बाहुबली, जैन आचार्यों, १६ मांगलिक स्वप्नों आदि के भी अनेक उदाहरण हैं।

सतना के समीप का पतियानदाई मन्दिर ल० सातवीं-आठवीं शती ई० का है।[4] बडोह का गाडरमल जैन मन्दिर ल० नवीं-दसवीं शती ई० का है। ग्वालियर किले एवं समीप के स्थलों से गुप्तकाल से आधुनिक युग तक की जैन मूर्तियां मिली हैं। ग्वालियर स्थित तेली के मन्दिर से ल० नवी शती ई० की एक ऋषभ मूर्ति मिली है।[5] ग्यारसपुर एवं खजुराहो के जैन मूर्ति अवशेषों का यहां विस्तार से उल्लेख किया गया है।

ग्यारसपुर

ग्यारसपुर (विदिशा) का मालादेवी मन्दिर दिगंबर जैन मन्दिर है। कुछ जैन मूर्तियां ग्यारसपुर के हिन्दू मन्दिर बजरामठ के प्रकोष्ठों में भी सुरक्षित हैं।

मालादेवी मन्दिर—मालादेवी मन्दिर का निर्माण नवीं शती ई० के उत्तरार्ध[6] या दसवीं शती ई० के प्रारम्भ[7] में हुआ। कुछ समय पूर्व तक इसे हिन्दू मन्दिर समझा जाता था।[8] गर्भगृह एवं भित्ति की जिन एवं चक्रेश्वरी और अम्बिका

---

१ अष्ट-प्रातिहार्यों में सामान्यतः अशोक वृक्ष नहीं उत्कीर्ण है।

२ कनिंघम, ए०, आ०स०इं०रि०, खं० ९, पृ० ३१–३३; प्रो०रि०आ०स०इं०, वे०स०, १९१९–२०, पृ० १०८–०९; स्ट०जै०आ०, पृ० १८

३ द्रष्टव्य, तिवारी, एम० एन० पी०, 'ए नोट ऑन दि फिगर्स ऑव सिक्सटीन जैन गॉडेसेस ऑन दि आदिनाथ टेम्पल् ऐट खजुराहो', ईस्ट वे० (स्वीकृत)

४ कनिंघम, ए०, पू०नि०, पृ० ३१–३३

५ कनिंघम, ए०, आ०स०इं०रि०, १८६४–६५, खं० २, पृ० ३६२–६५; स्ट०जै०आ०, पृ० २३–२४

६ कृष्ण देव, 'मालादेवी टेम्पल् ऐट ग्यारसपुर', म०जै०वि०गो०जु०वा, बम्बई, १९६८, पृ० २६०

७ ब्राउन, पर्सी, पू०नि०, पृ० ११५   ८ कृष्ण देव, पू०नि०, पृ० २६१

मूर्तियों के आधार पर इसका जैन मन्दिर होना निर्विवाद है।[1] गर्भगृह में ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० की पांच जिन मूर्तियां हैं। गर्भगृह की दक्षिणी भित्ति पर सिंह-लांछन से युक्त महावीर की एक ध्यानस्थ मूर्ति (१० वीं शती ई०) है। शान्ति एवं नेमि की दसवीं शती ई० की दो मूर्तियां मण्डप की उत्तरी और दक्षिणी रथिकाओं में सुरक्षित हैं। मन्दिर की जंघा की रथिकाओं में दिक्पाल[2] एवं जैन यक्ष और यक्षियों की मूर्तियां हैं।

मन्दिर के मण्डोवर की रथिकाओं में द्विभुज से द्वादशभुज देवियों की मूर्तियां हैं। अधिकांश देवियों की निश्चित पहचान सम्भव नहीं है।[3] केवल चक्रेश्वरी (२), अम्बिका (३), पद्मावती (४) यक्षियों, पार्श्व यक्ष (१) और सरस्वती की ही पहचान संभव है। उत्तरी अधिष्ठान की एक चतुर्भुज देवी की तीन अवशिष्ट भुजाओं में अभयमुद्रा, पद्म और पद्म प्रदर्शित हैं। देवी लक्ष्मी या शान्तिदेवी है। गर्भगृह की भित्ति पर भी पद्म धारण करनेवाली द्विभुज देवी की आठ मूर्तियां हैं। जंघा की बहुभुजी देवियां द्विपद्मासन पर ललितमुद्रा में विराजमान हैं।

पूर्वी भित्ति की अष्टभुजा देवी के आसन के नीचे दो मुखों वाला मयूर जैसा कोई पक्षी (सम्भवतः कुक्कुट-सर्प) है। देवी की अवशिष्ट भुजाओं में तूणीर, पद्म, चामर, चामर, ध्वज, सर्प और धनुष प्रदर्शित हैं। कृष्णदेव ने वाहन को कुक्कुट-सर्प माना है और उसी आधार पर देवी की सम्भावित पहचान पद्मावती से की है।[4] पर उसी स्थल की अन्य पद्मावती मूर्तियों के शीर्षभाग में सर्पफणों का प्रदर्शन, जो इस मूर्ति में अनुपस्थित है, इस पहचान में बाधक है। यह देवी दूसरी यक्षी प्रज्ञप्ति, या तेरहवीं यक्षी वैरोट्या भी हो सकती है।

दक्षिणी जंघा की गजवाहना एवं चतुर्भुजा देवी के करों में खड्ग, चक्र, खेटक और शंख हैं। गजवाहन एवं चक्र के आधार पर देवी की संभावित पहचान पांचवीं यक्षी पुरुषदत्ता से की जा सकती है। दक्षिणी जंघा की दूसरी देवी अष्टभुज है और उसका वाहन अश्व है। देवी की अवशिष्ट भुजाओं में खड्ग, पद्म (जिसका निचला भाग शृंखला के समान है), कलश, घण्टा, फलक, आम्रलुम्बि और फल प्रदर्शित हैं। अश्ववाहन और खड्ग के आधार पर देवी की सम्भावित पहचान छठीं यक्षी मनोवेगा से की जा सकती हैं। दक्षिणी जंघा की तीसरी मृगवाहना देवी चतुर्भुजा है। देवी की भुजाओं में वरदमुद्रा, अभयमुद्रा, नीलोत्पल एवं फल हैं। मृगवाहन और पद्म एवं वरदमुद्रा के आधार पर देवी की सम्भावित पहचान ग्यारहवीं यक्षी मानवी से की जा सकती है।

पश्चिमी जंघा की चतुर्भुजा देवी के पद्मासन के समीप मकरमुख (वाहन) उत्कीर्ण है। आसन के नीचे एक पंक्ति में नवनिधि के सूचक नौ घट है। देवी की अवशिष्ट भुजाओं में पद्म एवं दर्पण हैं। मकरवाहन और पद्म के आधार पर देवी की सम्भावित पहचान बारहवीं यक्षी गांधारी से की जा सकती है। पर नौ घटों का चित्रण इस पहचान में बाधक है।

उत्तरी अधिष्ठान की एक द्वादशभुज देवी लोहासन पर विराजमान है। लोहासन के नीचे सम्भवतः गजमस्तक उत्कीर्ण है। देवी की सुरक्षित भुजाओं में पद्म, वज्र, चक्र, शंख, पुष्प और पद्म हैं। लोहासन और शंख एवं चक्र के आधार पर देवी की पहचान दूसरी यक्षी रोहिणी से की जा सकती है। उत्तरी जंघा पर झषवाहना चतुर्भुजा देवी निरूपित है। देवी के करों में वरदमुद्रा, अभयमुद्रा, पद्म और फल हैं। वाहन के आधार पर देवी की पहचान किसी दिगंबर यक्षी से सम्भव नहीं है। श्वेतांबर परम्परा में झषवाहन और पद्म पन्द्रहवीं यक्षी कन्दर्पा से सम्बन्धित हैं।

पूर्वी जंघा पर अश्ववाहना चतुर्भुजा देवी आमूर्तित है। देवी के करों में वज्र, दंड (शीर्ष भाग पर पंखयुक्त मानव आकृति), चामर और छत्र हैं। कृष्णदेव ने देवी की पहचान हिन्दू देव रेवन्त की शक्ति से की है।[5] जैन मूर्तियों के सन्दर्भ में यह पहचान उचित नहीं प्रतीत होती है। सम्भवतः यह सातवीं यक्षी मनोवेगा है। गर्भगृह की जंघा पर द्विभुज सरस्वती

---

१ मूर्तियों के शीर्ष भाग में लघु जिन आकृतियां भी उत्कीर्ण हैं।

२ उत्तरी जंघा पर कुबेर एवं इन्द्र दिक्पालों की द्विभुज मूर्तियां हैं। कुबेर का वाहन गज के स्थान पर मेष है।

३ हमने दिगंबर ग्रन्थों के आधार पर देवियों की सम्भावित पहचान के प्रयास किये हैं।

४ कृष्ण देव, पू०नि०, पृ० २६२–६३ ५ कृष्ण देव, पू०नि०, पृ० २६५

की तीन स्थानक मूर्तियां हैं। दो उदाहरणों में सरस्वती की भुजाओं में पुस्तक एवं पद्म (या व्याख्यान-मुद्रा) हैं। उत्तरी जंघा की तीसरी मूर्ति में दोनों भुजाओं में वीणा है।

बजरामठ—यह दसवीं शती ई० के प्रारम्भ का हिन्दू मन्दिर है।[1] पर इसके प्रकोष्ठों में ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० की जैन मूर्तियां रखी हैं। मन्दिर के मण्डोवर पर सूर्य, विष्णु, नरसिंह, गणेश, वराह आदि हिन्दू देवों की मूर्तियां हैं। बायीं ओर के पहले प्रकोष्ठ में लांछनरहित किन्तु जटाओं से शोभित ऋषभ की एक विशाल मूर्ति (बी १२) है। मध्य के प्रकोष्ठ में भी लांछन, जटाओं एवं पारम्परिक यक्ष-यक्षी से युक्त ऋषभ की एक मूर्ति है। अन्तिम प्रकोष्ठ में ऋषभ, नेमि, सुपार्श्व एवं पार्श्व की चार कायोत्सर्ग मूर्तियां हैं।

खजुराहो

खजुराहो (छतरपुर) के मन्दिर अपनी वास्तुकला एवं शिल्प वैभव के लिए विश्व प्रसिद्ध हैं। हिन्दू मन्दिरों के साथ ही यहां चन्देल शासकों के काल के कई जैन मन्दिर भी हैं।[2] सम्प्रति यहां तीन प्राचीन (पार्श्वनाथ, आदिनाथ, घंटई) और ३२ नवीन जैन मन्दिर हैं।[3] वर्तमान में पार्श्वनाथ और आदिनाथ मन्दिर ही पूर्णतः सुरक्षित हैं। खजुराहो की जैन शिल्प सामग्री दिगंबर सम्प्रदाय से सम्बद्ध है[4] और उसकी समय-सीमा ल० ९५० ई० से ११५० ई० है।

पार्श्वनाथ मन्दिर—पार्श्वनाथ मन्दिर जैन मन्दिरों में प्राचीनतम और स्थापत्यगत योजना एवं मूर्त अलंकरणों की दृष्टि से सर्वोत्कृष्ट एवं विशालतम है। कृष्णदेव ने पार्श्वनाथ मन्दिर को धंग के शासनकाल के प्रारम्भिक दिनों (९५०–७० ई०) में निर्मित माना है।[5] पार्श्वनाथ मन्दिर मूलतः प्रथम तीर्थंकर ऋषभ को समर्पित था। गर्भगृह में स्थापित १८६० ई० को काले प्रस्तर की पार्श्वनाथ मूर्ति के कारण ही कालान्तर में इसे पार्श्वनाथ मन्दिर के नाम से जाना जाने लगा। गर्भगृह में मूल प्रतिमा के सिंहासन और परिकर सुरक्षित हैं। मूल प्रतिमा की पीठिका पर ऋषभ के लांछन (वृषभ) और यक्ष-यक्षी (गोमुख एवं चक्रेश्वरी) उत्कीर्ण हैं। साथ ही मूलनायक के पार्श्वों की सुपार्श्व और पार्श्व मूर्तियां भी सुरक्षित हैं। मण्डप के ललाट-बिम्ब पर भी चक्रेश्वरी की ही मूर्ति है।

मन्दिर की बाह्य भित्तियों पर तीन पंक्तियों में देव मूर्तियां उत्कीर्ण हैं।[6] मूर्तिविज्ञान की दृष्टि से केवल निचली दो पंक्तियों की मूर्तियां ही महत्वपूर्ण हैं। ऊपरी पंक्ति में केवल पुष्पमाल से युक्त विद्याधर युगल, गन्धर्व एवं किन्नर-किन्नरियों की उड्डीयमान आकृतियां उत्कीर्णित हैं। मध्य की पंक्ति में विभिन्न देव युगलों, लक्ष्मी एवं जिनों (लांछन रहित) आदि की मूर्तियां हैं। निचली पंक्ति में जिनों, अष्ट-दिक्पालों, देवयुगलों (शक्ति के साथ आलिंगन-मुद्रा में), अम्बिका यक्षी, शिव, विष्णु, ब्रह्मा एवं विश्वप्रसिद्ध अप्सराओं[7] की मूर्तियां हैं।

---

१ ब्राउन, पर्सी, पू०नि०, पृ० ११५

२ कनिंघम, ए०, आ०स०इं०रि०, १८६४–६५, खं० २, पृ० ४३१–३५; ब्राउन, पर्सी, पू०नि०, पृ० ११२–१३

३ नवीन जैन मन्दिरों में भी चन्देलकालीन जैन मूर्तियां रखी है। नवीन जैन मन्दिरों की संख्या का उल्लेख हमने १९७० में उन मन्दिरों पर अंकित स्थानीय संख्या के अनुसार किया है।

४ जिनों की निर्वस्त्र मूर्तियां और १६ मांगलिक स्वप्नों के चित्रण दिगंबर संप्रदाय की विशेषताएं हैं। ज्ञातव्य है कि श्वेतांबर सम्प्रदाय में मांगलिक स्वप्नों की संख्या १४ है।

५ कृष्ण देव, 'दि टेम्पल्स ऑव खजुराहो इन सेन्ट्रल इण्डिया', ऐं०इं०, अं० १५, पृ० ५५

६ ब्रून, क्लाज, 'दि फिगर ऑव टू लोअर रिलीफ्स आन दि पार्श्वनाथ टेम्पल् ऐट खजुराहो', आचार्य श्री विजय-वल्लभसूरि स्मारक ग्रन्थ, बंबई, १९५६, पृ० ७–३५

७ पार्श्वनाथ मन्दिर की दर्पण देखती, पत्र लिखती, पैर से कांटा निकालती, पैर में पायजेब बांधती कुछ अप्सरा मूर्तियां अपनी भावभंगिमाओं एवम् शिल्पगत विशेषताओं के कारण विश्वप्रसिद्ध हैं।

शिखरकी दोनों पंक्तियों की देव युगल[1] एवं स्वतन्त्र मूर्तियों में देवता सदैव चतुर्भुज हैं। पर देवताओं की शक्तियां द्विभुजा हैं। सभी मूर्तियां त्रिभंग में खड़ी हैं। इन मूर्तियों में शक्ति की एक भुजा आलिंगन-मुद्रा में है और दूसरी में दर्पण या पद्म है।[2] तात्पर्य यह कि विभिन्न देवों के साथ पारम्परिक शक्तियों, यथा विष्णु के साथ लक्ष्मी, ब्रह्मा के साथ ब्रह्माणी, के स्थान पर सामान्य एवं व्यक्तिगत विशेषताओं से रहित देवियां निरूपित हैं। स्वतन्त्र देव मूर्तियों में शिव (१९), विष्णु (१०) एवं ब्रह्मा (१) की मूर्तियां हैं। देवयुगलों में शिव (९), विष्णु (७), ब्रह्मा (१), अग्नि (१), कुबेर (१), राम (१)[3] एवं बलराम (१) की मूर्तियां हैं। अम्बिका (२), चक्रेश्वरी (१), सरस्वती (६), लक्ष्मी (५) एवं त्रिमुख ब्रह्माणी (२) की भी मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। जिन, अम्बिका एवं चक्रेश्वरी की मूर्तियों के अतिरिक्त मण्डोवर की अन्य सभी मूर्तियां हिन्दू देवकुल से सम्बन्धित और प्रभावित हैं। उत्तरी एवं दक्षिणी शिखर पर काम-क्रिया में रत दो युगल चित्रित हैं।[4] उल्लेखनीय है कि खजुराहो के दुलादेव, लक्ष्मण, कन्दरिया महादेव, देवी जगदम्बी एवं विश्वनाथ मन्दिरों पर उत्कीर्ण काम-क्रिया से सम्बन्धित विभिन्न मूर्तियों में अनेकशः मुण्डित-मस्तक, निर्वस्त्र एवं मयूरपीछिका लिए जैन साधुओं को रतिक्रिया की विभिन्न मुद्राओं में दरशाया गया है। लक्ष्मण मन्दिर की उत्तरी भित्ति की ऐसी एक दिगम्बर मूर्ति में जैन साधु के वक्षःस्थल में श्रीवत्स चिह्न भी उत्कीर्ण है। हरिवंशपुराण (२९.१–५) में एक स्थान पर जिन मन्दिर में सम्पूर्ण प्रजा के कौतुक के लिए कामदेव और रति की मूर्ति बनवाने और मन्दिर के कामदेव मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध होने के उल्लेख हैं। ये बातें जैन धर्म में आये शिथिलन का संकेत देती हैं।

गर्भगृह की भीत्ति पर अष्ट-दिक्पाल, जिनों, बाहुबली एवं शिव (८) की मूर्तियां हैं। उत्तरंगों पर द्विभुज नवग्रहों (३ समूह) और द्वार-शाखाओं पर मकरवाहिनी गंगा और कूर्मवाहिनी यमुना की मूर्तियां हैं।

मण्डप की भित्ति की जिन मूर्तियों में लांछन और यक्ष-यक्षी नहीं उत्कीर्ण हैं। पर गर्भगृह की भित्ति की जिन मूर्तियों (९) में लांछन[5], अष्ट-प्रातिहार्य एवं यक्ष-यक्षी आमूर्तित हैं। यक्ष-यक्षी सामान्यतः अभयमुद्रा एवं फल (या जल-पात्र) से युक्त हैं। लांछनों के आधार पर अभिनन्दन, सुमति (?), चन्द्रप्रभ एवं महावीर की पहचान सम्भव है। मन्दिर की जिन मूर्तियां मूर्तिवैज्ञानिक दृष्टि से प्रारम्भिक कोटि की हैं। जिनों के स्वतन्त्र यक्ष-यक्षी युगलों के स्वरूप का निर्धारण अभी नहीं हो पाया था। गर्भगृह की दक्षिणी भित्ति पर बाहुबली की एक मूर्ति है।[6] सिंहासन पर कायोत्सर्ग में निर्वस्त्र खड़े बाहुबली के साथ जिन मूर्तियों की विशेषताएं (सिंहासन, चामरधर, उड्डीयमान गन्धर्व) प्रदर्शित हैं। बाहुबली के पार्श्वों में विद्याधरियों की दो आकृतियां भी उत्कीर्ण हैं।[7]

घण्टई मन्दिर—कृष्ण देव ने स्थापत्य, मूर्तिकला और लिपि सम्बन्धी साक्ष्यों के आधार पर घण्टई मन्दिर को दसवीं शती ई० के अन्त का निर्माण माना है।[8] मन्दिर के अर्धमण्डप के उत्तरंग पर ललाट-बिम्ब के रूप में अष्टभुज चक्रेश्वरी की मूर्ति उत्कीर्ण है जो मन्दिर के ऋषभदेव को समर्पित होने की सूचक है। उत्तरंग पर द्विभुज नवग्रहों एवं

---

१ देवयुगलों की कुछ मूर्तियां मन्दिर के अन्य भागों पर भी हैं।

२ विभिन्न देवताओं का शक्तियों के साथ आलिंगन-मुद्रा में अंकन जैन परम्परा के विरुद्ध है। जैन परम्परा में कोई भी देवता अपनी शक्ति के साथ नहीं निरूपित है, फिर शक्ति के साथ और वह भी आलिंगन-मुद्रा में चित्रण का प्रश्न ही नहीं उठता।

३ मन्दिर के दक्षिणी शिखर पर रामकथा से सम्बन्धित एक दृश्य भी उत्कीर्ण है। क्लांतमुख सीता अशोक वाटिका में बैठी हैं और हनुमान उन्हें राम की अंगूठी दे रहे हैं—तिवारी, एम०एन०पी०, 'ए नोट आन ऐन इमेज ऑव राम ऐण्ड सीता आन दि पार्श्वनाथ टेम्पल्, खजुराहो', जैन जर्नल, खं० ८, अं० १, पृ० ३०–३२

४ द्रष्टव्य, त्रिपाठी, एल०के०, 'दि एराटिक स्कल्पचर्स ऑव खजुराहो ऐण्ड देयर प्रॉबेबल एक्सप्लानेशन', भारती, अं० ३, पृ० ८२-१०४

५ केवल चार उदाहरणों में लांछन स्पष्ट हैं।

६ प्राचीनतम मूर्ति जूनागढ़ संग्रहालय में है।

७ हरिवंशपुराण ११.१०१

८ कृष्ण देव, पू०नि०, पृ० ६०

गोमुख (८) की भी मूर्तियां हैं। गोमुख आकृतियों की भुजाओं में पद्म और घट हैं। प्रवेश-द्वार पर १६ मांगलिक स्वप्न और गंगा-यमुना की मूर्तियां भी अंकित हैं। छतों और स्तम्भों पर जिनों एवं जैनाचार्यों की लघु मूर्तियां हैं।

आदिनाथ मन्दिर—योजना, निर्माण शैली एवं मूर्तिकला की दृष्टि से आदिनाथ मन्दिर खजुराहो के वामन मन्दिर (ल० १०५०-७५ ई०) के निकट है। कृष्णदेव ने इसी आधार पर मन्दिर को ग्यारहवीं शती ई० के उत्तरार्ध में निर्मित माना है।[1] गर्भगृह में ११५८ ई० की काले प्रस्तर की एक आदिनाथ मूर्ति है। ललाट-बिम्ब पर चक्रेश्वरी आमूर्तित है। मन्दिर के मण्डोवर पर मूर्तियों की तीन समानान्तर पंक्तियां हैं। ऊपर की पंक्ति में गन्धर्व, किन्नर एवं विद्याधर मूर्तियां हैं। मध्य की पंक्ति में चार कोनों पर त्रिभंग में आठ चतुर्भुज गोमुख आकृतियां उत्कीर्ण हैं। आठ गोमुख आकृतियां सम्भवतः अष्ट-वासुकियों का चित्रण है।[2] इनके करों में वरदमुद्रा, चक्राकार सनाल पद्म (या परशु), चक्राकार सनाल पद्म एवं जलपात्र हैं। निचली पंक्ति में अष्ट-दिक्पालों की चतुर्भुज मूर्तियां हैं। दक्षिणी अधिष्ठान पर ललितमुद्रा में आसीन चतुर्भुज क्षेत्रपाल की मूर्ति है। क्षेत्रपाल का वाहन श्वान् है और करों में गदा, नकुलक, सर्प एवं फल प्रदर्शित हैं। सिंहवाहना अम्बिका की तीन और गरुडवाहना चक्रेश्वरी की दो मूर्तियां हैं।

आदिनाथ मन्दिर के मण्डोवर की १६ रथिकाओं में १६ देवियों की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। ये मूर्तियां मूर्ति-वैज्ञानिक दृष्टि से विशेष महत्व की हैं। भिन्न आयुधों एवं वाहनों वाली स्वतन्त्र देवियों की सम्भावित पहचान १६ महाविद्याओं से की जा सकती है।[3] ललितमुद्रा में आसीन या त्रिभंग में खड़ी देवियां चार से आठ भुजाओं वाली हैं। उत्तर और दक्षिण की भित्तियों पर ७-७ और पश्चिम की भित्ति पर दो देवियां उत्कीर्ण है।[4] सभी उदाहरणों मे रथिका-बिम्ब काफी विरूप हैं, जिसकी वजह से उनकी पहचान कठिन हो गई है। केवल कुछ ही देवियों के निरूपण में पश्चिम भारत के लाक्षणिक ग्रन्थों के निर्देशों का आंशिक अनुकरण किया गया है। सभी देवियां वाहन से युक्त हैं और उनके शीर्ष भाग में लघु जिन आकृतियां उत्कीर्ण हैं। देवियों के स्कन्धों के ऊपर सामान्यतः अभयमुद्रा, पद्म, पद्म एवं जलपात्र से युक्त देवियों की दो छोटी मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। दिगंबर ग्रन्थों से तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर कुछ देवियों की सम्भावित पहचान के प्रयास किये गये हैं। वाहनों या कुछ विशिष्ट आयुधों या फिर दोनों के आधार पर जांबूनदा, गौरी, काली, महाकाली, गांधारी, अच्युता एवं वैरोट्या महाविद्याओं की पहचान की गई है।

मन्दिर के प्रवेश-द्वार पर वाहन से युक्त चतुर्भुज देवियां निरूपित है। इनमें केवल लक्ष्मी, चक्रेश्वरी, अम्बिका एवं पद्मावती की ही निश्चित पहचान सम्भव है।[5] दहलीज पर दो चतुर्भुज पुरुष आकृतियां ललितमुद्रा में उत्कीर्ण हैं। इनकी तीन अवशिष्ट भुजाओं में अभयमुद्रा, परशु एवं चक्राकार पद्म हैं। देवता की पहचान सम्भव नहीं है। दहलीज के बायें छोर पर महालक्ष्मी की मूर्ति है। दाहिने छोर पर त्रिसर्पफणा और पद्मासना देवी की मूर्ति है। देवी की पहचान सम्भव नहीं है। प्रवेश-द्वार पर मकरवाहिनी गंगा एवं कूर्मवाहिनी यमुना और १६ मांगलिक स्वप्न उत्कीर्ण हैं।

शान्तिनाथ मन्दिर—शान्तिनाथ मन्दिर (मन्दिर १) में शान्ति की एक विशाल कायोत्सर्ग प्रतिमा है। कनिंघम ने इस मूर्ति पर १०२८ ई० का लेख देखा था, जो सम्प्रति प्लास्टर के अन्दर छिप गया है।[6]

---

१ वही, पृ० ५८

२ खजुराहो के चतुर्मुज एवं दूलादेव हिन्दू मन्दिरों पर भी समान विवरणों वाली आठ गोमुख आकृतियां उत्कीर्ण हैं। इनकी भुजाओं में वरदमुद्रा (या वरदाक्ष), त्रिशूल (या स्रुक), पुस्तक-पद्म एवं जलपात्र प्रदर्शित हैं।

३ मध्य भारत में १६ महाविद्याओं के सामूहिक चित्रण का यह एकमात्र सम्भावित उदाहरण है।

४ उत्तरी भित्ति की दो रथिकाओं के बिम्ब सम्प्रति गायब हैं।

५ तिवारी, एम० एन० पी०, 'खजुराहो के आदिनाथ मन्दिर के प्रवेश-द्वार की मूर्तियां', **अनेकान्त**, वर्ष २४, अं० ५, पृ० २१८–२१

६ कनिंघम, ए०, आ०स०ई०रि०, १८६४–६५, खं० २, पृ० ४३४

प्राचीन जैन मन्दिरों के अतिरिक्त स्थानीय संग्रहालयों[1] एवं नवीन जैन मन्दिरों में भी जैन मूर्तियां सुरक्षित हैं। उनका भी संक्षेप में उल्लेख अपेक्षित है। खजुराहो की प्राचीनतम जिन मूर्तियां पार्श्वनाथ मन्दिर की हैं। खजुराहो से दसवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की लगभग २५० जिन मूर्तियां मिली हैं (चित्र४२)।[2] ये मूर्तियां श्रीवत्स एवं लांछनों से युक्त हैं। यहां जिनों की ध्यानस्थ मूर्तियां अपेक्षाकृत अधिक हैं। सुपार्श्व एवं पार्श्व अधिकांशतः कायोत्सर्ग में निरूपित हैं। अष्ट-प्रातिहार्यों एवं यक्ष-यक्षी युगलों से युक्त[3] जिन मूर्तियों के परिकर में नवग्रहों एवं जिनों की छोटी मूर्तियां भी उत्कीर्ण हैं। सभी जिनों के साथ स्वतन्त्र यक्ष-यक्षी नहीं निरूपित हैं। केवल ऋषभ (गोमुख-चक्रेश्वरी), नेमि (सर्वानुभूति-अम्बिका), पार्श्व (धरणेन्द्र-पद्मावती) एवं महावीर (मातंग-सिद्धायिका) के साथ ही पारम्परिक या स्वतन्त्र लक्षणों वाले यक्ष-यक्षी निरूपित हैं। अन्य जिनों के साथ वैयक्तिक विशिष्टताओं से रहित सामान्य लक्षणों वाले यक्ष-यक्षी आमूर्तित हैं। खजुराहो में केवल ऋषभ (६०), अजित, सम्भव, अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, शान्ति, मुनिसुव्रत, नेमि, पार्श्व (११) एवं महावीर (९) की ही मूर्तियां हैं। यहां द्वितीर्थी (९), त्रितीर्थी (१, मन्दिर ८) और चौमुखी (१, पुरातात्विक संग्रहालय, खजुराहो १५८८) जिन मूर्तियां भी हैं (चित्र ६१, ६३)। मन्दिर १८ के उत्तरंग पर किसी जिन के दीक्षा-कल्याणक का दृश्य है। जैन युगलों (७) एवं आचार्यों की भी कई मूर्तियां हैं। जैन युगलों के शीर्ष भाग में वृक्ष एवं लघु जिन मूर्ति उत्कीर्ण हैं। स्त्री की बायीं भुजा में सदैव एक बालक प्रदर्शित है।

अम्बिका (११) एवं चक्रेश्वरी (१३) खजुराहो की सर्वाधिक लोकप्रिय यक्षियां हैं (चित्र५७)। पार्श्वनाथ मन्दिर की दक्षिणी जंघा की एक द्विभुज मूर्ति के अतिरिक्त अम्बिका सदैव चतुर्भुज है। चक्रेश्वरी चार से दस भुजाओं वाली है। पद्मावती की भी तीन मूर्तियां हैं। मन्दिर २४ के उत्तरंग पर सिद्धायिका की भी एक मूर्ति है। अश्ववाहना मनोवेगा की एक मूर्ति पुरातात्विक संग्रहालय, खजुराहो (९४०) में है। यक्षों में केवल कुबेर की ही स्वतन्त्र मूर्तियां (४) मिली हैं।

अन्य स्थल

जबलपुर-भेंड़ाघाट मार्ग के समीप त्रिपुरी के अवशेष हैं जिसमें चक्रेश्वरी, पद्मावती, ऋषभ एवं नेमि की मूर्तियां हैं।[4] बिल्हारी (जबलपुर) में ल० दसवीं शती ई० का जैन मन्दिर एवं मूर्ति अवशेष हैं। मन्दिर के प्रवेश-द्वार पर पार्श्व और बाहुबली की मूर्तियां हैं। यहां से चक्रेश्वरी एवं बाहुबली की भी मूर्तियां मिली हैं। जबलपुर से अर की एक मूर्ति मिली है। शहडोल से ऋषभ, पार्श्व, पद्मावती, जैन युगल एवं जिन चौमुखी मूर्तियां (११वीं शती ई०) प्राप्त हुई हैं (चित्र५५)। ऊन (इन्दौर) और अहाड़ (टीकमगढ़) से ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० की जैन मूर्तियां मिली हैं (चित्र ६७)।[5] अहाड़ से शान्ति (११८० ई०), कुंथु, अर एवं महावीर की मूर्तियां उपलब्ध हुई हैं। अहाड़ से कुछ दूर बानपुर एवं जतरा से भी जैन मूर्तियां (१२ वीं–१३ वीं शती ई०) मिली हैं। टीकमगढ़ स्थित नवागढ़ से बारहवीं शती ई० के जैन मन्दिर एवं मूर्ति अवशेष मिले हैं। यहां से अर (११४५ ई०) और पार्श्व की मूर्तियां मिली हैं।[6] विदिशा के बड़ोह एवं पठारी से दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० के जैन मन्दिर एवं मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। पठारी से अम्बिका एवं महावीर की मूर्तियां मिली हैं। रीवां एवं गुर्गी से जिनों एवं जैन युगलों की मूर्तियां (११ वीं शती ई०) मिली हैं। देवास और गंधावल से प्राप्त जैन मूर्तियों (११ वीं–१२ वीं शती ई०) में पार्श्व एवं विंशतिभुज चक्रेश्वरी की मूर्तियां उल्लेखनीय हैं।[7]

---

१ जैन मूर्तियां आदिनाथ मन्दिर के पीछे (शान्तिनाथ संग्रहालय), पुरातात्विक संग्रहालय एवं जार्डिन संग्रहालय में सुरक्षित हैं।

२ इस संख्या में उत्तरंगों, प्रवेश-द्वारों एवं मन्दिरों के अन्य भागों की लघु जिन आकृतियां नहीं सम्मिलित हैं।

३ कुछ उदाहरणों में ऋषभ, अजित, सुपार्श्व, पार्श्व, मुनिसुव्रत एवं महावीर के साथ यक्ष-यक्षी नहीं निरूपित हैं।

४ शास्त्री, अजयमित्र, 'त्रिपुरी का जैन पुरातत्व', जैन मिलन, वर्ष १२, अं० २, पृ० ६९–७२

५ स्ट०जै०आ०, पृ० २३; जैन, नीरज, 'अतिशय क्षेत्र अहार', अनेकान्त, वर्ष १८, अं० ४, पृ० १७७–७९

६ जैन, नीरज, 'नवागढ़ : एक महत्वपूर्ण मध्ययुगीन जैन तीर्थ', अनेकान्त, वर्ष १५, अं० ६, पृ० २७७–७८

७ गुप्ता, एस०पी० तथा शर्मा, बी०एन०, 'गन्धावल और जैन मूर्तियां', अनेकान्त, वर्ष १९, अं० १-२, पृ०१२९-३०

बिहार

बिहार में मुख्यतः राजगिर (वैमार, सोनभण्डार, मनियार मठ), मानभूम एवं बक्सर के विभिन्न स्थलों से जैन शिल्प सामग्री मिली है। इस क्षेत्र की मूर्तियां दिगंबर सम्प्रदाय से सम्बन्धित हैं। जिन मूर्तियों की संख्या सबसे अधिक है। इनमें ऋषभ और पार्श्व की सर्वाधिक मूर्तियां हैं। साथ ही अजित, सम्भव, अभिनन्दन, नेमि एवं महावीर की भी मूर्तियां मिली हैं। जिन मूर्तियों में लांछन सदैव प्रदर्शित हैं पर श्रीवत्स, सिंहासन एवं धर्मचक्र के चित्रण में नियमितता नहीं प्राप्त होती है। जिन मूर्तियों में दुन्दुभिवादक, गजों और यक्ष-यक्षी[1] की आकृतियां नहीं प्रदर्शित हैं। शीर्ष भाग में अशोक वृक्ष का चित्रण विशेष लोकप्रिय था। अम्बिका, पद्मावती (?), जिन चौमुखी और जैन युगलों की भी कुछ मूर्तियां मिली हैं।

राजगिर की सभी पांच पहाड़ियों से प्राचीन जैन मूर्तियां मिली हैं।[2] इनमें वैभार पहाड़ी पर सर्वाधिक मूर्तियां हैं। उदयगिरि पहाड़ी के आधुनिक जैन मन्दिर में पार्श्व की एक मूर्ति (९वीं शतीई०) सुरक्षित है। वैभार पहाड़ी के आधुनिक जैन मन्दिर में ऋषभ, सम्भव, पार्श्व, महावीर एवं जैन युगलों की मूर्तियां हैं।[3] मनियार मठ से भी जैन मूर्तियां मिली हैं।[4] वैभार पहाड़ी की सोनभण्डार गुफाओं में भी नवीं-दसवीं शती ई० की जिन मूर्तियां हैं।

मानभूम जिले के विभिन्न स्थलों से दसवीं-बारहवीं शती ई० की जैन मूर्तियां मिली हैं। अलुआरा ग्राम से २९ जैन कांस्य मूर्तियां मिली हैं।[5] बोरम ग्राम के जैन मन्दिर और चन्दनक्यारी से ५ मील दूर कुम्हारी और कुमदंग ग्रामों में ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० की जैन मूर्तियां हैं। बुधपुर, दारिका, पबनपुर, मानगढ़, दुलमी, बेगलर, अनई, कतरासगढ़ एवं अरसा से भी जैन मूर्तियां मिली हैं।[6] चौसा (शाहाबाद) से नवीं शतीई० तक की जैन मूर्तियां मिली हैं। चौसा ग्राम के समीप मसाढ़ (आरा से ६मील) से भी कुछ जैन अवशेष मिले है। आरा के आसपास कई जैन मन्दिर हैं जिनमें से कुछ प्राचीन हैं।[7] सिंहभूम में बेणुसागर में प्राचीन जैन मन्दिर एवं मूर्तियां हैं।[8] वैशाली से काले प्रस्तर की एक पालयुगीन महावीर मूर्ति मिली है।[9] चम्पा (भागलपुर) से भी कुछ प्राचीन जैन अवशेष मिले हैं।[10]

उड़ीसा

उड़ीसा में पुरी जिले की उदयगिरि-खण्डगिरि पहाड़ियों (पुरी) की जैन गुफाओं से सर्वाधिक मूर्तियां मिली हैं। इनमें आठवीं-नवीं से बारहवीं शती ई० तक की मूर्तियां हैं। जैन प्रतिमाविज्ञान के अध्ययन की दृष्टि से इन गुफाओं की चौबीस जिनों एवं यक्षियों की मूर्तियां विशेष महत्व की हैं। जेयपुर, नन्दपुर, काकटपुर, तथा कोरापुट के भैरवसिंहपुर, क्योंझर के पोट्टासिंगीदो, मयूरभंज के बड़शाही, बालेश्वर के चरंपा और कटक के जाजपुर आदि स्थलों से भी जैन मूर्ति अवशेष मिले हैं। कटक के जाजपुर स्थित अखण्डलेश्वर एवं मैत्रक मन्दिरों के समूहों में भी जैन मूर्तियां सुरक्षित हैं।[11]

---

१ केवल भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता की एक चन्द्रप्रभ मूर्ति (ल० ११ वी शती ई०) में ही यक्ष-यक्षी निरूपित हैं। राजगिर के समीप से मिली एक ऋषभ मूर्ति (१२ वी शती ई०) में सिंहासन के मध्य में चक्रेश्वरी उत्कीर्ण है—स्ट०जै०आ०, फलक १६, चित्र ४४; आ०स०इं०ऐ०रि०, १९२५-२६, फलक ५७, चित्र बी

२ ये मूर्तियां राजगिर की पहाड़ियों के आधुनिक जैन मन्दिरों में सुरक्षित है।

३ कुरैशी, मुहम्मद हमीद, राजगिर, दिल्ली, १९६०, पृ० १६-१७

४ चन्दा, आर०पी०, 'जैन रिमेन्स ऐट राजगिर', आ०स०इं०ऐ०रि०, १९२५-२६, पृ० १२१-२७

५ प्रसाद, एच०के०, जू०मि०, पृ० २८३-८९

६ विस्तार के लिए द्रष्टव्य, पाटिल, डी० आर०, दि एन्टिक्वेरियन रिमेन्स इन बिहार, पटना, १९६३ : पाटिल की पुस्तक में १८वीं-१९वीं शती ई० तक की सामग्रियो के उल्लेख हैं।

७ प्रसाद, एच० के०, जू०मि०, पृ० २७५

८ रायचौधरी, पी० सी०, जैनिज्म इन बिहार, पटना, १९५६, पृ० ६४

९ ठाकुर, उपेन्द्र, 'ए हिस्टारिकल सर्वे ऑव जैनिज्म इन नार्थ बिहार', ज०बि०रि०सो०, खं०४५, भाग १-४, पृ०२०२

१० वही, पृ० १९८

११ जैन जर्नल, खं० ३, अं० ४, पृ० १७१-७४

उड़ीसा की जैन मूर्तिकला दिगंबर सम्प्रदाय से सम्बन्धित है। यहां भी जिन मूर्तियां ही सर्वाधिक हैं (चित्र ५८)। जिनों में क्रमशः पार्श्व, ऋषभ, शान्ति एवं महावीर की सबसे अधिक मूर्तियां मिली हैं। जिनों के साथ लांछन उत्कीर्ण हैं। इस क्षेत्र की जिन मूर्तियों में सिंहासन के सूचक सिंहों का चित्रण नियमित नहीं था। धर्मचक्र, देवदुन्दुभि एवं गजों के चित्रण भी नहीं प्राप्त होते। जिनों के साथ यक्ष-यक्षी युगलों के निरूपण की परम्परा नहीं थी। द्वितीर्थी, जिन चौबीसी, चक्रेश्वरी, अम्बिका, रोहिणी, सरस्वती एवं गणेश की भी स्वतन्त्र मूर्तियां मिली हैं। यक्षों एवं महाविद्याओं की एक भी मूर्ति नहीं मिली है।

उदयगिरि-खण्डगिरि की ललाटेन्दुकेसरी (या सिंहराजा गुफा), नवमुनि, बारभुजी एवं त्रिशूल (या हनुमान) गुफाओं में पार्श्व की सर्वाधिक मूर्तियां हैं। बारभुजी एवं नवमुनि गुफाओं में जिन मूर्तियों के नीचे स्वतन्त्र रथिकाओं में यक्षियां निरूपित हैं। बारभुजी एवं त्रिशूल गुफाओं (ल० ११वीं-१२वीं शती ई०) में २४ जिनों की लांछनयुक्त मूर्तियां हैं। त्रिशूल गुफा की मूर्तियों में शीतल, अनन्त और नमि की पहचान परम्परागत लांछनों के अभाव में सम्भव नहीं है।[1] चन्द्रप्रभ के बाद जिनों की मूर्तियां पारम्परिक क्रम में भी नहीं उत्कीर्ण हैं।[2]

बारभुजी गुफा के सामूहिक चित्रण में जिन केवल ध्यानमुद्रा में निरूपित हैं। जिन मूर्तियों के नीचे स्वतन्त्र रथिकाओं में सम्बन्धित जिनों की यक्षियां आमूर्तित हैं (चित्र ५९)। श्रीवत्स से रहित जिन मूर्तियों में त्रिछत्र, भामण्डल, दुन्दुभि, चामरधर सेवक एवं उड्डीयमान मालाधर चित्रित हैं। सम्भव, सुमति, सुपार्श्व, अनन्त एवं नेमि[3] के लांछन या तो अस्पष्ट हैं, या फिर परम्परा के विरुद्ध हैं।[4] जिनों की मूर्तियां पारम्परिक क्रम में उत्कीर्ण हैं।

नवमुनि गुफा (११ वीं शती ई०) में जिनों की सात ध्यानस्थ मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। ये मूर्तियां ऋषभ, अजित, सम्भव, अभिनन्दन, वासुपूज्य, पार्श्व और नेमि की हैं।[5] जिनों के साथ भामण्डल, श्रीवत्स एवं सिंहासन नहीं उत्कीर्ण हैं। जिन मूर्तियों के नीचे उनकी यक्षियां आमूर्तित हैं। ललितमुद्रा में विराजमान[6] यक्षियां वाहन से युक्त और दो से दस भुजाओं वाली हैं। अजित एवं वासुपूज्य की यक्षियों के अंकन में हिन्दू देवी इन्द्राणी एवं कौमारी की लाक्षणिक विशेषताएं प्रदर्शित हैं। अभिनन्दन एवं वासुपूज्य की यक्षियों की गोद में परम्परा के विरुद्ध बालक प्रदर्शित है। अजित एवं अभिनन्दन की यक्षियों के वाहन क्रमशः गज और कपि हैं, जो सम्बन्धित जिनों के लांछन हैं। गुफा में गजमुख गणेश की भी एक मूर्ति है जो मोदकपात्र, परशु, अक्षमाला और पद्मनलिका से युक्त है।[7] ललाटेन्दु गुफा में जिनों की आठ कायोत्सर्ग मूर्तियां हैं। पांच उदाहरणों में पार्श्व उत्कीर्ण हैं।[8] खण्डगिरि पहाड़ी की कुछ पार्श्व, ऋषभ एवं महावीर की द्वितीर्थी तथा अम्बिका मूर्तियां ब्रिटिश संग्रहालय में भी हैं।[9]

यहां हम बारभुजी गुफा (खण्डगिरि, पुरी) की २४ यक्षी मूर्तियों का कुछ विस्तार से उल्लेख करेंगे। स्मरणीय है कि २४ यक्षियों के सामूहिक चित्रण का यह दूसरा ज्ञात उदाहरण है।[10] गुफा की द्विभुज से विंशतिभुज यक्षियां वाहन से युक्त

---

१ दो जिनों के साथ लांछन मयूर और कोई पौधा हैं। वज्र लांछन दो जिनों के साथ उत्कीर्ण हैं।

२ कुरेशी, मुहम्मद हमीद, लिस्ट ऑव ऐन्शण्ट मान्युमेण्ट्स इन दि प्राविन्स ऑव बिहार ऐण्ड उड़ीसा, पृ० २८०–८२

३ नेमि के साथ अम्बिका यक्षी निरूपित है।

४ कुरेशी, मुहम्मद हमीद, पू०नि०, पृ० २७९–८० : एक उदाहरण में लांछन भ्रान्त है और अन्य दो में शूकर एवं वज्र। शूकर एवं वज्र दो जिनों के साथ उत्कीर्ण हैं।

५ गुफा में ऋषभ, चन्द्रप्रभ एवं पार्श्व की तीन अन्य मूर्तियां भी हैं। पार्श्व के आसन पर लांछन रूप में दो नाग उत्कीर्ण हैं।

६ जटामुकुट से शोभित गरुडवाहना चक्रेश्वरी योगासन में बैठी है।

७ मित्रा, देबला, 'शासनदेवीज इन दि खण्डगिरि केव्ज', ज०ए०सो०, खं० १, अं० २, पृ० १२७–२८

८ कुरेशी, मुहम्मद हमीद, पू०नि०, पृ० २८३

९ चंदा, आर० पी०, मेडिवल इण्डियन स्कल्पचर इन दि ब्रिटिश म्यूज़ियम, लंदन, १९३६, पृ० ७१

१० प्रारम्भिकतम उदाहरण देवगढ़ के मन्दिर १२ पर है।

हैं। चक्रेश्वरी, अम्बिका एवं पद्मावती यक्षियों के अतिरिक अन्य के निरूपण में सामान्यतः परम्परा का निर्वाह नहीं किया गया है। चक्रेश्वरी एवं पद्मावती के निरूपण में भी परम्परा का निर्वाह कुछ विशिष्ट लक्षणों तक ही सीमित है। शान्ति एवं मुनिसुव्रत की यक्षियां क्रमशः ध्यानमुद्रा (योगासन) में और लेटी हैं। अन्य यक्षियां ललितमुद्रा में हैं। बीस देवियां पायोंवाले आसन पर और शेष चार पद्म पर विराजमान हैं। कुछ यक्षियों के निरूपण में ब्राह्मण एवं बौद्ध देवकुलों की देवियों के लाक्षणिक स्वरूपों के अनुकरण किये गये हैं। शान्ति, अर एवं नेमि की यक्षियों के निरूपण में क्रमशः गजलक्ष्मी, तारा (बौद्ध देवी) और त्रिमुख ब्रह्माणी के प्रभाव स्पष्ट हैं।[1] २४ यक्षियों के अतिरिक्त इस गुफा में चक्रेश्वरी एवं रोहिणी की दो अन्य मूर्तियां (द्वादशभुज) भी हैं।

कटक के जैन मन्दिर में कई मध्ययुगीन जिन मूर्तियां हैं। इनमें ऋषभ और पार्श्व की द्वितीर्थी और भरत एवं बाहुबली से वेष्टित ऋषभ की मूर्तियां उल्लेखनीय हैं। क्योंझर के पोट्टासिंगीदी और बालेश्वर के चरम्पा ग्राम से आठवीं से दसवीं शती ई० के मध्य की ऋषभ, अजित, शान्ति, पार्श्व, महावीर एवं अम्बिका की मूर्तियां मिली हैं, जो सम्प्रति राज्य संग्रहालय, उड़ीसा में हैं।[2]

बंगाल

पुरुलिया, बांकुड़ा, मिदनापुर, सुन्दरबन, राढ़ एवं बर्दवान के पुरातात्विक सर्वेक्षण से ल० आठवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की जैन प्रतिमाविज्ञान की प्रचुर सामग्री मिली है। बंगाल की जैन मूर्तियां दिगंबर सम्प्रदाय से सम्बद्ध हैं (चित्र ९-११, ६८)। बंगाल में जिनों, चौमुखी,[3] द्वितीर्थी, सर्वानुभूति, चक्रेश्वरी, अम्बिका, सरस्वती और जैन युगलों की मूर्तियां मिली हैं। जिनों में ऋषभ एवं पार्श्व की सर्वाधिक मूर्तियां है। लटों से युक्त ऋषभ कभी-कभी जटामुकुट से शोभित हैं। ऋषभ एवं पार्श्व के बाद लोकप्रियता के क्रम में शान्ति, महावीर, नेमि एवं पद्मप्रभ की मूर्तियां हैं। जिन मूर्तियों में लांछन सर्वंव प्रदर्शित हैं पर सिंहासन, धर्मचक्र, अशोकवृक्ष एवं दुन्दुभिवादक के चित्रण नियमित नहीं रहे है। जिनों की कायोत्सर्ग मूर्तियां ही अधिक हैं। जिन मूर्तियों में यक्ष-यक्षी का निरूपण नही हुआ है।[4] जिन मूर्तियो के परिकर में नवग्रहों एवं २३ या २४ लघु जिन आकृतियों के चित्रण इस क्षेत्र मे विशेष लोकप्रिय थे। परिकर की लघु जिन आकृतियां सामान्यतः लांछनों से युक्त हैं। जिन चौमुखी मूर्तियों में अधिकांशतः चार स्वतन्त्र जिन चित्रित है।

सुरोहर (दिनाजपुर, बांगलादेश) से ध्यानस्थ ऋषभ की एक मनोज्ञ मूर्ति (१०वीं शती ई०) मिली है (चित्र ९)।[5] मूर्ति के परिकर में लांछनों से युक्त २३ लघु जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं।[6] राजशाही जिले के मण्डोली से मिली एक ऋषभ मूर्ति में नवग्रह एवं गणेश निरूपित हैं।[7] राजशाही संग्रहालय में बंगाल की अम्बिका एवं जैन युगल मूर्तियां भी संकलित हैं। बांकुड़ा में पारसनाथ, रानीबांध, अम्बिकानगर, केन्दुआ, बरकोला, दुएलमीर, बहुलर,[8] और पुरुलिया

---

१ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १२९-३३

२ जोशी, अर्जुन, 'फर्दर लाइट ऑन दि रिमेन्स ऐट पोट्टासिंगीदी', उ०हि०रि०ज०, खं० १०, अं० ४, पृ० ३०-३२; दास, एम० पी०, 'जैन एन्टिक्विटीज फ्राम चरंपा', उ०हि०रि०ज०, खं० ११, अं० १, पृ० ५०-५३

३ जिन चौमुखी का उत्कीर्णन अन्य किसी क्षेत्र की तुलना में यहां अधिक लोकप्रिय था।

४ केवल एक जिन मूर्ति (ऋषभ) में यक्ष-यक्षी का अंकन हुआ है—मित्र, कालीपद, 'आन दि आइडेन्टिफिकेशन ऑव ऐन इमेज', इं०हि०क्वा०, खं० १८, अं० ३, पृ० २६१-६६

५ गांगुली, कल्याणकुमार, 'जैन इमेजेज इन बंगाल', इण्डि०क०, खं० ६, पृ० १३८-३९

६ सुमति एवं सुपार्श्व के साथ पशु एवं पद्म लांछनों का अंकन परम्पराविरुद्ध है।

७ जैन जर्नल, खं० ३, अं० ४, पृ० १६१

८ बांकुड़ा से पार्श्व की सर्वाधिक मूर्तियां मिली हैं—चौधरी, रवीन्द्रनाथ, 'आर्किअलाजिकल सर्वे रिपोर्ट बांकुड़ा डिस्ट्रिक्ट', माडर्न रिव्यू, खं० ८६, अं० १, पृ०२११-१२

में देओली, पक्बीरा, संक एवं सेनारा आदि स्थानों से जैन मूर्तियां मिली हैं (चित्र ११, ६८)। मिदनापुर के राजपारा से शान्ति (१० वीं शती ई०) एवं पार्श्व की दो मूर्तियां प्राप्त हुई हैं। अम्बिकानगर एवं बरकोला से अम्बिका की मूर्तियां, और बरकोला से ऋषभ (या सुविधि) एवं अजित तथा जिन चौमुखी मिली हैं।[1] कुमारी नदी के किनारे से दसवीं शतीई० की पार्श्व एवं कुछ अन्य जैन मूर्तियां उपलब्ध हुई हैं।[2] घरपत जैन मन्दिर से ग्यारहवीं शती ई० की पार्श्व एवं महावीर मूर्तियां मिली हैं।[3] महावीर मूर्ति के परिकर में २४ लघु जिन आकृतियां हैं। देउभेर्य से पार्श्व (परिकर में २४ जिनों से युक्त), सर्वानुभूति एवं अम्बिका की मूर्तियां (८ वीं-९ वीं शती ई०) मिली हैं।[4] अम्बिकानगर की एक ऋषभ मूर्ति (११ वीं शती ई०) के परिकर में २४ जिनों की लांछन युक्त मूर्तियां हैं।[5] छितगिरि से शान्ति एवं पारसनाथ से पार्श्व की मूर्तियां मिली हैं।[6] पार्श्व के आसन पर नाग-नागी की आकृतियां हैं। केन्दुआ से मिली पार्श्व की मूर्ति में दो नाग आकृतियां एवं चामरधर सेवक आमूर्तित हैं।[7] पुरुलिया के पक्बीरा से ऋषभ, पद्मप्रभ एवं जिन चौमुखी मूर्तियां प्राप्त हुई हैं (चित्र ६८)। आसपास के क्षेत्र से भी पार्श्व, जैन युगल एवं अम्बिका की मूर्तियां ज्ञात हैं।[8] बर्दवान में रेन, कटवा, उजनी आदि स्थलों से जैन मूर्तियां मिली हैं।[9]

• • •

---

१ जैन जर्नल, खं० ३, अं० ४, पृ० १६३
२ बनर्जी, आर० डी०, 'इस्टर्न सर्किल, बंगाल सरेनगढ़', आ०स०इं०ऐ०रि०, १९२५–२६, पृ० ११५
३ चौधरी, रबीन्द्रनाथ, 'घरपत टेम्पल्' माडर्न रिव्यू, खं० ८८, अं० ४, पृ० २९६–९८
४ मित्रा, देबला, 'सम जैन एन्टिक्विटीज फ्राम बांकुड़ा, वेस्ट बंगाल', ज०ए०सो०बं०, खं० २४, अं० २, पृ० १३२
५ वही, पृ० १३३–३४ ६ वही, पृ० १३४
७ बनर्जी, आर० डी०, 'दि मेडिवल आर्ट ऑव साऊथ-वेस्टर्न बंगाल', माडर्न रिव्यू, खं० ४६, अं० ६, पृ० ६४०–४६
८ बनर्जी, ए०, 'ट्रेसेज ऑव जैनिजम इन बंगाल', ज०यू०पी०हि०सो०, खं० २३, भाग १–२, पृ० १६८
९ जैन जर्नल, खं० ३, अं० ४, पृ० १६५

पञ्चम अध्याय

जिन-प्रतिमाविज्ञान

इस अध्याय में साहित्य और शिल्प के आधार पर जिन मूर्तियों का संक्षेप में काल एवं क्षेत्रगत विकास प्रस्तुत किया गया है जिसमें उनकी सामान्य विशेषताओं का भी उल्लेख है। साथ ही प्रत्येक जिन के मूर्तिविज्ञान के विकास का अलग-अलग भी अध्ययन किया गया है। इस प्रकार यह अध्याय २४ भागों में विभक्त है। प्रारम्भ से सातवीं शती ई० तक के उदाहरणों का अध्ययन कालक्रम में तथा उसके बाद का, क्षेत्र के सन्दर्भ में स्थानीय भिन्नताओं एवं विशेषताओं को दृष्टिगत करते हुए किया गया है। इस सन्दर्भ में प्रतिमाविज्ञान के आधार पर उत्तर भारत को तीन भागों में बांटा गया है। पहले भाग में गुजरात और राजस्थान, दूसरे में उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश तथा तीसरे में बिहार, उड़ीसा और बंगाल सम्मिलित हैं। यक्ष-यक्षियों के छठें अध्याय में भी यही पद्धति अपनायी गयी है।

प्रत्येक जिन के जीवनवृत्त के संक्षेप में उल्लेख के उपरान्त स्वतन्त्र मूर्तियों के आधार पर उस जिन के मूर्तिविज्ञान के विकास का अध्ययन किया गया है। इसमें मूर्तियों की देश और कालगत विशेषताओं का भी उद्‌घाटन किया गया है। साथ ही संश्लिष्ट यक्ष-यक्षी युगल की विशिष्टताओं का भी अति सामान्य उल्लेख है क्योंकि इनका विस्तृत अध्ययन आगे के अध्याय में है। अध्ययन की पूर्णता की दृष्टि से जिनों के जीवनवृत्तों के चित्रणों का भी इस अध्याय में अध्ययन किया गया है। चौबीस जिनों के अलग-अलग मूर्तिविज्ञानपरक अध्ययन के उपरान्त जिनों की द्वितीर्थी, त्रितीर्थी एवं चौमुखी (सर्वतोभद्र-प्रतिमा) मूर्तियों और चतुर्विशति पट्टों एवं जिन-समवसरणों का भी अलग-अलग अध्ययन है। अध्ययन में आवश्यकतानुसार दक्षिण भारतीय जिन मूर्तियों से तुलना भी की गई है।

जिन मूर्तियों मे जिनों की पहचान के मुख्यतः तीन आधार हैं—लांछन, अभिलेख एवं एक सीमा तक यक्ष-यक्षी युगल। गुजरात और राजस्थान की श्वेतांबर जिन मूर्तियों में सामान्यतः लांछनों के स्थान पर पीठिका लेखों में जिनों के नामोल्लेख की परम्परा ही अधिक लोकप्रिय थी। जिनों की पहचान में यक्ष-यक्षियों से सहायता की वहीं आवश्यकता होती है जहां मूर्तियों में लांछन या तो नष्ट हो गए हैं या अस्पष्ट हैं। जिन मूर्तियों की क्षेत्रीय एवं कालगत भिन्नता भी मुख्यतः लांछन, अभिलेख एवं यक्ष-यक्षी युगल के चित्रण से ही सम्बद्ध है। जिन मूर्तियों की भिन्नता परिकर की लघु जिन आकृतियों, नवग्रहों एवं कुछ अन्य देवों के अंकन में भी देखी जा सकती है।

जिन-मूर्तियों का विकास

ल० तीसरी शती ई० पू० से पहली शती ई० पू० के मध्य की तीन प्रारम्भिक जिन मूर्तियां क्रमशः लोहानीपुर, चौसा एवं प्रिंस आव वेल्स संग्रहालय, बंबई की हैं (चित्र २)। इनमें जिनों के वक्षःस्थल में श्रीवत्स चिह्न नहीं उत्कीर्ण है।[1] सभी मूर्तियां निर्वस्त्र हैं और कायोत्सर्ग-मुद्रा में खड़ी हैं। जिन की ध्यानमुद्रा में आसीन मूर्ति सर्वप्रथम पहली शती ई० पू० के मथुरा के आयागपट (राज्य संग्रहालय, लखनऊ, जे २५३) पर उत्कीर्ण हुई। उल्लेखनीय है कि जिन मूर्तियों के निरूपण में केवल उपर्युक्त दो मुद्राएं, कायोत्सर्ग एवं ध्यान, ही प्रयुक्त हुई हैं।

ल० पहली शती ई०पू० की चौसा, प्रिंस ऑव वेल्स संग्रहालय, बंबई एवं मथुरा के आयागपट (राज्य संग्रहालय, लखनऊ, जे २५३) की तीन प्रारम्भिक जिन मूर्तियों में पार्श्व सर्पफणों के छत्र से आच्छादित निरूपित हैं। इस प्रकार जिन

---

१ वक्षःस्थल में श्रीवत्स चिह्न का अंकन जिन मूर्तियों की विशिष्टता और उनकी पहचान का मुख्य आधार है। श्रीवत्स का अंकन सर्वप्रथम ल० पहली शती ई० पू० के मथुरा के आयागपटों की जिन मूर्तियों में हुआ। इसके उपरान्त श्रीवत्स का अंकन सर्वत्र हुआ। केवल उड़ीसा की कुछ मध्ययुगीन जिन मूर्तियों में श्रीवत्स नहीं उत्कीर्ण है।

मूर्तियों में सर्वप्रथम पार्श्व का ही वैशिष्ट्य स्पष्ट हुआ। पार्श्व के बाद ऋषभ के लक्षण निश्चित हुए। मथुरा की पहली शती ई० की जिन मूर्तियों में स्कन्धों पर लटकती जटाओं वाले ऋषभ निरूपित हैं। परवर्ती युगों में भी ऋषभ के साथ जटाएं एवं पार्श्व के साथ सप्त सर्पफणों के छत्र प्रदर्शित हैं।

पहली-दूसरी शती ई० में मथुरा में प्रचुर संख्या में जिनों की कायोत्सर्ग एवं ध्यान मुद्राओं में स्वतन्त्र मूर्तियां उत्कीर्ण हुईं। ऋषभ एवं पार्श्व के अतिरिक्त कुछ उदाहरणों में बलराम एवं कृष्ण के साथ नेमि भी उत्कीर्ण हैं। अन्य जिनों (सम्भव, मुनिसुव्रत एवं महावीर)[1] की पहचान केवल लेखों में उनके नामों के आधार पर की गई है। चौसा की कुषाणकालीन जिन मूर्तियों में केवल ऋषभ एवं पार्श्व की ही पहचान सम्भव है। इस युग की सभी जिन मूर्तियां निर्वस्त्र अंकित की गई हैं। इस प्रकार कुषाण काल में केवल छह ही जिन निरूपित हुए।

कुषाण युग में मथुरा में ही सर्वप्रथम जिन मूर्तियों के साथ प्रातिहार्यों, धर्मचक्र,मांगलिक चिह्नों एवं उपासकों के उत्कीर्णन प्रारम्भ हुए। मथुरा में जैन परम्परा के आठ प्रातिहार्यों में से केवल सात ही प्रदर्शित हैं। ये प्रातिहार्य सिंहासन, भामण्डल, चामरधर सेवक, उड्डीयमान मालाधर, छत्र, चैत्यवृक्ष एवं दिव्य-ध्वनि हैं। जिनों की हथेलियों, चरणों एवं उंगलियों पर धर्मचक्र एवं त्रिरत्न जैसे मांगलिक चिह्न भी उत्कीर्ण हैं।[2] कभी-कभी पार्श्व के सर्पफणों पर भी मांगलिक चिह्न दृष्टिगत होते हैं। मथुरा संग्रहालय की एक पार्श्व मूर्ति (बी ६२) में फणों पर श्रीवत्स, पूर्णघट, स्वस्तिक, वर्धमानक, मत्स्य एवं नंद्यावर्त अंकित हैं।[3] कुषाण युग में जिन चौमुखी का भी निर्माण प्रारम्भ हुआ (चित्र ६६)। इनमें चारों ओर चार जिनों की मूर्तियां अंकित की जाती हैं। चार जिनों में से केवल ऋषभ एवं पार्श्व की ही पहचान सम्भव है। कुषाण युग में ऋषभ एवं महावीर के जीवनदृश्य भी उत्कीर्ण हुए।[4] इनमें नीलांजना के नृत्य के फलस्वरूप ऋषभ की वैराग्य प्राप्ति एवं महावीर के गर्भापहरण के दृश्य हैं (चित्र १२, ३९)।

गुप्तकाल में जिन प्रतिमाविज्ञान में कुछ महत्वपूर्ण विकास हुआ। जिनों के साथ लांछनों, यक्ष-यक्षी युगलों एवं अष्ट-प्रातिहार्यों का निरूपण प्रारम्भ हुआ। बृहत्संहिता (वराहमिहिरकृत) में ही सर्वप्रथम जिन मूर्ति की लाक्षणिक विशेषताएं भी निरूपित हुईं।[5] ग्रन्थ में जिन मूर्ति के श्रीवत्स चिह्न से युक्त, निर्वस्त्र, आजानुलंबबाहु और तरुण स्वरूप में निरूपण का उल्लेख है। गुप्तकाल में गुजरात में (अकोटा) श्वेतांबर जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हुईं (चित्र ५, ३६)। अन्य क्षेत्रों की जिन मूर्तियां दिगंबर सम्प्रदाय की हैं।

राजगिर और भारत कला भवन, वाराणसी (१६१) की दो गुप्तकालीन नेमि और महावीर की मूर्तियों में जिनों के लांछन प्रदर्शित हैं (चित्र ३५)। गुप्तकाल तक सभी जिनों के लांछनों का निर्धारण नहीं हो सका था। इसी कारण ऋषभ, नेमि, पार्श्व एवं महावीर के अतिरिक्त अन्य किसी जिन के साथ लांछन नहीं प्रदर्शित हैं। गुप्तकाल में अष्ट-प्रातिहार्यों का अंकन नियमित हो गया। भामण्डल कुषाणकाल की तुलना में अधिक अलंकृत हैं। सिंहासन के मध्य में

---

१ ज्योतिप्रसाद जैन ने मथुरा की एक कुषाणकालीन सुमतिनाथ मूर्ति (८४ई०) का भी उल्लेख किया है—जैन, ज्योति प्रसाद, दि जैन सोर्सेज ऑव दि हिस्ट्री ऑव ऐन्शण्ट इण्डिया, दिल्ली, १९६४, पृ० २६८

२ जोशी, एन० पी०, 'यूस ऑव आस्पिशस सिम्बल्स इन दि कुषाण आर्ट ऐट मथुरा', मिराशी फेलिसिटेशन वाल्यूम, नागपुर, १९६५, पृ० ३१३ ३ वही, पृ० ३१४ ४ राज्य संग्रहालय, लखनऊ—जे ३५४, जे ६२६

५ आजानुलम्बबाहुः श्रीवत्साङ्कः प्रशान्तमूर्तिश्च ।
दिग्वासास्तरुणो रूपवांश्च कार्योऽर्हतां देवः ।। बृहत्संहिता ५८.४५
द्रष्टव्य, मानसार ५५.४६,७१-९५। मानसार (ल० छठी शती ई०) के अनुसार जिनमूर्ति में दो हाथ और दो नेत्र हों, मुख पर श्मश्रु न दिखाये जायें। मस्तक पर जटाजूट दिखाया जाय। श्रीवत्स से युक्त जिन-मूर्ति में शरीर आकर्षक (सुरूप) हो और किसी प्रकार का आभूषण या वस्त्र न प्रदर्शित हो। जै०क०स्था०, खं० ३, पृ० ४८१

उपासकों से वेष्टित धर्मचक्र की उत्कीर्ण है। सिंहासन के छोरों एवं परिकर पर लघु जिन मूर्तियों का उत्कीर्णन भी प्रारम्भ हुआ। इसी समय की अकोटा की जिन मूर्तियों में धर्मचक्र के दोनों ओर दो मृगों के उत्कीर्णन की परम्परा प्रारम्भ हुई, जो गुजरात-राजस्थान की श्वेतांबर जिन मूर्तियों में निरन्तर लोकप्रिय रही।

यक्ष-यक्षी से युक्त प्रारम्भिकतम जिन मूर्ति (ल० छठीं शती ई०) अकोटा से मिली है।[1] द्विभुज यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका हैं। ल० सातवीं-आठवीं शती ई० से जिन मूर्तियों में नियमित रूप से यक्ष-यक्षी-निरूपण प्रारम्भ हुआ। सातवीं से नवीं शती ई० की ऐसी कुछ जिन मूर्तियां भारत कला भवन, वाराणसी (२१२), मथुरा एवं लखनऊ संग्रहालयों, तथा अकोटा, ओसिया (महावीर मन्दिर) एवं धांक (काठियावाड़) में सुरक्षित हैं (चित्र २६)। इन सभी उदाहरणों में यक्ष-यक्षी सामान्यतः द्विभुज सर्वानुभूति एवं अम्बिका हैं। आठवीं-नवीं शती ई० के बाद की जिन मूर्तियों में ऋषभ, शान्ति, नेमि, पार्श्व एवं महावीर के साथ पारम्परिक या स्वतन्त्र लक्षणों वाले यक्ष-यक्षी निरूपित हैं। पर गुजरात एवं राजस्थान की श्वेतांबर जिन मूर्तियों में सभी जिनों के साथ अधिकांशतः सर्वानुभूति एवं अम्बिका ही आमूर्तित हैं।[2] मूर्तियों में यक्ष दाहिने और यक्षी बाएं पार्श्व में उत्कीर्ण हैं।[3]

ल० आठवीं-नवीं शती ई० तक साहित्य में २४ जिनों के लांछनों का निर्धारण हुआ। श्वेतांबर और दिगम्बर दोनों ही परम्परा के ग्रन्थों में २४ जिनों के निम्नलिखित लांछनों के उल्लेख हैं: वृषभ, गज, अश्व, कपि, क्रौंच पक्षी, पद्म, स्वस्तिक,[4] शशि, मकर, श्रीवत्स,[5] गण्डक (या खड्गी), महिष, शूकर, श्येन, वज्र, मृग, छाग (बकरा), नंद्यावर्त,[6] कलश, कूर्म, नीलोत्पल, शंख, सर्प एवं सिंह।[7]

मूर्तियों में जिनों के लांछन सिंहासन के ऊपर या धर्मचक्र के समीप उत्कीर्ण हैं। लटकती जटाओं से शोभित ऋषभ के साथ वृषभ लांछन सर्वदा प्रदर्शित है, पर सर्पफणों से शोभित सुपार्श्व एवं पार्श्व के लांछन (स्वस्तिक एवं सर्प) केवल कुछ ही उदाहरणों में उत्कीर्ण हैं।[8] उल्लेखनीय है कि गुजरात एवं राजस्थान की श्वेतांबर जिन मूर्तियों में लांछनों

---

१ शाह, यू० पी०, अकोटा ब्रोन्जेज, बम्बई, १९५९, पृ० २८–२९, फलक १०, ११

२ कुछ ऋषभ, पार्श्व एवं महावीर की मूर्तियों में स्वतन्त्र यक्ष-यक्षी उत्कीर्ण हैं।

३ प्रतिष्ठासारोद्धार १.७७; प्रतिष्ठासारसंग्रह ४.१२

४ तिलोयपण्णत्ति में स्वस्तिक के स्थान पर नंद्यावर्त का उल्लेख है।

५ तिलोयपण्णत्ति में श्रीवत्स के स्थान पर स्वस्तिक एवं प्रतिष्ठासारोद्धार में श्रीद्रुम के उल्लेख हैं।

६ तिलोयपण्णत्ति में नंद्यावर्त के स्थान पर तगरकुसुम (मत्स्य) का उल्लेख है।

७ वसह गय तुरय वानर। कुंचु कमलं च सत्थिओ चंदो॥
मयर सिरिवच्छ गंडो। महिस वराहो य सेणो य॥
वज्जं हरिणो छगलो। नंदावत्तो य कलस कुम्मोय॥
नीलुप्पल संख फणी। सीहो य जिणाण चिन्हाइं॥ प्रवचनसारोद्धार ३८१–८२;
अभिधान चिंतामणि, देवाधिदेव काण्ड, ४७–४८
रिसहादीणं चिण्हं गोवगिगयतुरगवाणरा कोकं।
पउमं णंदावत्तं अद्धससी मयरसोत्तीया॥
गंडं महिसवराहा साही वज्जाणि हरिणछगलाय।
तगरकुसुमा य कलसा कुम्मुप्पलसंखअहिसिहा॥ तिलोयपण्णत्ति ४.६०४–६०५;
प्रतिष्ठासारोद्धार १.७८–७९; प्रतिष्ठासारसंग्रह ५.८०–८१

८ मध्ययुगीन जिन मूर्तियों में ऋषभ के अतिरिक्त कुछ अन्य जिनों के साथ भी जटाएं प्रदर्शित हैं। सम्भवतः इसी कारण ऋषभ के साथ लांछन का प्रदर्शन आवश्यक प्रतीत हुआ होगा।

के उत्कीर्णन के स्थान पर पीठिका लेखों में जिनों के नामोल्लेख की परम्परा ही विशेष लोकप्रिय थी। पर ऋषभ, सुपार्श्व एवं पार्श्व के साथ क्रमशः जटाएं एवं पांच और सात सर्पफणों के छत्र प्रदर्शित हैं। ल० छठीं-सातवीं शती ई० से जिन मूर्तियों में अष्ट-प्रातिहार्यों का नियमित अंकन हुआ है। ये अष्ट-प्रातिहार्य[1] निम्नलिखित हैं : अशोक वृक्ष, देव-पुष्पवृष्टि, दिव्य-ध्वनि, चामर, सिंहासन, त्रिछत्र, देवदुन्दुभि एवं भामण्डल।[2] मूर्त अंकनों में अशोक वृक्ष का चित्रण बहुत नियमित नहीं था। दिव्य-ध्वनि एवं देवदुन्दुभि में से केवल एक का निरूपण नियमित था।[3]

जयसेन, वसुनन्दि, आशाधर, नेमिचन्द्र, कुमुदचन्द्र आदि दिगम्बर ग्रन्थकारों ने अपने प्रतिष्ठाग्रन्थों में जिन-प्रतिमा का विस्तार से वर्णन किया है। जयसेन के प्रतिष्ठापाठ में जिन-बिम्ब को शान्त, नासाग्रदृष्टि, निर्वस्त्र, ध्याननिमग्न और किंचित् नम्र ग्रीव बताया गया है। कायोत्सर्ग-मुद्रा में जिन समभंग में खड़े होते हैं और उनके हाथ लम्बवत् नीचे लटके होते हैं। ध्यानमुद्रा में जिन दोनों पैर मोड़कर (पद्मासन) बैठे होते हैं और उनकी हथेलियां गोद में (बायीं के ऊपर दाहिनी) रखी होती हैं।[4] प्रतिष्ठापाठ में उल्लेख है कि जिन-प्रतिमा केवल उपर्युक्त दो आसनों में ही निरूपित होनी चाहिए। वसुनन्दि[5] एवं आशाधर[6] आदि ने भी जिन-प्रतिमा के उपर्युक्त लक्षणों के ही उल्लेख किये हैं।

उत्तर भारत के विभिन्न पुरातात्विक स्थलों की जिन-मूर्तियों के अध्ययन से हमें ज्ञात होता है कि ऋषभ, पार्श्व, महावीर, नेमि, शान्ति एवं सुपार्श्व इसी क्रम में सर्वाधिक लोकप्रिय थे।[7] ल० नवीं-दसवीं शती ई० तक मूर्तिविज्ञान की

---

१ दक्षिण भारत की जिन मूर्तियों में अष्ट-प्रातिहार्यों में से केवल त्रिछत्र, अशोक वृक्ष, चामरधर, उड्डीयमान गन्धर्व, सिंहासन एवं भामण्डल का ही नियमित अंकन हुआ है। सिंहासन के मध्य में धर्मचक्र का उत्कीर्णन भी नियमित नहीं था।

२ अशोकवृक्षः सुरपुष्पवृष्टिर्दिव्यध्वनिश्चामरमासनं च।
भामण्डलं दुन्दुभिरातपत्रं सत्प्रातिहार्याणि जिनेश्वराणाम्॥
हस्तीमल के जैनधर्म का मौलिक इतिहास (भाग १, जयपुर, १९७१, पृ० ३३) से उद्धृत।
स्थापयेदर्हतां छत्रत्रयाशोक प्रकीर्णकम्।
पीठंभामण्डलं भाषां पुष्पवृष्टिं च दुन्दुभिम्॥
स्थिरेतरार्चयोः पादपीठस्याधो यथायथम्।
लांछनं दक्षिणे पार्श्वे यक्षं यक्षीं च वामके॥ प्रतिष्ठासारोद्धार १.७६–७७;
हरिवंशपुराण ३.३१–३८; प्रतिष्ठासारसंग्रह ५.८२–८३

३ केवल गुजरात-राजस्थान की मूर्तियों में ही दोनों का नियमित अंकन हुआ है। त्रिछत्र के दोनों ओर देवदुन्दुभि और परिकर में वीणा एवं वेणुवादन करती दिव्य-ध्वनि की सूचक दो आकृतियां उत्कीर्ण हैं। अन्य क्षेत्रों की मूर्तियों में देवदुन्दुभि सामान्यतः त्रिछत्र के समीप उत्कीर्ण है।

४ जैन, बालचन्द्र, 'जैन प्रतिमालक्षण', अनेकान्त, वर्ष १९, अं० ३, पृ० २११

५ अथ बिम्बं जिनेन्द्रस्य कर्तव्यं लक्षणान्वितम्।
ऋज्वायत सुसंस्थानं तरुणाङ्गं दिगम्बरं॥
श्रीवृक्षभूषितोरस्कं जानुप्राप्तकराग्रजं।
निजाङ्गुलप्रमाणेन साष्टाङ्गुलशतायुतम्॥
कक्षादिरोमहीनाङ्गं श्मश्रु लेखाविवर्जितम्।
ऊर्ध्वं प्रलम्बकं दत्वा समाप्त्यन्तं च धारयेत्॥ प्रतिष्ठासारसंग्रह ४.१, २, ४

६ प्रतिष्ठासारोद्धार १.६२; मानसार ५५.३६–४२; रूपमण्डन ६.३३–३५

७ दक्षिण भारतीय शिल्प में महावीर एवं पार्श्व सर्वाधिक लोकप्रिय थे। ऋषभ की मूर्तियां तुलनात्मक दृष्टि से नगण्य हैं।

दृष्टि से जिन-मूर्तियां पूर्णतः विकसित हो चुकी थीं। पूर्ण विकसित जिन-मूर्तियों में लांछनों, यक्ष-यक्षी युगलों एवं अष्ट-प्रातिहार्यों[1] के साथ ही परिकर में दूसरी छोटी जिन-मूर्तियां,[2] नवग्रह,[3] गज,[4] महाविद्याएं एवं अन्य आकृतियां भी अंकित हैं (चित्र ७, ९, १५, २०)। विभिन्न क्षेत्रों की जिन-मूर्तियों की कुछ अपनी विशिष्टताएं रही हैं, जिनकी अति संक्षेप में चर्चा यहां अपेक्षित है।

गुजरात-राजस्थान—सिंहासन के मध्य में चतुर्भुज शान्तिदेवी (या आदिशक्ति)[5] एवं गजों और मृगों के चित्रण[6] गुजरात एवं राजस्थान की श्वेताम्बर जिन मूर्तियों की क्षेत्रीय विशेषताएं थीं।[7] परिकर में हाथ जोड़े या कलश लिये गोमुख आकृतियों, वीणा एवं वेणुवादन करती दो आकृतियों तथा त्रिछत्र के ऊपर कलश और नमस्कार-मुद्रा में एक आकृति के अंकन भी गुजरात एवं राजस्थान में ही लोकप्रिय थे (चित्र २०)।[8] मूलनायक के पार्श्वों में पांच या सात सर्पफणों के छत्रों वाली या लांछन विहीन दो कायोत्सर्ग जिन मूर्तियों का उत्कीर्णन भी इस क्षेत्र की विशेषता थी। दिलवाड़ा एवं कुम्भारिया की कुछ जिन-मूर्तियों के परिकर में महाविद्याएं भी अंकित हैं। इस क्षेत्र में ऋषभ और पार्श्व की सर्वाधिक मूर्तियां उत्कीर्ण हुईं। नेमि और महावीर की मूर्तियों की संख्या अन्य क्षेत्रों की तुलना में काफी कम है। इस क्षेत्र में जिनों के जीवनदृश्यों के चित्रण भी विशेष लोकप्रिय थे[9] जिनमें जिनों के पंचकल्याणकों (च्यवन, जन्म, दीक्षा, कैवल्य, निर्वाण) एवं कुछ अन्य विशिष्ट घटनाओं को उत्कीर्ण किया गया है। जीवनदृश्यों के मुख्य उदाहरण ओसिया, कुम्भारिया एवं दिलवाड़ा में हैं जो ऋषभ, शान्ति, मुनिसुव्रत, नेमि, पार्श्व एवं महावीर से संबद्ध हैं (चित्र १३,१४,२२,२९,४०,४१)।

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश—उत्तर प्रदेश की कुछ नेमि मूर्तियों (देवगढ़ एवं राज्य संग्रहालय, लखनऊ) में बलराम एवं कृष्ण आमूर्तित हैं (चित्र २७, २८)। इस क्षेत्र की पार्श्वनाथ मूर्तियों में कभी-कभी पार्श्ववर्ती चामरधर सेवक सर्पफणों से युक्त हैं और उनके हाथों में लम्बा छत्र प्रदर्शित है। जिन-मूर्तियों के परिकर में बाहुबली, जीवन्तस्वामी, क्षेत्रपाल, सरस्वती, लक्ष्मी आदि के चित्रण विशेष लोकप्रिय थे।

बिहार-उड़ीसा-बंगाल—इस क्षेत्र की जिन मूर्तियों में सिंहासन, धर्मचक्र, गजों एवं दुन्दुभिवादक के नियमित चित्रण नहीं हुए हैं। सिंहासन के छोरों पर यक्ष-यक्षी का अंकन भी नियमित नहीं था।

---

१ पार्श्व की मूर्तियों में शीर्षभाग के सर्पफणों के कारण सामान्यतः त्रिछत्र एवं दुन्दुभिवादक की आकृतियां नहीं उत्कीर्ण हुईं।

२ कुछ उदाहरणों में परिकर में २३ या २४ छोटी जिन मूर्तियां बनी हैं। परिकर की छोटी जिन-मूर्तियां साधारणतः लांछनविहीन हैं। पर बंगाल में परिकर की छोटी जिन-मूर्तियों के साथ लांछनों का प्रदर्शन लोकप्रिय था।

३ गुजरात एवं राजस्थान की श्वेताम्बर जिन-मूर्तियों में अन्य क्षेत्रों के विपरीत नवग्रहों के केवल मस्तक ही उत्कीर्ण हैं।

४ कलश धारण करने वाली गज आकृतियों की पीठ पर सामान्यतः एक या दो पुरुष आकृतियां बैठी हैं।

५ चतुर्भुज शान्तिदेवी के करों में सामान्यतः अभय-(या वरद-) मुद्रा, पद्म, पद्म (या पुस्तक) एवं फल प्रदर्शित हैं।

६ आदिशक्तिर्जिनेन्द्राणां आसने गर्भ संस्थिता।
सहजा कुलजाऽध्येना पद्महस्ता वरप्रदा ॥
अर्कमानं विधातव्यमुपाङ्ग सहितं भवेत्।
देव्याश्चोगर्भे मृगयुग्मं धर्मचक्रं सुशोभनम् ॥
द्वौ गजौ वामदक्षिणे दद्याङ्गुलानि विस्तरे।
सिंहौ रौद्रमहाकायौ जीवत् क्रोधौ च रक्षणे ॥ वास्तुविद्या, जिनपरिकरलक्षण २२.१०–१२

७ मध्यप्रदेश (ग्यारसपुर एवं खजुराहो) की कुछ दिगम्बर जिन मूर्तियों में भी ये विशेषताएं प्रदर्शित हैं।

८ वास्तुविद्या २२.३३–३९

९ गुजरात-राजस्थान के बाहर जिनों के जीवनदृश्यों के अंकन दुर्लभ हैं।

अति संक्षेप में पूर्वविकसित मध्ययुगीन जिन मूर्तियों की सामान्य विशेषताएं इस प्रकार थीं। श्रीवत्स से युक्त जिन मूर्तियां कायोत्सर्ग में खड़ी या ध्यानमुद्रा में आसीन हैं। सामान्यतः गुच्छकों के रूप में प्रदर्शित केश रचना उष्णीष के रूप में आबद्ध है। कायोत्सर्ग में खड़े जिनों के लटकते हाथों की हथेलियों में सामान्यतः पद्म अंकित हैं। मूलनायक का पद्मासन रत्न, पुष्प एवं कीर्तिमुख आदि से अलंकृत है। आसन के नीचे सिंहासन के सूचक दो रौद्र सिंह उत्कीर्ण हैं।[१] ये सिंह आकृतियां सामान्यतः एक दूसरे की ओर पीठकर दर्शकों की ओर देखने की मुद्रा में प्रदर्शित हैं। सिंहासन के मध्य में धर्मचक्र उत्कीर्ण है। गुजरात एवं राजस्थान की श्वेताम्बर मूर्तियों में सिंहासन के मध्य में धर्मचक्र के स्थान पर शान्तिदेवी की मूर्ति है। शान्तिदेवी की आकृति के नीचे दो मृगों एवं उपासकों के साथ धर्मचक्र चित्रित है। शान्तिदेवी के दोनों ओर दो गज आकृतियां उत्कीर्ण हैं।

धर्मचक्र के समीप या आसन पर जिनों के लांछन उत्कीर्ण हैं। सिंहासन—छोरों पर ललितमुद्रा में यक्ष (दाहिनी) और यक्षी (बायीं) की मूर्तियां निरूपित हैं।[२] यक्ष-यक्षी की अनुपस्थिति में छोरों पर सामान्यतः जिन आकृतियां उत्कीर्ण हैं। जिनों के पार्श्वों में चामरधर सेवक आमूर्तित हैं, जिनकी एक भुजा में चामर है और दूसरी भुजा जानु पर रखी है।[3] चामरधरों के समीप नमस्कार-मुद्रा में दो उपासक भी हैं। भामण्डल सामान्यतः ज्यामितीय, पुष्प एवं पद्म अलंकरणों से अलंकृत हैं। जिन के सिर के ऊपर त्रिछत्र हैं जिसके ऊपर दुन्दुभिवादक की अपूर्ण आकृति या केवल दो हाथ प्रदर्शित हैं। कुछ उदाहरणों में त्रिछत्र के समीप अशोक वृक्ष की पत्तियां भी चित्रित हैं। परिकर में दो गज एवं उड्डीयमान मालाधर भी बने हैं।[४] परिकर में दो अन्य मालाधर युगल एवं वाद्यवादन करती आकृतियां भी उत्कीर्ण हैं। मूर्ति के छोरों पर गज-व्याल-मकर अलंकार एवं आक्रामक मुद्रा में एक योद्धा अंकित हैं।[५]

आगे प्रत्येक जिन का मूर्तिविज्ञानपरक अध्ययन किया जायगा।

(१) ऋषभनाथ[६]

जीवनवृत्त

जैन परम्परा के अनुसार ऋषभ मानव समाज के आदि व्यवस्थापक एवं वर्तमान अवसर्पिणी युग के प्रथम जिन हैं। प्रथम जिन होने के कारण ही उन्हें आदिनाथ भी कहा गया। महाराज नाभि ऋषभ के पिता और मरुदेवी उनकी माता हैं। ऋषभ के गर्भधारण की रात्रि में मरुदेवी ने १४ मांगलिक स्वप्न देखे थे।[७] दिगम्बर परम्परा में इन स्वप्नों की संख्या १६ बताई गई है।[८] उल्लेखनीय है कि अन्य जिनों की माताओं ने भी गर्भधारण की रात्रि में इन्हीं शुभ स्वप्नों को देखा था। किन्तु अन्य जिनों की माताओं ने स्वप्न में जहां सबसे पहले गज देखा, वहां ऋषभ की माता ने सबसे पहले वृषभ का दर्शन किया। प्रथम स्वप्न के रूप में वृषभ का दर्शन ऋषभ के नामकरण एवं लांछन-निर्धारण की दृष्टि से

---

१ वास्तुविद्या २२.१२   २ वास्तुविद्या २२.१४; प्रतिष्ठासारोद्धार १.७७

३ दूसरी भुजा में कभी-कभी फल या पुष्प या घट भी प्रदर्शित है।

४ गज की सूंड में घट या पुष्प प्रदर्शित है।

५ अर्चा वामे यक्षिण्या यक्षो दक्षिणे चतुर्दश। स्तम्भिका मृणालयुक्तं मकरैर्ग्रासरूपकैः॥ वास्तुविद्या २२.१४

६ ऋषभ एवं अन्य जिनों के नामों के साथ 'नाथ' या 'देव' शब्द का प्रयोग किया गया है जो उनके प्रति भक्ति एवं सम्मान का सूचक है।

७ १४ शुभ स्वप्न निम्नलिखित हैं—गज, वृषभ, सिंह, लक्ष्मी (या श्री), पुष्पहार, चन्द्र, सूर्य, ध्वज-दण्ड, पूर्णकुम्भ, पद्मसरोवर, क्षीरसमुद्र, देवविमान, रत्नराशि और निर्धूम अग्नि। कल्पसूत्र ३३

८ दिगम्बर परम्परा में ध्वज-दण्ड के स्थान पर नागेन्द्र भवन का उल्लेख है। साथ ही मत्स्य-युगल एवं सिंहासन को सम्मिलित कर शुभ स्वप्नों की संख्या १६ बताई गई है—हरिवंशपुराण ८.५८-७४; महापुराण (आदिपुराण) १२.१०१-१२०

महत्वपूर्ण है। आवश्यकचूर्णि में उल्लेख है कि माता द्वारा देखे प्रथम स्वप्न (वृषभ) एवं बालक के वक्षःस्थल पर वृषभ चिह्न के अंकित होने के कारण ही बालक का नाम ऋषभ रखा गया।[1]

देवपति शक्रेन्द्र के निर्देश पर ऋषभ ने सुनन्दा एवं सुमंगला से विवाह किया। विवाह के पश्चात् ऋषभ का राज्याभिषेक हुआ। सुमंगला ने भरत एवं ब्राह्मी और ९९ अन्य सन्तानों को जन्म दिया। सुनन्दा ने केवल बाहुबली और सुन्दरी को जन्म दिया। काफी समय गृहस्थ जीवन व्यतीत करने के बाद ऋषभ ने राज्य वैभव एवं परिवार को त्यागकर प्रव्रज्या ग्रहण की। ऋषभ ने विनीता नगर के बाहर सिद्धार्थ उद्यान में अशोक वृक्ष के नीचे वस्त्राभूषणों का त्यागकर दीक्षा ली थी।[2] दीक्षा के पूर्व ऋषभ ने अपने केशों का चतुर्मुष्टिक लुंचन भी किया था। इन्द्र की प्रार्थना पर ऋषभ ने एक मुष्टि केश सिर पर ही रहने दिया।[3] उल्लेखनीय है कि उपर्युक्त परम्परा के कारण ही सभी क्षेत्रों की मूर्तियों में ऋषभ के साथ लटकती जटाएं प्रदर्शित की गयीं। कल्पसूत्र एवं त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र में उल्लेख है कि ऋषभ के अतिरिक्त अन्य सभी जिनों ने दीक्षा के पूर्व अपने मस्तक के सम्पूर्ण केशों का पांच मुष्टियों में लुंचन किया। कुछ ग्रन्थों में ऋषभ के भी पञ्चमुष्टि में सारे केशों के लुंचन का उल्लेख है।[4]

दीक्षा के बाद काफी समय तक विचरण एवं कठिन साधना के उपरांत ऋषभ को पुरिमताल नगर के बाहर शकटमुख उद्यान में वटवृक्ष के नीचे केवल-ज्ञान प्राप्त हुआ। कैवल्य प्राप्ति के बाद देवताओं ने ऋषभ के लिए समवसरण का निर्माण किया, जहां ऋषभ ने अपना पहला उपदेश दिया। ज्ञातव्य है कि कैवल्य प्राप्ति के पश्चात् सभी जिन अपना पहला उपदेश देवनिर्मित समवसरण में ही देते हैं। समवसरण में ही देवताओं द्वारा सम्बन्धित जिन के तीर्थ एवं संघ की रक्षा करनेवाले शासनदेवता (यक्ष-यक्षी) नियुक्त किये जाते हैं। ऋषभ ने विभिन्न स्थलों पर धर्मोपदेश देकर धर्मतीर्थों की स्थापना की और अन्त में अष्टापद पर्वत पर निर्वाणपद प्राप्त किया।

प्रारम्भिक मूर्तियां

ऋषभ का लांछन वृषभ है और यक्ष-यक्षी गोमुख एवं चक्रेश्वरी (या अप्रतिचक्रा) हैं। ऋषभ की प्राचीनतम मूर्तियां कुषाण काल की हैं। ये मूर्तियां मथुरा और चौसा से मिली हैं। इनमें ऋषभ ध्यानमुद्रा में आसीन या कायोत्सर्ग में खड़े हैं और तीन या पांच लटकती केशवल्लरियों से शोभित हैं। मथुरा की तीन मूर्तियों में पीठिका-लेखों में भी ऋषभ का नाम है।[5] चौसा से ऋषभ की दो मूर्तियां मिली हैं। इनमें ऋषभ कायोत्सर्ग-मुद्रा में हैं। ये मूर्तियां सम्प्रति पटना संग्रहालय (६५३८, ६५३९) में सुरक्षित हैं।

गुप्तकालीन ऋषभ मूर्तियां मथुरा, चौसा एवं अकोटा से मिली हैं। मथुरा से छह मूर्तियां मिली हैं। इनमें से तीन में ऋषभ कायोत्सर्ग में खड़े हैं।[6] इनमें अलंकृत भामण्डल एवं पार्श्ववर्ती चामरधरों से युक्त ऋषभ तीन या पांच लटों से शोभित हैं। एक उदाहरण (पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा १२.२६८) में पीठिका लेख में ऋषभ का नाम भी उत्कीर्ण है। पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा की एक मूर्ति (बी ७) में सिंहासन के धर्मचक्र के दोनों ओर दो ध्यानस्थ जिन मूर्तियां भी बनी हैं (चित्र ४)। चौसा से चार मूर्तियां मिली हैं जिनमें जटाओं से सुशोभित ऋषभ ध्यानमुद्रा में विराजमान हैं। अकोटा से ऋषभ की दो गुप्तकालीन श्वेताम्बर मूर्तियां मिली हैं (चित्र ५)। तीन लटों से शोभित ऋषभ दोनों उदाहरणों में कायोत्सर्ग में खड़े हैं। ल० छठीं शती ई० की दूसरी मूर्ति में ऋषभ के आसन के समक्ष दो मृगों से वेष्टित धर्मचक्र और छोरों

---

१ आवश्यकचूर्णि, पृ० १५१

२ हस्तीमल, जैन धर्म का मौलिक इतिहास, खं० १, जयपुर, १९७१, पृ० ९–२९

३ "...सयमेव चउमुट्ठियं लोयं करेइ..."। कल्पसूत्र १९५; त्रि०श०पु०च० ३.६०–७०

४ पउमचरिय ३.१३६; हरिवंशपुराण ९.९८; आदिपुराण १७.२०१; पद्मपुराण ३.२८३

५ दो मूर्तियां राज्य संग्रहालय, लखनऊ (जे २६, जे ६९) एवं एक मथुरा संग्रहालय (बी ३६) में हैं।

६ पांच मूर्तियां मथुरा संग्रहालय और एक राज्य संग्रहालय, लखनऊ (०.७२) में हैं।

पर द्विभुज सर्वानुभूति एवं अम्बिका आमूर्तित हैं।[1] जिन के साथ यक्ष-यक्षी के चित्रण का यह प्राचीनतम उदाहरण है। इस प्रकार स्पष्ट है कि गुप्तकाल तक ऋषभ की मूर्तियों में उनके लांछन वृषभ का तो नहीं किन्तु यक्ष-यक्षी का (जो परम्परा-सम्मत नहीं थे) निरूपण प्रारम्भ हो गया था।

अकोटा से ल० सातवीं शती ई० की भी तीन मूर्तियां मिली हैं।[2] इनमें भी जटाओं से शोभित ऋषभ के साथ यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका ही हैं। सिंहासन केवल एक उदाहरण में उत्कीर्ण है। वसन्तगढ़ (पिण्डवाड़ा, राजस्थान) से भी सातवीं शती ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति मिली है।[3]

पूर्वमध्ययुगीन मूर्तियां

गुजरात-राजस्थान—वसन्तगढ़ की आठवीं शती ई० के प्रारम्भ की एक ध्यानस्थ मूर्ति में सिंहासन के छोरों पर यक्ष-यक्षी नहीं निरूपित हैं।[4] ओसिया के महावीर मन्दिर के अर्धमण्डप पर भी ऋषभ की एक ध्यानस्थ मूर्ति है (ल० ९वीं शती ई०) जिसमें द्विभुज सर्वानुभूति एवं अम्बिका आमूर्तित हैं। आठवीं-नवीं शती ई० की एक मूर्ति गोझा (गुजरात) से मिली है।[5] कायोत्सर्ग में खड़ी मूर्ति निर्वस्त्र है। वृषभ लांछन केवल वसंतगढ़ की एक मूर्ति (८वीं-९वीं शती ई०) में ही प्रदर्शित है।[6] अकोटा से आठवीं से दसवीं शती ई० के मध्य की पांच श्वेतांबर मूर्तियां मिली हैं।[7] इनमें केवल जटाओं के आधार पर ही ऋषभ की पहचान की गई है। इन मूर्तियों में यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका हैं। लिल्वादेव (पांचमहल, गुजरात) से दसवीं शती ई० की कई मूर्तियां मिली हैं।[8] एक मूर्ति में सिंहासन पर नवग्रहों एवं अम्बिका यक्षी की मूर्तियां हैं। दूसरी मूर्ति में सिंहासन के छोरों पर सर्वानुभूति एवं अम्बिका और मूलनायक के पार्श्वों में दो जिन (कायोत्सर्ग-मुद्रा में) आमूर्तित हैं। दो अन्य मूर्तियों के परिकर में २३ छोटी जिन-आकृतियां उत्कीर्ण हैं।[9] १०९४ ई० की एक मूर्ति पिण्डवाड़ा (सिरोही, राजस्थान) के जैन मन्दिर में सुरक्षित है। इसके परिकर में २३ जिन आकृतियां, गोमुख यक्ष और (चक्रेश्वरी के स्थान पर) अम्बिका यक्षी उत्कीर्ण हैं।[10]

गंगा गोल्डेन जुबिली संग्रहालय, बीकानेर में ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० की दो जिन मूर्तियां (बी०एम०१६६१ एवं १६६८) सुरक्षित हैं। इनमें ध्यानमुद्रा में आसीन ऋषभ के साथ यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका हैं। एक मूर्ति (११४१ ई०) में मूलनायक के पार्श्वों में दो जिन एवं आसन पर नवग्रह आकृतियां उत्कीर्ण हैं।[11] विमलवसही में ऋषभ की चार मूर्तियां हैं। वृषभ लांछन केवल गर्भगृह की मूर्ति में उत्कीर्ण है। अन्य उदाहरणों में पीठिका लेखों में ऋषभ के नाम दिये हैं। गर्भगृह एवं देवकुलिका २५ की दो मूर्तियों में गोमुख-चक्रेश्वरी और देवकुलिका १४ एवं २८ की मूर्तियों में सर्वानुभूति-अम्बिका निरूपित हैं। देवकुलिका १४ एवं २८ की मूर्तियों में मूलनायक के पार्श्वों में कायोत्सर्ग और ध्यानमुद्रा में दो जिन मूर्तियां भी हैं।

बोस्टन संग्रहालय में राजस्थान से मिली एक ध्यानस्थ मूर्ति (६४-४८७ : ९ वीं-१० वीं शती ई०) सुरक्षित है। ऋषभ वृषभ लांछन एवं पारम्परिक यक्ष-यक्षी, गोमुख-चक्रेश्वरी, से युक्त हैं। लटों से शोभित ऋषभ की केशरचना

---

१ शाह, यू० पी०, अकोटा ब्रोन्जेज, बंबई, १९५९, पृ० २६, २८-२९

२ वही, पृ० ३८, ४१-४३

३ शाह, यू० पी०, 'ब्रोन्ज होर्ड फ्राम वसन्तगढ़', ललितकला, अं० १-२, पृ० ५६

४ वही, पृ० ५८

५ देवकर, वी० एल०, 'ए जैन तीर्थंकर इमेज रीसेन्टली एक्वायर्ड बाइ दि बड़ौदा म्यूजियम', बु०म्यू०पि०गै०, खं० १९, पृ० ३५-३६

६ शाह, यू० पी०, पू०नि०, पृ० ५९

७ शाह, यू० पी०, अकोटा ब्रोन्जेज, पृ० ४५, ५६-५९

८ राव, एस० आर०, 'जैन ब्रोन्जेज फ्राम लिल्वादेव', ज०इं०म्यू०, खं० ११, पृ० ३०-३३

९ शाह, यू० पी०, 'सेवेन ब्रोन्जेज फ्राम लिल्वा-देव', बु०ब०म्यू०, खं० ९, भाग १-२, पृ० ४७-४८

१० शाह, यू०पी०, 'आइकानोग्राफी ऑव चक्रेश्वरी, दि यक्षी ऑव ऋषभनाथ', ज०ओ०इं०, खं०२०, अं०३, पृ०३०१

११ श्रीवास्तव, वी०एस०, कैटलाग ऐण्ड गाईड टू गंगा गोल्डेन जुबिली म्यूजियम, बीकानेर, बंबई, १९६१, पृ०१७-१९

जटाजूट के रूप में आबद्ध है। बयाना (भरतपुर, राजस्थान) से प्राप्त एक ध्यानस्थ मूर्ति (१० वीं शती ई०) में लांछन नष्ट हो गया है पर चतुर्भुज गोमुख एवं चक्रेश्वरी की मूर्तियां सुरक्षित हैं।[1] बारहवीं शती ई० की बड़ौदा संग्रहालय की एक दिगम्बर मूर्ति[2] वृषभ लांछन और परिकर में चार लघु जिन आकृतियों से युक्त है।

विश्लेषण—इस प्रकार गुजरात-राजस्थान की मूर्तियों में सामान्यतः लटकती जटाओं एवं पीठिका लेखों में उत्कीर्ण नाम के आधार पर ही ऋषभ की पहचान की गई है। वृषभ लांछन एवं गोमुख-चक्रेश्वरी केवल कुछ ही उदाहरणों, विशेषकर दिगम्बर मूर्तियों, में उत्कीर्ण हैं। इनका उत्कीर्णन ल० आठवीं से दसवीं शती ई० के मध्य प्रारम्भ हुआ। अधिकांश उदाहरणों में यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका हैं।

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश—ऋषभ की सर्वाधिक मूर्तियां इसी क्षेत्र में उत्कीर्ण हुई।[3] आठवीं-नवीं शती ई० की मूर्तियां मुख्यतः लखनऊ (जे ७८) और मथुरा (१८.१५०-४) संग्रहालयों एवं देवगढ़ में हैं जिनका कुछ विस्तार से उल्लेख किया जायगा। ग्वालियर स्थित तेली के मन्दिर पर नवीं शती ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति है जिसके परिकर में २४ जिन-आकृतियां उत्कीर्ण हैं।[4] ग्यारसपुर के बजरामठ मन्दिर में दसवीं शती ई० की (ध्यानमुद्रा में) दो मूर्तियां हैं। लांछन और यक्ष-यक्षी (गोमुख और चक्रेश्वरी) एक में ही उत्कीर्ण हैं। धर्मचक्र के दोनों ओर दो गज बने हैं, जिनका चित्रण केवल गुजरात एवं राजस्थान की श्वेताम्बर जिन मूर्तियों में ही लोकप्रिय था। पार्श्ववर्ती चामरधरों के समीप दो देव आकृतियां हैं जिनके हाथों में अभयमुद्रा, पद्म, पद्म एवं कलश प्रदर्शित हैं। परिकर में दस छोटी जिन-मूर्तियां और साथ ही शंख बजाती एवं घट से युक्त मूर्तियां भी उत्कीर्ण हैं।

राज्य संग्रहालय, लखनऊ में आठवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की २३ मूर्तियां हैं। १५ उदाहरणों में ऋषभ कायोत्सर्ग में खड़े हैं। केवल एक उदाहरण (जे ९४९) में जिन धोती से युक्त हैं। वृषभ लांछन से युक्त ऋषभ दो, तीन या पांच लटों से शोभित हैं। नौ उदाहरणों में यक्ष-यक्षी नहीं आमूर्तित है। एक मूर्ति (जे ९५०, ११ वीं शती ई०) में (केतु के अतिरिक्त) आठ ग्रहों की भी मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। दुबकुण्ड (ग्वालियर) की एक मूर्ति (जे ८२०, ११ वीं शती ई०) में त्रिछत्र के ऊपर आमलक एवं कलश, और परिकर में २२ छोटी जिन मूर्तियां बनी हैं। इनमें तीन और पांच सर्पफणों से आच्छादित दो जिनों की पहचान पार्श्व एवं सुपार्श्व से सम्भव है।

कंकाली टीले की ल० आठवीं शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति (जे ७८) में वृषभ लांछन एवं जटाओं से शोभित ऋषभ के साथ यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका हैं। यक्ष-यक्षी की आकृतियों के ऊपर सात सर्पफणों के छत्र से शोभित बलराम एवं किरीटमुकुट से शोभित कृष्ण की स्थानक मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। बलराम के तीन हाथों में प्याला, मुसल एवं हल प्रदर्शित हैं और चौथी भुजा जानु पर स्थित है। कृष्ण अभयमुद्रा, ध्वजयुक्त गदा, चक्र एवं शंख से युक्त हैं। ज्ञातव्य है कि सर्वानुभूति यक्ष, अम्बिका यक्षी एवं बलराम-कृष्ण नेमिनाथ से सम्बन्धित हैं। अतः ऋषभ के साथ इनका निरूपण परम्परा के विरुद्ध है।

लखनऊ संग्रहालय की ६ मूर्तियों में ऋषभ के साथ यक्ष निरूपित है। गोमुख यक्ष केवल तीन ही उदाहरणों में उत्कीर्ण है। शेष में सर्वानुभूति आमूर्तित है। ११ उदाहरणों में यक्षी चक्रेश्वरी है। कुछ में सामान्य लक्षणों वाली यक्षी (जे ७८९) एवं अम्बिका (जे ७८, एस ९१४) भी निरूपित हैं। ल० दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० की दो मूर्तियों (१६.०.१७८, जे ९४९) में ऋषभ के साथ चक्रेश्वरी के अतिरिक्त अम्बिका, पद्मावती एवं लक्ष्मी की भी मूर्तियां उत्कीर्ण हैं, जो ऋषभ की विशेष प्रतिष्ठा की सूचक हैं (चित्र ७)। अधिकांश मूर्तियों के परिकर में ४, १४, २०, २२ या २३

---

१ अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, चित्र संग्रह १५७.१२

२ शाह, यू० पी०, 'जैन स्कल्पचर्स इन दि बड़ोदा म्यूजियम', बु०ब०म्यू०, खं० १, भाग २, पृ० २९

३ ल० नवीं शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति कोसम (उ० प्र०) से मिली है (चित्र ६)।

४ अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, चित्र संग्रह ८३.६९

छोटी जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। सहेठ-महेठ की दसवीं शती ई० की एक दुर्लभ मूर्ति (जे ८५७) में मूलनायक को उन्नत वक्षःस्थल और अंतःप्रविष्ट उदर के साथ निरूपित किया गया है। इस दुर्लभ उदाहरण में सम्भवतः एक योगी की ऊर्ध्व श्वास प्रक्रिया को दरशाया गया है।

पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा में आठवीं से ग्यारहवीं शती ई० के मध्य की ऋषभ की चार मूर्तियां हैं। सभी में वृषभ लांछन और जटाएं प्रदर्शित हैं,पर यक्ष-यक्षी केवल दो उदाहरणों में उत्कीर्ण हैं। एक मूर्ति (बी २१,१० वीं शतीई०) में यक्षी चक्रेश्वरी है; और यक्ष का मुखभाग खण्डित है। सिंहासन के नीचे एक पंक्ति में कायोत्सर्ग-मुद्रा में सात जिन-मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। परिकर में भी आठ जिन आकृतियां सुरक्षित हैं। ग्यारहवीं शती ई० की एक मूर्ति (१६.१२०७) में द्विभुज यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका हैं। परम्परा विरुद्ध यक्ष बायीं ओर और यक्षी दाहिनी ओर निरूपित हैं। मूलनायक के पार्श्वों में केतु को छोड़कर आठ ग्रहों की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं।

खजुराहो में दसवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की ५० से अधिक मूर्तियां हैं। इनमें से केवल ३६ मूर्तियां अध्ययन की दृष्टि से सुरक्षित हैं। लखनऊ संग्रहालय (१६.०.१७८) की एक मूर्ति की भांति खजुराहो के जार्डिन संग्रहालय की एक मूर्ति (१६५१) में भी पारम्परिक यक्ष-यक्षी के साथ ही लक्ष्मी एवं अम्बिका निरूपित हैं जो ऋषभ की विशेष प्रतिष्ठा की सूचक हैं। ऋषभ केवल पांच ही उदाहरणों में कायोत्सर्ग में खड़े हैं। छह उदाहरणों में ऋषभ की केशरचना पृष्ठभाग में जटा के रूप में संवारी गई है। दो उदाहरणों में सिंहासन के सूचक सिंह अनुपस्थित हैं। एक उदाहरण में ऋषभ की जटाएं और एक अन्य में (मन्दिर ८) वृषभ लांछन नहीं उत्कीर्ण हैं। चामरधरों की एक भुजा में कभी-कभी फल या सनाल पद्म भी प्रदर्शित हैं। तीन उदाहरणों में पार्श्ववर्ती चामरधरों के स्थान पर पांच या सात सर्पफणों के छत्र से शोभित सुपार्श्व एवं पार्श्व की कायोत्सर्ग मूर्तियां बनी हैं।

पार्श्वनाथ मन्दिर के गर्भगृह की ऋषभ मूर्ति में यक्ष-यक्षी गोमुख एवं चक्रेश्वरी हैं। पार्श्वनाथ मन्दिर की मूर्ति में पारम्परिक यक्ष-यक्षी के उत्कीर्णन के पश्चात् खजुराहो की अन्य मूर्तियों में यक्ष-यक्षी युगल का अभाव या अपारंपरिक यक्ष-यक्षी के चित्रण इस बात के सूचक हैं कि कलाकार परंपरा के प्रति पूरी तरह आस्थावान नहीं थे। कई उदाहरणों में गरुडवाहना यक्षी चक्रेश्वरी है पर यक्ष वृषानन नहीं है। पार्श्वनाथ मन्दिर के गर्भगृह की मूर्ति में मूलनायक के दोनों ओर स्वतन्त्र सिंहासनों पर पांच एवं सात सर्पफणों से आच्छादित सुपार्श्व एवं पार्श्व की कायोत्सर्ग मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। परिकर में ३३ लघु जिन मूर्तियां भी हैं। पार्श्वनाथ मन्दिर के गर्भगृह के प्रदक्षिणा पथ में भी ऋषभ की एक मूर्ति (१०वीं शतीई०) सुरक्षित है। मूर्ति के परिकर में २३ जिन आकृतियां उत्कीर्ण हैं जिनमें से दो के सिरों पर पांच सर्पफणों के छत्र हैं। स्थानीय संग्रहालयों (के ९२, १६८२) की दो मूर्तियों (११ वीं शती ई०) के परिकर में क्रमशः २४ और ५२ छोटी जिन आकृतियां उत्कीर्ण हैं। मन्दिर १७ की एक मूर्ति (११ वीं शती ई०) के परिकर में तीन जिनों एवं बाहुबली की आकृतियां बनी हैं। पांच उदाहरणों में ऋषभ के पार्श्वों में सात सर्पफणों के शिरस्त्राण से युक्त पार्श्वनाथ की कायोत्सर्ग मूर्तियां हैं। जार्डिन संग्रहालय की एक मूर्ति (१६१२) में पार्श्व एवं सुपार्श्व की मूर्तियां हैं। चार उदाहरणों में आसन के नीचे नवग्रहों की आकृतियां उत्कीर्ण हैं।[1]

देवगढ़ में नवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की ६० से अधिक ऋषभ मूर्तियां हैं (चित्र ८)। अधिकांश उदाहरणों में ऋषभ कायोत्सर्ग में निरूपित हैं। लटकती जटाओं[2] से शोभित ऋषभ के साथ वृषभ लांछन, और अधिकांश उदाहरणों में यक्ष-यक्षी प्रदर्शित हैं। कुछ उदाहरणों में ऋषभ जटाजूट से अलंकृत हैं, और कुछ में उनके केश पीछे की ओर संवारे गए हैं। अधिकांश उदाहरणों में यक्ष-यक्षी गोमुख एवं चक्रेश्वरी हैं। चार उदाहरणों[3] में यक्षी अम्बिका है और

---

१ ये मूर्तियां मन्दिर १, २७, जार्डिन संग्रहालय एवं पुरातात्विक संग्रहालय (१६८२) में हैं।

२ स्कन्धों पर सामान्यतः २, ३ या ५ लटें प्रदर्शित हैं।

३ मन्दिर १२, १३, १६ एवं २१

यक्ष भी वृषानन नहीं है।[1] आठ उदाहरणों[2] में यक्ष-यक्षी सामान्य लक्षणों वाले हैं जिनके हाथों में कलश, पद्म एवं पुस्तक हैं तथा एक अभयमुद्रा में प्रदर्शित है। चामरधरों की एक भुजा में सामान्यतः पद्म (या फल) है। नवीं से ग्यारहवीं शती ई० के मध्य की २५ विशाल कायोत्सर्ग मूर्तियों में ऋषभ साधारण पीठिका या पद्मासन पर खड़े हैं और उनकी लम्बी जटाएं कन्धों तक लटक रही हैं।[3] इन मूर्तियों में उष्णीष, लांछन एवं यक्ष-यक्षी नहीं प्रदर्शित हैं।

देवगढ़ में छत्रावली के दोनों ओर अशोक वृक्ष की पत्तियों एवं कलश धारण करनेवाली दो पुरुष आकृतियों का उत्कीर्णन विशेष लोकप्रिय था। परिकर में कभी-कभी दो के स्थान पर चार गज आकृतियां उत्कीर्ण हैं। उड्डीयमान स्त्री आकृतियों के एक हाथ में कभी-कभी चामर एवं घट भी प्रदर्शित है। मन्दिर १२ की एक मूर्ति के सिंहासन पर चतुर्भुज लक्ष्मी की दो मूर्तियां[4] हैं। दो मूर्तियों[5] में सिंहासन पर पुस्तक से युक्त दो जैन आचार्यों को शास्त्रार्थ की मुद्रा में निरूपित किया गया है। मन्दिर ४ की एक मूर्ति (११ वीं शती ई०) में यक्ष के स्थान पर अम्बिका और दूसरे छोर पर चक्रेश्वरी निरूपित है। सात मूर्तियों के परिकर में २३ लघु जिन आकृतियां उत्कीर्ण हैं।[6] दो मूर्तियों के परिकर में २४ जिन मूर्तियां हैं।[7]

गोलकोट एवं बूढ़ी चन्देरी की वृषभ लांछनयुक्त मूर्तियों (१० वीं–११ वीं शती ई०) में गोमुख-चक्रेश्वरी निरूपित हैं। दुबही की एक मूर्ति में जटाओं से शोभित ऋषभ के दोनों ओर सर्पफणों से युक्त कायोत्सर्ग जिन आमूर्तित हैं। त्रिछत्र के ऊपर आमलक एवं चतुर्भुज दुन्दुभिवादक बने हैं।[8] धुबेला संग्रहालय की एक मूर्ति (३८) में सिंहासन के मध्य में धर्मचक्र के स्थान पर चक्रेश्वरी है।[9] शहडोल की एक विशाल मूर्ति (११ वीं शती ई०) के परिकर में १०६ लघु जिन आकृतियां बनी हैं।[10] सिंहासन के मध्य में धर्मचक्र के स्थान पर चतुर्भुज शान्तिदेवी की मूर्ति है। गुना की एक मूर्ति (११ वीं शती ई०) में ऋषभ जटाजूट से शोभित हैं।[11] ऋषभ के साथ सर्वानुभूति एवं अम्बिका अंकित हैं।

विश्लेषण—उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश में ऋषभ की मूर्तियों में सर्वाधिक विकास परिलक्षित होता है। इस क्षेत्र में जटाओं के साथ ही वृषभ लांछन और यक्ष-यक्षी का नियमित चित्रण हुआ है। लांछन का चित्रण सर्वप्रथम इसी क्षेत्र में (ल० ८वीं शती ई०) प्रारम्भ हुआ।[12] अधिकांश उदाहरणों में यक्ष-यक्षी गोमुख और चक्रेश्वरी हैं। सर्वानुभूति एवं अम्बिका और सामान्य लक्षणों वाले यक्ष-यक्षी केवल कुछ ही उदाहरणों में निरूपित हैं। अष्ट-प्रातिहार्यों एवं परिकर में लघु जिन-मूर्तियों का उत्कीर्णन भी लोकप्रिय था। परिकर में सामान्यतः २३ या २४ लघु जिन आकृतियां उत्कीर्ण हैं। कुछ उदाहरणों में नवग्रहों की भी आकृतियां बनी हैं। ऋषभ के साथ परिकर में शान्तिदेवी, जैन आचार्यों, बाहुबली, पद्मावती एवं लक्ष्मी की भी मूर्तियां उत्कीर्ण हैं, जिनके चित्रण अन्यत्र दुर्लभ हैं।

बिहार-उड़ीसा-बंगाल—ल० आठवीं शती ई० की ऋषभ की एक ध्यानस्थ मूर्ति राजगिर की वैभार पहाड़ी पर है।[13] जटामुकुट एवं केशवल्लरियों से शोभित मूर्ति की पीठिका के धर्मचक्र के दोनों ओर वृषभ लांछन की दो मूर्तियां

---

१ केवल मन्दिर २१ की एक मूर्ति में यक्षी अम्बिका है पर यक्ष गोमुख है।

२ मन्दिर २, ८, २५, २६, २७ एवं साहू जैन संग्रहालय।

३ ऐसी मूर्तियां मन्दिर १२ की चहारदीवारी पर सुरक्षित हैं।

४ लक्ष्मी के करों में अभयमुद्रा, पद्म, पद्म एवं कलश प्रदर्शित हैं।

५ मन्दिर ४ एवं मन्दिर १२ की चहारदीवारी

६ मन्दिर ४, ८, १२, २४, २५ एवं साहू जैन संग्रहालय

७ मन्दिर १२ की चहारदीवारी एवं मन्दिर १६

८ ब्रुन, क्लाज, 'जैन तीर्थज इन मध्य देश, दुदही', जैनयुग, वर्ष १, नवम्बर १९५८, पृ० २९–३२

९ अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज–चित्र संग्रह ५४·९८

१० वही, ए ७·५२

११ गर्ग, आर०एस०, 'मालवा के जैन प्राच्यावशेष', जै०सि०भा०, खं० २४, अं० १, पृ० ५८

१२ राज्य संग्रहालय, लखनऊ–जे ७८

१३ आ०स०इं०ऐ०रि०, १९२५–२६, फलक ५६

हैं। गया से मिली एक दिगंबर मूर्ति (८ वीं–९ वीं शती ई०) इलाहाबाद संग्रहालय (२८०) में सुरक्षित है।[1] कायोत्सर्ग में खड़े ऋषभ जटामुकुट एवं केशवल्लरियों से युक्त हैं। सिंहासन पर वृषभ लांछन एवं परिकर में लांछनयुक्त २४ छोटी जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। परिकर में सर्पफणों एवं जटाओं से युक्त पार्श्व एवं ऋषभ की मूर्तियां हैं। काकटपुर (पुरी) से वृषभ लांछन युक्त दो दिगंबर मूर्तियां मिली हैं, जो भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता में संगृहीत हैं।[2] जटा से शोभित ऋषभ कायोत्सर्ग में खड़े हैं। एक उदाहरण में आठ ग्रह भी उत्कीर्ण हैं। नवीं से ग्यारहवीं शती ई० के मध्य की आठ मूर्तियां अलुआरा (मानभूम) से मिली हैं, जो सम्प्रति पटना संग्रहालय में हैं।[3] सात उदाहरणों में ऋषभ निर्वस्त्र हैं और कायोत्सर्ग में खड़े हैं। इनमें केवल जटाओं के आधार पर ही ऋषभ की पहचान की गई है।

ल० नवीं शती ई० को दो मूर्तियां पोट्टासिंगीदी (क्योंझर) से मिली हैं और उड़ीसा राज्य संग्रहालय, भुवनेश्वर में सुरक्षित हैं।[4] ध्यानमुद्रावाली एक मूर्ति में वृषभ लांछन के साथ ही लेख में ऋषभ का नाम भी उत्कीर्ण है। दूसरी मूर्ति में ऋषभ निर्वस्त्र हैं और कायोत्सर्ग में खड़े हैं। जटाओं से शोभित ऋषभ त्रिछत्र के स्थान पर एकछत्र से युक्त हैं। चरंपा (बालासोर) की एक कायोत्सर्ग मूर्ति (९ वीं–१० वीं शती ई०) में जटा, वृषभ लांछन, एक छत्र और आठ ग्रह उत्कीर्ण हैं।[5]

दसवीं शती ई० की एक मनोज्ञ मूर्ति सुरोहर (दिनाजपुर, बांगलादेश) से मिली है और वरेन्द्र शोध संग्रहालय (१४७२) में सुरक्षित है (चित्र ९)।[6] ऋषभ ध्यानमुद्रा में सिंहासन पर विराजमान हैं और जटामुकुट एवं केशवल्लरियों से शोभित हैं। वृषभ लांछन भी उत्कीर्ण है। परिकर में जिनों की २३ लांछन युक्त छोटी मूर्तियां बनी हैं। २३ जिनों में से केवल सुपार्श्व एवं सुमति की पहचान सम्भव नहीं है। इनके साथ पारम्परिक लांछन (स्वस्तिक एवं क्रौंच) के स्थान पर पद्म और पशु (सम्भवतः श्वान्) उत्कीर्ण हैं। आशुतोष संग्रहालय में भी ल० दसवीं शती ई० की एक मूर्ति है,[7] जिसमें जटामुकुट एवं लांछन से युक्त ऋषभ कायोत्सर्ग में निरूपित हैं। मूर्ति के परिकर में चार जिन मूर्तियां बनी हैं। कटेश्वर (बंगाल) से मिली दसवीं शती ई० की एक दिगंबर मूर्ति के परिकर में २४ छोटी जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं।[8] ल० दसवीं शती ई० की एक ध्यानमुद्रावाली मूर्ति ताकागुड़ी (पुरुलिया) से भी मिली है।[9] इसमें जटाजूट एवं लांछन से युक्त ऋषभ के वक्ष पर श्रीवत्स नहीं है। ऋषभ की कुछ मूर्तियां मेलोवा (दिनाजपुर, बांगलादेश) एवं संक (पुरुलिया, बंगाल) से भी मिली हैं (चित्र १०, ११)।

खण्डगिरि की जैन गुफाओं में भी ऋषभ की कई मूर्तियां (११ वीं-१२ वीं शती ई०) हैं। नवमुनि गुफा में दो मूर्तियां ध्यानमुद्रा में हैं। इनमें वृषभ लांछन और जटाएं प्रदर्शित हैं पर सिंहासन, भामण्डल, श्रीवत्स एवं उड्डीयमान मालाधर नहीं हैं। एक मूर्ति में ऋषभ के साथ दशभुज चक्रेश्वरी है। समान लक्षणों वाली एक अन्य ध्यानमुद्रावाली मूर्ति बारभुजी गुफा में है जिसमें सिंहासन, भामण्डल एवं उड्डीयमान मालाधर चित्रित हैं। यहां चक्रेश्वरी बारह भुजाओंवाली

---

१ चंद्र, प्रमोद, स्टोन स्कल्पचर इन दि इलाहाबाद म्यूजियम, बम्बई, १९७०, पृ० ११२
२ रामचन्द्रन, टी०एन०, जैन मान्युमेण्ट्स ऐण्ड प्लेसेज आव फर्स्ट क्लास इम्पार्टेन्स, कलकत्ता, १९४४, पृ० ५९-६०
३ १०६७६, १०६८०–८१, १०६८३–८७
४ जोशी, अर्जुन, 'फर्दर लाइट आन दि रिमेन्स ऐट पोट्टासिंगीदी', उ०हि०रि०ज०, खं० १०, अं० ४, पृ० ३०-३१
५ दास, एम०पी०, 'जैन एन्टिक्विटीज फ्राम चरंपा', उ०हि०रि०ज०, खं० ११, अं० १, पृ० ५०–५१
६ गांगुली, कल्याण कुमार, 'जैन इमेजेज इन बंगाल', इण्डि०क०, खं० ६, पृ० १३८–३९
७ सरकार, शिवशंकर, 'आन सम जैन इमेजेज फ्राम बंगाल', माडर्न रिव्यू, खं० १०६, अं० २, पृ० १३०–३१
८ दत्त, कालीदास, 'दि एन्टिक्विटीज ऑव खारी', ऐनुअल रिपोर्ट, वारेन्द्र रिसर्च सोसाइटी, १९२८–२९, पृ० ५–६
९ नाहटा, भंवरलाल, 'ताकागुड़ी की जैन प्रतिमा', जैन जगत, वर्ष १३, अं० ९–११, पृ० ६०–६१

है।[1] त्रिशूल गुफा में भी चार मूर्तियां हैं।[2] इनमें वृषभ लांछन, जटा एवं जटामुकुट से युक्त ऋषभ कायोत्सर्ग में खड़े हैं। उड़ीसा के किसी स्थल से मिली ऋषभ की जटामुकुट से शोभित और कायोत्सर्ग में खड़ी एक मूर्ति (१२ वीं शती ई०) म्यूजेगीमे, पेरिस में है।[3] चामरधर और आठ ग्रह भी अंकित हैं।

अम्बिका नगर (बांकुड़ा) से लांछन एवं जटामुकुट से शोभित एक विशाल कायोत्सर्ग मूर्ति (११ वीं शती ई०) मिली है,[4] जिसके परिकर में २४ जिनों की लांछनयुक्त छोटी मूर्तियां हैं। मानभूम एवं बारभूम (मिदनापुर) की दो मूर्तियां (११ वीं शती ई०) भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता में हैं।[5] इनमें भी २४ लघु जिन आकृतियां उत्कीर्ण हैं। आशुतोष संग्रहालय की एक कायोत्सर्ग मूर्ति (११ वीं शती ई०) में लांछन, नवग्रह एवं गणेश की आकृतियां बनी हैं। बंगाल की केवल एक ही ऋषभ मूर्ति (११ वीं शती ई०) में यक्ष-यक्षी निरूपित हैं।[6] यक्षी अम्बिका है पर द्विभुज यक्ष की पहचान सम्भव नहीं है।

विश्लेषण—बिहार-उड़ीसा-बंगाल की ऋषभ मूर्तियों के अध्ययन से स्पष्ट है कि ऋषभ के साथ वृषभ लांछन एवं जटाओं के साथ ही जटामुकुट का प्रदर्शन भी लोकप्रिय था। वृषभ लांछन का चित्रण ल० आठवीं शती ई० में ही प्रारम्भ हो गया। यक्ष-यक्षी का अंकन केवल एक ही उदाहरण में हुआ है, और उसमें भी वे पारम्परिक नहीं हैं।[7] परिकर में २३ या २४ जिनों की छोटी मूर्तियों एवं नवग्रहों के अंकन विशेष लोकप्रिय थे।

जीवनदृश्य

ऋषभ के जीवनदृश्यों के उदाहरण राज्य संग्रहालय, लखनऊ (जे ३५४), ओसिया की देवकुलिका, कुम्भारिया के शान्तिनाथ एवं महावीर मन्दिरों एवं कल्पसूत्र के चित्रों में सुरक्षित हैं। ओसिया और कुम्भारिया के उदाहरण ग्यारहवीं शती ई० और कल्पसूत्र के चित्र पन्द्रहवीं शती ई० के हैं।

मथुरा से प्राप्त और राज्य संग्रहालय, लखनऊ में सुरक्षित ल० पहली शती ई० के एक पट्ट (जे ३५४) पर नीलांजना के नृत्य का दृश्य उत्कीर्ण है (चित्र १२)। नीलांजना इन्द्रलोक की नर्तकी थी। नीलांजना के नृत्य के कारण ही ऋषभ को वैराग्य उत्पन्न हुआ था।[8] नीलांजना के नृत्य से सम्बन्धित पट्ट का दूसरा भाग भी प्राप्त हो गया है।[9] वी०एन० श्रीवास्तव ने दोनों पट्टों के दृश्यों को पांच भागों में विभाजित किया है। दाहिने कोने की आकृति को उन्होंने नीलांजना के नृत्य को देखते हुए शासक ऋषभ माना है। पट्ट पर ऋषभ के संसार त्यागने एवं केवल-ज्ञान प्राप्त करने के भी चित्रण हैं।

---

१ मित्रा, देबला, 'शासनदेवीज इन दि खण्डगिरि केव्स', ज०ए०सो०, खं० १, अं० २, पृ० १२८-३०

२ कुरेशी, मुहम्मद हमीद, लिस्ट ऑव ऐन्शण्ट माॅन्युमेण्ट्स इन दि प्राविन्स ऑव बिहार ऐण्ड उड़ीसा, कलकत्ता, १९३१, पृ० २८१

३ जै०क०स्था०, खं० ३, पृ० ५६२-६३

४ मित्रा, देबला, 'सम जैन एण्टिक्विटीज फ्राम बांकुड़ा, वेस्ट बंगाल', ज०ए०सो०बं०, खं० २४, अं० २, पृ० १३२

५ एण्डरसन, जे०, केटलाग ऐण्ड हैण्डबुक टू दि आर्किअलाजिकल कलेक्शन इन दि इण्डियन म्यूजियम, कलकत्ता, भाग १, कलकत्ता, १८८३, पृ० २०२; बनर्जी, जे० एन०, 'जैन इमेजेज', दि हिस्ट्री ऑव बंगाल, खं० १, ढाका, १९४३, पृ० ४६४-६५

६ मिश्र, कालीपद, 'आन दि आइडेण्टिफिकेशन ऑव ऐन इमेज', इं०हि०क्वा०, खं० १८, अं० ३, पृ० २६१-६६

७ नवमुनि एवं बारभुजी गुफाओं की दो ऋषभ मूर्तियों में मूर्तियों के नीचे चक्रेश्वरी आमूर्तित हैं।

८ पउमचरिय ३.१२२-२६; हरिवंशपुराण ९.४७-४८

९ राज्य संग्रहालय, लखनऊ—जे ६०९ : श्रीवास्तव, वी० एन०, 'सम इन्टरेस्टिंग जैन स्कल्पचर्स इन दि स्टेट म्यूजियम, लखनऊ', सं०पु०प०, अं० ९, पृ० ४७-४८

ओसिया के महावीर मन्दिर के समीप की पूर्वी देवकुलिका के वेदिकाबंध पर ऋषभ के जीवनदृश्य उत्कीर्ण हैं। इस पहचान का मुख्य आधार नीलांजना के नृत्य का अंकन है। उत्तर की ओर ऋषभ की माता नवजात शिशु के साथ लेटी है। समीप ही गोद में शिशु लिए अजमुख नैगमेषी आमूर्तित है। जैन परम्परा में उल्लेख है कि जिनों के जन्म के बाद इन्द्र ने अपने सेनापति नैगमेषी को शिशु को अभिषेक हेतु मेरु पर्वत पर लाने का आदेश दिया था। उपर्युक्त चित्रण नैगमेषी द्वारा शिशु को मेरुपर्वत पर ले जाने से सम्बन्धित है। जैन परम्परा में यह भी उल्लेख है कि नैगमेषी ने मरुदेवी को गहरी निद्रा में सुलाकर उनके समीप शिशु की एक प्रतिकृति रख दी और शिशु को मेरु पर्वत पर ले गया। आगे गज पर दो आकृतियां बैठी हैं, जिनमें से एक की गोद में शिशु है। यह इन्द्र द्वारा शिशु (ऋषभ) को मेरु पर्वत पर ले जाने का दृश्य है। आगे घट एवं वाद्ययंत्रों से युक्त ३५ आकृतियां उत्कीर्ण हैं, जो ऋषभ के जन्म-कल्याणक पर आनन्दोत्सव मना रही हैं। आगे ध्यानमुद्रा में बैठी इन्द्र की आकृति है, जिसकी गोद में शिशु (ऋषभ) है। पूर्वी वेदिकाबन्ध पर ऋषभ के राज्यारोहण का दृश्य है। दक्षिणी वेदिकाबन्ध पर पशुओं और योद्धाओं की मूर्तियां एवं युद्ध से सम्बन्धित दृश्य हैं। समीप ही नृत्य करती एक स्त्री की आकृति है जिसके पास वाद्यवादन करती तीन आकृतियां हैं। यह नीलांजना के नृत्य का अंकन है। समीप ही भिक्षापात्र एवं मुख-पट्टिका से युक्त दो साधु आकृतियां उत्कीर्ण हैं जो सम्भवतः ऋषभ की मूर्तियां हैं।

कुम्भारिया के शान्तिनाथ मन्दिर की पश्चिमी भ्रमिका के वितान (उत्तर से प्रथम) पर ऋषभ के जीवनदृश्यों के विस्तृत चित्रण हैं (चित्र १४)। सारा दृश्य चार आयतों में विभाजित है। बाहर से प्रथम आयत में पूर्व की ओर (बायें से) मरुदेवी और नाभि की वार्तालाप करती आकृतियां उत्कीर्ण हैं। आगे सेविकाओं से वेष्टित मरुदेवी शय्या पर लेटी हैं। समीप ही १४ मांगलिक स्वप्न उत्कीर्ण हैं।[1] उत्तर की ओर (बायें से) भी नाभि एवं मरुदेवी को वार्तालाप में संलग्न मूर्तियां हैं। आगे मरुदेवी को शय्या पर लेटी आकृति भी उत्कीर्ण है जिसके समीप चार वृषभ एवं अश्व पर आरूढ़ एक आकृति बनी है। यह सम्भवतः ऋषभ के पूर्वभव (वज्रनाभ) के जीव के मरुदेवी के गर्भ में च्यवन करने का चित्रण है। अश्वारूढ़ आकृति वज्रनाभ का जीव है। आगे नाभिराय को जैन आचार्यों से मरुदेवी के स्वप्नों का फल पूछते हुए दरशाया गया है। दक्षिण की ओर ऋषभ के राज्यारोहण एवं विवाह के दृश्य हैं।

दूसरे आयत में पूर्व की ओर ऋषभ को शासक के रूप में विभिन्न कलाओं का ज्ञान देते हुए दिखाया गया है। जैन परम्परा में ऋषभ को सभी कलाओं का प्रणेता कहा गया है। इन दृश्यों में ऋषभ को पात्र (प्रथम पात्र) लिए और युद्ध की शिक्षा देते हुए दिखाया गया है। उत्तर की ओर ऋषभ की दीक्षा का दृश्य उत्कीर्ण है। पद्मासन में ऋषभ की पांच मूर्तियां उत्कीर्ण हैं, जिनमें वाम भुजा गोद में है और दक्षिण से ऋषभ अपने केशों का लुंचन कर रहे हैं। पांचवीं आकृति के समक्ष इन्द्र खड़े हैं जो ऋषभ से एक मुष्टि केश सिर पर ही रहने देने का अनुरोध कर रहे हैं। जैन परम्परा के अनुसार इन्द्र ने ही ऋषभ के लुंचित केशों को जल में प्रवाहित किया था। आगे कायोत्सर्ग-मुद्रा में ऋषभ तपस्यारत हैं। ऋषभ के पार्श्वों में खड्गधारी नमि-विनमि की आकृतियां हैं। जैन परम्परा में उल्लेख है कि राज्य-लक्ष्मी प्राप्त करने की इच्छा से नमि-विनमि तपस्यारत ऋषभ के समीप काफी समय तक खड़े रहे। अन्त में धरणेन्द्र ने उपस्थित होकर नमि-विनमि को ४८ हजार विद्याओं का स्वामित्व प्रदान किया।[2] पश्चिम की ओर खड्गधारी नमि-विनमि की आकृतियां उत्कीर्ण हैं। दक्षिण की ओर ऋषभ का समवसरण है जिसके मध्य में ऋषभ की ध्यानस्थ मूर्ति है।

तीसरे आयत में ऋषभ के दो पुत्रों, भरत एवं बाहुबली के मध्य हुए युद्ध का विस्तृत चित्रण है। इन दृश्यों में दोनों पक्षों की सेनाओं के युद्ध के साथ ही भरत एवं बाहुबली के द्वन्द्वयुद्ध भी प्रदर्शित हैं। जैन परम्परा के अनुसार युद्ध में

---

१ मांगलिक स्वप्नों में चतुर्भुज महालक्ष्मी ध्यानमुद्रा में विराजमान है। महालक्ष्मी की निचली भुजाएं गोद में रखी हैं और ऊपरी भुजाओं में सनाल पद्म हैं। पद्म के ऊपर की दो गज आकृतियां देवी का अभिषेक कर रही हैं।

२ त्रि०श०पु०च० १.३.१३४–४४

होने वाले नरसंहार को बचाने के उद्देश्य से भरत एवं बाहुबली ने द्वन्द्वयुद्ध के माध्यम से निर्णय करने का निश्चय किया था।[1] युद्ध में विजयश्री बाहुबली को मिली पर उसी समय उनके मन में संसार के प्रति विरक्ति का भाव उत्पन्न हुआ, और बाहुबली ने दीक्षा लेकर कठोर तपस्या की। अन्त में बाहुबली को कैवल्य प्राप्त हुआ। कठोर और लम्बी अवधि की तपस्या के कारण बाहुबली के शरीर से माधवी, सर्प एवं वृश्चिक आदि लिपट गये, किन्तु बाहुबली विचलित न होकर तपस्यारत बने रहे। बायीं ओर शरीर से लिपटी माधवी के साथ बाहुबली की कायोत्सर्ग-मुद्रा में तपस्यारत आकृति बनी है। बाहुबली के दोनों ओर उनकी बहनों, ब्राह्मी और सुन्दरी की मूर्तियां हैं जिनके नीचे 'ब्राह्मी' और 'सुन्दरी' अभिलिखित है। जैन परम्परा के अनुसार ऋषभ के आदेश पर ब्राह्मी और सुन्दरी बाहुबली के समीप गई थीं। ब्राह्मी एवं सुन्दरी के आगमन के बाद ही बाहुबली को केवल-ज्ञान प्राप्त हुआ था। चौथे आयत में चतुर्भुज गोमुख और चक्रेश्वरी आमूर्तित हैं।

कुम्भारिया के महावीर मन्दिर की पश्चिमी भ्रमिका (उत्तर से प्रथम) के वितान पर भी ऋषभ के जीवनदृश्यों के विशद अंकन हैं (चित्र १३)। सम्पूर्ण दृश्य तीन आयतों में विभाजित हैं। पहले आयत में पूर्व की ओर सर्वार्थसिद्ध स्वर्ग का चित्रण है, जिसमें वार्तालाप की मुद्रा में कई आकृतियां उत्कीर्ण हैं। स्मरणीय है कि वज्रनाभ का जीव सर्वार्थसिद्ध स्वर्ग से ही मरुदेवी के गर्भ में आया था। आगे वार्तालाप की मुद्रा में ऋषभ के माता-पिता की आकृतियां हैं। उत्तर में (बायें से) मरुदेवी की शय्या पर लेटी मूर्ति है। आगे १४ मांगलिक स्वप्न और वार्तालाप की मुद्रा में ऋषभ के माता-पिता की मूर्तियां हैं। अन्य दृश्य कुम्भारिया के शान्तिनाथ मन्दिर के समान हैं।

दूसरे आयत में उत्तर की ओर (बायें से) सेविकाओं से वेष्टित मरुदेवी शिशु के साथ लेटी हैं। नीचे 'ऋषभ जन्म' अभिलिखित है। बायीं ओर नमस्कार-मुद्रा में सम्भवतः इन्द्र की मूर्ति उत्कीर्ण है। श्वेतांबर परम्परा में इन्द्र द्वारा भी शिशु को मेरुपर्वत पर ले आने का उल्लेख है।[2] पूर्व में मेरुपर्वत पर शिशु को इन्द्र की गोद में बैठे दिखाया गया है। पीछे छत्र लिए एक मूर्ति उत्कीर्ण है। इन्द्र के पार्श्वों में अभिषेक हेतु कलशधारी आकृतियां बनी हैं। दक्षिण में ध्यानस्थ ऋषभ की एक मूर्ति उत्कीर्ण है, जो अपने बायें हाथ से केशों का लुंचन कर रही है। बायीं ओर ऋषभ को कायोत्सर्ग-मुद्रा में दो वृक्षों के मध्य खड़ा प्रदर्शित किया गया है। समीप ही ऋषभ की एक अन्य कायोत्सर्ग मूर्ति भी उत्कीर्ण है। ये मूर्तियां ऋषभ की तपश्चर्या की सूचक हैं। आगे ऋषभ का समवसरण है। तीसरे आयत में ऋषभ के पारम्परिक यक्ष-यक्षी, गोमुख-चक्रेश्वरी और पांच अन्य देवता निरूपित हैं। लेख में चक्रेश्वरी को 'वैष्णवी देवी' कहा गया है। अन्य मूर्तियां ब्रह्मशान्ति यक्ष,[3] सिंहवाहना अम्बिका, सरस्वती, शान्तिदेवी एवं महाविद्या वैरोट्या[4] की हैं।

कल्पसूत्र के चित्रों में भी ऋषभ के पंचकल्याणकों के विस्तृत अंकन हैं।[5] चित्रों के विवरण कुम्भारिया के शान्तिनाथ एवं महावीर मन्दिरों की दृश्यावलियों के समान हैं। इनमें ऋषभ के विवाह, राज्याभिषेक एवं सिद्ध-पद प्राप्त करने के दृश्य हैं। चतुर्भुज शक्र को ऋषभ का राज्याभिषेक करते हुए दिखाया गया है।

दक्षिण भारत—इस क्षेत्र में महावीर एवं पार्श्व की तुलना में ऋषभ की मूर्तियां काफी कम हैं। ऋषभ मूर्तियों में जटाओं, वृषभ लांछन, गोमुख-चक्रेश्वरी एवं २३ या २४ छोटी जिन मूर्तियों के नियमित अंकन प्राप्त होते हैं।

---

१ पउमचरिय ४.५४-५५; हरिवंशपुराण ११.९८-१०२; आदिपुराण, खं० २, ३६.१०६-८५; त्रि०श०पु०च०, खं० १, ५.७४०-९८

२ त्रि०श०पु०च० १.२.४०७-३०

३ चतुर्भुज ब्रह्मशान्ति का वाहन हंस है और करों में वरदमुद्रा, पद्म, पुस्तक एवं जलपात्र हैं।

४ चतुर्भुजा वैरोट्या के हाथों में खड्ग, सर्प, खेटक एवम् फल प्रदर्शित हैं।

५ ब्राउन, डब्ल्यू०एन०, ए डेस्क्रिप्टिव ऐण्ड इलस्ट्रेटेड केटलॉग ऑव मिनियेचर पेन्टिंग्स ऑव दि जैन कल्पसूत्र, वाशिंगटन, १९३४, पृ० ५०-५३, फलक ३५-३८

ल० दसवीं शती ई० की एक मूर्ति पुदुकोट्टई से मिली है।[1] कायोत्सर्ग में खड़ी ऋषभ मूर्ति के परिकर में २३ छोटी जिन मूर्तियां और पीठिका पर गोमुख-चक्रेश्वरी निरूपित हैं। ऋषभ की जटाएं और वृषभ लांछन भी उत्कीर्ण हैं। कण्णमंगलम (पुदुकोट्टई) से मिली एक अन्य मूर्ति में भी गोमुख-चक्रेश्वरी एवं परिकर में २४ छोटी जिन मूर्तियां बनी हैं।[2] समान लक्षणों वाली कन्नड़ रिसर्च इन्स्टिट्यूट म्यूजियम की एक ध्यानस्थ मूर्ति[3] के परिकर में ७१ जिन आकृतियां और मूलनायक के दोनों ओर सुपार्श्व एवं पार्श्व की कायोत्सर्ग मूर्तियां भी उत्कीर्ण हैं।

विश्लेषण

संपूर्ण अध्ययन से स्पष्ट होता है कि उत्तर भारत की जिन मूर्तियों में ऋषभ सर्वाधिक लोकप्रिय थे।[4] ल० ८वीं शती ई० में उनके वृषभ लांछन और नवीं-दसवीं शती ई० में पारम्परिक यक्ष-यक्षी, गोमुख एवं चक्रेश्वरी का अंकन प्रारम्भ हुआ।[5] ऋषभ की जटाओं का निर्धारण मथुरा में पहली शती ई० में ही हो गया था। देवगढ़, खजुराहो, कुम्भारिया (महावीर मन्दिर) एवं लखनऊ संग्रहालय की कुछ मूर्तियों में ऋषभ के साथ पारम्परिक यक्ष-यक्षी के साथ ही अम्बिका, पद्मावती, शान्तिदेवी, सरस्वती, लक्ष्मी, वैरोट्या एवं ब्रह्मशान्ति भी निरूपित हैं। ऋषभ के साथ इन देवों का निरूपण ऋषभ की विशेष प्रतिष्ठा का सूचक है।

ऋषभ के निरूपण में हिन्दू देव शिव का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। शिव का प्रभाव ऋषभ की जटाओं, वृषभ लांछन एवं गोमुख यक्ष के सन्दर्भ में देखा जा सकता है। गोमुख यक्ष वृषानन है और उसका वाहन भी वृषभ है। गोमुख यक्ष के हाथों में भी शिव से सम्बन्धित परशु एवं पाश प्रदर्शित हैं।[6] ऋषभ की चक्रेश्वरी यक्षी वाहन (गरुड़) और आयुधों (चक्र, शंख, गदा) के आधार पर हिन्दू वैष्णवी से प्रभावित प्रतीत होती है।[7] कुम्भारिया के महावीर मन्दिर की एक चक्रेश्वरी मूर्ति में देवी को स्पष्टतः 'वैष्णवी देवी' कहा गया है। इस प्रकार शैव एवं वैष्णव धर्मों के प्रमुख आराध्य देवों को जैन धर्म के आदि तीर्थंकर ऋषभ के शासनदेवता के रूप में निरूपित करके सम्भवतः जैन धर्म की श्रेष्ठता प्रतिपादित करने का प्रयास किया गया है।

(२) अजितनाथ

जीवनवृत्त

अजितनाथ इस अवसर्पिणी युग के दूसरे जिन हैं। विनीता नगरी के महाराज जितशत्रु उनके पिता और विजया देवी उनकी माता थीं। अजित के माता के गर्भ में आने के बाद से जितशत्रु अविजित रहे, इसी कारण बालक का नाम अजित रखा गया। आवश्यकचूर्णि में उल्लेख है कि गर्भकाल में जितशत्रु विजया को खेल में न जीत सके थे, इसी कारण बालक का नाम अजित रखा गया। राजपद के भोग के बाद पंचमुष्टिक में केशों का लुंचन कर अजित ने दीक्षा ग्रहण की।

---

१ बालसुब्रह्मण्यम, एस० आर० तथा राजू, वी० वी०, 'जैन वेस्टिजेज इन दि पुदुकोट्टा स्टेट', क्वा०ज०मै०स्टे०, सं० २४, अं० ३, पृ० २१३-१४

२ वेंकटरमन, के० आर०, 'दि जैनज इन दि पुदुकोट्टा स्टेट', जैन एण्टि०, सं० ३, अं० ४, पृ० १०५

३ अन्निगेरी, ए० एम०, ए गाइड टु दि कन्नड़ रिसर्च इंस्टिट्यूट म्यूजियम, धारवाड़, १९५८, पृ० २६–२७

४ केवल उड़ीसा की उदयगिरि–खण्डगिरि गुफाओं में ही ऋषभ की तुलना में पार्श्व की अधिक मूर्तियां हैं।

५ देवगढ़, विमलवसही एवं कुछ अन्य स्थलों की मूर्तियों में ऋषभ के साथ सर्वानुभूति एवं अम्बिका भी आमूर्तित हैं। बिहार, उड़ीसा एवं बंगाल की मूर्तियों में यक्ष-यक्षी का उत्कीर्णन लोकप्रिय नहीं था।

६ बनर्जी, जे० एन०, दि डेवेलपमेण्ट ऑव हिन्दू आइकानोग्राफी, कलकत्ता, १९५६, पृ० ५६२

७ राव, टी० ए० गोपीनाथ, एलिमेण्ट्स ऑव हिन्दू आइकानोग्राफी, सं० १, भाग २, वाराणसी, १९७१ (पु०मु०), पृ० ३८४–८५

बारह वर्षों की कठिन तपस्या के बाद अजित को अयोध्या में सप्तपर्ण (न्यग्रोध) वृक्ष के नीचे केवल-ज्ञान प्राप्त हुआ। अजित को सम्मेद शिखर पर निर्वाण प्राप्त हुआ।[1]

प्रारम्भिक मूर्तियां

अजित का लांछन गज है और यक्ष-यक्षी महायक्ष एवं अजितबला (या अजिता या विजया) हैं। दिगंबर परम्परा में अजित की यक्षी रोहिणी है। केवल दिगंबर स्थलों की अजित मूर्तियों में ही यक्ष-यक्षी आमूर्तित हैं। पर उनके निरूपण में लेशमात्र भी परम्परा का निर्वाह नहीं किया गया है। साथ ही उनके स्वतन्त्र स्वरूप भी कभी स्थिर नहीं हो सके। ल० छठीं-सातवीं शती ई० में अजित के लांछन और आठवीं शती ई० में यक्ष-यक्षी का निरूपण प्रारम्भ हुआ।

अजित की प्रारम्भिकतम मूर्ति ल० छठीं-सातवीं शती ई० की है। वाराणसी से मिली यह मूर्ति सम्प्रति राज्य संग्रहालय, लखनऊ (४९–१९९) में है।[2] अजित कायोत्सर्ग-मुद्रा में निर्वस्त्र खड़े हैं और पीठिका पर गज लांछन की दो मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। भामण्डल के अतिरिक्त कोई अन्य प्रातिहार्य नहीं उत्कीर्ण है।

पूर्वमध्ययुगीन मूर्तियां

गुजरात-राजस्थान—इस क्षेत्र से अजित की तीन मूर्तियां मिली हैं। ल० आठवीं शती ई० की अकोटा की एक मूर्ति में धर्मचक्र के दोनों ओर अजित के गज लांछन उत्कीर्ण हैं।[3] पीठिका छोरों पर द्विभुज यक्ष-यक्षी निरूपित हैं, जिनके आयुध स्पष्ट नहीं हैं। पीठिका पर अष्टग्रहों की भी मूर्तियां हैं। १०५३ ई० की दूसरी मूर्ति अहमदाबाद के अजितनाथ मन्दिर में है[4] जिसमें लांछन नहीं उत्कीर्ण है। पर पीठिका-लेख में अजित का नाम आया है। तीसरी मूर्ति कुम्भारिया के पार्श्वनाथ मन्दिर में है। ११९९ ई० की इस मूर्ति में कायोत्सर्ग में अवस्थित मूलनायक की पीठिका पर गज लांछन बना है। यक्ष-यक्षी नहीं उत्कीर्ण हैं, पर तोरण स्तम्भों पर अप्रतिचक्रा, पुरुषदत्ता, महाकाली, वज्रशृंखला, वज्रांकुशी, रोहिणी महाविद्याओं एवं शान्तिदेवी की मूर्तियां हैं।

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश—इस क्षेत्र में केवल देवगढ़ एवं खजुराहो से ही अजित की मूर्तियां मिली हैं।[5] देवगढ़ में दसवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की पांच मूर्तियां हैं (चित्र १५)। चार मूर्तियों में अजित कायोत्सर्ग में खड़े हैं। गज लांछन सभी में उत्कीर्ण है। मन्दिर २१ की दसवीं शती ई० की एक मूर्ति के अतिरिक्त अन्य सभी उदाहरणों में यक्ष-यक्षी निरूपित हैं। तीन उदाहरणों में द्विभुज यक्ष-यक्षी सामान्य लक्षणों वाले हैं।[6] इनकी भुजाओं में अभयमुद्रा एवं फल (या जलपात्र) प्रदर्शित हैं। मन्दिर २९ की बारहवीं शती ई० की एक मूर्ति में यक्ष-यक्षी चतुर्भुज हैं। इस मूर्ति में चामरधरों के समीप हार और घट लिए हुए दो आकृतियां खड़ी हैं। मन्दिर १२ की चहारदीवारी की दो मूर्तियों (१०वीं–११शती ई०) के परिकर में क्रमशः चार और पांच छोटी जिन मूर्तियां भी उत्कीर्ण हैं।

खजुराहो में ग्यारहवीं–बारहवीं शती ई० की चार मूर्तियां हैं।[7] सभी मूर्तियां स्थानीय संग्रहालय में सुरक्षित हैं। तीन उदाहरणों में अजित ध्यानमुद्रा में विराजमान हैं। यक्ष-यक्षी केवल एक ही मूर्ति (के ४३) में निरूपित हैं। एक

१ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० ६४-६७

२ शर्मा, आर० सी०, 'जैन स्कल्पचर्स ऑव दि गुप्त एज इन दि स्टेट म्यूजियम, लखनऊ', म०जै०वि०गो०जु०वा०, बम्बई, १९६८, पृ० १५५

३ शाह, यू० पी०, अकोटा ब्रोन्जेज, पृ० ४७, चित्र ४१ बी०

४ मेहता, एन०सी०, 'ए मेडिवल जैन इमेज ऑव अजितनाथ–१०५३ ए०डी०', इण्डि०एण्टि०, खं०५६, पृ०७२-७४

५ अजीत, सम्भव, अभिनन्दन एवं पद्मप्रभ की कुछ कायोत्सर्ग मूर्तियां मध्य प्रदेश के शिवपुरी संग्रहालय में हैं। द्रष्टव्य, जै०क०स्था०, खं० ३, पृ० ६०४

६ सामान्य लक्षणों वाले यक्ष-यक्षी से हमारा तात्पर्य सदैव ऐसे द्विभुज यक्ष-यक्षी से है जिनके करों में अभयमुद्रा (या पद्म) एवं फल (या जलपात्र) प्रदर्शित हैं।

७ तिवारी, एम०एन०पी०, 'दि जिन इमेजेज ऑव खजुराहो विद स्पेशल रेफरेन्स टु अजितनाथ', जैन जर्नल, खं० १०, अं० १, पृ० २२–२५

उदाहरण (के ६६) में चामरधरों के स्थान पर पार्श्वों में दो कायोत्सर्ग जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। सिंहासन-छोरों पर एवं परिकर में चार अन्य जिन मूर्तियां भी बनी हैं। एक मूर्ति (के २२) में पीठिका पर पांच ग्रहों एवं परिकर में ६ जिनों की मूर्तियां हैं। दो अन्य मूर्तियों (के ४३, के ५९) के परिकर में क्रमशः दो और चार जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं।

बिहार-उड़ीसा-बंगाल—राजगिर के सोनभण्डार गुफा में ल० दसवीं शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति है।[1] पीठिका पर सिंहासन के सूचक सिंहों के स्थान पर दो गज (लांछन) आकृतियां उत्कीर्ण हैं। पीठिका-छोरों पर ध्यानस्थ जिनों की दो मूर्तियां हैं। मूलनायक के पार्श्वों में दो चामरधर एवं परिकर में दो उड्डीयमान मालाधर आमूर्तित हैं। अलु-आरा (मानभूम) से एक कायोत्सर्ग मूर्ति (१०वीं–११वीं शती ई०) मिली है, जो सम्प्रति पटना संग्रहालय (१०६९७) में सुरक्षित है।[2] सिंहासन पर गज लांछन, और परिकर में चामरधर, त्रिछत्र, उड्डीयमान मालाधर, गज, आमलक एवं छोटी जिन आकृतियां उत्कीर्ण हैं। बरंपा (उड़ीसा) से मिली एक ध्यानस्थ मूर्ति (१०वीं-११वीं शती ई०) उड़ीसा राज्य संग्रहालय, भुवनेश्वर में संकलित है।[3] उड़ीसा की नवमुनि, बारभुजी एवं त्रिशूल गुफाओं में अजित की तीन मूर्तियां हैं।[4] नवमुनि एवं बारभुजी गुफाओं की मूर्तियों के नीचे यक्षियां भी आमूर्तित हैं। बिहार के मानभूम जिलान्तर्गत पाकबीरा से भी अजित की एक कायोत्सर्ग मूर्ति (११वीं शती ई०) मिली है।[5] गज लांछन युक्त यह मूर्ति शिखर युक्त मन्दिर में प्रतिष्ठित है।

(३) सम्भवनाथ

जीवनवृत्त

सम्भवनाथ इस अवसर्पिणी के तीसरे जिन हैं। श्रावस्ती के शासक जितारि उनके पिता और सेनादेवी (या सुषेणा) उनकी माता थीं। जैन परम्परा के अनुसार सम्भव के गर्भ में आने के बाद से देश में प्रभूत मात्रा में साम्ब एवं मूंग धान्य उत्पन्न हुए, इसी कारण बालक का नाम सम्भव रखा गया। राजपद के उपभोग के बाद सम्भव ने सहस्राम्रवन मे दीक्षा ली। १४ वर्षों की कठोर तपःसाधना के बाद श्रावस्ती नगर में शालवृक्ष के नीचे सम्भव को केवल-ज्ञान प्राप्त हुआ। निर्वाण इन्होंने सम्मेद शिखर पर प्राप्त किया।[6]

प्रारम्भिक मूर्तियां

सम्भव का लांछन अश्व है और यक्ष-यक्षी त्रिमुख एवं दुरितारि हैं। दिगंबर परम्परा में यक्षी का नाम प्रज्ञप्ति है। मूर्त अंकनों में सम्भव के पारम्परिक यक्ष-यक्षी का चित्रण नहीं प्राप्त होता। ल० दसवीं शती ई० में सम्भव के अश्व लांछन और यक्ष-यक्षी का अंकन प्रारम्भ हुआ।

सम्भव की प्राचीनतम मूर्ति मथुरा से मिली है और राज्य संग्रहालय, लखनऊ (जे १९) में सुरक्षित है (चित्र १६)। कुषाणकालीन मूर्ति पर अंकित सं० ४८ (=१२६ ई०) के लेख में 'सम्भवनाथ' का नाम उत्कीर्ण है। सम्भव ध्यानमुद्रा में विराजमान हैं। पीठिका पर धर्मचक्र और त्रिरत्न उत्कीर्ण हैं। इस मूर्ति के बाद दसवीं शती ई० के पूर्व की एक भी सम्भव मूर्ति नहीं मिली है।

पूर्वमध्ययुगीन मूर्तियां

गुजरात और राजस्थान के जैन मन्दिरों की देवकुलिकाओं की सम्भव मूर्तियां सुरक्षित नहीं हैं। बिहार एवं बंगाल से सम्भव की एक भी मूर्ति नहीं मिली है। उड़ीसा की नवमुनि, बारभुजी एवं त्रिशूल गुफाओं में सम्भव की तीन ध्यानस्थ मूर्तियां हैं।[7] इनमें से दो उदाहरणों में यक्षियां भी उत्कीर्ण हैं।

---

१ आर्किअलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, दिल्ली, चित्र संग्रह १४३१.५५

२ गुप्ता, पी० एल०, दि पटना म्यूजियम कैटलाग ऑव दि एन्टिक्विटीज, पटना, १९६५, पृ० ९०

३ दास, एम० पी०, पू०नि०, पृ० ५१–५२

४ कुरैशी, मुहम्मद हमीद, पू०नि०, पृ० २८१

५ जै०क०स्था०, खं० २, पृ० २६७

६ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० ६८–७१

७ कुरैशी, मुहम्मद हमीद, पू०नि०, पृ० २८१

उत्तर भारत में केवल उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश के क्षेत्र में देवगढ़, खजुराहो एवं बिजनौर से सम्भवनाथ की मूर्तियां मिली हैं। दो मूर्तियां (१०वीं–११वीं शती ई०) राज्य संग्रहालय, लखनऊ में भी हैं। लखनऊ संग्रहालय की दोनों मूर्तियों में सम्भव निर्वस्त्र और कायोत्सर्ग में खड़े हैं। इनमें अष्ट-प्रातिहार्य एवं यक्ष-यक्षी नहीं निरूपित हैं। एक मूर्ति (जे ८५५) में धर्मचक्र के दोनों ओर अश्व लांछन उत्कीर्ण है। दूसरी मूर्ति (०·११८) में सम्भव के स्कन्धों पर जटाएं प्रदर्शित हैं।

देवगढ़ में दसवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की ११ मूर्तियां हैं। अश्व लांछन से युक्त सम्भव सभी में कायोत्सर्ग में खड़े हैं। तीन उदाहरणों में यक्ष-यक्षी नहीं उत्कीर्ण हैं। ६ उदाहरणों में द्विभुज यक्ष-यक्षी सामान्य लक्षणों वाले हैं। इनके हाथों में अभयमुद्रा (या गदा) एवं फल (या कलश) प्रदर्शित हैं। मन्दिर १५ की एक मूर्ति (११ वीं शती ई०) में यक्षी द्विभुजा है, पर यक्ष चतुर्भुज है। मन्दिर ३० की एक मूर्ति (१२ वीं शती ई०) में यक्ष-यक्षी दोनों चतुर्भुज हैं। चार मूर्तियों[1] में सम्भव के स्कन्धों पर जटाएं प्रदर्शित हैं। पांच उदाहरणों में परिकर में कलशधारी, मन्दिर १७ की मूर्ति में चार जिन और मन्दिर ३० की मूर्ति में जैन आचार्य की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं।

खजुराहो में ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० की चार मूर्तियां हैं।[2] ११५८ ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति (मन्दिर २७) में एक भी सहायक आकृति नहीं उत्कीर्ण है। अन्य उदाहरणों में सम्भव ध्यानमुद्रा में विराजमान हैं। दो उदाहरणों में द्विभुज यक्ष-यक्षी निरूपित हैं। पुरातात्विक संग्रहालय, खजुराहो की मूर्ति (१७१५, ११वीं शती ई०) में मूलनायक के पार्श्वों में सुपार्श्व की दो खड्गासन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। पार्श्ववर्ती जिनों के समीप दो स्त्री चामरधारिणी भी चित्रित हैं। परिकर में तीन ध्यानस्थ जिनों एवं वेणुवादकों की भी मूर्तियां हैं।

पारसनाथ किले (बिजनौर) से १०१० ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति मिली है।[3] इसके पीठिका लेख में सम्भव का नाम उत्कीर्ण है। सम्भव के पार्श्वों में नेमि एवं चन्द्रप्रभ की कायोत्सर्ग मूर्तियां निरूपित हैं। यक्ष-यक्षी रूप में सर्वानुभूति एवं अम्बिका निरूपित हैं।

(४) अभिनंदन

जीवनवृत्त

अभिनंदन इस अवसर्पिणी के चौथे जिन हैं। अयोध्या के महाराज संवर उनके पिता और सिद्धार्था उनकी माता थीं। अभिनंदन के गर्भ में आने के बाद से सर्वत्र प्रसन्नता छा गई, इसी कारण बालक का नाम अभिनंदन रखा गया। राजपद के उपभोग के बाद अभिनंदन ने दीक्षा ग्रहण की और कठिन तपस्या के बाद अयोध्या में शाल (या पियक) वृक्ष के नीचे कैवल्य प्राप्त किया। इनकी निर्वाण-स्थली भी सम्मेदशिखर है।[4]

मूर्तियां

दसवीं शती ई० से पूर्व की अभिनंदन की एक भी मूर्ति नहीं मिली है। अभिनंदन का लांछन कपि है और यक्ष-यक्षी यक्षेश्वर (या ईश्वर) एवं कालिका (या काली) हैं। दिगंबर परम्परा में यक्षी का नाम वज्रश्रृंखला है। शिल्प में अभिनंदन के पारम्परिक यक्ष-यक्षी का चित्रण नहीं प्राप्त होता।

---

१ मन्दिर ४, ९, २१

२ तिवारी, एम०एन०पी०, 'दि आइकानोग्राफी ऑव दि इमेजेज ऑव सम्भवनाथ ऐट खजुराहो', ज०यु०रि०सो०, खं० ३५, अं० ४, पृ० ३–९

३ बाजपेयी, के० डी०, 'पार्श्वनाथ किले के जैन अवशेष', ब्रह्मचारी अभिनंदन ग्रन्थ, आरा, १९५४, पृ० ३८९

४ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० ७२–७४

अभिनंदन की स्वतन्त्र मूर्तियां केवल देवगढ़, खजुराहो एवं उड़ीसा की नवमुनि, बारभुजी और त्रिशूल गुफाओं में हैं। देवगढ़ से केवल एक मूर्ति (मन्दिर ९, १० वीं शती ई०) मिली है। कायोत्सर्ग में खड़े अभिनन्दन के आसन पर कपि लांछन एवं सिंहासन-छोरों पर सामान्य लक्षणों वाले द्विभुज यक्ष-यक्षी अंकित हैं। यक्ष-यक्षी के करों में अभयमुद्रा और कलश प्रदर्शित हैं। अभिनन्दन के स्कन्धों पर जटाएं प्रदर्शित हैं। खजुराहो से दो मूर्तियां (१० वीं–११ वीं शती ई०) मिली हैं। दोनों में जिन ध्यानमुद्रा में विराजमान हैं। पहली मूर्ति पार्श्वनाथ मन्दिर के गर्भगृह की पश्चिमी भित्ति पर और दूसरी मन्दिर २९ में है। दोनों में कपि लांछन और सामान्य लक्षणों वाले द्विभुज यक्ष-यक्षी अभयमुद्रा और फल (या कलश) के साथ निरूपित हैं। मन्दिर २९ की मूर्ति में चार छोटी जिन मूर्तियां भी उत्कीर्ण हैं। तीन ध्यानस्थ मूर्तियां नवमुनि, बारभुजी एवं त्रिशूल गुफाओं में हैं।[1] दो मूर्तियों में यक्षियां भी आमूर्तित हैं।

(५) सुमतिनाथ

जीवनवृत्त

सुमतिनाथ इस अवसर्पिणी के पांचवें जिन हैं। अयोध्या के शासक मेघ (या मेघप्रभ) उनके पिता और मंगला उनकी माता थीं। मंगला ने गर्भकाल में अपनी सुन्दर मति से जटिलतम समस्याओं का हल प्रस्तुत किया, अतः गर्भस्थ बालक का उसके जन्म के उपरान्त सुमतिनाथ नाम रखा गया। राजपद के उपभोग के बाद सुमति ने दीक्षा ली और २० वर्षों की कठिन तपस्या के बाद अयोध्या के सहस्राम्रवन में प्रियंगु वृक्ष के नीचे केवल-ज्ञान प्राप्त किया। इनकी निर्वाण-स्थली सम्मेद शिखर है।[2]

मूर्तियां

सुमतिनाथ की भी दसवीं शती ई० से पूर्व की एक भी मूर्ति नहीं प्राप्त हुई है। सुमति का लांछन क्रौंच पक्षी, यक्ष तुम्बरु तथा यक्षी महाकाली हैं। दिगंबर परम्परा में यक्षी का नाम नरदत्ता (या पुरुषदत्ता) है। मूर्त अंकनों में सुमति के पारम्परिक यक्ष-यक्षी नहीं निरूपित हुए।

गुजरात-राजस्थान क्षेत्र में आबू और कुम्भारिया से सुमतिनाथ की मूर्तियां मिली हैं। विमलवसही की देव-कुलिका २७ एवं कुम्भारिया के पार्श्वनाथ मन्दिर की देवकुलिका ५ में बारहवीं शती ई० की दो मूर्तियां हैं। दोनों उदाहरणों में मूलनायक की मूर्तियां नष्ट हैं, पर लेखों में सुमतिनाथ का नाम उत्कीर्ण है। विमलवसही की मूर्ति में मूलनायक के पार्श्वों में दो कायोत्सर्ग और दो ध्यानस्थ जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका हैं। कुम्भारिया की मूर्ति में यक्ष-यक्षी नहीं उत्कीर्ण हैं। सिंहासन के मध्य में शान्तिदेवी के स्थान पर दो चामरधरों से सेवित चतुर्भुज महा-काली आमूर्तित है। मूर्ति के तोरण-स्तम्भों पर अप्रतिचक्रा, वज्रांकुशी, वज्रश्रृंखला, वैरोट्या, रोहिणी, मानवी, सर्वास्त्र-महाज्वाला एवं महामानसी महाविद्याओं तथा सरस्वती एवं कुछ अन्य देवियों की मूर्तियां हैं।

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश के क्षेत्र में केवल खजुराहो एवं महोबा (११५८ ई०)[3] से सुमति की मूर्तियां मिली हैं। खजुराहो में दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० की दो ध्यानस्थ मूर्तियां हैं। दोनों उदाहरणों में लांछन और सामान्य लक्षणों वाले द्विभुज यक्ष-यक्षी आमूर्तित हैं। यक्ष-यक्षी के करों में अभयमुद्रा (या पुष्प) एवं फल प्रदर्शित हैं। पार्श्वनाथ मन्दिर के गर्भगृह की उत्तरी भित्ति की मूर्ति में चामरधरों के समीप दो खड्गासन जिन मूर्तियां भी उत्कीर्ण हैं। मन्दिर ३० की दूसरी मूर्ति के परिकर में चार कायोत्सर्ग जिन मूर्तियां हैं।

---

१ कुरैशी, मुहम्मद हमीद, पू०नि०, पृ० २८१ २ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० ७५–७८

३ स्मिथ, वी०ए० तथा ब्लैक, एफ०सी०, 'आब्जरवेशन आन सम चन्देल एन्टिक्विटीज', ज०ए०सो०बं०, खं० ५८, अं० ४, पृ० २८८

उड़ीसा में बारभुजी एवं त्रिशूल गुफाओं में दो ध्यानस्थ मूर्तियां हैं।[1] दोनों उदाहरणों में क्रौंच पक्षी की पहचान निश्चित नहीं है, पर मूर्तियों के पारम्परिक क्रम में उत्कीर्ण होने के आधार पर उनकी सुमति से पहचान की गई है।

(६) पद्मप्रभ

जीवनवृत्त

पद्मप्रभ वर्तमान अवसर्पिणी के छठें जिन हैं। कौशाम्बी के शासक धर (या धरण) इनके पिता और सुसीमा इनकी माता थीं। जैन परम्परा में उल्लेख है कि गर्भकाल में माता को पद्म की शय्या पर सोने की इच्छा हुई थी तथा नवजात बालक के शरीर की प्रभा भी पद्म के समान थी, इसी कारण बालक का नाम पद्मप्रभ रखा गया।[2] राजपद के उपभोग के बाद पद्मप्रभ ने दीक्षा ली और छह माह की तपस्या के बाद कौशाम्बी के सहस्राम्र वन में प्रियंगु (या वट) वृक्ष के नीचे कैवल्य प्राप्त किया। सम्मेद शिखर पर इन्हें निर्वाण प्राप्त हुआ।[3]

मूर्तियां

पद्मप्रभ का लांछन पद्म है और यक्ष-यक्षी कुसुम एवं अच्युता (या श्यामा या मानसी) हैं। दिगंबर परम्परा में यक्षी का नाम मनोवेगा है। मूर्त अंकनों में पद्मप्रभ के पारम्परिक यक्ष-यक्षी कभी निरूपित नहीं हुए। दसवीं शती ई० से पहले की पद्मप्रभ की एक भी मूर्ति नहीं मिली है।

उत्तरप्रदेश–मध्यप्रदेश के क्षेत्र में पद्मप्रभ की मूर्तियां केवल खजुराहो, छतरपुर, देवगढ़, नरवर[4] एवं ग्वालियर से ही मिली हैं। दसवीं शती ई० की एक विशाल पद्मप्रभ मूर्ति खजुराहो के पार्श्वनाथ मन्दिर के मण्डप में सुरक्षित है। पद्मप्रभ ध्यानमुद्रा में विराजमान हैं और उनकी पीठिका पर चतुर्भुज यक्ष-यक्षी एवं कायोत्सर्ग-मुद्रा में दो जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। परिकर में वीणावादन करती सरस्वती की भी दो मूर्तियां हैं। साथ ही कई छोटी जिन मूर्तियां भी उत्कीर्ण हैं। ग्वालियर से मिली मूर्ति (१०वीं-११वीं शती ई०) ध्यानमुद्रा में है और भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता में संगृहीत है।[5] देवगढ़ के मन्दिर १ से मिली मूर्ति कायोत्सर्ग-मुद्रा में और ११ वीं शती ई० की है। १११४ ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति ऊर्बमऊ (म० प्र०) के मन्दिर में है।[6] छतरपुर से मिली कायोत्सर्ग मूर्ति (११४९ ई०) राज्य संग्रहालय, लखनऊ (०·१२२) में है। इसमें मूलनायक के स्कन्धों पर जटाएं भी प्रदर्शित हैं।

कुम्भारिया के पार्श्वनाथ मन्दिर की देवकुलिका ६ की मूर्ति (१२०२ ई०) के लेख में पद्मप्रभ का नाम उत्कीर्ण है। उड़ीसा की बारभुजी एवं त्रिशूल गुफाओं में ध्यानस्थ पद्मप्रभ की दो मूर्तियां हैं। बारभुजी गुफा की मूर्ति में चतुर्भुज यक्षी भी आमूर्तित है।

(७) सुपार्श्वनाथ

जीवनवृत्त

सुपार्श्वनाथ इस अवसर्पिणी के सातवें जिन हैं। वाराणसी के शासक प्रतिष्ठ (या सुप्रतिष्ठ) उनके पिता और पृथ्वी उनकी माता थीं। राजपद के उपभोग के बाद सुपार्श्व ने दीक्षा ली और नौ माह की तपस्या के बाद वाराणसी के सहस्राम्रवन में सिरीष (या प्रियंगु) वृक्ष के नीचे कैवल्य प्राप्त किया। इनकी निर्वाण-स्थली सम्मेद शिखर है।[7]

---

१ मित्रा, देबला, 'शासन देवीज इन दि खण्डगिरि केव्स', ज०ए०सो०, खं० १, अं० २, पृ० १३०; कुरेशी, मुहम्मद हमीद, पू०नि०, पृ० २८१

२ त्रि०श०पु०च० ३·४·३८, ५१

३ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० ७८–८१

४ जै०क०स्था०, खं० ३, पृ० ६०४

५ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० ६२

६ जैन, कामताप्रसाद, 'दि स्टैचू ऑव पद्मप्रभ ऐट ऊर्बमऊ', जा०अहि०, खं० १३, अं० ९, पृ०१९१–९२

७ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० ८२–८४

मूर्तियां

सुपार्श्व का लांछन स्वस्तिक है ।[1] शिल्प में सुपार्श्व का लांछन कुछ उदाहरणों में ही उत्कीर्ण है। मूर्तियों में सुपार्श्व की पहचान मुख्यतः एक, पांच या नौ सर्पफणों के शिरस्त्राण के आधार पर की गई है ।[2] जैन ग्रन्थों में उल्लेख है कि गर्भकाल में सुपार्श्व की माता ने स्वप्न में अपने को एक, पांच और नौ फणों वाले सर्पों की शय्या पर सोते हुए देखा था। वास्तुविद्या के अनुसार सुपार्श्व तीन या पांच सर्पफणों के छत्र से शोभित होंगे ।[3] एक या नौ सर्पफणों के छत्रों वाली सुपार्श्व की स्वतन्त्र मूर्तियां नहीं मिली हैं। पर दिगंबर स्थलों की कुछ जिन मूर्तियों के परिकर में एक या नौ सर्पफणों के छत्रों वाली सुपार्श्व की लघु मूर्तियां अवश्य उत्कीर्ण हैं। स्वतन्त्र मूर्तियों में सुपार्श्व सदैव पांच सर्पफणों के छत्र से युक्त हैं। सर्प की कुण्डलियां सामान्यतः चरणों तक प्रसारित हैं।

सुपार्श्व के यक्ष-यक्षी मातंग और शांता हैं। दिगंबर परम्परा में यक्षी का नाम काली (या कालिका) है। दसवीं शती ई० से पूर्व की सुपार्श्व मूर्ति नहीं मिली है। सुपार्श्व की मूर्तियों में यक्ष-यक्षी का चित्रण ग्यारहवीं शती ई० में प्रारम्भ हुआ। मूर्तियों में पारम्परिक यक्ष-यक्षी का चित्रण अनुपलब्ध है। पर कुछ उदाहरणों में सुपार्श्व से सम्बद्ध करने के उद्देश्य से यक्ष-यक्षी के सिरों पर सर्पफणों के छत्र प्रदर्शित किये गये हैं।

गुजरात-राजस्थान—१०८५ ई० की ध्यानमुद्रा में बनी एक मूर्ति कुम्भारिया के महावीर मन्दिर की देवकुलिका ७ में है। मूलनायक के दोनों ओर दो कायोत्सर्ग और दो ध्यानस्थ जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका हैं। ग्यारहवीं शती ई० की कुछ मूर्तियां ओसिया की देवकुलिकाओं पर भी हैं। कुम्भारिया के नेमिनाथ मन्दिर के गूढ़मण्डप में ११५७ ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति है। इसमें पांच सर्पफणों के छत्र और स्वस्तिक लांछन दोनों उत्कीर्ण हैं, पर पारम्परिक यक्ष-यक्षी के स्थान पर सर्वानुभूति एवं अम्बिका निरूपित हैं। यक्ष-यक्षी के बाद दोनों ओर महाविद्या, रोहिणी और वैरोट्या की चतुर्भुज मूर्तियां हैं। परिकर में सरस्वती, प्रज्ञप्ति, वज्रांकुशी, सर्वास्त्रमहाज्वाला एवं वज्रशृंखला की भी मूर्तियां हैं।

कुम्भारिया के पार्श्वनाथ मन्दिर की देवकुलिका ७ की मूर्ति (१२०२ ई०) में पांच सर्पफणों के छत्र और साथ ही लेख में सुपार्श्व का नाम भी उत्कीर्ण हैं। बारहवीं शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति विमलवसही की देवकुलिका १९ में है। सुपार्श्व के यक्ष-यक्षी के रूप में सर्वानुभूति और पद्मावती निरूपित हैं। पांच सर्पफणों के छत्र एवं स्वस्तिक लांछन से युक्त बारहवीं शती ई० की एक मूर्ति बड़ौदा संग्रहालय में है ।[4] दो मूर्तियां (१२ वीं शती ई०) राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली (एल ५५–११) एवं राजपूताना संग्रहालय, अजमेर (५९) में भी हैं।

विश्लेषण—इस प्रकार स्पष्ट है कि गुजरात एवं राजस्थान से ग्यारहवीं शती ई० के पूर्व की सुपार्श्व मूर्तियां नहीं मिली हैं। इस क्षेत्र में सुपार्श्व के साथ पांच सर्पफणों के छत्र का नियमित चित्रण हुआ है। साथ ही लेखों में सुपार्श्व के नामोल्लेख की परम्परा भी लोकप्रिय थी। कुछ उदाहरणों में स्वस्तिक लांछन भी उत्कीर्ण है। यक्ष-यक्षी सदैव सर्वानुभूति एवं अम्बिका ही हैं। केवल एक मूर्ति में पार्श्वनाथ की यक्षी पद्मावती आमूर्तित है।

---

१ त्रि०श०पु०च० के अनुसार सुपार्श्व जन्म के समय स्वस्तिक चिह्न से युक्त थे। तिलोयपण्णत्ति में सुपार्श्व का लांछन नन्द्यावर्त बताया गया है।

२ एकः पंच नव च फणाः, सुपार्श्वे सप्तमे जिने।
भट्टाचार्य, बी० सी०, दि जैन आइकनोग्राफी, लाहौर, १९३९, पृ० ६०।

३ त्रिपंचफणः सुपार्श्वः पार्श्वः सप्तनवस्तथा। वास्तुविद्या २२.२७

४ शाह, यू० पी०, 'जैन स्कल्पचर्स इन दि बड़ौदा म्यूजियम', बु०ब०म्यू०, खं० १, भाग २, पृ० २९–३०

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश—सुपार्श्व की सर्वाधिक मूर्तियां इसी क्षेत्र में उत्कीर्ण हुईं। पांच सर्पफणों के छत्र से शोभित और कायोत्सर्ग-मुद्रा में खड़े सुपार्श्व की दसवीं शती ई० की एक मूर्ति शहडोल से मिली है।[1] दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० की दो मूर्तियां क्रमशः मथुरा संग्रहालय (बी० २६) एवं ग्यारसपुर के बजरामठ (बी० ११) में हैं। ध्यानमुद्रावाली एक मूर्ति बैजनाथ (कांगड़ा) से मिली है।[2] स्वस्तिक लांछन युक्त मूलनायक के दोनों ओर चन्द्रप्रभ एवं वासुपूज्यकी लांछन युक्त मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। ग्यारहवीं शती ई० की ध्यानमुद्रा में ही एक मूर्ति राज्य संग्रहालय, लखनऊ (जे ९३५) में है जिसके पीठिका-छोरों पर तीन सर्पफणों के छत्र वाले यक्ष-यक्षी निरूपित हैं।

देवगढ़ में ग्यारहवीं शती ई० की पांच मूर्तियां हैं। सभी में पांच सर्पफणों के छत्र से शोभित सुपार्श्व कायोत्सर्ग-मुद्रा में खड़े हैं। स्वस्तिक लांछन केवल मन्दिर १२ की चहारदीवारी की एक मूर्ति में उत्कीर्ण है। इसी चहारदीवारी की एक अन्य मूर्ति में सुपार्श्व जटाओं से युक्त हैं। यक्ष-यक्षी केवल एक ही मूर्ति (मन्दिर ४) में निरूपित हैं। तीन सर्पफणों की छत्रावली से शोभित द्विभुज यक्ष-यक्षी के करों में पुष्प एवं कलश प्रदर्शित हैं। मन्दिर १२ (उत्तरी चहारदीवारी) की एक मूर्ति के परिकर में द्विभुज अम्बिका की दो मूर्तियां हैं। मन्दिर ४ और मन्दिर १२ की उत्तरी चहारदीवारी के दो उदाहरणों में परिकर में चार जिन एवं दो जटधारी आकृतियां उत्कीर्ण हैं।

खजुराहो में बारहवीं शती ई० की दो मूर्तियां (मन्दिर ५ एवं २८) हैं। दोनों में सुपार्श्व पांच सर्पफणों वाले और कायोत्सर्ग-मुद्रा में हैं। दूसरी मूर्ति में पीठिका पर स्वस्तिक लांछन और शान्तिदेवी[3] उत्कीर्ण हैं। बायीं ओर तीन अन्य चतुर्भुज देवियां भी निरूपित हैं। इनकी भुजाओं में कुण्डलित पद्मनाल, पद्म, पद्म एवं फल प्रदर्शित हैं। मन्दिर ५ की मूर्ति में बायीं ओर एक चतुर्भुज देवी आमूर्तित है जिसकी अवशिष्ट वाम भुजाओं में पद्म एवं फल हैं। ऊपर तीन छोटी जिन मूर्तियां भी उत्कीर्ण हैं।

विश्लेषण—उत्तर प्रदेश एवं मध्य प्रदेश की मूर्तियों के अध्ययन से स्पष्ट है कि इस क्षेत्र में पांच सर्पफणों के छत्रों का प्रदर्शन नियमित था। सर्प की कुण्डलियां सामान्यतः घुटनों या चरणों तक प्रसारित हैं। सुपार्श्व अधिकांशतः कायोत्सर्ग-मुद्रा में निरूपित हैं। स्वस्तिक लांछन केवल कुछ ही उदाहरणों में है। यक्ष-यक्षी का चित्रण विशेष लोकप्रिय नहीं था। कुछ मूर्तियों में सुपार्श्व से सम्बन्ध प्रदर्शित करने के उद्देश्य से यक्ष-यक्षी के मस्तकों पर भी सर्पफणों के छत्र प्रदर्शित हैं।

बिहार-उड़ीसा-बंगाल—बिहार एवं बंगाल से सुपार्श्व की मूर्तियां नहीं ज्ञात हैं। उड़ीसा में बारभुजी एवं त्रिशूल गुफाओं में दो मूर्तियां हैं। बारभुजी गुफा की मूर्ति के शीर्षभाग में सर्पफण नहीं प्रदर्शित हैं। पीठिका पर उत्कीर्ण लांछन भी सम्भवतः नन्द्यावर्त है।[4] नीचे यक्षी की मूर्ति उत्कीर्ण है। त्रिशूल गुफा की मूर्ति में भी सर्पफण नहीं प्रदर्शित है। पर स्वस्तिक लांछन बना है।[5]

(८) चन्द्रप्रभ

जीवनवृत्त

चन्द्रप्रभ इस अवसर्पिणी के आठवें जिन हैं। चन्द्रपुरी के शासक महासेन उनके पिता और लक्ष्मणा (या लक्ष्मी देवी) उनकी माता थीं। जैन परम्परा के अनुसार गर्भकाल में माता की चन्द्रपान की इच्छा पूर्ण हुई थी और बालक की

१ अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, चित्र संग्रह ५९.२८

२ वत्स, एम० एस०,'ए नोट आन टू इमेजेज फ्राम बनीपार महाराज ऐण्ड बैजनाथ', आ०स०इं०ऐ०रि०,१९२९–३०, पृ० २२८

३ चतुर्भुज शान्तिदेवी अभयमुद्रा, कुण्डलित पद्मनाल, पुस्तक-पद्म एवं जलपात्र से युक्त हैं। शान्तिदेवी के सिर पर सर्पफण की छत्रावली भी है।

४ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १३१

५ कुरेशी, मुहम्मद हमीद, पू०नि०, पृ० २८१

प्रजा भी चन्द्रमा की तरह थी, इसी कारण बालक का नाम चन्द्रप्रभ रखा गया।[1] राजपद के उपभोग के बाद चन्द्रप्रभ ने दीक्षा ली और तीन माह की तपस्या के बाद चन्द्रपुरी के सहस्राम्र वन में प्रियंगु (या नाग) वृक्ष के नीचे कैवल्य प्राप्त किया। सम्मेद शिखर उनकी निर्वाण-स्थली है।[2]

मूर्तियां

चन्द्रप्रभ का लांछन शशि है और यक्ष-यक्षी विजय (या श्याम) एवं भृकुटि (या ज्वाला) हैं। मूर्तियों में पारम्परिक यक्ष-यक्षी का अंकन नहीं हुआ है। ल० नवीं शती ई० में चन्द्रप्रभ के लांछन और यक्ष-यक्षी का अंकन प्रारम्भ हुआ। चन्द्रप्रभ की प्राचीनतम मूर्ति ल० चौथी शती ई० की है।[3] विदिशा से मिली इस ध्यानस्थ मूर्ति के लेख में चन्द्रप्रभ का नाम है। मूर्ति में लांछन नहीं है, यद्यपि चामरधर, सिंहासन और प्रभामण्डल उत्कीर्ण हैं। इस मूर्ति के बाद और नवीं शती ई० के पूर्व की एक भी मूर्ति नहीं मिली है।

गुजरात-राजस्थान—इस क्षेत्र से केवल दो मूर्तियां मिली हैं जो ध्यानमुद्रा में हैं। ११५२ ई० की पहली मूर्ति राजपूताना संग्रहालय, अजमेर में है।[4] दूसरी मूर्ति (१२०२ ई०) कुम्भारिया के पार्श्वनाथ मन्दिर की देवकुलिका ८ में है। लेख में चन्द्रप्रभ का नाम उत्कीर्ण है।

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश—नवीं शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति कौशाम्बी से मिली है और इलाहाबाद संग्रहालय (२९५) में सुरक्षित है (चित्र १७)।[5] पीठिका पर चन्द्र लांछन और द्विभुज यक्ष-यक्षी उत्कीर्ण हैं। दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० की शशि लांछनयुक्त तीन मूर्तियां राज्य संग्रहालय, लखनऊ में हैं।[6] दो उदाहरणों में चन्द्रप्रभ ध्यानमुद्रा में विराजमान हैं। सिरोनी खुर्द (ललितपुर) की दसवीं शती ई० के तीसरे उदाहरण में जिन कायोत्सर्ग-मुद्रा में (जे ८८१) तथा द्विभुज यक्ष-यक्षी के साथ निरूपित हैं। चन्द्रप्रभ के स्कन्धों पर जटाएं भी प्रदर्शित हैं।

खजुराहो में दो ध्यानस्थ मूर्तियां हैं। पार्श्वनाथ मन्दिर के गर्भगृह की पश्चिमी भित्ति की मूर्ति में द्विभुज यक्ष-यक्षी और दो कायोत्सर्ग जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। मन्दिर ३२ की दूसरी मूर्ति (१२वीं शती ई०) में भी यक्ष-यक्षी आमूर्तित हैं। चामरधरों की दोनों भुजाओं में चामर प्रदर्शित है। परिकर में तीन जिन एवं ६ उड्डीयमान मालाधर चित्रित हैं।

देवगढ़ में दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० की लांछन युक्त नौ चन्द्रप्रभ मूर्तियां हैं (चित्र १५,१६)। छह उदाहरणों में चन्द्रप्रभ ध्यानमुद्रा में आसीन हैं। सात उदाहरणों में यक्ष-यक्षी उत्कीर्ण हैं। चार उदाहरणों[7] में द्विभुज यक्ष-यक्षी सामान्य लक्षणों वाले हैं। मन्दिर १ की मूर्ति (११वीं शती ई०) में द्विभुज यक्ष गोमुख है। स्मरणीय है कि गोमुख ऋषभनाथ के यक्ष हैं। मन्दिर २१ की मूर्ति (११वीं शती ई०) में यक्ष-यक्षी चतुर्भुज हैं। मन्दिर २० की मूर्ति (११वीं शती ई०) में सिंहासन के दोनों छोरों पर चतुर्भुज यक्षी ही आमूर्तित है। परिकर में चार जिन आकृतियां भी उत्कीर्ण हैं। मन्दिर ४ और १२ (प्रदक्षिणा पथ) की मूर्तियों में भी चार छोटी जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। मन्दिर २१ की मूर्ति में चन्द्रप्रभ जटाओं से युक्त हैं। परिकर में आठ जिन आकृतियां भी हैं। मन्दिर १ और १२ (चहारदीवारी) की मूर्तियों में क्रमशः ६ और ४ जिन आकृतियां बनी हैं।

विश्लेषण—ज्ञातव्य है कि चन्द्रप्रभ की सर्वाधिक मूर्तियां उत्तर प्रदेश एवं मध्य प्रदेश में ही उत्कीर्ण हुईं। इस क्षेत्र में शशि लांछन का चित्रण नियमित था। यक्ष-यक्षी का चित्रण भी लोकप्रिय था। कुछ उदाहरणों में अपारम्परिक किन्तु स्वतन्त्र लक्षणोंवाले यक्ष-यक्षी निरूपित हैं।

---

१ त्रि०श०पु०च० ३.६.४९

२ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० ८५–८७

३ अग्रवाल, आर० सी०, 'न्यूली डिस्कवर्ड स्कल्पचर्स फ्राम विदिशा', ज०ओ०इ०, खं० १८, अं० ३, पृ० २५३

४ इण्डियन आर्किअलाजी—ए रिव्यू, १९५७–५८, पृ० ७६

५ चन्द्र, प्रमोद, पू०नि०, पृ० १४२–४३

६ जे ८८०, जे ८८१, जी ११३

७ मन्दिर १, १२, साहू जैन संग्रहालय

बिहार-उड़ीसा-बंगाल—अलुआरा (पटना संग्रहालय १०६९५)[1] एवं सोनगिरि[2] से चन्द्रप्रभ की दो कायोत्सर्ग मूर्तियां (११ वीं शती ई०) मिली हैं। ग्यारहवीं शती ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता में भी है।[3] इसमें पीठिका पर यक्ष-यक्षी और परिकर में २३ छोटी जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। बारभुजी एवं त्रिशूल गुफाओं में भी चन्द्रप्रभ की दो ध्यानस्थ मूर्तियां हैं।[4] बारभुजी गुफा की मूर्ति में द्वादशभुज यक्षी भी आमूर्तित है। कोणार्क (उड़ीसा) के निकटवर्ती ककतपुर से प्राप्त चन्द्रप्रभ की कायोत्सर्ग में खड़ी एक धातु मूर्ति (१२ वीं शती ई०) आशुतोष संग्रहालय, कलकत्ता में है।[5]

(९) सुविधिनाथ या पुष्पदन्त

जीवनवृत्त

सुविधिनाथ (या पुष्पदन्त) इस अवसर्पिणी के नवें जिन हैं। काकन्दी नगर के शासक सुग्रीव उनके पिता और रामादेवी उनकी माता थीं। जैन परम्परा में उल्लेख है कि गर्भकाल में माता सब विधियों में कुशल रहीं, और उन्हें पुष्प का दोहद उत्पन्न हुआ, इसी कारण बालक का नाम क्रमशः सुविधि और पुष्पदन्त रखा गया।[6] श्वेतांबर परम्परा में सुविधि और पुष्पदन्त दोनों नामों के उल्लेख हैं, पर दिगंबर परम्परा में केवल पुष्पदन्त नाम ही प्राप्त होता है। राजपद के उपभोग के बाद सुविधि ने दीक्षा ली और चार माह की तपस्या के बाद काकन्दी के सहस्राम्र वन में मालूर (या माली या अक्ष) वृक्ष के नीचे केवल-ज्ञान प्राप्त किया। सम्मेद शिखर इनकी निर्वाण-स्थली है।[7]

मूर्तियां

सुविधि का लांछन मकर है और यक्ष-यक्षी अजित (या जय) एवं सुतारा (या चण्डालिका) हैं। दिगंबर परम्परा में यक्षी का नाम महाकाली है। मूर्त अंकनों में सुविधि के यक्ष-यक्षी नहीं निरूपित हुए। केवल बारभुजी गुफा की मूर्ति में ही यक्षी निरूपित है।

पुष्पदन्त की प्राचीनतम मूर्ति ल० चौथी शती ई० की है।[8] विदिशा से मिली इस मूर्ति में पुष्पदन्त ध्यानमुद्रा में विराजमान हैं। लेख में पुष्पदन्त का नाम उत्कीर्ण है। भामण्डल और चामरधर भी चित्रित हैं। इस मूर्ति और ग्यारहवीं शती ई० के बीच की कोई मूर्ति ज्ञात नहीं है। मकर लांछन युक्त दो ध्यानस्थ मूर्तियां बारभुजी एवं त्रिशूल गुफाओं में हैं।[9] ११५१ ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति छतरपुर से मिली है।[10] कुम्भारिया के पार्श्वनाथ मन्दिर की देवकुलिका ९ (१२०२ ई०) में भी एक मूर्ति है। इस मूर्ति के लेख में सुविधि का नाम उत्कीर्ण है। परिकर में दो जिन मूर्तियां भी बनी हैं।

(१०) शीतलनाथ

जीवनवृत्त

शीतलनाथ इस अवसर्पिणी के दसवें जिन हैं। भद्दिलपुर के महाराज दृढ़रथ उनके पिता और नन्दादेवी उनकी माता थीं। जैन परम्परा में उल्लेख है कि गर्भकाल में नन्दा देवी के स्पर्श से एक बार दृढ़रथ के शरीर की भयंकर पीड़ा

---

१ प्रसाद, एच० के, पूर्वनि, पृ० २८७

२ आ०स०इं०, खं० १२, अं० ९

३ स्ट०जै०आ०, फलक १६, चित्र ४४

४ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १३१; कुरेशी, मुहम्मद हमीद, पू०नि०, पृ० २८१

५ जै०क०स्था०, खं० २, पृ० २७७

६ त्रि०श०पु०च० ३.७.४९–५०

७ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० ८८–९०

८ अग्रवाल, आर० सी०, पू०नि०, पृ० २५२–५३

९ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १३१; कुरेशी, मुहम्मद हमीद, पू०नि०, पृ० २८१

१० शास्त्री, हीरानन्द, 'सम रिसेन्टली ऐडेड स्कल्पचर्स इन दि प्राविन्शियल म्यूजियम, लखनऊ', ऐ०रि०आ०स०इं०, अं० ११, पृ० १४

शान्त हुई थी, इसी कारण बालक का नाम शीतलनाथ रखा गया।[1] राजपद के उपभोग के बाद उन्होंने दीक्षा ली और तीन माह की तपस्या के बाद सहस्राम्र वन में प्लक्ष (पीपल) वृक्ष के नीचे कैवल्य प्राप्त किया। सम्मेद शिखर इनकी निर्वाण-स्थली है।[2]

मूर्तियां

शीतल का लांछन श्रीवत्स है और यक्ष-यक्षी ब्रह्म (या ब्रह्मा) एवं अशोका (या गोमेधिका) हैं। दिगंबर परम्परा में यक्षी मानवी है। मूर्त अंकनों में यक्ष-यक्षी का चित्रण दुर्लभ है। केवल बारभुजी गुफा की मूर्ति में यक्षी निरूपित है। शीतल की दसवीं शती ई० से पहले की एक भी मूर्ति नहीं मिली है।

बारभुजी गुफा में श्रीवत्स-लांछन-युक्त एक ध्यानस्थ मूर्ति है।[3] दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० की दो मूर्तियां आरंग (म० प्र०) से मिली हैं।[4] त्रिपुरी (जबलपुर) से प्राप्त एक मूर्ति भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता में है।[5] कुम्भारिया के पार्श्वनाथ मन्दिर की देवकुलिका १० में भी एक मूर्ति (१२०२ ई०) है। मूर्ति के लेख में शीतलनाथ का नाम उत्कीर्ण है।

(११) श्रेयांशनाथ

जीवनवृत्त

श्रेयांशनाथ इस अवसर्पिणी के ग्यारहवें जिन हैं। सिंहपुरी के शासक विष्णु उनके पिता और विष्णुदेवी (या वेणुदेवी) उनकी माता थीं। जैन परम्परा के अनुसार बालक के जन्म से राजपरिवार और सम्पूर्ण राष्ट्र का श्रेय-कल्याण हुआ, इसी कारण बालक का नाम श्रेयांश रखा गया।[6] राजपद के उपभोग के बाद सहस्राम्र वन में श्रेयांश ने अशोक वृक्ष के नीचे दीक्षा ली और दो मास की तपस्या के बाद सिंहपुर के उद्यान में तिन्दुक (या पलाश) वृक्ष के नीचे कैवल्य प्राप्त किया। सम्मेद शिखर इनकी निर्वाण-स्थली है।[7]

मूर्तियां

श्रेयांश का लांछन गेंडा (खड्गी) है और यक्ष-यक्षी ईश्वर (या यक्षराज) एवं मानवी हैं। दिगंबर परम्परा में यक्षी गौरी है। मूर्तियों में यक्ष-यक्षी का निरूपण नहीं हुआ है। केवल बारभुजी गुफा की मूर्ति में यक्षी निरूपित है। ग्यारहवीं शती ई० से पहले की श्रेयांश की एक भी मूर्ति नहीं मिली है। ल० ग्यारहवीं शती ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति पक्वीरा (पुरुलिया) से मिली है।[8] दो मूर्तियां बारभुजी एवं त्रिशूल गुफाओं में हैं।[9] एक मूर्ति इन्दौर संग्रहालय में है।[10] लांछन सभी में उत्कीर्ण हैं। कुम्भारिया के पार्श्वनाथ मन्दिर की देवकुलिका ११ में श्रेयांश की मूर्ति का सिंहासन (१२०२ ई०) सुरक्षित है। इसकी पीठिका पर श्रेयांश का नाम उत्कीर्ण है।

(१२) वासुपूज्य

जीवनवृत्त

वासुपूज्य इस अवसर्पिणी के बारहवें जिन हैं। चम्पानगरी के महाराज वसुपूज्य उनके पिता और जया (या विजया) उनकी माता थीं। वसुपूज्य का पुत्र होने के कारण ही इनका नाम वासुपूज्य रखा गया। जैन परम्परा में

---

१ त्रि०श०पु०च० ३.८.४७ २ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० ९१–९३ ३ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १३१

४ जैन, बालचन्द्र, 'महाकोशल का जैन पुरातत्व', अनेकान्त, वर्ष १७, अं० ३, पृ० १३२

५ एण्डरसन, जे०, पू०नि०, पृ० २०६

६ त्रि०श०पु०च० ४.१.८१ ७ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० ९४–९८

८ बनर्जी, ए०, 'टू जैन इमेजेज', ज०बि०उ०रि०सो०, खं० २८, भाग १, पृ० ४४

९ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १३१; कुरैशी, मुहम्मद हमीद, पू०नि०, पृ० २८२

१० दिस्कालकर, डी० बी, दि इन्दौर म्यूजियम, इन्दौर, १९३२, पृ० ५

इनके अविवाहित-रूप में दीक्षा ग्रहण करने का उल्लेख है। इन्होंने राजपद भी नहीं ग्रहण किया था। दीक्षा के बाद एक माह की तपस्या के उपरान्त इन्हें चम्पा के उद्यान में पाटल वृक्ष के नीचे कैवल्य प्राप्त हुआ। चम्पा इनकी निर्वाण-स्थली भी है।

मूर्तियां

वासुपूज्य का लांछन महिष है और यक्ष-यक्षी कुमार एवं चन्द्रा (या चण्डा या अजिता) हैं। दिगंबर परम्परा में यक्षी का नाम गान्धारी है। ल० दसवीं शती ई० में मूर्तियों में वासुपूज्य के साथ लांछन और यक्ष-यक्षी का उत्कीर्णन प्रारम्भ हुआ, किन्तु यक्ष-यक्षी पारम्परिक नहीं थे।

ल० दसवीं शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति शहडोल (म० प्र०) से मिली है (चित्र १७)।[2] इसकी पीठिका पर महिष लांछन और यक्ष-यक्षी, तथा परिकर में २३ छोटी जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। दो मूर्तियां बारभुजी एवं त्रिशूल गुफाओं में हैं।[3] बारभुजी गुफा की मूर्ति में यक्षी भी आमूर्तित है। विमलवसही की देवकुलिका ४१ में ११८८ ई० की एक मूर्ति है जिसके लेख में वासुपूज्य का नाम उत्कीर्ण है। यक्ष-यक्षी के रूप में सर्वानुभूति एवं अम्बिका निरूपित हैं। कुम्भारिया के पार्श्वनाथ मन्दिर की देवकुलिका १२ में भी एक मूर्ति है। इसके १२०२ ई० के लेख में वासुपूज्य का नाम उत्कीर्ण है। मूर्ति में चामरधरों के स्थान पर दो खड्गासन जिन मूर्तियां बनी हैं।

(१३) विमलनाथ

जीवनवृत्त

विमलनाथ इस अवसर्पिणी के तेरहवें जिन हैं। कंपिलपुर के शासक कृतवर्मा उनके पिता और श्यामा उनकी माता थीं। जैन परम्परा के अनुसार गर्भकाल में माता तन-मन से निर्मल बनी रहीं, इसी कारण बालक का नाम विमलनाथ रखा गया।[4] राजपद के उपभोग के बाद विमल ने सहस्राम्रवन में दीक्षा ली और दो वर्षों की तपस्या के बाद कंपिलपुर (सहेतुक वन) के उद्यान में जम्बू वृक्ष के नीचे कैवल्य प्राप्त किया। सम्मेद शिखर इनकी निर्वाण-स्थली है।[5]

मूर्तियां

विमल का लांछन वराह है और यक्ष-यक्षी षण्मुख एवं विदिता (या वैरोटघा) हैं। शिल्प में विमल के पारम्परिक यक्ष-यक्षी कभी नहीं निरूपित हुए। नवीं शती ई० में मूर्तियों में जिन के लांछन और ग्यारहवीं शती ई० में यक्ष-यक्षी का चित्रण प्रारम्भ हुआ।

नवीं शती ई० की एक मूर्ति वाराणसी से मिली है जो सारनाथ संग्रहालय (२३६) में सुरक्षित है (चित्र १८)।[6] विमल कायोत्सर्ग-मुद्रा में साधारण पीठिका पर निर्वस्त्र खड़े हैं। पीठिका पर लांछन उत्कीर्ण है। पार्श्ववर्ती चामरधरों के अतिरिक्त अन्य कोई सहायक आकृति नहीं है। १००९ ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति राज्य संग्रहालय, लखनऊ में है। बटेश्वर (आगरा) से मिली इस मूर्ति में विमल निर्वस्त्र हैं। सिंहासन पर लांछन और सामान्य लक्षणों वाले द्विभुज यक्ष-यक्षी निरूपित हैं। यक्ष-यक्षी के करों में अभयमुद्रा और घट प्रदर्शित हैं। अलुआरा से प्राप्त ल० ग्यारहवीं शती ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति पटना संग्रहालय (१०६७४) में सुरक्षित है।[7] लांछन युक्त दो मूर्तियां बारभुजी एवं त्रिशूल गुफाओं में हैं।[8]

---

१ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० ९९–१०१

२ अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, चित्र संग्रह ५९.३४, १०२.६

३ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १३१; कुरेशी, मुहम्मद हमीद, पू०नि०, पृ० २८१

४ त्रि०श०पु०च० ४.३.४८

५ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० १०३–०४

६ अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, चित्र संग्रह ७.८९

७ प्रसाद, एच०के०, पू०नि०, पृ० २८८

८ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १३१; कुरेशी, मुहम्मद हमीद, पू०नि०, पृ० २८१

पहली मूर्ति में अष्टभुज यक्षी भी आमूर्तित है। विमलवसही की देवकुलिका ५० में एक मूर्ति है जिसके ११८८ ई० के लेख में विमल का नाम है तथा पीठिका के बायें छोर पर यक्षी अम्बिका निरूपित है।

(१४) अनन्तनाथ

जीवनवृत्त

अनन्तनाथ इस अवसर्पिणी के चौदहवें जिन हैं। अयोध्या के महाराज सिंहसेन उनके पिता और सुयशा (या सर्वयशा) उनकी माता थीं। जैन परम्परा में उल्लेख है कि अनन्त के गर्भकाल में पिता ने भयंकर शत्रुओं पर विजय प्राप्त की थी, इसी कारण बालक का नाम अनन्त रखा गया।[1] राजपद के उपभोग के बाद अनन्त ने प्रव्रज्या ग्रहण की और तीन वर्षों की तपस्या के बाद अयोध्या के सहस्राम्र वन में अशोक (या पीपल) वृक्ष के नीचे केवल-ज्ञान प्राप्त किया। सम्मेद शिखर इनकी निर्वाण-स्थली है।[2]

मूर्तियां

श्वेतांबर परम्परा में अनन्त का लांछन श्येन पक्षी और दिगंबर परम्परा में रीछ बताया गया है।[3] अनन्त के यक्ष-यक्षी पाताल एवं अंकुशा (या अनन्तमती) हैं। दिगंबर परम्परा में यक्षी का नाम अनन्तमति है। मूर्तियों में पारम्परिक यक्ष-यक्षी का चित्रण नहीं हुआ है। अनन्त की भी ग्यारहवीं शती ई० से पूर्व की कोई मूर्ति नहीं मिली है। ध्यानस्थ अनन्त की एक मूर्ति बारभुजी गुफा में है।[4] मूर्ति के नीचे अष्टभुज यक्षी भी निरूपित है। एक ध्यानस्थ मूर्ति (१२ वीं शती ई०) विमलवसही की देवकुलिका ३३ में है जिसमें यक्ष-यक्षी रूप में सर्वानुभूति एवं अम्बिका निरूपित हैं।

(१५) धर्मनाथ

जीवनवृत्त

धर्मनाथ इस अवसर्पिणी के पन्द्रहवें जिन हैं। रत्नपुर के महाराज भानु उनके पिता और सुव्रता उनकी माता थीं। जैन परम्परा के अनुसार गर्भकाल में माता को धर्मसाधन का दोहद उत्पन्न हुआ, इसी कारण बालक का नाम धर्मनाथ रखा गया। राजपद के उपभोग के बाद धर्म ने दीक्षा ग्रहण की और दो वर्षों की तपस्या के बाद रत्नपुर के उद्यान में दधिपर्ण वृक्ष के नीचे उन्होंने केवल-ज्ञान प्राप्त किया। सम्मेद शिखर इनकी निर्वाण-स्थली है।[5]

मूर्तियां

धर्मनाथ का लांछन वज्र है और यक्ष-यक्षी किन्नर एवं कन्दर्पा (या मानसी) हैं। मूर्त अंकनों में यक्ष-यक्षी का अंकन नहीं हुआ है। केवल बारभुजी गुफा की मूर्ति में नीचे यक्षी भी आमूर्तित है। ग्यारहवीं शती ई० से पहले की धर्मनाथ की कोई मूर्ति नहीं मिली है। वज्र-लांछन-युक्त दो ध्यानस्थ मूर्तियां बारभुजी एवं त्रिशूल गुफाओं में हैं।[6] बारहवीं शती ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति इन्दौर संग्रहालय में है।[7] विमलवसही की देवकुलिका १ की मूर्ति (१२वीं शती ई०) के लेख में धर्मनाथ का नाम उत्कीर्ण है। मूर्ति में यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका हैं।

---

१ त्रि०श०पु०च० ४.४.४७
२ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० १०५–०७
३ भट्टाचार्य, बी० सी०, पू०नि०, पृ० ७०
४ मित्रा, देवला, पू०नि०, पृ० १३१
५ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० १०८–१३
६ मित्रा, देवला, पू०नि०, पृ० १३२; कुरैशी, मुहम्मद हमीद, पू०नि०, पृ० २८१
७ दिस्कालकर, डी० बी०,पू०नि०, पृ० ५

(१६) शान्तिनाथ

जीवनवृत्त

शान्तिनाथ इस अवसर्पिणी के सोलहवें जिन हैं। हस्तिनापुर के शासक विश्वसेन उनके पिता और अचिरा उनकी माता थीं। जैन परम्परा में उल्लेख है कि शान्तिनाथ के गर्भ में आने के पूर्व हस्तिनापुर नगर में महामारी का रोग फैला था, पर इनके गर्भ में आते ही महामारी का प्रकोप शान्त हो गया। इसी कारण बालक का नाम शान्तिनाथ रखा गया। शान्ति ने २५ हजार वर्षों तक चक्रवर्ती पद से सम्पूर्ण भारत पर शासन किया और उसके बाद दीक्षा ली। एक वर्ष की कठोर तपस्या के बाद शान्ति को हस्तिनापुर के सहस्राम्र उद्यान में नन्दिवृक्ष के नीचे कैवल्य प्राप्त हुआ। सम्मेद शिखर इनकी निर्वाण-स्थली है।[1]

मूर्तियां

शान्ति का लांछन मृग है और यक्ष-यक्षी गरुड (या वाराह) एवं निर्वाणी (या धारिणी) हैं। दिगंबर परम्परा में यक्षी का नाम महामानसी है। मूर्तियों में शान्ति के पारम्परिक यक्ष-यक्षी का अंकन नहीं हुआ है। ल० सातवीं शती ई० से पूर्व की कोई शान्ति मूर्ति नहीं मिली है। शान्ति की मूर्तियों में ल० आठवीं शती ई० में लांछन और यक्ष-यक्षी का निरूपण प्रारम्भ हुआ।

गुजरात-राजस्थान—ल० सातवीं शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति खेड्ब्रह्मा से मिली है।[2] इसमें यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका हैं। सिंहासन पर धर्मचक्र के दोनों ओर दो मृग उत्कीर्ण हैं जिन्हें यू० पी० शाह ने जिन के लांछन (मृग) का सूचक माना है।[3] सातवीं शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति धांक गुफा में भी है।[4] इसमें सिंहासन के मध्य में मृग लांछन और परिकर में त्रिछत्र एवं चामरधर सेवक आमूर्तित हैं।

कुम्भारिया के शान्तिनाथ मन्दिर की देवकुलिका १ में ग्यारहवीं शती ई० की एक मूर्ति है। मूर्ति के लेख में शान्तिनाथ का नाम उत्कीर्ण है। यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका हैं। मूलनायक के दोनों ओर सुपार्श्व एवं पार्श्व की कायोत्सर्ग मूर्तियां हैं। परिकर में २४ छोटी जिन आकृतियां भी हैं। कुम्भारिया के पार्श्वनाथ मन्दिर के गूढ़मण्डप में ११११–२० ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति है (चित्र २०)। पीठिका पर मृग लांछन और लेख में शान्तिनाथ का नाम है। यक्ष-यक्षी नहीं उत्कीर्ण हैं। परिकर में आठ चतुर्भुज देवियां निरूपित हैं। इनमें वज्रांकुशी, मानवी, सर्वास्त्रमहाज्वाला, वज्रश्रृंखला एवं महामानसी महाविद्याओं और शान्तिदेवी की पहचान सम्भव है। ११३८ ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति राजपूताना संग्रहालय, अजमेर (४६८) में है। लेख में शान्तिनाथ का नाम उत्कीर्ण है। ११६८ ई० की चाहमान काल की एक मनोज्ञ कांस्य मूर्ति विक्टोरिया ऐण्ड अलबर्ट संग्रहालय, लन्दन में है।[5] यहां शान्ति अलंकृत आसन पर ध्यानमुद्रा में बैठे हैं।

---

१ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० ११४–१८

२ शाह, यू० पी०, 'ऐन ओल्ड जैन इमेज फ्राम खेड्ब्रह्मा (नार्थ गुजरात)', ज०ओ०इं०, खं० १०, अं० १, पृ० ६१–६३

३ यह पहचान तर्कसंगत नहीं है क्योंकि धर्मचक्र के दोनों ओर दो मृगों का उत्कीर्णन गुजरात एवं राजस्थान के श्वेतांबर जिन मूर्तियों की एक सामान्य विशेषता थी। अतः यहां मृगों को लांछन का सूचक मानना उचित नहीं होगा।

४ संकलिया, एच० डी०, 'दि अर्लिएस्ट जैन स्कल्पचर्स इन काठियावाड़', ज०रा०ए०सो०, जुलाई १९३८, पृ० ४२८–२९; स्ट०जै०आ०, पृ० १७

५ जै०क०स्था०, खं० ३, पृ० ५६०–६१

विमलवसही की देवकुलिकाओं (१२, २४, ३०) में बारहवीं शती ई० की तीन मूर्तियां हैं। सभी के लेखों में शान्तिनाथ का नाम है। सभी उदाहरणों में यक्ष-यक्षी के रूप में सर्वानुभूति एवं अम्बिका निरूपित हैं। लूणवसही की देवकुलिका १४ की मूर्ति (१२३६ ई०) में भी सर्वानुभूति एवं अम्बिका का ही अंकन है। शान्तिनाथ की एक चौबीसी (१५१० ई०) भारत कला भवन, वाराणसी (२१७३३) में है (चित्र २१)।

विश्लेषण—इस प्रकार स्पष्ट है कि कुछ उदाहरणों (कुम्भारिया, धांक) के अतिरिक्त इस क्षेत्र में लांछन नहीं उत्कीर्ण किया गया है। पर पीठिका-लेखों में शान्ति का नाम उत्कीर्ण है। यक्ष-यक्षी सभी उदाहरणों में सर्वानुभूति एवं अम्बिका ही हैं।

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश—ल० आठवीं शतीई० की ध्यानमुद्रा में एक मूर्ति मथुरा से मिली है जो सम्प्रति पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा (बी ७५) में है। इसमें धर्मचक्र के दोनों ओर मृग लांछन की दो आकृतियां उत्कीर्ण हैं। यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका हैं। परिकर में ग्रहों की भी आठ मूर्तियां बनी हैं। इनमें केतु नहीं है। कौशाम्बी से मिली ल०नवीं शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति इलाहाबाद संग्रहालय (५३५) में है।[1] इसमें धर्मचक्र के दोनों ओर मृग लांछन उत्कीर्ण है। यक्ष-यक्षी नहीं बने हैं। दसवीं शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति (एम ५४) ग्यारसपुर के मालादेवी मन्दिर के मण्डप की दक्षिणी रथिका में सुरक्षित है। इसकी पीठिका पर मृग लांछन और चतुर्भुज यक्ष-यक्षी, तथा परिकर में चार जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। ल० दसवीं शती ई० की शान्तिनाथ की एक कायोत्सर्ग मूर्ति बुदही (ललितपुर) से मिली है।[2] इसमें जिन निर्वस्त्र हैं और उनका मृग लांछन धर्मचक्र के दोनों ओर उत्कीर्ण है।

देवगढ़ में नवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की मृग-लांछन-युक्त ६ मूर्तियां हैं।[3] पांच उदाहरणों में शान्ति कायोत्सर्ग में निर्वस्त्र खड़े हैं। मन्दिर १२ के गर्भगृह की नवीं शती ई० की विशाल मूर्ति के अतिरिक्त अन्य सभी उदाहरणों में यक्ष-यक्षी निरूपित हैं। तीन उदाहरणों[4] में द्विभुज यक्ष-यक्षी सामान्य लक्षणों वाले हैं। मन्दिर १२ की पश्चिमी चहारदीवारी की दो मूर्तियों में यक्षी चतुर्भुजा है पर यक्ष केवल एक में ही चतुर्भुज है। मन्दिर १२ (प्रदक्षिणापथ) एवं मन्दिर ४ की दो मूर्तियों (११वीं शती ई०) में शान्ति के स्कन्धों पर जटाएं भी प्रदर्शित हैं। मन्दिर १२ (गर्भगृह) एवं साहू जैन संग्रहालय की मूर्तियों में नवग्रहों की भी मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। साहू जैन संग्रहालय की मूर्ति में ग्रहों की मूर्तियां ध्यानमुद्रा में बनी हैं। यहां केतु स्त्री-रूप में निरूपित है। मन्दिर ११ की पश्चिमी चहारदीवारी की मूर्ति के परिकर में चार छोटी जिन आकृतियां एवं चार उड्डीयमान मालाधर आमूर्तित हैं। मन्दिर ४ की मूर्ति के परिकर में चार जिन एवं दो घटधारी आकृतियां बनी हैं। मन्दिर १२ की पश्चिमी चहारदीवारी की एक अन्य मूर्ति के परिकर में दस और प्रदक्षिणापथ की मूर्ति में दो जिन आकृतियां उत्कीर्ण हैं।

खजुराहो में ग्यारहवीं-बारहवीं शतीई० की मृग-लांछन-युक्त चार मूर्तियां हैं। दो उदाहरणों में शान्ति कायोत्सर्ग में खड़े हैं। स्थानीय संग्रहालय की एक मूर्ति (के ३९) में चामरधरों के स्थान पर दो कायोत्सर्ग जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। मन्दिर १ की विशाल कायोत्सर्ग मूर्ति (१०२८ ई०) में चामरधरों के समीप पार्श्वनाथ की दो कायोत्सर्ग मूर्तियां हैं। परिकर में २४ छोटी जिन मूर्तियां भी बनी हैं। सिंहासन-छोरों पर चतुर्भुज यक्ष-यक्षी हैं। स्थानीय संग्रहालय की एक ध्यानस्थ मूर्ति (के ६३) में स्कन्धों पर जटाएं भी प्रदर्शित हैं। पीठिका-छोरों पर द्विभुज यक्ष-यक्षी एवं परिकर में छह जिन आकृतियां उत्कीर्ण हैं। स्थानीय संग्रहालय की एक मूर्ति (के ३९) में यक्ष-यक्षी नहीं हैं, पर पार्श्वों में दो जिन मूर्तियां बनी

---

१ चन्द्र, प्रमोद, पू०नि०, पृ० १४३

२ बुन, क्लाज, 'जैन तीर्थंज इन मध्यदेश : बुदही', जैन युग, वर्ष १, नवम्बर १९५८, पृ० ३२–३३

३ मन्दिर ८ के अर्धमण्डप में शान्ति की मूर्ति का एक सिंहासन भी सुरक्षित है। इसमें यक्ष चतुर्भुज है और यक्षी के रूप में द्विभुज अम्बिका निरूपित है। यक्ष के करों में गदा, परशु, पद्म एवं फल हैं।

४ साहू जैन संग्रहालय, मन्दिर १२ (प्रदक्षिणापथ), मन्दिर ४

है। कार्डिन संग्रहालय की एक मूर्ति में द्विभुज यक्ष सर्वानुभूति है, पर यक्षी की पहचान सम्भव नहीं है। परिकर में चार जिन मूर्तियां भी बनी हैं।

पभोसा की मृग-लांछन-युक्त एक ध्यानस्थ मूर्ति (११ वीं शती ई०) इलाहाबाद संग्रहालय (५३३) में है (चित्र १९)।[1] मूर्ति में यक्ष-यक्षी रूप में सर्वानुभूति एवं अम्बिका निरूपित हैं। पार्श्ववर्ती चामरधरों के स्थान पर दो कायोत्सर्ग जिन मूर्तियां बनी हैं। परिकर में दो छोटी जिन मूर्तियां भी उत्कीर्ण हैं। सामान्य मालाधर युगलों के अतिरिक्त ६ अन्य मालाधर भी चित्रित हैं। पपावली एवं अहाड़ (११८० ई०) से दो कायोत्सर्ग मूर्तियां मिली हैं। एक मूर्ति (११४६ ई०) धुबेला संग्रहालय में भी है। यहां लेख में शान्ति का नाम उत्कीर्ण है।[2] ११७९ ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति बजरंगगढ़ (गुना) से मिली है।[3] इसकी पीठिका पर यक्ष-यक्षी भी निरूपित हैं। १०५३ ई० एवं ११४७ ई० की दो कायोत्सर्ग मूर्तियां मदनपुर से प्राप्त हुई हैं।[4]

विश्लेषण—उत्तर प्रदेश एवं मध्य प्रदेश से प्राप्त मूर्तियों में शान्तिनाथ अधिकांशतः कायोत्सर्ग-मुद्रा में खड़े हैं। इस क्षेत्र की जिन मूर्तियों में मृग लांछन का नियमित अंकन हुआ है। कुछ उदाहरणों में लेख में भी शान्ति का नाम उत्कीर्ण है। इस क्षेत्र में धर्मचक्र के दोनों ओर मृग लांछन के चित्रण की परम्परा विशेष लोकप्रिय थी। यक्ष-यक्षी अधिकांशतः सर्वानुभूति एवं अम्बिका, तथा शेष में सामान्य लक्षणों वाले हैं। कुछ उदाहरणों में शान्ति के साथ जटाएं भी प्रदर्शित हैं।

बिहार-उड़ीसा-बंगाल—ल० नवीं शती ई० की मृग-लांछन-युक्त एक मूर्ति राजपारा (मिदनापुर) से मिली है।[5] चरंपा से मिली ल० दसवीं शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति उड़ीसा राज्य संग्रहालय, भुवनेश्वर में सुरक्षित है।[6] पीठिका पर यक्ष-यक्षी आमूर्तित हैं। पक्बीरा (पुरुलिया) से ग्यारहवीं शती ई० की मृग-लांछन-युक्त एक कायोत्सर्ग मूर्ति मिली है।[7] परिकर में अजमुख नैगमेषी एवं अंजलि-मुद्रा में चार स्त्रियां आमूर्तित हैं। सिंहासन के नीचे कलश और शिवलिंग बने हैं। परिकर की नवग्रहों की मूर्तियां खण्डित हैं। छितगिरि (अम्बिकानगर) के मन्दिर में भी शान्ति की एक कायोत्सर्ग मूर्ति है। परिकर में चार छोटी जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। उखेनी (बर्दवान), अलुआरा एवं मानभूम से भी शान्ति की ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० की कायोत्सर्ग मूर्तियां मिली हैं।[8] दो ध्यानस्थ मूर्तियां बारभुजी एवं त्रिशूल गुफाओं में हैं।[9] बारभुजी गुफा की मूर्ति में यक्षी भी निरूपित है।

विश्लेषण—अध्ययन से स्पष्ट है कि बिहार, उड़ीसा एवं बंगाल की मूर्तियों में भी शान्ति अधिकांशतः कायोत्सर्ग में ही निरूपित हैं। मृग लांछन का चित्रण नियमित था, पर यक्ष-यक्षी का अंकन लोकप्रिय नहीं था।

---

१ चन्द्र, प्रमोद, पू०नि०, पृ० १५८
२ जैन, बालचन्द्र, 'धुबेला संग्रहालय के जैन मूर्ति लेख', अनेकान्त, वर्ष १९, अं० ४, पृ० २४४–४५
३ जैन, नीरज, 'बजरंगगढ़ का विशद जिनालय', अनेकान्त, वर्ष १८, अं० २, पृ० ६५–६६
४ कोठिया, दरबारीलाल, 'हमारा प्राचीन विस्मृत वैभव', अनेकान्त, वर्ष १४, अगस्त १९५६, पृ० ३१
५ गुप्ता, पी०सी० दास, 'आर्किअलाजिकल डिस्कवरी इन वेस्ट बंगाल', बुलेटिन ऑव दि डाइरेक्टरेट ऑव आर्किअलाजी, वेस्ट बंगाल, अं० १, १९६३, पृ० १२
६ दश, एम०पी०, पू०नि०, पृ० ५२
७ दे, सुधीन, 'ट्व यूनीक इनस्क्राइब्ड जैन स्कल्पचर्स', जैन जर्नल, खं० ५, अं० १, पृ० २४–२६
८ गुप्ता, पी०एल०, पू०नि०, पृ० ९०; एण्डरसन, जे०, पू०नि०, पृ० २०१–०२
९ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १३२; कुरैशी, मुहम्मद हमीद, पू०नि०, पृ० २८१

जीवनदृश्य

शान्ति के जीवनदृश्यों के चित्रण कुम्भारिया के शान्तिनाथ एवं महावीर मन्दिरों (११वीं शती ई०) तथा विमलवसही की देवकुलिका १२ (१२वीं शती ई०) के वितानों पर मिलते हैं।[1]

कुम्भारिया के शान्तिनाथ मन्दिर की पश्चिमी भ्रमिका के दूसरे वितान पर शान्ति के जीवनदृश्य हैं। शान्ति के पूर्वजन्म की एक कथा के चित्रण के आधार पर ही सम्पूर्ण दृश्यावली की पहचान की गई है। त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र में उल्लेख है कि पूर्वभव में शान्ति मेघरथ महाराज थे।[2] एक बार ईशानेन्द्र देवसभा में मेघरथ के धर्माचरणों की प्रशंसा कर रहे थे। इस पर सुरूप नाम के एक देवता ने मेघरथ की परीक्षा लेने का निश्चय किया। पृथ्वी पर आते समय सुरूप ने एक बाज और कपोत को लड़ते हुए देखा। परीक्षा लेने के उद्देश्य से सुरूप कपोत के शरीर में प्रविष्ट हो गया। कपोत रक्षा के लिए आर्तनाद करता हुआ मेघरथ की गोद में आ गिरा। मेघरथ ने उसे प्राण रक्षा का वचन दिया। कुछ देर बाद बाज भी वहां पहुंचा और उसने मेघरथ से कहा कि वह क्षुधा से व्याकुल है, इसलिए उसके आहार (कपोत) को वे लौटा दें। पर मेघरथ ने बाज से कपोत के स्थान पर कुछ और ग्रहण करने को कहा। इस पर बाज ने कहा कि यदि उसे कपोत के भार के बराबर मनुष्य का मांस मिल जाय तो उससे वह अपनी क्षुधा शान्त कर लेगा। मेघरथ ने तत्क्षण एक तराजू मंगवाया और अपने शरीर से मांस काट कर उस पर रखने लगे। पर कपोत के भीतर के देवता ने धीरे-धीरे अपना भार बढ़ाना प्रारम्भ कर दिया। अन्त में मेघरथ स्वयं तराजू पर बैठ गये। इस प्रकार मेघरथ को किसी भी प्रकार धर्म से च्युत होते न देखकर सुरूप देव ने अन्त में अपने को प्रकट किया और मेघरथ को आशीर्वाद दिया।

शान्तिनाथ मन्दिर के दृश्य तीन आयतों में विभक्त हैं। बाहर से प्रथम आयत में पश्चिम की ओर सैनिकों एवं संगीतज्ञों से वेष्टित मेघरथ एक ऊंचे आसन पर विराजमान हैं। आगे एक तराजू बनी है जिस पर एक ओर कपोत और दूसरी ओर मेघरथ बैठे हैं। दक्षिण की ओर मेघरथ जैन आचार्यों के उपदेशों का श्रवण कर रहे हैं। पूर्व की ओर सम्भवतः मेघरथ की कायोत्सर्ग में तपस्यारत मूर्ति है। आगे वार्तालाप की मुद्रा में शान्ति के माता-पिता की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। समीप ही माता की विश्रामरत मूर्ति एवं १४ शुभ स्वप्न भी अंकित हैं। दूसरे आयत में पूर्व की ओर शान्ति की माता शिशु के साथ लेटी हैं। आगे नैगमेषी द्वारा शिशु को मेरु पर्वत पर ले जाने का दृश्य है। दक्षिण की ओर इन्द्र की गोद में बैठे शिशु (शान्ति) के जन्म-अभिषेक का दृश्य उत्कीर्ण है। इन्द्र के पार्श्वों में चामरधर एवं कलशधारी सेवक चित्रित हैं। तीसरे आयत में चक्रवर्ती पद के कुछ लक्षण, यथा नवनिधि के सूचक नौ घट, खड्ग, छत्र, चक्र आदि उत्कीर्ण हैं। आगे कई आकृतियां हैं जिनके समीप चक्रवर्ती शान्ति ऊंचे आसन पर विराजमान हैं। समीप की आकृतियां सम्भवतः अधीनस्थ शासकों की सूचक हैं। दाहिनी ओर शान्ति का समवसरण उत्कीर्ण है जिसमें ऊपर की ओर शान्ति की ध्यानस्थ मूर्ति है।

कुम्भारिया के महावीर मन्दिर की पश्चिमी भ्रमिका के ५वें वितान पर भी शान्ति के जीवनदृश्य अंकित हैं (चित्र २२ दक्षिणार्ध)। सम्पूर्ण दृश्यावली तीन आयतों में विभक्त है। बाहर से प्रथम आयत में दक्षिण की ओर शान्ति के माता-पिता की वार्तालाप में संलग्न आकृतियां हैं। पश्चिम की ओर (बायें से) शान्ति की माता शय्या पर लेटी हैं। आगे १४ मांगलिक स्वप्न और नवजात शिशु के साथ माता की विश्रामरत मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। समीप ही सेविकाओं एवं नैगमेषी की भी मूर्तियां हैं। नीचे 'श्री अचिरादेवी-प्रसूतिगृह-शान्तिनाथ' उत्कीर्ण है। उत्तर-पूर्व के कोने पर शान्ति के जन्माभिषेक का दृश्य है, जिसमें एक शिशु इन्द्र की गोद में बैठा अंकित है। इन्द्र के दोनों पार्श्वों में कलशधारी आकृतियां खड़ी हैं। आगे चक्रवर्ती शान्ति एक ऊंचे आसन पर विराजमान हैं। नीचे 'शान्तिनाथ-चक्रवर्ती-पद' लिखा है। दक्षिणी-पूर्वी कोने पर शान्ति की गज और अश्व पर आरूढ़ कई मूर्तियां हैं जिनके नीचे शान्तिनाथ का नाम भी उत्कीर्ण है। ये आकृतियां

---

१ लूणवसही की देवकुलिका १४ की शान्तिनाथ मूर्ति के आधार पर वितान के दृश्यों की भी सम्भावित पहचान शान्ति से की गई है : जयन्तविजय, मुनिश्री, होली आबू, भावनगर, १९५४, पृ० १२२–२३

२ त्रि०श०पु०च०, खं० ३, गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज १०८, बड़ौदा, १९४९, पृ० २९१–९३

सम्भवतः चक्रवर्ती पद प्राप्त करने के पूर्व विभिन्न युद्धों के लिए प्रस्थान करते हुए शान्ति के अंकन हैं। उत्तर की ओर शान्ति की दीक्षा का दृश्य है। ध्यानमुद्रा में विराजमान शान्ति केशों का लुंचन कर रहे हैं। दाहिनी ओर इन्द्र शान्ति के लुंचित केशों को एक पात्र में संचित कर रहे हैं। आगे शान्ति की कायोत्सर्ग में खड़ी एवं ध्यानमुद्रा में आसीन मूर्तियां हैं। ये मूर्तियां उनकी तपस्या और कैवल्य प्राप्ति को प्रदर्शित करती हैं। उत्तर की ओर शान्ति का समवसरण बना है जिसके ऊपर शान्ति की ध्यानस्थ मूर्ति है।

विमलवसही की देवकुलिका १२ के वितान पर शान्ति के पंचकल्याणकों के चित्रण हैं। विवरण की दृष्टि से विमलवसही के चित्रण कुम्भारिया के शान्तिनाथ मन्दिर के समान हैं। तुला में एक ओर कपोत और दूसरी ओर मेघरथ की आकृतियां हैं। दीक्षा-कल्याणक के दृश्य में शान्ति को शिविका में बैठकर दीक्षास्थल की ओर जाते हुए दिखाया गया है। शान्ति के केश लुंचन और इन्द्र द्वारा उन्हें संचित करने के भी दृश्य उत्कीर्ण हैं। आगे शान्ति की दो कायोत्सर्ग मूर्तियां हैं जो उनकी तपस्या और कैवल्य प्राप्ति की सूचक हैं। मध्य में शान्ति का समवसरण भी बना है।

(१७) कुंथुनाथ

जीवनवृत्त

कुंथुनाथ इस अवसर्पिणी के सत्रहवें जिन हैं। हस्तिनापुर के शासक वसु (या सूर्यसेन) उनके पिता और श्रीदेवी उनकी माता थीं। जैन परम्परा के अनुसार गर्भकाल में माता ने कुंथु नाम के रत्नों की राशि देखी थी, इसी कारण बालक का नाम कुंथुनाथ रखा गया। चक्रवर्ती शासक के रूप में काफी समय तक शासन करने के बाद कुंथु ने दीक्षा ली और १६ वर्षों की तपस्या के बाद गजपुरम् के उद्यान में तिलक वृक्ष के नीचे केवल-ज्ञान प्राप्त किया। इनकी निर्वाण-स्थली सम्मेद शिखर है।[1]

मूर्तियां

कुंथु का लांछन छाग (या बकरा) है और उनके यक्ष-यक्षी गन्धर्व एवं बला (या अच्युता या गान्धारिणी) हैं। दिगंबर परम्परा में यक्षी का नाम जया (या जयदेवी) है। मूर्त अंकनों में कुंथु के पारम्परिक यक्ष-यक्षी का चित्रण नहीं हुआ है। ग्यारहवीं शती ई० के पहले की कुंथु की कोई स्वतन्त्र मूर्ति नहीं मिली है। ग्यारहवीं शती ई० की मूर्तियों में कुंथु के लांछन और बारहवीं शती ई० की मूर्तियों में यक्ष-यक्षी उत्कीर्ण हुए।

ल० ग्यारहवीं शती ई० की लांछन युक्त ६ मूर्तियां अलुअर से मिली हैं और सम्प्रति पटना संग्रहालय (१०६७५, १०६८९ से १०६९३) में संकलित हैं।[2] सभी उदाहरणों में कुंथु कायोत्सर्ग-मुद्रा में निर्वस्त्र खड़े हैं। तीन उदाहरणों में पीठिका पर ग्रहों की मूर्तियां भी उत्कीर्ण हैं। दो ध्यानस्थ मूर्तियां बारभुजी एवं त्रिशूल गुफाओं में हैं।[3] बारभुजी गुफा की मूर्ति में दशभुज यक्षी भी निरूपित है। बारहवीं शती ई० की एक विशाल कायोत्सर्ग मूर्ति बजरंगगढ़ (गुना) से मिली है।[4] ११४४ ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति राजपूताना संग्रहालय, अजमेर में है। इसमें कुंथु निर्वस्त्र हैं। पीठिका लेख में उनका नाम भी उत्कीर्ण है। यक्ष-यक्षी भी जो सर्वानुभूति एवं अम्बिका हैं, सिंहासन के छोरों पर न होकर चामरधरों के समीप खड़े हैं। विमलवसही की देवकुलिका ३५ में ११८८ ई० की एक मूर्ति है। मूर्ति-लेख में कुंथुनाथ का नाम उत्कीर्ण है। यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका हैं।

---

१ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० ११९–२१

२ प्रसाद, एच० के, पू०नि०, पृ० २८६–८७

३ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १३२; कुरेशी, मुहम्मद हमीद, पू०नि०, पृ० २८१

४ जैन, नीरज, 'बजरंगगढ़ का विशद जिनालय', अनेकान्त, वर्ष १८, अं० २, पृ० ६५–६६

(१८) अरनाथ

जीवनवृत्त

अरनाथ इस अवसर्पिणी के अठारहवें जिन हैं। हस्तिनापुर के शासक सुदर्शन उनके पिता और महादेवी (या मित्रा) उनकी माता थीं। गर्भकाल में माता ने रत्नमय चक्र के अर को देखा था, इसी कारण बालक का नाम अरनाथ रखा गया। चक्रवर्ती शासक के रूप में काफी समय तक राज्य करने के पश्चात् अर ने दीक्षा ली और तीन वर्षों की तपस्या के बाद गजपुरम् के सहस्राम्रवन में आम्र वृक्ष के नीचे कैवल्य प्राप्त किया। सम्मेद शिखर इनकी भी निर्वाण-स्थली है।[1]

मूर्तियां

श्वेतांबर परम्परा में अर का लांछन नन्द्यावर्त है, और दिगंबर परम्परा में मत्स्य। उनके यक्ष-यक्षी यक्षेन्द्र (या यक्षेश या खेन्द्र) और धारिणी (या काली) हैं। दिगंबर परम्परा में यक्षी तारावती (या विजया) है। शिल्प में अर के पारम्परिक यक्ष-यक्षी का निरूपण नहीं हुआ है। अर की मूर्तियों में सामान्य लक्षणों वाले यक्ष-यक्षी के चित्रण दसवीं शती ई० में प्रारम्भ हुए।

पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा में सुरक्षित (१३८८) और मथुरा से ही प्राप्त एक गुप्तकालीन जिन मूर्ति की पहचान डा० अग्रवाल ने अर से की है। सिंहासन पर उत्कीर्ण मीन-मिथुन को उन्होंने मत्स्य लांछन का अंकन माना है।[2] पर हमारी दृष्टि में यह पहचान ठीक नहीं है क्योंकि मीन-मिथुन के खुले मुखों से मुक्तावली प्रसारित हो रही है जो सिंहासन का सामान्य अलंकरण प्रतीत होता है। सहेठ-महेठ (गोंडा) की दसवीं शती ई० की एक मूर्ति राज्य संग्रहालय, लखनऊ (जे ८६१) में है। इसकी पीठिका पर मत्स्य लांछन और यक्ष-यक्षी निरूपित हैं। मत्स्य-लांछन-युक्त दो मूर्तियां बारभुजी एवं त्रिशूल गुफाओं में भी हैं।[3] बारभुजी गुफा की मूर्ति में यक्षी भी आमूर्तित है। नवागढ़ (टीकमगढ़) से ११४५ ई० की एक विशाल खड्गासन मूर्ति मिली है।[4] मूर्ति की पीठिका पर मत्स्य लांछन और यक्ष-यक्षी चित्रित हैं। १०५३ ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति मदनपुर पहाड़ी के मन्दिर १ में है।[5] बारहवीं शती ई० की तीन खड्गासन मूर्तियां क्रमशः अहाड़ (११८० ई०), मदनपुर (मन्दिर २, ११४७ ई०) एवं बजरंगगढ़ (११७९ ई०) से मिली हैं।[6] सभी उदाहरणों में अर निर्वस्त्र हैं।

(१९) मल्लिनाथ

जीवनवृत्त

मल्लिनाथ इस अवसर्पिणी के उन्नीसवें जिन हैं। मिथिला के शासक कुम्भ उनके पिता और प्रभावती उनकी माता थीं। श्वेतांबर परम्परा के अनुसार मल्लि नारी तीर्थंकर हैं। पर दिगंबर परम्परा में मल्लि को पुरुष तीर्थंकर ही बताया गया है। दिगंबर परम्परा में नारी को मुक्ति या निर्वाण की अधिकारिणी ही नहीं माना गया है। इसलिए नारी के तीर्थंकर-पद प्राप्त करने का प्रश्न ही नहीं उठता। इनकी माता को गर्भकाल में पुष्प शय्या पर सोने का दोहद उत्पन्न हुआ था, इसी कारण बालिका का नाम मल्लि रखा गया। श्वेतांबर परम्परा के अनुसार मल्लि अविवाहिता थीं और दीक्षा के दिन ही उन्हें अशोकवृक्ष के नीचे कैवल्य प्राप्त हो गया। इनकी निर्वाण-स्थली सम्मेद शिखर है।[7]

---

१ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० १२२–२४
२ अग्रवाल, वी०एस०, 'कैटलाग आव दि मथुरा म्यूज़ियम', ज०यू०पी०हि०सो०, खं० २३, भाग १–२, पृ० ५७
३ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १३२; कुरेशी, मुहम्मद हमीद, पू०नि०, पृ० २८२
४ जैन, नीरज, 'नवागढ़ : एक महत्वपूर्ण मध्यकालीन जैनतीर्थ', अनेकान्त, वर्ष १५, अं० ६, पृ० २७७
५ कोठिया, दरबारी लाल, 'हमारा प्राचीन विस्मृत वैभव', अनेकान्त, वर्ष १४, अगस्त १९५६, पृ० ३१
६ जैन, नीरज, 'बजरंगगढ़ का विशद जिनालय', अनेकान्त, वर्ष १८, अं० २, पृ० ६५–६६
७ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० १२५–३३

मूर्तियां

मल्लि का लांछन कलश है और यक्ष-यक्षी कुबेर एवं वैरोटया (या अपराजिता) हैं। मूर्तियों में मल्लि के यक्ष-यक्षी का चित्रण दुर्लभ है। केवल बारभुजी गुफा की मूर्ति में यक्षी उत्कीर्ण है। ग्यारहवीं शती ई० से पहले की मल्लि की कोई मूर्ति नहीं मिली है।

ग्यारहवीं शती ई० की एक श्वेतांबर मूर्ति उन्नाव से मिली है और राज्य संग्रहालय, लखनऊ (जे० ८८५) में संगृहीत है (चित्र २३)। यह मल्लि की नारी मूर्ति है। ध्यानमुद्रा में विराजमान मल्लि के वक्षःस्थल में श्रीवत्स नहीं उत्कीर्ण है। पर वक्षःस्थल का उभार स्त्रियोचित है और पृष्ठभाग की केशरचना भी वेणी के रूप में प्रदर्शित है। पीठिका पर कलश (?) उत्कीर्ण है। नारी के रूप में मल्लि के निरूपण का सम्भवतः यह अकेला उदाहरण है। घट-लांछन-युक्त दो ध्यानस्थ मूर्तियां बारभुजी एवं त्रिशूल गुफाओं में हैं।[1] ल० बारहवीं शती ई० की घट-लांछन-युक्त एक ध्यानस्थ मूर्ति तुलसी संग्रहालय, सतना में भी है।[2] कुम्भारिया के पार्श्वनाथ मन्दिर की देवकुलिका १८ में ११७९ ई० की एक मूर्ति है। मूर्ति-लेख में मल्लिनाथ का नाम भी उत्कीर्ण है।

(२०) मुनिसुव्रत

जीवनवृत्त

मुनिसुव्रत इस अवसर्पिणी के बीसवें जिन हैं। राजगृह के शासक सुमित्र उनके पिता और पद्मावती उनकी माता थीं। गर्भकाल में माता ने सम्यक् रीति से व्रतों का पालन किया, इसी कारण बालक का नाम मुनिसुव्रत रखा गया। राजपद के उपभोग के बाद मुनिसुव्रत ने दीक्षा ली और ११ माह की तपस्या के बाद राजगृह के नीलवन में चम्पक (चंपा) वृक्ष के नीचे कैवल्य प्राप्त किया। सम्मेद शिखर इनकी निर्वाण-स्थली है। जैन परम्परा के अनुसार राम (पद्म) एवं लक्ष्मण (वासुदेव) मुनिसुव्रत के समकालीन थे।[3]

मूर्तियां

मुनिसुव्रत का लांछन कूर्म है और यक्ष-यक्षी वरुण एवं नरदत्ता (बहुरूपा या बहुरूपिणी) हैं। मूर्तियों में मुनिसुव्रत के पारम्परिक यक्ष-यक्षी का अंकन नहीं प्राप्त होता। मुनिसुव्रत की उपलब्ध मूर्तियां ल० नवीं० से बारहवीं शती ई० के मध्य की हैं।[4] मुनिसुव्रत के लांछन और यक्ष-यक्षी का अंकन ल० दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० में प्रारम्भ हुआ।

गुजरात-राजस्थान—ग्यारहवीं शती ई० की एक श्वेतांबर मूर्ति गवर्नमेन्ट सेन्ट्रल म्यूजियम, जयपुर में है (चित्र २४)।[5] इसमें मुनिसुव्रत कायोत्सर्ग में खड़े हैं और आसन पर कूर्म लांछन उत्कीर्ण है। इसमें चामरधरों एवं उपासकों के अतिरिक्त अन्य कोई आकृति नहीं है। कुम्भारिया के पार्श्वनाथ मन्दिर की देवकुलिका २० में ११७९ ई० की एक मूर्ति है। लेख में 'मुनिसुव्रत' का नाम उत्कीर्ण है। यहां यक्ष-यक्षी नहीं बने हैं। दो मूर्तियां विमलवसही की देवकुलिका ११ (११४३ ई०) और ३१ में हैं। दोनों उदाहरणों में लेखों में मुनिसुव्रत का नाम और यक्ष-यक्षी रूप में सर्वानुभूति एवं अम्बिका उत्कीर्ण हैं। देवकुलिका ३१ की मूर्ति में मूलनायक के पार्श्वों में दो खड्गासन जिन मूर्तियां भी बनी हैं जिनके ऊपर दो ध्यानस्थ जिन आमूर्तित हैं।

---

१ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १३२; कुरैशी, मुहम्मद हमीद, पू०नि०, पृ० २८२

२ जैन, जे०, 'तुलसी संग्रहालय का पुरातत्व', अनेकान्त, वर्ष १६, अं० ६, पृ० २८०

३ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० १३४-३५

४ राज्य संग्रहालय, लखनऊ (जे २०) में ९५७ ई० की एक मुनिसुव्रत मूर्ति की पीठिका सुरक्षित है : शाह, यू०पी०, 'बिगिनिंग्स ऑव जैन आइकानोग्राफी', सं०पु०प०, सं० ९, पृ० ५

५ अमेरिकन इंस्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, चित्र संग्रह १५७.७७

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश—ल० दसवीं शती ई० की एक मूर्ति बजरामठ (ग्यारसपुर) के प्रकोष्ठ में है।[1] १००६ ई० की एक श्वेतांबर मूर्ति आगरा के समीप से मिली है और राज्य संग्रहालय, लखनऊ (जे ७७६) में सुरक्षित है। मूर्ति काले पत्थर में उत्कीर्ण है। ज्ञातव्य है कि जैन परम्परा में मुनिसुव्रत के शरीर का रंग काला बताया गया है। सिंहासन पर कूर्म लांछन और लेख में 'मुनिसुव्रत' नाम आया है। मुनिसुव्रत ध्यानमुद्रा में विराजमान हैं। मूर्ति के परिकर में जीवन्तस्वामी एवं बलराम और कृष्ण की मूर्तियां हैं। यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका हैं। यक्ष के समीप एक स्त्री आकृति है जिसकी वाम भुजा में पुस्तक है। चामरधरों के समीप कायोत्सर्ग-मुद्रा में दो श्वेतांबर जिन मूर्तियां बनी हैं। इन आकृतियों के ऊपर जीवन्तस्वामी की दो कायोत्सर्ग मूर्तियां हैं।[2] जीवन्तस्वामी मुकुट, हार, बाजूबंद, कर्णफूल आदि से शोभित हैं। मूलनायक के त्रिछत्र के ऊपर एक ध्यानस्थ जिन मूर्ति उत्कीर्ण है जिसके दोनों ओर चतुर्भुज बलराम एवं कृष्ण की मूर्तियां हैं। कृष्ण एवं बलराम की मूर्तियों के आधार पर मध्य की जिन मूर्ति की पहचान नेमि से की जा सकती है। वनमाला एवं तीन सर्पफणों के छत्र से युक्त बलराम की भुजाओं में वरदमुद्रा, मुसल, हल एवं फल हैं। किरीटमुकुट एवं वनमाला से सज्जित कृष्ण के तीन अवशिष्ट करों में वरदमुद्रा, गदा एवं शंख प्रदर्शित हैं। ल० ग्यारहवीं शती ई० की कूर्म-लांछन-युक्त एक कायोत्सर्ग मूर्ति खजुराहो के मन्दिर २० में है। इसमें यक्ष-यक्षी नहीं उत्कीर्ण हैं। पर परिकर में चार छोटी जिन मूर्तियां बनी हैं। ११४२ ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति धुबेला संग्रहालय (४२) में सुरक्षित है।[3] पीठिका लेख में मुनिसुव्रत का नाम उत्कीर्ण है।

बिहार-उड़ीसा-बंगाल—इस क्षेत्र में बारभुजी एवं त्रिशूल गुफाओं में दो मूर्तियां हैं।[4] इनमें मुनिसुव्रत ध्यानमुद्रा में विराजमान हैं। बारभुजी गुफा की मूर्ति में यक्षी भी आमूर्तित है। एक मूर्ति (ल० ९वीं-१०वीं शती ई०) राजगिर से भी मिली है।[5] ध्यानस्थ जिन के सिंहासन के नीचे बहुरूपिणी यक्षी की शय्या पर लेटी मूर्ति बनी है।

जीवनदृश्य

मुनिसुव्रत के जीवनदृश्य केवल स्वतन्त्र पट्टों पर उत्कीर्ण हैं। इन पट्टों पर मुनिसुव्रत के जीवन की केवल दो ही घटनाएं मिलती हैं जो अश्वावबोध एवं शकुनिका-विहार-तीर्थ की उत्पत्ति से सम्बन्धित हैं। गुजरात एवं राजस्थान में बारहवीं-तेरहवीं शती ई० के ऐसे चार पट्ट मिले हैं। बारहवीं शती ई० का एक पट्ट जालोर के पार्श्वनाथ मन्दिर के गूढ़मण्डप में है। अन्य सभी पट्ट तेरहवीं शती ई० के हैं और कुम्भारिया के महावीर एवं नेमिनाथ मन्दिरों,[6] लूणवसही की देवकुलिका १९ एवं कैम्बे के जैन मन्दिर में सुरक्षित हैं। सभी पट्टों के दृश्यांकन विवरणों की दृष्टि से लगभग समान हैं।

जैन ग्रन्थों में मुनिसुव्रत के जीवन से सम्बन्धित उपर्युक्त दोनों ही घटनाओं के विस्तृत उल्लेख हैं।[7] कैवल्य प्राप्ति के बाद मतिज्ञान से एक बार मुनिसुव्रत को ज्ञात हुआ कि एक अश्व को उनके उपदेशों की आवश्यकता है। इसके

---

१ जिन के आसन के नीचे शय्या पर लेटी यक्षी (बहुरूपिणी) के आधार पर जिन की सम्भावित पहचान मुनिसुव्रत से की गयी है।

२ जीवन्तस्वामी की दो मूर्तियों का उत्कीर्णन इस बात का संकेत है कि महावीर के अतिरिक्त अन्य जिनों के भी जीवन्तस्वामी स्वरूप की कल्पना की गई थी। कुछ परवर्ती ग्रन्थों में पार्श्वनाथ के जीवन्तस्वामी स्वरूप का उल्लेख भी हुआ है। जैसलमेर संग्रहालय में जीवन्तस्वामी चन्द्रप्रभ की एक मूर्ति भी है।

३ जैन, बालचन्द्र, 'धुबेला संग्रहालय के जैन मूर्ति लेख', अनेकान्त, वर्ष १९, अं० ४, पृ० २४४

४ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १३२; कुरेशी, मुहम्मद हमीद, पू०नि०, पृ० २८२

५ जै०क०स्था०, खं० १, पृ० १७२

६ कुम्भारिया का पट्ट १२८१ ई० के लेख से युक्त है। पट्ट के दृश्यों के नीचे उनके विवरण भी उत्कीर्ण हैं।

७ त्रि०श०पु०च०, खं० ४, गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज १२५, बड़ौदा, १९५४, पृ० ८६–८८; जयन्त विजय, मुनिश्री, पू०नि०, पृ० १००–०५

बाद मुनिसुव्रत भृगुकच्छ गये और वहां कोरण्टवन में अपना उपदेश प्रारम्भ किया। भृगुकच्छ के शासक जितशत्रु के अश्वमेध यज्ञ का अश्व भी रक्षकों के साथ मुनिसुव्रत के उपदेशों का श्रवण कर रहा था। अपने उपदेश में मुनिसुव्रत ने अपने और उस अश्व के पूर्व जन्मों की कथा का भी उल्लेख किया। उपदेशों के बाद उस अश्व ने छह माह तक जैन श्रावक के लिए बताये गये मार्ग का अनुसरण किया। अगले जन्म में वही अश्व सौधर्म लोक (स्वर्ग) में देवता हुआ। अवधिज्ञान से पिछले जन्म की बातों का स्मरण कर वह मुनिसुव्रत के उपदेश-स्थल पर गया और वहां उसने मुनिसुव्रत के मन्दिर का निर्माण किया। मुनिसुव्रत की मूर्ति के समक्ष ही उसने अश्वरूप में अपनी भी एक मूर्ति प्रतिष्ठित की। उसी समय से वह स्थान अश्वावबोध तीर्थ के रूप में जाना जाने लगा।

दूसरी कथा इस प्रकार है। सिंहल द्वीप के रत्नाशय देश में श्रीपुर नाम का एक नगर था, जहां का शासक चन्द्रगुप्त था। एक बार उसके दरबार में भृगुकच्छ का एक व्यापारी (धनेश्वर) आया। दरबार में इस व्यापारी के 'ओम नमो अरिहंताणाम' मंत्र के उच्चारण से चन्द्रगुप्त की पुत्री सुदर्शना पूर्वजन्म की कथा का स्मरण कर मूर्छित हो गयी। पूर्वजन्म में सुदर्शना भृगुकच्छ के समीप कोरण्ट उद्यान में शकुनि पक्षी थी। एक बार वह शिकारी के बाणों से घायल होकर कराह रही थी। उसी समय पास से गुजरते हुए एक जैन आचार्य ने उसके ऊपर जलस्राव किया और उसे नवकार मन्त्र सुनाया। नवकार मन्त्र के प्रति अपनी श्रद्धा के कारण ही शकुनि मृत्यु के बाद सुदर्शना के रूप में उत्पन्न हुई। पूर्वजन्म की इस घटना का स्मरण होने के बाद से सुदर्शना सांसारिक सुखों से विरक्त हो गई। उसने व्यापारी के साथ भृगु-कच्छ के तीर्थ की यात्रा भी की। सुदर्शना ने अश्वावबोध तीर्थ में मुनिसुव्रत की पूजा की और उस तीर्थस्थली का पुनरुद्धार करवाकर वहां २४ जिनालयों का निर्माण करवाया। इस घटना के कारण उस स्थल को शकुनिका-विहार-तीर्थ भी कहा गया। चौलुक्य शासक कुमारपाल के मन्त्री उदयन के पुत्र आम्रभट्ट ने इस देवालय का पुनरुद्धार करवाया था।

जालोर के पार्श्वनाथ मन्दिर के पट्ट के दृश्य दो भागों में विभक्त हैं। ऊपर अश्वावबोध और नीचे शकुनिका-विहार-तीर्थ की कथाएं उत्कीर्ण हैं। ऊपरी भाग में मध्य में एक जिनालय उत्कीर्ण है जिसमें मुनिसुव्रत की ध्यानस्थ मूर्ति है। जिनालय के समीप के एक अन्य देवालय में मुनिसुव्रत के चरण-चिह्न अंकित हैं। बायीं ओर एक अश्व आकृति उत्कीर्ण है। कुम्भारिया के पट्ट पर अश्व आकृति के नीचे 'अश्वप्रतिबोध' लिखा है। अश्व के समीप कुछ रक्षक भी खड़े हैं। जिनालय के दाहिनी ओर सिंहलद्वीप के शासक चन्द्रगुप्त की मूर्ति है। सुदर्शना चन्द्रगुप्त की गोद में बैठी है। समीप ही दो सेवकों एवं व्यापारी की मूर्तियां हैं। पट्ट के निचले भाग में दाहिने छोर पर एक वृक्ष उत्कीर्ण है जिसकी डाल पर शकुनि बैठी है। वृक्ष के दाहिने ओर शिकारी और बायीं ओर जैन साधुओं की दो आकृतियां चित्रित हैं। नीचे एक वृत्त के रूप में समुद्र उत्कीर्ण है जिसमें जिनालय की ओर आती एक नाव प्रदर्शित है। नाव में सुदर्शना बैठी है। यह सुदर्शना के अश्वावबोध तीर्थ की ओर आने का दृश्यांकन है।

(२१) नमिनाथ

जीवनवृत्त

नमिनाथ इस अवसर्पिणी के इक्कीसवें जिन हैं। मिथिला के शासक विजय उनके पिता और वप्रा (या विप-रीता) उनकी माता थीं। जब नमि का जीव गर्भ में था उसी समय शत्रुओं ने मिथिला नगरी को घेर लिया था। वप्रा ने जब राजप्रासाद की छत से शत्रुओं को सौम्य दृष्टि से देखा तो शत्रु शासक का हृदय बदल गया और वह विजय के समक्ष नतमस्तक हो गया। शत्रुओं के इस अप्रत्याशित नमन के कारण ही बालक का नाम नमिनाथ रखा गया। राजपद के उप-भोग के बाद नमि ने दीक्षा ली और नौ माह की तपस्या के बाद मिथिला के चित्रवन में बकुल (या जम्बू) वृक्ष के नीचे केवल-ज्ञान प्राप्त किया। इनकी निर्वाण-स्थली सम्मेद शिखर है।[1]

---

१ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० १३६-३८

मूर्तियां

नमि का लांछन नीलोत्पल है और यक्ष-यक्षी भृकुटि एवं गांधारी (या मालिनी या चामुण्डा) हैं। शिल्प में नमि के पारम्परिक यक्ष-यक्षी का चित्रण नहीं हुआ है। उपलब्ध नमि मूर्तियां ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० की हैं। ग्यारहवीं शती ई० की एक मूर्ति पटना संग्रहालय में है।[1] मूर्ति के परिकर में २४ छोटी जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। एक ध्यानस्थ मूर्ति बारभुजी गुफा में है।[2] नीचे यक्षी भी निरूपित है। रैंदिघी (बंगाल) के समीप मथुरापुर से कायोत्सर्ग में खड़ी एक श्वेतांबर मूर्ति मिली है।[3] कुम्भारिया के पार्श्वनाथ मन्दिर की देवकुलिका २१ में ११७९ ई० की एक नमि मूर्ति है। लूणवसही की देवकुलिका १९ में भी १२३३ ई० की एक मूर्ति है। यहां पीठिका-लेख में नमि का नाम भी उत्कीर्ण है। यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका हैं।

(२२) नेमिनाथ (या अरिष्टनेमि)

जीवनवृत्त

नेमिनाथ या अरिष्टनेमि इस अवसर्पिणी के बाईसवें जिन हैं। द्वारावती के हरिवंशी महाराज समुद्रविजय उनके पिता और शिवा देवी उनकी माता थीं। शिवा के गर्भकाल में समुद्रविजय सभी प्रकार के अरिष्टों से बचे थे तथा गर्भावस्था में माता ने अरिष्टचक्र नेमि का दर्शन किया था, इसी कारण बालक का नाम अरिष्टनेमि या नेमि रखा गया। समुद्रविजय के अनुज वसुदेव सौरिपुर के शासक थे। वसुदेव की दो पत्नियां, रोहिणी और देवकी थीं। रोहिणी से बलराम, और देवकी से कृष्ण उत्पन्न हुए। इस प्रकार कृष्ण एवं बलराम नेमि के चचेरे भाई थे। इस सम्बन्ध के कारण ही मथुरा, देवगढ़, कुम्भारिया, विमलवसही एवं लूणवसही के मूर्त अंकनों में नेमि के साथ कृष्ण एवं बलराम भी अंकित हुए।

कृष्ण और रुक्मिणी के आग्रह पर नेमि राजीमती के साथ विवाह के लिए तैयार हुए। विवाह के लिए जाते समय नेमि ने मार्ग में पिंजरों में बन्द और जालपाशों में बंधे पशुओं को देखा। जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि विवाहोत्सव के अवसर पर दिये जानेवाले भोज के लिए उन पशुओं का वध किया जायगा तो उनका हृदय विरक्ति से भर गया। उन्होंने तत्क्षण पशुओं को मुक्त करा दिया और बिना विवाह किये वापिस लौट पड़े; और साथ ही दीक्षा लेने के निर्णय की भी घोषणा की। नेमि के निष्क्रमण के समय मानवेन्द्र, देवेन्द्र, बलराम एवं कृष्ण उनकी शिबिका के साथ-साथ चल रहे थे। नेमि ने उज्जयंत पर्वत पर सहस्राम्र उद्यान में अशोक वृक्ष के नीचे अपने आभरणों एवं वस्त्रों का परित्याग किया और पंचमुष्टि में केशों का लुंचन कर दीक्षा ग्रहण की। ५४ दिनों की तपस्या के बाद उज्जयंतगिरि स्थित रेवतगिरि पर बेतस वृक्ष के नीचे नेमि को कैवल्य प्राप्त हुआ। यहीं देवनिर्मित समवसरण में नेमि ने अपना पहला धर्मोपदेश भी दिया। नेमि की निर्वाण-स्थली भी उज्जयंतगिरि है।[4]

प्रारम्भिक मूर्तियां

नेमि का लांछन शंख है[5] और यक्ष-यक्षी गोमेध एवं अम्बिका (या कुष्माण्डी) हैं। नेमि की मूर्तियों में यक्षी सदैव अम्बिका है पर यक्ष गोमेध के स्थान पर प्राचीन परम्परा का सर्वानुभूति (या कुबेर) यक्ष है। जैन ग्रन्थों में नेमि से सम्बन्धित बलराम एवं कृष्ण की भी लाक्षणिक विशेषताएं विवेचित हैं। कृष्ण के मुख्य लक्षण गदा (कुमुद्वती), खड्ग (नन्दक), चक्र, अंकुश, शंख एवं पद्म हैं। कृष्ण किरीटमुकुट, वनहार, कौस्तुभमणि आदि से सज्जित हैं।[6] माला एवं मुकुट से शोभित बलराम के मुख्य लक्षण गदा, हल, मुसल, धनुष एवं बाण हैं।[7]

---

१ गुप्ता, पी०एल०, पू०नि०, पृ० ९०
२ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १३२
३ दत्त, कालिदास, 'दि एन्टिक्विटीज ऑव खारी', ऐनुअलरिपोर्ट, वारेन्द्र रिसर्च सोसाइटी, १९२८-२९, पृ० १-११
४ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० १३९–२३९
५ नेमि का शंख लांछन उनके पूर्वभव के शंख नाम से सम्बन्धित रहा हो सकता है।
६ हरिवंशपुराण ३५.३५
७ हरिवंशपुराण ४१.३६–३७

मथुरा से पहली से चौथी शती ई० के मध्य की पांच मूर्तियां मिली हैं जो सम्प्रति राज्य संग्रहालय, लखनऊ में हैं। चार मूर्तियों में नेमि की पहचान पार्श्ववर्ती बलराम एवं कृष्ण की आकृतियों के आधार पर की गई है। बलराम पांच या सात सर्पफणों के छत्र से युक्त हैं। एक कायोत्सर्ग मूर्ति (जे ८, ९७ ई०) के लेख में अरिष्टनेमि का नाम भी उत्कीर्ण है। परवर्ती कुषाण काल की एक मूर्ति का उल्लेख डॉ० अग्रवाल ने किया है।[१] यह मूर्ति मथुरा संग्रहालय (२५०२) में है। मूर्ति का निचला भाग खण्डित है। नेमि के दाहिने और बायें पार्श्वों में क्रमशः बलराम एवं कृष्ण की चतुर्भुज मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। बलराम की दो अवशिष्ट भुजाओं में से एक में हल है और दूसरी जानु पर स्थित है। कृष्ण की अवशिष्ट भुजाओं में गदा और चक्र हैं।

पहली शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति (राज्य संग्रहालय, लखनऊ जे ४७) में चतुर्भुज बलराम की ऊपरी भुजाओं में गदा और हल हैं। वक्षःस्थल के समक्ष मुड़ी दाहिनी भुजा में एक पात्र है। चतुर्भुज कृष्ण वनमाला से शोभित हैं। उनकी तीन अवशिष्ट भुजाओं में अभयमुद्रा, गदा और पात्र प्रदर्शित हैं।[२] दूसरी-तीसरी शती ई० की दो अन्य ध्यानस्थ मूर्तियों में केवल बलराम की ही मूर्ति उत्कीर्ण है।[३] सात सर्पफणों के छत्र से युक्त द्विभुज बलराम नमस्कार-मुद्रा में हैं।[४] ल० चौथी शती ई० की एक मूर्ति (राज्य संग्रहालय, लखनऊ, जे १२१) में नेमि कायोत्सर्ग में खड़े हैं (चित्र २५)। उनके पार्श्वों में चतुर्भुज बलराम एवं कृष्ण की मूर्तियां हैं। नेमि के वाम पार्श्व में एक छोटी जिन आकृति और चरणों के समीप तीन उपासक चित्रित हैं। सिंहासन के धर्मचक्र के दोनों ओर दो ध्यानस्थ जिन आकृतियां उत्कीर्ण हैं। पांच सर्पफणों की छत्रावली से युक्त बलराम की तीन भुजाओं में मुसल, चषक और हल (?) हैं। ऊपर की दाहिनी भुजा सर्पफणों के समक्ष प्रदर्शित है। कृष्ण की तीन अवशिष्ट भुजाओं में फल (?), गदा और शंख हैं।

ल० चौथी शती ई० की एक मूर्ति राजगिर के वैभार पहाड़ी से मिली है। पीठिका-लेख में 'महाराजाधिराज श्रीचन्द्र' का उल्लेख है, जिसकी पहचान गुप्त शासक चन्द्रगुप्त द्वितीय से की गई है।[५] सिंहासन के मध्य में एक पुरुष आकृति खड़ी है जिसके दाहिने हाथ से अभयमुद्रा व्यक्त है। यह आकृति आयुध पुरुष की है[६] या नेमि का राजपुरुष के रूप में अंकन है।[७] इस आकृति के दोनों ओर नेमि का शंख लांछन उत्कीर्ण है। लांछन से युक्त यह प्राचीनतम जिन मूर्ति है। शंख लांछन के समीप दो छोटी जिन आकृतियां हैं। परिकर में चामरधर या कोई अन्य सहायक आकृति नहीं उत्कीर्ण है।

ल० सातवीं शती ई० की एक मूर्ति राजघाट (वाराणसी) से मिली है और सम्प्रति भारत कला भवन, वाराणसी (२१२) में सुरक्षित है (चित्र २६)।[८] इसमें नेमि ध्यानमुद्रा में सिंहासन पर विराजमान हैं। लांछन नहीं उत्कीर्ण है, किन्तु यक्षी अम्बिका की मूर्ति के आधार पर मूर्ति की नेमि से पहचान सम्भव है। मूर्ति दो भागों में विभक्त है। ऊपरी भाग में मूलनायक की मूर्ति, चामरधर, सिंहासन, भामण्डल, त्रिछत्र, दुन्दुभिवादक और उड्डीयमान मालाधर तथा निचले भाग में एक वृक्ष (सम्भवतः कल्पवृक्ष) उत्कीर्ण हैं। वृक्ष के दोनों ओर त्रिभंग में खड़ी द्विभुज यक्ष-यक्षी मूर्तियां निरूपित हैं। सिंहासन के छोरों के स्थान पर सिंहासन के नीचे यक्ष-यक्षी का चित्रण मूर्ति की दुर्लभ विशेषता है। दक्षिण

---

१ अग्रवाल, वी० एस०, पू०नि०, पृ० १६–१७
२ श्रीवास्तव, वी० एन०, पू०नि०, पृ० ५०
३ राज्य संग्रहालय, लखनऊ, जे ११७, जे ६०
४ श्रीवास्तव, वी० एन०, पू०नि०, पृ० ५०–५१
५ चंदा, आर०पी, 'जैन रिमेन्स ऐट राजगिर', आ०स०इं०ऐ०रि०, १९२५–२६, पृ० १२५–२६
६ स्ट०जै०आ०, पृ० १४
७ चंदा, आर०पी०, पू०नि०, पृ० १२६
८ तिवारी, एम०एन०पी०, 'ए नोट आन दि आइडेन्टिफिकेशन ऑव ए तीर्थंकर इमेज ऐट भारत कला भवन, वाराणसी, जैन जर्नल, खं० ६, अं० १, पृ० ४१–४३

पार्श्व के यक्ष के हाथों में पुष्प और घट (? निधिपात्र) हैं। वाम पार्श्व की यक्षी के दाहिने हाथ में पुष्प[1] और बायें में बालक है। अम्बिका का दूसरा पुत्र उसके दक्षिण पार्श्व में खड़ा है।

पूर्वमध्ययुगीन मूर्तियां

गुजरात-राजस्थान—गुजरात और राजस्थान में जहां ऋषभ और पार्श्व की स्वतन्त्र मूर्तियां छठीं-सातवीं शती ई० में उत्कीर्ण हुई (अकोटा), वहीं नेमि और महावीर की मूर्तियां नवीं शती ई० के बाद की हैं। यह तथ्य नेमि और महावीर की इस क्षेत्र में सीमित लोकप्रियता का सूचक है। इस क्षेत्र की मूर्तियों में या तो शंख लांछन या फिर लेख में नेमिनाथ का नाम उत्कीर्ण है। यक्ष-यक्षी के रूप में सर्वानुभूति एवं अम्बिका ही निरूपित हैं। ल० दसवीं शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति कटरा (भरतपुर) से मिली है और भरतपुर राज्य संग्रहालय (२९३) में सुरक्षित है।[2] यहां शंख लांछन उत्कीर्ण है पर यक्ष-यक्षी अनुपस्थित हैं। ११७९ ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति कुम्भारिया के पार्श्वनाथ मन्दिर की देवकुलिका २२ में है। लेख में नेमिनाथ का नाम उत्कीर्ण है। बारहवीं शती ई० की शंख-लांछन-युक्त एक मूर्ति अमरसर (राजस्थान) से मिली है और सम्प्रति गंगा गोल्डेन जुबिली संग्रहालय, बीकानेर (१६५९) में सुरक्षित है।[3] लूणवसही के गर्भगृह की विशाल ध्यानस्थ मूर्ति में शंख लांछन और सर्वानुभूति एवं अम्बिका निरूपित हैं।

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश—इस क्षेत्र की नेमि मूर्तियों में अष्ट-प्रातिहार्यों, शंख लांछन और सर्वानुभूति एवं अम्बिका[4] का नियमित अंकन हुआ है। स्मरणीय है कि नेमि के लांछन और यक्ष-यक्षी के चित्रण सर्वप्रथम इसी क्षेत्र में प्राप्त होते हैं। स्वतन्त्र नेमि मूर्तियों में बलराम और कृष्ण का निरूपण भी केवल इसी क्षेत्र में हुआ है।

राज्य संग्रहालय, लखनऊ में दसवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की आठ मूर्तियां हैं। सभी उदाहरणों में शंख लांछन, चामरधर, सिंहासन, त्रिछत्र एवं भामण्डल उत्कीर्ण हैं। पांच उदाहरणों में यक्ष-यक्षी भी निरूपित हैं। यक्ष-यक्षी सामान्यतः सर्वानुभूति एवं अम्बिका हैं। पांच उदाहरणों में नेमि कायोत्सर्ग में खड़े हैं। एक उदाहरण (६६.५३) के अतिरिक्त अन्य सभी में नेमि निर्वस्त्र हैं। दो उदाहरणों में नेमि के साथ बलराम और कृष्ण भी आमूर्तित हैं।

बटेश्वर (आगरा) की दसवीं शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति (जे ७९३) में पीठिका पर चार जिनों और सर्वानुभूति एवं अम्बिका की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। चामरधरों के समीप द्विभुज बलराम एवं कृष्ण की मूर्तियां हैं। बलराम के दाहिने हाथ में चषक है किन्तु बायें हाथ का आयुध स्पष्ट नहीं है। कृष्ण की दक्षिण भुजा में शंख है और वाम भुजा जानु पर स्थित है। मूलनायक के स्कन्धों पर जटाएं भी प्रदर्शित हैं। ल० ग्यारहवीं शती ई० की एक श्वेतांबर मूर्ति (६६.५३) में नेमि कायोत्सर्ग में खड़े हैं (चित्र २८)। परिकर में तीन जिनों एवं चतुर्भुज बलराम और कृष्ण की मूर्तियां हैं। तीन सर्पफणों के छत्र और वनमाला से शोभित बलराम के तीन अवशिष्ट हाथों में से दो में मुसल और हल प्रदर्शित हैं, और तीसरा जानु पर स्थित है। किरीटमुकुट एवं वनमाला से सज्जित कृष्ण की भुजाओं में अभयमुद्रा, गदा, चक्र और शंख प्रदर्शित हैं।

मैहर (म० प्र०) की ग्यारहवीं शती ई० की एक खड्गासन मूर्ति (१४.०.११७) में सिंहासन-छोरों के स्थान पर यक्ष-यक्षी मूलनायक के वाम पार्श्व में आमूर्तित हैं। यक्षी अम्बिका है। परिकर में एक चतुर्भुज देवी निरूपित है जिसके हाथों में अभयमुद्रा, पद्म, पद्म और कलश हैं। ११७७ ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति (जे ९३६) में यक्ष सर्वानुभूति है पर यक्षी

---

१ अम्बिका की एक भुजा में आम्रलुंबि के स्थान पर पुष्प का प्रदर्शन मथुरा की सातवीं-आठवीं शती ई० की कुछ अन्य मूर्तियों में भी देखा जा सकता है।

२ अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, चित्र संग्रह १५७.१७

३ श्रीवास्तव, वी० एस०, पू०नि०, पृ० १४

४ कुछ उदाहरणों में सामान्य लक्षणों वाले यक्ष-यक्षी भी निरूपित हैं।

अम्बिका नहीं है। लांछन भी नहीं उत्कीर्ण है।[1] परिकर में चार छोटी जिन मूर्तियां भी बनी हैं। सहेठ-महेठ (गोंडा) से प्राप्त समान विवरणों वाली दूसरी मूर्ति (जे ८५८) में लांछन उत्कीर्ण है और यक्षी भी अम्बिका है। ११५१ ई० की एक मूर्ति (०.१२३) में नेमि के कंधों पर जटाएं भी प्रदर्शित हैं।

पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा में दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० की दो मूर्तियां हैं। मथुरा से मिली दसवीं शती ई० की एक मूर्ति (३७.२७३८) में ध्यानमुद्रा में विराजमान नेमि के साथ लांछन और यक्ष-यक्षी नहीं उत्कीर्ण हैं। पर पार्श्वों में बलराम एवं कृष्ण की मूर्तियां बनी हैं। वनमाला से शोभित चतुर्भुज बलराम त्रिभंग में खड़े हैं। उनके तीन हाथों में चषक, मुसल और हल हैं, और चौथा हाथ जानु पर स्थित है। वनमाला से युक्त कृष्ण समभंग में खड़े हैं। उनके तीन सुरक्षित करों में से दो में वरदमुद्रा और गदा प्रदर्शित हैं और तीसरा जानु पर स्थित है। दूसरी मूर्ति (बी ७७) में लांछन उत्कीर्ण है पर यक्ष-यक्षी अनुपस्थित हैं। मूलनायक के कन्धों पर जटाएं हैं।

देवगढ़ में दसवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की ३० से अधिक मूर्तियां हैं। अधिकांश उदाहरणों में नेमि अष्ट-प्रातिहार्यों, शंख लांछन और पारम्परिक यक्ष-यक्षी से युक्त हैं। सत्रह उदाहरणों में नेमि कायोत्सर्ग में निर्वस्त्र खड़े हैं। दस उदाहरणों में शंख लांछन नहीं उत्कीर्ण है, पर सर्वानुभूति एवं अम्बिका की मूर्तियों के आधार पर नेमि से पहचान सम्भव है।[2] केवल तीन उदाहरणों में यक्षी-यक्षी नहीं निरूपित हैं।[3] कुछ उदाहरणों में परम्परा के विरुद्ध यक्ष को नेमि के बायीं ओर और यक्षी को दाहिनी ओर आमूर्तित किया गया है।[4] मन्दिर २ की दसवीं शती ई० की एक मूर्ति में बलराम और कृष्ण भी आमूर्तित हैं (चित्र २७)।[5] मथुरा के बाहर नेमि की स्वतन्त्र मूर्ति में बलराम एवं कृष्ण के उत्कीर्णन का यह सम्भवतः अकेला उदाहरण है। पांच सर्पफणों के छत्र से युक्त द्विभुज बलराम के हाथों में फल और हल हैं। किरीट-मुकुट से सज्जित चतुर्भुज कृष्ण की तीन अवशिष्ट भुजाओं में चक्र, शंख और गदा हैं।

उन्नीस उदाहरणों में नेमि के साथ द्विभुज सर्वानुभूति एवं अम्बिका निरूपित हैं। मन्दिर १६ की दसवीं शती ई० की शंख-लांछन-युक्त एक खड्गासन मूर्ति में यक्ष-यक्षी गोमुख और चक्रेश्वरी हैं। नेमि की केश रचना भी जटाओं के रूप में प्रदर्शित है। स्पष्टतः कलाकार ने यहां नेमि के साथ ऋषभ की मूर्तियों की विशेषताएं प्रदर्शित की हैं। मूर्ति के परिकर में २४ छोटी जिन मूर्तियां भी उत्कीर्ण हैं। सात उदाहरणों में नेमि के साथ सामान्य लक्षणों वाले यक्ष-यक्षी भी निरूपित हैं।[6] कई उदाहरणों में मूलनायक के कंधों पर जटाएं प्रदर्शित हैं।[7] मन्दिर १५ की मूर्ति के परिकर में सात, मन्दिर २६ की मूर्ति में चार, मन्दिर १२ की चहारदीवारी की दो मूर्तियों में चार और छह, मन्दिर २१ की मूर्ति में दो, मन्दिर ११ की मूर्ति में दस, मन्दिर २० की मूर्ति में चार और मन्दिर ३१ की मूर्ति में दो छोटी जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। मन्दिर १२ के प्रदक्षिणापथ की ग्यारहवीं शती ई० की कायोत्सर्ग मूर्ति के परिकर में द्विभुज नवग्रहों की भी मूर्तियां हैं।

ल० दसवीं शती ई० की दो मूर्तियां ग्यारसपुर के मालादेवी मन्दिर में हैं।[8] नेमि के लांछन दोनों उदाहरणों में नहीं उत्कीर्ण हैं पर यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका हैं। एक मूर्ति के परिकर में चार और दूसरे में ५२ छोटी जिन मूर्तियां

---

१ सर्वानुभूति यक्ष के आधार पर प्रस्तुत मूर्ति की सम्भावित पहचान नेमि से की गई है। एक अन्य मूर्ति (जे ७९२) में भी लांछन और अम्बिका नहीं उत्कीर्ण हैं।

२ मन्दिर १५

३ मन्दिर १२ के प्रदक्षिणापथ, चहारदीवारी और मन्दिर २६

४ मन्दिर ३, १२, १३, १५

५ तिवारी, एम०एन०पी०, 'ऐन अनपब्लिश्ड इमेज ऑव नेमिनाथ फ्राम देवगढ़', जैन जर्नल, खं० ८, अं० २, पृ० ८४–८५

६ मन्दिर १२ की चहारदीवारी, मन्दिर २,११,२०,२१,३०

७ मन्दिर ११,१५,२१,२६,३१

८ एक में नेमि कायोत्सर्ग में खड़े हैं।

उत्कीर्ण हैं। ग्यारसपुर के बजरामठ में भी नेमि की एक कायोत्सर्ग मूर्ति (११वीं शती ई०, बी० ९) है। इसमें भी लांछन नहीं उत्कीर्ण है, पर यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका हैं।

खजुराहो में ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० की दो मूर्तियां हैं। दोनों में नेमि ध्यानमुद्रा में विराजमान हैं। मन्दिर १० की ग्यारहवीं शती ई० की मूर्ति में लांछन स्पष्ट नहीं है, पर यक्षी अम्बिका ही है। पीठिका पर ग्रहों की सात मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। स्थानीय संग्रहालय की दूसरी मूर्ति (के १४) में शंख लांछन और सर्वानुभूति एवं अम्बिका निरूपित हैं। परिकर में २३ छोटी जिन मूर्तियां भी बनी हैं। गुर्गी (रींवा) की ग्यारहवीं शती ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति इलाहाबाद संग्रहालय (ए०एम० ४९८) में है।[1] यहां नेमि के साथ शंख लांछन और सामान्य लक्षणों वाले यक्ष-यक्षी उत्कीर्ण हैं। पुरुषों के स्थान पर स्त्री चामरधारिणी सेविकाएं बनी हैं। चार छोटी जिन मूर्तियां भी चित्रित हैं। धुबेला संग्रहालय (म० प्र०) में भी एक मूर्ति है।[2] इसमें नेमि ध्यानमुद्रा में विराजमान हैं और परिकर में २२ जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। धुबेला संग्रहालय की ११४२ ई० की एक दूसरी मूर्ति के लेख में नेमिनाथ का नाम उत्कीर्ण है।[3] ११५१ ई० की एक मूर्ति हार्निमन संग्रहालय में है। नेमि का शंख लांछन पीठिका के साथ ही वक्षःस्थल पर भी उत्कीर्ण है।[4]

बिहार-उड़ीसा-बंगाल—इस क्षेत्र से केवल चार मूर्तियां (११वीं-१२वीं शती ई०) मिली हैं। इस क्षेत्र में शंख लांछन का चित्रण नियमित था। पर यक्ष-यक्षी का निरूपण नहीं हुआ है। उड़ीसा में बारभुजी एवं नवमुनि गुफाओं की दो मूर्तियों में केवल अम्बिका ही निरूपित हैं। अलुअर से मिली एक कायोत्सर्ग मूर्ति (११वीं शती ई०) पटना संग्रहालय (१०६८८) में सुरक्षित है।[5] नवमुनि, बारभुजी एवं त्रिशूल गुफाओं में नेमि की तीन ध्यानस्थ मूर्तियां हैं।[6]

जीवनदृश्य

नेमि के जीवनदृश्यों के अंकन कुम्भारिया के शान्तिनाथ एवं महावीर मन्दिरों (११वीं शती ई०) और विमलवसही (१२ वीं शती ई०) एवं लूणवसही (१३ वीं शती ई०) में हैं। कल्पसूत्र के चित्रों में भी नेमि के जीवनदृश्यों के अंकन हैं। इनमें पंचकल्याणकों के अतिरिक्त नेमि के विवाह और कृष्ण की आयुधशाला में नेमि के शौर्य प्रदर्शन से सम्बन्धित दृश्य विस्तार से अंकित हैं। कुम्भारिया के शान्तिनाथ मन्दिर एवं लूणवसही की देवकुलिका ११ के वितानों के दृश्यों मे नेमि एवं राजीमती को विवाह वेदिका के समक्ष खड़ा प्रदर्शित किया गया है, जबकि जैन परम्परा के अनुसार नेमि विवाह-स्थल पर गये बिना मार्ग से ही दीक्षा के लिए लौट पड़े थे।[7]

कुम्भारिया के शान्तिनाथ मन्दिर की पश्चिमी भ्रमिका के पांचवें वितान पर नेमि के जीवनदृश्य हैं (चित्र २९)। सम्पूर्ण दृश्यावली तीन आयतों में विभक्त है। बाहरी आयत मे पूर्व और उत्तर की ओर नेमि के पूर्वभव (महाराज शंख) के चित्रण हैं। महाराज शंख को अपनी भार्या यशोमती, योद्धाओं एवं सेवकों के साथ आमूर्तित किया गया है। पश्चिम की ओर नेमि की माता शिवा शय्या पर लेटी हैं। समीप ही १४ मांगलिक स्वप्न और नेमि के माता-पिता की वार्तालाप में संलग्न मूर्तियां और राजा समुद्रविजय की विजयों के दृश्य हैं। दूसरे आयत में दक्षिण की ओर शिवादेवी नवजात शिशु के साथ लेटी हैं। आगे नैगमेषी द्वारा शिशु को जन्माभिषेक के लिए मेरु पर्वत पर ले जाने का दृश्य है। आगे कलशधारी

---

१ चन्द्र, प्रमोद, पू०नि०, पृ० ११५

२ दीक्षित, एस०के०, ए गाईड टू दि स्टेट म्यूजियम धुबेला (नवगांव), विन्ध्यप्रदेश, नवगांव, १९५९, पृ० १२

३ जैन, बालचन्द्र, 'धुबेला संग्रहालय के जैन मूर्ति लेख', अनेकान्त, वर्ष १९, अं० ४, पृ० २४४

४ कीलहार्न, एफ०, 'ऑन ए जैन स्टैचू इन दि हार्निमन म्यूजियम', ज०रा०ए०सो०, १८९८, पृ० १०१–०२

५ प्रसाद, एच० के०, पू०नि०, पृ० २८७

६ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १२९, १३२; कुरेशी, मुहम्मद हमीद, पू०नि०, पृ० २८२

७ त्रि०श०पु०च०, खं० ५, गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज, बड़ौदा, १९६२, पृ० २५८–६०

देवों और वज्र से युक्त इन्द्र की मूर्तियां हैं। चामर एवं कलश धारण करने वाली आकृतियों से वेष्टित इन्द्र की गोद में एक शिशु विराजमान है।

पश्चिम की ओर रथ पर बैठे नेमि को बारात के साथ विवाह-स्थल की ओर जाते हुए दिखाया गया है। साथ में खड्गधारी और अश्वारोही योद्धाओं की एवं दूसरे लोगों की आकृतियां भी प्रदर्शित हैं। आगे एक पिंजरे में वन्य शूकर, मृग एवं मेष जैसे पशुओं की आकृतियां हैं। इन्हीं पशुओं के भावी वध की बात जानकर नेमि ने विवाह न करने और दीक्षा लेने का निश्चय किया था। समीप ही विवाह-मण्डप की वेदिका के दोनों ओर राजीमती और नेमि की आकृतियां खड़ी हैं। पूर्वोक्त सन्दर्भ में यह चित्रण परम्परा के विरुद्ध ठहरता है।

तीसरे आयत में दक्षिण की ओर नेमि के विवाह से लौटने का दृश्यांकन है। नेमि रथ में बैठे हैं और समीप ही नमस्कार-मुद्रा में खड़े एक पुरुष की आकृति है। यह आकृति सम्भवतः राजीमती के पिता की है जो दीक्षा ग्रहण के लिए तत्पर नेमि से ऐसा न कर विवाह-मण्डप वापस चलने की प्रार्थना कर रहे हैं। आगे नेमि को शिविका में बैठकर दीक्षा के लिए जाते हुए दरशाया गया है। समीप ही ९ नृत्य एवं वाद्यवादन करती आकृतियां हैं, जो दीक्षा-कल्याणक के अवसर पर आनन्द मग्न हैं। आगे नेमि के आभरणों के परित्याग एवं केश-लुंचन के दृश्य हैं। समीप ही नेमि की कायोत्सर्ग में तपस्यारत मूर्ति भी उत्कीर्ण है। दाहिने छोर पर गिरनार पर्वत और देवालय बने हैं। देवालय में द्विभुज अम्बिका की मूर्ति प्रतिष्ठापित है। पश्चिम की ओर नेमि का समवसरण उत्कीर्ण है जिसमें ऊपर की ओर नेमि की ध्यानस्थ मूर्ति है। समवसरण में परस्पर शत्रुभाव रखने वाले पशु-पक्षियों (गज-सिंह, मयूर-सर्प) को साथ-साथ प्रदर्शित किया गया है। बायीं ओर के जिनालय में नेमि की ध्यानस्थ मूर्ति प्रतिष्ठित है। समीप ही चार उपासकों की मूर्तियां और दो देवालय भी उत्कीर्ण हैं। ये चित्रण गिरनार पर्वत पर नेमि एवं अम्बिका के मन्दिरों के निर्माण से सम्बन्धित हैं।

कुम्भारिया के महावीर मन्दिर की पश्चिमी भ्रमिका के पांचवें वितान पर नेमि के जीवनदृश्य हैं[1] (चित्र २२ वामार्ध)। दक्षिणी छोर पर नेमि के पूर्वभव (शंख) का अंकन है। इसमें शंख के पिता श्रीषेण और शंख की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। दक्षिणी-पश्चिमी छोरों पर कई विश्रामरत मूर्तियां हैं। नीचे 'अपराजित विमान देव' लिखा है। ज्ञातव्य है कि शंख का जीव अपराजित विमान से ही शिवा के गर्भ में आया था। उत्तर की ओर समुद्रविजय एवं हरिवंश (या यदुवंश) के शासकों की कई मूर्तियां हैं। अन्तिम आकृति के नीचे 'समुद्रविजय' उत्कीर्ण है। पश्चिम की ओर नेमि की माता की शय्या पर लेटी आकृति एवं १४ शुभ स्वप्न चित्रित हैं। उत्तर की ओर शिवा देवी शिशु के साथ लेटी हैं। नीचे 'श्रीशिवादेवी रानी प्रसूतिगृह—नेमिनाथ जन्म' अभिलिखित है। आगे नेमि के जन्म-अभिषेक का दृश्य है। पूर्व की ओर नेमि को दो स्त्रियां स्नान करा रही हैं।

आगे कृष्ण की आयुधशाला चित्रित है जिसमें कृष्ण के शंख, गदा, चक्र, खड्ग जैसे आयुध प्रदर्शित हैं। समीप ही नेमि कृष्ण का पांचजन्य शंख बजा रहे हैं। आकृति के नीचे 'श्रीनेमि' लिखा है। जैन ग्रन्थों में उल्लेख है कि एक बार नेमि घूमते हुए कृष्ण की आयुधशाला पहुंच गए, जहां उन्होंने कृष्ण के आयुधों को देखा। कौतुकवश नेमि ने शंख की ओर हाथ बढ़ाया पर आयुधशाला के रक्षक ने नेमि को ऐसा करने से रोका और कहा कि शंख का बजाना तो दूर वे उसे उठा भी नहीं सकेंगे। इस पर नेमि ने शंख को बजा दिया। जब इसकी सूचना कृष्ण को मिली तो वे नेमि की इस अपार शक्ति से सशंकित हो उठे और उन्होंने नेमि से शक्ति परीक्षण की इच्छा व्यक्त की। नेमि ने द्वन्द्व युद्ध के स्थान पर एक दूसरे की भुजा को झुकाकर बल परीक्षण करने को कहा। कृष्ण नेमि की भुजा किंचित भी नहीं झुका सके किन्तु नेमि ने सहजभाव से कृष्ण की भुजा झुका दी। कृष्ण नेमि की इस अपरिमित शक्ति से भयभीत हुए किन्तु बलराम ने कृष्ण को बताया कि चक्रवर्ती और इन्द्र से अधिक शक्तिशाली होने के बाद भी नेमि स्वभाव से शान्त और राज्यलिप्सा से मुक्त हैं। इसी समय

---

१ दक्षिणार्ध पर शान्ति के जीवनदृश्य हैं।

आकाशवाणी भी हुई कि नेमि २२वें जिन हैं, जो अविवाहित रहते हुए ब्रह्मचर्य की अवस्था में ही दीक्षा ग्रहण करेंगे।[1] महावीर मन्दिर में केवल नेमि के शंख बजाने का दृश्य ही उत्कीर्ण है।

कृष्ण की आयुधशाला के समीप वार्तालाप की मुद्रा में वसुदेव-देवकी की मूर्तियां हैं। दक्षिण की ओर नेमि का विवाह-मण्डप है। वेदिका के समीप राजीमती को अपनी एक सखी के साथ वार्तालाप की मुद्रा में दिखाया गया है। आकृतियों के नीचे 'राजीमती' और 'सखी' अभिलिखित हैं। इस दृश्य के ऊपर स्वजनों एवं सैनिकों के साथ नेमि के विवाह के लिए प्रस्थान का दृश्य है। समीप ही पिंजरे में बन्द मृग, शूकर, मेष जैसे पशु उत्कीर्ण हैं। साथ ही विवाह मण्डप की ओर आते और विवाहमण्डप के विपरीत दिशा में जाते हुए दो रथ भी बने हैं, जिनमें नेमि बैठे हैं। दूसरा रथ नेमि के बिना विवाह किये वापिस लौटने का चित्रण है। उत्तर की ओर नेमि की दीक्षा का दृश्य है। नेमि अपने दाहिने-हाथ से केशों का लुंचन कर रहे हैं। ध्यानमुद्रा में विराजमान नेमि के समीप ही हार, मुकुट एवं अंगूठी उत्कीर्ण है जिसका दीक्षा के पूर्व नेमि ने त्याग किया था। समीप ही इन्द्र खड़े हैं जो नेमि के लुंचित केशों को पात्र में संचित कर रहे हैं। बायीं ओर नेमि की कायोत्सर्ग-मुद्रा में तपस्यारत मूर्ति है। समीप ही एक देवालय बना है जिसके नीचे जयन्तनाग (जयन्त नगा) लिखा है। मध्य में नेमि का समवसरण है। समवसरण के समीप ही नेमि की दो ध्यानस्थ मूर्तियां भी हैं। समीप ही द्विभुजा अम्बिका भी आमूर्तित है।

विमलवसही की देवकुलिका १० के वितान के वृत्तों में मध्य में कृष्ण एवं उनकी रानियों और नेमि को जल-क्रीड़ा करते हुए दिखाया गया है। जैन परम्परा में उल्लेख है कि समुद्रविजय के अनुरोध पर कृष्ण नेमि को विवाह के लिए सहमत करने के उद्देश्य से जलक्रीड़ा के लिए ले गए थे।[2] दूसरे वृत्त में कृष्ण की आयुधशाला एवं कृष्ण और नेमि के शक्ति परीक्षण के दृश्य हैं। दृश्य में कृष्ण बैठे हैं और नेमि उनके सामने खड़े हैं। दोनों की भुजाएं अभिवादन की मुद्रा में उठी हैं। आगे नेमि को कृष्ण की गदा घुमाते और कृष्ण को नेमि की भुजा झुकाने का असफल प्रयास करते हुए दिखाया गया है। नेमि की भुजा तनिक भी नहीं झुकी है। अगले दृश्य में नेमि कृष्ण की भुजा केवल एक हाथ से झुका रहे हैं। कृष्ण की भुजा झुकी हुई है। समीप ही नेमि की पांचजन्य शंख बजाते एवं धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाते हुए मूर्तियां भी उत्कीर्ण हैं। धनुष दो टुकड़ों में खण्डित हो गया है। आगे बलराम एवं कृष्ण की वार्तालाप में संलग्न मूर्तियां हैं।

तीसरे वृत्त में नेमि के विवाह का दृश्यांकन है। प्रारम्भ में एक पुरुष-स्त्री युगल को वार्तालाप की मुद्रा में दिखाया गया है। आगे विवाह-मण्डप उत्कीर्ण है जिसके समीप पिंजरों में बन्द मृग, शूकर, सिंह जैसे पशु चित्रित हैं। आगे नेमि को रथ में बैठकर विवाह-मण्डप की ओर जाते हुए दिखाया गया है। इस रथ के पास ही विवाह-मण्डप से विपरीत दिशा में जाता हुआ एक दूसरा रथ भी उत्कीर्ण है। यह नेमि के विवाह-स्थल पर पहुंचने से पूर्व ही वापिस लौटने का चित्रण है। आगे नेमि की ध्यानमुद्रा में एक मूर्ति है जिसमें नेमि दाहिने हाथ से अपने केशों का लुंचन कर रहे हैं। नेमि के बायीं ओर चार आकृतियां हैं और दाहिनी ओर इन्द्र खड़े हैं। इन्द्र नेमि के लुंचित केशों को पात्र में संचित कर रहे हैं। अगले दृश्य में नेमि के कैवल्य प्राप्ति का चित्रण है। नेमि ध्यानमुद्रा में विराजमान हैं और उनके दोनों ओर कलशधारी एवं मालाधारी आकृतियां बनी हैं।[3]

लूणवसही की देवकुलिका ११ के वितान पर कृष्ण एवं जरासन्ध के युद्ध, नेमि के विवाह एवं दीक्षा के विस्तृत चित्रण हैं।[4] सम्पूर्ण दृश्यावली सात पंक्तियों में विभक्त है। चौथी पंक्ति में विवाह-स्थल की ओर जाता हुआ नेमि का रथ

---

१ त्रि०श०पु०च०, खं० ५, गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज, बड़ौदा, १९६२, पृ० २४८–५०; हस्तीमल, पू०नि०, पृ० १८५–८९

२ त्रि०श०पु०च०, खं० ५, गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज, बड़ौदा, १९६२, पृ० २५०–५५

३ जयन्त विजय, मुनिश्री, पू०नि०, पृ० ६७–६९ ४ वही, पृ० १२२

उत्कीर्ण है। रथ के समीप ही पिंजरे में बन्द शूकर, मृग जैसे पशु चित्रित हैं। विवाह-मण्डप में वेदिका के एक ओर नेमि की और दूसरी ओर खड़ी राजीमती की मूर्ति है। नेमि की हथेली पर राजीमती की हथेली रखी है। विवाह-मण्डप के समीप उग्रसेन का महल है। पांचवीं पंक्ति में विवाह के बाद बारात के वापिस लौटने का दृश्य है। एक शिबिका में दो आकृतियां बैठी हैं। कहीं ऐसा तो नहीं कि शिबिका की दो आकृतियां नेमि के विवाह के बाद राजीमती के साथ वापिस लौटने का चित्रण है? आगे नेमि को गिरनार पर्वत पर कायोत्सर्ग में तपस्यारत प्रदर्शित किया गया है। छठीं पंक्ति में नेमि के दीक्षा-कल्याणक का दृश्य है। लूणवसही की देवकुलिका ९ के वितान के दृश्यों की भी संभावित पहचान नेमि के जीवनदृश्यों से की गई है।[1]

कल्पसूत्र के चित्रों में सबसे पहले नेमि के पूर्वभव का अंकन है। आगे नेमि के शंख लांछन के पूजन, नेमि के जन्म एवं जन्म-अभिषेक के दृश्य हैं। तदुपरान्त नेमि और कृष्ण के शक्ति परीक्षण के चित्र हैं। चित्र में चतुर्भुज कृष्ण को दो भुजाओं से नेमि की भुजा झुकाने का प्रयास करते हुए दिखाया गया है। कृष्ण के समीप ही उनके आयुध—शंख, चक्र, गदा एवं पद्म चित्रित हैं। अगले चित्रों में नेमि के विवाह और दीक्षा के दृश्य हैं। आगे नेमि का समवसरण और ध्यानमुद्रा में विराजमान नेमि के चित्र हैं।[2]

विश्लेषण

विभिन्न क्षेत्रों की मूर्तियों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि ऋषभ, पार्श्व और महावीर के बाद नेमि ही उत्तर भारत के सर्वाधिक लोकप्रिय जिन थे। नेमि के जीवनदृश्यों के अंकन अन्य जिनों की तुलना में अधिक हैं। कला में ऋषभ और पार्श्व के बाद नेमि की ही मूर्ति के लक्षण सुनिश्चित हुए। मथुरा में कुषाणकाल में नेमि के साथ बलराम और कृष्ण का अंकन प्रारम्भ हुआ। २४ जिनों में से नेमि का शंख लांछन सबसे पहले प्रदर्शित हुआ। राजगिर की ल० चौथी शती ई० की मूर्ति इसका प्रमाण है। ल० सातवीं शती ई० को भारत कला भवन, वाराणसी (२१२) की मूर्ति में नेमि के साथ यक्ष-यक्षी भी निरूपित हुए। अधिकांश उदाहरणों में नेमि के साथ यक्ष-यक्षी के रूप में सर्वानुभूति (या कुबेर) एवं अम्बिका उत्कीर्ण हैं। देवगढ़ एवं राज्य संग्रहालय, लखनऊ की कुछ मूर्तियों में सामान्य लक्षणों वाले यक्ष-यक्षी भी निरूपित हैं। गुजरात एवं राजस्थान की श्वेतांबर मूर्तियों में लांछन के स्थान पर पीठिका-लेखों में नेमि के नामोल्लेख की परम्परा ही प्रचलित थी। मथुरा एवं देवगढ़ की कुछ स्वतन्त्र मूर्तियों (१०वीं–११वीं शती ई०) में नेमि के साथ बलराम और कृष्ण भी आमूर्तित हैं।

(२३) पार्श्वनाथ

जीवनवृत्त

पार्श्वनाथ इस अवसर्पिणी के तेईसवें जिन हैं। पार्श्व को जैन धर्म का वास्तविक संस्थापक माना गया है। वाराणसी के महाराज अश्वसेन उनके पिता और वामा (या वर्मिला) उनकी माता थीं।[3] जन्म के समय बालक सर्प के चिह्न से चिह्नित था। आवश्यकचूर्णि एवं त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र में उल्लेख है कि गर्भकाल में माता ने एक रात अपने पार्श्व में सर्प को देखा था, इसी कारण बालक का नाम पार्श्वनाथ रखा गया। उत्तरपुराण के अनुसार जन्माभिषेक के बाद इन्द्र ने बालक का नाम पार्श्वनाथ रखा। पार्श्व का विवाह कुशस्थल के शासक प्रसेनजित की पुत्री प्रभावती से हुआ। दिगंबर ग्रन्थों में पार्श्व के विवाह-प्रसंग का अनुल्लेख है। श्वेतांबर परम्परा के अनुसार नेमि के भित्ति चित्रों को देखकर, और दिगंबर परम्परा के अनुसार ऋषभ के त्यागमय जीवन की बातों को सुनकर, तीस वर्ष की अवस्था में

---

१ जयन्त विजय, मुनिश्री, पू०नि०, पृ० १२१

२ ब्राउन, डब्ल्यू० एन०, पू०नि०, पृ० ४५–४९, फलक ३०–३४, चित्र १०१–१४

३ उत्तरपुराण और महापुराण (पुष्पदंतकृत) में पार्श्व के माता-पिता का नाम क्रमशः ब्राह्मी और विश्वसेन बताया गया है।

पार्श्व के मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ। पार्श्व ने आश्रमपद उद्यान में अशोक वृक्ष के नीचे पंचमुष्टि में केशों का लुंचन कर दीक्षा की।

पार्श्व वाराणसी से शिवपुरी नगर गये और वहीं कौशाम्बवन में कायोत्सर्ग में खड़े होकर तपस्या प्रारम्भ की। धरणेन्द्र ने धूप से पार्श्व की रक्षा के लिए उनके मस्तक पर छत्र की छाया की थी। अपने एक भ्रमण में पार्श्व तापसाश्रम पहुंचे और सन्ध्या हो जाने के कारण वहीं एक वट वृक्ष के नीचे कायोत्सर्ग में खड़े होकर तपस्या प्रारम्भ की। उसी समय आकाशमार्ग से मेघमाली (या शम्बर) नाम का असुर (कमठ का जीव) आ रहा था। जब उसने तपस्यारत पार्श्व को देखा तो उसे पार्श्व से अपने पूर्वजन्मों के वैर का स्मरण हो आया। मेघमाली ने पार्श्व की तपस्या को भंग करने के लिए तरह-तरह के उपसर्ग उपस्थित किये। पर पार्श्व पूरी तरह अप्रभावित और अविचलित रहे। मेघमाली ने सिंह, गज, वृश्चिक, सर्प और भयंकर बैताल आदि के स्वरूप धारण कर पार्श्व को अनेक प्रकार की यातनाएं दीं। उपसर्गों के बाद भी जब पार्श्व विचलित नहीं हुए तो मेघमाली ने माया से भयंकर वृष्टि प्रारम्भ की जिससे सारा वन प्रदेश जलमग्न हो गया। पार्श्व के चारों ओर वर्षा का जल बढ़ने लगा जो धीरे-धीरे उनके घुटनों, कमर, गर्दन और नासाग्र तक पहुंच गया। पर पार्श्व का ध्यान भंग नहीं हुआ। उसी समय पार्श्व की रक्षा के लिए नागराज धरणेन्द्र पद्मावती एवं वैरोट्या जैसी नाग देवियों के साथ पार्श्व के समीप उपस्थित हुए। धरणेन्द्र ने पार्श्व के चरणों के नीचे दीर्घनालयुक्त पद्म की रचना कर उन्हें ऊपर उठा दिया, उनके सम्पूर्ण शरीर को अपने शरीर से ढंक लिया; साथ ही शीर्ष भाग के ऊपर सप्तसर्पफणों का छत्र भी प्रसारित किया।[1] उत्तरपुराण के अनुसार धरणेन्द्र ने पार्श्व को चारों ओर से घेर कर अपने फणों पर उठा लिया था, और उनकी पत्नी पद्मावती ने शीर्ष भाग में वज्रमय छत्र की छाया की थी।[2] अन्त में मेघमाली ने अपनी पराजय स्वीकार कर पार्श्व से क्षमायाचना की। इसके बाद धरणेन्द्र भी देवलोक चले गये। उपर्युक्त परम्परा के कारण ही मूर्तियों में पार्श्व के मस्तक पर सात सर्पफणों के छत्र प्रदर्शन की परम्परा प्रारम्भ हुई। मूर्तियों में पार्श्व के घुटनों या चरणों तक सर्प की कुण्डलियों का प्रदर्शन भी इसी परम्परा से निर्देशित है। पार्श्व को कभी-कभी तीन और ग्यारह सर्पफणों के छत्र से भी युक्त दिखाया गया है।[3]

पार्श्व को वाराणसी के निकट आश्रमपद उद्यान में धातकी वृक्ष के नीचे कायोत्सर्ग-मुद्रा में केवल-ज्ञान और १०० वर्ष की अवस्था में सम्मेद शिखर पर निर्वाण-पद प्राप्त हुआ।[4]

प्रारम्भिक मूर्तियां

पार्श्व का लांछन सर्प है और यक्ष-यक्षी पार्श्व (या वामन) और पद्मावती हैं। दिगंबर परम्परा में यक्ष का नाम धरण है। पीठिका पर पार्श्व के सर्प लांछन के उत्कीर्णन की परम्परा लोकप्रिय नहीं थी, पर सिर के ऊपर सात सर्पफणों का छत्र सदैव प्रदर्शित किया गया है। आगे के अध्ययन में शीर्षभाग के सर्पफणों का उल्लेख तभी किया जायगा जब उनकी संख्या सात से कम या अधिक होगी।

पार्श्व की प्राचीनतम मूर्तियां पहली शती ई० पू० की हैं। इनमें पार्श्व सर्पफणों के छत्र से युक्त हैं। ये मूर्तियां चौसा एवं मथुरा से मिली हैं। मथुरा की मूर्ति आयागपट पर उत्कीर्ण है। इसमें पार्श्व ध्यानमुद्रा में विराजमान हैं।[5] चौसा (भोजपुर, बिहार)[6] एवं प्रिंस ऑव वेल्स संग्रहालय, बम्बई[7] की दो मूर्तियों में पार्श्व निर्वस्त्र हैं और कायोत्सर्ग-मुद्रा

---

१ त्रि०श०पु०च०, खं० ५, गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज १३९, बड़ौदा, १९६२, पृ० ३९४-९६; पासनाहचरिउ १४.२६; पार्श्वनाथचरित्र ६.१९२-९३

२ उत्तरपुराण ७३.१३९-४०

३ भट्टाचार्य, बी०सी०, जै०इ०, पृ० ८२

४ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० २८१-३३२

५ राज्य संग्रहालय, लखनऊ, जे २५३

६ शाह, यू०पी०, अकोटा ब्रोन्जेज, फलक १ बी

७ स्ट०जै०आ०, पृ० ८-९, पार्श्व के मस्तक पर पांच सर्पफणों का छत्र है।

में खड़े हैं। कुषाण काल में ऋषभ के बाद पार्श्व की ही सर्वाधिक मूर्तियां उत्कीर्ण हुई। कुषाण कालीन मूर्तियां मथुरा एवं चौसा से मिली हैं। इनमें सात सर्पफणों के छत्र से शोभित पार्श्व सदैव निर्वस्त्र हैं। चौसा की मूर्ति में पार्श्व (पटना संग्रहालय, ६५३२) कायोत्सर्ग में खड़े हैं। मथुरा की अधिकांश मूर्तियों में संप्रति पार्श्व के मस्तक ही सुरक्षित हैं।[1] राज्य संग्रहालय, लखनऊ में पार्श्व की तीन ध्यानस्थ मूर्तियां सुरक्षित हैं (चित्र२०)।[2] स्वतन्त्र मूर्तियों के अतिरिक्त जिन-चौमुखी-मूर्तियों में भी पार्श्व की कायोत्सर्ग मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। कुषाणकाल में पार्श्व के सर्पफणों पर स्वस्तिक, धर्मचक्र, त्रिरत्न, श्रीवत्स, कलश, मत्स्ययुगल और पद्मकलिका जैसे मांगलिक चिह्न भी अंकित किये गये।[3]

ल० चौथी-पांचवीं शती ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति राज्य संग्रहालय, लखनऊ (जे १००) में है। मूलनायक के दक्षिण पार्श्व में एक पुरुष और वाम पार्श्व में सर्पफण से युक्त एक स्त्री आकृति खड़ी है। स्त्री के दोनों हाथों में एक छत्र है। ल० छठीं शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा (१८.१५०५) में है। इसमें सर्प की कुण्डलियां पार्श्व के चरणों तक प्रसारित हैं। मूलनायक के दोनों ओर सर्पफण के छत्र से युक्त स्त्री-पुरुष आकृतियां खड़ी हैं। दक्षिण पार्श्व की पुरुष आकृति के कर में चामर और वाम पार्श्व की स्त्री आकृति के कर में छत्र प्रदर्शित हैं। तुलसी संग्रहालय, रामवन (सतना) में भी ल० पांचवीं-छठीं शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति है। पार्श्व नागकुण्डलियों पर आसीन और दो चामरधरों से वेष्टित हैं।[4]

अकोटा (गुजरात) और रोहतक (दिल्ली) से सातवीं शती ई० की क्रमशः आठ और एक श्वेतांबर मूर्तियां मिली हैं। रोहतक की मूर्ति में पार्श्व कायोत्सर्ग में खड़े हैं।[5] अकोटा की केवल एक ही मूर्ति में पार्श्व कायोत्सर्ग में खड़े हैं। कायोत्सर्ग मूर्ति की पीठिका पर आठ ग्रहों एवं एक सर्पफण के छत्र से युक्त द्विभुज नाग-नागी की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। नाग-नागी के कटि के नीचे के भाग सर्पाकार और आपस में गुम्फित हैं। एक हाथ से अभयमुद्रा व्यक्त है और दूसरे में सम्भवतः फल है। दो मूर्तियों में मूलनायक के दोनों ओर दो कायोत्सर्ग जिन आमूर्तित हैं। पीठिका पर आठग्रहों एवं सर्वानुभूति और अम्बिका की मूर्तियां हैं। अन्य उदाहरणों में भी यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका ही हैं।[6]

विश्लेषण—उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि सातवीं शती ई० तक पार्श्व का लांछन नहीं उत्कीर्ण हुआ किन्तु सात सर्पफणों के छत्र का प्रदर्शन पहली शती ई० पू० में ही प्रारम्भ हो गया। सातवीं शती ई० में पार्श्व की मूर्तियों (अकोटा) में यक्ष-यक्षी भी निरूपित हुए। यक्ष-यक्षी के रूप में सर्वानुभूति एवं अम्बिका और नाग-नागी निरूपित हैं।

पूर्वमध्ययुगीन मूर्तियां

गुजरात-राजस्थान—इस क्षेत्र से प्रचुर संख्या में पार्श्व की मूर्तियां मिली हैं। ल० सातवीं शती ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति धांक गुफा में है। पार्श्व निर्वस्त्र हैं और उनके यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका हैं।[7] पार्श्व की दो ध्यानस्थ मूर्तियां ओसिया के महावीर मन्दिर के गूढ़मण्डप में हैं। इनमें पार्श्व नाग की कुण्डलियों के आसन पर बैठे हैं। आठवीं शती ई० की दो श्वेतांबर मूर्तियां वसन्तगढ़ (सिरोही) से मिली हैं। इनमें पार्श्व कायोत्सर्ग में खड़े हैं और यक्ष-यक्षी

१ तीन उदाहरण राज्य संग्रहालय, लखनऊ (जे ९६, जे ११३, जे ११४) एवं दो अन्य क्रमशः भारत कला भवन, वाराणसी (२०७४८) एवं पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा (बी ६२) में हैं।

२ जे ३९, जे ६९, जे ७७

३ राज्य संग्रहालय, लखनऊ (जे ३९, जे ११३) एवं पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा (बी ६२)

४ जैन, नीरज, 'तुलसी संग्रहालय, रामवन का जैन पुरातत्व', अनेकान्त, वर्ष १६, अं० ६, पृ० २७९

५ भट्टाचार्य, बी० सी०, पू०नि०, फलक ६; स्ट०जै०आ०, पृ० १७

६ शाह, यू० पी०, अकोटा ब्रोन्जेज, पृ० ३३, ३५-३७, ३९, ४२, ४४

७ संकलिया, एच० डी०, दि आर्किअलाजी ऑव गुजरात, बम्बई, १९४१, पृ० १६७; स्ट०जै०आ०, पृ० १७

सर्वानुभूति एवं अम्बिका हैं। पीठिका पर आठ ग्रहों की भी मूर्तियां हैं।[1] अकोटा से भी आठवीं शती ई० की दो श्वेतांबर मूर्तियां मिली हैं।[2] एक उदाहरण में पार्श्व कायोत्सर्ग में निरूपित हैं और उनकी पीठिका पर नमस्कार-मुद्रा में सर्पफण के छत्र से युक्त नाग-नागी चित्रित हैं। दूसरी मूर्ति में पीठिका पर आठ ग्रहों एवं सर्वानुभूति और अम्बिका की मूर्तियां हैं।

अकोटा से नवीं-दसवीं शती ई० की भी पांच मूर्तियां मिली हैं।[3] दो मूर्तियों में ध्यानमुद्रा में विराजमान पार्श्व के दोनों ओर दो कायोत्सर्ग जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। पार्श्ववर्ती जिनों के समीप अप्रतिचक्रा एवं वैरोट्या महाविद्याओं की भी मूर्तियां हैं। सभी उदाहरणों में पीठिका पर ग्रहों एवं सर्वानुभूति और अम्बिका की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं।[4] एक उदाहरण में सर्वानुभूति एवं अम्बिका सर्पफण के छत्र से युक्त हैं। एक उदाहरण के अतिरिक्त पार्श्ववर्ती कायोत्सर्ग जिन मूर्तियां सभी में उत्कीर्ण हैं। अकोटा को दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० की एक अन्य मूर्ति के परिकर में सात जिनों और पीठिका पर ग्रहों एवं सर्वानुभूति और अम्बिका की मूर्तियां हैं।[5]

९८८ ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति भड़ौच से मिली है।[6] मूलनायक के पार्श्वों में दो कायोत्सर्ग जिनों और परिकर में अप्रतिचक्रा एवं वैरोट्या महाविद्याओं की मूर्तियां हैं। पीठिका पर नवग्रहों एवं यक्ष-यक्षी की मूर्तियां हैं। यक्ष की मूर्ति खण्डित हो गई है, पर यक्षी अम्बिका ही है। १०३१ ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति वसन्तगढ़ से मिली है।[7] मूर्ति के परिकर में पांच जिनों एवं चार द्विभुज देवियों की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। पीठिका पर सर्वानुभूति एवं अम्बिका और ब्रह्म-शान्ति यक्ष की मूर्तियां हैं।

ओसिया की देवकुलिका १ पर ग्यारहवीं शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति है। यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका ही हैं। १०१९ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति ओसिया के बलानक में सुरक्षित है। सिंहासन के छोरों पर सर्पफणों की छत्रावली वाले द्विभुज यक्ष-यक्षी निरूपित हैं। दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति भरतपुर से मिली है और सम्प्रति राजपूताना संग्रहालय, अजमेर (१७) में सुरक्षित है। यहां पार्श्व के आसन के नीचे और पृष्ठ भाग में सर्प की कुण्डलियां प्रदर्शित हैं। मूलनायक के दोनों ओर तीन सर्पफणों के छत्रों वाले चामरधर सेवक आमूर्तित हैं। चामरधरों के ऊपर तीन सर्पफणों के छत्रों वाली पार्श्व की चार अन्य छोटी मूर्तियां भी उत्कीर्ण हैं। यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका हैं। दो ध्यानस्थ मूर्तियां राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली में हैं।[8] एक मूर्ति नवीं शती ई० की है और दूसरी १०६९ ई० की है। इनमें यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका ही हैं। साथ ही दो पार्श्ववर्ती जिनों, नाग-नागी एवं नवग्रहों की भी मूर्तियां उत्कीर्ण हैं।[9] जिल्वादेवा (गुजरात) से नवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की कई मूर्तियां मिली हैं। ये मूर्तियां सम्प्रति बड़ौदा संग्रहालय में सुरक्षित हैं।[10] इनमें पार्श्व के साथ चामरधर सेवकों, आठ या नौ ग्रहों एवं सर्वानुभूति और अम्बिका की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। एक मूर्ति (१०३६ ई०) में मूलनायक के दोनों ओर दो जिन भी आमूर्तित हैं।[11]

कुम्भारिया के जैन मन्दिरों में भी कई मूर्तियां हैं। महावीर मन्दिर की देवकुलिका १५ की मूर्ति (११ वीं शती ई०) में सिंहासन के दोनों ओर दो जिनों एवं मध्य में शान्तिदेवी की मूर्तियां हैं। परिकर में दो अन्य जिन मूर्तियां

---

१ शाह, यू० पी०, 'ब्रोन्ज होर्ड फ्राम वसन्तगढ़', ललितकला, अं० १–२, पृ० ६०
२ शाह, यू० पी०, अकोटा ब्रोन्जेज, पृ० ४४,४९
३ वही, पृ० ५२–५७
४ एक मूर्ति में यक्ष-यक्षी की पहचान सम्भव नहीं है।
५ शाह, यू०पी०, पू०नि०, पृ० ६०
६ वही, चित्र ५६ ए
७ वही, चित्र ६३ ए
८ क्रमांक ६८.८९, ६६.३७
९ शर्मा, ब्रजेन्द्रनाथ, 'अन्पब्लिश्ड जैन ब्रोन्जेज इन दि नेशनल म्यूजियम', ज०ओ०इं०, खं०१९, अं०३, पृ०२७५-७७
१० शाह, यू०पी०, 'सेवेन ब्रोन्जेज फ्राम जिल्वादेवा', बु०ब०म्यू०, खं० ९, भाग १–२, पृ० ४४–४५
११ वही, पृ० ४९–५०

भी उत्कीर्ण हैं। यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका ही हैं। पार्श्वनाथ मन्दिर की पूर्वी दीवार की एक रथिका में ११०४ ई० की एक मूर्ति का सिंहासन सुरक्षित है। लेख में पार्श्वनाथ का नाम उत्कीर्ण है। पीठिका पर शान्तिदेवी एवं सर्वानुभूति और अम्बिका की मूर्तियां हैं। पार्श्वनाथ मन्दिर की देवकुलिका २३ में ११७९ ई० की एक मूर्ति है। लेख में पार्श्वनाथ का नाम दिया है। पार्श्वनाथ मन्दिर के गूढ़मण्डप में बारहवीं शती ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति है। यहां यक्ष-यक्षी रूप में सर्वानुभूति एवं अम्बिका निरूपित हैं। पार्श्व से सम्बद्ध करने के लिए यक्ष-यक्षी के मस्तकों पर सर्पफणों के छत्र प्रदर्शित हैं। चामरधरों के ऊपर दो ध्यानस्थ जिन आकृतियां भी बनी हैं। ११५७ ई० की एक खड्गासन मूर्ति कुम्भारिया के नेमिनाथ मन्दिर के गूढ़मण्डप में है। सिंहासन-छोरों पर सर्वानुभूति एवं अम्बिका निरूपित हैं। परिकर में १९ उड्डीयमान आकृतियां एवं १४ चतुर्भुजी देवियां चित्रित हैं। देवियों में अधिकांश महाविद्याएं हैं जिनमें केवल अप्रतिचक्रा, वज्रशृंखला, सर्वास्त्र-महाज्वाला, रोहिणी एवं वैरोट्या की पहचान सम्भव है।

विमलवसही की देवकुलिका ४ में ११८८ ई० की एक मूर्ति है जिसके शीर्ष भाग में सात सर्पफणों के छत्र और लेख में पार्श्वनाथ के नाम उत्कीर्ण हैं। ओसिया की मूर्ति के बाद यह दूसरी मूर्ति है जिसमें पार्श्व के साथ पारम्परिक यक्ष-यक्षी निरूपित हैं। मूलनायक के दोनों ओर दो कायोत्सर्ग और दो ध्यानस्थ जिन मूर्तियां हैं। ललितमुद्रा में विराजमान यक्ष पार्श्व एवं यक्षी पद्मावती तीन सर्पफणों की छत्रावलियों से युक्त हैं। विमलवसही की देवकुलिका २५ में भी पार्श्व की एक मूर्ति है। पर यहां यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका हैं। विमलवसही की देवकुलिका ५३ में भी एक मूर्ति (११६५ ई०) है।

ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० की एक दिगंबर मूर्ति राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली (३९.२०२) में है (चित्र ३३)।[1] पार्श्व कायोत्सर्ग में खड़े हैं और सर्प की कुण्डलियां उनके चरणों तक प्रसारित हैं। परिकर में नाग और नागी की वीणा और वेणु बजाती और नृत्य करती हुई ६ मूर्तियां है। मूलनायक के प्रत्येक पार्श्व में एक स्त्री-पुरुष युगल आमूर्तित है जिनके हाथों में चामर एवं पद्म हैं। इस मूर्ति में यक्ष-यक्षी नहीं उत्कीर्ण हैं।

कोटा क्षेत्र में रामगढ़ एवं अटरू से नवीं-दसवीं शती ई० की चार मूर्तियां मिली हैं। ये सभी मूर्तियां कोटा संग्रहालय में सुरक्षित हैं।[2] तीन उदाहरणों में पार्श्व कायोत्सर्ग मे खड़े हैं। सभी में चामरधर सेवक और नाग-नागी की आकृतियां उत्कीर्ण हैं। यक्ष-यक्षी केवल एक ही उदाहरण (३२२) में प्रदर्शित हैं। नवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की सात मूर्तियां गंगा गोल्डेन जुबिली संग्रहालय, बीकानेर में है।[3] सभी उदाहरणों में पार्श्ववर्ती जिनों एवं आठ या नौ ग्रहों की मूर्तियां चित्रित हैं। तीन उदाहरणों में सर्वानुभूति एवं अम्बिका भी निरूपित हैं। लूणवसही की देवकुलिका १० और ३३ में भी दो मूर्तियां (१२३६ ई०) हैं। इनमें भी यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका ही हैं।

विश्लेषण—गुजरात एवं राजस्थान की मूर्तियों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इस क्षेत्र में सात सर्पफणों के छत्र के साथ ही लेखों में पार्श्वनाथ के नामोल्लेख की परम्परा भी लोकप्रिय थी। पर लांछन एवं पारम्परिक यक्ष-यक्षी का निरूपण दुर्लभ है। केवल ओसिया (बलानक) एवं विमलवसही (देवकुलिका ४) की ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० की दो मूर्तियों में ही यक्ष-यक्षी पारम्परिक हैं। अन्य उदाहरणों में यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका हैं। कुछ उदाहरणों में पार्श्व से सम्बन्धित करने के उद्देश्य से यक्ष-यक्षी के सिरों पर सर्पफणों के छत्र भी प्रदर्शित किये गये हैं। पार्श्व के दोनों ओर दो कायोत्सर्ग जिनों एवं परिकर में महाविद्याओं, ग्रहों, शान्तिदेवी आदि के चित्रण विशेष लोकप्रिय थे।

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश—राज्य संग्रहालय, लखनऊ में आठवीं से दसवीं शती ई० के मध्य की दस मूर्तियां हैं।[4] पांच उदाहरणों में पार्श्व ध्यानमुद्रा में आसीन हैं। यक्ष-यक्षी चार ही उदाहरणों में निरूपित हैं। परम्परिक यक्ष-यक्षी

१ अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, चित्र संग्रह ए २.२८

२ क्रमांक ३१९, ३२०, ३२१, ३२२

३ श्रीवास्तव, वी० एस०, पू०नि०, पृ० १८–१९

४ क्रमांक जे ७९४, जे ८८२, जे ८५९, जे ८४६, ४८.१८२, जी ३१०, ४०.१२१, जी २२३

केवल बटेश्वर (आगरा) की ग्यारहवीं शती ई० की एक खड्गासन मूर्ति (जे ७९४) में ही उत्कीर्ण हैं। इसमें यक्ष-यक्षी पांच सर्पफणों की छत्रावली से युक्त हैं। पद्मावती सिंहासन के मध्य में और धरणेन्द्र बायें छोर पर उत्कीर्ण हैं। यक्ष के ऊपर पद्म और वरद-(या अभय-) मुद्रा प्रदर्शित करनेवाली दो देव आकृतियां भी चित्रित हैं। अन्य तीन उदाहरणों में यक्ष-यक्षी सामान्य लक्षणों वाले हैं। ९७९ ई० की एक मूर्ति के अतिरिक्त अन्य सभी में प्रातिहार्यों एवं सहायक देवों की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं।

राजघाट (वाराणसी) की आठवीं शती ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति (४८.१८२) के परिकर में दो छोटी जिन मूर्तियां और मूलनायक के पार्श्वों में सर्पफणों की छत्रावली वाले पुरुष-स्त्री सेवक उत्कीर्ण हैं। वाम पार्श्व की स्त्री आकृति की दाहिनी भुजा में लम्बे दण्डवाला छत्र है। छत्र मूलनायक के मस्तक के ऊपर प्रदर्शित है। फलतः त्रिछत्र नहीं प्रदर्शित हैं। उन सभी मूर्तियों में जिनमें पार्श्व के सिर के ऊपर छत्र सेविका द्वारा धारित हैं, त्रिछत्र नहीं प्रदर्शित हैं। ल० नवीं शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति (जी ३१०) में मूलनायक के पार्श्वों में तीन सर्पफणों के छत्रों वाली पुरुष-स्त्री सेवक आकृतियां निरूपित हैं। सहेठ-महेठ की एक ध्यानस्थ मूर्ति (जे८५९, ११वीं शतीई०) में पार्श्व के शरीर के दोनों ओर सर्प की कुण्डलियां और परिकर में चार जिन मूर्तियां बनी हैं। महोबा (हमीरपुर) की कायोत्सर्ग मूर्ति (जे ८४६, १२वीं शती ई०) में सामान्य चामरधरों के अतिरिक्त दाहिनी ओर एक और चामरधर की मूर्ति है, जो आकार में पार्श्वनाथ की मूर्ति के समान है। यह धरणेन्द्र यक्ष की मूर्ति है जिसे पार्श्व के चामरधर के रूप में निरूपित कर यहां विशेष प्रतिष्ठा दी गई है। ११९६ ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति (जी २२३) में पीठिका पर सर्प लांछन उत्कीर्ण है। इसमें पार्श्व के स्कन्धों पर जटाएं भी प्रदर्शित हैं।

देवगढ़ में नवीं से ग्यारहवीं शती ई० के मध्य की ३० मूर्तियां हैं। २३ उदाहरणों में पार्श्व कायोत्सर्ग में खड़े हैं। नवीं-दसवीं शती ई० की कई विशाल मूर्तियों में पार्श्व साधारण पीठिका पर खड़े हैं। ऐसी अधिकांश मूर्तियां मन्दिर १२ की चहारदीवारी पर हैं। इन मूर्तियों में मूलनायक के दोनों ओर सर्पफणों की छत्रावली वाली या बिना सर्पफणों वाली स्त्री-पुरुष चामरधर मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। कुछ उदाहरणों में पुरुष की भुजा में चामर और स्त्री की भुजा में लम्बा छत्र प्रदर्शित है। इन विशाल मूर्तियों में भामण्डल एवं उड्डीयमान मालाधरों के अतिरिक्त अन्य कोई प्रातिहार्य या सहायक आकृति नहीं उत्कीर्ण है।

देवगढ़ की सभी मूर्तियों में सर्प की कुण्डलियां पार्श्व के घुटनों या चरणों तक प्रसारित हैं। कुछ उदाहरणों में पार्श्व सर्प की कुण्डलियों पर ही विराजमान भी हैं। पार्श्व के साथ लांछन केवल एक मूर्ति (मन्दिर १२ की पश्चिमी चहारदीवारी, ११वीं शती ई०) में उत्कीर्ण है। कायोत्सर्ग में खड़े पार्श्व की पीठिका पर लांछन के रूप में कुक्कुट-सर्प बना है (चित्र ३१)। मन्दिर ६ की दसवीं शती ई० की एक खड्गासन मूर्ति में पार्श्व के दोनों ओर तीन सर्पफणों वाली दो नाग आकृतियां बनी हैं (चित्र ३२)। मन्दिर ६ और ९ की दो मूर्तियों में पार्श्व के कन्धों पर जटाएं भी प्रदर्शित हैं। दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० की छह मूर्तियों में सामान्य लक्षणों वाले द्विभुज यक्ष-यक्षी निरूपित हैं। तीन उदाहरणों में इनके शीर्ष भाग में सर्पफणों के छत्र भी प्रदर्शित हैं।[1] पारम्परिक यक्ष-यक्षी केवल एक ही मूर्ति (११वीं शती ई०) में निरूपित हैं। यह मूर्ति मन्दिर १२ के समीप अरक्षित अवस्था में पड़ी है। चतुर्भुज यक्ष-यक्षी सर्पफणों के छत्रों से युक्त हैं। पार्श्व के कन्धों पर जटाएं प्रदर्शित हैं।

मन्दिर १२ के सभामण्डप एवं पश्चिमी चहारदीवारी की दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० की दो खड्गासन मूर्तियों में पार्श्व के साथ यक्षी रूप में अम्बिका आमूर्तित है। इनमें यक्ष नहीं उत्कीर्ण है। मन्दिर १२ के प्रदक्षिणापथ की दसवीं शती ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति में मूलनायक के दाहिने और बायें पार्श्वों में एक सर्पफण की छत्रावली से युक्त क्रमशः चामरधर पुरुष एवं छत्रधारिणी स्त्री आकृतियां उत्कीर्ण हैं। पांच अन्य मूर्तियों में भी ऐसी ही आकृतियां बनी हैं।[2]

---

१ मन्दिर ९ की एक एवं मन्दिर १२ की दो मूर्तियां

२ मन्दिर ८ एवं १२

मन्दिर १२ की पश्चिमी चहारदीवारी की एक ध्यानस्थ मूर्ति (ल० ११वीं शती ई०) में पुरुष के हाथ में छत्र प्रदर्शित है। मन्दिर ४ की कायोत्सर्ग मूर्ति (११वीं शती ई०) में चामरधर सेवक तीन सर्पफणों के छत्र से युक्त हैं। मन्दिर १२ के अर्धमण्डप की एक कायोत्सर्ग मूर्ति (११वीं शती ई०) में नवग्रहों की मूर्तियां भी उत्कीर्ण हैं। दक्षिण पार्श्व में चामरधर के समीप दो स्त्री आकृतियां खड़ी हैं। वामपार्श्व में द्विभुज अम्बिका है। मन्दिर ९, साहू जैन संग्रहालय, देवगढ़, एवं मन्दिर ४ की मूर्तियों के परिकर में चार एवं मन्दिर ३ एवं मन्दिर १२ की पश्चिमी चहारदीवारी की मूर्तियों में दो छोटी जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं।

ल० नवीं शती ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति रींवा (म० प्र०) के समीप गुर्गी नामक स्थान से मिली है और इलाहाबाद संग्रहालय (ए० एम० ४९९) में सुरक्षित है।[1] इसमें सर्प की कुण्डलियां चरणों तक बनी हैं। दोनों पार्श्वों में क्रमशः एक सर्पफण से युक्त चामरधर सेवक और छत्रधारिणी सेविका आमूर्तित हैं। कगरोल (मथुरा) से मिली १०३४ ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा (२८७४) में है। यहां सिंहासन के छोरों पर सामान्य लक्षणों वाले द्विभुज यक्ष-यक्षी निरूपित हैं।

खजुराहो में दसवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की ग्यारह मूर्तियां हैं। छह उदाहरणों में पार्श्व कायोत्सर्ग में खड़े हैं। सात उदाहरणों में सर्प की कुण्डलियां चरणों तक प्रसारित हैं। पांच उदाहरणों में पार्श्व सर्प की कुण्डलियों पर ही विराजमान हैं। यक्ष-यक्षी केवल चार ही उदाहरणों में निरूपित हैं। दो कायोत्सर्ग मूर्तियों (मन्दिर २८ एवं ५) में मूलनायक के पार्श्वों में तीन सर्पफणों वाले स्त्री-पुरुष चामरधर उत्कीर्ण हैं। दो ध्यानस्थ मूर्तियों (११ वीं शती ई०) में सर्पफणों के छत्रों से युक्त चामरधर सेवक और छत्रधारिणी सेविका हैं।[2] मन्दिर ५ की बारहवीं शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति में सामान्य चामरधरों के समीप दो अन्य स्त्री-पुरुष चामरधर चित्रित हैं जिनके शीर्षभाग में सात सर्पफणों के छत्र हैं। ये धरणेन्द्र और पद्मावती की मूर्तियां हैं। मूर्ति के परिकर में एक छोटी जिन, बायें छोर पर द्विभुज देवी और पीठिका के मध्य में चतुर्भुज सरस्वती (या शान्तिदेवी) की मूर्तियां हैं। स्थानीय संग्रहालय की बारहवीं शती ई० की एक मूर्ति (के ९) में पीठिका पर चार ग्रहों एवं परिकर में ४६ जिनों की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं।

स्थानीय संग्रहालय की ग्यारहवीं शती ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति (के ५) में चतुर्भुज यक्ष और द्विभुज यक्षी निरूपित हैं। यक्षी तीन सर्पफणों की छत्रावली से युक्त है। परिकर में छह छोटी जिन मूर्तियां भी उत्कीर्ण हैं। पुरातात्विक संग्रहालय, खजुराहो की बारहवीं शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति (१६१८) में द्विभुज यक्ष-यक्षी सर्पफणों से शोभित हैं। परिकर में चार छोटी जिन मूर्तियां भी उत्कीर्ण हैं। स्थानीय संग्रहालय की ग्यारहवीं शती ई० की दो अन्य मूर्तियों (के ६८, १००) में भी यक्ष-यक्षी सर्पफणों की छत्रावलियों से युक्त हैं। एक उदाहरण (के ६८) में चतुर्भुज यक्ष-यक्षी धरणेन्द्र एवं पद्मावती हैं। इस मूर्ति के परिकर में २० जिन मूर्तियां भी उत्कीर्ण हैं। मन्दिर १ और जार्डिन संग्रहालय, खजुराहो (१६६८) की दो ध्यानस्थ मूर्तियों के परिकर में भी क्रमशः १८ और ६ जिन मूर्तियां हैं। धुबेला संग्रहालय की एक ध्यानस्थ मूर्ति (४९, ११ वीं–१२ वीं शती ई०) में चतुर्भुज नागी एवं द्विभुज नाग की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं।[3]

विश्लेषण—उत्तरप्रदेश एवं मध्यप्रदेश की मूर्तियों के विस्तृत अध्ययन से ज्ञात होता है कि इस क्षेत्र में पार्श्व के साथ सात सर्पफणों के छत्र का प्रदर्शन नियमित था और अधिकांशतः इसी के आधार पर पार्श्व की पहचान भी की गई है। पार्श्व के साथ लांछन केवल दो ही मूर्तियों (११वीं–१२वीं शती ई०) में उत्कीर्ण हैं। ये मूर्तियां राज्य संग्रहालय, लखनऊ (जी २२३) एवं देवगढ़ के मन्दिर १२ की चहारदीवारी पर हैं। पार्श्व के साथ यक्ष-यक्षी युगल का निरूपण विशेष लोकप्रिय नहीं था। पारम्परिक यक्ष-यक्षी, धरणेन्द्र-पद्मावती, केवल देवगढ़, खजुराहो एवं राज्य संग्रहालय, लखनऊ

---

१ चन्द्र, प्रमोद, पू०नि०, पृ० ११५   २ मन्दिर १ एवं जार्डिन संग्रहालय, खजुराहो, १६६८

३ दीक्षित, एस०के०, ए गाइड टू दि स्टेट म्यूजियम, धुबेला (नवगांव), विन्ध्यप्रदेश, नवगांव, १९५७, पृ० १४–१५

की ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० की ही कुछ मूर्तियों में निरूपित हैं। अधिकांशतः पार्श्व के साथ सामान्य लक्षणों वाले द्विभुज यक्ष-यक्षी निरूपित हैं जिनके सिरों पर कभी-कभी सर्पफणों के छत्र भी प्रदर्शित हैं। सामान्य लक्षणों वाले यक्ष-यक्षी का अंकन ल० दसवीं शती ई० में ही प्रारम्भ हो गया। कुछ उदाहरणों में यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका भी हैं। सर्पफणों के छत्रों से युक्त या बिना सर्पफणों वाले स्त्री-पुरुष चामरधरों या चामरधर पुरुष और छत्रधारिणी स्त्री के अंकन आठवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य विशेष लोकप्रिय थे। कुछ मूर्तियों में लटकती जटाएं, नाग-नागी एवं सरस्वती भी अंकित हैं।

बिहार-उड़ीसा-बंगाल—बंगाल और उड़ीसा में अन्य किसी भी जिन की तुलना में पार्श्व की मूर्तियां अधिक हैं। ल० नवीं शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति उदयगिरि पहाड़ी (बिहार) के आधुनिक मन्दिर में प्रतिष्ठित है।[1] बांकुड़ा से प्राप्त और भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता में सुरक्षित ल० दसवीं शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति में पीठिका पर सर्प लांछन उत्कीर्ण है। चौबीस परगना (बंगाल) में कान्ताबेनिआ से प्राप्त ग्यारहवीं शती ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति के परिकर में २३ छोटी जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। समान विवरणों वाली दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० की दो मूर्तियां बहुलारा के सिद्धेश्वर मन्दिर एवं पारसनाथ (अम्बिकानगर) में हैं।[2] पारसनाथ से प्राप्त मूर्ति में नाग-नागी भी उत्कीर्ण हैं।[3] अम्बिकानगर के समीप केंदुआग्राम से भी एक कायोत्सर्ग मूर्ति मिली है।[4] मूलनायक के पार्श्वों में तीन सर्पफणों की छत्रावली वाली दो नागी मूर्तियां उत्कीर्ण हैं।

ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० की दो खड्गासन और दो ध्यानस्थ मूर्तियां[5] अलुआरा से मिली हैं। ये मूर्तियां सम्प्रति पटना संग्रहालय में सुरक्षित हैं।[6] एक मूर्ति में नवग्रहों एवं एक अन्य में दो नागों की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। ग्यारहवीं शती ई० की दो मूर्तियां पोट्टासिमीदी (क्योंझर) से मिली हैं।[7] भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता की एक मूर्ति में पार्श्व के समीप छत्र धारण करनेवाली नागी की मूर्ति है।[8] परिकर में कुछ मानव, असुर एवं पशुमुख आकृतियां उत्कीर्ण हैं। ये आकृतियां पत्थर एवं खड्ग से पार्श्व पर आक्रमण की मुद्रा में प्रदर्शित हैं। यह सम्भवतः मेघमाली के उपसर्गों का चित्रण है।

उड़ीसा की नवमुनि, बारभुजी एवं त्रिशूल गुफाओं में ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० की कई मूर्तियां हैं। बारभुजी गुफा की ध्यानस्थ मूर्ति के आसन पर त्रिफण नाग लांछन उत्कीर्ण है (चित्र ५९)। मूर्ति के नीचे पद्मावती यक्षी निरूपित है।[9] नवमुनि गुफा की मूर्ति में ध्यानस्थ पार्श्व जटामुकुट से शोभित हैं और उनकी पीठिका पर दो नाग आकृतियां उत्कीर्ण हैं।[10] नवमुनि गुफा की दूसरी ध्यानस्थ मूर्ति में भी आसन पर तीन सर्पफणों वाली दो नाग मूर्तियां हैं। नीचे पद्मावती यक्षी की मूर्ति है।[11]

विश्लेषण—उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि इस क्षेत्र में सर्प लांछन तुलनात्मक दृष्टि से अधिक उदाहरणों में उत्कीर्ण है। पार्श्व के यक्ष-यक्षी की मूर्तियां इस क्षेत्र में नहीं उत्कीर्ण हुईं। केवल बारभुजी एवं नवमुनि गुफाओं की मूर्तियों में ही नीचे पद्मावती की मूर्तियां हैं।

---

१ आ०स०इं०ऐ०रि०, १९२५–२६, फलक ६०, चित्र ई, पृ० ११५
२ बनर्जी, जे० एन०, 'जैन इमेजेज', दि हिस्ट्री ऑव बंगाल, खं० १, ढाका, १९४३, पृ० ४६५
३ मित्रा, देबला, 'सम जैन एन्टिक्विटीज फ्राम बांकुड़ा, वेस्ट बंगाल', ज०ए०सो०बं०, खं०२४, अं०२, पृ० १३३–३४
४ वही, पृ० १३४ ५ पटना संग्रहालय ६५३१, ६५३३, १०६७८, १०६७९
६ प्रसाद, एच० के०, पू०नि०, पृ० २८१, २८८
७ जोशी, अर्जुन, 'फर्दर लाइट आन दि रिमेन्स ऐट पोट्टासिंगीदी', उ०हि०रि०ज०, खं० १०, अं० ४, पृ० ३१–३२
८ एण्डरसन, जे०, पू०नि०, पृ० २१३–१४
९ मित्रा, देबला, 'शासन देवीज इन दि खण्डगिरि केव्स', ज०ए०सो०, खं० १, अं० २, पृ० १३३
१० वही, पृ० १२९ ११ वही, पृ० १२९

जीवनदृश्य

पार्श्व के जीवनदृश्य कुम्भारिया के शान्तिनाथ एवं महावीर मन्दिरों और आबू के लूणवसही के वितानों पर उत्कीर्ण हैं। ओसिया की पूर्वी देवकुलिका के वेदिकाबंध की दृश्यावली भी सम्भवतः पार्श्व से सम्बन्धित है (चित्र ३७)। लूणवसही (१२३० ई०) के अतिरिक्त अन्य सभी उदाहरण ग्यारहवीं शती ई० के हैं। कल्पसूत्र के चित्रों में भी पार्श्व के जीवनदृश्य अंकित हैं। पार्श्व के जीवनदृश्यों में पंचकल्याणकों और पूर्वजन्मों एवं उपसर्गों की कथाएं विस्तार से अंकित हैं।

कुम्भारिया के महावीर मन्दिर की पश्चिमी भ्रमिका के छठें वितान (उत्तर से) पर पार्श्व के जीवनदृश्य उत्कीर्ण हैं। इनमें पार्श्व के पूर्वभवों के दृश्यों, विशेषकर मरुभूति (पार्श्व) और कमठ (मेघमाली) के जीवों के विभिन्न भवों के संघर्ष को विस्तार से दरशाया गया है। त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र में उल्लेख है कि जम्बूद्वीप स्थित भारत में पोतनपुर नाम का एक राज्य था। यहां का शासक अरविन्द था, जिसने जीवन के अन्तिम वर्षों में मुनिधर्म की दीक्षा ली थी। अरविन्द के राज्य में विश्वभूति नाम का एक ब्राह्मण पुरोहित रहता था जिसके कमठ और मरुभूति नाम के दो पुत्र थे। ज्ञातव्य है कि मरुभूति का जीव दसवें जन्म में तीर्थंकर पार्श्व और कमठ का जीव मेघमाली हुआ। मरुभूति का मन सांसारिक वस्तुओं में नहीं लगता था, जब कि कमठ उन्हीं में लिप्त रहता था। कमठ का मरुभूति की पत्नी वसुन्धरा से अनैतिक सम्बन्ध स्थापित हो गया था। जब मरुभूति ने राजा अरविन्द से इसकी शिकायत की तो राजा ने कमठ को दण्डित किया। इस घटना के बाद लज्जावश कमठ जंगलों में जाकर साधु हो गया। कुछ समय बाद जब मरुभूति कमठ के पास क्षमायाचना के लिए पहुंचा तो कमठ ने क्षमा करने के स्थान पर सक्रोध उसके मस्तक पर एक विशाल पत्थर से प्रहार किया। इस सांघातिक प्रहार से मरुभूति की मृत्यु हो गई। अपने इस दुष्कृत्य के कारण कमठ सदैव के लिए नरक का अधिकारी बन गया।[1]

महावीर मन्दिर की दृश्यावली दो आयतों में विभक्त है। दक्षिण की ओर मध्य में वार्तालाप की मुद्रा में अरविन्द की मूर्ति उत्कीर्ण है। अरविन्द के समक्ष दो आकृतियां बैठी हैं। एक आकृति नमस्कार-मुद्रा में है और दूसरी की एक भुजा ऊपर उठी है। ये निश्चित ही मरुभूति और कमठ की मूर्तियां हैं। आगे साधु के रूप में कमठ की एक मूर्ति उत्कीर्ण है। श्मश्रुयुक्त कमठ की दोनों भुजाओं में एक शिलाखण्ड है। कमठ के समक्ष नमस्कार-मुद्रा में मरुभूति की आकृति उत्कीर्ण है, जिस पर कमठ शिलाखण्ड से प्रहार करने को उद्यत है। आगे मुखपट्टिका से युक्त दो जैन मुनि निरूपित हैं। मूर्तियों के नीचे 'अरविन्द मुनि' उत्कीर्ण है।

जैन परम्परा के अनुसार दूसरे जन्म में मरुभूति का जीव गज और कमठ का जीव कुक्कुट-सर्प हुआ। गज के प्रबोधन का समय निकट जानकर मुनि अरविन्द अष्टापद पर्वत पर कायोत्सर्ग में खड़े हो गये। गज क्रोध में ऋषि की ओर दौड़ा पर समीप पहुंचने पर मुनि की तपस्या के प्रभाव से शान्त हो गया। मुनि के उपदेशों के प्रभाव से गज यति हो गया और उसने अपना समय व्रत और साधना में व्यतीत करना प्रारम्भ कर दिया। एक दिन जब कुक्कुट-सर्प ने गज को देखा तो उसे पूर्वजन्म के वैमनस्य का स्मरण हो आया और उसने गज को डस लिया। दंश के बाद गज ने अन्न-जल त्याग दिया और तपस्या करते हुए अपने प्राण त्याग दिये।[2] दृश्य में एक वृक्ष के समीप अरविन्द ऋषि और गज आकृति चित्रित हैं। नीचे 'मरुभूति जीव' लिखा है। समीप ही दूसरी गज आकृति भी उत्कीर्ण है जिसकी पीठ पर कुक्कुट-सर्प को दंश करते हुए दिखाया गया है। अगले दृश्य में एक वृक्ष के समीप दो आकृतियां खड़ी हैं और उनके मध्य में एक आकृति बैठी है। मध्य की आकृति के मस्तक पर पार्श्ववर्ती आकृतियां किसी तेज धार की वस्तु से प्रहार कर रही हैं। यह कमठ के जीव की नरक यातना का दृश्य है। जैन परम्परा में उल्लेख है कि कमठ का जीव तीसरे भव में नरकवासी हुआ था और वहां उसे तरह-तरह की यातनाएं दी गई थीं। मरुभूति तीसरे भव में देवता हुए।

१ त्रि०श०पु०च०, खं० ५, गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज १३९, बड़ौदा, १९६२, पृ० ३५६–५९
२ वही, पृ० ३५९–६३

चौथे भव में मरुभूति का जीव किरणवेग के रूप में उत्पन्न हुआ। तिलका के शासक विद्युत्गति उनके पिता और कनकतिलका उनकी माता थीं। किरणवेग ने निश्चित समय पर अपने पुत्र को सिंहासन पर बैठाकर स्वयं दीक्षा ग्रहण की और हेमपर्वत पर कायोत्सर्ग में तपस्यारत हो गये। चौथे भव में कमठ का जीव विकराल सर्प हुआ। इस सर्प ने जब किरणवेग को तपस्यारत देखा तो उनके शरीर के चारो ओर लिपट गया और कई स्थानों पर डंस कर उनके प्राण ले लिये।[1] वितान पर वार्तालाप की मुद्रा में किरणवेग की मूर्ति उत्कीर्ण है। समीप ही दो अन्य आकृतियां बैठी हैं। नीचे 'किरणवेग राजा' लिखा है। आगे किरणवेग की कायोत्सर्ग में तपस्या करती मूर्ति है जिसके शरीर में एक सर्प लिपटा है। पांचवे भव में मरुभूति का जीव जम्बूद्रुमावर्त में देवता हुआ और कमठ का जीव धूमप्रभा के रूप में नरक में उत्पन्न हुआ। छठें भव में मरुभूति शुभंकर नगर के राजा के पुत्र (वज्रनाभ) हुए।[2] वज्रनाभ ने उपयुक्त समय पर अपने पुत्र को राज्य प्रदान कर दीक्षा ली। कमठ का जीव छठें भव में भिल्ल कुरंगक हुआ। मुनि वज्रनाभ की मृत्यु पूर्व जन्मों के बैरी कुरंगक के तीर से हुई थी। वितान पर पूर्व की ओर वज्रनाभ की आकृति बैठी है। नीचे 'वज्रनाभ' लिखा है। वज्रनाभ के समीप नमस्कार-मुद्रा में दो आकृतियां उत्कीर्ण हैं। आगे मुनि वज्रनाभ खड़े हैं, जिनके समीप शरसंधान की मुद्रा में कुरंगक की मूर्ति है। आगे वज्रनाभ का मृत शरीर दिखाया गया है।

सातवें भव में मरुभूति ललितांग देव हुए और कमठ रौरव नरक में उत्पन्न हुआ। आठवें भव में मरुभूति पुराणपुर के राजा कुलिशबाहु के पुत्र (सुवर्णबाहु) हुए। निश्चित समय पर दीक्षा ग्रहण कर सुवर्णबाहु ने कठिन तपस्या की। कमठ का जीव इस भव में क्षीर पर्वत पर सिंह हुआ। एक बार सुवर्णबाहु क्षीर पर्वत के समीप के क्षीर वन में कायोत्सर्ग में तपस्या कर रहे थे। सिंह (कमठ का जीव) ने उसी समय सुवर्णबाहु पर आक्रमण कर उन्हें मार डाला। नवें भव में मरुभूति महाप्रभ स्वर्ग में देवता हुए और कमठ नरक एवं विभिन्न पशु योनियों में उत्पन्न हुआ।[3] दसवें भव में मरुभूति का जीव पार्श्व जिन और कमठ का जीव कठ साधु हुआ। वितान पर उत्तर की ओर श्मश्रुयुक्त दो आकृतियां बैठी हैं। समीप ही सुवर्णबाहु मुनि की कायोत्सर्ग मूर्ति उत्कीर्ण है। मुनि के समीप आक्रमण की मुद्रा में एक सिंह बना है। आकृतियों के नीचे 'कनकप्रभ मुनि' एवं 'सिंह' अभिलिखित हैं। नवें भव में मरुभूति का देवता के रूप में और कमठ के जीव को प्राप्त होने वाली नरक की यातनाओं के चित्रण हैं। दो आकृतियां कमठ के सिर पर परशु से प्रहार कर रही हैं।

पूर्वभवों के चित्रण के बाद वार्तालाप की मुद्रा में पार्श्व के माता-पिता की मूर्तियां उत्कीर्ण है। नीचे 'अश्वसेन राजा' और 'वामादेवी' लिखा है। आगे सेविकाओं से वेष्टित वामादेवी एक शय्या पर लेटी हैं। समीप ही १४ मांगलिक स्वप्नों और शिशु के साथ लेटी वामादेवी के अंकन हैं। आगे पार्श्व के जन्माभिषेक का दृश्य है, जिसमें इन्द्र की गोद में एक शिशु (पार्श्व) बैठा है।

पश्चिम की ओर एक गज पर तीन आकृतियां बैठी हैं। नीचे 'पार्श्वनाथ' उत्कीर्ण है। आगे कठ साधु के पंचाग्नि तप का चित्रण है। कठ साधु के दोनों ओर दो घट उत्कीर्ण हैं। कठ के समक्ष गज पर आरूढ़ पार्श्व की एक मूर्ति है। जैन परम्परा में उल्लेख है कि जब कठ साधु पंचाग्नि तप कर रहा था, उसी समय कुमार पार्श्व उस स्थल से गुजरे। पार्श्व को यह ज्ञात हो गया कि अग्निकुण्ड में डाले गये लकड़ी के ढेर में एक जीवित सर्प है। पार्श्व के आदेश पर एक सेवक ने लकड़ी के ढेर से सर्प को निकाला। पर काफी जल जाने के कारण सर्प की मृत्यु हो गई।[4] यही सर्प अगले जन्म में नागराज धरण हुआ जिसने मेघमाली के उपसर्गों के समय पार्श्व की रक्षा की थी।

दृश्य में एक आकृति को परशु से लकड़ी चीरते हुए दिखाया गया है। समीप ही लकड़ी से निकला सर्प प्रदर्शित है। स्मरणीय है कि यही कठ साधु अगले जन्म में मेघमाली असुर हुआ। आगे पार्श्व कायोत्सर्ग में खड़े हैं और दाहिने

---

१ वही, पृ० ३६४–६६ २ वही, पृ० ३६५–६९ ३ वही, पृ० ३६९–७७ ४ वही, पृ० ३९१–९२

हाथ से केशों का लुंचन कर रहे हैं। उल्लेखनीय है कि अन्यत्र जिनों को ध्यानमुद्रा में बैठकर केशों का लुंचन करते हुए दिखाया गया है। पार्श्व के समीप ही हार, मुकुट, अंगूठी जैसे आभूषण चित्रित हैं, जिनका दीक्षा के पूर्व पार्श्व ने परित्याग किया था। समीप ही इन्द्र को एक पात्र में पार्श्व के लुंचित केशों को संचित करते हुए दिखाया गया है। दक्षिण की ओर पार्श्व की तपस्या का चित्रण है। पार्श्व कायोत्सर्ग में खड़े हैं। पार्श्व के शीर्ष भाग में सर्पफणों का छत्र भी प्रदर्शित है। समीप ही नमस्कार-मुद्रा में जटाजूट से शोभित एक आकृति उत्कीर्ण है, जो सम्भवतः अपने कार्यों के लिए पार्श्व से क्षमा-याचना करती हुई मेघमाली की आकृति है। पार्श्व के बांयी ओर एक सर्पफण के छत्र से युक्त धरणेन्द्र की आकृति है। धरणेन्द्र सर्प की कुण्डलियों पर दोनों हाथ जोड़कर बैठे हैं। आकृति के नीचे 'धरणेन्द्र' लिखा है। धरणेन्द्र के समीप ही नमस्कार-मुद्रा में एक दूसरी आकृति भी बैठी है, जिसे लेख में 'कंकाल' कहा गया है। आगे एक सर्पफण की छत्रावली वाली वैरोट्या (धरणेन्द्र की पत्नी) भी निरूपित है। समीप ही सप्त सर्पफणों के शिरस्त्राण से सुशोभित पार्श्व की एक ध्यानस्थ मूर्ति है। आगे पार्श्व का समवसरण बना है।

कुम्भारिया के शान्तिनाथ मन्दिर की पूर्वी भ्रमिका के वितान पर भी पार्श्व के जीवनदृश्य उत्कीर्ण हैं। शान्तिनाथ मन्दिर के जीवनदृश्य विवरण की दृष्टि से पूरी तरह महावीर मन्दिर के जीवनदृश्यों के समान हैं। अतः उनका वर्णन यहाँ अपेक्षित नहीं है।

ओसिया की पूर्वी देवकुलिका की दृश्यावली की सम्भावित पहचान दो कारणों से पार्श्व से की गई है। पहला यह कि ललाट-बिम्ब पर पार्श्वनाथ की मूर्ति उत्कीर्ण है।[1] अतः यह सम्भावना है कि देवकुलिका पार्श्वनाथ को समर्पित थी। दूसरा यह कि ललाट-बिम्ब की पार्श्व मूर्ति के नीचे दो उड्डीयमान आकृतियों द्वारा धारित एक मुकुट चित्रित है। वेदिकाबन्ध की दृश्यावली में भी ठीक इसी प्रकार से एक मुकुट उत्कीर्ण है।

उत्तर की ओर १४ मांगलिक स्वप्न और जिन की माता की शिशु के साथ लेटी हुई मूर्ति उत्कीर्ण हैं। आगे पार्श्व के जन्म-अभिषेक का दृश्य है जिसमें पार्श्व इन्द्र की गोद में बैठे हैं। आगे खड्ग, खेटक, चाप, शर आदि शस्त्रास्त्र एवं पार्श्व के राज्यारोहण और युद्ध के दृश्य हैं। युद्ध-दृश्य में सम्भवतः पार्श्व और यवनराज की सेनाएं प्रदर्शित हैं। दृश्य में दोनों पक्षों की सेनाओं के युद्ध का चित्रण नहीं किया गया है। जैन परम्परा में भी यही उल्लेख मिलता है कि युद्ध के पूर्व ही यवनराज ने आत्मसमर्पण कर दिया था। दक्षिण की ओर एक रथ पर दो आकृतियां बैठी हैं। आगे स्थानक-मुद्रा में एक चतुर्भुज मूर्ति उत्कीर्ण है। किरीटमुकुट एवं वनमाला से शोभित आकृति के दो सुरक्षित हाथों में गदा एवं चक्र हैं।[2] आगे जिन की दीक्षा और तपस्या के दृश्य है। कायोत्सर्ग में खड़ी जिन-मूर्ति के पास एक देवालय उत्कीर्ण है जिसमें ध्यानस्थ जिन-मूर्ति प्रतिष्ठित है।

लूणवसही की देवकुलिका १६ के वितान के दृश्य में हस्तिकलिकुण्डतीर्थ या अहिच्छत्रा नगर की उत्पत्ति की कथा विस्तार से चित्रित है।[3] विविधतीर्थकल्प में उल्लेख है कि पार्श्व के उपर्युक्त स्थल की यात्रा के बाद वहां जैन तीर्थ की स्थापना हुई।[4] कल्पसूत्र के चित्रों में पार्श्व के पूर्वभव, च्यवन, जन्म, जन्म-अभिषेक, दीक्षा, कैवल्य-प्राप्ति एवं समवसरण के चित्रांकन हैं।[5] पूर्वभवों के चित्रण में कठ के पंचाग्नितप के दृश्य भी हैं।

दक्षिण भारत—उत्तर भारत के समान ही दक्षिण भारत से भी विपुल संख्या में पार्श्व की मूर्तियां मिली हैं। शीर्ष भाग में सात सर्पफणों के छत्र सभी उदाहरणों में प्रदर्शित हैं। सर्प लांछन किसी उदाहरण में नहीं है। इस

१ गर्भगृह की जिन प्रतिमा गायब है।

२ इस आकृति के उत्कीर्णन का सन्दर्भ स्पष्ट नहीं है। पर यदि यह आकृति कृष्ण की है तो सम्पूर्ण दृश्यावली नेमि से भी सम्बन्धित हो सकती है।

३ जयन्त विजय, मुनिश्री, पू०नि०, पृ० १२३–२५

४ विविधतीर्थकल्प, पृ० १४, २६

५ ब्राउन, डब्ल्यू० एन०, पू०नि०, पृ० ४१–४४

लेख की नीचे विवेचित सभी मूर्तियों में पार्श्व निर्वस्त्र हैं और कायोत्सर्ग में खड़े हैं। केवल कर्नाटक से मिली और ब्रिटिश संग्रहालय, लन्दन में सुरक्षित एक मूर्ति में ही पार्श्व ध्यानमुद्रा में विराजमान हैं। मूलनायक के दोनों ओर सेवकों के रूप में धरणेन्द्र एवं पद्मावती का निरूपण विशेष लोकप्रिय था। एलोरा और बादामी की जैन गुफाओं में पार्श्व की कई मूर्तियां हैं। बादामी की गुफा ४ के मुखमण्डप की पश्चिमी दीवार की मूर्ति (७वीं शती ई०) में पार्श्व के शीर्षभाग में सम्भवतः मेघमाली की मूर्ति उत्कीर्ण है।[१] दाहिनी ओर एक सर्पफण के छत्र से शोभित पद्मावती खड़ी है जिसके हाथ में एक लम्बा छत्र है। बायीं ओर धरणेन्द्र की आकृति है जिसका एक हाथ अभयमुद्रा में है। मूर्ति में एक भी प्रातिहार्य नहीं उत्कीर्ण है। समान विवरणों वाली सातवीं शती ई० की एक अन्य मूर्ति ऐहोल (बीजापुर) की जैन गुफा के मुखमण्डप की पश्चिमी दीवार पर उत्कीर्ण है।[२] एलोरा की गुफा ३३ की मूर्ति (११वीं शती ई०) में बायीं ओर मेघमाली के उपसर्ग भी चित्रित हैं।[३] दाहिने पार्श्व में छत्रधारिणी पद्मावती है। कन्नड़ शोध संस्थान संग्रहालय की एक मूर्ति (५३) में पार्श्व के दोनों ओर धरणेन्द्र एवं पद्मावती की चतुर्भुज मूर्तियां हैं।[४] हैदराबाद संग्रहालय की एक मूर्ति (१२वीं शती ई०) में भी चतुर्भुज यक्ष-यक्षी निरूपित हैं।[५] परिकर में २२ छोटी जिन आकृतियां, चामरधर, त्रिछत्र और दुन्दुभिवादक भी उत्कीर्ण हैं। ब्रिटिश संग्रहालय, लन्दन की मूर्ति (१२वीं शती ई०) में सात सर्पफणों के छत्र से शोभित पार्श्व के समीप दो चामरधर सेवक और पीठिका-छोरों पर गजारूढ़ धरणेन्द्र यक्ष और सर्पवाहना पद्मावती यक्षी निरूपित हैं।[६]

विश्लेषण

सम्पूर्ण अध्ययन से स्पष्ट है कि उत्तर भारत में ऋषभ के बाद जिनों में पार्श्व ही सर्वाधिक लोकप्रिय थे। उड़ीसा की उदयगिरि-खण्डगिरि गुफाओं में तो पार्श्व की ऋषभ से भी अधिक मूर्तियां हैं। ल० पहली शती ई० पू० में मथुरा में पार्श्व के मस्तक पर सात सर्पफणों के छत्र का प्रदर्शन प्रारम्भ हुआ। यहां उल्लेखनीय है कि पार्श्व के सात सर्पफणों का निर्धारण ऋषभ की जटाओं से कुछ पूर्व ही हो गया था। ऋषभ के साथ जटाएं पहली शती ई० में प्रदर्शित हुई। पार्श्व के साथ सर्प लांछन का चित्रण केवल कुछ ही उदाहरणों में हुआ है। दसवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की ये मूर्तियां उत्तर प्रदेश, बंगाल एवं उड़ीसा के विभिन्न स्थलों से मिली हैं। पार्श्व के शीर्ष भाग में प्रदर्शित सर्प की कुण्डलियां सामान्यतः पार्श्व के चरणों या घुटनों तक प्रसारित हैं। कभी-कभी पार्श्व सर्प की कुण्डलियों के ही आसन पर बैठे भी निरूपित हैं। शीर्ष भाग में प्रदर्शित सर्पफणों के छत्र के कारण पार्श्व की मूर्तियों में भामण्डल नहीं उत्कीर्ण हैं। जिन मूर्तियों में पार्श्व की सेविका की भुजा में लम्बा छत्र प्रदर्शित है, उनमें शीर्षभाग में त्रिछत्र नहीं उत्कीर्ण हैं।

श्वेतांबर मूर्तियों में मूलनायक के दोनों ओर सामान्य चामरधर आमूर्तित हैं। पर दिगंबर स्थलों की मूर्तियों में अधिकांशतः मूलनायक के दाहिने और बायें पार्श्वों में सर्पफणों की छत्रावलियों वाली पुरुष-स्त्री सेवक आकृतियां निरूपित हैं। इनका अंकन पांचवीं-छठीं शती ई० में प्रारम्भ हुआ। पुरुष आकृति या तो नमस्कार-मुद्रा में है, या फिर उसके एक हाथ में चामर है। स्त्री की भुजा में एक लम्बे दण्ड वाला छत्र है जिसका छत्र भाग पार्श्व के सर्पफणों के ऊपर प्रदर्शित है। ये धरणेन्द्र एवं पद्मावती की उस समय की मूर्तियां हैं जब मेघमाली के उपसर्गों से पार्श्व की रक्षा करने के लिए वे देवलोक से आये थे। पार्श्व की मूर्तियों में यक्ष-यक्षी का चित्रण बहुत नियमित नहीं था। ल० सातवीं शती ई० में यक्ष-यक्षी का चित्रण प्रारम्भ हुआ। यक्ष-यक्षी सामान्यतः सर्वानुभूति एवं अम्बिका या फिर सामान्य लक्षणों वाले हैं।

---

१ अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, चित्र संग्रह ए २१–५९

२ वही, ए २१–२४ : पार्श्व यहां पांच सर्पफणों के छत्र से युक्त हैं।

३ आर्किअलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, दिल्ली, चित्र संग्रह ९९६.५५

४ अन्निगेरी, ए० एम०, पू०नि०, पृ० १९

५ अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, चित्र संग्रह १६६.६७

६ जै०क०स्था०, खं० ३, पृ० ५५७

पारम्परिक यक्ष-यक्षी केवल ओसिया, देवगढ़, आबू (विमलवसही की देवकुलिका ४), खजुराहो एवं अकोटा की ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० की कुछ ही मूर्तियों में निरूपित हैं।

(२४) महावीर

जीवनवृत्त

महावीर इस अवसर्पिणी के अन्तिम जिन हैं। ज्ञातृवंश के शासक सिद्धार्थ उनके पिता और त्रिशला उनकी माता थीं। महावीर का जन्म पटना के समीप कुण्डग्राम (या क्षत्रियकुण्ड) में ल० ५९९ ई० पू० में हुआ था।[1] श्वेतांबर ग्रन्थों में महावीर के जन्म के सम्बन्ध में एक कथा प्राप्त होती है, जिसके अनुसार महावीर का जीव पहले ब्राह्मण ऋषभदत्त की भार्या देवानन्दा की कुक्षि में आया[2] और देवानन्दा ने गर्भधारण की रात्रि में १४ शुभ स्वप्नों का दर्शन किया। पर जब इन्द्र को इसकी सूचना मिली तो उसने विचार किया कि कभी कोई जिन ब्राह्मण कुल में नहीं उत्पन्न हुए, अतः महावीर का ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होना अनुचित और परम्परा विरुद्ध होगा। इन्द्र ने अपने सेनापति हरिनैगमेषी को महावीर के भ्रूण को देवानन्दा के गर्भ से क्षत्रियाणी त्रिशला के गर्भ में स्थानान्तरित करने का आदेश दिया। हरिनैगमेषी ने महावीर के भ्रूण को स्थानान्तरित कर दिया। गर्भ परिवर्तन की रात्रि में त्रिशला ने भी १४ शुभ स्वप्नों को देखा। महावीर के गर्भ में आने के बाद से राज्य के धन, धान्य, कोष आदि में अभूतपूर्व वृद्धि हुई, इसी कारण बालक का नाम वर्धमान रखा गया। बाल्यावस्था के वीरोचित और अद्भुत कार्यों के कारण देवताओं ने बालक का नाम 'महावीर' रखा।[3]

महावीर का विवाह वसंतपुर के महासामन्त समरवीर की पुत्री यशोदा से हुआ। दिगंबर ग्रन्थों में महावीर के विवाह का अनुल्लेख है। २८ वर्ष की अवस्था में महावीर ने अपने अग्रज नन्दिवर्धन से प्रव्रज्या ग्रहण करने की अनुमति मांगी। तथापि स्वजनों के अनुरोध पर विरक्त भाव से दो वर्ष तक महल में ही रुके रहे। इस अवधि में महावीर ने महल में ही रह कर जैन धर्म के नियमों का पालन किया और कायोत्सर्ग में तपस्या भी करते रहे। महावीर के इस रूप में उनकी जीवन्तस्वामी मूर्तियां भी उत्कीर्ण हुई हैं। इनमें महावीर वस्त्राभूषणों से सज्जित प्रदर्शित किये गये। ३० वर्ष की अवस्था में महावीर ने आभरणों का त्याग कर पंचमुष्टिक में केशों का लुंचन किया और प्रव्रज्या ग्रहण की। साढ़े बारह वर्षों की कठिन साधना के बाद महावीर को जृम्भक ग्राम में ऋजुपालिका नदी के किनारे शाल वृक्ष के नीचे केवल-ज्ञान प्राप्त हुआ। कैवल्य प्राप्ति के बाद देवताओं ने महावीर के समवसरण की रचना की। अगले ३० वर्षों तक महावीर विभिन्न स्थलों पर भ्रमण कर धर्मोपदेश देते रहे। ल० ५२७ ई० पू० में ७२ वर्ष की अवस्था में राजगिर के निकट (?) पावापुरी में महावीर को निर्वाण-पद प्राप्त हुआ।[4]

प्रारम्भिक मूर्तियां

महावीर का लांछन सिंह है और यक्ष-यक्षी मातंग एवं सिद्धायिका (या पद्मा) हैं। महावीर की प्राचीनतम मूर्तियां कुषाण काल की हैं। ये मूर्तियां मथुरा से मिली हैं। ल० पहली से तीसरी शती ई० के मध्य की सात मूर्तियां राज्य संग्रहालय, लखनऊ में संगृहीत हैं (चित्र ३४)।[5] सभी उदाहरणों में महावीर की पहचान पीठिका-लेख में उत्कीर्ण नाम के आधार पर की गई है। छह उदाहरणों में लेखों में 'वर्धमान' और एक में (जे २) 'महावीर' उत्कीर्ण हैं। तीन उदाहरणों में संप्रति केवल पीठिकाएं ही सुरक्षित हैं।[6] अन्य चार उदाहरणों में महावीर ध्यानमुद्रा में सिंहासन पर विराजमान हैं।[7] सिंहासन के मध्य में उपासकों एवं श्रावक-श्राविकाओं से वेष्टित धर्मचक्र उत्कीर्ण है।

---

१ महावीर की तिथि निर्धारण के प्रश्न पर विस्तार के लिए द्रष्टव्य, जैन, के०सी०, लार्ड महावीर ऐण्ड हिज टाइम्स, दिल्ली, १९७४, पृ० ७२–८८

२ कल्पसूत्र २०–२८; त्रि०श०पु०च० १०.२.१–२८

३ त्रि०श०पु०च० १०.२.८८–१२४

४ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० ३३३–५५४

५ क्रमांक जे० २, १४, १६, २२, ३१, ५३, ६६

६ राज्य संग्रहालय, लखनऊ, जे २, १४, २२

७ राज्य संग्रहालय, लखनऊ, जे १६, ३१, ५३, ६६

गुप्तकाल की महावीर की केवल एक मूर्ति ज्ञात है। ल० छठीं शती ई० की यह मूर्ति वाराणसी से मिली है और भारत कला भवन, वाराणसी (१६१) में संगृहीत है (चित्र ३५)।[1] महावीर एक ऊंची पीठिका पर ध्यानमुद्रा में विराजमान हैं और उनके आसन के समक्ष विश्वपद्म उत्कीर्ण है। महावीर चामरधर सेवकों, उड्डीयमान आकृतियों एवं कांतिमण्डल से युक्त हैं। पीठिका के मध्य में धर्मचक्र और उसके दोनों ओर महावीर के सिंह लांछन उत्कीर्ण हैं। पीठिका के छोरों पर दो ध्यानस्थ जिन मूर्तियां बनी हैं। गुप्त युग में महावीर की दो जीवन्तस्वामी मूर्तियां भी उत्कीर्ण हुईं। ये मूर्तियां अकोटा से मिली हैं।[2] इन श्वेतांबर मूर्तियों में महावीर कायोत्सर्ग में खड़े हैं और मुकुट, हार आदि आभूषणों से अलंकृत हैं (चित्र ३६)। ल० सातवीं शती ई० की दो दिगंबर मूर्तियां धांक (गुजरात) की गुफा में उत्कीर्ण हैं।[3] इनमें महावीर कायोत्सर्ग में खड़े हैं और उनका सिंह लांछन सिंहासन पर बना है।

पूर्वमध्ययुगीन मूर्तियां

गुजरात-राजस्थान—इस क्षेत्र से तीन मूर्तियां मिली हैं। दो मूर्तियों में लांछन भी उत्कीर्ण है। दो उदाहरणों में यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका हैं। एक उदाहरण में यक्ष-यक्षी स्वतन्त्र लक्षणों वाले हैं।[4] १००४ ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति कटरा (भरतपुर) से मिली है और सम्प्रति राजपूताना संग्रहालय, अजमेर (२७९) में सुरक्षित है। सिंह-लांछन-युक्त इस महावीर मूर्ति के सिंहासन के छोरों पर स्वतन्त्र लक्षणों वाले द्विभुज यक्ष-यक्षी निरूपित हैं। चामरधरों के समीप कायोत्सर्ग-मुद्रा में दो निर्वस्त्र जिन आकृतियां भी उत्कीर्ण हैं। ११८६ ई० की एक मूर्ति कुम्भारिया के नेमिनाथ मन्दिर की पश्चिमी भित्ति पर है। यहां महावीर ध्यानमुद्रा में सिंहासन पर विराजमान हैं। सिंह लांछन के साथ ही लेख में महावीर का नाम भी उत्कीर्ण है। यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका हैं। पार्श्ववर्ती चामरधरों के ऊपर दो छोटी जिन आकृतियां उत्कीर्ण हैं। एक मूर्ति सुपार्श्व की है। ११७९ई० की एक मूर्ति कुम्भारिया के पार्श्वनाथ मन्दिर की देवकुलिका २४ में है। लेख में महावीर का नाम उत्कीर्ण है पर यक्ष-यक्षी अनुपस्थित हैं।

इस क्षेत्र में जीवन्तस्वामी महावीर की भी कई मूर्तियां उत्कीर्ण हुईं। राजस्थान के सेवड़ी एवं ओसिया (चित्र ३७) से दसवीं-ग्यारहवी शती ई० की जीवन्तस्वामी मूर्तियां मिली हैं। बारहवीं शती ई० की एक मूर्ति सरदार संग्रहालय, जोधपुर में है। सभी उदाहरणों में वस्त्राभूषणों से सज्जित जीवन्तस्वामी महावीर कायोत्सर्ग में खड़े हैं।

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश—राज्य संग्रहालय, लखनऊ में दसवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की पांच महावीर मूर्तियां हैं। तीन उदाहरणों में महावीर ध्यानमुद्रा में विराजमान हैं। सिंह लांछन सभी में उत्कीर्ण है पर यक्ष-यक्षी केवल एक ही उदाहरण (जे ८०८) में निरूपित हैं। दसवीं शती ई० की इस कायोत्सर्ग मूर्ति में द्विभुज यक्ष-यक्षी सामान्य लक्षणों वाले हैं। १०७७ ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति (जे ८८०) में लांछन के साथ ही पीठिका-लेख में भी 'वीरनाथ' उत्कीर्ण है। मूलनायक के पार्श्वों में चामरधरों के स्थान पर दो कायोत्सर्ग जिन मूर्तियां बनी हैं जिनके ऊपर पुनः दो ध्यानस्थ जिन आमूर्तित हैं।

अग्रखेरा (इटावा) की ११६६ ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति (जे ७८२) में सिंहासन नहीं उत्कीर्ण है। पीठिका के मध्य में धर्मचक्र के स्थान पर एक द्विभुजी देवी हाथों में अभयमुद्रा और कलश के साथ आमूर्तित है। मूर्ति के दाहिने छोर पर गदा और शृंखला से युक्त द्विभुज क्षेत्रपाल की नग्न आकृति खड़ी है। समीप ही वाहन श्वान् भी उत्कीर्ण है। क्षेत्रपाल

---

१ तिवारी, एम०एन०पी०, 'ऐन अन्पब्लिश्ड जिन इमेज इन दि भारत कला भवन, वाराणसी', वि०इं०ज०, खं० १३, अं० १–२, पृ० ३७३–७५

२ शाह, यू०पी०, अकोटा ब्रोन्जेज, पृ० २६–२८

३ संकलिया, एच०डी०, 'दि अर्लिएस्ट जैन स्कल्पचर्स इन काठियावाड़', ज०रा०ए०सो०, जुलाई १९३८, पृ० ४२९

४ राजपूताना संग्रहालय, अजमेर २७९

की आकृति के ऊपर द्विभुज गोमुख यक्ष की मूर्ति है, जिसके ऊपर तीन सर्पफणों के छत्रवाली पद्मावती यक्षी आमूर्तित है। मूर्ति के बायें छोर पर गरुडवाहना चक्रेश्वरी एवं अम्बिका की मूर्तियां हैं। पारम्परिक यक्ष-यक्षी के स्थान पर गोमुख यक्ष एवं चक्रेश्वरी, अम्बिका, पद्मावती यक्षियों और क्षेत्रपाल के चित्रण इस मूर्ति की दुर्लभ विशेषताएं हैं। ल० दसवीं शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा (१२.२५९) में है।

देवगढ़ में दसवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की नौ मूर्तियां है। पांच उदाहरणों में महावीर ध्यानमुद्रा में विराजमान हैं। सिंह लांछन सभी में उत्कीर्ण हैं पर यक्ष-यक्षी केवल आठ ही उदाहरणों में निरूपित हैं।[1] छह उदाहरणों में यक्ष-यक्षी द्विभुज और सामान्य लक्षणों वाले हैं। मन्दिर १ की दसवीं शती ई० की ध्यानस्थ मूर्ति में यक्ष द्विभुज है और यक्षी चतुर्भुजा है। मन्दिर ११ की १०४८ ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति में यक्ष चतुर्भुज और यक्षी द्विभुजा है। तीन सर्पफणों की छत्रावली से युक्त यक्षी के हाथों में फल एवं बालक हैं। इस मूर्ति में अम्बिका एवं पद्मावती यक्षियों की विशेषताएं संयुक्त रूप से प्रदर्शित हैं। परिकर में १४ जिन मूर्तियां और मूलनायक के कन्धों पर जटाएं प्रदर्शित हैं। मन्दिर ३ और मन्दिर २० की दो अन्य मूर्तियों में भी जटाएं प्रदर्शित हैं। मन्दिर १ की मूर्ति के परिकर में १०, मन्दिर ४ की मूर्ति में ४, मन्दिर ३ की मूर्ति में ८, मन्दिर २ की मूर्ति में २, मन्दिर १२ की पश्चिमी चहारदीवारी की मूर्ति में १५ और मन्दिर २० की मूर्ति में २ छोटी जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। मन्दिर १२ के समीप की यक्ष-यक्षी से युक्त महावीर की एक ध्यानस्थ मूर्ति (११ वीं शती ई०) है (चित्र ३८)। ग्यारसपुर के मालादेवी मन्दिर के गर्भगृह की दक्षिणी भित्ति पर दसवीं शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति है। सिंहासन के मध्य में लांछन और छोरों पर द्विभुज यक्ष-यक्षी निरूपित हैं।

खजुराहो में दसवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की नौ महावीर मूर्तियां हैं। आठ उदाहरणों में महावीर ध्यान-मुद्रा में विराजमान हैं। लांछन सभी में उत्कीर्ण है पर यक्ष-यक्षी केवल छह उदाहरणों में निरूपित हैं।[2] महावीर के यक्ष-यक्षी के निरूपण में सर्वानुभूति एवं अम्बिका का प्रभाव परिलक्षित होता है। यक्ष और यक्षी दोनों के साथ वाहन सिंह है, जो महावीर के सिंह लांछन से प्रभावित है। पार्श्वनाथ मन्दिर के गर्भगृह की दक्षिणी भित्ति की मूर्ति में द्विभुज यक्ष-यक्षी सामान्य लक्षणों वाले हैं। चामरधरों के समीप दो जिन आकृतियां उत्कीर्ण हैं। मन्दिर २ की १०९२ ई० की एक मूर्ति में सिंहासन के मध्य में चतुर्भुज सरस्वती (या शान्तिदेवी)[3] एवं छोरों पर चतुर्भुज यक्ष-यक्षी निरूपित हैं। मन्दिर २१ की मूर्ति (के २८।१, ११ वीं शती ई०) में यक्षी चतुर्भुजा है। स्थानीय संग्रहालय (के १७) की ग्यारहवीं शती ई० की मूर्ति में सिंहासन के छोरों पर चतुर्भुज यक्ष-यक्षी निरूपित हैं। पुरातात्विक संग्रहालय, खजुराहो (१७३१) की एक मूर्ति (१२ वीं शतीई०) में द्विभुज यक्ष-यक्षी के ऊपर दो खड़ी स्त्रियां बनी हैं जिनकी एक भुजा में स्तनालपत्र है। स्थानीय संग्रहालय की दो मूर्तियों (के १७ एवं ३८) के परिकर में क्रमशः १४ और २, मन्दिर २ की मूर्ति में २, मन्दिर २१ की मूर्ति (के २८।१) में ४, पुरातात्विक संग्रहालय, खजुराहो की मूर्ति (१७३१) में ८, शान्तिनाथ मन्दिर की मूर्ति में २ और मन्दिर ३१ की मूर्ति में १ छोटी जिन आकृतियां उत्कीर्ण हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि इस क्षेत्र में सिंह लांछन के साथ ही यक्ष-यक्षी का भी निरूपण लोकप्रिय था। यक्ष-यक्षी का अंकन दसवीं शती ई० में प्रारम्भ हुआ। अधिकांश उदाहरणों में यक्ष-यक्षी सामान्य लक्षणों वाले हैं।

बिहार-उड़ीसा-बंगाल—ल० आठवीं शती ई० की दो ध्यानस्थ मूर्तियां सोनभण्डार की पूर्वी गुफा में उत्कीर्ण हैं।[4] इन मूर्तियों में धर्मचक्र के दोनों ओर सिंह लांछन और पीठिका के छोरों पर दो ध्यानस्थ जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं।

---

१ मन्दिर २१ की मूर्ति में यक्ष-यक्षी नहीं उत्कीर्ण हैं।

२ मन्दिर १ की दो और मन्दिर ३१ की एक मूर्तियों में यक्ष-यक्षी नहीं उत्कीर्ण हैं।

३ देवी की भुजाओं में वरदमुद्रा, पद्म, पुस्तक एवं कमण्डलु प्रदर्शित हैं।

४ कुरैशी, मुहम्मद हमीद, राजगिर, दिल्ली, १९७०, फलक ७ ख

विष्णुपुर (बांकुड़ा) के सरस्वती मन्दिर से ल० दसवीं शती ई० की एक कायोत्सर्ग मूर्ति मिली है।[1] मूर्ति के परिकर में २४ छोटी जिन मूर्तियां बनी हैं। दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० की पांच महावीर मूर्तियां अलुआरा से मिली हैं और पटना संग्रहालय में सुरक्षित (१०६७०-७३, १०६७७) हैं।[2] सभी उदाहरणों में महावीर निर्वस्त्र हैं और कायोत्सर्ग में खड़े हैं। एक उदाहरण में नवग्रहों की भी मूर्तियां उत्कीर्ण हैं।

चरंपा (उड़ीसा) से मिली ल० दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० की एक निर्वस्त्र मूर्ति उड़ीसा राज्य संग्रहालय, भुवनेश्वर में है।[3] महावीर कायोत्सर्ग में खड़े हैं और उनका लांछन पीठिका पर उत्कीर्ण है। एक ध्यानस्थ मूर्ति बारभुजी गुफा में है (चित्र ५९)।[4] मूर्ति के नीचे सिद्धायिका यक्षी निरूपित है। एक कायोत्सर्ग मूर्ति त्रिशूल गुफा में है।[5] बारहवीं शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति वैभारगिरि के जैन मन्दिर में है।[6] इस प्रकार इस क्षेत्र में सिंह लांछन का चित्रण नियमित था पर यक्ष-यक्षी का अंकन दुर्लभ था।

जीवनदृश्य

मथुरा के कंकाली टीले से प्राप्त फलक और कुम्भारिया के महावीर एवं शान्तिनाथ मन्दिरों के वितानों पर महावीर के जीवनदृश्य उत्कीर्ण हैं। मथुरा से प्राप्त फलक पहली शती ई० का है। कुम्भारिया के मन्दिरों के दृश्य ग्यारहवीं शती ई० के हैं। कल्पसूत्र के चित्रों में भी महावीर के जीवनदृश्य हैं। महावीर के जीवनदृश्यों में पूर्वजन्मों, पंच-कल्याणकों, विवाह, चन्दनबाला को कथा एवं महावीर के उपसर्गों के विस्तृत अंकन हैं।

मथुरा से प्राप्त फलक राज्य संग्रहालय, लखनऊ (जे ६२६) में सुरक्षित है (चित्र ३९)। फलक पर महावीर के गर्भापहरण का दृश्य अंकित है।[7] फलक पर इन्द्र के प्रधान सेनापति हरिनैगमेषी (अजमुख) को ललितमुद्रा में एक ऊंचे आसन पर बैठे दिखाया गया है। आकृति के नीचे 'नेमेसो' उत्कीर्ण है। नैगमेषी सम्भवतः महावीर के गर्भ परिवर्तन का कार्य पूरा कर इन्द्र की सभा में बैठे हैं। नैगमेषी के समीप एक निर्वस्त्र बालक आकृति खड़ी है। बालक की पहचान महावीर से की गई है। बालक के समीप ही दो स्त्रियां खड़ी हैं। फलक के दूसरे ओर एक स्त्री की गोद में एक बालक बैठा है। ये सम्भवतः त्रिशला और महावीर की आकृतियां हैं।

कुम्भारिया के महावीर मन्दिर की पश्चिमी भ्रमिका के वितान (उत्तर से दूसरा) पर महावीर के जीवनदृश्य हैं (चित्र ४०)। सम्पूर्ण दृश्यावली तीन आयतों में विभक्त है। प्रारम्भ में महावीर के पूर्वभवों के अंकन हैं। जैन परम्परा के अनुसार महावीर के जीव ने नयसार के भव में सत्कर्म का बीज डालकर क्रमशः उसका सिंचन किया और २७ वें भव में तीर्थंकर-पद प्राप्त किया। राजा के आदेश पर नयसार एक बार वन में लकड़ियां काटने गया। वन में नयसार की भेंट कुछ भूखे मुनियों से हुई, जिन्हें उसने भक्तिपूर्वक भोजन कराया। मुनियों ने नयसार को आत्मकल्याण का मार्ग बतलाया। १८ वें भव में नयसार का जीव त्रिपृष्ठ वासुदेव हुआ। त्रिपृष्ठ ने शालिक्षेत्र के एक उपद्रवी सिंह को बिना रथ और शस्त्र के मार डाला था। एक दिन त्रिपृष्ठ के राजमहल में कुछ संगीतज्ञ आये। सोने के पूर्व त्रिपृष्ठ ने अपने शय्यापालकों को यह आदेश दिया कि जब मुझे निद्रा आ जाय तो संगीत का कार्यक्रम बन्द करा दिया जाय, किन्तु शय्यापालक संगीत में इतने रम गये कि वे त्रिपृष्ठ के आदेश का पालन करना भूल गये। निद्रा समाप्त होने पर जब त्रिपृष्ठ ने देखा कि संगीत का कार्यक्रम पूर्ववत् चल रहा है तो वह अत्यन्त क्रोधित हुआ और उसने आज्ञाभंग करने के अपराध में शय्यापालक के कानों

---

१ चौधरी, रवीन्द्रनाथ, '[illegible]', माडर्न रिव्यू, खं० ८८, अं० ४, पृ० २९७

२ प्रसाद, एच० के०, पू०नि०, पृ० २८८

३ दास, एम० पी, पू०नि०, पृ० ५२

४ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १३३

५ कुरेशी, मुहम्मद हमीद, ऐन्शण्ट मान्युमेण्ट्स इन दि प्रॉविन्स ऑव बिहार ऐण्ड उड़ीसा, पृ० २८२

६ चन्दा, आर० पी०, पू०नि०, फलक ५७ बी

७ एपि०इण्डि०, खं० २, पृ० ३१४, फलक २

में गरम शीशा डलवाकर उसे दण्डित किया। अपने इसी अमानवीय कृत्य के कारण १९ वें भव में त्रिपृष्ठ नरक में उत्पन्न हुआ। बाईसवें भव में नयसार का जीव प्रियमित्र चक्रवर्ती हुआ। २६ वें भव में नयसार का जीव ब्राह्मणी देवानन्दा के गर्भ में उत्पन्न हुआ। देवानन्दा के गर्भ से त्रिशला के गर्भ में स्थानान्तरण को नयसार का २७ वां भव माना गया।[1]

दूसरे आयत में उत्तर की ओर नयसार और तीन जैन मुनियों की आकृतियां खड़ी हैं। मुनियों के एक हाथ में मुखपट्टिका है और दूसरे से अभयमुद्रा प्रदर्शित है। समीप ही मुनि द्वारा नयसार को उपदेश दिये जाने का दृश्य है। आगे नयसार के जीव को दूसरे भव में स्वर्ग में और तीसरे भव में मारीचि के रूप में दिखाया गया है। समीप ही विश्वभूति की मूर्ति (१६ वां भव) है। विश्वभूति एक वृक्ष पर प्रहार कर रहे हैं। नीचे 'विश्वभूति केवली' उत्कीर्ण है। जैन परम्परा में उल्लेख है कि किसी बात पर अप्रसन्न होकर विश्वभूति ने सेब के एक वृक्ष पर मुष्टिका से प्रहार किया था जिसके फलस्वरूप वृक्ष के सभी सेब नीचे गिर पड़े थे। दक्षिण की ओर त्रिपृष्ठ को एक सिंह से युद्धरत दिखाया गया है। नीचे 'त्रिपृष्ठ वासुदेव' उत्कीर्ण है। आगे त्रिपृष्ठ के जीव को नरक में विभिन्न प्रकार की यातनाएं सहते हुए दिखाया गया है। नीचे 'त्रिपृष्ठ नरकवास' उत्कीर्ण है। समीप ही एक सिंह (२० वां भव) एवं नरक की यातना (२१ वां भव) के दृश्य हैं। नीचे 'अग्नि नरकवास' उत्कीर्ण है। आगे एक श्मश्रुयुक्त आकृति बनी है, जिसके समीप सर्प, मृग एवं शूकर आदि पशु चित्रित हैं। मध्य के आयत में (उत्तर की ओर) प्रियमित्र चक्रवर्ती (२२ वां भव), नन्दन (२४ वां भव) एवं देवता (२५ वां भव) की मूर्तियां हैं।

बाहरी आयत में (पश्चिम की ओर) महावीर के जन्म का दृश्य उत्कीर्ण है। दाहिने छोर पर त्रिशला एक शय्या पर लेटी हैं। समीप ही वार्तालाप की मुद्रा में सिद्धार्थ एवं त्रिशला की आकृतियां हैं। दक्षिण की ओर त्रिशला की शय्या पर लेटी एक अन्य आकृति एवं १४ मांगलिक स्वप्न हैं। आगे दो सेविकाओं से सेवित त्रिशला नवजात शिशु के साथ लेटी हैं। त्रिशला के समीप नमस्कार-मुद्रा में नैगमेषी की मूर्ति खड़ी है। आगे वार्तालाप की मुद्रा में सिद्धार्थ एवं त्रिशला की आकृतियां हैं। समीप ही सात अन्य आकृतियां उत्कीर्ण हैं जो सम्भवतः सिद्धार्थ की अधीनता स्वीकार करनेवाले शासकों की मूर्तियां हैं। पूर्व की ओर (मध्य में) नैगमेषी द्वारा शिशु (महावीर) को अभिषेक के लिए मेरु पर्वत पर इन्द्र के पास ले जाने का दृश्य अंकित है। उत्तर की ओर महावीर के जन्माभिषेक का दृश्य है। आगे महावीर के विवाह का दृश्य है। विवाह-वेदिका के दोनों ओर महावीर और यशोदा की स्थानक मूर्तियां हैं। विवाह-वेदिका पर स्वयं ब्रह्मा उपस्थित हैं। समीप ही महावीर एक साधु को कुछ भिक्षा दे रहे हैं। पश्चिम की ओर महावीर और तीन मुनियों की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं।

दूसरे आयत में (पश्चिम की ओर) महावीर की दीक्षा का दृश्य है। महावीर अपने बायें हाथ से केशों का लुंचन कर रहे हैं। समीप ही खड्ग, मुकुट, हार, कर्णफूल आदि चित्रित हैं जिनका महावीर ने परित्याग किया था। अगले दृश्य में महावीर मुखपट्टिका से युक्त एक वृद्ध को दान दे रहे हैं। नीचे 'महावीर' और 'देवदूष्य ब्राह्मण' लिखा है। जैन परम्परा में उल्लेख है कि दीक्षा के बाद मार्ग में महावीर को एक वृद्ध ब्राह्मण मिला जो महावीर से कुछ दान प्राप्त करना चाहता था। दीक्षा के पूर्व महावीर द्वारा मुक्त हस्त से दिये गये दान के समय यह ब्राह्मण उपस्थित नहीं हो सका था। महावीर ने वृद्ध ब्राह्मण को निराश नहीं किया और कन्धे पर रखे वस्त्र का आधा भाग फाड़कर दे दिया।[2]

आगे विभिन्न स्थानों पर महावीर की तपस्या और तपस्या में उपस्थित किये गये उपसर्गों के चित्रण हैं। दृश्य में महावीर शूलपाणि यक्ष के आयतन में बैठे हैं। जैन परम्परा में उल्लेख है कि महावीर सन्ध्या समय अस्थिग्राम पहुंचे और नगर के बाहर शूलपाणि यक्ष के आयतन में ही रुक गये। लोगों ने महावीर को वहां न रुकने की सलाह दी पर महावीर ने परीषह सहने और यक्ष को प्रतिबोधित करने का निश्चय कर लिया था। रात्रि में यक्ष ने प्रकट होकर ध्यानस्थ

---

१ त्रि०श०पु०च० १०.१.१–२८४; हस्तीमल, पू०नि०, पृ० ३३६–३९

२ हस्तीमल, पू०नि०, पृ० ३६२

महावीर के समक्ष भयंकर अट्टहास किया । किन्तु महावीर तनिक भी विचलित नहीं हुए । तब यक्ष ने हाथी का रूप धारण कर महावीर को दांतों और पैरों से पीड़ा पहुंचाई । पर महावीर फिर भी अविचलित रहे । तब उसने पिशाच का रूप धारण कर तीक्ष्ण नखों एवं दांतों से महावीर के शरीर को नोचा, सर्प बनकर उनका दंश किया और उनके शरीर से लिपट गया । इतना कुछ होने पर भी महावीर का ध्यान नहीं टूटा । शूलपाणि ने महावीर के शरीर में सात स्थानों (नेत्रों, कानों, नासिका, सिर, दांतों, नखों एवं पीठ) पर भयंकर पीड़ा पहुंचाई । पर महावीर शान्तभाव से सब सहते रहे । अन्त में यक्ष ने अपनी पराजय स्वीकार की और महावीर के चरणों पर गिर पड़ा । बाद में उसने वह स्थान भी छोड़ दिया ।[1]

तपःसाधना के दूसरे वर्ष में महावीर को चण्डकौशिक नाम का दृष्टि-विष वाला भयंकर सर्प मिला जिसने ध्यानस्थ महावीर के पैर और शरीर पर जहरीला दंष्ट्राघात किया । पर महावीर उससे प्रभावित नहीं हुए ।[2] साधना के पांचवें वर्ष में महावीर लाढ़ देश में आये, जो अनार्य क्षेत्र था । यहां के लोगों ने महावीर की तपस्या में भयंकर उपसर्ग उपस्थित किये । श्वान् दूर से ही महावीर को काटने दौड़ते थे । अनार्य लोगों ने महावीर पर दण्ड, मुष्टि, पत्थर एवं धूल आदि से प्रहार किये ।[3] साधना के ११वें वर्ष में इन्द्र ने महावीर की कठिन साधना की प्रशंसा की । पर इन्द्र की बातों पर अविश्वास करते हुए संगम देव ने महावीर की स्वयं परीक्षा लेने का निश्चय किया । संगम देव ने ध्यान निमग्न महावीर को विभिन्न उपसर्गों द्वारा विचलित करने का प्रयास किया ।[4] उसने एक ही रात में २० उपसर्ग उपस्थित किये । उसने प्रलयकारी धूल की वर्षा, वृश्चिक, नकुल, सर्प, चींटियों, मूषक, गज, पिशाच, सिंह और चाण्डाल आदि के उपसर्गों द्वारा महावीर को तरह-तरह की वेदना पहुंचाई । संगमदेव ने महावीर पर कालचक्र भी चलाया, जिसके प्रभाव से महावीर के शरीर का आधा निचला भाग भूमि में धंस गया । उसने एक अप्सरा को महावीर के समक्ष प्रस्तुत किया और स्वयं सिद्धार्थ एवं त्रिशला का रूप धारण कर करुण विलाप भी किया । पर महावीर इन उपसर्गों से तनिक भी विचलित नहीं हुए । अन्त में संगम देव ने अपनी पराजय स्वीकार करते हुए महावीर से क्षमा मांगी ।[5]

दक्षिण की ओर शूलपाणि यक्ष की मूर्ति है, जिसकी दोनों भुजाएं ऊपर उठी हैं । शूलपाणि के वक्षःस्थल की सभी हड्डियां दीख रही हैं । समीप ही वृश्चिक, सर्प, कपि, नकुल, गज और सिंह की आकृतियां उत्कीर्ण हैं । आगे महावीर की कायोत्सर्ग मूर्ति है । नीचे 'महावीर उपसर्ग' लिखा है । यह शूलपाणि यक्ष के उपसर्गों का चित्रण है । महावीर-मूर्ति के नीचे भी वृषभ, गज और सिंह की मूर्तियां हैं । साथ ही बाण और चक्र जैसे शस्त्र भी अंकित हैं । नीचे 'महावीर उपसर्ग' उत्कीर्ण है । महावीर के दाहिने पार्श्व में एक सर्प को दंश करते हुए दिखाया गया है । ऊपर आक्रमण की मुद्रा में एक आकृति चित्रित है । समीप ही सर्प और खड्ग से युक्त एक आकृति को कायोत्सर्ग में खड़े महावीर पर प्रहार की मुद्रा म दिखाया गया है । आगे महावीर की एक दूसरी कायोत्सर्ग मूर्ति उत्कीर्ण है । एक वृषभ महावीर पर आक्रमण की मुद्रा मे दिखाया गया है । ये सभी संगमदेव के उपसर्ग हैं ।

उपसर्गों के बाद महावीर के चन्दनबाला से भिक्षाग्रहण करने का दृश्य है । ज्ञातव्य है कि चन्दनबाला महावीर की प्रथम शिष्या एवं श्रमणी-संघ की प्रवर्तिनी थी । चन्दनबाला चम्पा नगरी के शासक दधिवाहन की पुत्री थी और उसका प्रारम्भिक नाम वसुमति था । एक बार कौशाम्बी के राजा ने दधिवाहन पर आक्रमण कर उसे पराजित कर दिया और उसकी पुत्री वसुमती को कौशाम्बी ले आया, जहां उसने वसुमती को धनावह श्रेष्ठी के हाथों बेच दिया । धनावह और उसकी पत्नी मूला वसुमती को अपनी पुत्री के समान मानते थे । दोनों ने वसुमती का नया नाम चन्दना रखा । चन्दना का सौन्दर्य अनुपम था । उसकी अपार रूपराशि को देखकर मूला के हृदय का स्त्री दौर्बल्य जाग उठा और उसने यह सोचना

---

१ त्रि०श०पु०च० १०.३.१११-४६ २ त्रि०श०पु०च० १०.३.२२५-८०

३ त्रि०श०पु०च० १०.३.५५४-६६ ४ त्रि०श०पु०च० १०.४.१८४-२८१

५ चतुर्विंशति जिनचरित, जिनचरित परिशिष्ट, २२२-३७

प्रारम्भ कर दिया कि कहीं धनावह चन्दना से विवाह न कर ले। मूला अब चन्दना को हटाने का उपाय सोचने लगी। एक दिन अपराह्न में धनावह जब बाजार से घर लौटा तो सेवकों के उपस्थित न होने के कारण चन्दना ही धनावह का पैर धोने लगी। नीचे झुकने के कारण चन्दना का जूड़ा खुल गया और उसकी केशराशि बिखर गई। चन्दना के केश कहीं कीचड़ में न सन जावें, इस दृष्टि से सहज वात्सल्य से प्रेरित होकर धनावह ने चन्दना की केशराशि को अपनी यष्टि से ऊपर उठा कर जूड़ा बांध दिया। संयोगवश मूला यह सब देख रही थी। उसने अपने सन्देह को वास्तविकता का रूप दे डाला और चन्दना का सर्वनाश करने पर तुल गई। एक बार जब धनावह कार्यवश किसी दूसरे गांव चला गया था, तब मूला ने चन्दना के बालों को मुड़वा कर उसे शारीरिक यातनाएं दीं और उसे एक कमरे में बन्द कर दिया। तीन दिनों तक चन्दना भूखी-प्यासी उसी कमरे में बन्द रही। वापिस लौटने पर जब धनावह को यह ज्ञात हुआ तो वह रो पड़ा। रसोईघर में जाने पर उसे सूप में कुछ उड़द के बाकलों के अतिरिक्त कुछ नहीं मिला। उसने चन्दना से उन्हीं को ग्रहण करने को कहा। उसी समय एक मुनि आया जिसे चन्दना ने उन उड़द के बाकलों की भिक्षा दी। मुनि और कोई नहीं बल्कि स्वयं महावीर थे। उसी क्षण आकाश में महादान-महादान की देववाणी हुई। चन्दना के मुण्डित मस्तक पर लम्बी केशराशि उत्पन्न हो गई और इन्द्र ने महावीर की वन्दना के बाद चन्दना का भी अभिवादन किया। जब महावीर को केवल-ज्ञान प्राप्त हुआ तो चन्दनबाला ने महावीर से दीक्षा ग्रहण की और श्रमणी संघ का संचालन करते हुए निर्वाण प्राप्त किया।[1]

दक्षिण की ओर चन्दनबाला को धनावह का पैर धोते हुए दिखाया गया है। नीचे 'चन्दनबाला' अभिलिखित है। धनावह एक यष्टि की सहायता से चन्दना की बिखरी केशराशि को उठा रहा है। अगले दृश्य में चन्दनबाला एक कमरे में बन्द है और उसके समीप मुनि की एक आकृति खड़ी है। मुनि स्वयं महावीर हैं। मुनि के एक हाथ में मुखपट्टिका है और दूसरा व्याख्यान-मुद्रा में है। चन्दनबाला मुनि को भिक्षा देने की मुद्रा में निरूपित है। दोनों आकृतियों के नीचे क्रमशः 'चन्दनबाला' और 'महावीर' अभिलिखित हैं। आगे नमस्कार-मुद्रा में इन्द्र की एक मूर्ति है। पूर्व की ओर महावीर की एक मूर्ति है। महावीर दो वृक्षों के मध्य ध्यानमुद्रा में विराजमान हैं। नीचे 'समवसरण श्रीमहावीर' अभिलिखित है। आगे महावीर की एक कायोत्सर्ग मूर्ति भी उत्कीर्ण है।

कुम्भारिया के शान्तिनाथ मन्दिर की पश्चिमी भ्रमिका के वितान के दृश्य कुछ नवीनताओं के अतिरिक्त महावीर मन्दिर के दृश्यांकन के समान हैं (चित्र ४१)। सम्पूर्ण दृश्यांकन चार आयतों में विभक्त हैं। बाहर से प्रथम आयत में पूर्व, पश्चिम और दक्षिण की ओर महावीर के पूर्वभवों के विस्तृत अंकन हैं। पूर्व में भरत चक्रवर्ती और उनके पुत्र मारीचि (तीसराभव) की आकृतियां हैं। मारीचि की साधु के रूप में भी एक आकृति है। दक्षिण की ओर विश्वभूति (१६वां भव) के जीवन की एक घटना चित्रित है। जैन परम्परा में उल्लेख है कि जैन श्रावक के रूप में विचरण करते हुए विश्वभूति किसी समय मथुरा पहुंचे और वहां एक गाय के धक्के से गिर पड़े। इस पर उनके भाई विशाखनन्दिन ने विश्वभूति की शक्ति का परिहास किया। इस बात से विश्वभूति क्रोधित हुए और उन्होंने उस गाय को केवल शृंग से पकड़कर नियंत्रण में कर लिया।[2] दृश्य में विश्वभूति एक गाय का शृंग पकड़े हुए हैं। नीचे 'विश्वभूति' उत्कीर्ण है। समीप ही एक अन्य गाय और पुरुष आकृतियां बनी हैं। आगे नयसार के जीव को देवता के रूप में प्रदर्शित किया गया है। देवता के समक्ष हल और मुसल से युक्त एक आकृति खड़ी है।

पश्चिम की ओर त्रिपृष्ठ की कथा चित्रित है। एक कायोत्सर्ग आकृति के समीप सिंह और त्रिपृष्ठ की आकृतियां उत्कीर्ण हैं। यह सिंह और त्रिपृष्ठ के युद्ध का चित्रण है। आगे त्रिपृष्ठ और शय्यापालक की मूर्तियां हैं। शय्यापालक नमस्कार-मुद्रा में खड़ा है और त्रिपृष्ठ उसके मस्तक पर प्रहार कर रहे हैं। यह शय्यापालक को दण्डित करने का दृश्य है। समीप ही एक नर्तकी और वाद्यवादन करती दो आकृतियां भी निरूपित हैं। आगे प्रियमित्र चक्रवर्ती (२२वां भव) की आकृति है।

---

1 त्रि०श०पु०च० १०.४.५१६–६००

2 त्रि०श०पु०च० १०.१.८६–१०७

उत्तर की ओर सिद्धार्थ और त्रिशला की वार्तालाप करती, त्रिशला की शय्या पर अकेली और शिशु के साथ लेटी, महावीर के जन्म-अभिषेक एवं बाल्यकाल की घटनाओं से सम्बन्धित मूर्तियां हैं। बाल्यकाल की घटनाओं के चित्रण में सबसे पहले महावीर को एक पुरुष आकृति की पीठ पर बैठे, हुए दिखाया गया है। महावीर की एक भुजा में सम्भवतः चाबुक है। आकृति के नीचे 'वीर' उत्कीर्ण है। जैन परम्परा में उल्लेख है कि एक बार इन्द्र देवताओं से कुमार महावीर की निर्भयता की प्रशंसा कर रहे थे। इस पर एक देवता ने महावीर की शक्ति-परीक्षा लेने का निश्चय किया। देवता महावीर के क्रीड़ा-स्थल पर आया। उस समय महावीर संकुली और तिन्दुसक खेल खेल रहे थे। संकुली खेल में किसी वृक्ष विशेष को लक्षित कर बालक उस ओर दौड़ते हैं और जो बालक सबसे पहले उस वृक्ष पर चढ़कर नीचे उतर आता है वह विजयी माना जाता है, और विजेता पराजित बालक के कन्धों पर चढ़कर उस स्थान तक जाता है, जहां से दौड़ प्रारम्भ हुई होती है। देवता विषधर सर्प का स्वरूप धारण कर वृक्ष के तने पर लिपट गया। सभी बालक सर्प से डर गये पर महावीर ने निःशंक भाव से उस सर्प को पकड़कर रज्जु की तरह एक ओर फेंक दिया। देवता ने बालक का रूप धारण कर दौड़ के खेल में भी भाग लिया, पर महावीर से पराजित हुआ। महावीर नियमानुसार उस देवता पर आरूढ़ होकर वृक्ष से खेल के मूल स्थान तक आये।[1] दृश्य में एक बालक की पीठ पर महावीर बैठे हैं। समीप ही एक वृक्ष उत्कीर्ण है जिसके पास महावीर खड़े हैं और एक सर्प को फेंक रहे हैं। नीचे 'वीर' उत्कीर्ण है।

आगे वार्तालाप की मुद्रा में कुमार महावीर और सिद्धार्थ की मूर्तियां हैं। समीप ही महावीर की दीक्षा का दृश्य उत्कीर्ण है। दीक्षा के पूर्व महावीर को दान देते हुए और एक शिबिका में बैठकर दीक्षा-स्थल की ओर जाते हुए दिखाया गया है। तीसरे आयत में (पूर्व की ओर) महावीर को ध्यानमुद्रा में बैठे और दाहिनी भुजा से केशों का लुंचन करते हुए दिखाया गया है। दाहिने पार्श्व की इन्द्र की आकृति एक पात्र में लुंचित केशों को संचित कर रही है। आगे महावीर की चार कायोत्सर्ग मूर्तियां हैं जो महावीर की तपस्या का चित्रण है। समीप ही कायोत्सर्ग में खड़ी महावीर-मूर्ति के शीर्ष भाग में एक चक्र उत्कीर्ण है और उनके जानु के नीचे का भाग नहीं प्रदर्शित है। बायीं ओर दो स्त्री-पुरुष आकृतियां खड़ी हैं। यह संगम देव द्वारा महावीर पर कालचक्र (१८ वां उपसर्ग) चलाये जाने का मूर्त अंकन है। स्मरणीय है कि कालचक्र के प्रभाव से महावीर के घुटनों तक का भाग भूमि में प्रविष्ट हो गया था[2]; इसी कारण मूर्ति में भी महावीर के जानु के नीचे का भाग नहीं उत्कीर्ण किया गया है। बायें कोने पर क्षमायाचना की मुद्रा में संगम देव की मूर्ति है।

दक्षिण की ओर (दाहिने) चन्दनबाला की कथा उत्कीर्ण है। एक मण्डप में चतुर्भुज इन्द्र आसीन हैं। समीप ही महावीर की कायोत्सर्ग में तपस्यारत एवं मुनिरूप में वस्त्र से युक्त मूर्तियां हैं। आगे चन्दनबाला धनावह का पैर धो रही है। धनावह एक यष्टि से चन्दनबाला की बिखरी केशराशि को उठाये है। आकृतियों के नीचे 'श्रेष्ठी' और 'चन्दनबाला' उत्कीर्ण है। चन्दनबाला के समीप श्रेष्ठी-पत्नी मूला आश्चर्य से यह दृश्य देख रही है। आगे चन्दनबाला को एक कमरे में बन्द और महावीर को भिक्षा देते हुए निरूपित किया गया है। आकृतियों के नीचे 'चन्दनबाला' और 'वीर' लिखा है। समीप ही इस महादान पर प्रसन्नता व्यक्त करती हुई आकृतियां अंकित हैं। वितान पर महावीर का समवसरण नहीं उत्कीर्ण है।

कल्पसूत्र के चित्रों में महावीर के पूर्वभवों, पंचकल्याणकों, उपसर्गों एवं देवानन्दा के गर्भ से त्रिशला के गर्भ में स्थानान्तरण के विस्तृत अंकन हैं।[3] एक चित्र में महावीर सिद्धरूप में प्रदर्शित हैं। सिद्धरूप में महावीर ध्यानमुद्रा में विराजमान और विभिन्न अलंकरणों से युक्त हैं। अगले चित्रों में महावीर के प्रमुख गणधर इन्द्रभूति गौतम और महावीर के निर्वाण के बाद दीपावली का उत्सव मनाने के अंकन हैं।

---

१ त्रि०श०पु०च०, १०, २. ८८-१२४ २ हस्तीमल, पूर्वनि०, पृ० ३८९

३ ब्राउन, डब्लू०एन०, पूर्वनि०, पृ० ११-४४

दक्षिण भारत—दक्षिण भारत से पर्याप्त संख्या में महावीर की मूर्तियां मिली हैं। इनमें अधिकांशतः महावीर ध्यानमुद्रा में विराजमान हैं। महावीर के सिंह लांछन और यक्ष-यक्षी के नियमित चित्रण प्राप्त होते हैं। बादामी की गुफा ४ में महावीर की सातवीं शती ई० की कायोत्सर्ग मूर्तियां हैं।[1] इनमें चतुर्भुज यक्ष-यक्षी और परिकर में २४ छोटी जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। महावीर के कन्धों पर जटाएं भी प्रदर्शित हैं। एलोरा की जैन गुफाओं (३०, ३१, ३२, ३३, ३४) में भी महावीर की कई मूर्तियां (९वीं-११वीं शती ई०) हैं।[2] इनमें महावीर ध्यानमुद्रा में विराजमान हैं और उनके यक्ष-यक्षी के रूप में गजारूढ़ सर्वानुभूति एवं सिंहवाहना अम्बिका निरूपित हैं। समान विवरणों वाली एक मूर्ति बम्बई के हरीदास स्वाली संग्रह में है।[3] दो कायोत्सर्ग मूर्तियां हैदराबाद संग्रहालय में हैं।[4] इन मूर्तियों के परिकर में २३ छोटी जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। तीन मूर्तियां मद्रास गवर्नमेन्ट म्यूज़ियम में हैं।[5] दो उदाहरणों में यक्ष-यक्षी और एक उदाहरण में २३ छोटी जिन आकृतियां बनी हैं। दक्षिण भारत से मिली ल० नवीं-दसवीं शती ई० की एक ध्यानस्थ मूर्ति पेरिस संग्रहालय (म्यूजे गीमे) में है।[6] मूर्ति की पीठिका पर सिंह लांछन और परिकर मे सात सर्पफणों वाले पार्श्वनाथ और बाहुबली की कायोत्सर्ग मूर्तियां अंकित हैं।

विश्लेषण

सम्पूर्ण अध्ययन से स्पष्ट है कि उत्तर भारत में ऋषभ और पार्श्व के बाद महावीर ही सर्वाधिक लोकप्रिय थे। गुप्त युग में महावीर के सिंह लांछन का प्रदर्शन प्रारम्भ हुआ। भारत कला भवन, वाराणसी की ल० छठी शती ई० की मूर्ति (१६१) इसका प्राचीनतम ज्ञात उदाहरण है। महावीर की मूर्तियों में ल० दसवीं शती ई० में यक्ष-यक्षी का अंकन प्रारम्भ हुआ। यक्ष-यक्षी युगलों से युक्त दसवीं शती ई० की सभी महावीर मूर्तियां उत्तरप्रदेश एवं मध्यप्रदेश में देवगढ़, ग्यारसपुर, खजुराहो एवं राज्य संग्रहालय, लखनऊ (जे ८०८) में हैं। मूर्त अंकनों में महावीर के यक्ष-यक्षी का पारम्परिक या कोई स्वतन्त्र स्वरूप कभी भी स्थिर नहीं हो सका। केवल देवगढ़, खजुराहो, ग्यारसपुर एवं राजपूताना संग्रहालय, अजमेर (२७९) की ही कुछ महावीर मूर्तियों में स्वतन्त्र लक्षणों वाले यक्ष-यक्षी निरूपित हैं। बिहार, उड़ीसा और बंगाल की मूर्तियों में यक्ष-यक्षी उत्कीर्ण ही नहीं हैं। गुजरात एवं राजस्थान की मूर्तियों में यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका हैं।[7] अष्ट-प्रातिहार्यों, नवग्रहों एवं लघु जिन आकृतियों के चित्रण सभी क्षेत्रों में लोकप्रिय थे। महावीर की जीवन्तस्वामी मूर्तियों और उनके जीवनदृश्यों के अंकन केवल गुजरात और राजस्थान के श्वेतांबर स्थलों से ही मिले हैं।[8]

द्वितीर्थी-जिन-मूर्तियां

द्वितीर्थी जिन मूर्तियों से आशय उन मूर्तियों से है जिनमें दो जिन-मूर्तियां साथ-साथ उत्कीर्ण हैं। ऐसी जिन मूर्तियों का निर्माण परम्परा-सम्मत नहीं है, क्योंकि जैन ग्रन्थों में हमें द्वितीर्थी जिन मूर्तियों के सम्बन्ध में किसी प्रकार के उल्लेख नहीं मिलते। इन मूर्तियों का निर्माण नवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य हुआ है। इनके उदाहरण केवल दिगंबर स्थलों से ही मिले हैं। सर्वाधिक मूर्तियां खजुराहो और देवगढ़ में हैं। लाक्षणिक विशेषताओं के आधार पर द्वितीर्थी जिन मूर्तियों

---

१ अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, चित्र संग्रह ए २१–६०, ६१

२ गुप्ते, आर०एस० तथा महाजन, बी०डी०, अजन्ता, एलोरा ऐण्ड औरंगाबाद केव्स, बम्बई, १९६२, पृ०१२९-२२३

३ शाह, यू०पी०, 'जैन ब्रोन्जेज इन हरीदास स्वालीज कलेक्शन', बु०प्रि०वे०म्यू०वे०इं०, अं० ९, पृ० ४७–४९

४ राव, एस०एच०, 'जैनिज्म इन दि डकन', ज०इं०हि०, खं० २६, भाग १–३, पृ० ४५–४९

५ रामचन्द्रन, टी०एन०, जैन मान्युमेन्ट्स ऐण्ड प्लेसेज ऑव फर्स्ट क्लास इम्पार्टेन्स, कलकत्ता, १९४४, पृ० ६४-६६

६ जै०क०स्था०, खं० ३, पृ० ५६३

७ राजपूताना संग्रहालय, अजमेर (२७९) की महावीर मूर्ति इसका अपवाद है।

८ मथुरा का कुषाणकालीन फलक (राज्य संग्रहालय, लखनऊ, जे ६२६) इसका अपवाद है।

को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। पहले वर्ग की मूर्तियों में एक ही जिन की दो आकृतियां उत्कीर्ण हैं। इस वर्ग में केवल ऋषभ, सुपार्श्व एवं पार्श्व की ही मूर्तियां हैं। दूसरे वर्ग में लांछन विहीन जिनों की दो मूर्तियां बनी हैं। इस प्रकार पहले और दूसरे वर्गों की द्वितीर्थी मूर्तियों का उद्देश्य एक ही जिन की दो आकृतियों का उत्कीर्णन था। तीसरे वर्ग में भिन्न लांछनों वाली दो जिन मूर्तियां निरूपित हैं। इस वर्ग की मूर्तियों का उद्देश्य सम्भवतः दो भिन्न जिनों को एक स्थान पर साथ-साथ प्रतिष्ठित करना था।

सभी वर्गों की मूर्तियों में दोनों जिन आकृतियां कायोत्सर्ग-मुद्रा में निर्वस्त्र खड़ी हैं। जिन मूर्तियां धर्मचक्र से युक्त सिंहासन या साधारण पीठिका पर उत्कीर्ण हैं। प्रत्येक जिन दो पार्श्ववर्ती चामरधरों, उपासकों, उड्डीयमान मालाधरों, गजों एवं त्रिछत्र, अशोकवृक्ष, भामण्डल और दुन्दुभिवादक की आकृतियों से युक्त हैं। कुछ उदाहरणों में चार के स्थान पर केवल तीन ही चामरधरों एवं उड्डीयमान मालाधरों की आकृतियां उत्कीर्णित हैं।[1] दसवीं शती ई० में जिनों के लांछन एवं ग्यारहवीं शती ई० में यक्ष-यक्षी युगलों के उत्कीर्णन प्रारम्भ हुए।

दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० की एक मूर्ति खण्डगिरि की गुफा से मिली है और सम्प्रति ब्रिटिश संग्रहालय, लन्दन (९९) में सुरक्षित है (चित्र ६०)।[2] जिनों की पीठिकाओं पर वृषभ और सिंह लांछन उत्कीर्ण हैं। इस प्रकार यह ऋषभ और महावीर की द्वितीर्थी मूर्ति है। ऋषभ जटामुकुट से शोभित हैं पर महावीर की केशरचना गुच्छकों के रूप में प्रदर्शित है। अलुआरा (मानभूम) से प्राप्त ग्यारहवीं शती ई० की एक मूर्ति पटना संग्रहालय (१०६८२) में है।[3] लांछनों के आधार पर जिनों की पहचान ऋषभ और महावीर से सम्भव है।

खजुराहो से दसवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की नौ मूर्तियां मिली हैं (चित्र ६१, ६३)।[4] सभी में अष्ट-प्रातिहार्य प्रदर्शित हैं। खजुराहो की द्वितीर्थी-जिन-मूर्तियों की एक प्रमुख विशेषता यह है कि वे लांछनों से रहित हैं। केवल शान्तिनाथ मन्दिर के आहाते की एक मूर्ति में ही लांछन प्रदर्शित है।[5] इस सन्दर्भ में ज्ञातव्य है कि दसवीं शती ई० तक खजुराहो के कलाकार सभी जिनों के लांछनों से परिचित हो चुके थे, और इस परिप्रेक्ष्य में द्वितीर्थी मूर्तियों में लांछनों का अभाव आश्चर्यजनक प्रतीत होता है। आठ उदाहरणों में प्रत्येक जिन मूर्ति के सिंहासन-छोरों पर द्विभुज या चतुर्भुज यक्ष-यक्षी निरूपित हैं।[6] द्विभुज यक्ष-यक्षी के करों में अभयमुद्रा (या पद्म) और जलपात्र (या फल) प्रदर्शित हैं। पांच उदाहरणों में यक्ष-यक्षी चतुर्भुज हैं। चतुर्भुज यक्ष-यक्षी की भुजाओं में सामान्यतः अभयमुद्रा, पद्म (या शक्ति), पद्म (या पद्म से लिपटी पुस्तिका) एवं फल (या जलपात्र) प्रदर्शित हैं। द्वितीर्थी मूर्तियों के परिकर में छोटी जिन आकृतियां भी उत्कीर्ण हैं।

देवगढ़ में नवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की ५० से अधिक द्वितीर्थी मूर्तियां हैं। सामान्यतः प्रातिहार्यों से युक्त जिन आकृतियां साधारण पीठिका या सिंहासन पर खड़ी हैं। अधिकांश उदाहरणों में जिनों के लांछन एवं परिकर में छोटी जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। देवगढ़ में केवल पहले और तीसरे वर्ग की ही द्वितीर्थी मूर्तियां हैं। पहले वर्ग की मूर्तियों में लटकती जटाओं[7] या पांच[8] और सात[9] सर्पफणों के छत्रों से शोभित ऋषभ, सुपार्श्व एवं पार्श्व की मूर्तियां हैं।

---

१ दो आकृतियां मूर्ति के छोरों पर और एक दोनों जिनों के मध्य में उत्कीर्ण हैं।

२ चन्दा, आर० पी०, मेडिवल इण्डियन स्कल्पचर इन दि ब्रिटिश म्यूजियम, वाराणसी, १९७२-(पु०मु०), पृ० ७१

३ प्रसाद, एच० के०, पू०नि०, पृ० २८६

४ ६ मूर्तियां शान्तिनाथ संग्रहालय (के २५, २६, २८, २९, ३०, ३१) में हैं, और शेष तीन क्रमशः शान्तिनाथ मन्दिर, मन्दिर १ और पुरातात्त्विक संग्रहालय, खजुराहो (१६५३) में हैं।

५ एक जिन के आसन पर गज-लांछन (अजितनाथ) उत्कीर्ण है पर दूसरे जिन का लांछन स्पष्ट नहीं है।

६ केवल शान्तिनाथ मन्दिर की ११वीं शती ई० की मूर्ति में यक्ष-यक्षी अनुपस्थित हैं।

७ चार उदाहरण

८ दो उदाहरण : मन्दिर १२ की पश्चिमी चहारदीवारी एवं मन्दिर १७

९ दस उदाहरण

तीसरे वर्ग की मूर्तियों में दो भिन्न लांछनों वाली मूर्तियां हैं। इस वर्ग की अधिकांश मूर्तियां ग्यारहवीं शती ई० की हैं। इस वर्ग की मूर्तियों में ऋषभ, अजित, सम्भव, अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, शीतल, विमल, शान्ति, कुंथु, नेमि, पार्श्व एवं महावीर की मूर्तियां हैं। मन्दिर १ की मूर्ति में विमल और कुंथु के सूकर और अज लांछन (चित्र ६२), मन्दिर ३ की मूर्ति में अजित और सम्भव के गज और अश्व लांछन, मन्दिर ४ की मूर्ति में अभिनन्दन और सुमति के कपि और क्रौंच लांछन, और मन्दिर १२ की पश्चिमी बहारदीवारी की मूर्ति में शान्ति और सुपार्श्व[1] के मृग और स्वस्तिक लांछन अंकित हैं। मन्दिर १२ की उत्तरी बहारदीवारी पर ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० की कई मूर्तियां हैं। इनमें ऋषभ, महावीर, पद्मप्रभ और नमि की मूर्तियां हैं। मन्दिर ८ की मूर्ति में सुपार्श्व और पार्श्व की स्वस्तिक और सर्प लांछन से युक्त मूर्तियां हैं। सुपार्श्व और पार्श्व के मस्तकों पर सर्पफणों के छत्र नहीं प्रदर्शित हैं।

यक्ष-यक्षी युगल केवल दो ही उदाहरणों (मन्दिर १९, ल० ११वीं शती ई०) में निरूपित हैं। एक मूर्ति में यक्ष-यक्षी द्विभुज हैं और उनके करों में अभयमुद्रा (गदा) एवं फल प्रदर्शित हैं। दूसरी द्वितीर्थी मूर्ति ऋषभ और अजित की हैं। अजित के साथ परम्पराविरुद्ध गोमुख और चक्रेश्वरी निरूपित हैं। द्विभुज गोमुख की भुजाओं में परशु और फल हैं। गरुडवाहना चक्रेश्वरी चतुर्भुजा है और उसके करों में अभयमुद्रा, गदा, चक्र एवं शंख प्रदर्शित हैं। ऋषभ के द्विभुज यक्ष के हाथों में अभयमुद्रा और पद्म हैं। ऋषभ की चतुर्भुजा यक्षी के अवशिष्ट हाथों में अभयमुद्रा और पद्म हैं। इस मूर्ति के परिकर में पार्श्वनाथ की लघु आकृति उत्कीर्ण है। मन्दिर १९ की इन दोनों ही मूर्तियों में केवल एक ही त्रिछत्र, दुन्दुभिवादक एवं उड्डीयमान मालाधर बने हैं। तीन उदाहरणों[2] में पंक्तिबद्ध ग्रहों की द्विभुज मूर्तियां भी बनी हैं।[3] मन्दिर १२ के प्रदक्षिणा-पथ की मूर्ति में सूर्य उत्कुटिकासन में विराजमान हैं और उनके दोनों करों में सनाल पद्म हैं। अन्य छह ग्रह ललितमुद्रा में आसीन हैं और उनके करों में अभयमुद्रा और कलश प्रदर्शित हैं। ऊर्ध्वकाय राहु के समीप सर्पफण से शोभित केतु की आकृति उत्कीर्ण है।

पार्श्व की द्वितीर्थी मूर्तियों[4] में मूर्ति के छोरों पर एक सर्पफण के छत्र से युक्त दो छत्रधारिणी सेविकाएं निरूपित हैं। छत्र के शीर्ष भाग दोनों जिनों के सर्पफणों के ऊपर प्रदर्शित हैं।[5] इन मूर्तियों में त्रिछत्र नहीं प्रदर्शित हैं। पार्श्व की कुछ द्वितीर्थी मूर्तियों (मन्दिर ८) में एक सर्पफण के छत्र से युक्त तीन चामरधर सेवक भी आमूर्तित हैं। मन्दिर १७ और १८ की पार्श्व की दो द्वितीर्थी मूर्तियों (१०वीं शती ई०) में प्रत्येक जिन के पार्श्वों में तीन सर्पफणों के छत्रों से युक्त स्त्री-पुरुष सेवक आमूर्तित हैं। बायीं ओर की सेविका के हाथों में लम्बा छत्र है पर पुरुष के हाथों में अभयमुद्रा और चामर हैं।

त्रितीर्थी-जिन-मूर्तियां

द्वितीर्थी जिन मूर्तियों की शैली पर ही त्रितीर्थी जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हुईं, जिनमें दो के स्थान पर तीन जिनों की मूर्तियां हैं। सभी जिन कायोत्सर्ग-मुद्रा में निर्वस्त्र खड़े हैं। इनमें अष्ट-प्रातिहार्य भी उत्कीर्ण हैं। जैन ग्रन्थों में त्रितीर्थी जिन मूर्तियों के सम्बन्ध में भी कोई उल्लेख नहीं प्राप्त होता। त्रितीर्थी मूर्तियां दसवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य उत्कीर्ण हुईं। इनके उदाहरण केवल दिगंबर स्थलों (देवगढ़ एवं खजुराहो) से ही मिले हैं। त्रितीर्थी मूर्तियों में सर्वदा तीन अलग-अलग जिनों की ही मूर्तियां उत्कीर्ण हैं।

---

१ सुपार्श्व के मस्तक पर सर्पफणों का छत्र नहीं है।

२ मन्दिर (१२ प्रदक्षिणापथ), मन्दिर १६, म। दर १२ (बहारदीवारी)

३ मन्दिर १२ की दक्षिणी बहारदीवारी और मन्दिर १६ की द्वितीर्थी मूर्तियों में सूर्य, राहु, केतु एवं एक अन्य ग्रहों की मूर्तियां नहीं उत्कीर्ण हैं। मन्दिर १६ की मूर्ति में राहु उपस्थित है।

४ मन्दिर १२ की पश्चिमी बहारदीवारी और मन्दिर ८ की १०वीं-११वीं शती ई० की मूर्तियां

५ कुछ उदाहरणों (मन्दिर १२ एवं १७) में सेविकाओं की भुजाओं में छत्र के स्थान पर केवल दण्ड प्रदर्शित हैं।

खजुराहो में केवल एक त्रितीर्थी मूर्ति (मन्दिर ८) है। ग्यारहवीं शती ई० की इस मूर्ति में नेमि, पार्श्व और महावीर की मूर्तियां निरूपित हैं। देवगढ़ में २० से अधिक त्रितीर्थी मूर्तियां हैं। देवगढ़ की त्रितीर्थी जिन मूर्तियों को लाक्षणिक विशेषताओं के आधार पर तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है। पहले वर्ग में ऐसी मूर्तियां हैं जिनमें तीन जिनों को कायोत्सर्ग-मुद्रा में निरूपित किया गया है। दूसरे वर्ग में ऐसी मूर्तियां हैं जिनमें मध्यवर्ती जिन ध्यानमुद्रा में आसीन हैं, पर पार्श्ववर्ती जिन आकृतियां कायोत्सर्ग में खड़ी हैं। तीसरे वर्ग में ऐसी मूर्तियां हैं जिनमें कायोत्सर्ग में खड़ी दो जिन मूर्तियों के साथ तीसरी आकृति सरस्वती या भरत चक्रवर्ती की है। इनमें जिन की तीसरी आकृति मूर्ति के किसी अन्य छोर पर उत्कीर्ण है। जिनों के साथ सरस्वती एवं भरत के निरूपण सम्भवतः उनकी प्रतिष्ठा में वृद्धि और उन्हें जिनों से समकक्ष प्रतिष्ठित करने के प्रयास के सूचक हैं। पहले वर्ग की दसवीं शतीई० की एक मूर्ति मन्दिर १२ की उत्तरी चहारदीवारी पर है। इस मूर्ति में शंख, सर्प एवं सिंह लांछनों से युक्त नेमि, पार्श्व एवं महावीर निरूपित हैं। पार्श्व के साथ सात सर्प-फणों का छत्र और नेमि तथा महावीर के नीचे उनके नाम भी उत्कीर्ण हैं।[1] मन्दिर ३ में कपि, पुष्प एवं पद्म लांछनों से युक्त अभिनन्दन, पद्मप्रभ और नमि की एक त्रितीर्थी मूर्ति (११वीं शतीई०) है। मन्दिर १ की भित्ति पर ग्यारहवीं शतीई० की आठ त्रितीर्थी मूर्तियां हैं। एक में लांछन कपि (अभिनन्दन), गज (अजित) और अश्व (सम्भव) हैं। दूसरी में एक जिन के मस्तक पर पांच सर्पफणों का छत्र (सुपार्श्व) है और दूसरे जिन का लांछन शंख (नेमि) है, पर तीसरे जिन का लांछन स्पष्ट नहीं है। तीसरी मूर्ति में दो जिनों के लांछन मृग (शान्ति) एवं बकरा (कुंथु) हैं, पर तीसरे जिन का लांछन स्पष्ट नहीं है। चौथी मूर्ति में लांछन सर्प (पार्श्व), स्वस्तिक (सुपार्श्व) और कोई पशु (?) हैं। सुपार्श्व और पार्श्व क्रमशः पांच और सात सर्पफणों के छत्र से भी युक्त हैं। पांचवी मूर्ति में केवल एक ही जिन का लांछन स्पष्ट है, जो अर्धचन्द्र (चन्द्रप्रभ) है। छठी मूर्ति में लांछन स्वस्तिक (सुपार्श्व), पुष्प (पुष्पदन्त) और अज (? कुंथु) हैं। सुपार्श्व के मस्तक पर सर्पफणों का छत्र नहीं है। इस मूर्ति के बायें छोर पर जैन आचार्यों की तीन मूर्तियां हैं। समान विवरणों वाली सातवीं मूर्ति में भी बायीं ओर जैन आचार्यों की तीन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। इस उदाहरण में जिनों के लांछन स्पष्ट नहीं हैं। आठवीं मूर्ति में भी जिनों के लांछन स्पष्ट नहीं है। केवल सात सर्पफणों के शिरस्त्राण से युक्त एक जिन की पहचान पार्श्व से सम्भव है। इस मूर्ति के दाहिने छोर पर यक्ष-यक्षी और लांछन से युक्त महावीर की एक मूर्ति है।

दूसरे वर्ग की दसवीं शती ई० की एक मूर्ति मन्दिर २९ के शिखर पर है (चित्र ६४)। सभी जिनों के साथ द्विभुज यक्ष यक्षी निरूपित हैं। मध्य की ध्यानस्थ मूर्ति के साथ लांछन नहीं उत्कीर्ण है पर यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका हैं, जिनके आधार पर जिन की पहचान नेमि से की जा सकती है। नेमि के दक्षिण एवं वाम पार्श्वों में क्रमशः पार्श्वनाथ और सुपार्श्वनाथ की कायोत्सर्ग मूर्तियां हैं। ग्यारहवी शती ई० की एक मूर्ति मन्दिर १ की भित्ति पर है। मध्य में यक्ष-यक्षी से वेष्टित चन्द्रप्रभ की ध्यानस्थ मूर्ति है। चन्द्रप्रभ के दोनों ओर सुपार्श्व और पार्श्व को कायोत्सर्ग मूर्तियां हैं।

तीसरे वर्ग की केवल दो ही मूर्तियां (११वीं शती ई०) हैं। मन्दिर २ की पहली मूर्ति में बायें छोर पर बाहुबली की कायोत्सर्ग मूर्ति है (चित्र ७५)। एक ओर भरत की भी कायोत्सर्ग मूर्ति बनी है। जैन परम्परा में उल्लेख है कि ऋषभ-पुत्र भरत ने जीवन के अन्तिम दिनों में दीक्षा ग्रहण कर तपस्या की थी। भरत-मूर्ति की पीठिका पर गज, अश्व, चक्र, घट, खड्ग एवं वज्र उत्कीर्ण हैं, जो चक्रवर्ती के लक्षण हैं। मूर्ति की जिन आकृतियों की पहचान लांछनों के अभाव में सम्भव नहीं है। मन्दिर १ की दूसरी मूर्ति में अजित और सम्भव के साथ वाग्देवी सरस्वती की चतुर्भुजी मूर्ति उत्कीर्ण है (चित्र ६५)।[2] मयूरवाहना सरस्वती के करों में वरदमुद्रा, अक्षमाला, पद्म और पुस्तक हैं। तीसरी जिन आकृति की पहचान सम्भव नहीं है।

---

१ तिवारी, एम०एन०पी०, 'ऐन अन्पब्लिश्ड त्रितीर्थिक जिन इमेज फ्राम देवगढ़', जैन जर्नल, खं० ११, अं० २, अक्तूबर ७६, पृ० ७१–७४

२ तिवारी, एम० एन० पी०, 'ए यूनिक त्रितीर्थिक जिन इमेज फ्राम देवगढ़', ललितकला, अं० १७, पृ० ४१–४२

सर्वतोभद्रिका जिन मूर्तियां या जिन चौमुखी

प्रतिमा सर्वतोभद्रिका या सर्वतोभद्र प्रतिमा का अर्थ है वह प्रतिमा जो सभी ओर से शुभ या मंगलकारी है, अर्थात् ऐसा शिल्पकार्य जिसमें एक ही शिलाखण्ड में चारों ओर चार प्रतिमाएं निरूपित हों।[1] पहली शती ई० में मथुरा में इनका निर्माण प्रारम्भ हुआ। इन मूर्तियों में चारों दिशाओं में चार जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। ये मूर्तियां या तो एक ही जिन की या अलग-अलग जिनों की होती हैं। ऐसी मूर्तियों को चतुर्बिम्ब, जिन चौमुखी और चतुर्मुख भी कहा गया है।[2] ऐसी प्रतिमाएं दिगंबर स्थलों पर विशेष लोकप्रिय थी।

जिन चौमुखी की धारणा को विद्वानों ने जिन समवसरण की प्रारम्भिक कल्पना पर आधारित और उसमें हुए विकास का सूचक माना है।[3] पर इस प्रभाव को स्वीकार करने में कई कठिनाईयां हैं। समवसरण वह देवनिर्मित सभा है, जहां प्रत्येक जिन कैवल्य प्राप्ति के बाद अपना प्रथम उपदेश देते हैं। समवसरण तीन प्राचीरों वाला भवन है जिसके ऊपरी भाग में अष्ट-प्रातिहार्यों से युक्त जिन ध्यानमुद्रा में (पूर्वाभिमुख) विराजमान होते हैं। सभी दिशाओं के श्रोता जिन का दर्शन कर सकें, इस उद्देश्य से व्यंतर देवों ने अन्य तीन दिशाओं मे भी उसी जिन की प्रतिमाएं स्थापित कीं।[4] यह उल्लेख सर्वप्रथम आठवीं-नवीं शती ई० के जैन ग्रन्थों में प्राप्त होता है। प्रारम्भिक जैन ग्रन्थों में चार दिशाओं में चार जिन मूर्तियों के निरूपण का उल्लेख नहीं प्राप्त होता। ऐसी स्थिति में कुषाणकालीन जिन चौमुखी में चार अलग-अलग जिनों के उत्कीर्णन को समवसरण की धारणा से प्रभावित और उसमें हुए किसी विकास का सूचक नहीं माना जा सकता। आठवीं-नवीं शती ई० के ग्रन्थों में भी समवसरण में किसी एक ही जिन की चार मूर्तियों के निरूपण का उल्लेख है, जब कि कुषाणकालीन चौमुखी में चार अलग-अलग जिनों को चित्रित किया गया है।[5] समवसरण में जिन सदैव ध्यानमुद्रा में आसीन होते हैं, जब कि कुषाणकालीन चौमुखी जिन मूर्तियां कायोत्सर्ग में खड़ी हैं। जहां हमें समकालीन जैन ग्रन्थों में जिन चौमुखी मूर्ति की कल्पना का निश्चित आधार नहीं प्राप्त होता है, वहीं तत्कालीन और पूर्ववर्ती शिल्प में ऐसे एकमुख और बहुमुख शिवलिंग[6] एवं यक्ष मूर्तियां[7] प्राप्त होती हैं जिनसे जिन चौमुखी की धारणा के प्रभावित होने की सम्भावना हो सकती है।

---

१ विस्तार के लिए द्रष्टव्य, एपि०इण्डि०, खं० २, पृ० २०२-०३, २१०; भट्टाचार्य, बी० सी०, पू०नि०, पृ० ४८; अग्रवाल, वी० एस०, पू०नि०, पृ० २७; दे, सुधीन, 'चौमुख ए सिम्बालिक जैन आर्ट', जैन जर्नल, खं० ६, अं० १, पृ० २७; पाण्डेय, दीनबन्धु, 'प्रतिमा सर्वतोभद्रिका', राज्य संग्रहालय, लखनऊ में २८ और २९ जनवरी १९७२ को जैन कला पर हुए संगोष्ठी में पढ़ा लेख; तिवारी, एम०एन०पी०, 'सर्वतोभद्रिका जिन मूर्तियां या जिन-चौमुखी', संबोधि, खं० ८, अं० १-४, अप्रैल ७९-जनवरी ८०, पृ० १-७

२ एपि०इण्डि०, ख० २, पृ० २११, लेख ४१

३ स्ट०जै०आ०, पृ० ९४-९५; दे, सुधीन, पू०नि०, पृ० २७; श्रीवास्तव, वी० एन०, पू०नि०, पृ० ४५

४ त्रि०श०पु०च० १.३.४२१-६८६; भण्डारकर, डी० आर०, 'जैन आइकानोग्राफी-समवसरण', इण्डि०एण्टि०, खं ४०, पृ० १२५-३०

५ मथुरा की १०२३ ई० की एक चौमुखी मूर्ति मे ही सर्वप्रथम समवसरण की धारणा को अभिव्यक्ति मिली। पीठिका-लेख में उल्लेख है कि यह महावीर की जिन चौमुखी है (वर्धमानचतुर्बिम्बः)-द्रष्टव्य, एपि०इण्डि०, खं० २, पृ० २११, लेख ४१

६ मथुरा से कुषाणकालीन एकमुख और पंचमुख शिवलिंगों के उदाहरण मिले हैं। गुडीमल्लम (दक्षिण भारत) के पहली शती ई० पू० के शिवलिंग में लिंगम के समक्ष स्थानक-मुद्रा में शिव की मानवाकृति उत्कीर्ण है—द्रष्टव्य, बनर्जी, जे० एन०, दि डेवलपमेण्ट ऑव हिन्दू आइकानोग्राफी, पृ० ४६१; भट्टाचार्य, बी०सी०, पू०नि०, पृ० ४८; शुक्ल, डी० एन०, प्रतिमाविज्ञान, लखनऊ, १९५६, पृ० ३१५

७ राजघाट (वाराणसी) से मिली परवर्ती शुंगकालीन एक त्रिमुख यक्ष मूर्ति में तीन दिशाओं में यक्ष आकृतियां उत्कीर्ण हैं—द्रष्टव्य, अग्रवाल, पी० के०, 'दि ट्रिपल यक्ष स्टैचू फ्राम राजघाट', छवि, वाराणसी, १९७१, पृ० ३४०-४२

जिन चौमुखी पर स्वस्तिक[1] तथा मौर्य शासक अशोक के सिंह एवं वृषभ स्तम्भ शीर्षों का भी कुछ प्रभाव असम्भव नहीं है। अशोक का सारनाथ-सिंह-शीर्ष-स्तम्भ इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है।

जिन चौमुखी प्रतिमाओं को मुख्यतः दो वर्गों में बांटा जा सकता है। पहले वर्ग में ऐसी मूर्तियां हैं जिनमें एक ही जिन की चार मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। दूसरे वर्ग की मूर्तियों में चार अलग-अलग जिनों की मूर्तियां हैं। पहले वर्ग की मूर्तियों का उत्कीर्णन ल० सातवीं-आठवीं शती ई० में प्रारम्भ हुआ। किन्तु दूसरे वर्ग की मूर्तियां पहली शती ई० से ही बनने लगी थीं। मथुरा की कुषाणकालीन चौमुखी मूर्तियां इसी दूसरे वर्ग की हैं। तुलनात्मक दृष्टि से पहले वर्ग की मूर्तियां संख्या में बहुत कम हैं। पहले वर्ग की मूर्तियों में जिनों के लांछन सामान्यतः नहीं प्रदर्शित हैं।

प्रारम्भिक मूर्तियां

प्राचीनतम जिन चौमुखी मूर्तियां कुषाणकाल की हैं। मथुरा से इन मूर्तियों के १५ उदाहरण मिले हैं (चित्र ६६)। सभी में चार जिन आकृतियां साधारण पीठिका पर कायोत्सर्ग में खड़ी हैं।[2] श्रीवत्स से युक्त सभी जिन निर्वस्त्र हैं (चित्र ७३)। चार में से केवल दो ही जिनों की पहचान जटाओं और सात सर्पफणों की छत्रावली के आधार पर क्रमशः ऋषभ और पार्श्व से सम्भव है। कुषाणकालीन जिन चौमुखी मूर्तियों में उपासकों एवं भामण्डल के अतिरिक्त अन्य कोई भी प्रातिहार्य नहीं उत्कीर्ण है। गुप्तकाल में जिन चौमुखी का उत्कीर्णन लोकप्रिय नहीं प्रतीत होता। हमें इस काल की केवल एक मूर्ति मथुरा से ज्ञात है जो पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा (बी ६८) में सुरक्षित है। कुषाणकालीन मूर्तियों के समान ही इसमें भी केवल ऋषभ एवं पार्श्व की ही पहचान सम्भव है।

पूर्वमध्ययुगीन मूर्तियां

जिनों के स्वतन्त्र लांछनों के निर्धारण के साथ ही ल० आठवीं शती ई० से जिन चौमुखी मूर्तियों में सभी जिनों के साथ लांछनों के उत्कीर्णन की परम्परा प्रारम्भ हुई। ऐसी एक प्रारम्भिक मूर्ति राजगिर के सोनभण्डार गुफा में है। बिहार और बंगाल की चौमुखी मूर्तियों में सभी जिनों के साथ स्वतन्त्र लांछनों का उत्कीर्णन विशेष लोकप्रिय था। अन्य क्षेत्रों में सामान्यतः कुषाणकालीन चौमुखी मूर्तियों के समान केवल दो ही जिनों (ऋषभ एवं पार्श्व) की पहचान सम्भव है। चौमुखी मूर्तियों में ऋषभ और पार्श्व के अतिरिक्त अजित, सम्भव, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, नेमि, शान्ति और महावीर की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। ल० आठवीं-नवीं शती ई० में जिन चौमुखी मूर्तियों में कुछ अन्य विशेषताएं भी प्रदर्शित हुईं। चौमुखी मूर्तियों में चार प्रमुख जिनों के साथ ही लघु जिन मूर्तियों का उत्कीर्णन भी प्रारम्भ हुआ। लघु जिन मूर्तियों की संख्या सदैव घटती-बढ़ती रही है। इनमें कभी-कभी २० या ४८ छोटी जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं, जो चार मुख्य जिनों के साथ मिलकर क्रमशः जिन चौबीसी और नन्दीश्वर द्वीप के भाव को व्यक्त करती हैं।

चारों प्रमुख जिन मूर्तियों के साथ सामान्य प्रातिहार्यों एवं कभी-कभी यक्ष-यक्षी युगलों और नवग्रहों को भी प्रदर्शित किया जाने लगा। साथ ही चौमुखी मूर्तियों के शीर्षभाग छोटे जिनालयों के रूप में निर्मित होने लगे, जिनमें आमलक और कलश भी उत्कीर्ण हुए। कुछ क्षेत्रों में चतुर्मुख जिनालयों का भी निर्माण हुआ। चतुर्मुख जिनालय का एक प्रारम्भिक उदाहरण (ल० ९वीं शती ई०) पहाड़पुर (बंगाल) से मिला है।[3] यह चौमुख मन्दिर चार प्रवेश-द्वारों से युक्त है और इसके मध्य में चार जिन प्रतिमाएं उत्कीर्ण हैं। ल० ग्यारहवीं शती ई० का एक विशाल चौमुख जिनालय इन्दौर (गुना, म० प्र०) में है (चित्र ६९)।[4] चारों जिन आकृतियां ध्यानमुद्रा में विराजमान हैं और सामान्य प्रातिहार्यों एवं

---

१ अग्रवाल, वी० एस०, इण्डियन आर्ट, वाराणसी, १९६५, पृ० ४९–५०, २३२

२ उल्लेखनीय है कि चौमुखी मूर्तियों में जिन अधिकांशतः कायोत्सर्ग में ही निरूपित हैं।

३ दे, सुधीन, पू०नि०, पृ० २७

४ अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, चित्र संग्रह ८२.३९, ८२.४०

यक्ष-यक्षी युगलों से युक्त हैं। मूलनायकों के परिकर में जिनों, स्थापना-युक्त जैन आचार्यों एवं गोद में बालक लिये स्त्री-पुरुष युगलों की कई आकृतियां उत्कीर्ण हैं। ल० ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० में स्तम्भों के शीर्ष भाग में भी जिन चौमुखी का उत्कीर्णन प्रारम्भ हुआ। ऐसे दो उदाहरण पुरातात्विक संग्रहालय, ग्वालियर[1] एवं राज्य संग्रहालय, लखनऊ (०·७२) में हैं।

गुजरात-राजस्थान—गुजरात और राजस्थान में श्वेतांबर स्थलों पर जिन चौमुखी का उत्कीर्णन विशेष लोकप्रिय नहीं था। इस क्षेत्र से दोनों वर्गों की चौमुखी मूर्तियां मिली हैं। दूसरे वर्ग की मूर्तियों में मथुरा की कुषाणकालीन चौमुखी मूर्तियों के समान केवल ऋषभ और पार्श्व की ही पहचान सम्भव है। अघीना (भरतपुर) से प्राप्त नवीं शती ई० की एक दिगंबर मूर्ति भरतपुर राज्य संग्रहालय (३) में है।[2] इसमें जटाओं से शोभित ऋषभ की चार कायोत्सर्ग मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। ल० ग्यारहवीं शती ई० की दो मूर्तियां बीकानेर संग्रहालय (१६७२) एवं राजपूताना संग्रहालय, अजमेर (४९३) में हैं।[3] इनमें ध्यानमुद्रा में विराजमान जिनों के साथ लांछन नहीं उत्कीर्ण हैं।

अकोटा से दूसरे वर्ग की दसवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की तीन श्वेतांबर मूर्तियां मिली हैं।[4] मूर्तियों के ऊपरी भाग शिखर के रूप में निर्मित हैं। सभी उदाहरणों में जिन आकृतियां ध्यानमुद्रा में बैठी हैं। इनमें केवल ऋषभ एवं पार्श्व की ही पहचान सम्भव है। बारहवीं शती ई० की एक मूर्ति विमलवसही की देवकुलिका १७ में सुरक्षित है।[5] यहां जिनों के लांछन नहीं उत्कीर्ण हैं पर यक्ष-यक्षी निरूपित हैं। यक्ष-यक्षी के आधार पर केवल दो ही जिनों, ऋषभ एवं नेमि, की पहचान सम्भव है। जिनों के सिंहासनों पर चतुर्भुज शान्तिदेवी और तोरणों पर प्रज्ञप्ति, वज्रांकुशी, अच्छुप्ता एवं महामानसी महाविद्याओं की मूर्तियां हैं।

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश—इस क्षेत्र में दोनों वर्गों की चौमुखी मूर्तियां निर्मित हुईं। पर दूसरे वर्ग की मूर्तियों की संख्या अधिक है। प्रथम वर्ग की ल० आठवीं शती ई० की एक मूर्ति भारत कला भवन, वाराणसी (७७) में है। इसमें सभी जिन निर्वस्त्र हैं और कायोत्सर्ग में साधारण पीठिका पर खड़े हैं। जिनों के लांछन नहीं उत्कीर्ण हैं। प्रत्येक जिन की पीठिका पर दो छोटी ध्यानस्थ जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। कौशाम्बी से मिली एक मूर्ति (१० वीं शती ई०) इलाहाबाद संग्रहालय (ए० एम० ९४३) में है।[6] लांछन विहीन चारों जिन मूर्तियां कायोत्सर्ग में खड़ी हैं। समान विवरणों वाली दो अन्य मूर्तियां क्रमशः ग्वालियर एवं मथुरा (१५२९) संग्रहालयों में सुरक्षित हैं।[7] कंकाली टीला, मथुरा से मिली और राज्य संग्रहालय, लखनऊ (जे २३६) में सुरक्षित १०२३ ई० की एक मूर्ति में ध्यानमुद्रा में चार जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। जिनों के लांछन नहीं प्रदर्शित हैं। पर पीठिका-लेख में इसे वर्धमान (महावीर) का चतुर्बिम्ब बताया गया है। मूर्ति का शीर्ष भाग मन्दिर के शिखर के रूप में निर्मित है। प्रत्येक जिन सिंहासन, धर्मचक्र, त्रिछत्र एवं वृक्ष की पत्तियों से युक्त हैं। बटेश्वर (आगरा) से मिली एक मूर्ति (११ वीं शती ई०) राज्य संग्रहालय, लखनऊ में है। लांछन रहित जिन ध्यानमुद्रा में विराजमान हैं। प्रत्येक जिन के साथ सिंहासन, भामण्डल, त्रिछत्र, दुन्दुभिवादक, उड्डीयमान मालाधर एवं उपासक आमूर्तित हैं। देवगढ़ से इस वर्ग की पांच मूर्तियां मिली हैं।[8] सभी उदाहरणों में लांछन विहीन जिन मूर्तियां कायोत्सर्ग में उत्कीर्ण हैं।

---

१ जैन, नीरज, 'पुरातात्विक संग्रहालय, ग्वालियर की जैन मूर्तियां', अनेकान्त, वर्ष १६, अं० ५, पृ० २१४
२ अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, चित्रसंग्रह १५६.७१, १५६.६८
३ श्रीवास्तव, वी० एस०, कैटलाग ऐण्ड गाइड टू गंगा गोल्डेन जुबिली म्यूजियम, बीकानेर, बम्बई, १९६१, पृ० १९
४ शाह, यू० पी०, अकोटा ब्रोन्जेज, पृ० ६०–६१, फलक ७० ए, ७० बी, ७१ ए
५ मूलनायक की मूर्तियां सम्प्रति सुरक्षित नहीं हैं। ६ चन्द्र, प्रमोद, पू०नि०, पृ० १४४
७ ठाकुर, एस० आर०, कैटलाग ऑव स्कल्पचर्स इन दि आर्किआलाजिकल म्यूजियम, ग्वालियर, लश्कर, पृ० २०; अग्रवाल, वी० एस०, पू०नि०, पृ० ३० ८ ये मूर्तियां मन्दिर १२ की चहारदीवारी एवं मन्दिर १५ से मिली हैं।

दूसरे वर्ग की ल० आठवीं शती ई० की एक मूर्ति पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा (बी ६५) में है। चारों जिन ध्यानमुद्रा में विराजमान हैं। लटकती जटाओं, सप्तसर्पफणों की छत्रावली एवं सर्वानुभूति-अम्बिका की आकृतियों के आधार पर तीन जिनों की पहचान क्रमशः ऋषभ, पार्श्व एवं नेमि से सम्भव है। दूसरे वर्ग की सर्वाधिक मूर्तियां (१०वीं–१२ वीं शती ई०) देवगढ़ में हैं।[1] अधिकांश मूर्तियों में जिन कायोत्सर्ग में खड़े हैं। मूर्तियों के ऊपरी भाग सामान्यतः शिखर के रूप में निर्मित हैं। जिनों के साथ सिंहासन, चामरधर, त्रिछत्र, दुन्दुभिवादक, उड्डीयमान मालाधर, मत्र एवं अशोक वृक्ष की पत्तियां भी उत्कीर्ण हैं। ग्यारहवीं शती ई० की दो मूर्तियों में चारों जिनों के साथ यक्ष-यक्षी भी निरूपित हैं। दोनों मूर्तियां मन्दिर १२ की चहारदीवारी के मुख्य प्रवेश-द्वार के समीप हैं। इनमें केवल ऋषभ एवं पार्श्व की ही पहचान स्पष्ट है। देवगढ़ की अधिकांश मूर्तियों मे केवल ऋषभ एवं पार्श्व (या सुपार्श्व)[2] की पहचान सम्भव है। सभी जिनों के साथ लांछन केवल कुछ ही उदाहरणों में उत्कीर्ण हैं। मन्दिर २६ के समीप की एक मूर्ति (११ वीं शती ई०) में ध्यानमुद्रा में विराजमान जिन वृषभ, कपि, शशि एवं मृग लांछनों से युक्त हैं। इस प्रकार यह ऋषभ, अभिनन्दन, चन्द्रप्रभ एवं शान्ति की चौमुखी है।

राज्य संग्रहालय, लखनऊ में सरायघाट (अलीगढ़) और बटेश्वर (आगरा) से मिली दसवीं शती ई० की दो कायोत्सर्ग मूर्तियां (जे ८१३, जी १४१) सुरक्षित हैं। इनमें केवल ऋषभ और पार्श्व की ही पहचान सम्भव है। एक मूर्ति में आठ ग्रहों की भी मूर्तियां उत्कीर्ण हैं।[3] ऐसी ही एक मूर्ति शहडोल (म० प्र०) से भी मिली है।[4] इसमें जिन आकृतियां ध्यानमुद्रा में विराजमान हैं। एक मूर्ति अहाड़ (टीकमगढ़, म० प्र०; ११ वीं शती ई०) से मिली है (चित्र ६७)। खजुराहो से केवल एक ही मूर्ति (११ वीं शती ई०) मिली है। यह मूर्ति पुरातात्विक संग्रहालय, खजुराहो (१५८८) में है। इसमें सभी जिन ध्यानमुद्रा में विराजमान हैं। जिनों में केवल ऋषभ एवं पार्श्व की ही पहचान सम्भव है। प्रत्येक जिन मूर्ति के परिकर में १२ लघु जिन आकृतियां उत्कीर्ण हैं। इस प्रकार मुख्य जिनों सहित इस चौमुखी में कुल ५२ जिन आकृतियां हैं।[5]

बिहार-उड़ीसा-बंगाल—बिहार और बंगाल से केवल दूसरे वर्ग की ही मूर्तियां मिली हैं।[6] उड़ीसा से मिली किसी मूर्ति की जानकारी हमें नहीं है। बंगाल में जिन चौमुखी मूर्तियों (१० वीं–१२ वीं शती ई०) का उत्कीर्णन विशेष लोकप्रिय था। इस क्षेत्र की सभी मूर्तियों में जिन निर्वस्त्र हैं और कायोत्सर्ग-मुद्रा में खड़े हैं। इस क्षेत्र की चौमुखी मूर्तियों में केवल ऋषभ, अजित, सम्भव, अभिनन्दन, चन्द्रप्रभ, शान्ति, कुंथु, पार्श्व एवं महावीर की ही मूर्तियां उत्कीर्ण हुई। राजगिर के सोनभण्डार गुफा की ल० आठवीं शती ई० की एक मूर्ति में जिनों के लांछन पीठिका के धर्मचक्र के दोनों ओर उत्कीर्ण हैं। इस मूर्ति में वर्तमान अवसर्पिणी के प्रथम चार जिन, ऋषभ, अजित, सम्भव एवं अभिनन्दन, आमूर्तित हैं।[7] दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० की सतदेउलिया (वर्दवान) से मिली एक मूर्ति आशुतोष संग्रहालय, कलकत्ता में सुरक्षित है।[8] मूर्ति का ऊपरी भाग शिखर के रूप में बना है। चारों दिशाओं में ऋषभ, चन्द्रप्रभ, पार्श्व एवं महावीर की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। बंगाल के विभिन्न स्थलों से प्राप्त दसवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की कई मूर्तियां स्टेट

---

१ देवगढ़ में २५ से अधिक मूर्तियां हैं। अधिकांश मूर्तियां मन्दिर १२ की चहारदीवारी पर हैं।

२ मन्दिर १२ की एक मूर्ति में ऋषभ एवं शान्ति की पहचान सम्भव है।

३ मथुरा संग्रहालय की एक मूर्ति (बी ६६) में भी नवग्रहों की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं।

४ अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, चित्र संग्रह १०१.७१, १०१.७३

५ दिगंबर परम्परा के नन्दीश्वर द्वीप पट्ट पर ५२ जिन आकृतियां उत्कीर्ण होती हैं—द्रष्टव्य, स्ट०जै०आ०, पृ०१२०

६ विस्तार के लिए द्रष्टव्य, जै०क०स्था०, खं० २, पृ० २६७–७५

७ कुरेशी, मुहम्मद हमीद, राजगिर, पृ० २८, आर्कियालाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, दिल्ली, चित्रसंग्रह १४३०.५५

८ सरकार, शिवशंकर, 'आन सम जैन इमेजेज फ्राम बंगाल', माडर्न रिव्यू, खं० १०६, अं० २, पृ० १११

आर्कियलाजी गैलरी, बंगाल में हैं।[1] पकबीरा ग्राम (पुरुलिया) की दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० की एक मूर्ति में ऋषभ, कुंथु, शान्ति एवं महावीर की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं (चित्र ६८)।[2] अम्बिकानगर (बांकुड़ा) से प्राप्त एक मूर्ति में केवल ऋषभ, चन्द्रप्रभ एवं शान्ति की पहचान सम्भव है।[3]

चतुर्विंशति-जिन-पट्ट

चतुर्विंशति-जिन-पट्टों के उदाहरण ल० दसवीं शती ई० से प्राप्त होते हैं। इन पट्टों की २४ जिन मूर्तियां सामान्यतः प्रातिहार्यों, लांछनों एवं कभी-कभी यक्ष-यक्षी युगलों से युक्त हैं। देवगढ़ में इस प्रकार का ग्यारहवीं शती ई० का एक जिन-पट्ट है जो स्थानीय साहू जैन संग्रहालय में सुरक्षित है। पट्ट दो भागों में विभक्त है। पट्ट की सभी जिन आकृतियां लांछनों, प्रातिहार्यों एवं यक्ष-यक्षी युगलों से युक्त हैं।[4] जिन मूर्तियों के उत्कीर्णन में दोनों मुद्राएं—ध्यान और कायोत्सर्ग—प्रयुक्त हुई हैं। लांछनों के स्पष्ट न होने के कारण शीतल, वासुपूज्य, अनन्त, धर्मनाथ, शान्ति एवं अर की पहचान सम्भव नहीं है। सुपार्श्व के मस्तक पर सर्पफणों का छत्र नहीं प्रदर्शित है और लांछन भी स्वस्तिक के स्थान पर सर्प है। सभी जिनों के साथ सामान्य लक्षणों वाले द्विभुज यक्ष-यक्षी निरूपित हैं। इनकी भुजाओं में अभय-(या वरद-) मुद्रा एवं फल (या पद्म या कलश) हैं। मूर्तियों के निरूपण में जिनो के पारम्परिक क्रम का ध्यान नहीं रखा गया है। कौशाम्बी से प्राप्त एक पट्ट इलाहाबाद संग्रहालय (५०६) में है।[5] पट्ट पर पांच पंक्तियों में २४ जिनों की ध्यानस्थ मूर्तियां उत्कीर्ण हैं।

जिन-समवसरण

समवसरण वह देवनिर्मित सभा है, जहां देवता, मनुष्य एवं पशु जिनों के उपदेशों का श्रवण करते हैं। कैवल्य प्राप्ति के बाद प्रत्येक जिन अपना पहला उपदेश समवसरण में ही देते हैं।[6] महापुराण के अनुसार समवसरणों का निर्माण इन्द्र ने किया। सातवीं शती ई० के बाद के जैन ग्रन्थों में जिन समवसरणों के विस्तृत उल्लेख हैं।[7] पर समवसरणों के उदाहरण केवल श्वेतांबर स्थलों से ही मिले हैं। समवसरणों का उत्कीर्णन ल० ग्यारहवीं शती ई० में प्रारम्भ हुआ। समवसरणों के स्वतन्त्र उदाहरणों के अतिरिक्त कुम्भारिया के महावीर एवं शान्तिनाथ मन्दिरों और दिलवाड़ा के विमल-वसही एवं लूणवसही में जिनों के कैवल्य प्राप्ति के दृश्य को समवसरणों के माध्यम से ही व्यक्त किया गया है।

जैन ग्रन्थों के अनुसार समवसरण तीन प्राचीरों वाला भवन है। इसमें ऊपर (मध्य में) ध्यानमुद्रा में एक जिन आकृति (पूर्वाभिमुख) बैठी होती है।[8] सभी दिशाओं के श्रोता जिन का दर्शन कर सकें, इस उद्देश्य से व्यंतर देवों ने अन्य तीन दिशाओं में भी जिन की रत्नमय प्रतिमाएं स्थापित की थीं।[9] समवसरण के प्रत्येक प्राचीर में चार प्रवेश-द्वारों तथा

---

१ दे, सुधीन, पू०नि०, पृ० २७–३०

२ बनर्जी, ए०, 'ट्रेसेज ऑव जैनिज्म इन बंगाल', ज०यू०पी०हि०सो०, खं० २३, भाग १–२, पृ० १६८

३ मित्रा, देबला, 'सम जैन एन्टिक्विटीज फ्राम बांकुड़ा, वेस्ट बंगाल', ज०ए०सो०बं०, खं० २४, अं० २, पृ० १३३

४ लांछन एवं यक्ष-यक्षी युगलों के आयुध अधिकांशतः स्पष्ट नहीं हैं।

५ चन्द्र, प्रमोद, पू०नि०, पृ० १४७

६ कुछ अन्य अवसरों पर भी देवताओं द्वारा समवसरणों का निर्माण किया गया। पद्मचरित (२.१०२) और आवश्यक निर्युक्ति (गाथा ५४०–४४) में उल्लेख है कि महावीर के विपुलगिरि (राजगृह) आगमन पर एक समवसरण का निर्माण किया गया था।

७ स्ट०जै०आ०, पृ० ८५–९५

८ त्रि०श०पु०च० १.३.४२१–७७; भण्डारकर, डी०आर०, पू०नि०, पृ० १३५–३०; स्ट०जै०आ०, पृ० ८६–८९

९ आदिपुराण २३.६२

उनके समीप विविध आयुधों से युक्त द्वारपाल मूर्तियों के उत्कीर्णन का विधान है। मध्य के प्राचीर में अभयमुद्रा, पाश, अंकुश और मुद्गर धारण करनेवाली जया, विजया, अजिता और अपराजिता नाम की देवियां रहती हैं। तीसरे (निचले) प्राचीर में खट्वांग एवं गले में कपाल की माला धारण किये हुए द्वारपाल (तुम्बरुदेव), साथ ही पशु, मानव एवं देव आकृतियां उत्कीर्ण होती हैं। पहले (ऊपरी) प्राचीर के द्वारों एवं भित्तियों पर वैमानिक, व्यंतर, ज्योतिष्क एवं भवनपति देवों और साधु-साध्वियों की आकृतियां उत्कीर्ण होनी चाहिए। जैन परम्परा के अनुसार जिनों के समवसरणों में सभी को प्रवेश का अधिकार प्राप्त है और इस अवसर पर समवसरण में उपस्थित होने वाले मनुष्यों और पशुओं में आपस में किसी प्रकार का द्वेष या वैमनस्य नहीं रह जाता। इसी भाव को प्रदर्शित करने के लिए मूर्त अंकनों में सिंह-मृग, सिंह-गज, सर्प-नकुल एवं मयूर-सर्प जैसे परस्पर शत्रुभाव वाले जीवों को साथ-साथ, आमने-सामने, दिखाया गया है। समवसरण में ही इन्द्र ने जिनों के शासनदेवताओं (यक्ष-यक्षी) को भी नियुक्त किया था।

समवसरणों के चित्रण में उपर्युक्त विशेषताएं ही प्रदर्शित हैं। सभी समवसरण तीन वृत्ताकार प्राचीरों वाले भवन के रूप में निर्मित हैं। इनके ऊपरी भाग अधिकांशतः मन्दिर के शिखर के रूप में प्रदर्शित हैं। समवसरणों में पद्मासन में बैठी जिनों की चार मूर्तियां भी उत्कीर्ण रहती हैं। लांछनों के अभाव में समवसरणों की जिन मूर्तियों की पहचान सम्भव नहीं है। सामान्य प्रातिहार्यों से युक्त जिन मूर्तियों में कभी-कभी यक्ष-यक्षी भी निरूपित रहते हैं।[1] प्रत्येक प्राचीर में चार प्रवेश-द्वार और द्वारपालों की मूर्तियां होती हैं। भित्तियों पर देवताओं, साधुओं, मनुष्यों एवं पशुओं की आकृतियां बनी रहती हैं। दूसरे और तीसरे प्राचीरों की भित्तियों पर सिंह-गज, सिंह-मृग, सिंह-वृषभ, मयूर-सर्प और नकुल-सर्प जैसे परस्पर शत्रुभाव वाले पशुओं के जोड़े अंकित होते हैं।

ग्यारहवीं शती ई० का एक खण्डित समवसरण कुम्भारिया के महावीर मन्दिर की देवकुलिका में है। इस समवसरण के प्रत्येक प्राचीर के प्रवेश-द्वारों पर दण्ड और फल से युक्त द्विभुज द्वारपालों की मूर्तियां हैं। ग्यारहवीं शती ई० का एक उदाहरण मारवाड़ के जैन मन्दिर से मिला है और सम्प्रति सूरत के जैन देवालय में प्रतिष्ठित है।[2] विमलवसही की देवकुलिका २० में ल० बारहवीं शती ई० का एक समवसरण है। इसमें ऊपर की ओर चार ध्यानस्थ जिन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। सभी जिनों के साथ चतुर्भुज यक्ष-यक्षी निरूपित हैं। बारहवीं शती ई० का एक अन्य समवसरण कैम्बे से मिला है।[3] कुम्भारिया के शान्तिनाथ मन्दिर की एक देवकुलिका में १२०९ ई० का एक समवसरण है। चार ध्यानस्थ जिन मूर्तियों के अतिरिक्त इसमें २४ छोटी जिन मूर्तियां भी उत्कीर्ण हैं।[4]

• • •

---

१ विमलवसही की देवकुलिका २० के समवसरण में यक्ष-यक्षी भी उत्कीर्णित हैं।

२ स०जै०आ०, पृ० ९४

३ शाह, यू०पी०, 'जैन ब्रोन्जेज फ्राम कैम्बे', ललितकला, अं० १३, पृ० ३१–३२

४ पांच और सात सर्पफणों के छत्रों से युक्त दो जिन मूर्तियां सुपार्श्व और पार्श्व की हैं।

षष्ठ अध्याय

यक्ष-यक्षी-प्रतिमाविज्ञान

सामान्य विकास

यक्ष एवं यक्षियां जिन-प्रतिमाओं के साथ संयुक्त रूप से अंकित किये जानेवाले देवों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। प्रस्तुत अध्याय में यक्ष एवं यक्षियों के प्रतिमाविज्ञान के विकास का अध्ययन किया जायगा। प्रारम्भ में यक्ष और यक्षियों के प्रतिमाविज्ञान के सामान्य विकास की संक्षिप्त रूपरेखा दी गई है। तत्पश्चात् जिनों के क्रम से प्रत्येक यक्ष-यक्षी युगल की मूर्तियों का प्रतिमाविज्ञानपरक अध्ययन किया गया है। यह विकास पहले साहित्यिक साक्ष्य के आधार पर और बाद में पुरातात्विक साक्ष्य के आधार पर निरूपित है। अन्त में दोनों का तुलनात्मक एवं समन्वयात्मक अध्ययन है। संक्षेप में दक्षिण भारत के जैन यक्ष एवं यक्षियों से इनके तुलनात्मक अध्ययन का भी प्रयास किया गया है।

साहित्यिक साक्ष्य

जैन ग्रन्थों में यक्ष एवं यक्षियों का उल्लेख जिनों के शासन और उपासक देवों के रूप में हुआ है।[1] प्रत्येक जिन के यक्ष-यक्षी युगल उनके चतुर्विध संघ के शासक एवं रक्षक देव हैं।[2] जैन ग्रन्थों के अनुसार समवसरण में जिनों के धर्मोपदेश के बाद इन्द्र ने प्रत्येक जिन के साथ सेवक-देवों के रूप में एक यक्ष और एक यक्षी को नियुक्त किया।[3] शासन-देवताओं के रूप में सर्वदा जिनों के समीप रहने के कारण ही जैन देवकुल में यक्ष और यक्षियों को जिनों के बाद सर्वाधिक प्रतिष्ठा मिली।[4] हरिवंशपुराण में उल्लेख है कि जिन-शासन के भक्त-देवों (शासनदेवताओं) के प्रभाव से हित-(शुभ-) कार्यों की विघ्नकारी शक्तियां (ग्रह, नाग, भूत, पिशाच और राक्षस) शान्त हो जाती हैं।[5]

जैन परम्परा के अनुसार यक्ष एवं यक्षी जिन मूर्तियों के सिंहासन या सामान्य पीठिका के क्रमशः दाहिने और बायें छोरों पर अंकित होने चाहिये।[6] सामान्यतः ये ललितमुद्रा में निरूपित हैं, पर कभी-कभी इन्हें ध्यानमुद्रा में आसीन या

---

१ प्रधासमाः शासनदेवताश्च या जिनांश्चतुर्विंशतिमाश्रिताः सदा।
हिताः सतामप्रतिचक्रयान्विताः प्रयाचिताः सन्निहिता भवन्तु ताः॥ हरिवंशपुराण ६६.४३-४४
यक्षाभक्तिदक्षस्तीर्थंकृतामिमे। प्रवचनसारोद्धार (भट्टाचार्य, बी०सी०, दि जैन आइकानोग्राफी, लाहौर, १९३९, पृ० ९२)

२ ओं नमो गोमुखयक्षाय श्री युगादि जिनशासनरक्षाकार काय।
आचारदिनकर
या पाति शासनं जैनं सद्यः प्रत्यूहनाशिनी। साभिप्रेतसमृद्ध्यर्थं भूयात् शासनदेवता।
प्रतिष्ठाकल्प, पृ० १३ (भट्टाचार्य, बी० सी०, पू०नि०, पृ० ९२-९३)

३ भट्टाचार्य, बी० सी०, पू०नि०, पृ० ९३

४ हरिवंशपुराण ६६.४३-४४; तिलोयपण्णत्ति ४.९३४-३९

५ हरिवंशपुराण ६६.४५

६ यक्षं च दक्षिणेपार्श्वे वामे शासनदेवतां। प्रतिष्ठासारसंग्रह ५.१२
प्रतिष्ठासारोद्धार १.७७। परम्परा के विपरीत कभी-कभी पीठिका के मध्य के धर्मचक्र के दोनों ओर या जिनों के चरणों के समीप भी यक्ष और यक्षियों की मूर्तियां उत्कीर्ण हुई। कुछ उदाहरणों में यक्ष बायीं ओर और यक्षी दाहिनी ओर भी निरूपित हैं। ऐसी मूर्तियां मुख्यतः दिगंबर स्थलों (देवगढ़, राज्य संग्रहालय, लखनऊ) से मिली हैं।

स्थानक-मुद्रा में खड़ा भी दिखाया गया है। क० छठीं शती ई० में जिन-मूर्तियों में[1] और क० नवीं शती ई० में स्वतन्त्र मूर्तियों के रूप में[2] यक्ष-यक्षियों का उत्कीर्णन प्रारम्भ हुआ। स्वतन्त्र मूर्तियों में यक्ष और यक्षियों के मस्तकों पर छोटी जिन मूर्तियां उत्कीर्ण रहती हैं, जो उन्हें जिनों और साथ ही जैन देवकुल से सम्बन्धित करती हैं। लांछन युक्त छोटी जिन मूर्तियां भी उनके पहचान में सहायक हुई हैं। दिगंबर परम्परा की अधिकांश यक्षियों के नाम एवं कुछ सीमा तक लाक्षणिक विशेषताएं श्वेतांबर परम्परा की पूर्ववर्ती महाविद्याओं से ग्रहण की गईं। इसी कारण यक्षियों के नामों एवं लाक्षणिक विशेषताओं के सन्दर्भ में श्वेतांबर और दिगंबर परम्पराओं में पूर्ण भिन्नता दृष्टिगत होती है। पर यक्षों के सन्दर्भ में ऐसी भिन्नता नहीं प्राप्त होती।

२४ यक्षों एवं २४ यक्षियों की सूची में अधिकांश के नाम एवं उनकी लाक्षणिक विशेषताएं हिन्दू और कुछ उदाहरणों में बौद्ध देवकुल के देवों से प्रभावित हैं। जैन धर्म में हिन्दू देवकुल के विष्णु, शिव, ब्रह्मा, इन्द्र, स्कन्द कार्त्तिकेय, काली, गौरी, सरस्वती, चामुण्डा और बौद्ध देवकुल की तारा, वज्रशृंखला, वज्रतारा एवं वज्रांकुशी के नामों और लाक्षणिक विशेषताओं को ग्रहण किया गया।[3] जैन देवकुल पर ब्राह्मण और बौद्ध धर्मों के देवों का प्रभाव दो प्रकार का है। प्रथम, जैनों ने इतर धर्मों के देवों के केवल नाम ग्रहण किये और स्वयं उनकी स्वतन्त्र लाक्षणिक विशेषताएं निर्धारित कीं। गरुड, वरुण, कुमार यक्षों और गौरी, काली, महाकाली, अम्बिका एवं पद्मावती यक्षियों के सन्दर्भ में प्राप्त होनेवाला प्रभाव इसी कोटि का है। द्वितीय, जैनों ने देवताओं के एक वर्ग की लाक्षणिक विशेषताएं इतर धर्मों के देवों से ग्रहण कीं। कभी-कभी लाक्षणिक विशेषताओं के साथ ही साथ इन देवों के नाम भी हिन्दू और बौद्ध देवों से प्रभावित हैं। इस वर्ग में आनेवाले यक्ष-यक्षियों में ब्रह्मा, ईश्वर, गोमुख, भृकुटि, षण्मुख, यक्षेन्द्र, पाताल, धरणेन्द्र एवं कुबेर यक्ष और चक्रेश्वरी, विजया, निर्वाणी, तारा एवं वज्रशृंखला यक्षियां प्रमुख हैं।

हिन्दू देवकुल से प्रभावित यक्ष-यक्षी युगल तीन भागों में विभाज्य हैं। पहली कोटि में ऐसे यक्ष-यक्षी युगल आते हैं जिनके मूल-देवता हिन्दू देवकुल में आपस में किसी प्रकार सम्बन्धित नहीं हैं। जैन यक्ष-यक्षी युगलों में अधिकांश इसी वर्ग के है। दूसरी कोटि में ऐसे यक्ष-यक्षी युगल हैं जो पूर्वरूप में हिन्दू देवकुल में भी परस्पर सम्बन्धित हैं, जैसे श्रेयांशनाथ के यक्ष-यक्षी ईश्वर एवं गौरी। तीसरी कोटि में ऐसे युगल हैं जिनमें यक्ष एक और यक्षी दूसरे स्वतन्त्र सम्प्रदाय के देवता से प्रभावित हैं। ऋषभनाथ के गोमुख यक्ष एवं चक्रेश्वरी यक्षी इसी कोटि के हैं जो क्रमशः शैव एवं वैष्णव धर्मों के प्रतिनिधि देव हैं।

आगम साहित्य, कल्पसूत्र एवं पउमचरिय जैसे प्रारम्भिक जैन ग्रन्थों में २४ यक्ष-यक्षियों में से किसी का उल्लेख नहीं है। छठीं-सातवीं शती ई० के टीका, निर्युक्ति एवं चूर्णि ग्रन्थों में भी इनका अनुल्लेख है। जैन देवकुल का प्रारम्भिकतम यक्ष-यक्षी युगल सर्वानुभूति (यक्षेश्वर)[4] एवं अम्बिका है, जिसे छठीं-सातवीं शती ई० में निरूपित किया गया।[5] सर्वानुभूति

---

१ शाह, यू० पी०, अकोटा ब्रोन्जेज, बम्बई, १९५९, पृ० २८–२९

२ छठीं-सातवीं शती ई० की एक स्वतन्त्र अम्बिका मूर्ति अकोटा (गुजरात) से मिली है—शाह, यू० पी०, पू०नि०, पृ० ३०–३१, फलक १४

३ शाह, यू० पी०, 'इण्ट्रोडक्शन ऑव शासनदेवताज इन जैन वरशिप', प्रो० ट्रां० ओ० कां०, २०वां अधिवेशन, भुवनेश्वर, अक्तूबर १९५९, पृ० १५१–५२; भट्टाचार्य, बेनायतोष, दि इण्डियन बुद्धिस्ट आइकानोग्राफी, कलकत्ता, १९६८, पृ० ५६, २३५, २४०, २४२, २९७; बनर्जी, जे० एन०, दि डीवलपमेन्ट ऑव हिन्दू आइकानोग्राफी, कलकत्ता, १९५६, पृ० ५६१–६३

४ प्रारम्भ में यक्ष का नाम पूरी तरह निश्चित न हो पाने के कारण सर्वानुभूति को मातंग और गोमेध भी कहा गया।

५ शाह, यू०पी०, पू०नि०, पृ० १४५–४६; शाह, यू०पी०, 'यक्षज वरशिप इन अर्ली जैन लिट्रेचर', ज०ओ०इं०, खं० ३, अं० १, पृ० ७१; शाह, यू०पी०, अकोटा ब्रोन्जेज, पृ० २८–३१

यक्ष एवं अम्बिका यक्षी की कल्पना जैन आगम एवं टीका ग्रन्थों के माणिभद्र-पूर्णभद्र यक्ष और बहुपुत्रिका यक्षी की प्रारम्भिक धारणा से प्रभावित है।[1] ल० छठीं से नवीं शती ई० के मध्य की जिन मूर्तियों में सभी जिनों के साथ[2] यही यक्ष-यक्षी युगल आमूर्तित हैं। इसका कारण यह था कि दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० के पूर्व सर्वानुभूति एवं अम्बिका के अतिरिक्त अन्य किसी यक्ष-यक्षी युगल की लाक्षणिक विशेषताएं निर्धारित नहीं हो पायी थीं। अकोटा की ऋषभ (ल० छठीं शती ई०)[3], भारत कला भवन वाराणसी (२१२) की नेमि (ल० ७ वीं शती ई०), पुरातत्त्व संग्रहालय, मथुरा की शान्ति एवं नेमि (बी ७५, बी ६५, ८ वीं-९ वीं शती ई०), धांक की पार्श्व (ल० ७ वीं शती ई०)[4], ओसिया के महावीर मन्दिर की ऋषभ (ल० ९ वीं शती ई०), तथा अकोटा की अन्य कई ऋषभ एवं पार्श्व (७ वीं-९ वीं शती ई०)[5] मूर्तियों में यही यक्ष-यक्षी युगल निरूपित है (चित्र २६)। इनमें यक्ष के हाथों में सामान्यतः फल एवं धन का थैला[6], और यक्षी के हाथों में आम्र-लुम्बि एवं बालक[7] प्रदर्शित हैं।

अकोटा से ल० छठीं-सातवीं शती ई० की एक स्वतन्त्र अम्बिका मूर्ति भी मिली है।[8] द्विभुजा सिंहवाहिनी अम्बिका के करों मे आम्रलुम्बि एवं फल हैं। एक बालक देवी की गोद में और दूसरा समीप ही खड़ा है। अम्बिका के शीर्ष भाग में सात सर्पफणों वाली पार्श्वनाथ की एक छोटी मूर्ति है, जो यहां अम्बिका के पार्श्व की यक्षी के रूप में निरूपण की सूचक है।[9] यक्षराज (सर्वानुभूति) एवं अम्बिका की लाक्षणिक विशेषताओं का सर्वप्रथम निरूपण बप्पभट्टिसूरि (७४३-८३८ ई०) की चतुर्विंशतिका में प्राप्त होता है। इस ग्रन्थ में यक्षों से सेव्यमान और गजारूढ़ यक्षराज की आराधना समृद्धि एवं धन के देवता के रूप में की गयी है। यद्यपि यक्षराज के हाथ में धन के थैले का उल्लेख नहीं है,[10] पर सम्भवतः समृद्धि के देवता के रूप में उल्लेख के कारण ही मूर्तियों में सर्वानुभूति के साथ ल० छठीं-सातवीं शती ई० में धन का थैला प्रदर्शित किया गया। यहां यक्षराज पार्श्व से सम्बद्ध है। अम्बा देवी का ध्यान नेमि एवं महावीर दोनों के साथ किया गया है। शीर्ष भाग में आम्रफल के गुच्छकों से शोभित और सिंह पर आरूढ़ अम्बा बालकों से युक्त है।[11] अम्बा के कर में आम्रलुम्बि का उल्लेख नहीं है। सम्भवतः इसी कारण प्रारम्भिक मूर्तियों में अम्बिका के साथ आम्रलुम्बि का प्रदर्शन नियमित नहीं था। धरणपट्ट (पद्मावती) का धरणेन्द्र की पत्नी के रूप में उल्लेख है, जो सर्प से युक्त है।[12] इसका उल्लेख अजितनाथ के साथ किया गया है। हरिवंशपुराण (७८३ ई०) में सिंहवाहिनी अम्बिका और चक्रधारण करनेवाली अप्रतिचक्रा यक्षियों के उल्लेख हैं।[13] महापुराण (पुष्पदन्तकृत, ल० ९६० ई०) में चक्रेश्वरी, अम्बिका, सिद्धायिका, गौरी और गान्धारी देवियों की आराधना की गई है।[14]

---

१ शाह, यू०पी०, 'यक्ष वरशिप इन अर्ली जैन लिट्रेचर', ज०ओ०इं०, खं० ३, अं० १, पृ० ६२

२ ऋषभ, शान्ति, नेमि, पार्श्व।

३ शाह, यू०पी, अकोटा ब्रोन्जेज, पृ० २८-२९

४ स्ट०जै०आ०, पृ० १७

५ शाह, यू० पी०, यू०जि०, पृ० ३५-३९

६ भारत कला भवन, वाराणसी की मूर्ति में यक्ष के हाथों में अभयमुद्रा-पद्म एवं पात्र हैं। मथुरा संग्रहालय की मूर्ति (बी ६५) में फल के स्थान पर प्याला है।

७ भारत कला भवन, वाराणसी एवं मथुरा संग्रहालय (बी ६५) की मूर्तियों में आम्रलुम्बि के स्थान पर पुष्प प्रदर्शित है।

८ शाह, यू० पी०, यू०जि०, पृ० ३०-३१

९ ल० १० वीं शती ई० में सर्वानुभूति (या कुबेर या गोमेध) और अम्बिका को नेमिनाथ से सम्बद्ध किया गया।

१० चतुर्विंशतिका २३.९२, पृ० १५३

११ चतुर्विंशतिका २२.८८, पृ० १४३, २४.९६, पृ० १६२

१२ वही, ९.८, पृ० १८

१३ हरिवंशपुराण ६६.४४

१४ शाह, यू० पी०, 'आइकानोग्राफी ऑव चक्रेश्वरी, दि यक्षी ऑव ऋषभनाथ', ज०ओ०इं०, खं० २०, अं० ३, पृ० ३०४-०५

ल० आठवीं-नवीं शती ई० में २४ यक्ष-यक्षी युगलों की सूची तैयार हुई। प्रारम्भिकतम सूचियां कहावली (श्वेतांबर),[1] तिलोयपण्णत्ति (दिगंबर)[2] एवं प्रवचनसारोद्धार (श्वेतांबर)[3] में मिलती हैं। २४ यक्ष-यक्षी युगलों की स्वतन्त्र लाक्षणिक विशेषताएं ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० में निर्धारित हुईं। ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० की २४ यक्ष-यक्षी युगलों की सूची प्रारम्भिक सूची से, यक्ष-यक्षियों के नामों के सन्दर्भ में, कुछ भिन्न है। तिलोयपण्णत्ति के ब्रह्मेश्वर एवं किंपुरुष यक्षों और वज्रांकुशा, जया एवं सोलसा यक्षियों के नाम परवर्ती सूची में नहीं प्राप्त होते। चक्रेश्वरी एवं अप्रतिचक्रेश्वरी नाम से एक ही यक्षी का तिलोयपण्णत्ति में दो बार क्रमशः पहली और छठीं यक्षियों के रूप में उल्लेख है।[4] प्रवचनसारोद्धार की सूची में मनुज एवं सुरकुमार यक्षों और ज्वाला, श्रीवत्सा, प्रवरा एवं अच्छुप्ता यक्षियों के नाम ऐसे हैं जो परवर्ती ग्रन्थों में नहीं मिलते। परवर्ती ग्रन्थों में उनके स्थान पर यक्षेश्वर, कुमार, भृकुटि, मानवी, चण्डा एवं नरदत्ता के नामोल्लेख हैं। प्रवचनसारोद्धार में छठीं यक्षी का नाम अच्युता और बीसवीं यक्षी का अच्छुप्ता दिया है। परवर्ती ग्रन्थों में छठीं यक्षी का नाम तो अच्युता ही है, पर बीसवीं यक्षी का नाम नरदत्ता है।

सर्वप्रथम निर्वाणकलिका (११ वीं-१२ वीं शती ई०) में २४ यक्ष-यक्षी युगलों की स्वतन्त्र लाक्षणिक विशेषताएं विवेचित हुईं। बारहवीं शती ई० के त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र (श्वेतांबर), प्रवचनसारोद्धार पर सिद्धसेनसूरि की टीका (श्वेतांबर) एवं प्रतिष्ठासारसंग्रह (दिगंबर) में भी २४ यक्ष-यक्षियों की लाक्षणिक विशेषताएं निरूपित हैं। बारहवीं शतीई० के बाद अन्य कई ग्रन्थों में भी २४ यक्ष-यक्षी युगलों के प्रतिमानिरूपण से सम्बन्धित उल्लेख हैं। इनमें पद्मानन्दमहाकाव्य (या चतुर्विंशति जिनचरित्र-श्वेतांबर, १२४१ ई०), मन्त्राधिराजकल्प (श्वेतांबर, १२ वीं-१३ वीं शती ई०), आचारदिनकर (श्वेतांबर, १४११ ई०), प्रतिष्ठासारोद्धार (दिगंबर, १२२८ ई०) *एवं प्रतिष्ठातिलकम् (नेमिचन्द्र संहिता या* अर्हत् प्रतिष्ठासारसंग्रह-दिगंबर, १५४३ ई०) प्रमुख हैं। कुछ जैनेतर ग्रन्थों में भी २४ यक्ष एवं यक्षियों की लाक्षणिक विशेषताएं निरूपित हैं। इनमें अपराजितपृच्छा (दिगंबर परम्परा पर आधारित, ल० १३ वीं शती ई०) एवं रूपमण्डन और देवतामूर्तिप्रकरण (श्वेतांबर परम्परा पर आधारित, ल० १५ वीं शती ई०) प्रमुख हैं।

उपर्युक्त ग्रन्थों के आधार पर २४ यक्ष एवं यक्षियों की सूचियां निम्नलिखित हैं :

२४-यक्ष—गोमुख, महायक्ष, त्रिमुख, यक्षेश्वर (या ईश्वर),[5] तुम्बरु (या तुम्बर), कुसुम (या पुष्प), मातंग (या वरनन्दि), विजय (श्याम-दिगंबर), अजित, ब्रह्म, ईश्वर, कुमार, षण्मुख (चतुर्मुख-दिगंबर), पाताल, किंनर, गरुड, गन्धर्व, यक्षेन्द्र (खेन्द्र-दिगंबर), कुबेर (या यक्षेश), वरुण, भृकुटि, गोमेध, पार्श्व[6] (धरण-दिगंबर) एवं मातंग २४ यक्ष हैं।[7]

---

१ शाह, यू० पी०, 'इन्ट्रोडक्शन ऑव शासनदेवताज इन जैन वरशिप', प्रो०ट्रां०ओ०कॉ०, २० वां अधिवेशन, भुवनेश्वर, १९५९, पृ० १४७

२ तिलोयपण्णत्ति ४.९३४–३९

३ प्रवचनसारोद्धार ३७५–७८

४ यह भूल यक्षियों की सूची में दूसरी से सातवीं यक्षियों के नामोल्लेख में महाविद्याओं के नामों के क्रम के अनुकरण के कारण हुई है।

५ श्वेतांबर परम्परा में ईश्वर और यक्षेश्वर, तथा दिगंबर परम्परा में केवल यक्षेश्वर नाम से उल्लेख है।

६ प्रवचनसारोद्धार में यक्ष का नाम वामन है।

७ २४ यक्षों की उपर्युक्त सूची को ध्यान से देखने पर एक बात पूरी तरह स्पष्ट हो जाती है कि २४ यक्षों में से कई को दो बार एक ही नाम या कुछ भिन्न नामों के साथ निरूपित किया गया। इनमें मातंग, ईश्वर, कुमार (या षण्मुख) एवं यक्षेश्वर (या यक्षेन्द्र या यक्षेश) मुख्य हैं। भृकुटि नाम से यक्ष और यक्षी दोनों के उल्लेख हैं।

२४-यक्षियां—चक्रेश्वरी (या अप्रतिचक्रा),[1] अजिता[2] (रोहिणी-दिगंबर), दुरितारी (प्रज्ञप्ति-दिगंबर), कालिका[3] (वज्रशृंखला-दिगंबर), महाकाली[4] (पुरुषदत्ता-दिगंबर),[5] अच्युता[6] (मनोवेगा-दिगंबर), शान्ता (काली-दिगंबर), भृकुटि (ज्वालामालिनी-दिगंबर), सुतारा[7] (महाकाली-दिगंबर), अशोका[8] (मानवी-दिगंबर), मानवी (गौरी-दिगंबर), चण्डा[9] (गान्धारी-दिगंबर), विदिता[10] (वैरोटी-दिगंबर), अंकुशा[11] (अनन्तमती-दिगंबर), कन्दर्पा[12] (मानसी), निर्वाणी (महामानसी-दिगंबर), बला[13] (जया-दिगंबर), धारणी[14] (तारावती[15]-दिगंबर), वैरोट्या[16] (अपराजिता-दिगंबर), नरदत्ता[17] (बहुरूपिणी-दिगंबर), गान्धारी[18] (चामुण्डा[19]-दिगंबर), अम्बिका (या आम्रा या कुष्माण्डिनी), पद्मावती एवं सिद्धायिका (या सिद्धायिनी) २४ यक्षियां हैं।[20]

प्रतिमा-निरूपण सम्बन्धी ग्रन्थों में अधिकांश यक्ष एवं यक्षी चार भुजाओं वाले हैं। दिगंबर परम्परा में अम्बिका एवं सिद्धायिका यक्षियों को द्विभुज बताया गया है। चक्रेश्वरी, ज्वालामालिनी, मानसी एवं पद्मावती यक्षियां छह या अधिक भुजाओं वाली हैं। यक्षियों की तुलना में यक्ष अधिक उदाहरणों में बहुभुज (६ से १२ भुजाओं वाले) हैं। बहुभुज यक्षों में महायक्ष, त्रिमुख, ब्रह्म, कुमार, चतुर्मुख, षण्मुख, पाताल, किन्नर, यक्षेन्द्र, कुबेर, वरुण, भृकुटि एवं गोमेध मुख्य हैं। केवल मातंग यक्ष द्विभुज है। अधिकांश यक्ष और यक्षियों की दो भुजाओं में अभय-(या वरद-) मुद्रा एवं फल[21] (या अक्षमाला या जलपात्र) प्रदर्शित हैं।

टी० एन० रामचन्द्रन ने अपनी पुस्तक में दक्षिण भारत के तीन ग्रन्थों के आधार पर यक्ष-यक्षी युगलों का प्रतिमा-निरूपण किया है।[22] एक ग्रन्थ दिगंबर परम्परा का है और दो अन्य श्वेतांबर परम्परा के हैं। श्वेतांबर परम्परा के एक ग्रन्थ का नाम यक्ष-यक्षी-लक्षण है।

मूर्तिगत साक्ष्य

ग्रन्थों में २४ यक्ष और यक्षियों की लाक्षणिक विशेषताएं ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० में निर्धारित हुईं। पर शिल्प में ल० दसवीं शती ई० में ही ऋषभ, शान्ति, नेमि, पार्श्व एवं महावीर के साथ सर्वानुभूति एवं अम्बिका के स्थान

---

१ कुछ श्वेतांबर ग्रन्थों में अप्रतिचक्रा नाम से उल्लेख है।

२ मन्त्राधिराजकल्प में यक्षी का नाम विजया है।

३ श्वेतांबर ग्रन्थों में इसे काली भी कहा गया है।

४ मन्त्राधिराजकल्प में यक्षी का नाम सम्मोहिनी है।

५ दिगंबर परम्परा में नरदत्ता भी कहा गया है।

६ आचारदिनकर में श्यामा और मन्त्राधिराजकल्प में मानसी नामों से उल्लेख है।

७ मन्त्राधिराजकल्प में चाण्डालिका नाम है।

८ मन्त्राधिराजकल्प में गोमेधिका नाम से उल्लेख है।

९ कुछ श्वेतांबर ग्रन्थों में प्रचण्डा एवं अजिता नामों से भी उल्लेख हैं।

१० आचारदिनकर में विजया नाम है।

११ मन्त्राधिराजकल्प में वरभृत नाम है।

१२ प्रवचनसारोद्धार में पन्नगा नाम है।

१३ कुछ श्वेतांबर ग्रन्थों में अच्युता एवं गान्धारिणी नामों से उल्लेख हैं।

१४ श्वेतांबर ग्रन्थों में इसे काली भी कहा गया है।

१५ दिगंबर ग्रन्थों में विजया भी कहा गया है।

१६ कुछ श्वेतांबर ग्रन्थों में धनजात देवी और धरणप्रिया नामों से भी उल्लेख हैं।

१७ कुछ श्वेतांबर ग्रन्थों में वरदत्ता, अच्छुप्ता एवं सुगन्धि नाम दिये हैं।

१८ मन्त्राधिराजकल्प में मालिनी नाम है।

१९ दिगंबर ग्रन्थों में कुसुममालिनी भी कहा गया है।

२० दिगंबर ग्रन्थों की सूचियों में यक्षियों के नामों में एकरूपता और श्वेतांबर ग्रन्थों की सूचियों में यक्षियों के नामों में भिन्नता दृष्टिगत होती है।

२१ यक्ष और यक्षियों के एक हाथ में फल (या मातुलिंग) का प्रदर्शन विशेष लोकप्रिय था।

२२ रामचन्द्रन, टी० एन०, तिरुपरुत्तिकुणरम ऐण्ड इट्स टेम्पल्स, बु०म०ग०म्यू०न्यू०सि०, खं० १, भाग ३, मद्रास, १९३४

पर पारम्परिक और स्वतन्त्र लक्षणों वाले यक्ष-यक्षी युगलों का निरूपण प्रारम्भ हो गया, जिसके उदाहरण मुख्यतः उत्तर प्रदेश एवं मध्य प्रदेश में देवगढ़, राज्य संग्रहालय, लखनऊ, ग्यारसपुर, खजुराहो एवं कुछ अन्य स्थलों पर हैं। इन स्थलों की दसवीं शती ई० की मूर्तियों में ऋषभ एवं नेमि के साथ क्रमशः गोमुख-चक्रेश्वरी एवं सर्वानुभूति-अम्बिका उत्कीर्णित हैं (चित्र ७, २७)। पर शान्ति एवं महावीर के स्वतन्त्र लक्षणों वाले यक्ष-यक्षी पारम्परिक नहीं हैं। ओसिया के महावीर और ग्यारसपुर के मालादेवी मन्दिरों पर धरणेन्द्र एवं पद्मावती की स्वतन्त्र मूर्तियां उत्कीर्ण हैं।

छठीं शती ई० से आठवीं-नवीं शती ई० तक की जिन मूर्तियों में यक्ष-यक्षी के चित्रण बहुत नियमित नहीं थे। पर नवीं शती ई० के बाद बिहार, उड़ीसा एवं बंगाल के अतिरिक्त अन्य सभी क्षेत्रों की जिन मूर्तियों में यक्ष-यक्षी युगलों के नियमित अंकन हुए हैं। यह भी ज्ञातव्य है कि स्वतन्त्र अंकनों में यक्ष की तुलना में यक्षियों के चित्रण विशेष लोकप्रिय थे। २४ यक्षियों के सामूहिक अंकन के हमें तीन उदाहरण मिले हैं।[1] पर २४ यक्षों के सामूहिक निरूपण का सम्भवतः कोई प्रयास नहीं किया गया। यक्ष एवं यक्षियों के उत्कीर्णन की दृष्टि से उत्तर भारत के विभिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग स्थिति रही है, जिसका अतिसंक्षेप में उल्लेख यहां अपेक्षित है।

गुजरात-राजस्थान—इस क्षेत्र में श्वेतांबर स्थलों पर महाविद्याओं की विशेष लोकप्रियता के कारण यक्ष एवं यक्षियों की मूर्तियां तुलनात्मक दृष्टि से बहुत कम हैं। इस क्षेत्र में अम्बिका की सर्वाधिक मूर्तियां हैं। वस्तुतः अम्बिका की मूर्तियां (५वीं-६ठीं शती ई०) सबसे पहले इसी क्षेत्र में उत्कीर्ण हुईं। अम्बिका के बाद चक्रेश्वरी, पद्मावती (कुम्भारिया, विमलवसही) एवं सिद्धायिका की मूर्तियां हैं। यक्षों में केवल वरुण (?), सर्वानुभूति, गोमुख[2] एवं पार्श्व की ही मूर्तियां मिली हैं। स्मरणीय है कि सर्वानुभूति एवं अम्बिका इस क्षेत्र के सर्वाधिक लोकप्रिय यक्ष-यक्षी युगल थे, जिन्हें सभी जिनों के साथ निरूपित किया गया।[3] केवल कुछ ही उदाहरणों में ऋषभ (गोमुख-चक्रेश्वरी),[4] पार्श्व (धरणेन्द्र-पद्मावती)[5] एवं महावीर (मातंग-सिद्धायिका)[6] के साथ पारम्परिक और स्वतन्त्र लक्षणों वाले यक्ष-यक्षी आमूर्तित हैं। दिगंबर जिन मूर्तियों में स्वतन्त्र लक्षणों वाले पारम्परिक यक्ष और यक्षियों के चित्रण अधिक लोकप्रिय थे।

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश—यक्ष एवं यक्षियों के मूर्तिविज्ञानपरक विकास के अध्ययन की दृष्टि से यह क्षेत्र सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इस क्षेत्र में ल० सातवीं-आठवीं शती ई० में जिन मूर्तियों में यक्ष-यक्षी के चित्रण प्रारम्भ हुए। इस क्षेत्र की दसवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की जिन मूर्तियों में अधिकांशतः पारम्परिक या स्वतन्त्र लक्षणों वाले यक्ष-यक्षी ही निरूपित हैं। ऋषभ, नेमि एवं पार्श्व के साथ अधिकांशतः पारम्परिक यक्ष-यक्षी उत्कीर्ण हैं। सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, शान्ति एवं महावीर के साथ भी कभी-कभी स्वतन्त्र लक्षणों वाले, किन्तु अपारम्परिक यक्ष-यक्षी आमूर्तित हैं। अन्य जिनों के साथ अधिकांशतः सामान्य लक्षणों वाले द्विभुज यक्ष-यक्षी निरूपित हैं। सामान्य लक्षणों वाले यक्ष-यक्षी के हाथों में अभय-(या वरद-)मुद्रा और कलश (या फल या पुष्प) प्रदर्शित हैं। इस क्षेत्र में चक्रेश्वरी एवं अम्बिका की सर्वाधिक स्वतन्त्र मूर्तियां

---

१ ये उदाहरण क्रमशः देवगढ़ (मन्दिर १२), पतियानदाई (अम्बिका मूर्ति) और बारभुजी गुफा से मिले हैं।

२ राजपूताना संग्रहालय, अजमेर (२७०), घाणेराव (महावीर मन्दिर) एवं तारंगा (अजितनाथ मन्दिर)

३ गजारूढ़ सर्वानुभूति कभी द्विभुज और कभी चतुर्भुज है। द्विभुज होने पर उसकी दोनों भुजाओं में या तो धन का थैला प्रदर्शित है, या फिर एक में फल (या वरद या-अभय-मुद्रा) और दूसरे में धन का थैला है। चतुर्भुज सर्वानुभूति के हाथों में सामान्यतः वरद-(या अभय-) मुद्रा, अंकुश, पाश और धन का थैला (या फल) प्रदर्शित हैं। सिंहवाहिनी अम्बिका सामान्यतः द्विभुजा है और उसके हाथों में आम्रलुम्बि (या फल) एवं बालक स्थित हैं। चतुर्भुज अम्बिका की तीन भुजाओं में आम्रलुम्बि एवं चौथे में बालक प्रदर्शित हैं।

४ कुम्भारिया (शान्तिनाथ एवं महावीर मन्दिर के वितान), चन्द्रावती एवं विमलवसही (गर्भगृह एवं देवकुलिका २५) की मूर्तियां

५ ओसिया के महावीर मन्दिर के बलानक एवं विमलवसही (देवकुलिका ४) की मूर्तियां

६ कुम्भारिया के शान्तिनाथ मन्दिर के वितान की मूर्ति

हैं (चित्र ४४-४६, ५०, ५१, ५३)। साथ ही रोहिणी[1], पद्मावती[2] एवं सिद्धायिका[3] की भी कुछ मूर्तियां प्राप्त हुई हैं (चित्र ४७, ५५, ५७)। चक्रेश्वरी एवं पद्मावती की मूर्तियों में सर्वाधिक विकास दृष्टिगत होता है। अम्बिका का स्वरूप अन्य क्षेत्रों के समान इस क्षेत्र में भी स्थिर रहा। यक्षों में केवल सर्वानुभूति एवं धरणेन्द्र की ही कुछ स्वतन्त्र मूर्तियां मिली हैं (चित्र ४९)।[4] इस क्षेत्र में २४ यक्षियों के सामूहिक चित्रण के भी दो उदाहरण क्रमशः देवगढ़ (मन्दिर १२) एवं पतियानदाई (अम्बिका मूर्ति) से मिले हैं।

बिहार-उड़ीसा-बंगाल—इस क्षेत्र की जिन मूर्तियों में यक्ष-यक्षी युगलों के चित्रण की परम्परा लोकप्रिय नहीं थी। केवल दो उदाहरणों में यक्ष-यक्षी निरूपित हैं।[5] उड़ीसा में नवमुनि एवं बारभुजी गुफाओं (११वीं-१२वीं शती ई०) की क्रमशः सात और चौबीस जिन मूर्तियों में जिनों के नीचे उनकी यक्षियां निरूपित हैं (चित्र ५९)। चक्रेश्वरी एवं अम्बिका की कुछ स्वतन्त्र मूर्तियां भी मिली हैं।

सामूहिक अंकन—जैन ग्रन्थों में नवीं शती ई० तक यक्ष एवं यक्षियों की केवल सूची ही तैयार थी। तथापि सूची के आधार पर ही नवीं शती ई० में शिल्प में २४ यक्षियों को मूर्त अभिव्यक्ति प्रदान की गई। २४ यक्षियों के सामूहिक अंकनों के हमें तीन उदाहरण क्रमशः देवगढ़ (मन्दिर १२, उ० प्र०), पतियानदाई (अम्बिका मूर्ति, म० प्र०) एवं बारभुजी गुफा (उड़ीसा) से मिले हैं। ये तीनों ही दिगंबर स्थल हैं। यक्षों के सामूहिक चित्रण का सम्भवतः कोई प्रयास नहीं किया गया। यहां यक्षियों के सामूहिक अंकनों की सामान्य विशेषताओं का संक्षेप में उल्लेख किया जायगा।

देवगढ़ के मन्दिर १२ (शान्तिनाथ मन्दिर, ८६२ई०)[6] की भित्ति पर का २४ यक्षियों का सामूहिक चित्रण इस प्रकार का प्राचीनतम ज्ञात उदाहरण है (चित्र ४८)।[7] सभी यक्षियां त्रिभंग में खड़ी हैं और उनके शीर्ष भाग में सम्बन्धित जिनों की छोटी मूर्तियां उत्कीर्ण हैं।[8] सभी उदाहरणों में जिनों एवं यक्षियों के नाम उनकी आकृतियों के नीचे अभिलिखित हैं। अम्बिका के अतिरिक्त अन्य किसी यक्षी के निरूपण में जैन ग्रन्थों के निर्देशों का पालन नहीं किया गया है। देवगढ़ के मन्दिर १२ की यक्षी मूर्तियों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि देवगढ़ में नवीं शतीई० तक केवल अम्बिका का ही स्वरूप नियत हो सका था। सात यक्षियों के निरूपण में पूर्व परम्परा में प्रचलित अप्रतिचक्रा, वज्रशृंखला, नरदत्ता, महाकाली, वैरोट्या, अच्छुप्ता एवं महामानसी महाविद्याओं की लाक्षणिक विशेषताओं के पूर्ण या आंशिक अनुकरण हैं, पर उनके नाम परिवर्तित कर दिये गये हैं। यक्षियों पर महाविद्याओं के प्रभाव का निर्धारण बप्पभट्टि की चतुर्विंशतिका के विवरणों एवं ओसिया के महावीर मन्दिर की महाविद्या मूर्तियों के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर किया गया है। देवगढ़ समूह की अन्य यक्षियां विशिष्टतारहित एवं सामान्य लक्षणों वाली हैं। इन द्विभुज यक्षियों की एक भुजा में चामर, पुष्प एवं कलश में से कोई एक सामग्री प्रदर्शित है और दूसरी भुजा या तो नीचे लटकती या फिर जानु पर स्थित है। समान विवरणों वाली दो चतुर्भुज मूर्तियों में यक्षी की दो भुजाओं मे कलश प्रदर्शित हैं और अन्य में या तो पुष्प हैं या फिर एक में पुष्प है और दूसरा जानु पर स्थित है। सुपार्श्व के साथ काली के स्थान पर 'मयूरवाहि' नाम की चतुर्भुजा यक्षी उत्कीर्ण है। मयूर-वाहिनी यक्षी की भुजा में पुस्तक प्रदर्शित है जो स्पष्टतः सरस्वती के स्वरूप का अनुकरण है।

---

१ देवगढ़ एवं ग्यारसपुर (मालादेवी मन्दिर)
२ खजुराहो, देवगढ़, मथुरा एवं शहडोल
३ खजुराहो एवं देवगढ़
४ खजुराहो, देवगढ़ एवं ग्यारसपुर (मालादेवी मन्दिर)
५. एक मूर्ति बंगाल और दूसरी बिहार से मिली हैं।
६ मन्दिर १२ शान्तिनाथ को समर्पित है।
७ मन्दिर १२ के अर्धमण्डप के एक स्तम्भ पर संवत् ९१९ (८६२ ई०) का एक लेख है। पर अर्धमण्डप निश्चित ही मूल मन्दिर के कुछ बाद का निर्माण है, अतः मूल मन्दिर (मन्दिर १२) को ८६२ ई० के कुछ पहले (ल० ८४३ ई०) का निर्माण स्वीकार किया जा सकता है—द्रष्टव्य, जि०इ०दे०, पृ० ३६
८ जि०इ०दे०, पृ० ९८–११२

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि देवगढ़ में प्रत्येक जिन के साथ एक यक्षी की कल्पना तो की गई, परन्तु उनकी प्रतिमा लाक्षणिक विशेषताओं के उस समय (९वीं शती ई०) तक निश्चित न हो पाने के कारण अम्बिका के अतिरिक्त अन्य यक्षियों के निरूपण में महाविद्याओं एवं सरस्वती के लाक्षणिक स्वरूपों के अनुकरण किये गये और कुछ में सामान्य लक्षणों वाली यक्षियों को आमूर्तित किया गया। उपर्युक्त धारणा की पुष्टि इस तथ्य से भी होती है कि देवगढ़ की ही स्वतन्त्र जिन मूर्तियों में अम्बिका के अतिरिक्त मन्दिर १२ की अन्य किसी भी यक्षी को नहीं उत्कीर्ण किया गया है।

नामों के आधार पर देवगढ़ के मन्दिर १२ की यक्षियों को तीन वर्गों में बांटा जा सकता है। पहले वर्ग में वे पांच यक्षियां हैं जिन्हें पारम्परिक जिनों के साथ प्रदर्शित किया गया है। इनमें ऋषभ, अनन्त, अर, अरिष्टनेमि एवं पार्श्व की चक्रेश्वरी, अनन्तवीर्या,[1], तारादेवी,[2] अम्बायिका एवं पद्मावती यक्षियां हैं। दूसरे वर्ग में ऐसी चार यक्षियां हैं जिन्हें अपने पारम्परिक जिनों के साथ नहीं प्रदर्शित किया गया है। इनमें जालामालिनी,[3] अपराजिता (वर्धमान), सिधइ (मुनि-सुव्रत) एवं बहुरूपी (पुष्पदन्त) यक्षियां हैं। जैन परम्परा के अनुसार ज्वालामालिनी चन्द्रप्रभ की, अपराजिता मल्लि की, सिधइ (या सिद्धायिका) महावीर की एवं बहुरूपी (बहुरूपिणी) मुनिसुव्रत की यक्षियां हैं। तीसरे वर्ग में ऐसी यक्षियां हैं जिनके नाम किसी जैन ग्रन्थ में नहीं प्राप्त होते। ये भगवती सरस्वती (अभिनन्दन), मयूरवाहि (सुपार्श्व), हिमादेवी (मल्लि), श्रीयादेवी (शान्ति), सुरक्षिता (धर्म), सुलक्षणा (विमल), अभोगरतिण[4] (वासुपूज्य), वहनि (श्रेयांश), श्रीयादेवी (शीतल), सुमालिनी (चन्द्रप्रभ) एवं सुलोचना (पद्मप्रभ) यक्षियां हैं।

पतियानदाई मन्दिर (सतना, म० प्र०) से ग्यारहवीं शती ई० की एक अम्बिका मूर्ति मिली है, जिसके परिकर में अम्बिका के अतिरिक्त अन्य २३ यक्षियों की चतुर्भुज मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। यह मूर्ति सम्प्रति इलाहाबाद संग्रहालय (२९३) में है (चित्र ५३)।[5] अम्बिका एवं परिकर की सभी २३ यक्षियां त्रिभंग में खड़ी हैं। आकृतियों के नीचे उनके नाम अभिलिखित हैं। परिकर में दिगंबर जिन मूर्तियां भी बनी हैं। सिंहवाहना अम्बिका की चारो भुजाएं खण्डित हैं। देवी के बायें और दाहिने पार्श्वों की यक्षियों के नीचे क्रमशः प्रजापती और वज्रसंकला उत्कीर्ण है। समीप ही दो अन्य यक्षियां निरूपित हैं जिनके नाम स्पष्ट नहीं हैं। पर एक यक्षी के हाथ में चक्र एवं दूसरी के साथ गजवाहन बने हैं। ये निश्चित ही चक्रेश्वरी और रोहिणी की मूर्तियां हैं। बायीं ओर (ऊपर से नीचे) की यक्षियों की आकृतियों के नीचे क्रमशः जया, अनन्तमती, वैरोटा, गौरी, महाकाली, काली और पुषदधी नाम उत्कीर्ण हैं। दाहिनी ओर (ऊपर से नीचे) अपराजिता, महामुनुसि, अनन्तमती, गान्धारी, मनुसी, जालमालिनी और मनुजा नाम की यक्षियां हैं। मूर्ति के ऊपरी भाग में (बायें से दाहिने) क्रमशः बहुरूपिणी, चामुण्डा, सरसती, पदुमावती और विजया नाम की यक्षियां आमूर्तित हैं। यक्षियों के नाम सामान्यतः तिलोयपण्णत्ति की सूची से मेल खाते हैं। परिकर की २३ यक्षियां पारम्परिक क्रम में नहीं निरूपित हैं। उनकी लाक्षणिक विशेषताएं भी बहुत स्पष्ट नहीं हैं। अनन्तनाथ की यक्षी अनन्तमती का नाम दो बार उत्कीर्ण है। इसके अतिरिक्त प्रजापति, जया, पुषदधी, मनुजा एवं सरस्वती नाम ऐसे हैं जिनका उल्लेख कहीं भी यक्षियों के रूप में नहीं प्राप्त होता। इसके अतिरिक्त २४ यक्षियों की पारम्परिक सूची में से प्रज्ञप्ति, मनोवेगा, मानवी एवं सिद्धायिका के नाम इस मूर्ति में नहीं प्राप्त होते।

---

१ दिगंबर परम्परा में यक्षी का नाम अनन्तमती है।

२ दिगंबर ग्रन्थ में अर की यक्षी का नाम तारावती है।

३ जिन का नाम स्पष्ट नहीं है। दिगंबर परम्परा में ज्वालामालिनी चन्द्रप्रभ की यक्षी है। देवगढ़ समूह में चन्द्रप्रभ के साथ सुमालिनी उत्कीर्ण है।

४ साहनी ने इसे अमोगरोहिणी पढ़ा है—जि०इ०दे०, पृ० १०१

५ कनिंघम, ए०, आर्कियालाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया रिपोर्ट, वर्ष १८७३–७५, खं० ९, पृ० ३१-३३; चन्द्र, प्रमोद, स्टोन स्कल्पचर इन दि एलाहाबाद म्यूजियम, बम्बई, १९७०, पृ० १६२

बारभुजी गुफा (खण्डगिरि, उड़ीसा) की २४ यक्षियों की मूर्तियां ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० की हैं।[1] देवगढ़ के समान यहां भी यक्षियों की मूर्तियां सम्बन्धित जिनों की मूर्तियों के नीचे उत्कीर्ण हैं (चित्र ५९)। जिन मूर्तियां लांछनों से युक्त हैं। द्विभुज से विंशतिभुज यक्षियां ललितमुद्रा या ध्यानमुद्रा में आसीन हैं।[2] २४ यक्षियों में केवल चक्रेश्वरी, अम्बिका एवं पद्मावती के निरूपण में ही परम्परा का कुछ पालन किया गया है। कुछ यक्षियों के निरूपण में ब्राह्मण एवं बौद्ध देवकुलों की देवियों के लक्षणों का अनुकरण किया गया है। शान्ति, अर एवं नमि की यक्षियों के निरूपण में क्रमशः गजलक्ष्मी (महालक्ष्मी), तारा (बौद्धदेवी) एवं ब्रह्माणी (त्रिमुख एवं हंसवाहना) के प्रभाव स्पष्ट हैं। अन्य यक्षियां स्थानीय कलाकारों की कल्पना की देन प्रतीत होती हैं। यहां यह उल्लेखनीय है कि देवगढ़ समूह की २४ यक्षियों के विपरीत बारभुजी गुफा की यक्षियां स्वतन्त्र लक्षणों वाली हैं।

अब प्रत्येक जिन के यक्ष-यक्षी युगल के प्रतिमाविज्ञान का अलग-अलग अध्ययन किया जायगा।

(१) गोमुख यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

गोमुख जिन ऋषभनाथ का यक्ष है। श्वेतांबर एवं दिगंबर दोनों ही परम्परा के ग्रन्थों में गोमुख को चतुर्भुज कहा गया है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका के अनुसार गो के मुख वाले गोमुख यक्ष का वाहन गज तथा आयुध दाहिने हाथों में वरदमुद्रा एवं अक्षमाला और बायें में मातुलिंग (फल) एवं पाश हैं।[3] अन्य ग्रन्थों में भी यही लक्षण प्राप्त होते हैं।[4] केवल आचारदिनकर में वाहन वृषभ है और दोनों पार्श्वों में गज एवं वृषभ के उत्कीर्णन का निर्देश है।[5] रूपमण्डन में गोमुख को गजानन कहा गया है।[6]

दिगंबर परम्परा—दिगंबर परम्परा में गोमुख का शीर्षभाग धर्मचक्र चिह्न से लांछित, वाहन वृषभ और करों के आयुध परशु, फल, अक्षमाला एवं वरदमुद्रा हैं।[7] स्पष्टतः परशु के अतिरिक्त शेष आयुध श्वेतांबर परम्परा के समान हैं।[8]

इस प्रकार श्वेतांबर एवं दिगंबर ग्रन्थों में केवल वाहन (गज या वृषभ) एवं आयुधों (पाश या परशु) के प्रदर्शन के सन्दर्भ में ही भिन्नता दृष्टिगत होती है। आचारदिनकर में गोमुख के पार्श्वों में गज एवं वृषभ के चित्रण का निर्देश सम्भवतः वाहनों के सन्दर्भ में दोनों परम्पराओं के समन्वय का प्रयास है।

---

१ मित्रा, देबला, 'शासनदेवीज इन दि खण्डगिरि केव्स', ज०ए०सो०, खं० १, अं० २, पृ० १३०–३३
२ मुनिसुव्रत की यक्षी को लेटी हुई मुद्रा में प्रदर्शित किया गया है।
३ तथा तत्तीर्थोत्पन्नगोमुखयक्षं हेमवर्णं गजवाहनं चतुर्भुजं वरदाक्षसूत्रयुतदक्षिणपाणिं मातुलिंगपाशान्वितवामपाणिं चेति। निर्वाणकलिका १८.१
४ त्रि०श०पु०च० १.३.६८०–८१; पद्मानन्दमहाकाव्य १४.२८०–८१; मन्त्राधिराजकल्प ३.२६
५ स्वर्णाभो वृषवाहनो द्विरदगोयुक्तश्चतुर्बाहुभि'''आचारदिनकर, प्रतिष्ठाधिकारः ३४.१
६ रिषभो (ऋषभे) गोमुखो यक्षो हेमवर्णा गजानना (हेमवर्णो गजाननः)। रूपमण्डन ६.१७। ज्ञातव्य है कि रूपमण्डन में गोमुख के वाहन (गज) का उल्लेख नहीं है।
७ चतुर्भुजः सुवर्णाभो गोमुखो वृषवाहनः।
हस्तेन परशुं धत्ते बीजपूराक्षसूत्रकं॥
वरदान परं सम्यक् धर्मचक्रं च मस्तके। प्रतिष्ठासारसंग्रह ५.१३–१४
प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१२९; प्रतिष्ठातिलकम् ७.१
८ अपराजितपृच्छा में पाश ही प्रदर्शित है (२२१.४३)।

दक्षिण भारतीय परम्परा—दक्षिण भारत के दोनों परम्परा के ग्रन्थों में गो के मुख वाले, चतुर्भुज एवं वृषभ पर ललितमुद्रा में आसीन गोमुख के हाथों में अभय-(या वरद-) मुद्रा, अक्षमाला, परशु एवं मातुलिंग के प्रदर्शन का निर्देश है।[1] श्वेतांबर परम्परा में यक्ष के शीर्ष भाग में धर्मचक्र के उत्कीर्णन का भी विधान है। स्पष्ट है कि दक्षिण भारत की श्वेतांबर एवं दिगम्बर परम्पराएं गोमुख के निरूपण में उत्तर भारत की दिगंबर परम्परा से सहमत हैं।

मूर्ति-परम्परा

गुजरात-राजस्थान (क) स्वतन्त्र मूर्तियां—इस क्षेत्र में गोमुख की केवल तीन स्वतन्त्र मूर्तियां मिली हैं। इनमें यक्ष वृषानन एवं चतुर्भुज है। दसवीं शती ई० की एक मूर्ति घाणेराव (पाली, राजस्थान) के महावीर मन्दिर के पश्चिमी अधिष्ठान पर उत्कीर्ण है। इसमें ललितमुद्रा में आसीन गोमुख के करों में कमण्डलु, सनालपद्म, सनालपद्म एवं वरदमुद्रा प्रदर्शित हैं। ल० दसवीं शती ई० की दूसरी मूर्ति हथमा (बाड़मेर, राजस्थान) से मिली है और सम्प्रति राजपूताना संग्रहालय अजमेर (२७०) में है (चित्र ४३)। ललितमुद्रा में बैठे गोमुख के हाथों में अभयमुद्रा, परशु, सर्प एवं मातुलिंग हैं। यज्ञोपवीत से शोभित यक्ष के मस्तक पर धर्मचक्र भी उत्कीर्ण है।[2] उपर्युक्त दोनों मूर्तियों में वाहन अनुपस्थित है। बारहवीं शती ई० की एक मूर्ति तारंगा के अजितनाथ मन्दिर के गूढमण्डप की दक्षिणी भित्ति पर है। यहां गोमुख त्रिभंग में खड़े हैं और उनके समीप ही गजवाहन भी उत्कीर्ण है। यक्ष की एक अवशिष्ट भुजा में सम्भवतः अंकुश है।

(ख) जिन-संयुक्त मूर्तियां—इस क्षेत्र की केवल कुछ ही ऋषभ मूर्तियों में गोमुख निरूपित हैं। राजस्थान की एक ऋषभ मूर्ति (१० वीं शती ई०) में चतुर्भुज गोमुख की तीन भुजाओं में अभयमुद्रा, परशु एवं जलपात्र हैं।[3] बयाना (भरतपुर) की ऋषभमूर्ति (१० वीं शती ई०) में चतुर्भुज गोमुख की दो भुजाओं में गदा एवं फल हैं।[4] कुम्भारिया के शान्तिनाथ एवं महावीर मन्दिरों (११ वीं शती ई०) के वितानों पर उत्कीर्ण ऋषभ के जीवनदृश्यों में भी गोमुख की ललितमुद्रा में दो चतुर्भुज मूर्तियां हैं। शान्तिनाथ मन्दिर की मूर्ति में गजारूढ़ गोमुख की भुजाओं में वरदमुद्रा, अंकुश, पाश एवं धन का थैला प्रदर्शित हैं (चित्र १४)। महावीर मन्दिर की मूर्ति में दो अवशिष्ट दाहिने हाथों में वरदमुद्रा एवं अंकुश हैं। विमलवसही के गर्भगृह की ऋषभ मूर्ति (१२ वीं शती ई०) में गजारूढ़ गोमुख के करों में फल, अंकुश, पाश एवं धन का थैला हैं। विमलवसही की देवकुलिका २५ की एक अन्य मूर्ति में गजारूढ़ गोमुख की भुजाओं में वरदमुद्रा, अभयमुद्रा, पाश एवं फल हैं। यह अकेली मूर्ति है जिसके निरूपण में श्वेतांबर ग्रन्थों के निर्देशों का पालन किया गया है।[5]

उपर्युक्त मूर्तियों से स्पष्ट है कि ल० दसवीं शती ई० में गुजरात एवं राजस्थान में गोमुख की स्वतन्त्र एवं जिन-संयुक्त मूर्तियां उत्कीर्ण हुईं। श्वेतांबर स्थलों की मूर्तियों में परम्परा के अनुरूप गजवाहन एवं पाश प्रदर्शित हैं।[6] श्वेतांबर स्थलों की ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० की मूर्तियों में अंकुश एवं धन के थैले का प्रदर्शन भी लोकप्रिय था, जो सम्भवतः सर्वानुभूति यक्ष का प्रभाव है। इस क्षेत्र की दिगंबर परम्परा की मूर्तियों में वाहन नहीं उत्कीर्ण है, पर परशु एवं एक उदाहरण में शीर्ष भाग में धर्मचक्र के उत्कीर्णन में परम्परा का पालन किया गया है।

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश—इस क्षेत्र से गोमुख की स्वतन्त्र मूर्तियां नहीं मिली हैं। पर जिन-संयुक्त मूर्तियों में ऋषभ के साथ गोमुख का चित्रण दसवीं शती ई० में ही प्रारम्भ हो गया था। वाहन का अंकन लोकप्रिय नहीं था।

---

१ रामचन्द्रन, टी०एन०, जू०लि०, पृ० १९७

२ भट्टाचार्य, यू० सी०, 'गोमुख यक्ष', ज०यू०पी०हि०सो०, खं० ५, भाग २ (न्यू सिरीज), पृ० ८–९

३ यह मूर्ति बोस्टन संग्रहालय (६४.४८७) में है।

४ यह मूर्ति भरतपुर राज्य संग्रहालय (६७) में है–द्रष्टव्य, अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, चित्रसंग्रह १५७.१२

५ केवल अक्षमाला के स्थान पर अभयमुद्रा प्रदर्शित है।

६ घाणेराव के महावीर मन्दिर की मूर्ति में ये विशेषताएं नहीं प्रदर्शित हैं।

केवल देवगढ़ के मन्दिर १२ के अर्धमण्डप के उत्तरंग (१० वीं शती ई०) पर ही चतुर्भुज गोमुख की एक छोटी मूर्ति उत्कीर्ण है। ललितमुद्रा में आसीन यक्ष के करों में कलश, पद्मकलिका, पद्मकलिका एवं फल प्रदर्शित हैं। यक्ष के करों की सामग्रियां घाणेराव के महावीर मन्दिर (श्वेतांबर) की गोमुख मूर्ति के समान हैं। बजरामठ (ग्यारसपुर, विदिशा) की ऋषभ मूर्ति (१० वीं शती ई०) में चतुर्भुज गोमुख की भुजाओं में अभयमुद्रा, परशु, गदा एवं जलपात्र हैं।

खजुराहो की ऋषभ मूर्तियों (१०वीं-१२वीं शती ई०) में गोमुख की द्विभुज और चतुर्भुज मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। चतुर्भुज मूर्तियां संख्या में अधिक हैं। गोमुख के साथ वृषभवाहन केवल एक ही उदाहरण (स्थानीय संग्रहालय, के ८) में है। चतुर्भुज गोमुख के तीन सुरक्षित करों में पद्म, गदा (?) एवं धन का थैला है। कुछ मूर्तियों में यक्ष वृषानन भी नहीं है। पार्श्वनाथ मन्दिर के गर्भगृह की मूर्ति (१०वी शती ई०) मे चतुर्भुज गोमुख के तीन हाथों में परशु, गदा एवं मातुलिंग हैं। चतुर्भुज गोमुख की ऊपरी भुजाओं में अधिकांशतः परशु एवं पुस्तक प्रदर्शित हैं। पर निचली भुजाओं में वरदमुद्रा एवं धन का थैला,[1] या अभयमुद्रा एवं फल (या जलपात्र)[2] हैं। आर्डिन संग्रहालय, खजुराहो की एक मूर्ति में यक्ष की भुजाओं में वरदमुद्रा, परशु, शृंखला एवं जलपात्र हैं। स्थानीय संग्रहालय की एक मूर्ति (के ६) में यक्ष के तीन हाथों में सर्प, पद्म एवं धन का थैला है। कुछ उदाहरणों में द्विभुज गोमुख की भुजाओं में फल एवं धन का थैला है।[3] इस प्रकार स्पष्ट है कि खजुराहो में गोमुख के करों में परशु, पुस्तक एवं धन के थैले का प्रदर्शन लोकप्रिय था। केवल परशु के प्रदर्शन में ही दिगंबर परम्परा का पालन किया गया है। गोमुख के साथ पुस्तक का प्रदर्शन खजुराहो के बाहर दुर्लभ है।[4] धन के थैले का प्रदर्शन अन्य स्थलों पर भी प्राप्त होता है, जो सर्वानुभूति यक्ष का प्रभाव है।

देवगढ़ की दसवीं से बारहवी शती ई० के मध्य की ऋषभ मूर्तियों में गोमुख की द्विभुज[5] एवं चतुर्भुज[6] मूर्तियां निरूपित हैं। इनमें यक्ष सर्वदा वृषानन है पर वाहन किसी उदाहरण मे नहीं उत्कीर्ण है। करों में परशु एवं गदा का प्रदर्शन लोकप्रिय था। द्विभुज गोमुख के हाथों में परशु (या अभयमुद्रा या गदा) एवं फल (या धन का थैला या कलश) हैं। चतुर्भुज गोमुख की निचली भुजाओं में सर्वदा अभयमुद्रा एवं कलश (या फल) प्रदर्शित हैं। पर ऊपरी भुजाओं के आयुधों में काफी भिन्नता प्राप्त होती है। अधिकांश उदाहरणों[7] में ऊपरी हाथों में परशु एवं गदा हैं। चार मूर्तियों[8] (११वीं-१२वीं शती ई०) में ऊपरी हाथों में छत्र-पद्म (या पद्म) प्रदर्शित हैं। खजुराहो, देवगढ़ एवं घाणेराव (महावीर मन्दिर) की गोमुख मूर्तियों में पद्म का प्रदर्शन परम्परासम्मत न होते हुए भी श्वेतांबर (घाणेराव का महावीर मन्दिर) एवं दिगंबर दोनों ही स्थलों पर लोकप्रिय था। मन्दिर ५ की मूर्ति में गोमुख के हाथों में पुष्प एवं मुद्गर, मन्दिर १ की मूर्ति में दोनों करों में धन का थैला (चित्र ८), मन्दिर २० की मूर्ति में गदा एवं पुस्तक और मन्दिर १२ की चहारदीवारी की मूर्ति में गदा (?) एवं पद्म प्रदर्शित हैं। मन्दिर ९ की एक मूर्ति (१०वीं शती ई०) में गोमुख के हाथों में वरदमुद्रा, परशु, व्याख्यानमुद्रा-अक्षमाला एवं फल प्रदर्शित हैं। देवगढ़ की यह अकेली मूर्ति है जिसके निरूपण में अक्षरशः दिगंबर परम्परा का पालन किया गया है। मन्दिर १९ की एक मूर्ति (११वीं शती ई०) में गोमुख फल, अभयमुद्रा, पद्म एवं धन का थैला से युक्त है। मन्दिर १२ की एक मूर्ति (११वीं शती ई०) में गोमुख के करों में अभयाक्ष, स्रुक, पुस्तक एवं कलश प्रदर्शित हैं।

राज्य संग्रहालय, लखनऊ की केवल दो ही ऋषभ मूर्तियों (११वीं शती ई०) में यक्ष वृषानन है। पहली मूर्ति (जे ७८९) में चतुर्भुज गोमुख की तीन अवशिष्ट भुजाओं में अभयमुद्रा, पद्म एवं कलश प्रदर्शित हैं। दूसरी मूर्ति में द्विभुज

---

१ स्थानीय संग्रहालय, के ४०, के ६९ — २ स्थानीय संग्रहालय, के ८, १६५१

३ मन्दिर १७, आर्डिन संग्रहालय (१६७४, १६०७, १७२५), स्थानीय संग्रहालय (के ७), पार्श्वनाथ मन्दिर के पश्चिमी भाग का जिनालय

४ देवगढ़ की भी दो मूर्तियों में गोमुख के हाथ में पुस्तक है।

५ दस उदाहरण : मन्दिर ११, १६, १९, २४, २५ — ६ बीस उदाहरण

७ नौ उदाहरण — ८ मन्दिर २, १२, २०, २४

गोमुख अभयमुद्रा एवं कलश से युक्त है। संग्रहालय की चार अन्य ऋषभ मूर्तियों में यक्ष वृषानन नहीं है और उसकी एक भुजा में सामान्यतः धन का थैला है।

दक्षिण भारत—दक्षिण भारत में ऋषभ के यक्ष को वृषानन नहीं निरूपित किया गया है। वह सदैव चतुर्भुज है। यक्ष के साथ वाहन का चित्रण लोकप्रिय नहीं था। कन्नड़ शोध संस्थान संग्रहालय की एक ऋषभ मूर्ति में चतुर्भुज यक्ष के करों में अभयमुद्रा, अक्षमाला, परशु एवं फल हैं।[1] अयहोल (कर्नाटक) के जैन मन्दिर (८वीं-९वीं शती ई०) की चतुर्भुज मूर्ति में ललितमुद्रा में विराजमान यक्ष के हाथों में पद्मकलिका, परशु, पाश एवं वरदमुद्रा हैं।[2] कर्नाटक के शान्तिनाथ बस्ती की एक मूर्ति में वृषभारूढ़ यक्ष के करों में पद्म, परशु, अक्षमाला एवं फल प्रदर्शित हैं।[3] उपर्युक्त मूर्तियों से स्पष्ट है कि दक्षिण भारत में मुख्य आयुधों (परशु, अक्षमाला एवं फल) के प्रदर्शन में परम्परा का निर्वाह किया गया है। यक्ष की भुजाओं में पद्म और पाश का प्रदर्शन उत्तर भारतीय परम्परा से प्रभावित प्रतीत होता है।

विश्लेषण

सम्पूर्ण अध्ययन से स्पष्ट होता है कि उत्तर भारत में दसवीं शती ई० में गोमुख यक्ष की स्वतन्त्र एवं जिन-संयुक्त मूर्तियों का निर्माण प्रारम्भ हुआ। बिहार, उड़ीसा एवं बंगाल से यक्ष की एक भी मूर्ति नहीं मिली है। सर्वाधिक मूर्तियां उत्तर प्रदेश एवं मध्य प्रदेश में उत्कीर्ण हुई। पर स्वतन्त्र मूर्तियां केवल गुजरात एवं राजस्थान से ही मिली हैं। ग्रन्थों के समान शिल्प में भी गोमुख का चतुर्भुज स्वरूप ही लोकप्रिय था।[4] श्वेतांबर मूर्तियों में गज-वाहन का चित्रण नियमित था, पर दिगंबर स्थलों पर वाहन (वृषभ) का चित्रण केवल एक ही उदाहरण[5] में मिलता है। दिगंबर स्थलों की मूर्तियों में केवल परशु के प्रदर्शन में ही दिगंबर परम्परा का पालन किया गया है। दिगंबर स्थलों पर गोमुख के हाथों में पुस्तक, गदा, पद्म एवं धन का थैला में से कोई एक या दो आयुध प्रदर्शित हैं। इन आयुधों का प्रदर्शन कलाकारों की कल्पना या किसी ऐसी परम्परा की देन है जो सम्प्रति उपलब्ध नहीं है। श्वेतांबर स्थलों की मूर्तियों में भी गोमुख के साथ केवल गज-वाहन एवं पाश के प्रदर्शन में ही परम्परा का निर्वाह किया गया है। इस क्षेत्र में गोमुख की दो भुजाओं में अधिकांशतः अंकुश एवं धन का थैला प्रदर्शित हैं जो सर्वानुभूति यक्ष का प्रभाव है। दिगंबर स्थलों की तुलना में श्वेतांबर स्थलों पर गोमुख की लाक्षणिक विशेषताएं अधिक स्थिर रहीं।

गोमुख की धारणा निश्चित ही शिव से प्रभावित है। यक्ष का गोमुख होना, उसका वृषभ वाहन और हाथों में परशु एवं पाश जैसे आयुधों का प्रदर्शन शिव के ही प्रभाव का संकेत देता है। राजपूताना संग्रहालय, अजमेर की मूर्ति (२७०) में गोमुख के एक कर में सर्प भी प्रदर्शित है। डा० बनर्जी ने गोमुख यक्ष को शिव का पशु एवं मानव रूप में संयुक्त अंकन माना है।[6] गोमुख प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ (ऋषभनाथ) का यक्ष है। ऋषभनाथ को जैन धर्म का संस्थापक एवं महादेव बताया गया है।[7] गोमुख के शीर्ष भाग के धर्मचक्र को इस आधार पर आदिनाथ के धर्मोपदेश का प्रतीकात्मक अंकन माना जा सकता है।

---

१ अन्निगेरी, ए० एम०, ए गाइड टू दि कन्नड़ रिसर्च इन्स्टिट्यूट म्यूजियम, धारवाड़, १९५८, पृ० २७
२ संकलिया, एच० डी०, 'जैन यक्षज ऐण्ड यक्षिणीज', बु०ड०का०रि०इं०, खं० १, अं० २-४, पृ० १६०
३ आर्क्यालाजिकल सर्वे ऑव मैसूर, ऐनुअल रिपोर्ट, १९३९, भाग ३, पृ० ४८
४ दिगम्बर स्थलों की कुछ मूर्तियों में गोमुख द्विभुज है।
५ स्थानीय संग्रहालय, खजुराहो के ८
६ बनर्जी, जे० एन०, पू०नि०, पृ० ५६३
७ भट्टाचार्य, बी० सी०, पू०नि०, पृ० ९६

(१) चक्रेश्वरी यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

चक्रेश्वरी (या अप्रतिचक्रा)[१] जिन ऋषभनाथ की यक्षी है। दोनों परम्परा के ग्रन्थों में चक्रेश्वरी का वाहन गरुड है और उसकी भुजाओं में चक्र के प्रदर्शन का निर्देश है। श्वेतांबर परम्परा में चक्रेश्वरी का अष्टभुज एवं द्वादशभुज और दिगंबर परम्परा में चतुर्भुज एवं द्वादशभुज स्वरूपों में निरूपण किया गया है। द्वादशभुज स्वरूप में दोनों परम्पराओं में चक्रेश्वरी के हाथों में जिन आयुधों के प्रदर्शन के निर्देश हैं, वे समान हैं।[२]

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका के अनुसार अष्टभुज अप्रतिचक्रा का वाहन गरुड है और उसके दाहिने हाथों में वरदमुद्रा, बाण, चक्र एवं पाश और बायें हाथों में धनुष, वज्र, चक्र एवं अंकुश होने चाहिए।[3] परवर्ती ग्रन्थों में भी सामान्यतः इन्हीं आयुधों के उल्लेख हैं। आचारदिनकर में दो वाम भुजाओं में धनुष के प्रदर्शन का उल्लेख है।[४] फलतः एक भुजा में चक्र नहीं प्रदर्शित है। रूपमण्डन एवं देवतामूर्तिप्रकरण में चक्रेश्वरी का द्वादशभुज स्वरूप वर्णित है जिसमें आठ भुजाओं में चक्र, दो में वज्र और शेष दो में मातुलिंग एवं अभयमुद्रा का उल्लेख है।[५]

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह में चक्रेश्वरी का चतुर्भुज एवं द्वादशभुज स्वरूपों में ध्यान किया गया है।[६] इनमें चतुर्भुज यक्षी के दो करों में चक्र और शेष दो में मातुलिंग एवं वरदमुद्रा; तथा द्वादशभुज यक्षी के आठ हाथों में चक्र, दो में वज्र और शेष दो में मातुलिंग एवं वरदमुद्रा का उल्लेख है। प्रतिष्ठासारोद्धार एवं प्रतिष्ठातिलकम् में भी समान लक्षणों वाली चतुर्भुज एवं द्वादशभुज चक्रेश्वरी का वर्णन है।[७] अपराजितपृच्छा में द्वादशभुज चक्रेश्वरी के हाथों में वरदमुद्रा के स्थान पर अभयमुद्रा का उल्लेख है।[८]

---

१ निर्वाणकलिका, त्रि०श०पु०च० एवं पद्मानन्दमहाकाव्य में यक्षी का अप्रतिचक्रा नाम से उल्लेख है।

२ श्वेतांबर ग्रन्थों में देवी की एक भुजा से अभयमुद्रा पर दिगंबर ग्रन्थों में वरदमुद्रा व्यक्त है।

३ अप्रतिचक्राभिधानां यक्षिणीं हेमवर्णां गरुडवाहनामष्टभुजां।
वरदबाणचक्रपाशयुक्तदक्षिणकरां धनुर्वज्रचक्रांकुशवामहस्तां चेति ॥ निर्वाणकलिका १८.१
त्रि०श०पु०च० १.३, ६८२–८३; पद्मानन्दमहाकाव्य १४.२८२–८३; मंत्राधिराजकल्प ३.५१

४ स्वर्णाभा गरुडासनाष्टभुजयुग्वामे च हस्तोच्चये वज्रं चापमथांकुशं गुरुधनुः सौम्याशया बिभ्रती। आचारदिनकर ३४.१

५ द्वादशभुजाष्टचक्राणि वज्रयोर्द्वयमेव च।
मातुलिंगाभये चैव पद्मस्था गरुडोपरि ॥ रूपमण्डन ६.२४
देवतामूर्तिप्रकरण ७.६६। श्वेतांबर परम्परा की द्वादशभुज यक्षी का विवरण दिगंबर परम्परा से प्रभावित है।

६ वामे चक्रेश्वरीदेवी स्थाप्यद्वादशसद्भुजा।
धत्ते हस्तद्वयेवज्रे चक्राणी च तथाष्टसु ॥
एकेन बीजपूरं तु वरदा कमलासना।
चतुर्भुजाथवाचक्रं द्वयोर्गरुड वाहनं ॥ प्रतिष्ठासारसंग्रह ५.१५–१६

७ भर्माभाद्य करद्वयालकुलिशा चक्रांकहस्ताष्टका
सव्यासव्यशयोल्लसत्फलवरा यन्मूर्तिरास्तेम्बुजे।
तार्क्ष्ये वा सह चक्रयुग्मरुचकत्यागैश्चतुर्भिः करैः
पंचेष्वास शतोन्नतप्रभुनतां चक्रेश्वरीं तां यजे ॥ प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१५६; प्रतिष्ठातिलकम् ७.१

८ षट्पादा द्वादशभुजा चक्राण्यष्टौ द्विवज्रकम्।
मातुलिंगाभये चैव तथा पद्मासनाऽपि च ॥
गरुडोपरिसंस्था च चक्रेशी हेमवर्णिका। अपराजितपृच्छा २२१.१५–१६

तांत्रिक ग्रन्थ चक्रेश्वरी-अष्टकम् में चक्रेश्वरी के भयावह स्वरूप का ध्यान है जिसमें देवी के हाथों की संख्या का उल्लेख किये बिना ही उनमें चक्रों, पद्म, फल एवं वज्र के धारण करने का उल्लेख है।[1] तीन नेत्रों एवं भयंकर दर्शन वाली देवी की आराधना डाकिनियों एवं गुह्यकों से रक्षा एवं अन्य बाधाओं को दूर करने तथा समृद्धि के लिए की गई है।

दक्षिण भारतीय परम्परा—दक्षिण भारत में गरुडवाहना चक्रेश्वरी का द्वादशभुज एवं षोडशभुज स्वरूपों में ध्यान किया गया है। दिगंबर ग्रन्थ में षोडशभुज चक्रेश्वरी के बारह हाथों में युद्ध के आयुध[2], दो के गोद में तथा शेष दो के अभयमुद्रा और कटकमुद्रा में होने का उल्लेख है। श्वेतांबर ग्रन्थ (अज्ञात-नाम) में द्वादशभुज यक्षी को त्रिनेत्र बताया गया है। यक्षी के आठ करों में चक्र और शेष चार में शक्ति, वज्र, वरदमुद्रा एवं पद्म प्रदर्शित हैं। यक्ष-यक्षी लक्षण में द्वादश-भुज चक्रेश्वरी के आठ हाथों में चक्र, दो में वज्र एवं शेष दो में मातुलिंग एवं वरदमुद्रा के प्रदर्शन का विधान है।[3] इस प्रकार स्पष्ट है कि दक्षिण भारतीय श्वेतांबर परम्परा पूरी तरह उत्तर भारत की दिगंबर परम्परा से प्रभावित है।

मूर्त्ति परम्परा

नवीं शती ई० में चक्रेश्वरी का मूर्त चित्रण प्रारम्भ हुआ। इनमें देवी अधिकांशतः मानव रूप में निरूपित गरुड वाहन तथा चक्र, शंख एवं गदा से युक्त है।

गुजरात-राजस्थान (क) स्वतन्त्र मूर्तियां—ल० दसवीं शती ई० की एक अष्टभुज मूर्ति राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली (६७.१५२) में सुरक्षित है। इसमें गरुडवाहना यक्षी की ऊपरी छह भुजाओं में चक्र और नीचे की दो भुजाओं में वरदमुद्रा एवं फल प्रदर्शित हैं।[4] सेवड़ी (पाली, राजस्थान) के महावीर मन्दिर (११वीं शती ई०) से मिली द्विभुज चक्रेश्वरी की एक मूर्ति के चरणों के समीप गरुड तथा अवशिष्ट एक दाहिने हाथ में चक्र उत्कीर्ण है।[5]

यहां उल्लेखनीय है कि जैन देवकुल में अप्रतिचक्रा नामवाली देवी का महाविद्या के रूप में भी उल्लेख है। जैन ग्रन्थों में चतुर्भुजा अप्रतिचक्रा के चारों हाथों में चक्र के प्रदर्शन का निर्देश है पर शिल्प में इसका पूरी तरह पालन न किये जाने के कारण गुजरात एवं राजस्थान में चक्रेश्वरी यक्षी एवं अप्रतिचक्रा महाविद्या के मध्य स्वरूपगत भेद स्थापित कर पाना अत्यन्त कठिन है। तथापि इन स्थलों पर महाविद्याओं की विशेष लोकप्रियता, देवी के चक्र, गदा एवं शंख आयुधों तथा उसके साथ रोहिणी, वैरोट्या, महामानसी एवं अच्छुप्ता महाविद्याओं की विद्यमानता के आधार पर उसकी पहचान महाविद्या से ही की गयी है।[6] लूणवसही की देवकुलिका १० के वितान पर चक्रेश्वरी की एक अष्टभुजी मूर्ति (१२३० ई०) है। देवी के आसन के समक्ष पक्षीरूप में गरुड बना है। देवी के करों में वरदमुद्रा, चक्र, व्याख्यान-मुद्रा, छल्ला, छल्ला, पद्मकलिका, चक्र एवं फल हैं।

(ख) जिन-संयुक्त मूर्तियां—इस क्षेत्र की छठीं से नवीं शती ई० तक की ऋषभ मूर्तियों में यक्षी के रूप में अम्बिका ही निरूपित है। नवीं शती ई० के बाद की श्वेतांबर मूर्तियों में भी यक्षी अधिकांशतः अम्बिका ही है। केवल कुछ ही श्वेतांबर मूर्तियों (१०वीं–१२वीं शती ई०) में चक्रेश्वरी उत्कीर्ण है। ऐसी मूर्तियां चन्द्रावती, विमलवसही (गर्भगृह एवं

---

१ शाह, यू० पी०, 'आइकानोग्राफी ऑव चक्रेश्वरी', ज०ओ०इं०, खं० २०, अं० ३, पृ० २९७, ३०६

२ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० १९७–९८   ३ वही, पृ० १९८

४ शर्मा, ब्रजेन्द्रनाथ, 'अनपब्लिश्ड जैन ब्रोन्जेज इन दि नेशनल म्यूजियम', ज०ओ०इं०, खं० १९, अं० ३, पृ० २७६

५ ढाकी, एम०ए०, 'सम अर्ली जैन टेम्पल्स इन वेस्टर्न इण्डिया', म०जै०वि०गो०जु०वा०, बम्बई, १९६८, पृ० ३३७–३८

६ कुम्भारिया के शान्तिनाथ मन्दिर के वितान के १६ महाविद्याओं के सामूहिक चित्रण में अप्रतिचक्रा की भुजाओं में वरदमुद्रा, चक्र, चक्र और शंख प्रदर्शित हैं। विमलवसही के रंगमण्डप के १६ महाविद्याओं के सामूहिक अंकन में अप्रतिचक्रा की तीन सुरक्षित भुजाओं में चक्र, चक्र एवं फल हैं।

देवकुलिका २१), प्रभास-पाटण एवं कैम्बे[1] से मिली हैं। इनमें गरुडवाहना यक्षी के दो हाथों में चक्र एवं शेष दो में शंख (या वज्र) एवं वरद-(या अभय-)मुद्रा प्रदर्शित हैं।[2] कुम्भारिया के शान्तिनाथ एवं महावीर मन्दिरों (११वीं शती ई०) के वितानों के मध्य के वीथिकाखण्डों में भी चतुर्भुजा चक्रेश्वरी की ललितमुद्रा में दो मूर्तियां हैं। गरुडवाहन केवल शान्तिनाथ मन्दिर की मूर्ति में ही उत्कीर्ण है, जहां यक्षी के हाथों में वरदमुद्रा, चक्र, चक्र एवं शंख प्रदर्शित हैं (चित्र १४)। महावीर मन्दिर की मूर्ति में यक्षी वरदमुद्रा, गदा, सनालपद्म एवं शंख (?) से युक्त है (चित्र १३)। लेख में यक्षी को 'वैष्णवी देवी' कहा गया है।

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि गुजरात एवं राजस्थान में ल० दसवीं शती ई० में चक्रेश्वरी की मूर्तियों का उत्कीर्णन प्रारम्भ हुआ। इनमें चक्रेश्वरी अधिकांशतः चतुर्भुजा है।[3] चक्रेश्वरी के साथ गरुडवाहन और चक्र एवं शंख का प्रदर्शन नियमित था।

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश (क) स्वतन्त्र मूर्तियां—चक्रेश्वरी की प्राचीनतम स्वतन्त्र मूर्ति इसी क्षेत्र से मिली है। त्रिभंग में खड़ी यह चतुर्भुज मूर्ति देवगढ़ के मन्दिर १२ (८६२ ई०) की भित्ति पर है। लेख में देवी को 'चक्रेश्वरी' कहा गया है। यक्षी के चारों हाथों में चक्र हैं। देवी का गरुडवाहन दाहिने पार्श्व में नमस्कार-मुद्रा में खड़ा है।[4] ल० दसवीं शती ई० की एक चतुर्भुज मूर्ति धुबेला राज्य संग्रहालय, नवगांव में भी सुरक्षित है। गरुडवाहना यक्षी के करों में वरदमुद्रा, चक्र, चक्र एवं शंख प्रदर्शित हैं। किरीटमुकुट से शोभित यक्षी के शीर्षभाग में एक लघु जिन आकृति उत्कीर्ण है।[5] समान विवरणों वाली दसवीं शती ई० की एक अन्य चतुर्भुज मूर्ति बिल्हारी (जबलपुर) से मिली है।[6]

दसवीं शती ई० में ही चक्रेश्वरी की चार से अधिक भुजाओं वाली मूर्तियां भी उत्कीर्ण हुईं। दो अष्टभुज मूर्तियां (१०वीं शती ई०) ग्यारसपुर के मालादेवी मन्दिर के शिखर पर उत्कीर्ण हैं। दोनों उदाहरणों में गरुडवाहना यक्षी ललित-मुद्रा में विराजमान है। दक्षिण शिखर की मूर्ति में यक्षी के सुरक्षित हाथों में छल्ला, वज्र, चक्र, चक्र, चक्र और शंख प्रदर्शित हैं। उत्तरी शिखर की दूसरी मूर्ति में यक्षी के अवशिष्ट करों में खड्ग, आम्रलुम्बि (?), चक्र, खेटक, शंख और गदा हैं। दसवीं शती ई० की एक दशभुजा मूर्ति पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा (डी ६) में है (चित्र ४४)। समभंग में खड़ी चक्रेश्वरी का गरुडवाहन पक्षी रूप में आसन के नीचे उत्कीर्ण है। यक्षी के नौ सुरक्षित करों में चक्र हैं। शीर्ष भाग में एक लघु जिन आकृति एवं पार्श्वों में दो स्त्री सेविकाएं आमूर्तित हैं। राज्य संग्रहालय, लखनऊ में सिरोनी खुर्द (ललितपुर) से मिली दसवीं शती ई० की एक दशभुजा मूर्ति (जे ८८३) है। किरीटमुकुट से शोभित गरुडवाहना चक्रेश्वरी के नौ सुरक्षित हाथों में व्याख्यान-मुद्रा, पद्म, खड्ग, तूणीर, चक्र, घण्टा, चक्र, पद्म एवं चाप प्रदर्शित हैं। ऊपरी भाग में उड्डीयमान आकृतियां भी उत्कीर्ण हैं।

खजुराहो से चक्रेश्वरी की ग्यारहवीं शती ई० की चार स्वतन्त्र मूर्तियां मिली हैं। किरीटमुकुट से शोभित गरुड-वाहना यक्षी एक उदाहरण में षड्भुज और शेष तीन में चतुर्भुज है। मन्दिर २७ (के २७.५०) की षड्भुज मूर्ति में यक्षी के हाथों में अभयमुद्रा, गदा, छल्ला, चक्र, पद्म एवं शंख प्रदर्शित हैं। दो चतुर्भुज मूर्तियों में चक्रेश्वरी अभयमुद्रा, गदा,

---

१ शाह, यू०पी०, पू०नि०, पृ० २८०–८१

२ विमलवसही के गर्भगृह की मूर्ति में वरदमुद्रा के स्थान पर वरदाक्ष प्रदर्शित है।

३ सेवड़ी के महावीर मन्दिर की मूर्ति में यक्षी द्विभुजा और राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली (६७.१५२) एवं लूणवसही की मूर्तियों में चतुर्भुजा है।

४ स्मरणीय है कि यक्षी की चारों भुजाओं में चक्र का प्रदर्शन देवी पर महाविद्या अप्रतिचक्रा का स्पष्ट प्रभाव दरशाता है।

५ दीक्षित, एस०के०, ए गाइड टु दि स्टेट म्यूजियम धुबेला (नवगांव), विन्ध्यप्रदेश, नवगांव, १९५७, पृ० १६–१७

६ अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, चित्रसंग्रह १०४.२

चक्र एवं शंख (या फल) से युक्त है।[1] शान्तिनाथ मन्दिर की उत्तरी भित्ति की मूर्ति में यक्षी वरदमुद्रा, चक्र, चक्र एवं शंख के साथ निरूपित है।

चार स्वतन्त्र मूर्तियों के अतिरिक्त दसवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य के भी उत्तरंगों पर भी चक्रेश्वरी की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। उत्तरंगों की मूर्तियों में किरीटमुकुट से सज्जित गरुडवाहना यक्षी चार से दस भुजाओं वाली हैं। तीन उत्तरंग क्रमशः पार्श्वनाथ, घण्टई एवं आदिनाथ मन्दिरों में हैं। खजुराहो में दसवीं शती ई० में ही चक्रेश्वरी की आठ और दस भुजाओं वाली मूर्तियां भी उत्कीर्ण हुईं। घण्टई मन्दिर (१० वीं शती ई०) के उत्तरंग की मूर्ति में अष्टभुजा यक्षी की भुजाओं में फल (?), घण्टा, चक्र, चक्र, चक्र, चक्र, धनुष (?) एवं कलश प्रदर्शित हैं। पार्श्वनाथ मन्दिर (१० वीं शती ई०) के उत्तरंग की मूर्ति में दशभुजा चक्रेश्वरी के करों में वरदमुद्रा, खड्ग, गदा, चक्र, पद्म (?), चक्र, कार्मुक, फलक, गदा और शंख निरूपित हैं। मन्दिर ११ के उत्तरंग की षड्भुज मूर्ति (११ वीं शती ई०) में चक्रेश्वरी के हाथों में वरदमुद्रा, चक्र, चक्र, चक्र, चक्र एवं शंख हैं। दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० के कुछ अन्य उदाहरणों में यक्षी चतुर्भुजा है (चित्र ५७)। इनमें यक्षी के ऊपरी करों में गदा और चक्र तथा नीचे के करों में अभय-(या वरद-) मुद्रा और शंख प्रदर्शित हैं।[2]

इन मूर्तियों के अध्ययन से स्पष्ट है कि खजुराहो में चक्रेश्वरी की चार से दस भुजाओं वाली मूर्तियां उत्कीर्ण हुईं, किन्तु यक्षी का चतुर्भुज स्वरूप ही सर्वाधिक लोकप्रिय था। गरुडवाहना यक्षी के साथ चक्र, शंख और गदा का अंकन नियमित था। बहुभुजी मूर्तियों में चक्रेश्वरी के अतिरिक्त करों में सामान्यतः खड्ग, खेटक, धनुष और पद्म प्रदर्शित हैं।

उत्तर भारत में चक्रेश्वरी की सर्वाधिक मूर्तियां देवगढ़ में उत्कीर्ण हुईं, और चक्रेश्वरी की प्राचीनतम ज्ञात मूर्ति भी यहीं से मिली है। नवीं-दसवीं शती ई० में चक्रेश्वरी की केवल चतुर्भुज मूर्तियां ही बनीं। ग्यारहवीं शती ई० में चक्रेश्वरी का चतुर्भुज के साथ ही षड्भुज, अष्टभुज, दशभुज एवं विंशतिभुज स्वरूपों में भी निरूपण हुआ। इस प्रकार चक्रेश्वरी की मूर्तियों के मूर्तिविज्ञानपरक विकास के अध्ययन की दृष्टि से भी देवगढ़ की मूर्तियां बड़े महत्व की हैं। खजुराहो के समान ही यहां भी चक्रेश्वरी की चतुर्भुज मूर्तियां ही सर्वाधिक संख्या में बनीं। किरीटमुकुट से अलंकृत गरुडवाहना यक्षी के करों में चक्र, शंख एवं गदा का नियमित अंकन हुआ है। बहुभुजी मूर्तियों में अतिरिक्त करों में सामान्यतः खड्ग, खेटक, परशु एवं वज्र प्रदर्शित हैं।

मन्दिर १२, ५ एवं ११ के उत्तरंगों पर चतुर्भुज चक्रेश्वरी की तीन मूर्तियां (१० वीं-११ वीं शती ई०) उत्कीर्ण हैं। इनमें यक्षी अभय-(या वरद-) मुद्रा, गदा, चक्र एवं शंख से युक्त है। मन्दिर १२ के अर्धमण्डप के स्तम्भ की एक चतुर्भुज मूर्ति (१०वीं शती ई०) में यक्षी स्थानक-मुद्रा में आमूर्तित है और उसकी भुजाओं में वरदमुद्रा, गदा, चक्र एवं शंख हैं। मन्दिर १, ४, १२ एवं २६ के आगे के स्तम्भों (११वीं-१२वीं शती ई०) पर भी चतुर्भुजा यक्षी की सात मूर्तियां हैं। इनमें भी यक्षी के करों में ऊपर वर्णित आयुध ही प्रदर्शित हैं। मन्दिर ४ की मूर्ति (११५० ई०) में यक्षी की अक्षमाला धारण किये एक भुजा से व्याख्यान-मुद्रा प्रदर्शित है। मन्दिर १ के बारहवीं शती ई० के स्तम्भों की दो मूर्तियों में यक्षी के तीन हाथों में चक्र और एक में शंख (या वरदमुद्रा) हैं। मन्दिर ९ के उत्तरंग की मूर्ति (११वीं शती ई०) में यक्षी के करों में वरदमुद्रा, गदा, चक्र एवं छल्ला हैं।

देवगढ़ में षड्भुज चक्रेश्वरी की केवल एक ही मूर्ति (११वीं शती ई०) है। यह मूर्ति मन्दिर १२ की दक्षिणी चहारदीवारी पर उत्कीर्ण है। गरुडवाहना यक्षी की भुजाओं में वरदमुद्रा, खड्ग, चक्र, चक्र, गदा एवं शंख प्रदर्शित हैं। अष्टभुजा चक्रेश्वरी की तीन मूर्तियां मिली हैं। एक मूर्ति (११वीं शती ई०) मन्दिर १ के पश्चिमी मानस्तम्भ पर उत्कीर्ण

---

१ एक मूर्ति आदिनाथ मन्दिर के उत्तरी अधिष्ठान पर है।

२ मन्दिर २२ की मूर्ति में निचली दाहिनी भुजा में मुद्रा के स्थान पर पद्म, आदिनाथ मन्दिर के उत्तरंग की मूर्ति में चक्र के स्थान पर पद्म एवं जैन धर्मशाला के समीप की मूर्ति में ऊपर की दोनों भुजाओं में दो चक्र प्रदर्शित हैं।

है। चक्रेश्वरी के हाथों में वरदमुद्रा, गदा, बाण, छल्ला, छल्ला, वज्र, चाप एवं शंख हैं। बारहवीं शती ई० की दो मूर्तियां क्रमशः मन्दिर १२ एवं १४ के समक्ष के मानस्तम्भों पर हैं। दोनों में स्थानक-मुद्रा में खड़ी यक्षी के समीप ही गरुड की मूर्तियां बनी हैं। मन्दिर १२ की मूर्ति में यक्षी ने खड्ग, अभयमुद्रा, चक्र, चक्र, खेटक, परशु एवं शंख धारण किया है। मन्दिर १४ की मूर्ति में चक्रेश्वरी दण्ड, खड्ग, अभयमुद्रा, चक्र, चक्र, चक्र, परशु एवं शंख से युक्त है। दशभुजा चक्रेश्वरी की भी केवल एक ही मूर्ति (मन्दिर ११—मानस्तम्भ, १०५९ ई०) है (चित्र ४५)। गरुड-वाहना यक्षी के करों में वरदमुद्रा, बाण, गदा, खड्ग, चक्र, चक्र, खेटक, वज्र, धनुष एवं शंख प्रदर्शित हैं।

देवगढ़ में विंशतिभुजा चक्रेश्वरी की तीन मूर्तियां (११वीं शती ई०) हैं। दो मूर्तियां स्थानीय साहू जैन संग्रहालय में सुरक्षित हैं और एक मूर्ति मन्दिर २ के समीप अरक्षित अवस्था में पड़ी है। मन्दिर २ के निरूपित उदाहरण में यक्षी की एकमात्र अवशिष्ट भुजा में चक्र प्रदर्शित है। साहू जैन संग्रहालय की एक मूर्ति में केवल सात भुजाएं ही सुरक्षित हैं, जिनमें से चार में चक्र और शेष तीन में वरदाक्ष, खेटक और शंख प्रदर्शित हैं। एक खण्डित भुजा के ऊपर गदा का भाग अवशिष्ट है। यक्षी के समीप दो उपासकों, चार चामरधारिणी सेविकाओं एवं पद्म धारण करनेवाले पुरुषों की मूर्तियां हैं। शीर्षभाग में एक ध्यानस्थ जिन मूर्ति उत्कीर्ण है जो दो खड्गासन जिन आकृतियों से वेष्टित है। परिकर में दो उड्डीयमान मालाधर युगलों एवं दो चतुर्भुज देवियों की मूर्तियां हैं। दाहिने पार्श्व की तीन सर्पफणों वाली देवी पद्मावती है। पद्मावती की भुजाओं में वरदमुद्रा, सनालपद्म, सनालपद्म एवं जलपात्र प्रदर्शित हैं। वाम पार्श्व में जटामुकुट से शोभित सरस्वती निरूपित है। सरस्वती की निचली भुजाओं में वीणा और ऊपरी में सनालपद्म एवं पुस्तक हैं। साहू जैन संग्रहालय की दूसरी मूर्ति में चक्रेश्वरी की सभी भुजाएं सुरक्षित हैं (चित्र ४६)। इस मूर्ति में गरुडवाहन (मानव) चतुर्भुज है। गरुड के नीचे के हाथ नमस्कार-मुद्रा में हैं और ऊपरी चक्रेश्वरी का भार वहन कर रहे हैं। धम्मिल्ल से शोभित चक्रेश्वरी के ऊपर उठे हुए ऊपरी दो हाथों में एक चक्र तथा शेष में चक्र, खड्ग, तूणीर (?), मुद्गर, चक्र, गदा, अक्षमाला, परशु, वज्र, शृंखलाबद्ध-घण्टा, खेटक, पताकायुक्त दण्ड, शंख, धनुष, चक्र, सर्प, शूल एवं चक्र प्रदर्शित हैं। अक्षमाला धारण करने वाला हाथ व्याख्यान-मुद्रा में है। चक्रेश्वरी के पार्श्वों में दो चामरधारिणी सेविकाएं और शीर्षभाग में उड्डीयमान मालाधरों एवं तीन जिनों की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। एक खण्डित विंशतिभुज मूर्ति गंधावल (देवास, म० प्र०) से भी मिली है[1] जिसके एक हाथ में चक्र एवं परिकर में पांच छोटी जिन मूर्तियां सुरक्षित हैं।

उपर्युक्त मूर्तियों के अध्ययन से स्पष्ट है कि देवगढ़ में चक्रेश्वरी को विशेष प्रतिष्ठा दी गई थी। इसी कारण चक्रेश्वरी के साथ में चामरधारिणी सेविकाओं, उड्डीयमान मालाधरों, गजों एवं एक उदाहरण में पद्मावती और सरस्वती को भी निरूपित किया गया। किन्तु दिगंबर परम्परा के अनुसार चक्रेश्वरी की द्वादशभुज मूर्ति देवगढ़ में नहीं उत्कीर्ण हुई।

(ख) जिन-संयुक्त मूर्तियां—जिन-संयुक्त मूर्तियों में गरुडवाहना यक्षी अधिकांशतः चतुर्भुजा और चक्र, शंख, गदा एवं अभय-(या वरद-) मुद्रा से युक्त है। बजरामठ (ग्यारसपुर, म० प्र०) की ऋषभ मूर्ति (१० वीं शती ई०) में गरुड-वाहना यक्षी के करों में यही उपादान प्रदर्शित हैं। खजुराहो की दसवीं से बारहवीं शती ई० की ३२ ऋषभ मूर्तियों में चक्रेश्वरी आमूर्तित है। ज्ञातव्य है कि इन सभी उदाहरणों में यक्ष वृषानन नहीं है, किन्तु यक्षी सर्वदा चक्रेश्वरी ही है। यक्षी का वाहन गरुड सभी उदाहरणों में उत्कीर्ण है।[2] दो उदाहरणों (११ वीं शती ई०) में यक्षी द्विभुजा है और उसके हाथों में अभयमुद्रा एवं चक्र प्रदर्शित हैं।[3] अन्य उदाहरणों में यक्षी चतुर्भुजा है। पार्श्वनाथ मन्दिर के गर्भगृह की मूर्ति में यक्षी अभयमुद्रा, गदा, चक्र एवं शंख से युक्त है। दो उदाहरणों में गदा के स्थान पर पद्म प्रदर्शित है।[4] दस उदाहरणों में

---

१ गुप्त, एस० पी० तथा शर्मा, बी० एन०, 'गंधावल और जैन मूर्तियां', अनेकान्त, वं० १९, अं० १–२, पृ० १२०

२ शान्तिनाथ संग्रहालय की एक मूर्ति (के ६२) में गरुड नहीं उत्कीर्ण है।

३ के ४४ एवं जार्डिन संग्रहालय

४ शान्तिनाथ संग्रहालय, के ४०, पुरातात्त्विक संग्रहालय, खजुराहो, १६६७

चक्रेश्वरी के ऊपरी दोनों हाथों में एक-एक चक्र है, और छह उदाहरणों में क्रमशः गदा एवं चक्र हैं। नीचे के हाथों में अभय-(या वरद-) मुद्रा एवं शंख (या फल या जलपात्र) प्रदर्शित हैं।[१] स्थानीय संग्रहालय की ग्यारहवीं शती ई० की एक ऋषभ मूर्ति की पीठिका पर कूलनायक के आकार की द्वादशभुजा चक्रेश्वरी आमूर्तित है। यक्षी की सभी भुजाएं भग्न हैं।

देवगढ़ की दसवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की कम से कम २० ऋषभ मूर्तियों में यक्षी चक्रेश्वरी है।[२] गरुडवाहना यक्षी अधिकांशतः किरीटमुकुट से शोभित है। दसवीं शती ई० की केवल दो ही ऋषभ मूर्तियों[३] में चक्रेश्वरी द्विभुजा है। इनमें यक्षी चक्र एवं शंख से युक्त है। अन्य मूर्तियों में चक्रेश्वरी चतुर्भुजा है। केवल मन्दिर ४ की मूर्ति (११वीं शती ई०) में चक्रेश्वरी षड्भुजा है और उसके सुरक्षित करों में वरदमुद्रा, गदा, चक्र, चक्र एवं शंख प्रदर्शित हैं। चतुर्भुजा यक्षी की भुजाओं में अभय-(या वरद-) मुद्रा, गदा या (या पद्म), चक्र एवं शंख (या कलश) हैं।

राज्य संग्रहालय, लखनऊ की २२ ऋषभ मूर्तियों में से केवल १० उदाहरणों (१० वीं-१२ वीं शती ई०) में गरुडवाहना चक्रेश्वरी आमूर्तित है। चक्रेश्वरी केवल एक मूर्ति (जे ८५६, ११ वीं शती ई०) में द्विभुजा है और उसकी भुजाओं में चक्र एवं शंख प्रदर्शित हैं। अधिकांश मूर्तियों में यक्षी चतुर्भुजा है और उसके करों में अभयमुद्रा, गदा (या चक्र), चक्र एवं शंख हैं।[४] एक मूर्ति (बी ३२२) में यक्षी की चारों भुजाओं में चक्र हैं। उरई की एक मूर्ति (१६.०.१७८, ११ वीं शती ई०) में चक्रेश्वरी अष्टभुजा है (चित्र ७)। जटामुकुट से शोभित चक्रेश्वरी की सुरक्षित भुजाओं में गदा, अभय-मुद्रा, वज्र, चक्र, सर्प (?) एवं धनुष (?) प्रदर्शित हैं। पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा की ल० दसवीं शती ई० की एक ऋषभ मूर्ति (बी २१) में गरुडवाहना चक्रेश्वरी चतुर्भुजा है और उसकी भुजाओं में अभयमुद्रा, चक्र, चक्र एवं शंख हैं।

उत्तरप्रदेश एवं मध्यप्रदेश की दिगंबर परम्परा की चक्रेश्वरी मूर्तियों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि इस क्षेत्र में चक्रेश्वरी की दो[५] से बीस भुजाओं वाली मूर्तियां उत्कीर्ण हुई। ये मूर्तियां नवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की हैं। स्वतन्त्र एवं जिन-संश्लिष्ट मूर्तियों में चक्रेश्वरी का चतुर्भुज स्वरूप ही सर्वाधिक लोकप्रिय था। द्विभुज, षड्भुज, अष्टभुज, दशभुज एवं विंशतिभुज रूपों में भी पर्याप्त मूर्तियां बनीं जिनका दिगंबर ग्रन्थों में अनुल्लेख है। चक्रेश्वरी की सर्वाधिक स्वतन्त्र एवं जिन-संश्लिष्ट मूर्तियां इसी क्षेत्र में उत्कीर्ण हुई। चक्रेश्वरी के साथ गरुडवाहन एवं चक्र, शंख, गदा और अभय-(या वरद-) मुद्रा का प्रदर्शन दसवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की मूर्तियों में नियमित था। दिगंबर ग्रन्थों के निर्देशों का पालन केवल गरुडवाहन एवं चक्र और वरदमुद्रा के प्रदर्शन में ही किया गया है।

बिहार-उड़ीसा-बंगाल—इस क्षेत्र में केवल उड़ीसा से चक्रेश्वरी की मूर्तियां (११वीं-१२वीं शती ई०) मिली हैं जो नवमुनि एवं बारभुजी गुफाओं में उत्कीर्ण हैं। इनमें गरुडवाहना यक्षी दस और बारह भुजाओं वाली हैं। नवमुनि गुफा की मूर्ति में दशभुजा यक्षी योगासन-मुद्रा में बैठी और जटामुकुट से शोभित है। यक्षी के सात हाथों में चक्र तथा दो में खेटक और अक्षमाला हैं। एक भुजा योगमुद्रा में गोद में स्थित है।[६] बारभुजी गुफा की द्वादशभुज मूर्ति में यक्षी के छह दाहिने हाथों में वरदमुद्रा, वज्र, चक्र, चक्र, अक्षमाला एवं खड्ग और तीन अवशिष्ट वाम भुजाओं में खेटक, चक्र तथा

---

१ दो उदाहरणों में चक्र (के ७९) एवं छल्ला (पुरातात्त्विक संग्रहालय, खजुराहो १६६७) भी प्रदर्शित हैं।

२ खजुराहो के विपरीत देवगढ़ की ऋषभ मूर्तियों में चार उदाहरणों में अम्बिका एवं पन्द्रह उदाहरणों में सामान्य लक्षणों वाली यक्षी भी आमूर्तित हैं।

३ मन्दिर २ और १९। मन्दिर १६ के मानस्तम्भ (१२ वीं शती ई०) की मूर्ति में भी यक्षी द्विभुजा है और उसकी दोनों भुजाओं में चक्र स्थित हैं।

४ जे ८८७, जे ७८९, ६६.५९, १२.०.७५

५ द्विभुजा चक्रेश्वरी का निरूपण मुख्यतः देवगढ़, खजुराहो एवं राज्य संग्रहालय, लखनऊ की जिन-संयुक्त मूर्तियों में ही हुआ है। छह से बीस भुजाओं वाली मूर्तियां भी मुख्यतः इन्हीं स्थलों से मिली हैं।

६ मित्रा, देबला, बु०क०, पृ० १२८

सनाल पद्म प्रदर्शित हैं।[1] बारभुजी गुफा की दूसरी द्वादशभुज मूर्ति में चक्रेश्वरी के तीन दक्षिण करों में वरदमुद्रा, खड्ग और चक्र तथा तीन वाम करों में खेटक, घण्टा (?) एवं चक्र प्रदर्शित हैं। चौथी बायीं भुजा वक्षःस्थल के समक्ष है। शेष भुजाएं खण्डित हैं।[2] उपर्युक्त मूर्तियों में अन्यत्र विशेष लोकप्रिय गदा एवं शंख का प्रदर्शन नहीं प्राप्त होता है। गदा एवं शंख के स्थान पर खड्ग और खेटक का प्रदर्शन हुआ है।

दक्षिण भारत—दक्षिण भारत की मूर्तियों में चक्रेश्वरी का गरुडवाहन कभी-कभी नहीं प्रदर्शित है, पर चक्र का प्रदर्शन नियमित था। यक्षी की चतुर्भुज, षड्भुज और द्वादशभुज मूर्तियां मिली हैं। पुडुकोट्टा की दसवीं शती ई० की एक ऋषभ मूर्ति में चतुर्भुज यक्षी के हाथों में फल, चक्र, शंख एवं अभयमुद्रा प्रदर्शित हैं।[3] चतुर्भुजा चक्रेश्वरी की एक स्वतन्त्र मूर्ति (११वीं-१२वीं शती ई०) कम्बद पहाड़ी (कर्नाटक) के शान्तिनाथ बस्ती के नवरंग से मिली है।[4] गरुडवाहना यक्षी के करों में अभयमुद्रा, चक्र, चक्र एवं पद्म (या फल) प्रदर्शित हैं। एक चतुर्भुज मूर्ति जिननाथपुर (कर्नाटक) के जैन मन्दिर की दक्षिणी भित्ति पर है। गरुडवाहना चक्रेश्वरी की ऊपरी भुजाओं में चक्र और निचली में पद्म एवं वरदमुद्रा प्रदर्शित हैं। इसी स्थल की एक अन्य मूर्ति में गरुडवाहना चक्रेश्वरी षड्भुज है। यक्षी की भुजाओं में वरदमुद्रा, वज्र, चक्र, चक्र, वज्र एवं पद्म प्रदर्शित हैं। समान विवरणों वाली एक अन्य षड्भुज मूर्ति श्रवणबेलगोला (कर्नाटक) के मण्डोर बस्ती की ऋषभ मूर्ति में उत्कीर्ण है।[5]

बम्बई के सेण्ट जेवियर कालेज के इण्डियन हिस्टारिकल रिसर्च इन्स्टिट्यूट संग्रहालय की एक ऋषभ मूर्ति में द्वादशभुज चक्रेश्वरी उत्कीर्ण है। त्रिभंग में खड़ी यक्षी के आठ हाथों में चक्र, दो में वज्र एवं एक में पद्म प्रदर्शित हैं। एक भुजा भग्न है। द्वादशभुज यक्षी की समान विवरणों वाली तीन अन्य मूर्तियां कर्नाटक के विभिन्न स्थलों से मिली हैं।[6] द्वादशभुज चक्रेश्वरी की एक मूर्ति एलोरा (महाराष्ट्र) की गुफा ३० में है। गरुडवाहना चक्रेश्वरी की पांच अवशिष्ट दाहिनी भुजाओं में पद्म, चक्र, शंख, चक्र एवं गदा हैं। यक्षी की केवल एक वाम भुजा सुरक्षित है, जिसमें खड्ग है।

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि दक्षिण भारत में चक्रेश्वरी के साथ शंख एवं गदा के स्थान पर वज्र एवं पद्म का प्रदर्शन लोकप्रिय था। द्वादशभुजा चक्रेश्वरी के निरूपण में सामान्यतः दक्षिण भारत के यक्ष-यक्षी-लक्षण के निर्देशों का निर्वाह किया गया है।[7]

विश्लेषण

सम्पूर्ण अध्ययन से स्पष्ट है कि उत्तर भारत में चक्रेश्वरी विशेष लोकप्रिय थी। अम्बिका के बाद चक्रेश्वरी की ही सर्वाधिक मूर्तियां मिली हैं। चक्रेश्वरी की गणना जैन देवकुल की चार प्रमुख यक्षियों में की गई है। अन्य प्रमुख यक्षियां अम्बिका, पद्मावती एवं सिद्धायिका हैं जो क्रमशः नेमि, पार्श्व एवं महावीर की यक्षियां हैं। चक्रेश्वरी का उत्कीर्णन नवीं शती ई० में प्रारम्भ हुआ। देवगढ़ के मन्दिर १२ की मूर्ति (८६२ ई०) चक्रेश्वरी की प्राचीनतम मूर्ति है। पर अन्य स्थलों पर चक्रेश्वरी की मूर्तियां दसवीं शती ई० में उत्कीर्ण हुईं। चक्रेश्वरी की सर्वाधिक मूर्तियां दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० में बनीं। इसी समय चक्रेश्वरी के स्वरूप में सर्वाधिक मूर्तिविज्ञानपरक विकास हुआ और उसकी द्विभुज से विंशतिभुज मूर्तियां उत्कीर्ण हुईं। श्वेतांबर स्थलों पर चक्रेश्वरी का शास्त्र-परम्परा से अलग चतुर्भुज स्वरूप में निरूपण ही लोकप्रिय था। स्मरणीय है कि श्वेतांबर ग्रन्थों में चक्रेश्वरी के अष्टभुज एवं द्वादशभुज स्वरूपों का ही उल्लेख है। दिगंबर स्थलों पर

---

१ वही, पृ० ११०

२ वही, पृ० १११

३ बाल सुब्रह्मण्यम, एस० आर० तथा राजू, वी० वी०, 'जैन वेस्टिजेज इन दि पुडुकोट्टा स्टेट', क्वा०ज०मै०सो०, खं० २४, अं० ३, पृ० २१३-१४

४ शाह, यू०पी०, यू०जि०, पृ० २९१

५ वही, पृ० २९२

६ वही, पृ० २९७-९८

७ मूर्तियों में मातुलिंग के स्थान पर पद्म प्रदर्शित है।

चक्रेश्वरी की द्विभुज से विंशतिभुज मूर्तियां बनीं।[1] पर सर्वाधिक मूर्तियों में चक्रेश्वरी चतुर्भुजा ही है। चक्रेश्वरी के निरूपण में सर्वाधिक स्वरूपगत विविधता दिगंबर स्थलों पर ही दृष्टिगत होती है। सभी क्षेत्रों की मूर्तियों में गरुडवाहन (मानवरूप में) एवं चक्र का नियमित प्रदर्शन हुआ है जो जैन ग्रन्थों के निर्देशों का पालन है। ग्रन्थों के निर्देशों के विपरीत उत्तरप्रदेश एवं मध्यप्रदेश में गदा और शंख, गुजरात एवं राजस्थान में एक भुजा में शंख और दो भुजाओं में चक्र तथा उड़ीसा में खड्ग और खेटक का प्रदर्शन लोकप्रिय था।

(२) महायक्ष

शास्त्रीय परम्परा

महायक्ष जिन अजितनाथ का यक्ष है। दोनों परम्परा के ग्रन्थों में महायक्ष को गजारूढ़, चतुर्मुख एवं अष्टभुज कहा गया है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका में गजारूढ़ महायक्ष की दाहिनी भुजाओं में वरदमुद्रा, मुद्गर, अक्षमाला, पाश और बायीं में मातुलिंग अभयमुद्रा, अंकुश एवं शक्ति का उल्लेख है।[2] अन्य श्वेतांबर ग्रन्थों में भी इन्हीं आयुधों के नाम हैं।[3]

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह में गजारूढ़ महायक्ष के आयुधों का उल्लेख नहीं है।[4] प्रतिष्ठासारोद्धार के अनुसार महायक्ष के दाहिने हाथों में खड्ग (निस्त्रिंश), दण्ड, परशु एवं वरदमुद्रा और बायें में चक्र, त्रिशूल, पद्म और अंकुश होने चाहिए।[5] अपराजितपृच्छा में गजारूढ़ महायक्ष की आठ भुजाओं में श्वेतांबर परम्परा के अनुरूप वरदमुद्रा, अभयमुद्रा, मुद्गर, अक्षमाला, पाश, अंकुश, शक्ति एवं मातुलिंग के प्रदर्शन का विधान है।[6]

महायक्ष के साथ गजवाहन और अंकुश का प्रदर्शन हिन्दू देव इन्द्र का,[7] यक्ष का चतुर्मुख होना ब्रह्मा का तथा परशु और त्रिशूल धारण करना शिव का प्रभाव हो सकता है।

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर परम्परा में सर्प पर आसीन और गज लांछन से युक्त अष्टभुज महायक्ष के करों में खड्ग, दण्ड, अंकुश, परशु, त्रिशूल, चक्र, पद्म एवं वरदमुद्रा के प्रदर्शन का निर्देश है। श्वेतांबर परम्परा के दोनों ग्रन्थों में भी अष्टभुज एवं चतुर्भुज महायक्ष के करों में उपर्युक्त आयुधों का ही उल्लेख है। यक्ष-यक्षी-लक्षण में महायक्ष का

---

१ दिगंबर स्थलों से चक्रेश्वरी की द्विभुज, चतुर्भुज, षड्भुज, अष्टभुज, दशभुज, द्वादशभुज एवं विंशतिभुज मूर्तियां मिली हैं।

२ महायक्षाभिधानं यक्षेश्वरं चतुर्मुखं श्यामवर्णं मातंगवाहनमष्टपाणिं वरदमुद्गराक्षसूत्रपाशान्वितदक्षिणपाणिं बीजपूरकाभयांकुशशक्तियुक्तवामपाणिपल्लवं चेति। निर्वाणकलिका १८.२
त्रि०श०पु०च० २.३.८४२–४४; पद्मानन्दमहाकाव्यः परिशिष्ट—अजितस्वामीचरित्र १९–२०; मन्त्राधिराजकल्प ३.२७; आचारदिनकर ३४, पृ० १७३

३ देवतामूर्तिप्रकरण में महायक्ष का वाहन हंस है और एक भुजा में अक्षमाला के स्थान पर वज्र प्रदर्शित है। देवतामूर्तिप्रकरण ७.२०

४ अजितस्य महायक्षो हेमवर्णश्चतुर्मुखः।
गजेन्द्रवाहनारूढः स्वोचिताष्टभुजायुधः॥ प्रतिष्ठासारसंग्रह ५.१७

५ चक्रत्रिशूलकमलांकुशवामहस्तो निस्त्रिंशदण्डपरशूद्यवरान्यपाणिः। प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१३०

६ श्यामोऽष्टबाहुर्हस्तिस्थो वराभयमुद्गराः।
अक्षपाशाङ्कुशाः शक्तिर्मातुलिङ्गं तथैव च॥ अपराजितपृच्छा २२१.४४

७ स्मरणीय है कि अजितनाथ का लांछन भी गज ही है।

वाहन गज और अज्ञातनाम दूसरे ग्रन्थ में सर्प कहा गया है।[1] इस प्रकार स्पष्ट है कि दक्षिण भारतीय परम्परा महायक्ष के निरूपण में उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा से सहमत है। महायक्ष के साथ सर्पवाहन का उल्लेख दक्षिण भारतीय परम्परा की नवीनता है।

मूर्ति-परम्परा

महायक्ष की एक भी स्वतन्त्र मूर्ति नहीं मिली है। केवल देवगढ़ एवं खजुराहो की जिन-संश्लिष्ट मूर्तियों (११वीं-१२वीं शती ई०) में ही अजितनाथ के साथ यक्ष का अंकन प्राप्त होता है (चित्र १५)। पर किसी भी उदाहरण में यक्ष परम्परा विहित लक्षणों से युक्त नहीं है। सभी मूर्तियों में द्विभुज यक्ष सामान्य लक्षणों वाला है जिसके हाथों में अभयमुद्रा एवं फल (या कलश) प्रदर्शित हैं।

(२) अजिता (या रोहिणी) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

जिन अजितनाथ की यक्षी को श्वेतांबर परम्परा में अजिता (या अजितबला या विजया)[2] और दिगंबर परम्परा में रोहिणी नाम दिया गया है। दोनों परम्पराओं में चतुर्भुजा यक्षी को लोहासन पर विराजमान बताया गया है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका में लोहासन पर विराजमान चतुर्भुजा अजिता के दाहिने हाथों में वरदमुद्रा एवं पाश और बायें हाथों में अंकुश एवं फल के प्रदर्शन का विधान है।[3] अन्य ग्रन्थों में भी उपर्युक्त लक्षणों के ही उल्लेख हैं।[4] आचारदिनकर एवं देवतामूर्तिप्रकरण में यक्षी के वाहन के रूप में लोहासन के स्थान पर क्रमशः गाय और गोधा का उल्लेख है।[5]

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह में लोहासन पर विराजमान चतुर्भुजा रोहिणी के हाथों में वरदमुद्रा, अभयमुद्रा, शंख एवं चक्र के अंकन का निर्देश है।[6] अन्य ग्रन्थों में भी यही विवरण प्राप्त होता है।[7]

इस प्रकार दोनों परम्पराओं में केवल यक्षी के नामों एवं आयुधों के सन्दर्भ में ही भिन्नता प्राप्त होती है। श्वेतांबर परम्परा में अजिता के मुख्य आयुध पाश एवं अंकुश, और दिगंबर परम्परा में रोहिणी के मुख्य आयुध चक्र एवं शंख हैं। यक्षी का अजिता नाम सम्भवतः उसके जिन (अजितनाथ) से तथा रोहिणी नाम प्रथम महाविद्या रोहिणी से ग्रहण किया गया है।[8]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर परम्परा के अनुसार चतुर्भुजा यक्षी के ऊपरी हाथों में चक्र और नीचे के हाथों में अभयमुद्रा और कटकमुद्रा होने चाहिए। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में मकरवाहना चतुर्भुजा यक्षी के करों में वज्र, अंकुश, कटार (शंकु) एवं पद्म के प्रदर्शन का निर्देश है। यक्ष-यक्षी-लक्षण में धातु निर्मित आसन पर विराजमान यक्षी के

---

१ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० १९८ २ मन्त्राधिराजकल्प

३ ""समुत्पन्नामजिताभिधानां यक्षिणीं गौरवर्णां लोहासनाधिरूढां चतुर्भुजां वरदपाशाधिष्ठितदक्षिणकरां बीजपूरकांकुश-युक्तवामकरां चेति ॥ निर्वाणकलिका १८.२

४ त्रि०श०पु०च० २.३.८४५-४६; पद्मानन्दमहाकाव्य : परिशिष्ट-अजितस्वामीचरित्र २१-२२; मन्त्राधिराजकल्प ३.५२

५ आचारदिनकर ३४, पृ० १७६; देवतामूर्तिप्रकरण ७.२१

६ देवी लोहासना रोहिण्याख्या चतुर्भुजा।
वरदाभयहस्ताब्जा शंखचक्रोज्ज्वलायुधा ॥ प्रतिष्ठासारसंग्रह ५.१८

७ प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१५७; प्रतिष्ठातिलकम् ७.२, पृ० ३४१; अपराजितपृच्छा २२१.१६

८ महाविद्या रोहिणी की एक भुजा में शंख भी प्रदर्शित है।

हाथों में वरदमुद्रा, अभयमुद्रा, शंख एवं चक्र का उल्लेख है।[1] इस प्रकार उत्तर और दक्षिण भारत के ग्रन्थों में चक्र, शंख, अंकुश एवं अभय-(या वरद-) मुद्रा के प्रदर्शन में समानता प्राप्त होती है। यक्ष-यक्षी-लक्षण का विवरण पूरी तरह प्रतिष्ठासारसंग्रह के समान है।

मूर्ति-परम्परा

गुजरात-राजस्थान—इस क्षेत्र की अजितनाथ मूर्तियों में यक्ष-यक्षी का चित्रण नहीं प्राप्त होता है। पर आबू, कुम्भारिया, तारंगा, सादरी, घाणेराव जैसे श्वेतांबर स्थलों पर दो ऊर्ध्व करों में अंकुश एवं पाश धारण करने वाली चतुर्भुजा देवी का निरूपण विशेष लोकप्रिय था। देवी के निचले करों में वरद-(या अभय-) मुद्रा एवं मातुलिंग (या जलपात्र) प्रदर्शित हैं। देवी का वाहन कभी गज और कभी सिंह है। देवी की सम्भावित पहचान अजिता से की जा सकती है।[2]

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश—(क) स्वतन्त्र मूर्तियां—मालादेवी मन्दिर (ग्यारसपुर, विदिशा) एवं देवगढ़ से रोहिणी की दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० की तीन मूर्तियां मिली हैं। मालादेवी मन्दिर की मूर्ति (१० वीं शती ई०) उत्तरी मण्डप के अधिष्ठान पर उत्कीर्ण है। इसमें द्वादशभुजा रोहिणी ललितमुद्रा में लोहासन पर विराजमान है। लोहासन के नीचे एक अस्पष्ट सी पशु आकृति (सम्भवतः गज-मस्तक) उत्कीर्ण है। यक्षी के छह अवशिष्ट हाथों में पद्म, वज्र, चक्र, शंख, पुष्प और पद्म प्रदर्शित हैं। देवगढ़ में रोहिणी की दो मूर्तियां हैं। एक मूर्ति (१०५९ ई०) मन्दिर ११ के सामने के स्तम्भ पर है (चित्र ४७)। इसमें अष्टभुजा रोहिणी ललितमुद्रा में भद्रासन पर विराजमान है। आसन के नीचे गोवाहन उत्कीर्ण है। रोहिणी वरदमुद्रा, अंकुश, बाण, चक्र, पाश, धनुष, शूल एवं फल से युक्त है। दूसरी मूर्ति (११वीं शती ई०) मन्दिर १२ के अर्धमण्डप के समीप के स्तम्भ पर है। इसमें गोवाहना रोहिणी चतुर्भुजा है और उसकी भुजाओं में वरदमुद्रा, बाण, धनुष एवं जलपात्र हैं।[3]

(ख) जिन-संयुक्त मूर्तियां—जिन-संयुक्त मूर्तियों में यक्षी का अपने विशिष्ट स्वतन्त्र स्वरूप में निरूपण नहीं प्राप्त होता। देवगढ़ एवं खजुराहो की अजितनाथ की मूर्तियों में सामान्य लक्षणों वाली द्विभुजा यक्षी अभयमुद्रा (या खड्ग) एवं फल (या जलपात्र) से युक्त है।

बिहार-उड़ीसा-बंगाल—इस क्षेत्र में केवल उड़ीसा की नवमुनि एवं बारभुजी गुफाओं से ही रोहिणी की मूर्तियां (११वीं-१२वीं शती ई०) मिली हैं। नवमुनि गुफा की मूर्ति में अजित की यक्षी चतुर्भुजा है और उसका वाहन गज है। यक्षी के हाथों में अभयमुद्रा, वज्र, अंकुश और तीन कांटे वाली कोई वस्तु प्रदर्शित हैं। किरीटमुकुट से शोभित यक्षी के ललाट पर तीसरा नेत्र उत्कीर्ण है। यक्षी के निरूपण में गजवाहन एवं वज्र और अंकुश का प्रदर्शन हिन्दू इन्द्राणी (मातृका) का प्रभाव है।[4] बारभुजी गुफा में अजित के साथ द्वादशभुजा रोहिणी आमूर्तित है। वृषभवाहना रोहिणी की अवशिष्ट दाहिनी भुजाओं में वरदमुद्रा, शूल, बाण एवं खड्ग और बायीं में पाश (?), धनुष, हल, खेटक, सनाल पद्म एवं घण्टा (?) प्रदर्शित हैं। यक्षी की एक बायीं भुजा वक्षःस्थल के समक्ष स्थित है।[5] यक्षी के साथ वृषभवाहन एवं धनुष और बाण का प्रदर्शन रोहिणी महाविद्या का प्रभाव है। बारभुजी गुफा की एक दूसरी मूर्ति में रोहिणी अष्टभुजा है। वृषभवाहना यक्षी के शीर्ष भाग में गज-लांछन-युक्त अजितनाथ की मूर्ति उत्कीर्ण है। रोहिणी के दक्षिण करों में वरदमुद्रा, पताका,

---

१ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० १९८

२ श्वेतांबर स्थलों पर महाविद्याओं की विशेष लोकप्रियता, यक्षियों की स्वतन्त्र मूर्तियों की अल्पता एवं अजितनाथ की मूर्तियों में यक्ष-यक्षी का न उत्कीर्ण किया जाना, इस पहचान में बाधक हैं।

३ देवगढ़ की मूर्तियों पर श्वेतांबर परम्परा की महाविद्या रोहिणी का प्रभाव है। गोवाहना रोहिणी महाविद्या की भुजाओं में बाण, अक्षमाला, धनुष एवं शंख प्रदर्शित हैं।

४ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १२८ ५ वही, पृ० १३०

अंकुश और चक्र एवं वाम करों में शंख (?), अक्षपात्र, वृक्ष की टहनी और चक्र हैं।[१] नवमुनि एवं बारभुजी गुफाओं की मूर्तियों के विवरणों से स्पष्ट है कि इस क्षेत्र में रोहिणी की लाक्षणिक विशेषताएं स्थिर नहीं हो पायी थीं।

विश्लेषण

सम्पूर्ण अध्ययन से स्पष्ट है कि ल० दसवीं शती ई० में यक्षी की स्वतन्त्र मूर्तियों का उत्कीर्णन प्रारम्भ हुआ, जिसके उदाहरण ग्यारसपुर (मालादेवी मन्दिर), देवगढ़ एवं उड़ीसा में नवमुनि और बारभुजी गुफाओं से मिले हैं। दिगंबर स्थलों की इन मूर्तियों में रोहिणी के निरूपण में अधिकांशतः श्वेतांबर महाविद्या रोहिणी की विशेषताएं ग्रहण की गयीं। केवल मालादेवी मन्दिर की मूर्ति में ही वाहन और आयुधों के सन्दर्भ में दिगंबर परम्परा का निर्वाह किया गया है।

(३) त्रिमुख यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

त्रिमुख जिन सम्भवनाथ का यक्ष है। दोनों परम्पराओं में उसे तीन मुखों, तीन नेत्रों और छह भुजाओं वाला तथा मयूरवाहन से युक्त बताया गया है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका में त्रिमुख यक्ष के दाहिने हाथों में नकुल, गदा एवं अभयमुद्रा और बायें में फल, सर्प एवं अक्षमाला का उल्लेख है।[२] अन्य ग्रन्थों में भी इन्हीं आयुधों की चर्चा है।[३] मन्त्राधिराजकल्प में त्रिमुख यक्ष का वाहन मयूर के स्थान पर सर्प है।[४] आचारदिनकर के अनुसार यक्ष नौ नेत्रों वाला (नवाक्ष) है।[५]

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह में आयुधों का अनुल्लेख है।[६] प्रतिष्ठासारोद्धार में त्रिमुख यक्ष के दाहिने हाथों में दण्ड, त्रिशूल एवं कटार (शितकर्तृका), और बायें में चक्र, खड्ग एवं अंकुश दिये गये हैं।[७] अपराजितपृच्छा यक्ष के करों में परशु, अक्षमाला, गदा, चक्र, शंख और वरदमुद्रा का उल्लेख करता है।[८]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर परम्परा के अनुसार मयूर पर आरूढ़ त्रिमुख यक्ष षड्भुज है और उसकी दाहिनी भुजाओं में त्रिशूल, पाश (या वज्र) एवं अभयमुद्रा, और बायीं में खड्ग, अंकुश एवं पुस्तक (? या खुली हुई हथेली) रहते हैं। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ के अनुसार वीरमर्कट पर आरूढ़ यक्ष के करों में खड्ग, खेटक, कटार (कट्टि), चक्र, त्रिशूल एवं दण्ड होने चाहिये। यक्ष-यक्षी-लक्षण में तीन मुखों एवं नेत्रों वाले यक्ष का वाहन मयूर है और उसके

---

१ वही, पृ० १३३

२ ""त्रिमुखयक्षेश्वरं त्रिमुखं त्रिनेत्रं श्यामवर्णं मयूरवाहनं षड्भुजं नकुलगदाभययुक्तदक्षिणपाणिं मातुलिंगनागाक्षसूत्रान्वितवामहस्तं चेति। निर्वाणकलिका १८.३

३ त्रि०श०पु०च० ३.१.३८५-८६; पद्मानन्दमहाकाव्य : परिशिष्ट-सम्भवनाथचरित्र १७–१८

४ सर्पासनस्थितिरयं त्रिमुखो मदीयम्। मन्त्राधिराजकल्प ३.२८

५ आचारदिनकर ३४, पृ० १७३

६ षड्भुजस्त्रिमुखोयक्षस्त्रिनेत्र शिखिवाहनः।
श्यामलांगो विनीतात्मा सम्भवं जिनमाश्रितः॥ प्रतिष्ठासारसंग्रह ५.१९

७ चक्रासिसृण्युपगसव्यसयोन्यहस्तैर्दंडत्रिशूलमुपयन् शितकर्तृकां च।
वाजिध्वजप्रभुनतः शिखिगोंऽजनाभस्त्र्यक्षः प्रतीच्छतु बलिं त्रिमुखाख्ययक्षः॥ प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१३१
द्रष्टव्य, प्रतिष्ठातिलकम् ७.३, पृ० ३३२

८ मयूरस्थस्त्रिनेत्रश्च त्रिवक्त्रः श्यामवर्णकः।
परशुरक्ष गदा चक्र शंखा वरश्च षड्भुजः॥ अपराजितपृच्छा २२१.४५

हाथों में चक्र, खड्ग, वज्र, त्रिशूल, अंकुश एवं शक्तिक (शस्त्र) के प्रदर्शन का निर्देश है।[1] इस प्रकार स्पष्ट है कि दक्षिण भारत के श्वेतांबर एवं दिगंबर ग्रन्थों के विवरणों में एकरूपता है। साथ ही उन पर उत्तर भारत के दिगंबर ग्रन्थों का प्रभाव भी दृष्टिगत होता है।

मूर्ति-परम्परा

त्रिमुख यक्ष की एक भी स्वतन्त्र मूर्ति नहीं मिली है। सम्भवनाथ की मूर्तियों में भी पारम्परिक यक्ष का उत्कीर्णन नहीं हुआ है। यक्ष का कोई स्वतन्त्र स्वरूप भी नियत नहीं हो सका था। सामान्य लक्षणों वाला यक्ष सामान्यतः द्विभुज है।[2] देवगढ़ की छह मूर्तियों (१०वीं-१२वीं शती ई०) में द्विभुज यक्ष अभयमुद्रा[3] एवं फल (या कलश) के साथ तथा मन्दिर १५ और ३० की दो चतुर्भुज मूर्तियों (११वीं-१२वीं शती ई०) में वरद-(या अभय-) मुद्रा, गदा, पुस्तक (या पद्म) और फल (या कलश) के साथ निरूपित है। खजुराहो की दो मूर्तियों[4] (११ वीं-१२ वीं शती ई०) में द्विभुज यक्ष के हाथों में पात्र और धन का थैला (या मातुलिंग) हैं।

(३) दुरितारी (या प्रज्ञप्ति) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

दुरितारी (या प्रज्ञप्ति) जिन सम्भवनाथ की यक्षी है। श्वेतांबर परम्परा में इसे दुरितारी और दिगंबर परम्परा में प्रज्ञप्ति नामों से सम्बोधित किया गया है। श्वेतांबर परम्परा में यक्षी चतुर्भुजा और दिगंबर परम्परा में षड्भुजा है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका में मेषवाहना दुरितारी के दाहिने हाथों में वरदमुद्रा और अक्षमाला तथा बायें में फल और अभयमुद्रा हैं।[5] त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र[6] तथा पद्मानन्दमहाकाव्य[7] में फल के स्थान पर सर्प का उल्लेख है। परवर्ती ग्रन्थों में यक्षी के वाहन के सन्दर्भ में पर्याप्त भिन्नता प्राप्त होती है। पद्मानन्दमहाकाव्य में वाहन के रूप में छाग (अज), मन्त्राधिराजकल्प में मयूर[8] और देवतामूर्तिप्रकरण में महिष[9] का उल्लेख है।

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह में षड्भुजा यक्षी का वाहन पक्षी है। ग्रन्थ में प्रज्ञप्ति की केवल चार ही भुजाओं के आयुधों—अर्द्धेन्दु, परशु, फल एवं वरदमुद्रा—का उल्लेख है।[10] प्रतिष्ठासारोद्धार में पक्षीवाहना प्रज्ञप्ति के करों

---

१ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० १९८

२ केवल देवगढ़ की दो मूर्तियों में यक्ष चतुर्भुज और स्वतन्त्र लक्षणों वाला है।

३ मन्दिर १७ और १९ की दो मूर्तियों (११ वीं शती ई०) में यक्ष की दाहिनी भुजा में अभयमुद्रा के स्थान पर गदा प्रदर्शित है।

४ पुरातात्विक संग्रहालय, खजुराहो (१७१५) एवं मन्दिर १६

५ ''''दुरितारिदेवीं गौरवर्णां मेषवाहनां चतुर्भुजां वरदाक्षसूत्रयुक्तदक्षिणकरां फलाभयान्वितवामकरां चेति ॥
निर्वाणकलिका १८.३
आचारदिनकर में अक्षमाला के स्थान पर मुक्तामाला का उल्लेख है (३४, पृ० १७६)।

६ दक्षिणाभ्यां भुजाभ्यां तु वरदेनाक्षसूत्रिणा।
वामाभ्यां शोभमाना तु फणिनाऽभयदेन च ॥ त्रि०श०पु०च० ३.१.३८८

७ पद्मानन्दमहाकाव्य : परिशिष्ट—सम्भवनाथचरित्र १९–२०

८ देवी तुषारगिरिसोदरदेहकान्तिर्बर्हात् सुखं चिरजगतिः सततं परीताः। मंत्राधिराजकल्प ३.५३

९ दुरितारिर्गौरवर्णा यक्षिणी महिषासना। देवतामूर्तिप्रकरण ७.२३

१० प्रज्ञप्तिर्देवता श्वेता षड्भुजा पक्षिवाहना।
अर्द्धेन्दुपरशुं धत्ते फलाभीष्टवरान्विता ॥ प्रतिष्ठासारसंग्रह ५.२०

में अर्धेन्दु, परशु, फल, खड्ग, छड़ी एवं वरदमुद्रा के प्रदर्शन का निर्देश है।[1] प्रतिष्ठातिलकम् में छड़ी के स्थान पर पिंडी का उल्लेख है।[2] अपराजितपृच्छा में षड्भुजा यक्षी के दो हाथों में खड्ग और छड़ी के स्थान पर क्रमशः अभयमुद्रा एवं पद्म दिये गये हैं।[3]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर परम्परा में हंसवाहना यक्षी षड्भुजा है और उसकी दक्षिण भुजाओं में परशु, खड्ग एवं अभयमुद्रा और वाम में पाश, चक्र एवं कटकमुद्रा का उल्लेख है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में अश्व-वाहना यक्षी द्विभुजा है जिसकी भुजाओं में वरदमुद्रा एवं पद्म दिये गये हैं। यक्ष-यक्षी-लक्षण में पक्षीवाहना यक्षी षड्भुजा है तथा प्रतिष्ठासारसंग्रह के समान, उसकी केवल चार भुजाओं के आयुध—अर्धचन्द्र, परशु, फल एवं वरदमुद्रा-वर्णित हैं।[4]

मूर्ति-परम्परा

(क) स्वतन्त्र मूर्तियां—यक्षी की केवल दो मूर्तियां (११वीं-१२वीं शती ई०) मिली हैं। ये मूर्तियां उड़ीसा के नवमुनि एवं बारभुजी गुफाओं में हैं। इनमें पारम्परिक विशेषताएं नहीं प्रदर्शित हैं। नवमुनि गुफा की मूर्ति में पद्मासन पर ललितमुद्रा में विराजमान द्विभुजा यक्षी जटामुकुट और हाथों में अभयमुद्रा एवं सनाल पद्म से युक्त है।[5] बारभुजी गुफा की मूर्ति में यक्षी चतुर्भुजा है। उसका वाहन (कोई पशु) आसन के नीचे उत्कीर्ण है। यक्षी के दो अवशिष्ट हाथों में वरदमुद्रा और अक्षमाला हैं।[6]

(ख) जिन-संयुक्त मूर्तियां—देवगढ़ एवं खजुराहो की सम्भवनाथ की मूर्तियों (११वीं-१२वीं शती ई०) में यक्षी आमूर्तित है। इनमें यक्षी द्विभुजा और सामान्य लक्षणों वाली है। द्विभुजा यक्षी के करों में अभयमुद्रा एवं फल (या पद्म, या खड्ग या कलश) प्रदर्शित हैं। देवगढ़ की एक मूर्ति में यक्षी चतुर्भुजा भी है जिसके तीन सुरक्षित हाथों में वरदमुद्रा, पद्म एवं कलश हैं। सम्पूर्ण अध्ययन से स्पष्ट है कि मूर्त अंकनों में यक्षी का कोई पारम्परिक या स्वतन्त्र स्वरूप नियत नहीं हो सका था

(४) ईश्वर (या यक्षेश्वर) यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

ईश्वर (या यक्षेश्वर) जिन अभिनन्दन का यक्ष है। श्वेतांबर परम्परा में यक्ष को ईश्वर और यक्षेश्वर नामों से, पर दिगंबर परम्परा में केवल यक्षेश्वर नाम से ही सम्बोधित किया गया है। दोनों परम्पराओं में यक्ष चतुर्भुज है और उसका वाहन गज है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका में गजारूढ़ ईश्वर के दाहिने हाथों में फल और अक्षमाला तथा बायें में नकुल और अंकुश के प्रदर्शन का निर्देश है।[7] अन्य ग्रन्थों में भी इन्हीं आयुधों के उल्लेख हैं।[8]

---

१ पक्षिस्थार्धेन्दुपरशुफलासीढीवरैः सिता।
चतुश्चापशतोच्चाहंद्भक्ता प्रज्ञप्तिरिष्यते ॥ प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१५८

२ ....कृपाणपिण्डीवरमादधानाम्। प्रतिष्ठातिलकम् ७.३, पृ० ३४१

३ अभयवरदफलचन्द्रां परशुत्पलम् ॥ अपराजितपृच्छा २२१.१७

४ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० १९९ ५ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १२८

६ वही, पृ० १३०

७ तत्तीर्थोत्पन्नमीश्वरयक्षं श्यामवर्णं गजवाहनं चतुर्भुजं मातुलिंगाक्षसूत्रयुतदक्षिणपाणिं नकुलांकुशान्वितवामपाणिं चेति। निर्वाणकलिका १८.४

८ त्रि०श०पु०च० ३.२.१५९-६०; मन्त्राधिराजकल्प ३.२९; आचारदिनकर ३४, पृ० १७४

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह में गजारूढ़ यक्षेश्वर के करों के आयुधों का अनुल्लेख है।[1] प्रतिष्ठासारोद्धार में यक्षेश्वर की दाहिनी भुजाओं के आयुध शंक-पत्र और खड्ग तथा बायीं के कार्मुक और खेटक हैं।[2] प्रतिष्ठातिलकम् में शंकपत्र के स्थान पर बाण का उल्लेख है।[3] अपराजितपृच्छा में यक्ष का चतुरानन नाम से स्मरण है जिसका वाहन हंस तथा भुजाओं के आयुध सर्प, पाश, वज्र और अंकुश हैं।[4]

यक्षेश्वर के निरूपण में गजवाहन एवं अंकुश का प्रदर्शन सम्भवतः हिन्दू देव इन्द्र का प्रभाव है। अपराजितपृच्छा में अंकुश के साथ ही वज्र के प्रदर्शन का भी निर्देश है। अपराजितपृच्छा में यक्ष के नाम, चतुरानन, और वाहन, हंस, के सन्दर्भ में हिन्दू ब्रह्मा का प्रभाव भी देखा जा सकता है।

दक्षिण भारतीय परम्परा—दक्षिण भारत में दोनों परम्परा के ग्रन्थों में उत्तर भारत की दिगंबर परम्परा के अनुरूप गजारूढ़ यक्ष चतुर्भुज है और उसकी भुजाओं के आयुध अभयमुद्रा (या बाण), खड्ग, खेटक एवं धनुष हैं।[5]

मूर्ति-परम्परा

यक्ष की एक भी स्वतन्त्र मूर्ति नहीं मिली है। केवल अभिनन्दन की तीन मूर्तियों (१०वीं-११वीं शती ई०) में यक्ष निरूपित है। इनमें से दो खजुराहो (पार्श्वनाथ मन्दिर, मन्दिर २९) तथा तीसरी देवगढ़ (मन्दिर ९) से मिली हैं। इनमें सामान्य लक्षणों वाला द्विभुज यक्ष अभयमुद्रा एवं फल (या कलश) से युक्त है।

(४) कालिका (या वज्रशृंखला) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

कालिका (या वज्रशृंखला) जिन अभिनन्दन की यक्षी है। श्वेतांबर परम्परा में यक्षी को कालिका (या काली) और दिगंबर परम्परा में वज्रशृंखला कहा गया है। दोनों परम्पराओं में यक्षी को चतुर्भुजा बताया गया है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका में पद्मवाहना कालिका के दाहिने हाथों में वरदमुद्रा और पाश एवं बायें में सर्प और अंकुश का उल्लेख है।[6] अन्य ग्रन्थों में भी यही लाक्षणिक विशेषताएं वर्णित हैं।[7]

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह में वज्रशृंखला के वाहन हंस और भुजाओं में वरदमुद्रा, नागपाश, अक्षमाला और फल का उल्लेख है।[8] परवर्ती ग्रन्थों में भी इन्हीं आयुधों का वर्णन है।[9]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर परम्परा में चतुर्भुजा यक्षी का वाहन हंस है और वह भुजाओं में अक्षमाला, अभयमुद्रा, सर्प एवं कटकमुद्रा धारण किये है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में यक्षी का वाहन कपि और करों में चक्र,

---

१ अभिनन्दननाथस्य यक्षो यक्षेश्वराभिधः।
हस्तिवाहनमारूढः श्यामवर्णश्चतुर्भुजः ॥ प्रतिष्ठासारसंग्रह ५.२१

२ प्रेरंखधनुः खेटकवामपाणिं सखड्गशंखपत्रसव्यहस्तम्।
श्यामं करिस्थं कपिकेतुभक्तं यक्षेश्वरं यक्षमिहार्चयामि ॥ प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१३२

३ ····वामान्यहस्तोद्धृतबाणखड्गं। प्रतिष्ठातिलकम् ७.४, पृ० ३३२

४ नागपाशवज्रांकुशा हंसस्थश्चतुराननः। अपराजितपृच्छा २२१.४६

५ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० १९९

६ ····कालिकादेवीं श्यामवर्णां पद्मासनां चतुर्भुजां वरदपाशाधिष्ठितदक्षिणभुजां नागांकुशान्वितवामकरां चेति।
निर्वाणकलिका १८·४

७ त्रि०श०पु०च० ३.२.१६१–६२; आचारदिनकर ३४, पृ० १७६; मंत्राधिराजकल्प ३.५४

८ वरदा हंसमारूढा देवता वज्रशृंखला।
नागपाशाक्षसूत्रोरुफलहस्ता चतुर्भुजा ॥ प्रतिष्ठासारसंग्रह ५.२२–२३

९ प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१५९; प्रतिष्ठातिलकम् ७.४, पृ० ३४१; अपराजितपृच्छा २२१.१८

कमण्डलु, वरदमुद्रा एवं पद्म हैं। यक्ष-यक्षी-लक्षण में हंसवाहना यक्षी के करों में वरदमुद्रा, फल, पाश एवं अक्षमाला का वर्णन है।[1] वाहन हंस एवं भुजाओं में पाश, अक्षमाला एवं फल के प्रदर्शन में दक्षिण भारतीय परम्पराएं उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा के समान हैं।

मूर्ति-परम्परा

(क) स्वतन्त्र मूर्तियां—वज्रशृंखला की तीन मूर्तियां मिली हैं। ये मूर्तियां उत्तर प्रदेश में देवगढ़ से (मन्दिर १२) एवं उड़ीसा में उदयगिरि-खण्डगिरि की नवमुनि और बारभुजी गुफाओं से मिली हैं। इनमें यक्षी के साथ पारम्परिक विशेषताएं नहीं प्रदर्शित हैं। देवगढ़ की मूर्ति (८६२ ई०) में जिन अभिनन्दन के साथ आमूर्तित द्विभुजा यक्षी को लेख में 'भगवती सरस्वती' कहा गया है। यक्षी की दाहिनी भुजा में चामर है और बायीं जानु पर स्थित है। नवमुनि गुफा की मूर्ति में यक्षी चतुर्भुजा है तथा उसकी भुजाओं में अभयमुद्रा, चक्र, शंख और बालक हैं।[2] किरीटमुकुट से शोभित यक्षी का वाहन कपि है। स्पष्ट है कि यक्षी के निरूपण में कलाकार ने संयुक्त रूप से हिन्दू वैष्णवी (चक्र, शंख एवं किरीटमुकुट) एवं जैन यक्षी अम्बिका (बालक)[3] की विशेषताएं प्रदर्शित की हैं। यक्षी का कपिवाहन अभिनन्दन के लांछन (कपि) से ग्रहण किया गया है। बारभुजी गुफा की मूर्ति में यक्षी अष्टभुजा और पद्म पर आसीन है। यक्षी के दो हाथों में उपवीणा (हार्प) और दो में वरदमुद्रा एवं वज्र हैं। शेष हाथ खण्डित हैं।[4]

(ख) जिन-संयुक्त मूर्तियां—देवगढ़ एवं खजुराहो की जिन अभिनन्दन की तीन मूर्तियों (१० वीं-११ वीं शती ई०) में यक्षी सामान्य लक्षणों वाली और द्विभुजा है तथा उसके करों में अभयमुद्रा एवं फल (या कलश) प्रदर्शित हैं।

(५) तुम्बरु यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

तुम्बरु (या तुम्बर) जिन सुमतिनाथ का यक्ष है। दोनों परम्पराओं में तुम्बरु को चतुर्भुज और गरुड़ वाहन-वाला कहा गया है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका में तुम्बरु के दाहिने हाथों में वरदमुद्रा एवं शक्ति और बायें में नाग एवं पाश के प्रदर्शन का निर्देश है।[5] दो ग्रन्थों में नाग के स्थान पर गदा का उल्लेख है।[6] अन्य ग्रन्थों में गदा और नाग-पाश दोनों के उल्लेख हैं।[7]

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह में नाग यज्ञोपवीत से सुशोभित चतुर्भुज यक्ष के दो करों में दो सर्प और शेष में वरदमुद्रा एवं फल का वर्णन है।[8] परवर्ती ग्रन्थों में भी इन्हीं विशेषताओं के उल्लेख हैं।[9]

---

१ रामचन्द्रन, टी०एन०, पू०नि०, पृ० १९९
२ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १२८
३ बालक का प्रदर्शन हिन्दू मातृका का भी प्रभाव हो सकता है।
४ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १३०
५ ....तुम्बरुयक्षं गरुडवाहनं चतुर्भुजं वरदशक्तियुत-दक्षिणपाणिं नागपाशयुक्तवामहस्तं चेति। निर्वाणकलिका १८.५
६ दक्षिणौ वरदशक्तिधरौ बाहू समुद्वहन्।
वामौ बाहू गदाधारपाशयुक्तौ च धारयन्॥ त्रि०श०पु०च० ३.३.२४६-४७
द्रष्टव्य, पद्मानन्दमहाकाव्य: परिशिष्ट-सुमतिनाथ १८-१९
७ ....वरदशक्तियुक्तहस्तौ गदोरगपाशयवामपाणि:। मन्त्राधिराजकल्प ३.३०, द्रष्टव्य, आचारदिनकर ३४, पृ० १७४
८ सुमतेस्तुम्बरोयक्ष: श्यामवर्णश्चतुर्भुज:।
सर्पद्वयफलं धत्ते वरदं परिकीर्तित:।
सर्पयज्ञोपवीतोऽसौ खगाधिपतिवाहन:॥ प्रतिष्ठासारसंग्रह ५.२३-२४
९ द्रष्टव्य, प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१३३; प्रतिष्ठातिलकम् ७.५, पृ० ३३२; अपराजितपृच्छा २२१.४६

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ में चतुर्भुज यक्ष का वाहन गरुड है। उसके दो हाथों में सर्प और शेष दो में अभय-और कटक-मुद्राएं प्रदर्शित हैं। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में चतुर्भुज यक्ष का वाहन सिंह है और उसके करों में खड्ग, फलक, वज्र एवं फल प्रदर्शित हैं। यक्ष-यक्षी-लक्षण में नागयज्ञोपवीत से युक्त यक्ष के दो हाथों में सर्प, और अन्य दो में फल एवं वरदमुद्रा हैं।[1] यक्ष-यक्षी-लक्षण एवं दिगंबर ग्रन्थ के विवरण उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा के समान हैं।

मूर्ति-परम्परा

तुम्बरु यक्ष की एक भी स्वतन्त्र मूर्ति नहीं मिली है। केवल खजुराहो की दो सुमतिनाथ की मूर्तियों (१० वीं-११ वीं शती ई०) में ही यक्ष आमूर्तित है।[2] इनमें द्विभुज यक्ष सामान्य लक्षणों वाला और अभयमुद्रा एवं फल से युक्त है।

(५) महाकाली (या पुरुषदत्ता) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

महाकाली (या पुरुषदत्ता) जिन सुमतिनाथ की यक्षी है। श्वेतांबर परम्परा में यक्षी को महाकाली और दिगंबर परम्परा में पुरुषदत्ता (या नरदत्ता) नाम से सम्बोधित किया गया है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका के अनुसार चतुर्भुजा महाकाली का वाहन पद्म है और उसके दाहिने हाथों के आयुध वरदमुद्रा और पाश तथा बायें के मातुलिंग और अंकुश हैं।[3] परवर्ती ग्रन्थों में भी इन्हीं लक्षणों के उल्लेख हैं।[4] केवल देवतामूर्तिप्रकरण में पाश के स्थान पर नागपाश का उल्लेख है।[5]

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह में चतुर्भुजा पुरुषदत्ता का वाहन गज है और उसकी भुजाओं में वरदमुद्रा, चक्र, वज्र एवं फल का वर्णन है।[6] अन्य ग्रन्थों में भी इन्हीं लक्षणों के उल्लेख हैं।[7]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ में गजारूढ़ यक्षी की ऊपरी भुजाओं में चक्र एवं वज्र और निचली में अभय-एवं कटक-मुद्राएं उल्लिखित हैं। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में द्विभुजा यक्षी का वाहन श्वान है तथा हाथों के आयुध अभयमुद्रा और अंकुश हैं। यक्ष-यक्षी-लक्षण में गजवाहना यक्षी चक्र, वज्र, फल एवं वरदमुद्रा से युक्त है।[8] चतुर्भुजा यक्षी के ये विवरण उत्तर भारत की दिगंबर परम्परा से प्रभावित हैं।

---

१ रामचन्द्रन, टी०एन०, जै०मि०, पृ० १९९

२ ये मूर्तियां पार्श्वनाथ मन्दिर के गर्भगृह की भित्ति एवं मन्दिर ३० में हैं। विमलवसही की देवकुलिका २७ की सुमतिनाथ की मूर्ति में चतुर्भुज यक्ष सर्वानुभूति है।

३ ....महाकालीं देवीं सुवर्णवर्णां पद्मवाहनां चतुर्भुजां वरदपाशाधिष्ठितदक्षिणकरां मातुलिंगांकुशयुक्तवामभुजां चेति ॥
निर्वाणकलिका १८.५

४ द्रष्टव्य, त्रि०श०पु०च० ३.३.२४८-४९; मन्त्राधिराजकल्प ३.५४; पद्मानन्दमहाकाव्य : परिशिष्ट—सुमतिनाथ १९-२०; आचारदिनकर ३४, पृ० १७६

५ वरदं नागपाशं चांकुशं स्याद् बीजपूरकम्। देवतामूर्तिप्रकरण ७.२७

६ देवी पुरुषदत्ता च चतुर्हस्तागजेन्द्रगा।
रथांगवज्रधात्मासी फलहस्ता वरप्रदा ॥ प्रतिष्ठासारसंग्रह ५.२५
गजेन्द्रगाचक्रफलोद्यतवज्रवरांगहस्ता....। प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१६०

७ प्रतिष्ठातिलकम् ७.५, पृ० ३४२; अपराजितपृच्छा २२१.१९

८ रामचन्द्रन, टी० एन०, जै०मि०, पृ० २००

मूर्ति-परम्परा

पुरुषदत्ता की केवल दो स्वतन्त्र मूर्तियां मध्य प्रदेश में ग्यारसपुर के मालादेवी मन्दिर तथा उड़ीसा में बारभुजी गुफा से मिली हैं। मालादेवी मन्दिर की मूर्ति (१०वीं शती ई०) मण्डप की दक्षिणी जंघा पर है जिसमें पुरुषदत्ता पद्मासन पर ललितमुद्रा में विराजमान है और उसका गजवाहन आसन के नीचे उत्कीर्ण है। चतुर्भुजा यक्षी के करों में खड्ग, चक्र, खेटक और शंख प्रदर्शित हैं। गजवाहन एवं चक्र के आधार पर देवी की पहचान पुरुषदत्ता से की गई है। बारभुजी गुफा की मूर्ति में यक्षी दशभुजा है और उसका वाहन मकर है। यक्षी के अवशिष्ट दाहिने हाथों में वरदमुद्रा, चक्र, शूल और खड्ग तथा बायें हाथों में पाश, फलक, हल, मुद्गर और पद्म हैं।[1] खजुराहो की दो सुमतिनाथ की मूर्तियों में द्विभुजा यक्षी सामान्य लक्षणों वाली है। यक्षी के करों में अभयमुद्रा (या पुष्प) और फल प्रदर्शित हैं। विमलवसही की सुमतिनाथ की मूर्ति में अम्बिका निरूपित है।

(६) कुसुम यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

कुसुम (या पुष्प) जिन पद्मप्रभ का यक्ष है। दोनों परम्पराओं में चतुर्भुज यक्ष का वाहन मृग बताया गया है। यक्ष के कुसुम और पुष्प नाम निश्चित ही जिन पद्मप्रभ के नाम से प्रभावित हैं।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका में मृग पर आरूढ़ कुसुम यक्ष के दाहिने हाथों में फल और अभयमुद्रा एवं बायें हाथों में नकुल और अक्षमाला का उल्लेख है।[2] अन्य ग्रन्थों में भी इन्हीं लक्षणों के उल्लेख हैं।[3] केवल मन्त्राधिराजकल्प एवं आचारदिनकर में वाहन क्रमशः मयूर और अश्व बताया गया है।[4]

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह में यक्ष पुष्प मृगवाहन वाला और द्विभुज है।[5] अपराजितपृच्छा में भी यक्ष द्विभुज तथा मृग पर संस्थित है और उसके करों में गदा और अक्षमाला का उल्लेख है।[6] प्रतिष्ठासारोद्धार में चतुर्भुज यक्ष के ध्यान में उसकी दाहिनी भुजाओं में शूल (कुन्त) और मुद्रा तथा बायीं में खेटक और अभयमुद्रा का वर्णन है।[7] प्रतिष्ठातिलकम् में दोनों वाम करों में खेटक के प्रदर्शन का विधान है।[8]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ में वृषभारूढ़ यक्ष चतुर्भुज है। उसकी ऊपरी भुजाओं में शूल एवं खेटक और निचली में अभय-एवं कटक-मुद्राएं हैं। श्वेतांबर ग्रन्थों में मृगवाहन से युक्त चतुर्भुज यक्ष के करों में वरदमुद्रा, अभयमुद्रा, शूल एवं फलक का वर्णन है।[9] श्वेतांबर ग्रन्थों के विवरण उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा से प्रभावित हैं।

कुसुम यक्ष की एक भी मूर्ति नहीं मिली है।

---

१ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १३०

२ कुसुमयक्षं नीलवर्णं कुरंगवाहनं चतुर्भुजं फलाभययुक्तदक्षिणपाणिं नकुलकाक्षसूत्रयुक्तवामपाणिं चेति। निर्वाणकलिका १८.६

३ त्रि०श०पु०च० ३.४.१८०–८१; पद्मानन्दमहाकाव्य : परिशिष्ट—पद्मप्रभ १६–१७

४ रम्भादमामवपुरेषकुमारयानो यक्षः फलाभयपुरोगभुजः पुनातु।
बभ्रवक्षदामयुतवामकरस्तु·········· ॥ मन्त्राधिराजकल्प ३.३१
नीलस्तुरंगगमनश्च चतुर्भुजाढ्यः स्फूर्जत्फलाभयसुदक्षिणपाणि युग्मः।
बभ्राक्षसूत्रयुतवामकरद्वयश्च·········· ॥ आचारदिनकर ३४, पृ० १७४

५ पद्मप्रभजिनेन्द्रस्य यक्षो हरिणवाहनः।
द्विभुजः पुष्पनामाख्यो श्यामवर्णः प्रकीर्तितः ॥ प्रतिष्ठासारसंग्रह ५.२७

६ कुसुमाख्यो गदाक्षी च द्विभुजो मृगसंस्थितः। अपराजितपृच्छा २२१.४७

७ मृगारूढं कुन्तवरापसव्यकरं सखेटाभयसव्यहस्तम्। प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१३४

८ खेटोभयोद्भासितसव्यहस्तं कुन्तेष्टदानस्फुरितान्यपाणिम्। प्रतिष्ठातिलकम् ७.६, पृ० ३३३

९ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २००

(६) अच्युता (या मनोवेगा) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

अच्युता (या मनोवेगा) जिन पद्मप्रभ की यक्षी है। श्वेतांबर परम्परा में यक्षी को अच्युता (या श्यामा या मानसी) और दिगंबर परम्परा में मनोवेगा कहा गया है। दोनों परम्परा के ग्रन्थों में यक्षी को चतुर्भुजा बताया गया है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका में नरवाहना अच्युता के दक्षिण करों में वरदमुद्रा एवं वीणा तथा वाम में धनुष एवं अभयमुद्रा का वर्णन है।[1] अन्य ग्रन्थों में वीणा के स्थान पर पाश[2] या बाण[3] के उल्लेख हैं। आचारदिनकर में यक्षी के दाहिने हाथों में पाश एवं वरदमुद्रा और बायें में मातुलिंग एवं अंकुश का उल्लेख है।[4]

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह में चतुर्भुजा अश्ववाहना मनोवेगा के केवल तीन करों के आयुधों—वरदमुद्रा, खेटक एवं खड्ग का उल्लेख है।[5] अन्य ग्रन्थों में चौथी भुजा में मातुलिंग वर्णित है।[6] अपराजितपृच्छा में अश्ववाहना मनोवेगा के करों में वज्र, चक्र, फल एवं वरदमुद्रा के प्रदर्शन का निर्देश है।[7]

श्वेतांबर परम्परा में यक्षी का नाम १४वीं महाविद्या अच्युता से ग्रहण किया गया। हाथों में बाण एवं धनुष का प्रदर्शन भी सम्भवतः महाविद्या अच्युता का ही प्रभाव है। यक्षी का नरवाहन सम्भवतः महाविद्या महाकाली से प्रभावित है। दिगंबर परम्परा में यक्षी का नाम मनोवेगा है, पर उसकी लाक्षणिक विशेषताएं (अश्ववाहन, खड्ग, खेटक) महाविद्या अच्युता से प्रभावित हैं।

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ में अश्ववाहना यक्षी के ऊपरी हाथों में खड्ग एवं खेटक और नीचे के हाथों में अभय-एवं कटक-मुद्रा का उल्लेख है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में मृगवाहना यक्षी के करों में खड्ग, खेटक, शर एवं चाप का वर्णन है। यक्ष-यक्षी-लक्षण में अश्ववाहना यक्षी वरदमुद्रा, खेटक, खड्ग एवं मातुलिंग से युक्त है।[8] दक्षिण भारत के दोनों परम्पराओं के ग्रन्थों में यक्षी के साथ अश्ववाहन एवं खड्ग और खेटक के प्रदर्शन उत्तर भारत के दिगंबर परम्परा से सम्बन्धित हो सकते हैं।

मूर्ति-परम्परा

यक्षी की नवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की चार स्वतन्त्र मूर्तियां देवगढ़, खजुराहो, ग्यारसपुर एवं बारभुजी गुफा से मिली हैं।[9] देवगढ़ के मन्दिर १२ (८६२ ई०) की भित्ति पर पद्मप्रभ के साथ 'सुलोचना' नाम की अश्ववाहना यक्षी निरूपित है।[10] चतुर्भुजा यक्षी के तीन हाथों में धनुष, बाण एवं पद्म हैं तथा चौथा जानु पर स्थित

---

१ अच्युतां देवीं श्यामवर्णां नरवाहनां चतुर्भुजां वरदवीणान्वितदक्षिणकरां कार्मुकाभययुतवामहस्तां ॥ निर्वाणकलिका १८.६

२ त्रि०श०पु०च० ३.४.१८२–८३; पद्मानन्दमहाकाव्य–परिशिष्ट ६. १७–१८

३ मन्त्राधिराजकल्प ३.५५; देवतामूर्तिप्रकरण ७.२९

४ श्यामा चतुर्भुजधरा नरवाहनस्था पाशं तथा च वरदं करयोर्दधाना।
वामान्ययोस्तदनु सुन्दरबीजपूरं तीक्ष्णांकुशं च परयोः………… ॥ आचारदिनकर ३४, पृ० १७६

५ तुरंगवाहना देवी मनोवेगा चतुर्भुजा।
वरदा कांचना छाया सिद्धासिफलकायुधा ॥ प्रतिष्ठासारसंग्रह ५.२८

६ मनोवेगा सफलकफलखड्गवराच्यते। प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१६१; प्रतिष्ठातिलकम् ७.६, पृ० ३४२

७ चतुर्भुजा स्वर्णवर्णा वज्रचक्रफलं वरम्।
अश्ववाहनसंस्था च मनोवेगा तु कामदा ॥ अपराजितपृच्छा २२१.२०

८ रामचन्द्रन, टी० एन०, मू०जि०, पृ० २००

९ ये सभी दिगंबर स्थल हैं।

१० जि०इ०दे०, पृ० १०७

है। यक्षी का निरूपण १४वीं महाविद्या अच्युता से प्रभावित है।[1] ग्यारसपुर के मालादेवी मन्दिर की दक्षिणी भित्ति पर एक अष्टभुज मूर्ति (१०वीं शती ई०) है। इसमें ललितमुद्रा में विराजमान यक्षी के आसन के नीचे अश्ववाहन उत्कीर्ण है। यक्षी के अवशिष्ट हाथों में खड्ग, पद्म[2], कलश, घण्टा, फलक, आम्रलुम्बि एवं मातुलिंग प्रदर्शित हैं। खजुराहो के पुरातात्विक संग्रहालय में भी चतुर्भुजा मनोवेगा की एक मूर्ति (क्रमांक ९४०) है। ग्यारहवीं शती ई० की इस स्थानक मूर्ति में यक्षी का अश्ववाहन पीठिका पर उत्कीर्ण है। यक्षी के एक अवशिष्ट हाथ में सनाल पद्म है। यक्षी के पार्श्वों में दो स्त्री सेविकाओं एवं उपासकों की मूर्तियां हैं। यक्षी के स्कन्धों के ऊपर चतुर्भुज सरस्वती की दो लघु मूर्तियां बनी हैं।[3] बारभुजी गुफा की मूर्ति में चतुर्भुजा यक्षी हंसवाहना है। यक्षी के हाथों में वरदमुद्रा, वज्र (?), शंख (?) और पताका प्रदर्शित हैं।[4] उपर्युक्त मूर्तियों के अध्ययन से स्पष्ट है कि बारभुजी गुफा की मूर्ति के अतिरिक्त अन्य में सामान्यतः अश्ववाहन एवं खड्ग और खेटक के प्रदर्शन में दिगंबर परम्परा का निर्वाह किया गया है।

(७) मातंग यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

मातंग जिन सुपार्श्वनाथ का यक्ष है। श्वेतांबर परम्परा में मातंग का वाहन गज और दिगंबर परम्परा में सिंह है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका में चतुर्भुज मातंग को गजारूढ़ तथा दाहिने हाथों में बिल्वफल और पाश एवं बायें में नकुल और अंकुश से युक्त कहा गया है।[5] आचारदिनकर में पाश एवं नकुल के स्थान पर क्रमशः नागपाश और वज्र का उल्लेख है।[6] अन्य ग्रन्थों में निर्वाणकलिका के ही आयुध उल्लिखित हैं।[7] मातंग के साथ गजवाहन एवं अंकुश और वज्र का प्रदर्शन हिन्दू देव इन्द्र का प्रभाव हो सकता है।

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह में द्विभुज यक्ष के करों में वज्र एवं दण्ड के प्रदर्शन का निर्देश है, पर वाहन का अनुल्लेख है।[8] प्रतिष्ठासारोद्धार में मातंग का वाहन सिंह है और उसकी भुजाओं में दण्ड और शूल का वर्णन है।[9] अपराजितपृच्छा में मातंग का वाहन मेष है और उसकी भुजाओं में गदा और पाश वर्णित है।[10]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दोनों परम्पराओं में मातंग (या वरनंदि) का वाहन सिंह है। श्वेतांबर एवं दिगंबर ग्रन्थों में द्विभुज यक्ष के हाथों में त्रिशूल एवं दण्ड का उल्लेख है। यक्ष-यक्षी-लक्षण में चतुर्भुज यक्ष का करों में त्रिशूल,

---

१ महाविद्या अच्युता का वाहन अश्व है और उसके हाथों में खड्ग, खेटक, शर एवं चाप प्रदर्शित हैं। ओसिया के महावीर मन्दिर पर समान लक्षणों वाली महाविद्या अच्युता की दो मूर्तियां उत्कीर्ण हैं।

२ पद्म का निचला भाग शृंखला के रूप में प्रदर्शित है।

३ सरस्वती के करों में अभयमुद्रा, पद्म, पुस्तक एवं जलपात्र हैं। ४ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १३०

५ मातंगयक्षं नीलवर्णं गजवाहनं चतुर्भुजं बिल्वपाशयुक्तदक्षिणपाणिं नकुलकांकुशान्वितवामपाणिं चेति। निर्वाणकलिका १८.७

६ नीलोगजेन्द्रगमनश्च चतुर्भुजोपि बिल्वाहिपाशयुतदक्षिणपाणियुग्मः।
वज्रांकुशप्रगुणितीकृतवामपाणिर्मातंगराड्.... .... ॥ आचारदिनकर ३४, पृ० १७४

७ त्रि०श०पु०च० ३.५.११०–११; पद्मानन्दमहाकाव्यः परिशिष्ट—सुपार्श्वनाथ १८–१९; मन्त्राधिराजकल्प ३.३२

८ सुपार्श्वनाथदेवस्य यक्षो मातंग संज्ञकः।
द्विभुजो वज्रदण्डोसौ कृष्णवर्णः प्रकीर्तितः॥ प्रतिष्ठासारसंग्रह ५.२९

९ सिंहाधिरोहस्य सदण्डशूलसव्यान्यपाणेः कुटिलाननस्य। प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१३५; प्रतिष्ठातिलकम् ७.७, पृ० ३३१

१० मातंगः स्याद् गदापाशौ द्विभुजो मेषवाहनः। अपराजितपृच्छा २२१.४७

दण्ड एवं दो में पद्म के साथ ध्यान किया गया है।[1] इस प्रकार स्पष्ट है कि यहां भी दक्षिण भारतीय परम्परा उत्तर भारत की दिगंबर परम्परा से प्रभावित है।

मूर्ति-परम्परा

विमलवसही के रंगमण्डप से सटे उत्तरी छज्जे पर एक देवता की अतिभंग में खड़ी षड्भुज मूर्ति उत्कीर्ण है। देवता का वाहन गज है। उसके चार हाथों में वज्र, पाश, अभयमुद्रा एवं जलपात्र हैं तथा शेष दो मुद्राएं ध्यान करते हैं। देवता की सम्भावित पहचान मातंग से की जा सकती है। मातंग की कोई और स्वतन्त्र मूर्ति नहीं प्राप्त होती है।

विभिन्न क्षेत्रों की सुपार्श्वनाथ की मूर्तियों (११वीं-१२वीं शती ई०) में यक्ष का चित्रण प्राप्त होता है। पर इनमें पारम्परिक यक्ष नहीं निरूपित है। सुपार्श्व से सम्बद्ध करने के उद्देश्य से यक्ष को सामान्यतः सर्पफणों के छत्र से युक्त दिखाया गया है। देवगढ़ के मन्दिर ४ की मूर्ति (११वीं शती ई०) में तीन सर्पफणों के छत्र से युक्त द्विभुज यक्ष के हाथों में पुष्प एवं कलश हैं। राज्य संग्रहालय, लखनऊ (जे ९३५, ११वीं शती ई०) की एक मूर्ति में तीन सर्पफणों के छत्रवाला यक्ष चतुर्भुज है जिसके हाथों में अभयमुद्रा, चक्र, चक्र एवं चक्र प्रदर्शित हैं। कुम्भारिया के नेमिनाथ मन्दिर के गूढ़मण्डप की मूर्ति (११५७ ई०) में गजारूढ़ यक्ष चतुर्भुज है और उसके हाथों में वरदमुद्रा, अंकुश, पाश एवं धन का थैला हैं। विमलवसही की देवकुलिका १९ की मूर्ति में भी गजारूढ़ यक्ष चतुर्भुज है और उसके करों में वरदमुद्रा, अंकुश, पाश एवं फल प्रदर्शित हैं।[2]

(७) शान्ता (या काली) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

शान्ता (या काली) जिन सुपार्श्वनाथ की यक्षी है। श्वेतांबर परम्परा में चतुर्भुजा शान्ता गजवाहना एवं दिगंबर परम्परा में चतुर्भुजा काली वृषभवाहना है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका में गजवाहना शान्ता की दक्षिण भुजाओं में वरदमुद्रा और अक्षमाला एवं वाम में शूल और अभयमुद्रा का उल्लेख है।[3] आचारदिनकर में अक्षमाला के स्थान पर मुक्तामाला[4] एवं देवतामूर्तिप्रकरण में शूल के स्थान पर त्रिशूल[5] के उल्लेख हैं। मन्त्राधिराजकल्प में यक्षी मालिनी एवं ज्वाला नामों से सम्बोधित है। ग्रन्थ के अनुसार गजवाहना यक्षी भयानक दर्शन वाली है और उसके शरीर से ज्वाला निकलती है। यक्षी के हाथों में वरदमुद्रा, अक्षमाला, पाश एवं अंकुश का वर्णन है।[6]

---

१ रामचन्द्रन, टी०एन०, तू०नि०, पृ० २००

२ कुम्भारिया एवं विमलवसही की उपर्युक्त दोनों ही मूर्तियों की लाक्षणिक विशेषताएं श्वेतांबर ग्रन्थों में वर्णित मातंग की विशेषताओं से मेल खाती हैं। यहां उल्लेखनीय है कि गुजरात एवं राजस्थान के श्वेतांबर स्थलों पर इन्हीं लक्षणों वाले यक्ष को सभी जिनों के साथ निरूपित किया गया है और उसकी पहचान सर्वानुभूति से की गई है। ज्ञातव्य है कि कुम्भारिया की सुपार्श्व-मूर्ति में यक्षी अम्बिका ही है।

३ शान्तादेवीं सुवर्णवर्णां गजवाहनां चतुर्भुजां वरदाक्षसूत्रयुक्तदक्षिणकरां शूलाभययुतवामहस्तां चेति। निर्वाणकलिका १८.७; त्रि०श०पु०च० ३.५.११२-१३; पद्मानन्दमहाकाव्य : परिशिष्ट—सुपार्श्वनाथ १९-२०

४ ··· लसन्मुक्तामालां वरदमपि सव्यान्यकरयोः। आचारदिनकर ३४, पृ० १७६

५ वरदं चाक्षसूत्रं च वामयं तस्मात्त्रिशूलकम्। देवतामूर्तिप्रकरण ७.३१

६ ज्वालाकरालवदना द्विरदेन्द्रयाना दद्यात् सुखं वरमथो जपमालिका च।
पाशं शृणिं मम च पाणिचतुष्टयेन ज्वालाभिधा च दधती किल मालिनीव॥ मन्त्राधिराजकल्प ३.५६

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह में वृषभारूढ़ा काली के करों में घण्टा, त्रिशूल, फल एवं वरदमुद्रा के प्रदर्शन का निर्देश है।[1] अन्य ग्रन्थों में त्रिशूल के स्थान पर शूल मिलता है।[2] अपराजितपृच्छा में महिषवाहना काली का अष्टभुज रूप में ध्यान किया गया है। काली के हाथों में त्रिशूल, पाश, अंकुश, धनुष, बाण, चक्र, अभयमुद्रा एवं वरदमुद्रा का वर्णन है।[3] दिगंबर परम्परा की वृषभवाहना यक्षी काली का स्वरूप हिन्दू काली और शिवा से प्रभावित प्रतीत होता है।[4]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर परम्परा में वृषभवाहना यक्षी के करों में त्रिशूल, घण्टा, अभयमुद्रा एवं कटकमुद्रा का उल्लेख है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में चतुर्भुजा यक्षी का वाहन मयूर है। यक्षी की दो भुजाएं अंजलिमुद्रा में हैं और शेष दो में वरदमुद्रा एवं अक्षमाला हैं। यक्ष-यक्षी-लक्षण में वृषभारूढ़ा यक्षी के हाथों में घण्टा, त्रिशूल एवं वरदमुद्रा का वर्णन है।[5] दक्षिण भारतीय दिगंबर परम्परा एवं यक्ष-यक्षी-लक्षण के विवरण उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा के समान हैं।

मूर्ति-परम्परा

यक्षी की दो स्वतन्त्र मूर्तियां देवगढ़ (मन्दिर १२, ८६२ ई०) एवं बारभुजी गुफा के सामूहिक अंकनों में उत्कीर्ण हैं। इन मूर्तियों में यक्षी के साथ पारम्परिक विशेषताएं नहीं प्रदर्शित हैं। देवगढ़ में सुपार्श्व की चतुर्भुजा यक्षी मयूरवाहि(नी) नामवाली है। मयूरवाहन से युक्त यक्षी के करों में व्याख्यानमुद्रा, चामर-पद्म, पुस्तक एवं शंख प्रदर्शित हैं।[6] यक्षी का निरूपण स्पष्टतः सरस्वती से प्रभावित है। बारभुजी गुफा की मूर्ति में यक्षी अष्टभुजा है और उसका वाहन सम्भवतः मयूर है। यक्षी के दक्षिण करों में वरदमुद्रा, फलों से भरा पात्र, शूल (?) एवं खड्ग और वाम में खेटक, शंख, मुद्गर (?) एवं शूक प्रदर्शित हैं।[7]

जिन-संयुक्त मूर्तियों में भी यक्षी का पारम्परिक या कोई स्वतन्त्र स्वरूप नहीं परिलक्षित होता है। देवगढ़ (मन्दिर ४) एवं राज्य संग्रहालय, लखनऊ (जे ९३५) की दो सुपार्श्वनाथ की मूर्तियों में तीन सर्पफणों के छत्रोंवाली द्विभुज यक्षी के हाथों में पुष्प (या पद्म) और कलश प्रदर्शित हैं। कुम्भारिया के महावीर एवं नेमिनाथ मन्दिरों की दो मूर्तियों में यक्षी अम्बिका है। पर विमलवसही की देवकुलिका १९ की मूर्ति में सुपार्श्व के साथ यक्षी रूप में पद्मावती निरूपित है।[8]

(८) विजय (या श्याम) यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

विजय (या श्याम) जिन चन्द्रप्रभ का यक्ष है। श्वेतांबर परम्परा में द्विभुज विजय का वाहन हंस है और दिगंबर परम्परा में चतुर्भुज श्याम का वाहन कपोत है।

---

१ सितगोवृषमारूढा कालिदेवी चतुर्भुजा।
घण्टात्रिशूलसंयुक्तफलहस्तावरप्रदा ॥ प्रतिष्ठासारसंग्रह ५.३०

२ सिता गोवृषगा घण्टां फलशूलवरावृताम्। प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१६१; प्रतिष्ठातिलकम् ७.७ पृ० ३४२

३ कृष्णाऽष्टबाहुस्त्रिशूलपाशांकुशधनुःशरा ।
चक्राभयवरदाश्च महिषस्था च कालिका ॥ अपराजितपृच्छा २२१.२१

४ राव, टी० ए० गोपीनाथ, एलिमेन्ट्स ऑव हिन्दू आइकानोग्राफी, खं० १, भाग २, वाराणसी, १९७१ (पु०मु०), पृ० ३६६

५ रामचन्द्रन, टी०एन०, पू०नि०, पृ० २००

६ जि०इ०दे०, पृ० १०५

७ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १२१

८ तीन सर्पफणों के छत्र वाली यक्षी का वाहन सम्भवतः कुक्कुट-सर्प है और उसके करों में वरदमुद्रा, अंकुश, पद्म एवं फल प्रदर्शित हैं।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका में द्विभुज विजय त्रिनेत्र है और उसका वाहन हंस है। विजय के दाहिने हाथ में चक्र और बायें में मुद्गर है।[1] अन्य ग्रन्थों में भी इन्हीं लक्षणों के उल्लेख हैं।[2] पद्मानन्दमहाकाव्य में चक्र के स्थान पर खड्ग का उल्लेख है।

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह में चतुर्भुज श्याम त्रिनेत्र है और उसकी भुजाओं में फल, अक्षमाला, परशु एवं वरदमुद्रा हैं।[3] ग्रन्थ में वाहन का अनुल्लेख है। प्रतिष्ठासारोद्धार में यक्ष का वाहन कपोत बताया गया है।[4] अपराजितपृच्छा में यक्ष को विजय नाम से सम्बोधित किया गया है और उसके दो हाथों में फल और अक्षमाला के स्थान पर पाश और अभयमुद्रा के प्रदर्शन का निर्देश है।[5]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर परम्परा में हंस पर आरूढ़ चतुर्भुज यक्ष की एक भुजा से अभयमुद्रा के प्रदर्शन का उल्लेख है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में कपोत वाहन से युक्त चतुर्भुज यक्ष के हाथों में कशा, पाश, वरदमुद्रा एवं अंकुश वर्णित हैं। **यक्ष-यक्षी-लक्षण** में कपोत पर आरूढ़ यक्ष त्रिनेत्र है और उसके करों में फल, अक्षमाला, परशु एवं वरदमुद्रा का उल्लेख है।[6] प्रस्तुत विवरण उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा का अनुकरण है।

मूर्ति-परम्परा

यक्ष की एक भी स्वतन्त्र मूर्ति नहीं मिली है। जिन-संयुक्त मूर्तियों (९वीं-१२वीं शती ई०) में चन्द्रप्रभ का यक्ष सामान्य लक्षणों वाला है।[7] इनमें द्विभुज यक्ष अभयमुद्रा (या फल) एवं धन के थैले (या फल या कलश या पुष्प) से युक्त है। देवगढ़ के मन्दिर २१ की मूर्ति (११ वीं शती ई०) में यक्ष चतुर्भुज है और उसके हाथों में अभयमुद्रा, गदा, पद्म एवं फल प्रदर्शित हैं।

(८) भृकुटि (या ज्वालामालिनी) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

भृकुटि (या ज्वालामालिनी) जिन चन्द्रप्रभ की यक्षी है। श्वेतांबर परम्परा में चतुर्भुजा भृकुटि (या ज्वाला) का वाहन वराल (या मराल) है और दिगंबर परम्परा में अष्टभुजा ज्वालामालिनी का वाहन महिष है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका में चतुर्भुजा भृकुटि का वाहन[8] वराह है और उसकी दाहिनी भुजाओं में खड्ग एवं मुद्गर और बायीं में फलक एवं परशु का वर्णन है।[9] अन्य ग्रन्थ आयुधों के सन्दर्भ में एकमत हैं, पर वाहन के

---

१ विजययक्षं हरितवर्णं त्रिनेत्रं हंसवाहनं द्विभुजं दक्षिणहस्तेचक्रं वामे मुद्गरमिति। निर्वाणकलिका १८.८

२ त्रि०श०पु०च० ३.६.१०८; मन्त्राधिराजकल्प ३.३३; आचारदिनकर ३४, पृ० १७४; पद्मानन्दमहाकाव्य : परिशिष्ट—चन्द्रप्रभ १७; त्रि०श०पु०च० एवं पद्मानन्दमहाकाव्य में यक्ष के त्रिनेत्र होने का उल्लेख नहीं है।

३ चन्द्रप्रभजिनेन्द्रस्य श्यामो यक्षः त्रिलोचनः।
फलाक्षसूत्रकं धत्ते परशुं च वरप्रदः॥ प्रतिष्ठासारसंग्रह ५.३१

४ प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१३६

५ पर्शुपाशाभयवराः कपोते विजयः स्थितः। अपराजितपृच्छा २२१.४८

६ रामचन्द्रन, टी०एन०, पू०नि०, पृ० २०१

७ जिन-संयुक्त मूर्तियां देवगढ़, खजुराहो, राज्य संग्रहालय, लखनऊ (जे८८१) एवं इलाहाबाद संग्रहालय (२९५) में हैं।

८ ग्रन्थ के पाद टिप्पणी में उसका पाठान्तर बिराल दिया है।

९ भृकुटिदेवीं पीतवर्णां वराह (बिडाल ?) वाहनां चतुर्भुजां।
खड्गमुद्गरान्वितदक्षिणभुजां फलकपरशुयुतवामहस्तां चेति॥ निर्वाणकलिका १८.८

ग्रन्थों में उनमें पर्याप्त भिन्नता प्राप्त होती है। मन्त्राधिराजकल्प में यक्षी की भुजा में फलक के स्थान पर मातुलिंग मिलता है।[1] आचारदिनकर एवं प्रवचनसारोद्धार में यक्षी का वाहन बिडाल या वरालक बताया गया है।[2] त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र[3] एवं पद्मानन्दमहाकाव्य[4] में वाहन हंस है। देवतामूर्तिप्रकरण में वाहन सिंह है।[5]

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह में अष्टभुजा ज्वालिनी का वाहन महिष है और उसके करों में बाण, चक्र, त्रिशूल और पाश का वर्णन है।[6] अन्य करों के आयुधों का उल्लेख नहीं किया गया है। प्रतिष्ठासारोद्धार में अष्टभुजा ज्वालिनी के हाथों में चक्र, धनुष, पाश, चर्म, त्रिशूल, बाण, मत्स्य एवं खड्ग के प्रदर्शन का निर्देश है।[7] प्रतिष्ठातिलकम् में अष्टभुजा यक्षी के करों में पाश, चर्म एवं त्रिशूल के स्थान पर नागपाश, फलक एवं शूल के प्रदर्शन का उल्लेख है।[8] अपराजितपृच्छा में ज्वालामालिनी चतुर्भुजा है।[9] यक्षी का वाहन वृषभ है और उसके करों में घण्टा, त्रिशूल, फल एवं वरदमुद्रा प्रदर्शित हैं। यक्षी का निरूपण ग्यारहवीं महाविद्या महाज्वाला (या ज्वालामालिनी) से प्रभावित है।[10]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर परम्परा में वृषभवाहना यक्षी अष्टभुजा है। ज्वालामय मुकुट से शोभित यक्षी के दक्षिण करों में त्रिशूल, शर, सर्प एवं अभयमुद्रा, और वाम में वज्र, चाप, सर्प एवं कटकमुद्रा का वर्णन है। श्वेतांबर ग्रन्थों में महिषवाहना यक्षी अष्टभुजा है। अज्ञातनाम एक ग्रन्थ में यक्षी के हाथों में चक्र, मकर, पताका, बाण, धनुष, त्रिशूल, पाश एवं वरदमुद्रा वर्णित हैं। यक्ष-यक्षी-लक्षण में बाण, चक्र, त्रिशूल, वरदमुद्रा (या फल), कार्मुक, पाश, ध्वज एवं खेटक धारण करने का उल्लेख है।[11] स्पष्टतः दक्षिण भारत की दोनों परम्पराओं के विवरण उत्तर भारत की दिगंबर परम्परा से प्रभावित हैं। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि पद्मावती के बाद कर्नाटक में ज्वालामालिनी ही सर्वाधिक लोकप्रिय थी। ज्वालामालिनी के बाद लोकप्रियता के क्रम में अम्बिका का नाम था।[12]

मूर्ति-परम्परा

यक्षी की केवल दो स्वतन्त्र मूर्तियां मिली हैं। ये मूर्तियां देवगढ़ (मन्दिर १२, ८६२ ई०) एवं बारभुजी गुफा के सामूहिक चित्रणों में उत्कीर्ण हैं। देवगढ़ में चन्द्रप्रभ के साथ 'सुमालिनी' नाम की चतुर्भुजा यक्षी आमूर्तित है (चित्र ४८)।[13] यक्षी के तीन हाथों में खड्ग, अभयमुद्रा एवं खेटक प्रदर्शित हैं; चौथी भुजा जानु पर स्थित है। वाम पार्श्व

---

१ पीता वराहगमना ह्यसिमुद्गरांका भूयात् कुठारफलभृद् भृकुटिः सुखाय। मन्त्राधिराजकल्प ३.५७

२ आचारदिनकर ३४, पृ० १७६; प्रवचनसारोद्धार ८

३ त्रि०श०पु०च० ३.६.१०९–१०

४ पद्मानन्दमहाकाव्य : परिशिष्ट—चन्द्रप्रभ १८–१९

५ देवतामूर्तिप्रकरण ७.३३

६ ज्वालिनी महिषारूढा देवी श्वेता भुजाष्टका।
काण्डंचक्रंत्रिशूलं च धत्ते पाशं च मू(क)षं ॥ प्रतिष्ठासारसंग्रह ५.३२

७ चन्द्रोज्ज्वलां चक्रशरासपाश चर्मत्रिशूलेषुझषासिहस्ताम्। प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१६२

८ चक्रं चापमहीशपाशफलके सव्यैश्चतुर्भिः करैरन्यैः।
शूलमिषुं झषं ज्वलदसि धत्तेऽत्र या दुर्जया ॥ प्रतिष्ठातिलकम् ७.८, पृ० ३४३

९ कृष्णा चतुर्भुजा घण्टा त्रिशूलं च फलं वरम्।
पद्मासना वृषारूढा कामदा ज्वालमालिनी ॥ अपराजितपृच्छा २२१.२२

१० जैन परम्परा में महाविद्या महाज्वाला का वाहन महिष, शूकर, हंस एवं बिडाल बताया गया है। दिगंबर ग्रन्थों में महाविद्या के हाथों में खड्ग, खेटक, बाण और धनुष प्रदर्शित हैं।

११ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २०१

१२ देसाई, पी०बी०, जैनिज्म इन साउथ इण्डिया ऐण्ड सम जैन एपिग्राफ्स, शोलापुर, १९६३, पृ० १७२

१३ जि०इ०दे०, पृ० १०७

में सिंहवाहन उत्कीर्ण है। सुमालिनी का लाक्षणिक स्वरूप निश्चित ही १६ वीं महाविद्या महामानसी से प्रभावित है।[1] बारभुजी गुफा की मूर्ति में सिंहवाहना यक्षी द्वादशभुजा है। यक्षी की दाहिनी भुजाओं में वरदमुद्रा, कृपाण, चक्र, बाण, गदा (?) एवं खड्ग और बायीं में वरदमुद्रा, खेटक, धनुष, शंख, पाश एवं घण्ट प्रदर्शित हैं।[2] सिंहवाहन के अतिरिक्त मूर्ति की अन्य विशेषताएं सामान्यतः दिगंबर ग्रन्थों से मेल खाती हैं।

जिन-संयुक्त मूर्तियां (९ वीं-१२ वीं शती ई०) कौशाम्बी, देवगढ़, खजुराहो, एवं राज्य संग्रहालय, लखनऊ में हैं। इनमें अधिकांशतः द्विभुजा यक्षी सामान्य लक्षणों वाली है। यक्षी के हाथों में अभयमुद्रा (या पुष्प) और फल (या कलश या पुष्प) प्रदर्शित हैं। देवगढ़ (मन्दिर २०, २१) एवं खजुराहो (मन्दिर ३२) की तीन चन्द्रप्रभ मूर्तियों में यक्षी चतुर्भुजा है। यक्षी के दो हाथों में पद्म एवं पुस्तक, और शेष दो में अभयमुद्रा, कलश एवं फल में से कोई दो प्रदर्शित हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि जिन-संयुक्त मूर्तियों में भी यक्षी को पारम्परिक या स्वतन्त्र स्वरूप में अभिव्यक्ति नहीं मिली।

(९) अजित यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

अजित जिन सुविधिनाथ (या पुष्पदन्त) का यक्ष है। दोनों परम्पराओं में चतुर्भुज यक्ष का वाहन कूर्म है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका में चतुर्भुज अजित के दक्षिण करों में मातुलिंग एवं अक्षसूत्र और वाम में नकुल एवं शूल का वर्णन है।[3] अन्य ग्रन्थों में भी इन्हीं आयुधों के उल्लेख हैं। पर मन्त्राधिराजकल्प में अक्षसूत्र के स्थान पर अभयमुद्रा और आचारदिनकर में शूल के स्थान पर अतुल रत्नराशि के प्रदर्शन के निर्देश हैं।[4]

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह में कूर्म पर आरूढ़ अजित के हाथों में फल, अक्षसूत्र, शक्ति एवं वरदमुद्रा वर्णित हैं।[5] परवर्ती ग्रन्थों में भी इन्हीं आयुधों के उल्लेख हैं। उपर्युक्त से स्पष्ट है कि दिगंबर परम्परा श्वेतांबर परम्परा की अनुगामिनी है। नकुल के स्थान पर वरदमुद्रा का उल्लेख दिगंबर परम्परा की नवीनता है।

दक्षिण भारतीय परम्परा—दोनों परम्परा के ग्रन्थों में कूर्म पर आरूढ़ अजित चतुर्भुज है। दिगंबर ग्रन्थ में यक्ष के दाहिने हाथों में अक्षमाला एवं अभयमुद्रा और बायें में शूल एवं फल का उल्लेख है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में यक्ष के हाथों में कशा, दण्ड, त्रिशूल एवं परशु के प्रदर्शन का विधान है। यक्ष-यक्षी-लक्षण में फल, अक्षसूत्र, त्रिशूल एवं वरदमुद्रा का उल्लेख है।[6] दोनों परम्पराओं के विवरण उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा से प्रभावित प्रतीत होते हैं।[7]

अजित यक्ष की एक भी स्वतन्त्र या जिन-संयुक्त मूर्ति नहीं मिली है।

---

१ श्वेतांबर परम्परा में सिंहवाहना महामानसी के मुख्य आयुध खड्ग एवं खेटक हैं।

२ मिश्रा, देवला, पू०नि०, पृ० १३१

३ अजितयक्षं श्वेतवर्णं कूर्मवाहनं चतुर्भुजं मातुलिंगाक्षसूत्रयुक्तदक्षिणपाणिं नकुलकुन्तान्वितवामपाणिं चेति। निर्वाणकलिका १८.९; द्रष्टव्य, त्रि०श०पु०च० ३.७.१३८–३९

४ मन्त्राधिराजकल्प ३.३३; आचारदिनकर ३४, पृ० १७४

५ अजितः पुष्पदन्तस्य यक्षः श्वेतश्चतुर्भुजः।
फलाक्षसूत्रशक्त्याढ्यवरदः कूर्मवाहनः॥ प्रतिष्ठासारसंग्रह ५.३३
द्रष्टव्य, प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१३७; प्रतिष्ठातिलकम् ७.९, पृ० ३३३; अपराजितपृच्छा २२१.४८

६ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २०१

७ केवल शक्ति के स्थान पर त्रिशूल का उल्लेख है।

(९) सुतारा (या महाकाली) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

सुतारा (या महाकाली) जिन सुविधिनाथ (या पुष्पदन्त) की यक्षी है। श्वेतांबर परम्परा में यक्षी को सुतारा (या चाण्डालिका) और दिगंबर परम्परा में महाकाली कहा गया है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका में वृषभवाहना सुतारा चतुर्भुजा है। यक्षी के दाहिने हाथों में वरदमुद्रा एवं अक्षमाला और बायें में कलश एवं अंकुश वर्णित है।[1] अन्य ग्रन्थों में भी इन्हीं लक्षणों के उल्लेख हैं।[2]

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह में कूर्मवाहना महाकाली चतुर्भुजा है। यक्षी तीन भुजाओं में वज्र, मुद्गर और फल लिये है। चौथी भुजा की सामग्री का अनुल्लेख है।[3] अन्य ग्रन्थों में चौथी भुजा में वरदमुद्रा बतायी गयी है।[4] अपराजितपृच्छा में मुद्गर और फल के स्थान पर गदा और अभयमुद्रा का उल्लेख है।[5] यक्षी का स्वरूप सम्भवतः ८ वीं महाविद्या महाकाली से प्रभावित है। यक्षी का कूर्मवाहन अजित यक्ष के कूर्मवाहन से सम्बन्धित हो सकता है।[6]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ में चतुर्भुजा यक्षी के ऊपरी हाथों में दण्ड एवं फल (या वज्र) और नीचे के हाथों में अभय-एवं कटक-मुद्रा का उल्लेख है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में सिंहवाहना यक्षी के करों में खड्ग, फल, वज्र एवं पद्म वर्णित हैं। यक्ष-यक्षी-लक्षण में कूर्मवाहना यक्षी के करों में सवंश (? आयुध या ज्ञानमुद्रा), मुद्गर, फल एवं वरदमुद्रा के प्रदर्शन का निर्देश है।[7]

मूर्ति-परम्परा

महाकाली की केवल दो स्वतन्त्र मूर्तियां मिली हैं। ये मूर्तियां देवगढ़ (मन्दिर १२, ८६२ ई०) और बारभुजी गुफा के सामूहिक चित्रणों में उत्कीर्ण हैं। इनमें देवी के निरूपण में पारम्परिक विशेषताएं नहीं प्रदर्शित हैं। देवगढ़ में पुष्पदन्त के साथ 'बहुरूपी' नाम की सामान्य लक्षणों वाली द्विभुजी यक्षी आमूर्तित है। यक्षी के दाहिने हाथ में चामर-पद्म है और बायां जानु पर स्थित है।[8] बारभुजी गुफा की मूर्ति में दशभुजा यक्षी वृषभवाहना है। यक्षी के दक्षिण करों में वरदमुद्रा, चक्र (?), पक्षी, फलों से भरा पात्र (?) एवं चक्र (?), और वाम में अर्धचन्द्र, तर्जनीमुद्रा, सर्प, पुष्प (?) एवं मयूरपंख (या वृक्ष की डाल) प्रदर्शित हैं।[9]

(१०) ब्रह्मा यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

ब्रह्मा जिन शीतलनाथ का यक्ष है। दोनों परम्पराओं में चतुर्मुख एवं अष्टभुज ब्रह्मा यक्ष का वाहन पद्म बताया गया है।

---

१ सुतारादेवीं गौरवर्णां वृषवाहनां चतुर्भुजां वरदाक्षसूत्रयुक्तदक्षिणभुजां कलशांकुशान्वितवामपाणिं चेति । निर्वाणकलिका १८.९

२ त्रि०श०पु०च० ३.७.१४०–४१; पद्मानन्दमहाकाव्यः परिशिष्ट–सुविधिनाथ १८–१९; मन्त्राधिराजकल्प ३.५७; आचारदिनकर ३४, पृ० १७६

३ देवी तथा महाकाली विनीता कूर्मवाहना ।
सवज्रमुद्गरा (कृष्णा) फलहस्ता चतुर्भुजा ॥ प्रतिष्ठासारसंग्रह ५.३४

४ प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१६३; प्रतिष्ठातिलकम् ७.९, पृ० ३४३

५ चतुर्भुजा कृष्णवर्णा वज्र गदावराभयाः । अपराजितपृच्छा २२१.२३

६ स्मरणीय है कि सुविधिनाथ (या पुष्पदंत) का लांछन मकर है।

७ रामचन्द्रन, टी०एन०, पू०नि०, पृ० २०२

८ जि०इ०दे०, पृ० १०७

९ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १३१

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका में चतुर्मुख और त्रिनेत्र ब्रह्म के दाहिने हाथों में मातुलिंग, मुद्गर, पाश एवं अभयमुद्रा और बायें में नकुल, गदा, अंकुश एवं अक्षसूत्र का वर्णन है।[1] अन्य ग्रन्थों में भी इन्हीं आयुधों का उल्लेख है।[2] मन्त्राधिराजकल्प में अभयमुद्रा के स्थान पर वरदमुद्रा का उल्लेख है।[3] आचारदिनकर में यक्ष दस भुजाओं और बारह नेत्रों वाला है। उसकी आठ भुजाओं में निर्वाणकलिका के आयुधों का और शेष दो में पाश एवं पद्म का उल्लेख है।[4]

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह में चतुर्मुख ब्रह्म सरोज पर आसीन है। ग्रन्थ में उसके आयुधों का अनुल्लेख है।[5] प्रतिष्ठासारोद्धार में केवल छह हाथों के ही आयुधों का उल्लेख है। दाहिने हाथों में बाण, खड्ग, वरदमुद्रा और बायें में धनुष, दण्ड, खेटक वर्णित हैं।[6] प्रतिष्ठातिलकम् में यक्ष की केवल सात भुजाओं के ही आयुध स्पष्ट हैं। प्रतिष्ठासारोद्धार से भिन्न प्रतिष्ठातिलकम् में वज्र और परशु का उल्लेख है, किन्तु बाण का अनुल्लेख है।[7] अपराजितपृच्छा में ब्रह्म चतुर्मुख है और उसका वाहन हंस है। यक्ष के करों में पाश, अंकुश, अभयमुद्रा और वरदमुद्रा का वर्णन है।[8]

यक्ष का नाम (ब्रह्म), उसका चतुर्मुख होना, पद्म और हंसवाहनों के उल्लेख तथा एक हाथ में अक्षमाला का प्रदर्शन—ये सभी बातें ब्रह्मयक्ष के निरूपण में हिन्दू देव ब्रह्मा-प्रजापति का प्रभाव दरशाती हैं।

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ में पद्मकलिका पर आसीन अष्टभुज ब्रह्मेश्वर (या ब्रह्मा) यक्ष को त्रिनेत्र एवं चतुर्मुख बताया गया है। यक्ष के छह हाथों में गदा, खड्ग, खेटक एवं दण्ड जैसे आयुधों और शेष दो में अभय-एवं कटक-मुद्रा का उल्लेख है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में सिंह पर आरूढ़ यक्ष अष्टभुज है और उसके हाथों में खड्ग, खेटक, बाण, धनुष, परशु, वज्र, पाश एवं अभय-(या वरद-) मुद्रा का वर्णन है। यक्ष-यक्षी-लक्षण में पद्म वाहन से युक्त चतुर्मुख एवं अष्टभुज यक्ष के करों में खड्ग, खेटक, वरदमुद्रा, बाण, धनुष, दण्ड, परशु एवं वज्र के प्रदर्शन का निर्देश है।[9] उपर्युक्त से स्पष्ट है कि दोनों परम्पराओं के आयुधों एवं वाहन के सन्दर्भ में विवरण उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा से प्रभावित हैं।

ब्रह्म यक्ष की एक भी स्वतन्त्र या जिन-संयुक्त मूर्ति नहीं मिली है।

(१०) अशोका (या मानवी) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

अशोका (या मानवी) जिन शीतलनाथ की यक्षी है। श्वेतांबर परम्परा में चतुर्भुजा अशोका (या गोमेधिका) पद्मवाहना है और दिगंबर परम्परा में चतुर्भुजा मानवी शूकरवाहना है।

---

१ ब्रह्मयक्षं चतुर्मुखं त्रिनेत्रं धवलवर्णं पद्मासनमष्टभुजं मातुलिंगमुद्गरपाशाभययुक्तदक्षिणपाणिं नकुलगदांकुशाक्षसूत्रान्वितवामपाणिं चेति। निर्वाणकलिका १८.१०

२ त्रि०श०पु०च० ३.८.१११–१२; पद्मानन्दमहाकाव्य : परिशिष्ट—शीतलनाथ १७–१८

३ मन्त्राधिराजकल्प ३.३४

४ वसुमितभुजयुक् चतुर्वक्त्रभाग् द्वादशाक्षो रुचा सरसिजविहितासनो मातुलिंगाभये पाशयुग्मुद्गरं दधदतिगुणमेवहस्तोत्करे दक्षिणे चापि वामे गदां सृणिनकुलसरोजमालावलीं ब्रह्मनामा सुपर्वोत्तमः। आचारदिनकर ३४, पृ० १७४

५ शीतलस्य जिनेन्द्रस्य ब्रह्मयक्षश्चतुर्मुखः।
अष्टबाहुः सरोजस्थः श्वेतवर्णः प्रकीर्तितः॥ प्रतिष्ठासारसंग्रह ५.३५

६ श्रीवृक्षकेतननतो धनुदण्डखेटवज्रा–(? वज्रा-) ढ्यसव्यसय इन्दुसितोम्बुजस्थः।
ब्रह्मा शरस्वधितिखड्गवरप्रदानव्यग्रान्यपाणिरुपयातु चतुर्मुखोर्चाम्॥ प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१३८

७ सचापदण्डोर्जितखेटवज्रसव्योद्धपाणिं नुतशीतलेशम्।
सव्यान्यहस्तेषु परश्वसीष्टदानं यजे ब्रह्मसमाख्ययक्षम्॥ प्रतिष्ठातिलकम् ७.१०, पृ० ३३४

८ पाशाङ्कुशाभयवरा ब्रह्मा स्याद्धंसवाहनः। अपराजितपृच्छा २२१.४९

९ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २०२–२०३

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका में पद्मवाहना अशोका के दक्षिण करों में वरदमुद्रा एवं पाश और वाम में फल एवं अंकुश वर्णित हैं।[१] अन्य ग्रन्थों में भी यही लक्षण हैं।[२] आचारदिनकर में नृत्यरत अप्सराओं से वेष्टित यक्षी के एक हाथ में फल के स्थान पर वज्र का उल्लेख है।[३] देवतामूर्तिप्रकरण में पाश के स्थान पर नागपाश दिया गया है।[४]

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह में शूकरवाहना मानवी के तीन हाथों में फल, वरदमुद्रा एवं झष के प्रदर्शन का निर्देश है; चौथे हाथ के आयुध का अनुल्लेख है।[५] प्रतिष्ठासारोद्धार में मानवी का वाहन काला नाग है और उसकी चौथी भुजा में पाश का उल्लेख है।[६] प्रतिष्ठातिलकम् में पुन: तीन ही हाथों के आयुधों के उल्लेख के कारण पाश का अनुल्लेख है, और वरदमुद्रा के स्थान पर माला का उल्लेख है।[७] अपराजितपृच्छा में शूकरवाहना मानवी के करों में पाश, अंकुश, फल और वरदमुद्रा का वर्णन है।[८] मानवी का स्वरूप दिगंबर परम्परा की १२वीं महाविद्या मानवी से प्रभावित है।[९]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ में चतुर्भुजा यक्षी के ऊपरी हाथों में अक्षमाला एवं झष और निचले में अभय-एवं कटक-मुद्रा का उल्लेख है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में द्विभुजा यक्षी मकरवाहना है एवं उसके आयुध वरदमुद्रा एवं पद्म हैं। यक्ष-यक्षी-लक्षण में चतुर्भुजा मानवी का वाहन कृष्ण शूकर है और उसके हाथों में झष, अक्षसूत्र, हार एवं वरदमुद्रा का वर्णन है।[१०] शूकरवाहन एवं झष का प्रदर्शन सम्भवत: उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा से प्रभावित है।

मूर्ति-परम्परा

यक्षी की केवल दो स्वतन्त्र मूर्तियां मिली हैं। ये मूर्तियां देवगढ़ (मन्दिर १२, ८६२ ई०) एवं बारभुजी गुफा के सामूहिक अंकनों में उत्कीर्ण हैं। इनमें यक्षी के साथ पारम्परिक विशेषताएं नहीं प्रदर्शित हैं। देवगढ़ में शीतलनाथ के साथ 'श्रीया देवी' नाम की चतुर्भुजा यक्षी निरूपित है। यक्षी के तीन हाथों में फल,पद्म, फल (या कलश) प्रदर्शित हैं और चौथी भुजा जानु पर स्थित है। यक्षी के दोनों पार्श्वों में वृक्ष के तने उत्कीर्ण हैं। सम्भव है कि श्रीयादेवी नाम श्रीदेवी का सूचक हो जो लक्ष्मी का ही दूसरा नाम है।[११] बारभुजी गुफा की मूर्ति में चतुर्भुजा यक्षी का वाहन कोई पशु है। यक्षी के नीचे के हाथों में वरदमुद्रा एवं दण्ड और ऊपरी हाथों में चक्र एवं शंख (या फल) प्रदर्शित हैं।[१२]

---

१ अशोकां देवीं मुद्गवर्णां पद्मवाहनां चतुर्भुजां वरदपाशयुक्तदक्षिणकरां फलांकुशयुक्तवामकरां चेति। निर्वाणकलिका १८.१०

२ त्रि०श०पु०च० ३.८.११३–१४; पद्मानन्दमहाकाव्य : परिशिष्ट–शीतलनाथ १९–२०; मन्त्राधिराजकल्प ३.५८

३ ''''वामे चांकुशवज्रिणी बहुगुणाऽशोका विशोका जनं कुर्यादप्सरसां गणैः प्रविवृता नृत्यद्भिरानन्दितैः। आचारदिनकर ३४, पृ० १७६

४ वरदं नागपाशं चांकुशं वै बीजपूरकम्। देवतामूर्तिप्रकरण ७.३७

५ मानवी च हरिद्वर्णा झषहस्ताचतुर्भुजः।
कृष्णशूकरयानस्था फलहस्तवरप्रदा ॥ प्रतिष्ठासारसंग्रह ५.३६

६ झषदामरुचकदानोचितहस्तां कृष्णकालगां हरिताम्। प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१६४

७ ऊर्ध्वद्विहस्तोद्धृतमत्स्यमालां अधोद्विहस्ताक्षफलप्रदानाम्। प्रतिष्ठातिलकम् ७.१०, पृ० ३४३

८ चतुर्भुजा श्यामवर्णा पाशाङ्कुशफलंवरम्।
सूकरोपरिसंस्था च मानवी चार्थदायिनी ॥ अपराजितपृच्छा २२१.२४

९ यह प्रभाव यक्षी के नाम, शूकरवाहन एवं भुजा में झष के प्रदर्शन के सन्दर्भ में देखा जा सकता है। दिगंबर परम्परा में महाविद्या मानवी का वाहन शूकर है और उसके करों मे झष, त्रिशूल एवं खड्ग प्रदर्शित हैं।

१० रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २०३

११ जि०इ०दे०, पृ० १०७

१२ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १३१

(११) ईश्वर यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

ईश्वर[1] जिन श्रेयांसनाथ का यक्ष है। दोनों परम्पराओं में वृषभारूढ ईश्वर त्रिनेत्र एवं चतुर्भुज है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका में ईश्वर के दक्षिण करों में मातुलिंग एवं गदा और वाम में नकुल एवं अक्षसूत्र वर्णित है।[2] अन्य ग्रन्थों में भी यही लाक्षणिक विशेषताएं प्राप्त होती हैं।[3] केवल देवतामूर्तिप्रकरण में नकुल और अक्षसूत्र के स्थान पर अंकुश और पद्म के प्रदर्शन का निर्देश है।[4]

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह में ईश्वर के तीन हाथों में फल, अक्षसूत्र एवं त्रिशूल का उल्लेख है, पर चौथे हाथ की सामग्री का अनुल्लेख है।[5] प्रतिष्ठासारोद्धार[6] एवं अपराजितपृच्छा[7] में चौथे हाथ में क्रमशः दण्ड और वरद-मुद्रा के प्रदर्शन का निर्देश है।

दोनों परम्पराओं में यक्ष का नाम, वाहन (वृषभ) एवं उसका त्रिनेत्र होना शिव से प्रभावित है। दिगंबर परम्परा में भुजाओं में त्रिशूल एवं दण्ड के उल्लेख इसी प्रभाव के समर्थक हैं।

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ में नन्दी पर आरूढ एवं अर्धचन्द्र से शोभित चतुर्भुज ईश्वर के वाम-करों में त्रिशूल एवं दण्ड और दक्षिण में कटक-एवं-अभय-मुद्रा का वर्णन है। श्वेतांबर ग्रन्थों में वृषभारूढ यक्ष चतुर्भुज है। अज्ञातनाम ग्रन्थ में ईश्वर के करों में शर, चाप, त्रिशूल एवं दण्ड का उल्लेख है। यक्ष-यक्षी-लक्षण में यक्ष को त्रिनेत्र और फल, अभयमुद्रा, त्रिशूल एवं दण्ड से युक्त बताया गया है।[8] उपर्युक्त से स्पष्ट है कि दोनों परम्पराओं में ईश्वर का स्वरूप उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा से प्रभावित है।

ईश्वर यक्ष की एक भी स्वतन्त्र या जिन-संयुक्त मूर्ति नहीं मिली है।[9]

---

१ प्रवचनसारोद्धार और आचारदिनकर में यक्ष को क्रमशः मनुज और यक्षराज नामों से सम्बोधित किया गया है।

२ ईश्वरयक्षं धवलवर्णं त्रिनेत्रं वृषभवाहनं चतुर्भुजं मातुलिंगगदान्वितदक्षिणपाणिं नकुलकाक्षसूत्रयुक्तवामपाणिं चेति। निर्वाणकलिका १८.११

३ त्रि०श०पु०च० ४.१.७८४-८५; पद्मानन्दमहाकाव्य : परिशिष्ट-श्रेयांसनाथ १९-२०; आचारदिनकर ३४, पृ०१७४; मन्त्राधिराजकल्प ३.५

४ मातुलिंगं गदां चैवांकुशं च कमलं क्रमात्। देवतामूर्तिप्रकरण ७.३८

५ ईश्वरः श्रेयसो यक्षस्त्रिनेत्रो वृषवाहनः।
फलाक्षसूत्रसंयुक्तः सत्रिशूलश्चतुर्भुजः॥ प्रतिष्ठासारसंग्रह ५.३७

६ त्रिशूलदण्डान्वितवामहस्तः करेऽक्षसूत्रं त्वपरे फलं च। प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१३९;
द्रष्टव्य, प्रतिष्ठातिलकम् ७.११, पृ० ३३४

७ त्रिशूलाक्षफलवरा यक्षेट्श्वेतो वृषस्थितः। अपराजितपृच्छा २२१.४९

८ रामचन्द्रन, टी०एन०, पू०नि०, पृ० २०३

९ खजुराहो के पार्श्वनाथ मन्दिर के गर्भगृह एवं मण्डप की भित्तियों पर नन्दीवाहन से युक्त कई चतुर्भुज मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। जटामुकुट से सज्जित देवता के करों में वरदाक्ष (या पद्म), त्रिशूल, सर्प एवं कमण्डलु प्रदर्शित हैं। लक्षणों के आधार पर देवता की सम्भावित पहचान ईश्वर यक्ष से की जा सकती है। पर पार्श्वनाथ मन्दिर की भित्तियों की सम्पूर्ण शिल्प सामग्री के सन्दर्भ में देवता को शिव का अंकन मानना ही अधिक प्रासंगिक एवं उचित होगा।

(११) मानवी (या गौरी) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

मानवी (या गौरी) जिन श्रेयांशनाथ की यक्षी है। श्वेतांबर परम्परा में चतुर्भुजा मानवी (या श्रीवत्सा या सिंहुभवा) का वाहन सिंह और दिगंबर परम्परा में चतुर्भुजा गौरी का वाहन मृग है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका में सिंहवाहना मानवी के दाहिने हाथों में वरदमुद्रा एवं मुद्गर और बायें में कलश एवं अंकुश हैं।[1] त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र में कलश के स्थान पर वज्र,[2] प्रवचनसारोद्धार में मुद्गर के स्थान पर पाश,[3] पद्मानन्दमहाकाव्य में कलश और अंकुश के स्थान पर नकुल और अक्षसूत्र,[4] आचारदिनकर में दो वामकरों में अंकुश[5] और देवतामूर्तिप्रकरण में कलश के स्थान पर नकुल[6] के प्रदर्शन के उल्लेख हैं।

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह में मृगवाहना गौरी के केवल दो हाथों के आयुधों का उल्लेख है जो पद्म और वरदमुद्रा हैं।[7] प्रतिष्ठासारोद्धार में गौरी के करों में मुद्गर, अब्ज, कलश एवं वरदमुद्रा का उल्लेख है।[8] अपराजितपृच्छा में मुद्गर एवं कलश के स्थान पर पाश एवं अंकुश प्रदर्शित हैं।[9] यक्षी का नाम एवं एक हाथ में पद्म का प्रदर्शन ९ वीं महाविद्या गौरी का प्रभाव है।[10]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ में नन्दी पर आरूढ़ चतुर्भुजा यक्षी अर्धचन्द्र से युक्त है। उसके दक्षिण करों में जलपात्र एवं अभयमुद्रा और वाम में वरदमुद्रा एवं दण्ड का उल्लेख है। यक्षी का निरूपण ईश्वर यक्ष से प्रभावित है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में हंसवाहना यक्षी द्विभुजा है और उसके करों में कशा एवं अंकुश का वर्णन है। यक्ष-यक्षी-लक्षण में चतुर्भुजा यक्षी का वाहन मृग है और उसके हाथों में उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा के अनुरूप पद्म, मुद्गर (? मुग्दिर), कलश एवं वरदमुद्रा वर्णित हैं।[11]

मूर्ति-परम्परा

यक्षी की तीन स्वतन्त्र मूर्तियां (दिगंबर परम्परा) मिली हैं। दो मूर्तियां क्रमशः देवगढ़ (मन्दिर १२, ८६२ ई०) एवं बारभुजी गुफा के सामूहिक अंकनों और एक मालादेवी मन्दिर (ग्यारसपुर, म० प्र०) में उत्कीर्ण हैं। देवगढ़ में श्रेयांश

---

१ मानवीं देवीं गौरवर्णां सिंहवाहनां चतुर्भुजां वरदमुद्गरान्वितदक्षिणपाणिं कलशांकुशयुक्तवामकरां चेति।
 निर्वाणकलिका १८.११; मन्त्राधिराजकल्प ३.५८

२ ....वामौ च बिभ्रती पाणी कुलिशांकुशधारिणौ। त्रि०श०पु०च० ४.१.७८६–८७

३ ....वरदपाशयुक्तदक्षिणकरद्वया कलशांकुशयुक्तवामकरद्वया। प्रवचनसारोद्धार ११.३७५, पृ० ९४

४ ....वामौ तु सनकुलाऽक्षसूत्रौ श्रेयांसशासने। पद्मानन्दमहाकाव्य : परिशिष्ट—श्रेयांशनाथ २०

५ ....वामं हस्तयुगं तटांकुशयुतं.... । आचारदिनकर ३४, पृ० १७७

६ अंकुशं वरदं हस्तं नकुलं मुद्ग(लं ? रं) तथा। देवतामूर्तिप्रकरण ७.३९

७ पद्महस्ता सुवर्णाभा गौरीदेवी चतुर्भुजा।
 जिनेन्द्रशासने भक्ता वरदा मृगवाहना॥ प्रतिष्ठासारसंग्रह ५.३८

८ समुद्गराब्जकलशां वरदां कनकप्रभाम्। प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१६५; द्रष्टव्य, प्रतिष्ठातिलकम् ७.११, पृ० ३४४

९ पाशांकुशाब्जवरदा कनकाभा चतुर्भुजा।
 सा कृष्णहरिणारूढा कार्या गौरी च शान्तिदा॥ अपराजितपृच्छा २२१.२५

१० ज्ञातव्य है कि हिन्दू गौरी की भी एक भुजा में पद्म प्रदर्शित है।

११ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २०३

के साथ 'बहुरूपिणी' नाम की सामान्य लक्षणों वाली द्विभुजा यक्षी निरूपित है।[1] यक्षी की दाहिनी भुजा में पद्म है और बायीं जानु पर स्थित है। मालादेवी मन्दिर के मण्डोवर की दक्षिणी जंघा पर चतुर्भुजा गौरी ललितमुद्रा में पद्मासन पर विराजमान है। यक्षी का वाहन मृग है और उसके करों में वरदमुद्रा, अभयमुद्रा, पद्म एवं फल प्रदर्शित हैं। बारभुजी गुफा की चतुर्भुज मूर्ति में यक्षी का वाहन खण्डित है और उसके हाथों में वरदमुद्रा, अक्षमाला, पुस्तक एवं जलपात्र प्रदर्शित है।[2] उपर्युक्त तीन मूर्तियों में से केवल मालादेवी मन्दिर की मूर्ति में ही पारम्परिक विशेषताएं प्रदर्शित हैं।

(१२) कुमार यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

कुमार जिन वासुपूज्य का यक्ष है। दोनों परम्पराओं में उसका वाहन हंस है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका में चतुर्भुज कुमार के दक्षिण करों में बीजपूरक एवं बाण और वाम में नकुल एवं धनुष का उल्लेख है।[3] अन्य ग्रन्थों में भी यही लक्षण वर्णित हैं।[4] केवल प्रवचनसारोद्धार में बाण के स्थान पर वीणा मिलता है।[5]

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह में कुमार के त्रिमुख या षण्मुख होने का उल्लेख है। ग्रन्थ में आयुधों का उल्लेख नहीं है।[6] अन्य ग्रन्थों में कुमार को त्रिमुख या षण्मुख नहीं बताया गया है। प्रतिष्ठासारोद्धार में चतुर्भुज कुमार के दाहिने हाथों में वरदमुद्रा एवं गदा और बायें में धनुष एवं फल वर्णित हैं।[7] प्रतिष्ठातिलकम् में कुमार षड्भुज है और उसके दाहिने हाथों में बाण, गदा एवं वरदमुद्रा और बायें हाथों में धनुष, नकुल एवं मातुलिंग का उल्लेख है।[8] अपराजितपृच्छा में चतुर्भुज कुमार का वाहन मयूर है और उसके करों में धनुष, बाण, फल एवं वरदमुद्रा हैं।[9]

यद्यपि कुमार नाम हिन्दू कुमार (या कार्तिकेय) से ग्रहण किया गया, पर जैन यक्ष के लिए स्वतन्त्र लक्षणों की कल्पना की गई।[10] जैन देवकुल पर हिन्दू प्रभाव के सन्दर्भ में एक महत्वपूर्ण बात यह है कि जैन आचार्यों ने कभी-कभी जानबूझकर हिन्दू प्रभाव को छिपाने का प्रयास किया है। इस प्रकार के प्रयास में एक जैन देवता के लिए नाम एवं लाक्षणिक विशेषताएं दो अलग-अलग हिन्दू देवों से ग्रहण की गईं। उदाहरण के लिए १२ वें यक्ष कुमार का वाहन हंस है, पर १३ वें यक्ष चतुर्मुख का वाहन मयूर है। इसमें स्पष्टतः कुमार के मयूर वाहन को चतुर्मुख (यानी ब्रह्मा) के साथ और चतुर्मुख के हंस वाहन को कुमार के साथ प्रदर्शित किया गया है।

---

१ जि०इ०दे०, पृ० १०७ २ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १३१

३ कुमारयक्षं श्वेतवर्णं हंसवाहनं चतुर्भुजं मातुलिंगबाणान्वितदक्षिणपाणिं नकुलकधनुर्युक्तवामपाणिं चेति। निर्वाणकलिका १८.१२

४ त्रि०श०पु०च० ४.२.२८६–८७; पद्मानन्दमहाकाव्य : परिशिष्ट–वासुपूज्य १७–१८; मन्त्राधिराजकल्प ३.३६; आचारदिनकर ३४, पृ० १७४

५ ····बीजपूरकवीणान्वितदक्षिणपाणिद्वयो—प्रवचनसारोद्धार १२.३७३, पृ० ९३

६ वासुपूज्य जिनेन्द्रस्य यक्षो नाम्ना कुमारिकः।
त्रिमुखः षण्मुखः श्वेत सुरूपो हंसवाहनः॥ प्रतिष्ठासारसंग्रह ५.३९

७ शुभ्रो धनुर्बभ्रुफलाढ्यसव्यहस्तोन्यहस्तेषु गदेष्टदानः।
लुलाय लक्ष्मप्रणतस्त्रिवक्त्रः प्रमोदतां हंसचरः कुमारः॥ प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१४०

८ हस्तैर्धनुर्बभ्रुफलानि सव्यैरन्यैरिषुं चालयां वरं च। प्रतिष्ठातिलकम् ७.१२, पृ० ३३४

९ धनुर्बाणफलवराः कुमारः शिखिवाहनः। अपराजितपृच्छा २२१.५०

१० पर दिगंबर परम्परा में कभी-कभी कुमार को हिन्दू कुमार के समान ही षण्मुख एवं मयूर वाहन से युक्त भी निरूपित किया गया है।

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ में मयूर पर आरूढ़ त्रिमुख एवं षड्भुज यक्ष के दाहिने हाथों में पाश, शूल, अभयमुद्रा और बायें में वज्र (?), धनुष, वरदमुद्रा वर्णित हैं। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में हंस पर आरूढ़ चतुर्भुज यक्ष के करों में शर, चाप, मातुलिंग एवं दण्ड का उल्लेख है। यक्ष-यक्षी-लक्षण में हंस पर आरूढ़ त्रिमुख एवं षड्भुज यक्ष के आयुधों का अनुल्लेख है।[1]

कुमार यक्ष की एक भी स्वतन्त्र मूर्ति नहीं मिली है। विमलवसही की देवकुलिका ४१ की वासुपूज्य की मूर्ति में सर्वानुभूति यक्ष निरूपित है।

(१२) चण्डा (या गांधारी) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

चण्डा (या गान्धारी) जिन वासुपूज्य की यक्षी है। श्वेतांबर परम्परा में यक्षी को प्रचण्डा, प्रवरा, चन्द्रा और अजिता नामों से भी सम्बोधित किया गया है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका में चतुर्भुजा प्रचण्डा का वाहन अश्व है और उसके दाहिने हाथों में वरद-मुद्रा एवं शक्ति और बायें में पुष्प एवं गदा हैं।[2] अन्य ग्रन्थों में भी इन्हीं लक्षणों के उल्लेख हैं।[3] केवल मन्त्राधिराजकल्प में पुष्प के स्थान पर पाश का उल्लेख है।[4]

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह में पद्मवाहना गांधारी चतुर्भुजा है। गांधारी के दो हाथों में मुसल एवं पद्म हैं, शेष दो करों के आयुधों का अनुल्लेख है।[5] प्रतिष्ठासारोद्धार में चतुर्भुजा गांधारी का वाहन मकर (नक्र) है और उसके हाथों में मुसल एवं पद्म के साथ ही वरदमुद्रा एवं पद्म भी प्रदर्शित हैं।[6] अपराजितपृच्छा में गांधारी द्विभुजा है और उसके करों में पद्म एवं फल स्थित हैं।[7] गांधारी की लाक्षणिक विशेषताएं श्वेतांबर परम्परा की १० वीं महाविद्या गांधारी से प्रभावित हैं।[8]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ में सर्पवाहना यक्षी चतुर्भुजा है और उसके ऊपरी करों में दो दर्पण और निचली में अभयमुद्रा एवं दण्ड का वर्णन है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में हंसवाहना यक्षी द्विभुजा है जिसके दोनों हाथ वरद-एवं-ज्ञानमुद्रा में हैं। यक्ष-यक्षी-लक्षण में चतुर्भुजा यक्षी का वाहन मकर है और उसके हाथों में उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा के समान वरदमुद्रा, मुसल, पद्म एवं पद्म का उल्लेख है।[9]

---

१ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २०४

२ प्रचण्डादेवीं श्यामवर्णां अश्वारूढां चतुर्भुजां वरदशक्तियुक्तदक्षिणकरां पुष्पगदायुक्तवामपाणिं चेति ।
निर्वाणकलिका १८.१२

३ त्रि०श०पु०च० ४.२.२८८–८९; पद्मानन्दमहाकाव्यः परिशिष्ट—वासुपूज्य १८–१९; आचारदिनकर ,३४ पृ० १७७

४ कृष्णाजिता तुरगगा वरशक्तिहस्ता भूयाद्धिताय शुभदामगदे दधाना । मन्त्राधिराजकल्प ३.५९

५ गांधारीसंज्ञिका ज्ञेया हरिद्रा सा चतुर्भुजा ।
मुशलंपद्मयुक्तं च धत्ते कमलवाहना ॥ प्रतिष्ठासारसंग्रह ५.४०

६ सपद्ममुशलांभोजदाना मकरगा हरित् । प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१६६, द्रष्टव्य, प्रतिष्ठातिलकम् ७.१२, पृ० ३४४

७ करद्वये पद्मफले नक्रारूढा तथैव च ।
श्यामवर्णा प्रकर्तव्या गांधारी नामिकाभवेत् ॥ अपराजितपृच्छा २२१.२६

८ पद्मवाहना गांधारी महाविद्या वरदमुद्रा, मुसल एवं अभयमुद्रा से युक्त है।

९ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २०४

मूर्ति-परम्परा

यक्षी की चार स्वतन्त्र मूर्तियां (९वीं-१२वीं शती ई०) मिली हैं।[1] ये मूर्तियां देवगढ़ (मन्दिर १२, ८६२ ई०) एवं बारभुजी गुफा के समूहों एवं मालादेवी मन्दिर (ग्यारसपुर, म० प्र०) और नवमुनि गुफा से मिली हैं। देवगढ़ में वासुपूज्य के साथ 'अभोगरतिण (या अभोगरोहिणी)' नाम की द्विभुजा यक्षी आमूर्तित है।[2] यक्षी की दाहिनी भुजा में सर्प और बायीं में लम्बी माला प्रदर्शित हैं। सर्प का प्रदर्शन १३ वीं महाविद्या वैरोट्या का प्रभाव हो सकता है। मालादेवी मन्दिर (१० वीं शती ई०) के मण्डोवर की पश्चिमी जंघा की चतुर्भुजा देवी की सम्भावित पहचान गांधारी से की जा सकती है।[3] देवी ललितमुद्रा में पद्मासन पर विराजमान है और उसके आसन के नीचे मकर-मुख उत्कीर्ण है, जो सम्भवतः वाहन का सूचक है। पीठिका पर एक पंक्ति में नौ घट (नवनिधि के सूचक) भी बने हैं। देवी के तीन अवशिष्ट करों में से दो में पद्म एवं दर्पण हैं और तीसरा ऊपर उठा है।

नवमुनि गुफा में वासुपूज्य की चतुर्भुजा यक्षी मयूरवाहना है। जटामुकुट से शोभित यक्षी के करों में अभयमुद्रा, मातुलिंग, शक्ति एवं बालक प्रदर्शित हैं।[4] यक्षी की लाक्षणिक विशेषताएं अपारम्परिक और हिन्दू कौमारी से प्रभावित हैं।[5] बारभुजी गुफा की मूर्ति में अष्टभुजा यक्षी का वाहन पक्षी है। यक्षी के दाहिने हाथों में वरदमुद्रा, मातुलिंग (?), अक्षमाला, नीलोत्पल और बायें हाथों में जलपात्र, शंख पुष्प, सनालपद्म प्रदर्शित हैं।[6] यक्षी का निरूपण परम्परा-सम्मत नहीं है।

(१३) षण्मुख (या चतुर्मुख) यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

षण्मुख (या चतुर्मुख) जिन विमलनाथ का यक्ष है। दोनों परम्पराओं में इसका वाहन मयूर है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका में द्वादशभुज षण्मुख यक्ष का वाहन मयूर है। षण्मुख के दक्षिण करों में फल, चक्र, बाण, खड्ग, पाश एवं अक्षमाला और वाम में नकुल, चक्र, धनुष, फलक, अंकुश एवं अभयमुद्रा का उल्लेख है।[7] अन्य ग्रन्थों में भी यही विशेषताएं वर्णित हैं।[8] पर मन्त्राधिराजकल्प में बाण और पाश के स्थान पर शक्ति और नागपाश का उल्लेख है।[9]

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह में चतुर्मुख यक्ष द्वादशभुज है और उसका वाहन मयूर है। ग्रन्थ में आयुधों का अनुल्लेख है।[10] प्रतिष्ठासारोद्धार में चतुर्मुख के ऊपर के आठ हाथों में परशु और शेष चार में खड्ग (कौक्षेयक),

---

१ सभी मूर्तियां दिगंबर स्थलों से मिली हैं।

२ जि०इ०दे०, पृ० १०३, १०७

३ आसन के नीचे नौ घटों का चित्रण इस पहचान में बाधक है।

४ मित्रा, देबला, ब्रू०मि, पृ० १२८

५ राव, टी० ए० गोपीनाथ, पूर्वोनि०, पृ० ३८७–८८

६ मित्रा, देबला, ब्रू०मि०, पृ० १३१

७ षण्मुखं यक्षं श्वेतवर्णं शिखिवाहनं द्वादशभुजं फलचक्रबाणखड्गपाशाक्षसूत्रयुक्तदक्षिणपाणिं नकुलचक्रधनुःफलकांकुशा-भययुक्तवामपाणिं चेति। निर्वाणकलिका १८.१३

८ त्रि०श०पु०च० ४.३.१७८–७९; पद्मानन्दमहाकाव्यः परिशिष्ट-विमलस्वामी १९-२०; आचारदिनकर ३४, पृ०१७४

९ चक्राक्षवामफलशक्तिभुजंगपाशखड्गांकदक्षिणभुजः सितरुक् सुकेकी। मंत्राधिराजकल्प ३.३७

१० विमलस्य जिनेन्द्रस्य नामार्थाभ्यां चतुर्मुखः।
यक्षो द्वादशदोर्दण्डः सुरूपः शिखिवाहनः॥ प्रतिष्ठासारसंग्रह ५.४१

अक्षसूत्र (अक्षमणि), खेटक एवं दण्डमुद्रा के प्रदर्शन का निर्देश है।[1] अपराजितपृच्छा में यक्ष को षण्मुख और षड्भुज बताया गया है। यक्ष के चार हाथों में वज्र, धनुष, फल एवं वरदमुद्रा और शेष में बाण का उल्लेख है।[2]

चतुर्मुख नाम हिन्दू ब्रह्मा और षण्मुख नाम हिन्दू कुमार (या कार्तिकेय) से प्रभावित है। साथ ही दोनों परम्पराओं में वाहन के रूप में मयूर का उल्लेख भी हिन्दूदेव कुमार के ही प्रभाव का सूचक है।

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ में षण्मुख एवं द्वादशभुज यक्ष का वाहन कुक्कुट है। ग्रन्थ में केवल एक भुजा से अभयमुद्रा के प्रदर्शन का ही उल्लेख है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में द्वादशभुज यक्ष का वाहन कपि है। यक्ष के आठ हाथों में वरदमुद्रा और शेष चार में खड्ग, खेटक, परशु एवं ज्ञानमुद्रा का उल्लेख है। यक्ष-यक्षी-लक्षण में द्वादशभुज यक्ष का वाहन मयूर है और उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा के समान उसके आठ हाथों में परशु एवं शेष चार में फलक, खड्ग, दण्ड एवं अक्षमाला का वर्णन है।[3]

यक्ष की एक भी स्वतन्त्र मूर्ति नहीं मिली है। पर राज्य संग्रहालय, लखनऊ की एक विमलनाथ की मूर्ति (जे ७९१, १००९ ई०) में द्विभुज यक्ष आमूर्तित है। यक्ष के अवशिष्ट बायें हाथ में घट है।

(१३) विदिता (या वैरोटी) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

विदिता (या वैरोटी) जिन विमलनाथ की यक्षी है। श्वेतांबर परम्परा में चतुर्भुजा विदिता[4] का वाहन पद्म और दिगंबर परम्परा में चतुर्भुजा वैरोटी का वाहन सर्प है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका में पद्मवाहना विदिता के दक्षिण करों में बाण एवं पाश और वाम में धनुष एवं सर्प का वर्णन है।[5] अन्य ग्रन्थों में भी यही लक्षण निर्दिष्ट हैं।[6]

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह में सर्पवाहना वैरोट्या के दो करों में सर्प प्रदर्शित हैं, शेष दो करों के आयुधों का अनुल्लेख है।[7] प्रतिष्ठासारोद्धार में दो हाथों में सर्प और शेष दो में धनुष एवं बाण के प्रदर्शन का निर्देश है।[8] अपराजितपृच्छा में यक्षी षड्भुजा और व्योमयान पर अवस्थित है। उसके दो हाथों में वरदमुद्रा एवं शेष में खड्ग, खेटक, कार्मुक और शर हैं।[9]

---

१ यक्षो हरित्सपरशूपरिमाष्टपाणिः कौक्षेयकक्षमणिखेटकदण्डमुद्राः।
विभ्रच्चतुर्भिरपरैः शिखिगः किरांकनम्रः प्रतृप्यतुयथार्थं चतुर्मुखाख्यः ॥ प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१४१
प्रतिष्ठातिलकम् ७.१३, पृ० ३३५

२ षण्मुखः षड्भुजो वज्रो धनुर्बाणी फलंवरः। अपराजितपृच्छा २२१.५०

३ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २०४

४ प्रवचनसारोद्धार एवं आचारदिनकर में यक्षी को विजया कहा गया है।

५ विदितां देवीं हरितालवर्णां पद्मारूढां चतुर्भुजां बाणपाशयुक्तदक्षिणपाणिं धनुर्नागयुक्तवामपाणिं चेति।
निर्वाणकलिका १८.१३

६ त्रि०श०पु०च० ४.३.१८०–८१; पद्मानन्दमहाकाव्य : परिशिष्ट–विमलस्वामी २१; मन्त्राधिराजकल्प ३.५९;
आचारदिनकर ३४, पृ० १७४

७ वैरोटी नामतो देवी हरिद्वर्णा चतुर्भुजः।
हस्तद्वयेन सर्पौ द्वौ धत्ते गोनसवाहना ॥ प्रतिष्ठासारसंग्रह ५.४२

८ प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१६७; द्रष्टव्य, प्रतिष्ठातिलकम् ७.१३, पृ० ३४४

९ श्यामवर्णा षड्भुजा द्वौ वरदौ खड्गखेटकौ।
धनुर्बाणो विराटाख्या व्योमयानगता तथा ॥ अपराजितपृच्छा २२१.२७

विदिता एवं वैरोटी के स्वरूप १३वीं महाविद्या वैरोट्या से प्रभावित हैं। विदिता के सन्दर्भ में यह प्रभाव हाथ में सर्प के प्रदर्शन तक सीमित है, पर वैरोटी के सन्दर्भ में नाम, वाहन एवं दो हाथों में सर्प का प्रदर्शन—ये सभी महाविद्या के प्रभाव प्रतीत होते हैं।[1]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ में सर्पवाहना यक्षी चतुर्भुजा है और उसके दो करों में सर्प एवं शेष दो में अभय- एवं कटक-मुद्रा हैं। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में चतुर्भुजा यक्षी मृगवाहना (कृष्णसार) है और उसके हाथों में शर, चाप, वरदमुद्रा एवं पद्म का उल्लेख है। यक्ष-यक्षी-लक्षण में सर्पवाहना (गोनस) यक्षी के दो करों में सर्प एवं शेष दो में बाण और धनुष का वर्णन है।[2] उपर्युक्त से स्पष्ट है कि दक्षिण भारतीय परम्परा यक्षी के निरूपण में सामान्यतः उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा से सहमत है।

मूर्ति-परम्परा

यक्षी की दो स्वतन्त्र मूर्तियां मिली हैं। दोनों मूर्तियां दिगंबर परम्परा की हैं और क्रमशः देवगढ़ (मन्दिर १२, ८६२ ई०) एवं बारभुजी गुफा के सामूहिक चित्रणों में उत्कीर्ण हैं। देवगढ़ में विमलनाथ के साथ 'सुलक्षणा' नाम की सामान्य लक्षणों वाली द्विभुजा यक्षी आमूर्तित है।[3] यक्षी का दाहिना हाथ जानु पर है और बायें में चामर प्रदर्शित है। बारभुजी गुफा में विमलनाथ की यक्षी अष्टभुजा है और उसका वाहन सारस है। यक्षी के दक्षिण करों में वरदमुद्रा, बाण, खड्ग एवं परशु और वाम में वज्र, धनुष, शूल एवं खेटक प्रदर्शित हैं।[4] यक्षी का निरूपण परम्परासम्मत नहीं है। राज्य संग्रहालय, लखनऊ की जिन-संयुक्त मूर्ति (जे ७९१) में द्विभुजा यक्षी अभयमुद्रा एवं घट से युक्त है।

(१४) पाताल यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

पाताल जिन अनन्तनाथ का यक्ष है। दोनों परम्परा के ग्रन्थों में पाताल को त्रिमुख, षड्भुज और मकर पर आरूढ़ कहा गया है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका में पाताल यक्ष के दाहिने हाथों में पद्म, खड्ग एवं पाश और बायें में नकुल, फलक एवं अक्षसूत्र का उल्लेख है।[5] अन्य ग्रन्थों में भी यही आयुध प्रदर्शित हैं।[6] मन्त्राधिराजकल्प में पाताल को त्रिनेत्र कहा गया है। आचारदिनकर में अक्षसूत्र के स्थान पर मुक्ताक्षावलि का उल्लेख है।[7]

---

१ श्वेतांबर परम्परा में महाविद्या वैरोट्या का वाहन सर्प है और उसके दो करों में सर्प एवं अन्य में खड्ग और खेटक प्रदर्शित हैं।

२ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २०४

३ जि०इ०दे०, पृ० १०३, १०७

४ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १३१

५ पातालयक्षं त्रिमुखं रक्तवर्णं मकरवाहनं षड्भुजं पद्मखड्गपाशयुक्तदक्षिणपाणिं नकुलफलकाक्षसूत्रयुक्तवामपाणिं चेति। निर्वाणकलिका १८.१४

६ त्रि०श०पु०च० ४.४.२००–२०१; पद्मानन्दमहाकाव्य : परिशिष्ट—अनन्त १८–१९; मन्त्राधिराजकल्प ३.३८

७ आचारदिनकर ३४, पृ० १७४

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह में पाताल यक्ष के आयुधों का अनुल्लेख है।[1] प्रतिष्ठासारोद्धार में पाताल के शीर्षभाग में तीन सर्पफणों के छत्र, दक्षिण करों में अंकुश, शूल एवं पद्म और वाम में कशा, हल एवं फल के प्रदर्शन का निर्देश है।[2] अपराजितपृच्छा में पाताल वज्र, अंकुश, धनुष, बाण, फल एवं वरदमुद्रा से युक्त है।[3]

यक्ष का नाम (पाताल) और दिगंबर परम्परा में उसका तीन सर्पफणों की छत्रावली से युक्त होना पाताल (अतल) लोक के अनन्त देव (शेषनाग) का प्रभाव है।[4] दिगंबर परम्परा में सर्पफणों के साथ ही हल का प्रदर्शन बलराम (हलधर) का प्रभाव हो सकता है, जिन्हें हिन्दू देवकुल में आदिशेष (नागराज) का अवतार माना गया है।

दक्षिण भारतीय परम्परा—दक्षिण भारत की दोनों परम्पराओं के ग्रन्थों में मकर पर आरूढ़ पाताल यक्ष त्रिमुख और षड्भुज है। दिगंबर ग्रन्थ में यक्ष के दक्षिण करों में दण्ड, शूल एवं अभयमुद्रा और वाम में परशु, पाश एवं अंकुश (या शूल) का उल्लेख है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में यक्ष कशा, अंकुश, फल, वरदमुद्रा, त्रिशूल एवं पाश से युक्त है। यक्ष-यक्षी-लक्षण में यक्ष के करों में शर, अंकुश, हल, त्रिशूल, मातुलिंग एवं पद्म वर्णित हैं। यक्ष के मस्तक पर सर्पछत्र का भी उल्लेख है।[5] उपर्युक्त से स्पष्ट है कि दक्षिण भारतीय परम्परा यक्ष के निरूपण मे उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा से सहमत है।

पाताल यक्ष की एक भी स्वतन्त्र मूर्ति नहीं मिली है। विमलवसही की देवकुलिका ३३ की अनन्तनाथ की मूर्ति में यक्ष के रूप में सर्वानुभूति निरूपित है।

(१४) अंकुशा (या अनन्तमती) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

अंकुशा (या अनन्तमती) जिन अनन्तनाथ की यक्षी है। श्वेतांबर परम्परा में चतुर्भुजा अंकुशा (या वरभृत) पद्मवाहना है और दिगंबर परम्परा में चतुर्भुजा अनन्तमती का वाहन हंस है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका में पद्मवाहना अंकुशा के दाहिने हाथों में खड्ग एवं पाश और बायें मे खेटक एवं अंकुश का वर्णन है।[6] अन्य ग्रन्थों में भी इन्हीं लक्षणों के उल्लेख हैं।[7] पर पद्मानन्दमहाकाव्य मे अंकुशा द्विभुजा है और उसके करों में फलक और अंकुश वर्णित है।[8]

---

१ अनन्तस्य जिनेन्द्रस्य यक्षः पातालनामकः।
त्रिमुखः षड्भुजो रक्तः वर्णो मकरवाहनः॥ प्रतिष्ठासारसंग्रह ५.४८

२ पातालकः सशृणिशूलकजापसव्यहस्तः कशाहलफलांकितसव्यपाणिः।
सेधाब्जकंधरणो मकराधिरूढो रक्तोर्च्यतां त्रिफणनागशिरास्त्रिवक्त्रम्॥ प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१४२
प्रतिष्ठातिलकम् ७.१४, पृ० ३३५

३ पातालश्च वज्रांकुशौ धनुर्बाणौ फलंवरः। अपराजितपृच्छा २२१.५१

४ पाताल एवं अनन्त दोनों नागराज के ही नाम हैं। स्मरणीय है कि पाताल यक्ष के जिन का नाम अनन्तनाथ है।

५ रामचन्द्रन, टी०एन० पू०नि०, पृ० २०५

६ अंकुशां देवीं गौरवर्णां पद्मवाहनां चतुर्भुजां खड्गपाशयुक्तदक्षिणकरां चर्मफलांकुशयुतवामहस्तां चेति।
निर्वाणकलिका १८.१४

७ त्रि०श०पु०च० ४.४.२०२–२०३; मन्त्राधिराजकल्प ३.६०; आचारदिनकर ३४, पृ० १७७

८ अंकुशा नाम्ना देवी तु गौरांगी कमलासना।
दक्षिणे फलकं वामे त्वंकुशं दधती करे॥ पद्मानन्दमहाकाव्य : परिशिष्ट—अनन्त १९-२०

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह में हंसवाहना अनन्तमती के हाथों में धनुष, बाण, फल एवं वरदमुद्रा दिये गये हैं।[1] अन्य ग्रन्थों में भी इन्हीं लक्षणों का उल्लेख है।[2]

यक्षी के अंकुशा नाम के कारण ही यक्षी के हाथ में अंकुश प्रदर्शित हुआ। ज्ञातव्य है कि जैन परम्परा की चौथी महाविद्या का नाम वज्रांकुशा है और उसके मुख्य आयुध वज्र एवं अंकुश हैं। दिगंबर परम्परा में यक्षी का नाम (अनन्तमती) जिन (अनन्तनाथ) से प्रभावित है।

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ में हंसवाहना यक्षी चतुर्भुजा है और उसके ऊपरी हाथों में शर एवं चाप और नीचे के हाथों में अभय-एवं कटक-मुद्रा प्रदर्शित हैं। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में मयूरवाहना यक्षी द्विभुजा है और वरदमुद्रा एवं पद्म से युक्त है। यक्ष-यक्षी-लक्षण में हंसवाहना यक्षी चतुर्भुजा है और उसके हाथों में धनुष, बाण, फल एवं वरदमुद्रा का उल्लेख है।[3] प्रस्तुत विवरण उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा से प्रभावित है।

मूर्ति-परम्परा

यक्षी की दो स्वतन्त्र मूर्तियां मिली हैं।[4] ये मूर्तियां क्रमशः देवगढ़ (मन्दिर १२, ८६२ ई०) एवं बारभुजी गुफा के सामूहिक अंकनों में उत्कीर्ण हैं। देवगढ़ में अनन्तनाथ के साथ 'अनन्तवीर्या' नाम की सामान्य लक्षणों वाली द्विभुजा यक्षी आमूर्तित है।[5] यक्षी की दाहिनी भुजा जानु पर स्थित है और बायीं में चामर प्रदर्शित है। बारभुजी गुफा में अनन्त के साथ अष्टभुजा यक्षी निरूपित है। यक्षी का वाहन सम्भवतः गर्दभ है। यक्षी के दक्षिण करों में वरदमुद्रा, कटार, शूल एवं खड्ग और वाम में दण्ड, वज्र, सनालपद्म, मुद्गर एवं खेटक प्रदर्शित हैं।[6] यक्षी का चित्रण परम्परासम्मत नहीं है। विमलवसही की अनन्तनाथ की मूर्ति में यक्षी अम्बिका है।

(१५) किन्नर यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

किन्नर जिन धर्मनाथ का यक्ष है। दोनों परम्परा के ग्रन्थों में किन्नर यक्ष को त्रिमुख और षड्भुज बताया गया है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका में किन्नर यक्ष का वाहन कूर्म है और उसके दाहिने हाथों में बीजपूरक, गदा, अभयमुद्रा एवं बायें में नकुल, पद्म, अक्षमाला का उल्लेख है।[7] अन्य ग्रन्थों में भी यही विशेषताएं वर्णित हैं।[8]

---

१ तथानन्तमती हेमवर्णा चैव चतुर्भुजा।
चापं बाणं फलं धत्ते वरदा हंसवाहना॥ प्रतिष्ठासारसंग्रह ५.४९

२ प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१६८; प्रतिष्ठातिलकम् ७.१४, पृ० ३४५; अपराजितपृच्छा २२१.२८

३ रामचन्द्रन, टी०एन०, पू०नि०, पृ० २०५

४ श्वेतांबर स्थलों पर वरदमुद्रा, शूल, अंकुश एवं फल से युक्त एक पद्मवाहना देवी का अंकन विशेष लोकप्रिय था। देवी की सम्भावित पहचान अंकुशा से की जा सकती है। पर इस देवी का महाविद्या समूह में अंकन यक्षी से पहचान में बाधक है।

५ जि०इ०दे०, पृ० १०३, १०६

६ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १३१–लेखिका ने यक्षी को अष्टभुजा बताया है, पर वाम करों में पांच आयुधों का ही उल्लेख किया है।

७ किन्नरयक्षं त्रिमुखं रक्तवर्णं कूर्मवाहनं षड्भुजं बीजपूरकगदाभययुक्तदक्षिणपाणिं नकुलपद्माक्षमालायुक्तवामपाणिं चेति। निर्वाणकलिका १८.१५

८ त्रि०श०पु०च० ४.५.१९७–९८; धर्मनाथमहाकाव्य : परिशिष्ट–धर्मनाथ १९–२०; आचारदिनकर ३४, पृ० १७४; मन्त्राधिराजकल्प ३.३९

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह में यक्ष का वाहन मीन (झष) है। ग्रन्थ में आयुधों का अनुल्लेख है।[1] प्रतिष्ठासारोद्धार में यक्ष के दक्षिण करों में मुद्गर, अक्षमाला, वरदमुद्रा एवं वाम में चक्र, वज्र, अंकुश का उल्लेख है।[2] अपराजितपृच्छा में यक्ष के करों में पाश, अंकुश, धनुष, बाण, फल एवं वरदमुद्रा के प्रदर्शन का निर्देश है।[3]

किन्नरों[4] की धारणा भारतीय परम्परा में काफी प्राचीन है। जैन परम्परा में किन्नर यक्ष का नाम प्राचीन परम्परा से ग्रहण किया गया पर उसकी लाक्षणिक विशेषताएं स्वतन्त्र हैं। ज्ञातव्य है कि जैन यक्षों की सूची में नाग, किन्नर, गरुड एवं गन्धर्व आदि नामों से प्राचीन भारतीय परम्परा के कई देवों को सम्मिलित किया गया, पर मूर्तिविज्ञान की दृष्टि से उन सभी के स्वतन्त्र रूप निर्धारित किये गये।[5]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दोनों परम्परा के ग्रन्थों में षड्भुज यक्ष का वाहन मीन है। दिगंबर ग्रन्थ में यक्ष त्रिमुख है और उसके दक्षिण करों में अक्षमाला, दण्ड, अभयमुद्रा एवं वाम में शक्ति, शूल, माला (या कटक) का वर्णन है। दोनों श्वेतांबर ग्रन्थों में उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा के अनुरूप यक्ष मुद्गर, चक्र, वज्र, अक्षमाला, वरदमुद्रा एवं अंकुश से युक्त है।[6]

किन्नर यक्ष की एक भी स्वतन्त्र मूर्ति नहीं मिली है। विमलवसही की देवकुलिका १ की धर्मनाथ की मूर्ति में यक्ष सर्वानुभूति का अंकन है।

(१५) कन्दर्पा (या मानसी) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

कन्दर्पा (या मानसी) जिन धर्मनाथ की यक्षी है। श्वेतांबर परम्परा मे मत्स्यवाहना यक्षी को कन्दर्पा (या पन्नगा) और दिगंबर परम्परा में व्याघ्रवाहना यक्षी को मानसी नामों से सम्बोधित किया गया है। दोनों परम्परा के ग्रन्थों में यक्षी के दो हाथों में अंकुश एवं पद्म के प्रदर्शन का निर्देश है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका में मत्स्यवाहना कन्दर्पा चतुर्भुजा है जिसके दाहिने हाथों में उत्पल और अंकुश तथा बायें में पद्म और अभयमुद्रा का उल्लेख है।[7] अन्य ग्रन्थों में भी यही आयुध वर्णित हैं।[8] पर मन्त्राधिराजकल्प में तीन करों में पद्म के प्रदर्शन का उल्लेख है।[9]

---

१ धर्मस्य किन्नरो यक्षस्त्रिमुखो मीनवाहनः।
षड्भुजः पद्मरागाभो जिनधर्मपरायणः॥ प्रतिष्ठासारसंग्रह ५.५०

२ सचक्रवज्रांकुशवामपाणिः समुद्गराक्षालिवरान्यहस्तः।
प्रवालवर्णस्त्रिमुखो झषस्थो वज्रांकभक्तोंचतु किन्नरोऽर्च्यताम्॥ प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१४३
प्रतिष्ठातिलकम् ७.१५, पृ० ३३५

३ किन्नरेशः पाशाङ्कुशी धनुर्बाणी फलंवरः। अपराजितपृच्छा २२१.५१

४ किन्नर मानव शरीर और अश्वमुख वाले होते हैं।

५ किन्नरों के नेता कुबेर हैं जिन्हें किन्नरीश्वर कहा गया है। द्रष्टव्य, भट्टाचार्य, बी० सी०, पू०नि०, पृ० १०९

६ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २०५

७ कन्दर्पा देवीं गौरवर्णां मत्स्यवाहनां चतुर्भुजां उत्पलांकुशयुक्त-दक्षिणकरां पद्माभययुक्तवामहस्तां चेति।
निर्वाणकलिका १८.१५

८ त्रि०श०पु०च० ४.५.१९९-२००; पद्मानन्दमहाकाव्य : परिशिष्ट—धर्मनाथ २०-२१; आचारदिनकर ३४, पृ०१७७; देवतामूर्तिप्रकरण ७.४५

९ मन्त्राधिराजकल्प ३.६०

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह में षड्भुजा मानसी का वाहन व्याघ्र है। ग्रन्थ में आयुधों का अनुल्लेख है।[1] प्रतिष्ठासारोद्धार में यक्षी के दो हाथों में पद्म और शेष में धनुष, वरदमुद्रा, अंकुश और बाण का उल्लेख है।[2] अपराजितपृच्छा में मानसी के करों में त्रिशूल, पाश, चक्र, डमरू, फल एवं वरदमुद्रा के प्रदर्शन का निर्देश है।[3]

यद्यपि मानसी का नाम १५वीं महाविद्या मानसी से ग्रहण किया गया, पर यक्षी की लाक्षणिक विशेषताएं सर्वथा स्वतन्त्र हैं। स्मरणीय है कि किन्नर यक्ष एवं कन्दर्पा यक्षी दोनों ही के वाहन मत्स्य हैं। कन्दर्पा को हिन्दू देव कन्दर्प या काम से सम्बन्धित नहीं किया जा सकता है।[4]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ में सिंहवाहना मानसी चतुर्भुजा है और उसके दाहिने हाथों में अंकुश और शूल (या बाण) तथा बायें में पुष्प (या चक्र) और धनुष का उल्लेख है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में मृगवाहना (कृष्णसार) यक्षी चतुर्भुजा है और उसकी भुजाओं में शर, चाप, वरदमुद्रा एवं पद्म प्रदर्शित हैं। यक्ष-यक्षी-लक्षण में व्याघ्र-वाहना यक्षी षड्भुजा है और उसके करों में उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा के अनुरूप पद्म, धनुष, वरदमुद्रा, अंकुश, बाण एवं उत्पल का उल्लेख है।[5]

मूर्ति-परम्परा

यक्षी की दो स्वतन्त्र मूर्तियां मिली हैं। दिगंबर स्थलों से मिलने वाली ये मूर्तियां क्रमशः देवगढ़ (मन्दिर १२, ८६२ ई०) एवं बारभुजी गुफा के सामूहिक अंकनों में उत्कीर्ण हैं। देवगढ़ में धर्मनाथ के साथ 'सुरक्षिता' नाम की सामान्य स्वरूप वाली द्विभुजा यक्षी आमूर्तित है।[6] यक्षी के दाहिने हाथ में पद्म है और बायां जानु पर स्थित है। बारभुजी गुफा में धर्मनाथ की षड्भुजा यक्षी का वाहन उष्ट्र है। यक्षी के दाहिने हाथों में वरदमुद्रा, पिण्ड (या फल), तीन कांटों वाली वस्तु और बायें में घण्टा, पताका एवं शंख प्रदर्शित हैं।[7] यक्षी का निरूपण परम्परासम्मत नहीं है। एक मूर्ति ग्यारसपुर के मालादेवी मन्दिर के मण्डोवर के उत्तरी पार्श्व पर उत्कीर्ण है। चतुर्भुजा देवी का वाहन अश्व है और उसके करों में वरदमुद्रा, अभयमुद्रा, पद्म और फल प्रदर्शित हैं। अश्ववाहन और पद्म के आधार पर देवी की सम्भावित पहचान धर्मनाथ की यक्षी से की जा सकती है।

(१६) गरुड यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

गरुड[8] जिन शान्तिनाथ का यक्ष है। श्वेतांबर परम्परा में इसे वराहमुख बताया गया है।

---

१ देवता मानसी नाम्ना षड्भुजाविद्रुमप्रभा।
व्याघ्रवाहनमारूढा नित्यं धर्मानुरागिणी॥ प्रतिष्ठासारसंग्रह ५.५१

२ सांबुजधनुर्दानांकुशशरोत्पला व्याघ्रगा प्रवालनिभा। प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१६९
द्रष्टव्य, प्रतिष्ठातिलकम् ७.१५, पृ० ३४५

३ षड्भुजा रक्तवर्णा च त्रिशूलं पाशचक्रके।
डमरूं फलवरे मानसी व्याघ्रवाहना॥ अपराजितपृच्छा २२१.२९

४ भट्टाचार्य, बी० सी०, पू०नि०, पृ० ११५

५ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २०५

६ जि०इ०दे०, पृ० १०३, १०६

७ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १३२

८ अभिधानचिन्तामणि में यक्ष का वराह नाम से उल्लेख है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका में चतुर्भुज गरुड वराहमुख है और उसका वाहन भी वराह है। गरुड के हाथों में बीजपूरक, पद्म, नकुल और अक्षसूत्र का वर्णन है।[1] अन्य ग्रन्थों में भी इन्हीं लक्षणों के उल्लेख हैं।[2] कुछ ग्रन्थों में गरुड का वाहन गज बताया गया है।[3] मन्त्राधिराजकल्प में नकुल के स्थान पर पाश के प्रदर्शन का निर्देश है।[4]

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह में वराह पर आरूढ़ चतुर्भुज गरुड के आयुधों का उल्लेख नहीं है।[5] प्रतिष्ठासारोद्धार में चतुर्भुज गरुड का वाहन शूक (किटि) है और उसकी ऊपरी भुजाओं में वज्र एवं चक्र तथा निचली में पद्म एवं फल का वर्णन है।[6] अपराजितपृच्छा में शुकवाहन से युक्त गरुड के करों में पाश, अंकुश, फल एवं वरदमुद्रा का उल्लेख है।[7]

गरुड यक्ष का नाम हिन्दू गरुड से प्रभावित है, पर उसका मूर्ति-विज्ञान-परक स्वरूप स्वतन्त्र है। दिगंबर परम्परा में चक्र का और अपराजितपृच्छा में पाश और अंकुश का उल्लेख सम्भवतः हिन्दू गरुड का प्रभाव है।[8]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ में वृषभारूढ़ यक्ष को किंपुरुष नाम से सम्बोधित किया गया है। चतुर्भुज यक्ष के ऊपरी करों में चक्र और शक्ति तथा निचली में अभय-और-कटक-मुद्राओं का उल्लेख है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में गरुड पर आरूढ़ चतुर्भुज यक्ष के करों में वज्र, पद्म, चक्र एवं पद्म (या अभय-या-वरदमुद्रा) के प्रदर्शन का निर्देश है। यक्ष-यक्षी-लक्षण में वराह पर आरूढ़ यक्ष के करों में वज्र, फल, चक्र, एवं पद्म वर्णित हैं।[9] उपर्युक्त से स्पष्ट है कि दक्षिण भारत की श्वेतांबर और उत्तर भारत की दिगंबर परम्परा में गरुड यक्ष के निरूपण में पर्याप्त समानता है।

मूर्ति-परम्परा

बी० सी० भट्टाचार्य ने गरुड यक्ष की एक मूर्ति का उल्लेख किया है।[10] यह मूर्ति देवगढ़ दुर्ग के पश्चिमी द्वार के एक स्तम्भ पर उत्कीर्ण है। शूकर पर आरूढ़ चतुर्भुज यक्ष के करों में गदा, अक्षमाला, फल एवं सर्प स्थित हैं।

शान्तिनाथ की मूर्तियों में ल० आठवीं शती ई० में ही यक्ष-यक्षी का निरूपण प्रारम्भ हो गया। गुजरात एवं राजस्थान की शान्तिनाथ की मूर्तियों में यक्ष सदैव सर्वानुभूति है। पर उत्तरप्रदेश एवं मध्यप्रदेश की मूर्तियों (१० वीं-

---

१ गरुडयक्षं वराहवाहनं क्रोडवदनं श्यामवर्णं चतुर्भुजं बीजपूरकपद्मयुक्तदक्षिणपाणिं नकुलकाक्षसूत्रवामपाणिं चेति। निर्वाणकलिका १८.१६

२ त्रि०श०पु०च० ५.५.३७३–७४; पद्मानन्दमहाकाव्यः परिशिष्टः–शान्तिनाथ ४५९–६०; शान्तिनाथमहाकाव्य (मुनिभद्रकृत) १५.१३१; आचारदिनकर ३४, पृ० १७४; देवतामूर्तिप्रकरण ७.४६

३ त्रि०श०पु०च०, पद्मानन्दमहाकाव्य एवं शान्तिनाथमहाकाव्य।

४ मन्त्राधिराजकल्प ३.४०

५ गरुडो (नाम) तो यक्षः शान्तिनाथस्य कीर्तितः।
वराहवाहनः श्यामो चक्रवक्त्रश्चतुर्भुजः॥ प्रतिष्ठासारसंग्रह ५.५२

६ वक्रानघोऽधस्तनहस्तपद्म फलोन्यहस्तार्पितवज्रचक्रः।
मृगध्वजार्हत्प्रणतः सपर्यां श्यामः किटिस्थो गरुडोभ्युपैतु॥ प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१४४
द्रष्टव्य, प्रतिष्ठातिलकम् ७.१६, पृ० ३३६

७ पाशाङ्कुशफलवरो गरुडः स्याच्छुकासनः। अपराजितपृच्छा २२१.५२

८ हिन्दू शिल्पशास्त्रों में गरुड के करों में चक्र, खड्ग, मुसल, अंकुश, शंख, शारंग, गदा एवं पाश आदि के प्रदर्शन का उल्लेख है। द्रष्टव्य, बनर्जी, जे०एन०, पू०नि०, पृ० ५३२–३३

९ रामचन्द्रन, टी०एन०, पू०नि०, पृ० २०५–२०६

१० भट्टाचार्य, बी०सी, पू०नि०, पृ० ११०

१२ वीं शती ई०) में शान्तिनाथ के साथ कभी-कभी स्वतन्त्र लक्षणों वाले यक्ष का भी निरूपण हुआ है।[1] जिन-संयुक्त मूर्तियों में यक्ष का पारम्परिक स्वरूप में अंकन नहीं मिलता है। यक्ष का कोई स्वतन्त्र स्वरूप भी स्थिर नहीं हो सका। दिगंबर स्थलों पर यक्ष के करों में पद्म के अतिरिक्त परशु, गदा, दण्ड एवं धन के थैले का प्रदर्शन हुआ है।

पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा की ल० आठवीं शती ई० की एक मूर्ति (बी ७५) में द्विभुज यक्ष सर्वानुभूति है। मालादेवी मन्दिर की मूर्ति (१० वीं शती ई०) में चतुर्भुज यक्ष के करों में फल, पद्म, परशु एवं धन का थैला प्रदर्शित है। देवगढ़ की दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० की पांच मूर्तियों में सामान्य लक्षणों वाला द्विभुज यक्ष आमूर्तित है। इनमें यक्ष के हाथों में गदा एवं फल (या धन का थैला) हैं। दो उदाहरणों में यक्ष चतुर्भुज है।[2] एक में यक्ष के करों में गदा, परशु, पद्म एवं फल हैं, और दूसरे में अभयमुद्रा, पद्म, पद्म एवं जलपात्र। खजुराहो के मन्दिर १ की शान्तिनाथ की मूर्ति (१०२८ ई०) में यक्ष चतुर्भुज है और उसके हाथों में दण्ड, पद्म, पद्म एवं फल प्रदर्शित हैं। खजुराहो एवं इलाहाबाद संग्रहालय (क्रमांक ५३३) की तीन मूर्तियों में द्विभुज यक्ष फल (या प्याला) और धन के थैले से युक्त है (चित्र १९)।

(१६) निर्वाणी (या महामानसी) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

निर्वाणी (या महामानसी) जिन शान्तिनाथ की यक्षी है। श्वेतांबर परम्परा में चतुर्भुजा निर्वाणी पद्मवाहना और दिगंबर परम्परा में चतुर्भुजा महामानसी मयूर-(या गरुड-) वाहना है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका में पद्मवाहना निर्वाणी के दाहिने हाथों में पुस्तक एवं उत्पल और बायें में कमण्डलु एवं पद्म वर्णित हैं।[3] अन्य ग्रन्थों में भी इन्हीं लक्षणों के उल्लेख हैं।[4] पर मन्त्राधिराजकल्प में पद्म के स्थान पर वरदमुद्रा[5] और आचारदिनकर में पुस्तक के स्थान पर कल्हार (?)[6] के उल्लेख हैं।

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह में मयूरवाहना महामानसी के हाथों में फल, सर्प, चक्र एवं वरदमुद्रा उल्लिखित हैं।[7] *समान लक्षणों का उल्लेख करने वाले अन्य ग्रन्थों में सर्प के स्थान पर इढि (या ईडी-खड्ग ?) का* वर्णन है।[8] अपराजितपृच्छा में महामानसी का वाहन गरुड है और उसके करों में बाण, धनुष, वज्र एवं चक्र वर्णित हैं।[9]

निर्वाणी के साथ पद्मवाहन एवं करों में पद्म, पुस्तक और कमण्डलु का प्रदर्शन निश्चित ही सरस्वती का प्रभाव है। दिगंबर परम्परा में यक्षी के साथ मयूरवाहन का निरूपण भी सरस्वती का ही प्रभाव है।[10] दिगंबर परम्परा में

---

१ कुछ उदाहरणों में यक्ष के रूप में सर्वानुभूति भी निरूपित है।

२ ग्यारहवीं शती ई० की ये मूर्तियां मन्दिर ८ और मन्दिर १२ (पश्चिमी चहारदीवारी) पर हैं।

३ निर्वाणीं देवीं गौरवर्णां पद्मासनां चतुर्भुजां पुस्तकोत्पलयुक्तदक्षिणकरां कमण्डलुकमलयुतवामहस्तां चेति।
निर्वाणकलिका १८.१६

४ त्रि०श०पु०च० ५.५.३७५-७६; पद्मानन्दमहाकाव्यः परिशिष्ट—शान्तिनाथ ४६०-६१; शान्तिनाथमहाकाव्य १५.१३२

५ मन्त्राधिराजकल्प ३.६१

६ आचारदिनकर ३४, पृ० १७७

७ सुमहामानसी देवी हेमवर्णा चतुर्भुजा।
फलाहिचक्रहस्तासौ वरदा शिखिवाहना॥ प्रतिष्ठासारसंग्रह ५.५३

८ चक्रफलेंढिवरांकितकरां महामानसीं सुवर्णाभाम्। प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१७०
द्रष्टव्य, प्रतिष्ठातिलकम्, ७.१६, पृ० ३४५

९ चतुर्भुजा सुवर्णाभा शरः शार्ङ्ग वज्रकम्।
चक्रं महामानसीस्यात् पक्षिराजोपरिस्थिता॥ अपराजितपृच्छा २२१.३०

१० महामानसी का शाब्दिक अर्थ विद्या या ज्ञान की प्रमुख देवी है। सम्भवतः इसी कारण महामानसी के साथ सरस्वती का मयूर वाहन प्रदर्शित किया गया। द्रष्टव्य, भट्टाचार्य, बी०सी०, पू०मि०, पृ० १३७

महामानसी का नाम १६ वीं महाविद्या महामानसी से ग्रहण किया गया, पर देवी की लाक्षणिक विशेषताएं महाविद्या से भिन्न हैं।

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ में मयूरवाहना महामानसी चतुर्भुजा है और उसकी ऊपरी भुजाओं में वज्री (सर्प) एवं चक्र और निचली में अभय-एवं-कटक मुद्राएं वर्णित हैं। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में मकरवाहना यक्षी के करों में खड्ग, खेटक, शक्ति एवं पाश के प्रदर्शन का निर्देश है। यक्ष-यक्षी-लक्षण में उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा के अनुरूप मयूरवाहना यक्षी को फल, खड्ग, चक्र एवं वरदमुद्रा से युक्त निरूपित किया गया है।[1]

मूर्ति-परम्परा

यक्षी की दो स्वतन्त्र मूर्तियां मिली हैं। ये मूर्तियां देवगढ़ (मन्दिर १२, ८६२ ई०) एवं बारभुजी गुफा के यक्षी समूहों में उत्कीर्ण हैं। देवगढ़ में शान्तिनाथ के साथ 'श्रीयादेवी' नाम की चतुर्भुजा यक्षी आमूर्तित है।[2] यक्षी का वाहन महिष है और उसके हाथों में खड्ग, चक्र, खेटक एवं परशु प्रदर्शित हैं। यक्षी का निरूपण श्वेतांबर परम्परा की छठी महाविद्या नरदत्ता (या पुरुषदत्ता) से प्रभावित है।[3] बारभुजी गुफा की मूर्ति में यक्षी द्विभुजा है और ध्यानमुद्रा में पद्म पर विराजमान है। यक्षी के दोनों हाथों में सनाल पद्म प्रदर्शित हैं। शीर्षभाग में देवी का अभिषेक करती हुई दो गज आकृतियां भी उत्कीर्ण हैं।[4] यक्षी का निरूपण पूर्णतः अभिषेकलक्ष्मी से प्रभावित है।

शान्तिनाथ की मूर्तियों में ल० आठवीं शती ई० में यक्षी का अंकन प्रारम्भ हुआ। गुजरात एवं राजस्थान के श्वेतांबर स्थलों की जिन-संयुक्त मूर्तियों में यक्षी के रूप में सर्वदा अम्बिका निरूपित है। पर देवगढ़, ग्यारसपुर एवं खजुराहो जैसे दिगंबर स्थलों की मूर्तियों (१०वीं-१२वीं शती ई०) में स्वतन्त्र लक्षणों वाली यक्षी आमूर्तित है।[5] मालादेवी मन्दिर (ग्यारसपुर, म० प्र०) की मूर्ति (१०वीं शती ई०) में स्वतन्त्र रूपवाली यक्षी चतुर्भुजा है और उसके करों में अभयाक्ष, पद्म, पद्म एवं मातुलिंग प्रदर्शित हैं। देवगढ़ की तीन मूर्तियों में सामान्य लक्षणों वाली द्विभुजा यक्षी के हाथों में अभयमुद्रा एवं कलश (या फल) हैं। देवगढ़ के मन्दिर १२ की पश्चिमी चहारदीवारी की दो मूर्तियों (११ वीं शती ई०) में चतुर्भुजा यक्षी के करों में अभयमुद्रा, पद्म, पुस्तक एवं जलपात्र प्रदर्शित हैं। खजुराहो के मन्दिर १ की मूर्ति में चतुर्भुजा यक्षी अभयमुद्रा, चक्राकार सनाल पद्म, पद्म-पुस्तक एवं जलपात्र से युक्त है। खजुराहो के स्थानीय संग्रहालय की दो मूर्तियों में सामान्य लक्षणोंवाली द्विभुजा यक्षी का दाहिना हाथ अभयमुद्रा में तथा बायां कार्मुक धारण किये हुए या जानु पर स्थित है।

विश्लेषण

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि शिल्प में यक्षी का पारम्परिक स्वरूप में अंकन नहीं किया गया। स्वतन्त्र लक्षणों वाली यक्षी के निरूपण का प्रयास भी केवल दिगंबर स्थलों की ही कुछ जिन-संयुक्त मूर्तियों में दृष्टिगत होता है। ऐसी मूर्तियां देवगढ़, ग्यारसपुर एवं खजुराहो से मिली हैं। स्वतन्त्र लक्षणों वाली चतुर्भुजा यक्षी के दो हाथों में दो पद्म, या एक में पद्म और दूसरे में पुस्तक प्रदर्शित हैं। दिगंबर स्थलों पर यक्षी के करों में पद्म एवं पुस्तक का प्रदर्शन श्वेतांबर प्रभाव है।

---

१ रामचन्द्रन, टी०एन०, पूर्वोनि०, पृ० २०६

२ जि०इ०दे०, पृ० १०३, १०६

३ महाविद्या नरदत्ता का वाहन महिष है और उसके मुख्य आयुध खड्ग एवं खेटक हैं।

४ मित्रा, देबला, पूर्वोनि०, पृ० १३२

५ मथुरा एवं इलाहाबाद संग्रहालयों तथा देवगढ़ (मन्दिर ८) की तीन मूर्तियों में यक्षी अम्बिका है।

(१७) गन्धर्व यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

गन्धर्व जिन कुंथुनाथ का यक्ष है। श्वेतांबर परम्परा में गन्धर्व का वाहन हंस और दिगंबर परम्परा में पक्षी (या शुक) है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका में चतुर्भुज गन्धर्व का वाहन हंस है और उसके दाहिने हाथों में वरदमुद्रा एवं पाश और बायें में मातुलिंग एवं अंकुश हैं।[1] अन्य ग्रन्थों में भी इन्हीं आयुधों के उल्लेख हैं।[2] आचारदिनकर में यक्ष का वाहन सिंहपत्र है।[3] देवतामूर्तिप्रकरण में पाश के स्थान पर नागपाश एवं वाहन के रूप में सिंह (?) का उल्लेख है।[4]

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह के अनुसार चतुर्भुज गन्धर्व पक्षियान पर आरूढ़ है। ग्रन्थ में आयुधों का अनुल्लेख है।[5] प्रतिष्ठासारोद्धार में पक्षियान पर आरूढ़ गन्धर्व के करों में सर्प, पाश, बाण और धनुष वर्णित हैं।[6] अपराजितपृच्छा में वाहन शुक है और हाथों के आयुध पद्म, अभयमुद्रा, फल एवं वरदमुद्रा हैं।[7]

जैन गन्धर्व की मूर्तिविज्ञानपरक विशेषताएं जैनों की मौलिक कल्पना है।[8]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ में मृग पर आरूढ़ चतुर्भुज यक्ष के दो हाथों में सर्प और शेष में शर (या शूल) एवं चाप प्रदर्शित हैं। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में रथ पर आरूढ़ चतुर्भुज यक्ष के करों में शर, चाप, पाश एवं पाश का वर्णन है। यक्ष-यक्षी-लक्षण में पक्षियान पर अवस्थित यक्ष के हाथों में शर, चाप, पाश एवं पाश हैं।[9] इस प्रकार स्पष्ट है कि दक्षिण भारत के श्वेतांबर परम्परा के विवरण उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा के समान हैं।[10]

गन्धर्व यक्ष की एक भी स्वतन्त्र मूर्ति नहीं मिली है। कुंथुनाथ की दो मूर्तियों में भी पारम्परिक यक्ष के स्थान पर सर्वानुभूति निरूपित है। ये मूर्तियां क्रमशः राजपूताना संग्रहालय, अजमेर एवं विमलवसही की देवकुलिका ३५ में हैं।

---

१ गन्धर्वयक्षं श्यामवर्णं हंसवाहनं चतुर्भुजं वरदपाशान्वितदक्षिणभुजं मातुलिंगाङ्कुशाधिष्ठितवामभुजं चेति । निर्वाणकलिका १८.१७

२ त्रि०श०पु०च० ६.१.११६–१७; पद्मानन्दमहाकाव्यः परिशिष्ट–कुन्थुनाथ १८–१९; मन्त्राधिराजकल्प ३.४१

३ आचारदिनकर ३३, पृ० १७५

४ कुन्थुनाथस्य गन्ध(र्वोहंस ? र्वः सिंह) स्थः श्यामवर्णभाक् ।
वरदं नागपाशं चांकुशं वै बीजपूरकम् ।। देवतामूर्तिप्रकरण ७.४८

५ कुंथुनाथ जिनेन्द्रस्य यक्षो गन्धर्व संज्ञकः ।
पक्षियान समारूढः श्यामवर्णः चतुर्भुजः ।। प्रतिष्ठासारसंग्रह ५.५४

६ सनागपाशोर्ध्वकरद्वयोधः करद्वयात्तेषुधनुः सुनीलः ।
गन्धर्वयक्षः स्तवकेतुभक्तः पूजामुपैतु श्रितपक्षियानः ।। प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१४५
ऊर्ध्वहस्तद्वयोद्धृतनागपाशमधोहस्तद्वयस्थितचापकाणम् । प्रतिष्ठातिलकम् ७.१७, पृ० ३३६

७ पद्माभयफलवरो गन्धर्वः श्यामशुकासनः । अपराजितपृच्छा २२१.५२

८ शाह, उमाकान्त, 'सम कामन एलिमेन्ट्स इन दि जैन ऐण्ड हिन्दू पैन्थियान्स—I—यक्षज ऐण्ड यक्षिणीज', जैन एण्टि०, खं० १८, अं० १, पृ० २१

९ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २०१

१० दक्षिण भारत के ग्रन्थों में सर्प के स्थान पर पाश का उल्लेख है ।

(१७) बला (या जया) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

बला (या जया) जिन कुंथुनाथ की यक्षी है। श्वेतांबर परम्परा में चतुर्भुजा बला[1] मयूरवाहना और दिगंबर परम्परा में चतुर्भुजा जया शूकरवाहना है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका में मयूरवाहना बला के दाहिने हाथों में बीजपूरक एवं शूल और बायें में मुषुण्ढि (या भुषंडी)[2] एवं पद्म का वर्णन है।[3] आचारदिनकर एवं देवतामूर्तिप्रकरण में शूल के स्थान पर त्रिशूल का उल्लेख है।[4] आचारदिनकर में दोनों वाम करों में मुषुण्ढि के प्रदर्शन का निर्देश है। मन्त्राधिराजकल्प में मुषुण्ढि के स्थान पर दो करों में पद्म का उल्लेख है।[5]

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह में शूकरवाहना जया के हाथों में शंख, खड्ग, चक्र एवं वरदमुद्रा का वर्णन है।[6] अपराजितपृच्छा में जया को षड्भुजा बताया गया है और उसके हाथों में वज्र, चक्र, पाश, अंकुश, फल एवं वरदमुद्रा के प्रदर्शन का निर्देश है।[7]

बला के साथ मयूरवाहन एवं शूल का प्रदर्शन हिन्दू कौमारी या जैन महाविद्या प्रज्ञप्ति का प्रभाव है। जया के निरूपण में शूकरवाहन एवं हाथों में शंख, खड्ग और चक्र का प्रदर्शन हिन्दू वाराही या बौद्ध मारीची से प्रभावित हो सकता है।[8]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर परम्परा में चतुर्भुजा यक्षी मयूरवाहना है। यक्षी के दो ऊपरी हाथों में चक्र और शेष में अभयमुद्रा एवं खड्ग का उल्लेख है। आयुधों के सन्दर्भ में उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा का प्रभाव दृष्टिगत होता है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में द्विभुजा यक्षी का वाहन हंस है और उसके हाथों में वरदमुद्रा एवं नीलोत्पल वर्णित हैं। यक्ष-यक्षी-लक्षण में कृष्ण शूकर पर आरूढ़ चतुर्भुजा यक्षी के करों में उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा के समान ही शंख, खड्ग, चक्र एवं वरदमुद्रा का उल्लेख है।[9]

---

१ श्वेतांबर परम्परा में यक्षी का अच्युता एवं गांधारिणी नामों से भी उल्लेख हुआ है।

२ मुषुण्ढी स्याद् दारुमयी वृत्ताय: कीलसंचिता-इति हैमकोशे–निर्वाणकलिका, पृ० ३५। अर्थात् मुषुण्ढी काष्ठ निर्मित है जिसमें लोहे की कीलें लगी होती हैं।

३ बलां देवीं गौरवर्णां मयूरवाहनां चतुर्भुजां बीजपूरकशूलान्वितदक्षिणभुजां मुषुण्ढिपद्मान्वितवामभुजां चेति।
निर्वाणकलिका १८.१७; द्रष्टव्य, त्रि०श०पु०च० ७.१.११८-१९, पद्मानन्दमहाकाव्य–परिशिष्ट–कुन्थुनाथ १९–२०

४ शिखिगा सुचतुर्भुजाऽसितपीता फलपूरं दधतीत्रिशूलयुक्तम्।
करयोरपसव्ययोश्च सव्ये करयुग्मे तु भृशुण्ढिभृद्बलाऽव्यात् ॥ आचारदिनकर ३४, पृ० १७७
गौरवर्णा मयूरस्था बीजपूरत्रिशूलने।
(पद्मभुषंधिका ?) चैव स्याद् बला नाम यक्षिणी ॥ देवतामूर्तिप्रकरण ७.४९

५ गान्धारिणी शिखिगतिः कील बीजपूरशूलान्वितोत्पलयुग्-द्विकरेन्दुगौरा। मन्त्राधिराजकल्प ३.६१

६ जयदेवी सुवर्णाभा कृष्णशूकरवाहना।
शंखासिचक्रहस्तासौ वरदाधर्मवत्सला ॥ प्रतिष्ठासारसंग्रह ५.५५
द्रष्टव्य, प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१७१; प्रतिष्ठातिलकम् ७.१७, पृ० ३४५

७ वज्रचक्रे पाशांकुशौ फलं च वरदं जया।
कनकाभा षड्भुजा च कृष्णशूकरसंस्थिता ॥ अपराजितपृच्छा २२१.३१

८ भट्टाचार्य, बी०सी०, पू०नि०, पृ० १३८

९ रामचन्द्रन, टी०एन०, पू०नि०, पृ० २०६

मूर्ति-परम्परा

यक्षी की दो स्वतन्त्र मूर्तियां मिली हैं। ये मूर्तियां देवगढ़ (मन्दिर १२, ८६२ ई०) एवं बारभुजी गुफा के सामूहिक अंकनों में उत्कीर्ण हैं। देवगढ़ में कुंथुनाथ के साथ चतुर्भुजा यक्षी आमूर्तित है।[1] यक्षी के तीन करों में चक्र (छल्ला), पद्म एवं नरमुण्ड प्रदर्शित हैं और एक कर जानु पर स्थित है। यक्षी का वाहन नर है जो देवी के समीप भूमि पर बैठा है। ज्ञातव्य है कि श्वेतांबर परम्परा की ८वीं महाविद्या महाकाली को नरवाहना बताया गया है। पर यक्षी के आयुध महाविद्या महाकाली से पूर्णतः भिन्न हैं। अतः नरवाहन और करों में नरमुण्ड तथा चक्र के प्रदर्शन के आधार पर हिन्दू महाकाली या चामुण्डा का प्रभाव स्वीकार करना अधिक उपयुक्त होगा।[2] बारभुजी गुफा की मूर्ति में कुंथु की दशभुजा यक्षी महिषवाहना है। यक्षी के दक्षिण करों में वरदमुद्रा, दण्ड, अंकुश (?), चक्र एवं अक्षमाला (?) और वाम में तीन कांटों वाला आयुध (त्रिशूल), चक्र, शंख (?), पद्म एवं कलश प्रदर्शित हैं।[3] राजपूताना संग्रहालय, अजमेर एवं विमलवसही (देवकुलिका ३५) की कुंथुनाथ की मूर्तियों में यक्षी अम्बिका है।

(१८) यक्षेन्द्र (या खेन्द्र) यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

यक्षेन्द्र (या खेन्द्र) जिन अरनाथ का यक्ष है। दोनों परम्पराओं में षण्मुख, द्वादशभुज एवं त्रिनेत्र यक्षेन्द्र का वाहन शंख बताया गया है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका में शंख पर आरूढ़ यक्षेन्द्र के दक्षिण करों में मातुलिंग, बाण, खड्ग, मुद्गर, पाश, अभयमुद्रा और वाम में नकुल, धनुष, खेटक, शूल, अंकुश, अक्षसूत्र का वर्णन है।[4] पद्मानन्दमहाकाव्य में वाम करों में केवल पांच ही आयुधों के उल्लेख हैं जो चक्र, धनुष, शूल, अंकुश एवं अक्षसूत्र हैं।[5] मन्त्राधिराजकल्प में यक्ष को वृषभारूढ़ कहा गया है और उसके एक दाहिने हाथ में पाश के स्थान पर शूल का उल्लेख है।[6] आचारदिनकर में खेटक के स्थान पर फलक मिलता है।[7] देवतामूर्तिप्रकरण में यक्षेन्द्र का वाहन शेष है और उसके एक हाथ में बाण के स्थान पर कपाल (शिरस्) के प्रदर्शन का निर्देश है।[8]

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह में शंखवाहन से युक्त खेन्द्र के करों के आयुधों का अनुल्लेख है।[9] प्रतिष्ठासारोद्धार में यक्ष के बायें हाथों में धनुष, वज्र, पाश, मुद्गर, अंकुश और वरदमुद्रा वर्णित हैं। दाहिने हाथों के केवल तीन ही आयुधों का उल्लेख है जो बाण, पद्म एवं फल हैं।[10] प्रतिष्ठातिलकम् में दक्षिण करों में बाण, पद्म एवं अक्षफल के

---

१ जि०इ०दे०, पृ० १०३

२ राव, टी०ए० गोपीनाथ, पू०नि०, पृ० ३५८, ३६६

३ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १३१

४ यक्षेन्द्रयक्षं षण्मुखं त्रिनेत्रं श्यामवर्णं शंखवाहनं द्वादशभुजं मातुलिंगबाणखड्गमुद्गरपाशाभययुक्तदक्षिणपाणिं नकुलधनुश्चर्मफलकशूलांकुशाक्षसूत्रयुक्तवामपाणिं चेति। निर्वाणकलिका १८.१८; द्रष्टव्य, त्रि०श०पु०च० ६.५.१७–१८

५ पद्मानन्दमहाकाव्य : परिशिष्ट—अरनाथ १७–१८

६ यक्षोऽसितो वृषगतिः शरमातुलिङ्ग शूलाभयासिकलमुद्गरपाणिषट्कः। शूलांकुशाक्षनकुलाहितैरभयं च बिभ्रद् वामेषु खेटकयुतानि हितानि दद्यात्। मन्त्राधिराजकल्प ३.४२

७ आचारदिनकर ३४, पृ० १७५

८ देवतामूर्तिप्रकरण ७.५०–५१

९ अरस्य जिननाथस्य खेन्द्रो यक्षस्त्रिलोचनः।
द्वादशोरुभुजः श्यामः षण्मुखः शंखवाहनः॥ प्रतिष्ठासारसंग्रह ५.५६

१० आरभ्योपरिमात्करेषु कलयन् वामेषु चापं पविं पाशं मुद्गरमंकुशं च वरदः षष्ठेन युंजन् परैः।
बाणांभोजफलस्रगक्षवलयलीलाविलासांस्त्रिषट्‌ शङ्खाक्रीडगमशंकिकिरभ्रितः खेन्द्रोऽर्च्यते शंखगः॥
प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१४६

साथ ही पाश (पुष्पहार), अक्षमाला एवं लीलामुद्रा के प्रदर्शन का उल्लेख है।[1] अपराजितपृच्छा में यक्षेश चतुर्मुख है और उसका वाहन मयूर है। यक्ष के करों में बाण, चक्र (अरि), धनुष, बाण, फल एवं वरदमुद्रा का वर्णन है।[2]

यक्ष के निरूपण में हिन्दू कार्तिकेय एवं इन्द्र के संयुक्त प्रभाव देखे जा सकते हैं। यक्ष का षण्मुख होना कार्तिकेय का और दिगंबर परम्परा में यक्ष की भुजाओं में वज्र एवं अंकुश का प्रदर्शन इन्द्र का प्रभाव दरशाता है।

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ में षण्मुख एवं द्वादशभुज खेन्द्र का वाहन मयूर है। ग्रन्थ में केवल छह हाथों के आयुध वर्णित हैं। यक्ष के दो हाथ गोद में हैं और अन्य चार में कमान (धनुक), उरग तथा अभय-और-कटक मुद्राओं का उल्लेख है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में द्विभुज यक्ष का नाम जय है और उसके हाथों के आयुध त्रिशूल एवं मृग हैं। यक्ष-यक्षी-लक्षण में द्वादशभुज यक्ष के करों में उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा के समान कार्मुक, वज्र, पाश, मुद्गर, अंकुश, वरदमुद्रा, शर, पद्म, फल, स्रुक, पुष्पहार एवं अक्षमाला वर्णित हैं।[3]

यक्ष की एक भी स्वतन्त्र मूर्ति नहीं मिली है। राज्य संग्रहालय, लखनऊ की एक अरनाथ की मूर्ति (जे ८६१, १०वीं शती ई०) में द्विभुज यक्ष सर्वानुभूति है।

(१८) धारणी (या तारावती) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

धारणी (या तारावती) जिन अरनाथ की यक्षी है। श्वेतांबर परम्परा में चतुर्भुजा धारणी (या काली) का वाहन पद्म है और दिगंबर परम्परा में चतुर्भुजा तारावती (या विजया) का वाहन हंस है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका में पद्मवाहना धारणी के दाहिने हाथों में मातुलिंग एवं उत्पल और बायें में पाश एवं अक्षसूत्र का वर्णन है।[4] अन्य सभी ग्रन्थों में पाश के स्थान पर पद्म का उल्लेख है।[5]

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह में हंसवाहना तारावती के करों में सर्प, वज्र, मृग एवं वरदमुद्रा वर्णित हैं।[6] अन्य ग्रन्थों में भी इन्हीं लक्षणों के उल्लेख हैं।[7] केवल अपराजितपृच्छा में चतुर्भुजा यक्षी का वाहन सिंह है और उसके दो हाथों में मृग एवं वरदमुद्रा के स्थान पर चक्र एवं फल के प्रदर्शन का निर्देश है।[8] तारावती का स्वरूप, नाम एवं सर्प के प्रदर्शन के सन्दर्भ में, बौद्ध तारा से प्रभावित प्रतीत होता है।[9]

---

१ बाणांकुशोत्कलमाल्यमहाक्षमालालीलाब्जाम्बरमितं त्रिदशं च खेन्द्रं। प्रतिष्ठातिलकम् ७.१८, पृ० ३३६

२ यक्षेशश्चतुर्वक्त्रो बाणारिधनुर्बाणाः फलं वरः। अपराजितपृच्छा २२१.५३

३ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २०६–२०७

४ धारणी देवीं कृष्णवर्णां चतुर्भुजां मातुलिंगोत्पलान्वितदक्षिणभुजां पाशाक्षसूत्रान्वितवामकरां चेति।
निर्वाणकलिका १८.१८

५ त्रि०श०पु०च० ६.१.९९–१००; पद्मानन्दमहाकाव्य परिशिष्ट—अरनाथ १९; आचारदिनकर ३४, पृ० १७७; देवतामूर्तिप्रकरण ७.५२

६ देवी तारावती नाम्ना हेमवर्णा चतुर्भुजा।
सर्पं वज्रं मृगं धत्ते वरदा हंसवाहना॥ प्रतिष्ठासारसंग्रह ५.५७

७ स्वर्णाभां हंसगां सर्पमृगवज्रवरोद्धराम्। प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१७२; द्रष्टव्य, प्रतिष्ठातिलकम् ७.१८, पृ० ३४६

८ सिंहस्था चतुर्बाहुर्वज्रचक्रफलोरगाः।
देवोमती स्वर्णवर्णा नाम्ना सा विजयामता॥ अपराजितपृच्छा २२१.३२

९ भट्टाचार्य, बी० सी०, पू०नि०, पृ० १३९

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ में चतुर्भुजा यक्षी का वाहन हंस है और उसकी दाहिनी भुजाओं में सर्प एवं [illegible] में अभयमुद्रा एवं शक्ति का उल्लेख है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में वृषभवाहना यक्षी (विजया) [illegible] एवं द्वादशभुजा है जिसके करों में खड्ग, खेटक, धनु, बाण, चक्र, अंकुश, वज्र, अक्षमाला, वरदमुद्रा, [illegible], अभयमुद्रा और फल का वर्णन है। यक्षी का स्वरूप यक्षेन्द्र (१८वां यक्ष) से प्रभावित है। [illegible] चतुर्भुजा है और उसके हाथों में उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा के समान सर्प, [illegible] वर्णित हैं।[1]

मूर्ति-परम्परा

यक्षी की दो स्वतन्त्र मूर्तियां मिली हैं। ये मूर्तियां देवगढ़ (मन्दिर १२, ८६२ ई०) एवं बारभुजी गुफा के समूहों में उत्कीर्ण हैं। देवगढ़ में अरनाथ के साथ 'तारादेवी' नाम की द्विभुजा यक्षी निरूपित है।[2] यक्षी की दाहिनी भुजा जानु पर स्थित है और बायीं में पद्म है। बारभुजी गुफा की मूर्ति में भी यक्षी द्विभुजा है और उसका वाहन सम्भवतः [illegible] है। यक्षी के करों में वरदमुद्रा एवं सनाल पद्म प्रदर्शित हैं।[3] उपर्युक्त दोनों मूर्तियों में यक्षी की एक भुजा में पद्म का प्रदर्शन श्वेतांबर परम्परा से निर्देशित हो सकता है।[4] स्मरणीय है कि दोनों मूर्तियां दिगंबर स्थलों से मिली हैं। राज्य संग्रहालय, लखनऊ की जिन-संयुक्त मूर्ति में द्विभुज यक्षी सामान्य लक्षणों वाली है।

(१९) कुबेर यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

कुबेर (या यक्षेश) जिन मल्लिनाथ का यक्ष है। दोनों परम्पराओं में गजारूढ़ यक्ष को चतुर्मुख एवं अष्टभुज बताया गया है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका में गरुडवदन[5] कुबेर का वाहन गज है और उसके दाहिने हाथों में वरदमुद्रा, परशु, शूल एवं अभयमुद्रा तथा बायें में बीजपूरक, शक्ति, मुद्गर एवं अक्षसूत्र का उल्लेख है।[6] अन्य ग्रन्थों में भी इन्हीं लक्षणों का वर्णन है।[7] मन्त्राधिराजकल्प में कुबेर को चतुर्मुख नहीं कहा गया है। देवतामूर्तिप्रकरण में, रथारूढ़ कुबेर के केवल छह ही हाथों के आयुधों का उल्लेख है; फलस्वरूप शूल एवं अक्षसूत्र का अनुल्लेख है।[8]

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह में गजारूढ़ यक्षेश के आयुधों का अनुल्लेख है।[9] प्रतिष्ठासारोद्धार में, कुबेर के हाथों में फलक, धनुष, दण्ड, पद्म, खड्ग, बाण, पाश एवं वरदमुद्रा के प्रदर्शन का निर्देश है।[10] अपराजितपृच्छा

---

१ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २०७ २ जि०इ०दे०, पृ० १०३, २०६

३ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १३२ ४ पद्म का प्रदर्शन बौद्ध तारा का प्रभाव भी हो सकता है।

५ केवल निर्वाणकलिका में ही यक्ष को गरुडवदन कहा गया है।

६ कुबेरयक्षं चतुर्मुखमिन्द्रायुधवर्णं गरुडवदनं गजवाहनं अष्टभुजं वरदपरशुशूलाभययुक्तदक्षिणपाणिं बीजपूरकशक्तिमुद्गराक्षसूत्रयुक्त-वामपाणिं चेति। निर्वाणकलिका १८.१९

(पा०टि० के अनुसार मूल ग्रन्थ में वरद, पाश एवं चाप के उल्लेख हैं।)

७ त्रि०श०पु०च० ६.६.२५१–५२; पद्मानन्दमहाकाव्य–परिशिष्ट–मल्लिनाथ ५८–५९; मन्त्राधिराजकल्प ३.४३; आचारदिनकर ३४, पृ० १७५; मल्लिनाथचरित्रम् (विनयचन्द्रसूरिकृत) ७.११५४–११५६

८ देवतामूर्तिप्रकरण ७.५३

९ मल्लिनाथस्य यक्षेशः कुबेरो हस्तिवाहनः।
सुरेन्द्रचापवर्णोऽसावष्टहस्तश्चतुर्मुखः॥ प्रतिष्ठासारसंग्रह ५.५८

१० सफलकधनुर्दण्डपद्म खड्गप्रदरसुपाशवरप्रदाष्टपाणिम्। [illegible] यक्षेश्वरम्॥ प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१४७

द्रष्टव्य, प्रतिष्ठातिलकम् ७.१९, पृ० ३३७

में यक्ष को चतुर्मुख और सिंह पर आरूढ़ बताया गया है और उसके करों में पाश, अंकुश, फल एवं वरदमुद्रा का उल्लेख है।[1]

कुबेर के निरूपण में नाम, गजवाहन एवं मुद्गर के सन्दर्भ में हिन्दू कुबेर का प्रभाव देखा जा सकता है।[2] पर जैन कुबेर की मूर्तिविज्ञानपरक दूसरी विशेषताएं स्वतन्त्र एवं मौलिक हैं।[3]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दोनों परम्परा के ग्रन्थों में अष्टभुज कुबेर का वाहन गज है। दिगंबर ग्रन्थ में चतुर्मुख यक्ष के दक्षिण करों में खड्ग, शूल, कटार और अभयमुद्रा तथा वाम में शर, चाप, बर्छी (या गदा) और कटक-मुद्रा (या कोई अन्य आयुध) के प्रदर्शन का विधान है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ के अनुसार चतुर्मुख कुबेर खड्ग, खेटक, बाण, धनुष, मातुलिंग, परशु, वरदमुद्रा और दण्डमुद्रा (?) से युक्त है। यक्ष-यक्षी-लक्षण में यक्ष के करों में खड्ग, खेटक, शर, चाप, पद्म, दण्ड, पाश एवं वरदमुद्रा वर्णित हैं।[4] उपर्युक्त से स्पष्ट है कि दक्षिण भारतीय परम्पराएं उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा से प्रभावित हैं।

कुबेर यक्ष की कोई स्वतन्त्र या जिन-संयुक्त मूर्ति नहीं मिली है।

(१९) वैरोट्या (या अपराजिता) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

वैरोट्या (या अपराजिता) जिन मल्लिनाथ की यक्षी है। श्वेतांबर परम्परा में चतुर्भुजा वैरोट्या[5] का वाहन पद्म है और दिगंबर परम्परा में चतुर्भुजा अपराजिता का वाहन शरभ (या अष्टापद) है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका में पद्मवाहना वैरोट्या के दाहिने हाथों में वरदमुद्रा एवं अक्षसूत्र और बायें में मातुलिंग एवं शक्ति का वर्णन है।[6] अन्य ग्रन्थों में भी इन्हीं आयुधों के उल्लेख हैं।[7]

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह में अपराजिता का वाहन अष्टापद (शरभ) है और उसके तीन हाथों में फल, खड्ग एवं खेटक का उल्लेख है; चौथी भुजा की सामग्री का अनुल्लेख है।[8] अन्य ग्रन्थों में शरभवाहना यक्षी की चौथी भुजा में वरदमुद्रा वर्णित है।[9]

---

१ पाशाङ्कुशफलवरा धनेट् सिंहे चतुर्मुखः। अपराजितपृच्छा २२१.५३

२ भट्टाचार्य, बी० सी०, पूर्वनि०, पृ० ११३

३ जैन कुबेर के हाथ में धन के थैले (नकुल के चर्म से निर्मित) का न प्रदर्शित किया जाना इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। ज्ञातव्य है कि धन के थैले एवं अंकुश और पाश से युक्त गजारूढ़ यक्ष का उल्लेख नेमिनाथ के सर्वानुभूति यक्ष के रूप में किया गया है क्योंकि नेमिनाथ की मूर्तियों में अम्बिका के साथ यही यक्ष निरूपित है।

४ रामचन्द्रन, टी० एन०, पूर्वनि०, पृ० २०७

५ अभिधानराजेन्द्र एवं देवतामूर्तिप्रकरण में यक्षी को क्रमशः धनजात देवी और धरणप्रिया नामों से सम्बोधित किया गया है।

६ वैरोट्यां देवीं कृष्णवर्णां पद्मासनां चतुर्भुजां वरदाक्षसूत्रयुक्तदक्षिणकरां मातुलिंगशक्तियुक्तवामहस्तां चेति। निर्वाणकलिका १८.१९

७ त्रि०श०पु०च० ६.६.२५३-५४; पद्मानन्दमहाकाव्य: परिशिष्ट—मल्लिनाथ ६०-६१; अभिधानराजेन्द्र ३.६२; देवतामूर्तिप्रकरण ७.५४; आचारदिनकर ३४, पृ० १७७

८ अष्टापदं समारूढा देवी नाम्नाऽपराजिता।
फलासिखेटहस्तासौ हरिद्वर्णा चतुर्भुजा॥ प्रतिष्ठासारसंग्रह ५.५९

९ शरभस्थाच्यंते खेटफलासिवरयुक् हरित्॥ प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१७३
द्रष्टव्य, प्रतिष्ठातिलकम् ७.१९, पृ० ३४६; अपराजितपृच्छा २२१.३३

यक्षी वैरोट्या का नाम निश्चित ही १३वीं महाविद्या वैरोट्या से ग्रहण किया गया है, पर यक्षी की लाक्षणिक विशेषताएं महाविद्या से पूरी तरह भिन्न हैं। जैन परम्परा में महाविद्या वैरोट्या को नागेन्द्र वरुण की प्रमुख रानी बताया गया है। आचारदिनकर एवं देवतामूर्तिप्रकरण में यक्षी वैरोट्या को भी क्रमशः नागाधिप की प्रियतमा और वरुणप्रिया कहा गया है।

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ में चतुर्भुजा अपराजिता का वाहन हंस है और उसके ऊपरी हाथों में खड्ग एवं खेटक और निचले में अभय-एवं-कटक मुद्राएं वर्णित हैं। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ के अनुसार लोमड़ी पर आसीन यक्षी द्विभुजा और वरदमुद्रा एवं सदंर (पुष्प) से युक्त है। यक्ष-यक्षी-लक्षण में उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा के अनुरूप शरभवाहना यक्षी चतुर्भुजा है और उसके करों में फल, खड्ग, फलक एवं वरदमुद्रा का उल्लेख है।[1]

मूर्ति-परम्परा

यक्षी की दो स्वतन्त्र मूर्तियां मिली हैं। ये मूर्तियां देवगढ़ (मन्दिर १२, ८६२ ई०) एवं बारभुजी गुफा के यक्षी समूहों में उत्कीर्ण हैं। देवगढ़ में मल्लिनाथ के साथ *'हीमादेवी' नाम की सामान्य स्वरूप वाली द्विभुजा यक्षी आमूर्तित है।*[2] यक्षी के दक्षिण हाथ में कलश है और वाम भुजा जानु पर स्थित है। बारभुजी गुफा की मूर्ति में अष्टभुजा यक्षी का वाहन कोई पशु (सम्भवतः अश्व) है तथा उसके दक्षिण करों में वरदमुद्रा, शक्ति, बाण, खड्ग और वाम में शंख (?), धनुष, खेटक, पताका प्रदर्शित हैं।[3] यक्षी का निरूपण परम्परासम्मत नहीं है।

(२०) वरुण यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

वरुण जिन मुनिसुव्रत का यक्ष है। दोनों परम्पराओं में वृषभारूढ़ वरुण को जटामुकुट से युक्त और त्रिनेत्र बताया गया है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका में वरुण यक्ष को चतुर्मुख एवं अष्टभुज कहा गया है तथा वृषभारूढ़ यक्ष के दाहिने हाथों में मातुलिंग, गदा, बाण, शक्ति एवं बायें में नकुलक, पद्म, धनुष, परशु का उल्लेख है।[4] दो ग्रन्थों में पद्म के स्थान पर अक्षमाला का उल्लेख है।[5] मन्त्राधिराजकल्प में वरुण को चतुर्मुख नहीं बताया गया है।[6] आचारदिनकर में यक्ष को द्वादशलोचन कहा गया है।[7] देवतामूर्तिप्रकरण में परशु के स्थान पर पाश के प्रदर्शन का निर्देश है।[8]

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह में वृषभारूढ़ वरुण अष्टानन एवं चतुर्भुज है। ग्रन्थ में आयुधों का अनुल्लेख है।[9] प्रतिष्ठासारोद्धार में जटाकिरीट से शोभित चतुर्भुज वरुण के करों में खेटक, खड्ग, फल एवं वरदमुद्रा के

---

१ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २०७

२ जि०इ०दे०, पृ० १०३, १०६

३ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १३२

४ वरुणयक्षं चतुर्मुखं त्रिनेत्रं धवलवर्णं वृषभवाहनं जटामुकुटमण्डितं अष्टभुजं मातुलिंगगदाबाणशक्तियुतदक्षिणपाणिं नकुलकपद्मधनुः परशुयुतवामपाणिं चेति। निर्वाणकलिका १८.२०

५ त्रि०श०पु०च० ६.७.१९४–९५; पद्मानन्दमहाकाव्यः परिशिष्ट—मुनिसुव्रत ४३–४४

६ मन्त्राधिराजकल्प ३.४४

७ आचारदिनकर ३४, पृ० १७५

८ देवतामूर्तिप्रकरण ७.५५–५६

९ मुनिसुव्रतनाथस्य यक्षो वरुणसंज्ञकः।
त्रिनेत्रो वृषमारूढः श्वेतवर्णश्चतुर्भुजः॥
अष्टाननो महाकायो जटामुकुटभूषितः। प्रतिष्ठासारसंग्रह ५.६०–६१

प्रदर्शन का विधान है।[1] अपराजितपृच्छा में षड्भुज वरुण के करों में पाश, अंकुश, कार्मुक, शर, उरग एवं वज्र वर्णित हैं।[2]

यद्यपि वरुण यक्ष का नाम पश्चिम दिशा के दिक्पाल वरुण से ग्रहण किया गया पर उसकी लाक्षणिक विशेषताएं दिक्पाल से भिन्न हैं।[3] वरुण यक्ष का त्रिनेत्र होना और उसके साथ वृषभवाहन और जटामुकुट का प्रदर्शन शिव का प्रभाव है। हाथों में परशु एवं सर्प के प्रदर्शन भी शिव के प्रभाव का ही समर्थन करते हैं।

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ में सप्तमुख एवं चतुर्भुज यक्ष के वाहन का अनुल्लेख है। यक्ष के दक्षिण करों में पुष्प (पद्म) एवं अभयमुद्रा और वाम में कटकमुद्रा एवं खेटक वर्णित हैं। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में पंचमुख एवं अष्टभुज वरुण का वाहन मकर है तथा यक्ष के करों में खड्ग, खेटक, शर, चाप, फल, पाश, वरदमुद्रा एवं दण्ड का उल्लेख है। यक्ष-यक्षी-लक्षण में उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा के अनुरूप त्रिनेत्र एवं चतुर्भुज यक्ष वृषभारूढ़ और हाथों में खड्ग, वरदमुद्रा, खेटक एवं फल से युक्त है।[4]

मूर्ति-परम्परा

ओसिया के महावीर मन्दिर (श्वेतांबर) के अर्धमण्डप के पूर्वी छज्जे पर एक द्विभुज देवता की मूर्ति है जिसमें वृषभारूढ़ देवता के दाहिने हाथ में खड्ग है और बांया जानु पर स्थित है। वृषभवाहन एवं खड्ग के आधार पर देवता की पहचान वरुण यक्ष से की जा सकती है। राज्य संग्रहालय, लखनऊ (जे ७७६) एवं विमलवसही (देवकुलिका ११ एवं ३१) की मुनिसुव्रत की तीन मूर्तियों में यक्ष सर्वानुभूति है।

(२०) नरदत्ता (या बहुरूपिणी) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

नरदत्ता (या बहुरूपिणी) जिन मुनिसुव्रत की यक्षी है। श्वेतांबर परम्परा में चतुर्भुजा नरदत्ता[5] भद्रासन पर विराजमान है। दिगंबर परम्परा में चतुर्भुजा बहुरूपिणी का वाहन काला नाग है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका में भद्रासन पर विराजमान यक्षी के दाहिने हाथों में वरदमुद्रा एवं अक्षसूत्र और बायें में बीजपूरक एवं कुम्भ वर्णित हैं।[6] समान लक्षणों का उल्लेख करने वाले अन्य ग्रन्थों में कुम्भ के स्थान पर शूल

---

१ जटाकिरीटोष्टमुखस्त्रिनेत्रो वामान्यखेटासिफलेष्टदानः।
कूर्मांकनम्रो वरुणो वृषस्थः श्वेतो महाकायउपैतुतुष्टिम् ॥ प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१४८
द्रष्टव्य, प्रतिष्ठातिलकम् ७.२०, पृ० ३३७

२ पाशाङ्कुश धनुर्बाण सर्पवज्रा क्षमांपतिः। अपराजितपृच्छा २२१.५४

३ अपराजितपृच्छा में वरुण यक्ष को जल का स्वामी (अपांपति) भी बताया गया है।

४ रामचन्द्रन, टी०एन०, पू०नि०, पृ० २०७

५ निर्वाणकलिका एवं देवतामूर्तिप्रकरण में यक्षी को वरदत्ता, आचारदिनकर एवं प्रवचनसारोद्धार में अच्छुप्ता और मन्त्राधिराजकल्प में सुगन्धि नामों से सम्बोधित किया गया है।

६ वरदत्तां देवीं गौरवर्णां भद्रासनारूढां चतुर्भुजां वरदाक्षसूत्रयुतदक्षिणकरां बीजपूरककुम्भयुतवामहस्तां चेति।
निर्वाणकलिका १८.२०

का निर्देश है।[1] देवतामूर्तिप्रकरण में चतुर्भुजा यक्षी का वाहन सिंह है और उसके एक हाथ में कुम्भ के स्थान पर त्रिशूल का उल्लेख है।[2]

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह में काले नाग पर आरूढ़ बहुरूपिणी के तीन करों में खेटक, खड्ग एवं फल हैं; चौथी भुजा के आयुध का अनुल्लेख है।[3] प्रतिष्ठासारोद्धार में चौथे हाथ में वरदमुद्रा का उल्लेख है।[4] अपराजितपृच्छा में बहुरूपा द्विभुजा और खड्ग एवं खेटक से युक्त है।[5]

श्वेतांबर परम्परा में नरदत्ता एवं अच्छुप्ता के नाम क्रमशः छठी और १४ वीं जैन महाविद्याओं से ग्रहण किये गये। पर उनकी मूर्तिविज्ञानपरक विशेषताएं स्वतन्त्र हैं। दिगंबर परम्परा में बहुरूपिणी यक्षी के साथ सर्पवाहन एवं खड्ग और खेटक का प्रदर्शन १३ वीं जैन महाविद्या वैरोट्या से प्रभावित है।[6]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ में चतुर्भुजा बहुरूपिणी का वाहन उरग है और उसके ऊपरी करों में खड्ग, खेटक एवं निचले में अभय-और-कटक मुद्राएं वर्णित हैं। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में मयूरवाहना विद्या द्विभुजा और करों में खड्ग एवं खेटक धारण किये है। यक्ष-यक्षी-लक्षण में सर्पवाहना यक्षी चतुर्भुजा है और उसके करों में खेटक, खड्ग, फल एवं वरदमुद्रा वर्णित हैं।[7] उपर्युक्त से स्पष्ट है कि दक्षिण भारत की दोनों परम्पराओं एवं उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा के विवरणों में पर्याप्त समानता है।

मूर्ति-परम्परा

बहुरूपिणी की दो स्वतन्त्र मूर्तियां क्रमशः देवगढ़ (मन्दिर १२,८६२ई०) एवं बारभुजी गुफा के सामूहिक अंकनों में उत्कीर्ण हैं। देवगढ़ में मुनिसुव्रत के साथ 'सिमइ' नाम की चतुर्भुजा यक्षी आमूर्तित है।[8] पद्मवाहना यक्षी के तीन हाथों मे शृंखला, अभय-पद्म (या पाश) और पद्म[9] प्रदर्शित हैं। चौथी भुजा जानु पर स्थित है। यक्षी के साथ पद्म वाहन एवं करों में शृङ्खला और पद्म का प्रदर्शन जैन महाविद्या वज्रशृङ्खला का प्रभाव है।[10] बारभुजी गुफा की मूर्ति में मुनिसुव्रत की द्विभुजा यक्षी को शय्या पर लेटे हुए प्रदर्शित किया गया है। यक्षी के समीप तीन सेवक और शय्या के नीचे

---

१ समातुलिंगशूलाभ्यां वामदोर्भ्यां च शोभिता। त्रि०श०पु०च० ६.७.१९६–९७; द्रष्टव्य, पद्मानन्दमहाकाव्य : परिशिष्ट–मुनिसुव्रत ४५–४६; आचारदिनकर ३४, पृ० १७७; मंत्राधिराजकल्प ३.६३

२ नरदत्ता गौरवर्णा सिंहारूढा सुशोभना।
वरदं चाक्षसूत्रं त्रिशूलं च बीजपूरकम्॥ देवतामूर्तिप्रकरण ७.५७

३ कृष्णनागसमारूढा देवता बहुरूपिणी।
खेटं खड्गं फलं धत्ते हेमवर्णा चतुर्भुजा॥ प्रतिष्ठासारसंग्रह ५.६१–६२

४ यजे कृष्णाहिगां खेटकफलखड्गवरोत्तराम्। प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१७४
द्रष्टव्य, प्रतिष्ठातिलकम् ७.२०, पृ० ३४६

५ द्विभुजा स्वर्णवर्णा च खड्गखेटक धारिणी।
सर्पासना च कर्तव्या बहुरूपा सुखावहा॥ अपराजितपृच्छा २२१.३४

६ श्वेतांबर परम्परा में उरगवाहना महाविद्या वैरोट्या के हाथों में सर्प, खेटक, खड्ग एवं सर्प के प्रदर्शन का निर्देश किया गया है।

७ रामचन्द्रन, टी०एन०, पू०मि०, पृ० २०८

८ जि०इ०दे०, पृ० १०१

९ पद्म त्रिशूल जैसा दीख रहा है।

१० जैन ग्रन्थों में वज्रशृंखला महाविद्या को पद्मवाहना और दो हाथों में शृंखला तथा शेष में वरदमुद्रा एवं पद्म से युक्त बताया गया है।

कलश उत्कीर्ण हैं।[1] यहां उल्लेखनीय है कि दिगंबर स्थलों[2] की चार अन्य जिन मूर्तियों (९वीं-१२वीं शती ई०) में मूलनायक की आकृति के नीचे एक स्त्री को ठीक इसी प्रकार शय्या पर विश्राम करते हुए आमूर्तित किया गया है।[3] देवला मित्रा ने तीन उदाहरणों में मुनिसुव्रत के साथ निरूपित उपर्युक्त स्त्री आकृति की पहचान मुनिसुव्रत की यक्षी से की है।[4]

राज्य संग्रहालय, लखनऊ एवं विमलवसही की मुनिसुव्रत की तीन मूर्तियों में यक्षी के रूप में अम्बिका निरूपित है।

(२१) भृकुटि यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

भृकुटि जिन नमिनाथ का यक्ष है। दोनों परम्पराओं में वृषभारूढ़ भृकुटि को चतुर्मुख एवं अष्टभुज कहा गया है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका में त्रिनेत्र और चतुर्मुख भृकुटि का वाहन वृषभ है। भृकुटि के दाहिने हाथों में मातुलिंग, शक्ति, मुद्गर, अभयमुद्रा एवं बायें में नकुल, परशु, वज्र, अक्षसूत्र का उल्लेख है।[5] अन्य ग्रन्थों में भी इन्हीं लक्षणों के प्रदर्शन का निर्देश है।[6] आचारदिनकर में द्वादशाक्ष यक्ष की भुजा में अक्षमाला के स्थान पर मौक्तिकमाला का उल्लेख है।[7] देवतामूर्तिप्रकरण में चार करों में मातुलिंग, शक्ति, मुद्गर एवं अभयमुद्रा वर्णित हैं; शेष करों के आयुधों का अनुल्लेख है।[8]

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह में चतुर्मुख भृकुटि का वाहन नन्दी है, किन्तु आयुधों का अनुल्लेख है।[9] प्रतिष्ठासारोद्धार में यक्ष के करों में खेटक, खड्ग, धनुष, बाण, अंकुश, पद्म, चक्र एवं वरदमुद्रा वर्णित हैं।[10] अपराजितपृच्छा

---

१ मित्रा, देवला, पू०नि०, पृ० १३२

२ बजरामठ (ग्यारसपुर), वैभार पहाड़ी (राजगिर), आशुतोष संग्रहालय, कलकत्ता, पी०सी० नाहर संग्रह, कलकत्ता। वैभार पहाड़ी एवं आशुतोष संग्रहालय की जिन मूर्तियों में मुनिसुव्रत का कूर्मलांछन भी उत्कीर्ण है। द्रष्टव्य, जै०क०स्था०, खं० १, पृ० १७२

३ स्त्री के समीप कोई बालक आकृति नहीं उत्कीर्ण है, अतः इसे जिन की माता का अंकन नहीं माना जा सकता है। फिर माता का जिन मूर्तियों के पादपीठों पर जिनों के चरणों के नीचे अंकन भारतीय परम्परा के विरुद्ध भी है। दूसरी ओर बारभुजी गुफा में यक्षियों के समूह में मुनिसुव्रत के साथ इस देवी का चित्रण उसके यक्षी होने का सूचक है।

४ मित्रा, देवला, 'आइकानोग्राफिक नोट्स', ज०ए०सो०बं०, खं० १, अं० १, पृ० ३७–३९

५ भृकुटियक्षं चतुर्मुखं त्रिनेत्रं हेमवर्णं वृषभवाहनं अष्टभुजं मातुलिंगशक्तिमुद्गराभययुक्तदक्षिणपाणिं नकुलपरशुवज्राक्ष-सूत्रवामपाणिं चेति। निर्वाणकलिका १८.२१

६ त्रि०श०पु०च० ७.११.९८–९९; पद्मानन्दमहाकाव्य : परिशिष्ट—नमिनाथ १८–१९; मन्त्राधिराजकल्प ३.४५

७ आचारदिनकर ३४, पृ० १७५

८ भृकुटि (नेमि ? नमि) नाथस्य पीनस्त्र्यक्षश्चतुर्मुखः।
वृषवाहो मातुलिंगं शक्तिश्च मुद्गराभयौ॥ देवतामूर्तिप्रकरण ७.५८

९ नमिनाथजिनेन्द्रस्य यक्षो भृकुटिसंज्ञकः।
अष्टबाहुश्चतुर्वक्त्रो रक्ताभो नन्दिवाहनः॥ प्रतिष्ठासारसंग्रह ५.६३

१० खेटासिकोदण्डशरांकुशाब्जचक्रेष्टदानोल्लसिताष्टहस्तम्।
चतुर्मुखं नन्दिगमुत्पलांकमक्तं जपाभं भृकुटिं यजामि॥
प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१४९। द्रष्टव्य, प्रतिष्ठातिलकम् ७.२१, पृ० ३३७

में यक्ष के केवल पांच ही करों के आयुध उल्लिखित हैं, जो शूल, शक्ति, वज्र, खेटक एवं डमरु हैं।[1] उल्लेखनीय है कि दिगंबर परम्परा में यक्ष को त्रिनेत्र नहीं बताया गया है।

श्वेतांबर परम्परा में भृकुटि का त्रिनेत्र होना और उसके साथ वृषभवाहन एवं परशु का प्रदर्शन शिव का प्रभाव प्रतीत होता है। दिगंबर परम्परा में भी भृकुटि का वाहन नन्दी ही है। हिन्दू ग्रन्थों में शिव के भृकुटि स्वरूप ग्रहण करने का भी उल्लेख प्राप्त होता है।[2]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ में वृषभारूढ़ यक्ष को चतुर्मुख एवं अष्टभुज बताया गया है जिसके दक्षिण करों में खड्ग, बर्छी (या शंकु), पुष्प, अभयमुद्रा एवं वाम में फलक, कार्मुक, शर, कटकमुद्रा वर्णित हैं। अज्ञात-नाम श्वेतांबर ग्रन्थ में यक्ष चतुर्मुख एवं अष्टभुज है, पर उसका नाम विद्युत्प्रभ बताया गया है। उसका वाहन हंस है और उसके करों में असि, फलक, इषु, चाप, चक्र, अंकुश, वरदमुद्रा एवं पुष्प का उल्लेख है। समान लक्षणों का उल्लेख करने वाले यक्ष-यक्षी-लक्षण में यक्ष का वाहन वृषभ है और एक हाथ में पुष्प के स्थान पर पद्म प्राप्त होता है।[3] दक्षिण भारत के दोनों परम्पराओं के विवरण सामान्यतः उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा के समान हैं।

भृकुटि की एक भी स्वतन्त्र मूर्ति नहीं मिली है। लूणवसही की देवकुलिका १९ की नमिनाथ की मूर्ति (१२३३ ई०) में यक्ष सर्वानुभूति है।

(२१) गान्धारी (या चामुण्डा) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

गान्धारी (या चामुण्डा) जिन नमिनाथ की यक्षी है। श्वेतांबर परम्परा में चतुर्भुजा गान्धारी (या मालिनी) का वाहन हंस और दिगंबर परम्परा में चामुण्डा (या कुसुममालिनी) का वाहन मकर है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका में हंसवाहना गान्धारी के दाहिने हाथों में वरदमुद्रा, खड्ग एवं बायें में बीजपूरक, कुम्भ (या कुंत ?) का उल्लेख है।[4] प्रवचनसारोद्धार, मन्त्राधिराजकल्प एवं आचारदिनकर में कुम्भ के स्थान पर क्रमशः शूल, फलक एवं शकुन्त के उल्लेख हैं।[5] दो ग्रन्थों में वाम करों में फल के प्रदर्शन का निर्देश है।[6] देवतामूर्ति-प्रकरण में हंसवाहना यक्षी अष्टभुजा है और अक्षमाला, वज्र, परशु, नकुल, वरदमुद्रा, खड्ग, खेटक एवं मातुलिंग (लुंग) से युक्त है।[7]

---

१ शूलशक्ति वज्रखेटा ? डमरुर्भृकुटिस्तथा। अपराजितपृच्छा २२१.५४

२ रचित भृकुटिबन्धं नन्दिना द्वारि रुद्धे। हरिविलास। द्रष्टव्य, भट्टाचार्य, बी० सी०, पू०नि०, पृ० ११५

३ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २०८

४ नमेर्गान्धारी देवीं श्वेतां हंसवाहनां चतुर्भुजां वरदखड्गयुक्तदक्षिणभुजद्वयां बीजपूरकुम्भ-(कुन्त ?)-युतवामपाणिद्वयां चेति। निर्वाणकलिका १८.२१

५ प्रवचनसारोद्धार २१, पृ० ९४; मन्त्राधिराजकल्प ३.६३; आचारदिनकर ३४, पृ० १७७। शकुन्त पक्षी एवं कुन्त दोनों का सूचक हो सकता है।

६ ....वामाभ्यां बीजपूरिभ्यां बाहुभ्यामुपशोभिता। त्रि०श०पु०च० ७.११.१००–१०१; द्रष्टव्य, पद्मानन्दमहाकाव्य : परिशिष्ट—नमिनाथ २०–२१

७ अक्षवज्रपरशुनकुलं मथानस्तु गान्धारी यक्षिणी।
वरखड्गखेट लुंगं हंसारूढास्तिता कार्यो॥ देवतामूर्तिप्रकरण ७.५९

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारोद्धार में मकरवाहना चामुण्डा चतुर्भुजा है और उसके करों में दण्ड (यष्टि), खेटक, अक्षमाला एवं खड्ग के प्रदर्शन का उल्लेख है।[1] अपराजितपृच्छा में चामुण्डा अष्टभुजा और उसका वाहन मर्कट है। उसके हाथों में शूल, खड्ग, मुद्गर, पाश, वज्र, चक्र, डमरु एवं अक्षमाला वर्णित हैं।[2]

नमि की चामुण्डा एवं गान्धारी यक्षियों के निरूपण में वासुपूज्य की गान्धारी एवं चण्डा यक्षियों के वाहन (मकर) एवं आयुध (शूल) का परस्पर आदान-प्रदान हुआ है। वासुपूज्य की गान्धारी एवं नमि की चामुण्डा मकरवाहना है और नमि की गान्धारी एवं वासुपूज्य की चण्डा की एक भुजा में शूल प्रदर्शित है। चामुण्डा का एक नाम कुसुममालिनी भी है, जिसे हिन्दू कुसुममाली या काम से सम्बन्धित किया जा सकता है। ज्ञातव्य है कि कुसुममाली या काम का वाहन मकर है।[3]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ में चतुर्भुजा यक्षी मकरवाहना है और उसके दक्षिण करों में अक्षमाला एवं खड्ग (या अभयमुद्रा) और वाम में दण्ड एवं कटकमुद्रा उल्लिखित हैं। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में वरदमुद्रा एवं पद्म धारण करनेवाली यक्षी द्विभुजा और उसका वाहन हंस है। यक्ष-यक्षी-लक्षण में उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा के अनुरूप मकरवाहना यक्षी चतुर्भुजा है और उसके करों में खड्ग, दण्ड, फलक एवं अक्षसूत्र दिये गये हैं।[4]

मूर्ति-परम्परा

यक्षी की दो स्वतन्त्र मूर्तियां मिली हैं। ये मूर्तियां देवगढ़ (मन्दिर १२, ८६२ ई०) एवं बारभुजी गुफा के समूहों में उत्कीर्ण हैं। देवगढ़ में नमिनाथ के साथ सामान्य लक्षणों वाली द्विभुजा यक्षी उत्कीर्ण है। यक्षी के दाहिने हाथ में कलश है और बायां हाथ जानु पर स्थित है।[5] बारभुजी गुफा की मूर्ति में नमि की यक्षी त्रिमुखी, चतुर्भुजा एवं हंसवाहना है जिसके करों में वरदमुद्रा, अक्षमाला, त्रिदण्डी एवं कलश प्रदर्शित हैं। यक्षी का निरूपण हिन्दू ब्रह्माणी से प्रभावित है।[6] लूणवसही की जिन-संयुक्त मूर्ति में यक्षी अम्बिका है।

(२२) गोमेध यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

गोमेध जिन नेमिनाथ का यक्ष है। दोनों परम्पराओं में त्रिमुख एवं षड्भुज गोमेध का वाहन नर (या पुष्प) बताया गया है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका में नर पर आरूढ़ गोमेध के दक्षिण करों में मातुलिंग, परशु और चक्र तथा वाम में नकुल,[7] शूल और शक्ति का उल्लेख है।[8] अन्य ग्रन्थों में भी यही लक्षण वर्णित हैं।[9] आचारदिनकर में गोमेध के समीप ही अम्बिका (अम्बक) के अवस्थित होने का उल्लेख है।

---

१ चामुण्डा यष्टिखेटाक्षसूत्रखड्गोत्कटा हरित्।
मकरस्थार्च्यते पञ्चदशदण्डोन्नतेशमाक्॥ प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१७५; द्रष्टव्य, प्रतिष्ठातिलकम् ७.२१, पृ० ३४७

२ रक्तामाष्टभुजा शूलखड्गौ मुद्गरपाशकौ।
वज्रचक्रे डमरुकाक्षौ चामुण्डा मर्कटासना॥ अपराजितपृच्छा २२१.३५

३ भट्टाचार्य, बी० सी०, पू०नि०, पृ० १४२

४ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २०८

५ जि०इ०दे०, पृ० १०२, १०६

६ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १३२

७ ज्ञातव्य है कि मूर्तियों में नेमिनाथ के यक्ष की एक भुजा में धन के थैले का नियमित प्रदर्शन हुआ है। धन का थैला नकुल के चर्म से निर्मित है।

८ गोमेधयक्षं त्रिमुखं श्यामवर्णं पुरुषवाहनं षड्भुजं मातुलिंगपरशुचक्रान्वितदक्षिणपाणिं नकुलकशूलशक्तियुतवामपाणिं चेति। निर्वाणकलिका १८.२२

९ त्रि०श०पु०च० ८.९.३८३–८४; पद्मानन्दमहाकाव्य : परिशिष्ट—नेमिनाथ ५५–५६; मन्त्राधिराजकल्प ३.४६; देवतामूर्तिप्रकरण ७.६०; आचारदिनकर ३४, पृ० १७५

दिगंबर परम्परा—*प्रतिष्ठासारसंग्रह* में गोमेध का वाहन पुष्प कहा गया है किन्तु आयुधों का अनुल्लेख है।[1] *प्रतिष्ठासारोद्धार* में वाहन नर है और हाथों के आयुध मुद्गर (द्रुघण), परशु, दण्ड, फल, वज्र एवं वरदमुद्रा हैं।[2] *प्रतिष्ठातिलकम्* में द्रुघण के स्थान पर धन के प्रदर्शन का निर्देश है[3] जिसके कारण ही मूर्तियों में नेमि के यक्ष की एक भुजा में धन का थैला प्रदर्शित हुआ।

गोमेध के नरवाहन एवं पुष्पयान को हिन्दू कुबेर का प्रभाव माना जा सकता है जिसका वाहन नर है और रथ पुष्प या पुष्पकम है। यही पुष्पक अन्ततः राम ने रावण से प्राप्त किया था।[4] वाहन के अतिरिक्त गोमेध पर हिन्दू कुबेर का अन्य कोई प्रभाव नहीं है।[5]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ में त्रिमुख एवं षड्भुज सर्वाण्ह का वाहन लघु मन्दिर है। यक्ष के दक्षिण करों में शक्ति, पुष्प, अभयमुद्रा एवं वाम में दण्ड, कुठार, कटकमुद्रा वर्णित हैं। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में त्रिमुख एवं षड्भुज यक्ष का वाहन नर है तथा उसके करों में कशा, मुद्गर, फल, परशु, वरदमुद्रा एवं दण्ड के प्रदर्शन का निर्देश है। *यक्ष-यक्षी-लक्षण* में गोमेध चतुर्भुज है और उसके हाथों में अभयमुद्रा, अंकुश, पाश एवं वरदमुद्रा वर्णित हैं। यक्ष का चिह्न पुष्प है और शीर्षभाग में धर्मचक्र का उल्लेख है। वाहन गज है।[6] दक्षिण भारत के प्रथम दो ग्रन्थों के विवरण सामान्यतः उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा से मेल खाते हैं, पर *यक्ष-यक्षी-लक्षण* का विवरण स्वतन्त्र है।[7]

मूर्ति-परम्परा

मूर्तियों में नेमिनाथ के साथ नर पर आरूढ़ त्रिमुख और षड्भुज पारम्परिक यक्ष कभी नहीं निरूपित हुआ। मूर्तियों में नेमि के साथ सदैव गजारूढ़ सर्वानुभूति (या कुबेर)[8] आमूर्तित है। सर्वानुभूति का श्वेतांबर स्थलों पर चतुर्भुज और दिगंबर स्थलों पर द्विभुज रूपों में निरूपण उपलब्ध होता है। दिगंबर स्थलों (देवगढ़, सहेठमहेठ, खजुराहो) की नेमिनाथ की मूर्तियों में कभी-कभी सर्वानुभूति एवं अम्बिका के स्थान पर सामान्य लक्षणों वाले यक्ष-यक्षी भी उत्कीर्णित हैं। सर्वानुभूति के हाथ में धन के थैले का प्रदर्शन सभी क्षेत्रों में लोकप्रिय था।[9] पर गजवाहन एवं करों में पाश और अंकुश के प्रदर्शन केवल श्वेतांबर स्थलों पर ही दृष्टिगत होते हैं। सर्वानुभूति की सर्वाधिक स्वतन्त्र मूर्तियां गुजरात एवं राजस्थान के श्वेतांबर स्थलों से मिली हैं।

---

१ नेमिनाथजिनेन्द्रस्य यक्षो गोमेधनामभाक्।
  श्यामवर्णस्त्रिवक्त्रश्च षट्हस्तः पुष्पवाहनः ॥ *प्रतिष्ठासारसंग्रह* ५.६५

२ श्यामस्त्रिवक्त्रो द्रुघणं कुठारं दण्डं फलं वज्रवरौ च बिभ्रत्।
  गोमेदयक्षः क्षितशंखलक्ष्मापूजां नृवाहोऽर्हतु पुष्पयानः ॥ *प्रतिष्ठासारोद्धार* ३.१५०

३ धनं कुठारं च बिभर्ति दण्डं सव्यैः फलैर्वज्रवरौ च योऽन्यैः। *प्रतिष्ठातिलकम्* ७.२२, पृ० ३३७

४ बनर्जी, जे० एन०, पू०नि०, पृ० ५२८–२९; भट्टाचार्य, बी० सी०, पू०नि०, पृ० ११५–१६

५ केवल एक ग्रन्थ में धन के प्रदर्शन का उल्लेख है। इस विशेषता को भी हिन्दू कुबेर से सम्बन्धित किया जा सकता है।

६ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २०८–०९

७ द्विभुज यक्ष की मूर्ति एलोरा की गुफा ३२ में उत्कीर्ण है। इसमें गजारूढ़ यक्ष के हाथों में फल एवं धन का थैला प्रदर्शित हैं। यक्ष के मुकुट में एक छोटी जिन आकृति उत्कीर्ण है।

८ *विविधतीर्थकल्प* (पृ० १९) में अम्बिका के साथ गोमेध के स्थान पर कुबेर का उल्लेख है और उसका वाहन नर बताया गया है। मूर्तियों में नेमिनाथ के यक्ष-यक्षी के रूप में सदैव सर्वानुभूति (या कुबेर) एवं अम्बिका ही निरूपित हैं।

९ धन के थैले का प्रदर्शन ल० छठी शती ई० में ही प्रारम्भ हो गया। शाह, यू० पी०, *अकोटा ब्रोन्जेज*, पृ० ३१

गुजरात-राजस्थान—इस क्षेत्र की श्वेतांबर परम्परा की जिन मूर्तियों के साथ (६ठी-१२ वीं शती ई०) तथा मन्दिरों के दहलीजों पर सर्वानुभूति की अनेक मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। आठवीं-नवीं शती ई० में सर्वानुभूति की स्वतन्त्र मूर्तियों का भी उत्कीर्णन प्रारम्भ हुआ। अकोटा की नवीं शती ई० की मूर्तियों में द्विभुज यक्ष हाथों में फल एवं धन का थैला लिये है।[1] सातवीं-आठवीं शती ई० में सर्वानुभूति के साथ गजवाहन का चित्रण प्रारम्भ हुआ और दसवीं शती ई० में उसकी चतुर्भुज मूर्तियां उत्कीर्ण हुई।[2] पर अकोटा और वसंतगढ़ की मूर्तियों में ग्यारहवीं शती ई० तक यक्ष का द्विभुज रूप में ही अंकन हुआ है।

ओसिया के महावीर मन्दिर (ल० ९वीं शती ई०) पर सर्वानुभूति की पांच मूर्तियां उत्कीर्ण हैं।[3] इनमें द्विभुज यक्ष ललितमुद्रा में विराजमान है और उसके बायें हाथ में धन का थैला है। तीन उदाहरणों में यक्ष के दाहिने हाथ में पात्र (या कपाल-पात्र)[4] है और शेष दो उदाहरणों में दाहिना हाथ जानु पर स्थित है। इनमें वाहन नहीं है। बांसी (राजस्थान) से प्राप्त और विक्टोरिया हाल संग्रहालय, उदयपुर में सुरक्षित एक द्विभुज मूर्ति (८वीं शती ई०) में गजारूढ़ यक्ष के हाथों में फल एवं धन का थैला है।[5] यक्ष के मुकुट में एक छोटी जिन मूर्ति बनी है। घाणेराव के महावीर मन्दिर की मूर्ति (१०वीं शती ई०) में सर्वानुभूति चतुर्भुज है। मूर्ति गूढ़मण्डप के पूर्वी अधिष्ठान पर उत्कीर्ण है। ललितमुद्रा में विराजमान यक्ष के करों में फल, पाश, अंकुश एवं फल हैं। घाणेराव मन्दिर के गूढ़मण्डप एवं गर्भगृह के दहलीजों पर भी चतुर्भुज सर्वानुभूति की चार मूर्तियां हैं। सभी उदाहरणों में ललितमुद्रा में विराजमान यक्ष की एक भुजा में धन का थैला प्रदर्शित है। इनमें वाहन नहीं उत्कीर्ण है। गूढ़मण्डप के दाहिने और बायें छोरों की दो मूर्तियों में यक्ष के हाथों में अभयमुद्रा (या फल), परशु (या पद्म), पद्म एवं धन का थैला प्रदर्शित हैं। गर्भगृह के दाहिने छोर की मूर्ति के दो हाथों में धन का थैला और शेष दो में अभयमुद्रा एवं फल हैं। बायें छोर की आकृति धन का थैला, गदा, पुस्तक एवं बीजपूरक से युक्त है। सर्वानुभूति के हाथों में गदा एवं पुस्तक का प्रदर्शन कुम्भारिया एवं आबू की मूर्तियों में भी प्राप्त होता है।

कुम्भारिया के शान्तिनाथ, महावीर एवं नेमिनाथ मन्दिरों (११ वीं-१२ वीं शती ई०) की जिन मूर्तियों में तथा वितानों एवं भित्तियों पर चतुर्भुज सर्वानुभूति की कई मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। अधिकांश उदाहरणों में गजारूढ़ यक्ष ललितमुद्रा में आसीन है, और उसके हाथों में अभयमुद्रा (या वरद या फल), अंकुश, पाश[6] एवं धन का थैला प्रदर्शित हैं।[7] कई चतुर्भुज मूर्तियों में दो ऊपरी हाथों में धन का थैला है, तथा निचले हाथ अभय-(या वरद-) मुद्रा और फल (या जलपात्र) से युक्त हैं।[8] शान्तिनाथ मन्दिर की देवकुलिका ११ की मूर्ति (१०८१ ई०) में गजारूढ़ यक्ष द्विभुज है और उसके दोनों हाथों में धन का थैला स्थित है।

ओसिया की देवकुलिकाओं[9] (११ वीं शती ई०) की दहलीजों पर गजारूढ़ सर्वानुभूति की तीन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। इनमें चतुर्भुज यक्ष ललितमुद्रा में विराजमान है और उसके करों में धन का थैला, गदा, चक्राकार पद्म और फल

---

१ आठवीं शती ई० की एक मूर्ति में यक्ष के करों में पद्म और प्याला भी प्रदर्शित हैं। शाह, यू० पी०, पू०नि०, चित्र ३८ ए

२ दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० की चतुर्भुज मूर्तियां घाणेराव, ओसिया एवं कुम्भारिया से प्राप्त हुई हैं।

३ ये मूर्तियां अर्धमण्डप के उत्तरी छज्जे, गूढ़मण्डप की दहलीज, भीतरी दीवार एवं पश्चिमी वरण्ड पर उत्कीर्ण हैं।

४ एक भुजा में कपाल-पात्र का प्रदर्शन दिगंबर स्थलों पर अधिक लोकप्रिय था।

५ अग्रवाल, आर० सी०, 'सम इन्टरेस्टिंग स्कल्पचर्स ऑव यक्षज ऐण्ड कुबेर फ्राम राजस्थान', इं०हि०क्वा०,खं० ३३, अं० ३, पृ० २०४–२०५

६ शान्तिनाथ मन्दिर की देवकुलिका ९ की जिन मूर्ति में पाश के स्थान पर पुस्तक प्रदर्शित है।

७ कभी-कभी धन के थैले के स्थान पर फल प्रदर्शित है।

८ इस वर्ग की बहुत थोड़ी मूर्तियां मिली हैं। कुछ मूर्तियां कुम्भारिया (नेमिनाथ मन्दिर) एवं विमलवसही (देवकुलिका ११) से मिली हैं।

९ देवकुलिका २, ३, ४

प्रदर्शित हैं।[1] तारंगा के अजितनाथ मन्दिर (१२ वीं शती ई०) की भित्तियों पर चतुर्भुज सर्वानुभूति की तीन मूर्तियां हैं। गजवाहन से युक्त यक्ष तीनों उदाहरणों में त्रिभंग में खड़ा है, और वरदमुद्रा, अंकुश, पाश एवं फल से युक्त है। विमल-वसही के रंगमण्डप के समीप के वितान पर षड्भुज सर्वानुभूति की एक मूर्ति (१२ वीं शती ई०) है। त्रिभंग में खड़े यक्ष का वाहन गज है और उसके दो करों में धन का थैला तथा शेष में वरदमुद्रा, अंकुश, पाश एवं फल प्रदर्शित हैं।

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश—(क) स्वतन्त्र मूर्तियां—इस क्षेत्र में सर्वानुभूति (या कुबेर) की स्वतन्त्र मूर्तियों का उत्कीर्णन दसवीं शती ई० में प्रारम्भ हुआ जिनमें वाहन का अंकन नहीं हुआ है। पर सर्वानुभूति के साथ कभी-कभी दो घट उत्कीर्ण हैं जो निधि के सूचक हैं। दसवीं शती ई० की एक द्विभुज मूर्ति मालादेवी मन्दिर (ग्यारसपुर) से मिली है, जिसमें ललितमुद्रा में आसीन यक्ष कपाल एवं धन के थैले से युक्त है। चरणों के समीप दो कलश भी उत्कीर्ण हैं।[2] देवगढ़ से यक्ष की दो मूर्तियां (१०वीं-११वीं शती ई०) मिली हैं। एक में द्विभुज यक्ष ललितमुद्रा में विराजमान और फल एवं धन के थैले से युक्त है (चित्र ४९)।[3] दूसरी मूर्ति (मन्दिर ८, ११वीं शती ई०) में चतुर्भुज यक्ष त्रिभंग में खड़ा और हाथों में वरदमुद्रा, गदा, धन का थैला और जलपात्र धारण किये है। उसके वाम पार्श्व में एक कलश भी उत्कीर्ण है।

खजुराहो से चार मूर्तियां (१०वीं-११वीं शती ई०) मिली हैं जिनमें चतुर्भुज यक्ष ललितमुद्रा में विराजमान है।[4] शान्तिनाथ मन्दिर एवं मन्दिर ३२ की दो मूर्तियों में यक्ष के ऊपरी हाथों में पद्म और निचले में फल और धन का थैला हैं। शेष दो मूर्तियां शान्तिनाथ मन्दिर के समीप के स्तम्भ पर उत्कीर्ण हैं। एक मूर्ति में तीन सुरक्षित हाथों में अभयमुद्रा, पद्म एवं धन का थैला हैं। दूसरी मूर्ति के दो करों में पद्म एवं शेष में अभयमुद्रा और फल प्रदर्शित हैं। चरणों के समीप दो घट भी उत्कीर्ण हैं। सभी उदाहरणों में यक्ष हार, उपवीत, धोती, कुण्डल, किरीटमुकुट एवं अन्य सामान्य आभूषणों से सज्जित है। खजुराहो के जैन शिल्प में यक्षों में सर्वानुभूति सर्वाधिक लोकप्रिय था। पार्श्वनाथ के धरणेन्द्र यक्ष के अतिरिक्त अन्य सभी जिनों के साथ यक्ष के रूप में या तो सर्वानुभूति आमूर्तित है, या फिर यक्ष के एक हाथ में सर्वानुभूति का विशिष्ट आयुध (धन का थैला) प्रदर्शित है।

(ख) जिन-संयुक्त मूर्तियां—स्वतन्त्र मूर्तियों के साथ ही नेमिनाथ की मूर्तियों (८वीं-१२वीं शती ई०) में भी सर्वानुभूति निरूपित है। राज्य संग्रहालय, लखनऊ की ५ मूर्तियों में यक्ष-यक्षी निरूपित हैं। तीन उदाहरणों[5] में द्विभुज यक्ष सर्वानुभूति है। यक्ष के करों में अभयमुद्रा (या वरद या फल) एवं धन का थैला हैं। ग्यारहवीं शती ई० की एक मूर्ति (जे ८५८) में यक्ष चतुर्भुज है और उसके करों में अभयमुद्रा, पद्म, पद्म एवं कलश हैं।

देवगढ़ की १९ नेमिनाथ की मूर्तियों (१०वीं-१२वीं शती ई०) में द्विभुज सर्वानुभूति एवं अम्बिका निरूपित हैं। प्रत्येक उदाहरण में सर्वानुभूति के बायें हाथ में धन का थैला प्रदर्शित है। पर दाहिने हाथ में फल, दण्ड, कपालपात्र एवं अभयमुद्रा में से एक प्रदर्शित है। मन्दिर १२ की चहारदीवारी की एक मूर्ति (११वीं शती ई०) में अम्बिका के समान ही सर्वानुभूति की भी एक भुजा में बालक प्रदर्शित है। सात उदाहरणों में नेमि के साथ सामान्य लक्षणों वाले द्विभुज यक्ष-यक्षी निरूपित हैं। ऐसे उदाहरणों में यक्ष के हाथों में अभयमुद्रा (या वरद या गदा) और फल प्रदर्शित हैं। चार मूर्तियों (११वीं-१२वीं शती ई०) में यक्ष-यक्षी चतुर्भुज हैं[6] और उनके हाथों में वरद-(या अभय-) मुद्रा, पद्म, पद्म एवं फल

---

१ देवकुलिका ३ की मूर्ति में यक्ष की दक्षिण भुजाएं भग्न हैं।

२ कृष्ण देव, 'मालादेवी टेम्पल् ऐट ग्यारसपुर', म०जै०वि०गो०जु०वा०, बम्बई, १९६८, पृ० २६४

३ जि०इ०दे०, चित्र २३, मूर्ति सं० १३

४ तिवारी, एम० एन० पी०, 'खजुराहो के जैन शिल्प में कुबेर', जै०सि०भा०, खं० २८, भाग २, दिसम्बर १९७५, पृ० १–४

५ जे ७९२, ७९३, ९३६

६ ये मूर्तियां मन्दिर ११, २० और ३० में हैं।

(या कलश) हैं। उपर्युक्त से स्पष्ट है कि देवगढ़ में पारम्परिक एवं सामान्य लक्षणों वाले यक्ष का निरूपण साथ-साथ लोकप्रिय था। ग्यारसपुर के मालादेवी मन्दिर एवं बजरामठ तथा खजुराहो की नेमिनाथ की मूर्तियों (१०वीं–१२वीं शती ई०) में द्विभुज यक्ष सर्वानुभूति है। यक्ष के बायें हाथ में धन का थैला[1] और दाहिने में अभयमुद्रा (या फल) हैं।

विश्लेषण

इस सम्पूर्ण अध्ययन से ज्ञात होता है कि उत्तर भारत में जैन यक्षों में सर्वानुभूति सर्वाधिक लोकप्रिय था। ल० छठी शती ई० में सर्वानुभूति की जिन-संयुक्त और आठवीं-नवीं शती ई० में स्वतन्त्र मूर्तियों का उत्कीर्णन प्रारम्भ हुआ।[2] सर्वाधिक स्वतन्त्र मूर्तियां दसवीं और ग्यारहवीं शती ई० के मध्य उत्कीर्ण हुई। यक्ष के हाथ में धन के थैले का प्रदर्शन छठी शती ई० में ही प्रारम्भ हो गया। पर गजवाहन का चित्रण सातवीं-आठवीं शती ई० में प्रारम्भ हुआ। स्मरणीय है कि गजवाहन का अंकन केवल श्वेतांबर स्थलों पर ही हुआ है। दिगंबर स्थलों पर गज के स्थान पर निधियों के सूचक घटों के उत्कीर्णन की परम्परा थी। दिगंबर स्थलों पर सर्वानुभूति का कोई एक रूप नियत नहीं हो सका।[3] श्वेतांबर स्थलों पर गजारूढ़ यक्ष के करों में धन के थैले के अतिरिक्त अंकुश, पाश एवं फल (या अभय-या-वरदमुद्रा) का नियमित प्रदर्शन हुआ है। दिगंबर स्थलों पर धन के थैले के अतिरिक्त पद्म, गदा एवं पुस्तक का भी अंकन प्राप्त होता है। घाणेराव एवं कुम्भारिया की कुछ श्वेतांबर मूर्तियों में भी सर्वानुभूति के साथ पद्म, गदा और पुस्तक प्रदर्शित हैं।

(२२) अम्बिका (या कुष्माण्डी) यक्षी[4]

शास्त्रीय परम्परा

अम्बिका (या कुष्माण्डी) जिन नेमिनाथ की यक्षी है। दोनों परम्पराओं में सिंहवाहना यक्षी के करों में आम्रलुम्बि एवं बालक के प्रदर्शन का निर्देश है।

श्वेतांबर परम्परा—*निर्वाणकलिका* में सिंहवाहना कुष्माण्डी चतुर्भुजा है और उसके दाहिने हाथों में मातुलिंग एवं पाश और बायें में पुत्र एवं अंकुश हैं।[5] समान लक्षणों का उल्लेख करनेवाले अन्य ग्रन्थों में मातुलिंग के स्थान पर आम्रलुम्बि[6] का उल्लेख है। *मन्त्राधिराजकल्प* में हाथ में बालक के प्रदर्शन का उल्लेख नहीं है। ग्रन्थ के अनुसार अम्बिका

१ खजुराहो की एक मूर्ति (मन्दिर १०) में यक्ष की भुजा में धन का थैला नहीं है।

२ श्वेतांबर स्थलों पर दिगंबर स्थलों की तुलना में यक्ष की अधिक मूर्तियां उत्कीर्ण हुई।

३ दिगंबर स्थलों पर केवल धन के थैले का प्रदर्शन ही नियमित था।

४ विस्तार के लिए द्रष्टव्य, शाह यू०पी०, 'आइकानोग्राफी ऑव दि जैन गाडेस अम्बिका', *ज०यू०बां०*, खं० ९, भाग २, १९४०–४१, पृ० १४७–६९; तिवारी, एम०एन०पी०, 'उत्तर भारत में जैन यक्षी अम्बिका का प्रतिमा-निरूपण', *संबोधि*, खं० ३, अं० २–३, दिसंबर १९७४, पृ० २७–४४

५ कूष्माण्डीं देवीं कनकवर्णां सिंहवाहनां चतुर्भुजां मातुलिंगपाशयुक्तदक्षिणकरां पुत्रांकुशान्वितवामकरां चेति ॥ *निर्वाणकलिका* १८.२२; द्रष्टव्य, *देवतामूर्तिप्रकरण* ७.६१। ज्ञातव्य है कि कुछ श्वेतांबर ग्रन्थों (*चतुर्विंशतिका*—बप्पभट्टिकृत, श्लोक ८८, ९६) में द्विभुजा अम्बिका का भी ध्यान किया गया है।

६ अम्बादेवी कनककान्तिरुचिः सिंहवाहना चतुर्भुजा आम्रलुम्बिपाशयुक्तदक्षिणकरद्वया पुत्रांकुशासक्तवामकरद्वया च। *प्रवचनसारोद्धार* २२, पृ० ९४; द्रष्टव्य, *त्रि०श०पु०च०* ८.९.३८५–८६; *आचारदिनकर* ३४, पृ० १७७; *पद्मानन्दमहाकाव्य : परिशिष्ट—नेमिनाथ* ५७–४८; *रूपमण्डन* ६.१९—ग्रन्थ में पाश के स्थान पर नागपाश का उल्लेख है।

के दोनों पुत्र (सिद्ध और बुद्ध) उसके कटि के समीप निरूपित होंगे ।[1] अम्बिका-ताटंक में उल्लेख है कि चतुर्भुजा अम्बिका का एक पुत्र उसकी उंगली पकड़े होगा और दूसरा गोद में स्थित होगा । सिंहवाहना अम्बिका फल, आम्रलुम्बि, अंकुश एवं पाश से युक्त है ।[2]

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह में सिंहवाहना कुष्माण्डिनी (आम्रादेवी) को द्विभुजा और चतुर्भुजा बताया गया है, पर आयुधों का उल्लेख नहीं है ।[3] प्रतिष्ठासारोद्धार में द्विभुजा अम्बिका के करों में आम्रलुम्बि (दक्षिण) एवं पुत्र (प्रियंकर) के प्रदर्शन का निर्देश है । दूसरे पुत्र (शुभंकर) के आम्रवृक्ष की छाया में अवस्थित यक्षी के समीप ही निरूपण का उल्लेख है ।[4] अपराजितपृच्छा में द्विभुजा अम्बिका के करों में फल एवं वरदमुद्रा का वर्णन है । देवी के समीप ही उसके दोनों पुत्रों के प्रदर्शन का विधान है, जिनमें से एक गोद में बैठा होगा ।[5]

दिगंबर परम्परा के एक तान्त्रिक ग्रन्थ में सिंहासन पर विराजमान अम्बिका का चतुर्भुज एवं अष्टभुज रूपों में ध्यान किया गया है । चतुर्भुजा अम्बिका के करों में शंख, चक्र, वरदमुद्रा एवं पाश का[6] तथा अष्टभुजा देवी के करों में शंख, चक्र, धनुष, परशु, तोमर, खड्ग, पाश और कोद्रव का उल्लेख है ।[7]

अम्बिका का भयावह स्वरूप—तान्त्रिक ग्रन्थ, अम्बिका-ताटंक, में अम्बिका के भयंकर रूप का स्मरण है और उसे शिवा, शंकरा, स्तम्भिनी, मोहिनी, शोषणी, भीमनादा, चण्डिका, चण्डरूपा, अघोरा आदि नामों से सम्बोधित किया गया है । प्रलयंकारी रूप में उसे सम्पूर्ण सृष्टि की संहार करनेवाली कहा गया है । इस रूप में देवी के करों में धनुष, बाण, दण्ड, खड्ग, चक्र एवं पद्म आदि के प्रदर्शन का निर्देश है । सिंहवाहिनी देवी के हाथ में आम्र का भी उल्लेख है । यू०पी० शाह ने विमलवसही की देवकुलिका ३५ के वितान की विंशतिभुजा देवी की सम्भावित पहचान अम्बिका के भयावह रूप से की है ।[8] ललितमुद्रा में विराजमान सिंहवाहना अम्बिका की इस मूर्ति में सुरक्षित दस भुजाओं में खड्ग, शक्ति, सर्प, गदा, खेटक, परशु, कमण्डलु, पद्म, अभयमुद्रा एवं वरदमुद्रा प्रदर्शित हैं ।

---

१ कुष्माण्डिनी.......पाशाम्रलुम्बिसृणिसत्फलमावहन्ती ।
पुत्रद्वयं करकटीतटगं च नेमिनाथक्रमाम्बुजयुगं शिवदा नमन्ती ॥ मन्त्राधिराजकल्प ३.६४
द्रष्टव्य, स्तुति चतुर्विंशतिका (शोभनसूरिकृत) २२.४, २४.४
सिंहयाना हेमवर्णा सिद्धबुद्धसमन्विता ।
कम्राम्रलुम्बिभृत्पाणिरत्राम्बा सङ्घविघ्नहृत् ॥ विविधतीर्थकल्प–उज्जयंन्त-स्तव ।

२ शाह, यू०पी०, पू०नि०, पृ० १६०

३ देवी कुष्माण्डिनी यस्य सिंहगा हरितप्रभा ।
चतुर्हस्तजिनेन्द्रस्य महाभक्तिविराजितः ॥
द्विभुजा सिंहमारूढा आम्रादेवी हरित्प्रभा ॥ प्रतिष्ठासारसंग्रह ५.६४, ६६

४ सव्येकद्युपगप्रियंकर सुतुक्प्रीत्यै करे बिभ्रतीं
दिव्याम्रस्तबकं शुभंकरकरश्लिष्टान्यहस्तांगुलिम् ।
सिंहे भर्तृचरे स्थितां हरितमामाम्रद्रुमच्छायगां
वंदारुं दशकार्मुकोच्छ्रयजिनं देवीमिहाम्रां यजे ॥ प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१७६; द्रष्टव्य,प्रतिष्ठातिलकम् ७.२२,पृ० ३४७

५ हरिद्वर्णा सिंहसंस्था द्विभुजा च फलं वरम् ।
पुत्रेणोपास्यमाना च सुतोत्संगातयाऽम्बिका ॥ अपराजितपृच्छा २२१.३६

६ शाह, यू० पी०, पू०नि०, पृ० १६१.......देवीं चतुर्भुजां शंखचक्रवरदपाशान्यस्वरूपेण सिंहासनस्थिता ।

७ वही, पृ० १६१–शाह ने अष्टभुजा अम्बिका के एक चित्र का उल्लेख किया है, जिसमें सिंहवाहना अम्बिका कोद्रव, त्रिशूल, चाप, अभयमुद्रा, शृणि, पद्म, शर एवं आम्रलुम्बि से युक्त है ।

८ वही, पृ० १६१–६२

श्वेतांबर और दिगंबर परम्पराओं में अम्बिका[1] की उत्पत्ति की विस्तृत कथाएं क्रमशः जिनप्रभसूरिकृत 'अम्बिका-देवी-कल्प' (१४०० ई०) और यक्षी कथा (पुण्याश्रवकथा का अंश) में वर्णित हैं। श्वेतांबर परम्परा में अम्बिका के पुत्रों के नाम सिद्ध और बुद्ध तथा दिगंबर परम्परा में शुभंकर और प्रभंकर हैं।[2] श्वेतांबर कथा के अनुसार अम्बिका पूर्वजन्म में सोम नाम के ब्राह्मण की भार्या थी जो किसी कल्पित अपराध पर सोम द्वारा निष्कासित किये जाने पर अपने दोनों पुत्रों के साथ घर से निकल पड़ी। अम्बिका और उसके दोनों पुत्रों को भूख-प्यास से व्याकुल जान कर मार्ग का एक सूखा आम्रवृक्ष फलों से लद गया और सूखा कुंआ जल से पूर्ण हो गया। अम्बिका ने आम्र फल खाकर जल ग्रहण किया और उसी वृक्ष के नीचे विश्राम किया। कुछ समय पश्चात् सोम अपनी भूल पर पश्चाताप करता हुआ अम्बिका को ढूंढने निकला। जब अम्बिका ने सोम को अपनी ओर आते देखा तो अन्यथा समझ कर भयवश दोनों पुत्रों के साथ कुएं में कूद कर आत्महत्या कर ली। अगले जन्म में यही अम्बिका नेमिनाथ की शासनदेवी हुई और उसके पूर्वजन्म के दोनों पुत्र इस जन्म में भी पुत्रों के रूप में उससे सम्बद्ध रहे। सोम उसका वाहन (सिंह) हुआ। अम्बिका की भुजा में आम्रलुम्बि एवं शीर्षभाग के ऊपर आम्रशाखाओं के प्रदर्शन भी पूर्वजन्म की कथा से सम्बद्ध हैं। देवी के हाथ का पाश उस रज्जु का सूचक है जिसकी सहायता से अम्बिका ने कुएं से जल निकाला था।[3] इस प्रकार अम्बिका मूर्ति की प्रमुख लाक्षणिक विशेषताओं को उसके पूर्वजन्म की कथा से सम्बद्ध माना गया है।

अम्बिका या कुष्माण्डिनी पर हिन्दू दुर्गा या अम्बा का प्रभाव स्वीकार किया गया है।[4] पर वास्तव में तान्त्रिक ग्रन्थ[5] के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थों में वर्णित अम्बिका के प्रतिमा-लक्षण हिन्दू दुर्गा से अप्रभावित और भिन्न हैं। हिन्दू प्रभाव केवल जैन यक्षी के नामों एवं सिंहवाहन के प्रदर्शन में ही स्वीकार किया जा सकता है।

दक्षिण भारतीय परम्परा—दक्षिण भारतीय ग्रन्थों में सिंहवाहना कुष्माण्डिनी का धर्मदेवी नाम से भी उल्लेख है। दिगंबर ग्रन्थ में चतुर्भुजा यक्षी के ऊपरी हाथों में खड्ग एवं चक्र का तथा निचले हाथों से गोद में बैठे बालकों को सहारा देने का उल्लेख है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में द्विभुजा यक्षी के करों में फल एवं वरदमुद्रा वर्णित है। यक्ष-यक्षी-लक्षण में चतुर्भुजा धर्मदेवी की गोद में उसके दोनों पुत्र अवस्थित हैं तथा देवी दो हाथों से पुत्रों को सहारा दे रही है, तीसरे में आम्रलुम्बि लिये है और उसका चौथा हाथ सिंह की ओर मुड़ा है।[6] स्पष्ट है कि दक्षिण भारतीय परम्परा में अम्बिका के साथ आम्रलुम्बि का प्रदर्शन नियमित नहीं था। अम्बिका की गोद में एक के स्थान पर दोनों पुत्रों के चित्रण की परम्परा लोकप्रिय थी।

मूर्ति-परम्परा

उत्तर भारत में जैन यक्षियों मे अम्बिका की ही सर्वाधिक स्वतन्त्र और जिन-संयुक्त मूर्तियां मिली हैं। ल० छठी शती ई० में अम्बिका को शिल्प में अभिव्यक्ति मिली।[7] नवीं शती ई० तक सभी क्षेत्रों में अधिकांश जिनों के साथ यक्षी के

१ पूर्वजन्म में अम्बिका के नाम अम्बिणी (श्वेतांबर) और अग्निला (दिगंबर) थे।

२ शाह, यू०पी०, पू०नि, पृ० १४७–४८

३ वही, पृ० १४८। दिगंबर परम्परा में यही कथा कुछ नवीन नामों एवं परिवर्तनों के साथ वर्णित है।

४ बनर्जी, जे०एन०, पू०नि०, पृ० ५६२। हिन्दू दुर्गा को अम्बिका और कुष्माण्डी (या कुष्माण्डा) नामों से भी सम्बोधित किया गया है।

५ तान्त्रिक ग्रन्थ में जैन अम्बिका का शिवा, शंकरा, चण्डिका, अघोरा आदि नामों से सम्बोधन एवं करों में शंख और चक्र के प्रदर्शन का निर्देश हिन्दू अम्बा या दुर्गा के प्रभाव का समर्थन करता है। हिन्दू दुर्गा का वाहन कभी महिष और कभी सिंह बताया गया है और उसके करों में अभयमुद्रा, चक्र, कटक एवं शंख प्रदर्शित हैं। द्रष्टव्य, राव, टी०ए० गोपीनाथ, पू०नि०, पृ० ३४१–४२

६ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २०९

७ शाह, यू० पी०, अकोटा ब्रोन्जेस, पृ० २८–३१

रूप में अम्बिका ही आमूर्तित है। गुजरात एवं राजस्थान के श्वेतांबर स्थलों पर तो दसवीं शती ई० के बाद भी सभी जिनों के साथ सामान्यतः अम्बिका ही निरूपित है। केवल कुछ ही उदाहरणों में ऋषभ एवं पार्श्व के साथ पारम्परिक यक्षी का निरूपण हुआ है। स्वतन्त्र एवं जिन-संयुक्त मूर्तियों में अम्बिका अधिकांशतः द्विभुजा है।[1] सभी क्षेत्रों की मूर्तियों में अम्बिका के साथ सिंहवाहन[2] एवं दो हाथों में आम्रलुम्बि[3] (दक्षिण) और बालक (वाम) का प्रदर्शन लोकप्रिय था।[4] अम्बिका अधिकांशतः ललितमुद्रा में विराजमान है और उसके शीर्षभाग में लघु जिन आकृति (नेमि) एवं आम्रफल के गुच्छक उत्कीर्ण हैं। अम्बिका के दूसरे पुत्र को भी समीप ही उत्कीर्ण किया गया जिसके एक हाथ में फल (या आम्रफल) है और दूसरा माता के हाथ की आम्रलुम्बि को लेने के लिए ऊपर उठा होता है।

गुजरात-राजस्थान—इस क्षेत्र में छठी से दसवीं शती ई० के मध्य की सभी जिन मूर्तियों में यक्षी के रूप में अम्बिका ही निरूपित है। अम्बिका की जिन-संयुक्त एवं स्वतन्त्र मूर्तियों के प्रारम्भिकतम (छठी-सातवीं शती ई०) उदाहरण इसी क्षेत्र में अकोटा (गुजरात) से मिले हैं।[5] अकोटा की एक स्वतन्त्र मूर्ति में सिंहवाहना अम्बिका द्विभुजा और आम्रलुम्बि एवं फल से युक्त है।[6] एक बालक उसकी बायीं गोद में बैठा है और दूसरा दक्षिण पार्श्व में (निर्वस्त्र) खड़ा है। अम्बिका के शीर्षभाग में नेमिनाथ के स्थान पर पार्श्वनाथ की मूर्ति उत्कीर्ण है। तात्पर्य यह कि छठी-सातवीं शती ई० तक अम्बिका को नेमि से नहीं सम्बद्ध किया गया था।[7] आम्रलुम्बि एवं बालक से युक्त सिंहवाहना अम्बिका की एक द्विभुजा मूर्ति ओसिया के महावीर मन्दिर (ल० ९ वीं शती ई०) के गूढ़मण्डप के प्रवेश-द्वार पर उत्कीर्ण है। इस क्षेत्र में अम्बिका के साथ सिंहवाहन एवं शीर्षभाग में आम्रफल के गुच्छकों का नियमित चित्रण नवीं शती ई० के बाद प्रारम्भ हुआ। धांक (काठियावाड़) की सातवीं-आठवीं शती ई० की द्विभुजा मूर्ति में दोनों विशेषताएं अनुपस्थित हैं।[8] आठवीं से दसवीं शती ई० के मध्य की छह मूर्तियां अकोटा से मिली हैं। इनमें सिंहवाहना अम्बिका द्विभुजा और आम्रलुम्बि एवं बालक से युक्त है।[9] दूसरे पुत्र का नियमित चित्रण नवीं शती ई० में प्रारम्भ हुआ।[10] ज्ञातव्य है कि जिन-संयुक्त मूर्तियों में दूसरे पुत्र का चित्रण सामान्यतः नहीं हुआ है। कुम्भारिया के शान्तिनाथ मन्दिर के शिखर की एक द्विभुजी मूर्ति में अम्बिका के दाहिने हाथ में आम्रलुम्बि के साथ ही खड्ग भी प्रदर्शित है तथा बायां हाथ पुत्र के ऊपर स्थित है।

---

१ खजुराहो, देवगढ़, राज्य संग्रहालय, लखनऊ, विमलवसही, कुम्भारिया और लूणवसही से अम्बिका की चतुर्भुज मूर्तियां (१०वीं-१३वीं शती ई०) भी मिली हैं।

२ दिगंबर स्थलों पर सिंहवाहन का चित्रण नियमित नहीं था।

३ विमलवसही, कुम्भारिया (शान्तिनाथ एवं महावीर मन्दिरों की देवकुलिकाओं) एवं कुछ अन्य स्थलों की मूर्तियों में कभी-कभी आम्रलुम्बि के स्थान पर फल (या अभय-या-वरद-मुद्रा) भी प्रदर्शित है।

४ यू० पी० शाह ने ऐसी दो मूर्तियों का उल्लेख किया है, जिनमें बालक के स्थान पर अम्बिका के हाथ में फल प्रदर्शित है। द्रष्टव्य, शाह, यू० पी०, 'आइकानोग्राफी ऑव दि जैन गाडेस अम्बिका', ज०यू०बां०, खं० ९, १९४०-४१, पृ० १५५, चित्र ९ और १०

५ शाह, यू० पी०, अकोटा ब्रोन्ज़ेज, पृ० २८-२९, ३६-३७

६ वही, पृ० ३०-३१, फलक १४

७ बप्पभट्टिसूरि की चतुर्विंशतिका (७४३-८३८ ई०) में अम्बिका का ध्यान नेमि और महावीर दोनों ही के साथ किया गया है।

८ संकलिया, एच० डी०, 'दि अर्लिएस्ट जैन स्कल्पचर्स इन काठियावाड़', ज०रा०ए०सो०, जुलाई १९३८, पृ० ४२७-२८

९ शाह, यू० पी०, अकोटा ब्रोन्ज़ेज, चित्र ४८ बी०, ५० सी, ५० ए। समान विवरणों वाली मूर्तियां (९ वीं-१२ वीं शती ई०) कोटा, घाणेराव, नाडलाई, ओसिया, कुम्भारिया एवं आबू (विमलवसही एवं लूणवसही) से मिली हैं।

१० दिगंबर स्थलों पर दूसरा पुत्र सामान्यतः दाहिने पार्श्व में और श्वेतांबर स्थलों पर वाम पार्श्व में उत्कीर्ण है। ओसिया की जैन देवकुलिकाओं की दो मूर्तियों में दूसरा पुत्र नहीं उत्कीर्ण है।

ग्यारहवीं शती ई० में अम्बिका की चतुर्भुज मूर्तियां भी उत्कीर्ण हुईं। ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० की चतुर्भुज मूर्तियां कुम्भारिया, विमलवसही, जालोर एवं तारंगा से मिली हैं। आयुधों के आधार पर चतुर्भुजा अम्बिका की मूर्तियों को दो वर्गों में बांटा जा सकता है। पहले वर्ग में ऐसी मूर्तियां हैं जिनमें देवी के तीन हाथों में आम्रलुम्बि और चौथे में पुत्र हैं (चित्र ५४)। श्वेतांबर ग्रन्थों के निर्देशों के विरुद्ध अम्बिका के तीन हाथों में आम्रलुम्बि का प्रदर्शन सम्भवतः यक्षी के द्विभुज स्वरूप से प्रभावित है।[1] दूसरे वर्ग की मूर्तियों में अम्बिका आम्रलुम्बि, पाश, चक्र (या वरदमुद्रा) एवं पुत्र से युक्त है। कुम्भारिया के शान्तिनाथ मन्दिर की देवकुलिका ११ (१०८१ ई०) एवं १२ की दो जिन मूर्तियों में सिंहवाहना अम्बिका चतुर्भुजा है और उसके तीन करों में आम्रलुम्बि एवं चौथे में बालक हैं।[2] कुम्भारिया के नेमिनाथ मन्दिर (देवकुलिका ५) एवं विमलवसही के गूढमण्डप की रथिकाओं की जिन मूर्तियों (१२ वीं शती ई०) में भी समान लक्षणोंवाली चतुर्भुजा अम्बिका निरूपित है। ऐसी ही चतुर्भुजा अम्बिका की एक स्वतन्त्र मूर्ति विमलवसही के रंगमण्डप के दक्षिणी-पश्चिमी वितान पर है जिसमें शीर्षभाग में आम्रफल के गुच्छक और पार्श्व मे दूसरा पुत्र भी उत्कीर्ण है (चित्र ५४)।

चतुर्भुजा अम्बिका की दूसरे वर्ग की तीन मूर्तियां (१२ वीं शती ई०) क्रमशः तारंगा, जालोर एवं विमलवसही से मिली हैं। तारंगा के अजितनाथ मन्दिर की मूर्ति मूलप्रासाद की उत्तरी भित्ति पर उत्कीर्ण है। त्रिभंग में खड़ी अम्बिका के वाम पार्श्व में सिंह तथा करों में वरदमुद्रा, आम्रलुम्बि, पाश एवं पुत्र प्रदर्शित हैं। जालोर की मूर्ति महावीर मन्दिर के उत्तरी अधिष्ठान पर है। सिंहवाहना अम्बिका आम्रलुम्बि, चक्र, चक्र एवं पुत्र से युक्त है।[3] विमलवसही के गूढमण्डप के दक्षिणी प्रवेश-द्वार पर उत्कीर्ण तीसरी मूर्ति में सिंहवाहना अम्बिका के हाथों में आम्रलुम्बि, पाश, चक्र एवं पुत्र हैं।

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश—इस क्षेत्र में ल० सातवीं-आठवीं शती ई० में अम्बिका की जिन-संयुक्त और नवीं शती ई० में स्वतन्त्र मूर्तियों का उत्कीर्णन आरम्भ हुआ। सम्पूर्ण मूर्तियों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि अम्बिका के साथ पुत्र का अंकन सर्वप्रथम इसी क्षेत्र में प्रारम्भ हुआ। पुत्र का अंकन सातवीं-आठवीं शती ई० में और आम्रलुम्बि एवं सिंहवाहन का नवीं-दसवीं शती ई० में प्रारम्भ हुआ (चित्र २६)।

(क) **स्वतन्त्र मूर्तियां**—अम्बिका की प्रारम्भिकतम स्वतन्त्र मूर्ति देवगढ़ (मन्दिर १२, ८६२ ई०) के यक्षी समूह में है। अरिष्टनेमि के साथ 'अम्बायिका' नाम को चतुर्भुजा यक्षी आमूर्तित है जो हाथों में पुष्प (या फल), चामर, पद्म एवं पुत्र लिये है।[4] वाहन अनुपस्थित है। अम्बिका के चतुर्भुजा होने के बाद भी पुत्र के अतिरिक्त इस मूर्ति में अन्य कोई पारम्परिक विशेषता नहीं प्रदर्शित है। पर देवगढ़ के मन्दिर १२ के गर्भगृह की नवीं-दसवीं शती ई० की द्विभुज अम्बिका मूर्तियों में सिंहवाहन एवं करों में आम्रलुम्बि एवं पुत्र प्रदर्शित हैं (चित्र ५१)।

किसी अज्ञात स्थल से प्राप्त ल० नवीं शती ई० की एक द्विभुज मूर्ति पुरातत्त्व संग्रहालय, मथुरा (डी ७) में सुरक्षित है (चित्र ५०)। इस मूर्ति की दुर्लभ विशेषता, परिकर में गणेश, कुबेर, बलराम, कृष्ण एवं अष्टमातृकाओं का उत्कीर्णन है। अम्बिका पद्मासन पर ललितमुद्रा में विराजमान है और उसका सिंहवाहन आसन के नीचे अंकित है। यक्षी के दाहिने हाथ में अभयमुद्रा और बायें में पुत्र है। दाहिने पार्श्व में अम्बिका का दूसरा पुत्र भी उपस्थित है। पीठिका पर एक पंक्ति में आठ स्त्री आकृतियां (अष्ट-मातृकाएं)[5] बनी हैं। ललितमुद्रा में आसीन इन आकृतियों में से अधिकांश नमस्कार-मुद्रा में हैं

---

१ श्वेतांबर ग्रन्थों में चतुर्भुजा यक्षी के करों में आम्रलुम्बि, पाश, अंकुश एवं पुत्र के प्रदर्शन का निर्देश है।

२ ज्ञातव्य है कि इस क्षेत्र की जिन-संयुक्त मूर्तियों में सिंहवाहना अम्बिका सामान्यतः द्विभुजा और आम्रलुम्बि एवं पुत्र से युक्त है।

३ अम्बिका के साथ चक्र का प्रदर्शन तान्त्रिक ग्रन्थ से निर्देशित है।

४ जि०इ०दे०, पृ० १०२

५ जैन ग्रन्थों में अष्ट-मातृकाओं के उल्लेख प्राप्त होते हैं। अष्ट-मातृकाओं की सूची में ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा और त्रिपुरा के नाम हैं। द्रष्टव्य, शाह, यू०पी०, 'आइकानोग्राफी ऑव चक्रेश्वरी, दि यक्षी ऑव ऋषभनाथ', ज०ओ०इं०, खं० २०, अं० ३, पृ० २८६

और कुछ के हाथों में फल एवं अन्य सामग्रियां हैं। अम्बिका के शीर्षभाग की जिन आकृति के पार्श्वों में त्रिभंग में खड़ी बलराम एवं कृष्ण की चतुर्भुज मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। स्मरणीय है कि बलराम और कृष्ण नेमिनाथ के चचेरे भाई हैं और अम्बिका नेमिनाथ की यक्षी है। यह मूर्ति इस बात का प्रमाण है कि ल० नवीं शती ई० में अम्बिका नेमिनाथ से सम्बद्ध हुई। तीन सर्पफणों के छत्र से युक्त बलराम के तीन हाथों में पात्र (?), मुसल और हल (पताका सहित) हैं तथा चौथा हाथ जानु पर स्थित है। कृष्ण के करों में अभयमुद्रा, गदा, चक्र एवं शंख हैं। प्रभामण्डल से युक्त अम्बिका के शीर्षभाग में आम्रफल के गुच्छक एवं उड्डीयमान मालाधर आमूर्तित हैं। देवी के दाहिने पार्श्व में ललितमुद्रा में विराजमान गजमुख गणेश की द्विभुज मूर्ति उत्कीर्ण है जिसके हाथों में अभयमुद्रा एवं मोदकपात्र हैं। वाम पार्श्व में ललितमुद्रा में आसीन द्विभुज कुबेर की मूर्ति है जिसके हाथों में फल एवं धन का थैला है।

दसवीं शती ई० की दो द्विभुज मूर्तियां मालादेवी मन्दिर (ग्यारसपुर, म०प्र०) के उत्तरी और दक्षिणी शिखर पर हैं। शीर्षभाग में आम्रफल के गुच्छकों से शोभित सिंहवाहना अम्बिका आम्रलुम्बि एवं पुत्र से युक्त है। खजुराहो के पार्श्वनाथ मन्दिर (१०वीं शती ई०) के दक्षिणी मण्डोवर पर भी अम्बिका की एक द्विभुजा मूर्ति है। त्रिभंग में खड़ी अम्बिका आम्रलुम्बि एवं बालक से युक्त है। यहां सिंहवाहन नहीं उत्कीर्ण है। शीर्षभाग में आम्रफल के गुच्छक और दाहिने पार्श्व में दूसरा पुत्र उत्कीर्ण है। इस मूर्ति के अतिरिक्त खजुराहो की दसवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की अन्य सभी मूर्तियों में अम्बिका चतुर्भुजा है।[1] उल्लेखनीय है कि खजुराहो में अम्बिका जहां एक ही उदाहरण में द्विभुजा है, वहीं देवगढ़ की ५० से अधिक मूर्तियों (९वीं-१२वीं शती ई०) में वह द्विभुजा अंकित है। देवगढ़ से चतुर्भुजा अम्बिका की केवल तीन ही मूर्तियां मिली हैं।[2] तात्पर्य यह कि खजुराहो में अम्बिका का चतुर्भुज और देवगढ़ में द्विभुज रूपों में निरूपण लोकप्रिय था। स्मरणीय है कि दिगंबर परम्परा में अम्बिका को द्विभुज बताया गया है।[3]

देवगढ़ से प्राप्त ५० से अधिक स्वतन्त्र मूर्तियों (९वीं-१२वीं शती ई०)[4] में से तीन उदाहरणों के अतिरिक्त अन्य सभी में अम्बिका द्विभुजा है (चित्र ५१)। अधिकांश उदाहरणों में देवी स्थानक-मुद्रा में और कुछ में ललितमुद्रा में निरूपित है। शीर्षभाग में लघु जिन आकृति एवं आम्रवृक्ष उत्कीर्ण हैं। अम्बिका के करों में आम्रलुम्बि[5] एवं पुत्र प्रदर्शित हैं। कुछ उदाहरणों में पुत्र गोद में न होकर वाम पार्श्व में खड़ा है। सिंहवाहन सभी उदाहरणों में उत्कीर्ण है। दिगंबर परम्परा के अनुरूप दूसरे पुत्र को दाहिने पार्श्व में अंकित किया गया है।[6] परिकर में उड्डीयमान मालाधरों एवं कभी-कभी चामरधर सेवकों को भी उत्कीर्ण किया गया है। साहू जैन संग्रहालय, देवगढ़ की एक मूर्ति (१२वीं शती ई०) में अम्बिका के वाहन का सिर सिंह का और शरीर मानव का है। इसी संग्रहालय की एक अन्य मूर्ति (११वीं शती ई०) में यक्षी के वाम स्कन्ध के ऊपर पांच सर्पफणों से मण्डित सुपार्श्व की खड्गासन मूर्ति बनी है। संग्रहालय की एक अन्य मूर्ति में परिकर में अभयमुद्रा, पद्म, चामर एवं कलश से युक्त दो चतुर्भुज देवियों, पांच जिनों एवं चामरधरों की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। वाम पार्श्व में दूसरा पुत्र है। मन्दिर १२ की उत्तरी चहारदीवारी की एक मूर्ति (११वीं शती ई०) में अम्बिका के दाहिने हाथ में आम्रलुम्बि नहीं है वरन् वह पुत्र के मस्तक पर स्थित है। उपर्युक्त मूर्तियों के अध्ययन से स्पष्ट है कि देवगढ़ में द्विभुजा अम्बिका के निरूपण में दिगंबर परम्परा का पालन किया गया है।

---

१ पार्श्वनाथ मन्दिर के शिखर (दक्षिण) पर भी चतुर्भुजा अम्बिका की एक मूर्ति है।

२ इसमें मन्दिर १२ की चतुर्भुज मूर्ति भी सम्मिलित है।

३ केवल तान्त्रिक ग्रन्थ में अम्बिका चतुर्भुजा है।

४ सर्वाधिक मूर्तियां ग्यारहवीं शती ई० की हैं।

५ साहू जैन संग्रहालय, देवगढ़ की एक मूर्ति (११वीं शती ई०) में यक्षी की दाहिनी भुजा में आम्रलुम्बि के स्थान पर छत्र-पद्म प्रदर्शित है। मन्दिर १२ की उत्तरी चहारदीवारी की मूर्ति में भी आम्रलुम्बि नहीं प्रदर्शित है।

६ मानस्तम्भों की कुछ मूर्तियों में अम्बिका का दूसरा पुत्र नहीं उत्कीर्ण है।

देवगढ़ के मन्दिर ११ के सामने के मानस्तम्भ (१०५९ ई०) पर चतुर्भुजा अम्बिका की एक मूर्ति है। सिंहवाहना अम्बिका के करों में आम्रलुम्बि, अंकुश, पाश एवं पुत्र हैं।[१] समान विवरणों वाली दूसरी चतुर्भुज मूर्ति मन्दिर १६ के स्तम्भ (१२वीं शती ई०) पर उत्कीर्ण है जिसमें वाहन नहीं है और ऊर्ध्व दक्षिण हाथ का आयुध भी अस्पष्ट है। ज्ञातव्य है कि अम्बिका का चतुर्भुज स्वरूप में निरूपण दिगंबर परम्परा के विरुद्ध है। उपर्युक्त मूर्तियों में अम्बिका के करों में आम्रलुम्बि एवं पुत्र के साथ ही पाश और अंकुश का प्रदर्शन स्पष्टतः श्वेतांबर परम्परा से प्रभावित है। देवगढ़ के अतिरिक्त खजुराहो एवं राज्य संग्रहालय, लखनऊ की दो अन्य दिगंबर परम्परा की चतुर्भुज मूर्तियों (११वीं-१२वीं शती ई०) में भी यह श्वेतांबर प्रभाव देखा जा सकता है। खजुराहो के मन्दिर २७ की एक स्थानक मूर्ति (११वीं शती ई०) में सिंह-वाहना अम्बिका के शीर्षभाग में आम्रफल के गुच्छक एवं जिन आकृति उत्कीर्ण हैं। अम्बिका के करों में आम्रलुम्बि, अंकुश, पाश, एवं पुत्र दृष्टिगत होते हैं।[२] चामरधर सेवकों एवं उपासकों से वेष्टित अम्बिका के दाहिने पार्श्व में दूसरा पुत्र भी आमूर्तित है। समान विवरणों वाली राज्य संग्रहालय, लखनऊ (६६.२२५) की एक मूर्ति में सिंहवाहना अम्बिका के एक हाथ में अंकुश के स्थान पर त्रिशूलयुक्त-घण्टा है। ललितमुद्रा में विराजमान यक्षी के समीप ही उसका दूसरा पुत्र (निर्वस्त्र) भी खड़ा है। इस मूर्ति में भयानक दर्शन वाली अम्बिका के नेत्र बाहर की ओर निकले हैं। भयावह रूप में यह निरूपण सम्भवतः तान्त्रिक परम्परा से प्रभावित है।

राज्य संग्रहालय, लखनऊ (जी ३१२) की ललितमुद्रा में आसीन एक अन्य चतुर्भुज मूर्ति (११वीं शती ई०) में अम्बिका के निचले हाथों में आम्रलुम्बि एवं पुत्र और ऊपरी हाथों में पद्म-पुस्तक एवं दर्पण हैं। सिंहवाहना अम्बिका के वाम पार्श्व में दूसरा पुत्र एवं शीर्षभाग में जिन आकृति एवं आम्रफल के गुच्छक उत्कीर्ण हैं। जैन परम्परा के विपरीत अम्बिका के साथ पद्म और दर्पण का चित्रण हिन्दू अम्बिका (पार्वती) का प्रभाव हो सकता है। ज्ञातव्य है कि पद्म का चित्रण खजुराहो की चतुर्भुज अम्बिका की मूर्तियों में विशेष लोकप्रिय था।

देवगढ़ के समान खजुराहो में भी जैन यक्षियों में अम्बिका की ही सर्वाधिक मूर्तियां हैं। खजुराहो में दसवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की अम्बिका की ११ मूर्तियां हैं।[३] पार्श्वनाथ मन्दिर के एक उदाहरण के अतिरिक्त अन्य सभी में अम्बिका चतुर्भुजा है। ११ स्वतन्त्र मूर्तियों के अतिरिक्त ७ उत्तरंगों पर भी चतुर्भुजा अम्बिका की ललितमुद्रा में आसीन मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। ११ स्वतन्त्र मूर्तियों में से दो पार्श्वनाथ और दो आदिनाथ मन्दिरों पर बनी हैं। अन्य उदाहरण स्थानीय संग्रहालयों एवं मन्दिरों में सुरक्षित हैं। सात उदाहरणों में अम्बिका त्रिभंग में खड़ी और शेष में ललित-मुद्रा में आसीन हैं। सभी उदाहरणों में शीर्षभाग में आम्रफल के गुच्छक, लघु जिन मूर्ति एवं सिंहवाहन उत्कीर्ण हैं। अम्बिका के निचले दो हाथों में आम्रलुम्बि एवं बालक[४] और ऊपरी हाथों में पद्म (या पद्म में लिपटी पुस्तिका) प्रदर्शित हैं (चित्र ५७)।[५] केवल मन्दिर २७ की एक मूर्ति में ऊर्ध्व करों में अंकुश एवं पाश हैं। इस अध्ययन से स्पष्ट है कि मुख्य आयुधों (आम्रलुम्बि एवं पुत्र) के सन्दर्भ में खजुराहो के कलाकारों ने परम्परा का पालन किया, पर ऊर्ध्व करों में पद्म या पद्म-पुस्तिका का प्रदर्शन खजुराहो की अम्बिका मूर्तियों की स्थानीय विशेषता है। ग्यारहवीं शती ई० की चार

---

१ पुत्र के बायें हाथ में आम्रफल है।

२ खजुराहो की अन्य चतुर्भुज मूर्तियों में दो ऊर्ध्व करों में अंकुश एवं पाश के स्थान पर पद्म (या पद्म में लिपटी पुस्तिका) प्रदर्शित हैं।

३ उत्तर भारत में अम्बिका की सर्वाधिक चतुर्भुज मूर्तियां खजुराहो से मिली हैं।

४ दो उदाहरणों (पुरातात्त्विक संग्रहालय, खजुराहो १६०८ एवं मन्दिर २७) में पुत्र गोद में बैठा न होकर वाम पार्श्व में खड़ा है।

५ स्थानीय संग्रहालय (के ४२) की एक मूर्ति में अम्बिका की एक ऊपरी भुजा में पद्म के स्थान पर आम्रलुम्बि है और जैन धर्मशाला के प्रवेश-द्वार के समीप के दो उत्तरंगों (११वीं शती ई०) की मूर्तियों में पुस्तक प्रदर्शित है।

मूर्तियों में दाहिने पार्श्व में दूसरा पुत्र भी उत्कीर्ण है। स्वतन्त्र मूर्तियों में अम्बिका सामान्यतः दो पार्श्ववर्ती सेविकाओं से सेवित है जिनकी एक भुजा में चामर या पद्म प्रदर्शित है। साथ ही अभयमुद्रा एवं जलपात्र से युक्त दो पुरुष या स्त्री आकृतियां भी अंकित हैं। परिकर में सामान्यतः उपासकों, गन्धर्वों एवं उड्डीयमान मालाधरों की आकृतियां बनी हैं। पुरातात्विक संग्रहालय, खजुराहो (१६०८) की एक विशिष्ट अम्बिका मूर्ति (११ वीं शती ई०) में जिन मूर्तियों के समान ही पीठिका छोरों पर द्विभुज यक्ष और यक्षी भी आमूर्तित हैं। यक्ष अभयमुद्रा एवं धन के थैले और यक्षी अभयमुद्रा एवं जलपात्र से युक्त हैं। शीर्षभाग में पद्म धारण करने वाली कुछ देवियां भी बनी हैं।

द्विभुजा अम्बिका की तीन मूर्तियां (१० वीं-११ वीं शती ई०) राज्य संग्रहालय, लखनऊ में हैं।[1] शीर्षभाग में आम्रवृक्ष एवं जिन आकृति से युक्त अम्बिका सभी उदाहरणों में ललितमुद्रा में विराजमान है। वाहन केवल दो ही उदाहरणों में उत्कीर्ण है।[2] इनमें यक्षी के करों में आम्रलुम्बि एवं पुत्र प्रदर्शित हैं।

(ख) **जिन-संयुक्त मूर्तियां**—इस क्षेत्र की जिन-संयुक्त मूर्तियों में अम्बिका सर्वदा द्विभुजा है। दसवीं शती ई० के पूर्व की नेमिनाथ की मूर्तियों में अम्बिका के साथ आम्रलुम्बि एवं सिंहवाहन का प्रदर्शन नहीं प्राप्त होता है। पर अम्बिका के साथ पुत्र का प्रदर्शन सातवीं-आठवीं शती ई० में ही प्रारम्भ हो गया था।[3] दसवीं शती ई० के पूर्व की मूर्तियों में आम्रलुम्बि के स्थान पर पुष्प (या अभयमुद्रा) प्रदर्शित है (चित्र २६)। राज्य संग्रहालय, लखनऊ, ग्यारसपुर, देवगढ़ एवं खजुराहो की दसवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की नेमिनाथ की मूर्तियों में द्विभुजी अम्बिका आम्रलुम्बि एवं पुत्र से युक्त है।[4] जिन-संयुक्त मूर्तियों में अम्बिका के साथ सिंहवाहन एवं दूसरा पुत्र सामान्यतः नहीं निरूपित हैं। शीर्षभाग में आम्र-फल के गुच्छक भी कभी-कभी ही उत्कीर्ण किये गये हैं।

देवगढ़ के मन्दिर १३ और २४ की दो जिन-संयुक्त मूर्तियों (११ वीं शती ई०) में आम्रलुम्बि के स्थान पर अम्बिका के हाथ में आम्रफल (या फल) प्रदर्शित है। कुछ उदाहरणों (मन्दिर १२, १३) में दूसरा पुत्र भी उत्कीर्ण है। मन्दिर १२ की चहारदीवारी एवं मन्दिर १५ की मूर्तियों में सिंहवाहन भी बना है। तीन उदाहरणों (१० वीं–११ वीं शती ई०) में नेमि के साथ सामान्य लक्षणों वाली द्विभुजा यक्षी भी उत्कीर्ण है। यक्षी अभयमुद्रा (या वरदमुद्रा या पुष्प) एवं फल (या कलश) से युक्त है। चार मूर्तियों (११ वीं–१२ वीं शती ई०) में यक्षी चतुर्भुजा है और उसके करों में वरद-(या अभय-) मुद्रा, पद्म, पद्म एवं फल (या कलश) प्रदर्शित हैं।

बिहार-उड़ीसा-बंगाल—इस क्षेत्र की स्वतन्त्र मूर्तियों में अम्बिका सर्वत्र द्विभुजा है और आम्रलुम्बि एवं पुत्र से युक्त है। ल० दसवीं शती ई० की एक पालयुगीन मूर्ति राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली (६३.९४०) में संगृहीत है। त्रिभंग में पद्मासन पर खड़ी अम्बिका का सिंहवाहन आसन के नीचे उत्कीर्ण है। यक्षी के दाहिने हाथ में आम्रलुम्बि है और बायें से वह समीप ही खड़े (निर्वस्त्र) पुत्र की उंगली पकड़े है। पोट्टासिंगीदी (क्योंझर, उड़ीसा) की मूर्ति में सिंहवाहना अम्बिका ललित-मुद्रा में विराजमान है और उसकी अवशिष्ट वामभुजा में पुत्र है।[5] अलुआरा से प्राप्त एक मूर्ति पटना संग्रहालय (१०६९४) में है जिसमें दाहिने पार्श्व में एक पुत्र खड़ा है।[6] पक्बीरा (मानभूम) की मूर्ति में अवशिष्ट बायें हाथ में पुत्र है।[7] अम्बिका-नगर (बांकुड़ा) एवं बरकोला से भी सिंहवाहना अम्बिका की दो मूर्तियां मिली हैं।[8]

---

१ क्रमांक जे ८५३, जे ७९, ८.०.३३४   २ जे ८५३, ८.०.३३४   ३ भारत कला भवन, वाराणसी २१२

४ राज्य संग्रहालय, लखनऊ (जे ७९२) एवं देवगढ़ की कुछ नेमिनाथ की मूर्तियों में अम्बिका के स्थान पर सामान्य लक्षणों वाली यक्षी भी आमूर्तित है।

५ जोशी, अर्जुन, 'फर्दर लाइट ऑन दि रिमेन्स ऐट पोट्टासिंगीदी', उ०हि०रि०ज०, खं० १०, अं० ४, पृ० ३१–३२

६ प्रसाद, एच०के०, 'जैन ब्रोन्जेज इन दि पटना म्यूजियम', म०जै०वि०गो०जु०वा०, बम्बई, १९६८, पृ० २८९

७ मित्र, कालीपद, 'नोट्स ऑन टू जैन इमेजेज', ज०बि०उ०रि०सो०, खं० २८, भाग २, पृ० २०३

८ मित्रा, देबला, 'सम जैन एन्टिक्विटीज फ्राम बांकुड़ा, वेस्ट बंगाल', ज०ए०सो०बं०, खं०२४, अं०२, पृ०१३१-३३

ललितमुद्रा में विराजमान सिंहवाहना अम्बिका की दो मूर्तियां नवमुनि एवं बारभुजी गुफाओं (११ वीं–१२ वीं शती ई०) में उत्कीर्ण हैं। नवमुनि गुफा की मूर्ति में यक्षी के करों में आम्रलुम्बि एवं पुत्र हैं।[1] जटामुकुट एवं आम्रफल के गुच्छकों से शोभित अम्बिका के समीप ही दूसरा पुत्र (निर्वस्त्र) भी आमूर्तित है। बारभुजी गुफा के उदाहरण में यक्षी के दाहिने हाथ में फल और बायें में आम्रवृक्ष की टहनी हैं।[2] शीर्षभाग में आम्रवृक्ष और बायें पार्श्व में पुत्र उत्कीर्ण हैं।

दक्षिण भारत—दक्षिण भारत में भी अम्बिका का द्विभुज स्वरूप में निरूपण ही विशेष लोकप्रिय था। मूर्तियों में अम्बिका सामान्यतः पुत्रों एवं सिंहवाहन से युक्त है। दोनों पुत्रों को सामान्यतः वाम पार्श्व में आमूर्तित किया गया है। अम्बिका के हाथ में आम्रलुम्बि का प्रदर्शन नियमित नहीं था। दक्षिण भारत में शीर्षभाग में आम्रफल के गुच्छकों के स्थान पर आम्रवृक्ष के उत्कीर्णन की परम्परा लोकप्रिय थी। अम्बिका दक्षिण भारत की तीन सर्वाधिक लोकप्रिय यक्षियों (अम्बिका, पद्मावती, ज्वालामालिनी) में थी। अम्बिका की प्राचीनतम मूर्ति अयहोल (कर्नाटक) के मेगुटी मन्दिर (६३४–३५ ई०) से मिली है।[3] सामान्य पीठिका पर ललितमुद्रा में विराजमान द्विभुजा यक्षी के दोनों हाथ खण्डित हैं, पर शीर्षभाग में आम्रवृक्ष एवं पैरों के नीचे सिंहवाहन सुरक्षित हैं। वाम पार्श्व में अम्बिका का पुत्र उत्कीर्ण है जिसके एक हाथ में फल है। अम्बिका के पार्श्वों में पांच सेविकाएं बनी हैं। दाहिने पार्श्व की एक सेविका की गोद मे एक बालक (निर्वस्त्र) है जो सम्भवतः अम्बिका का दूसरा पुत्र है।

आनन्दमंगलक गुफा (कांची) में सिंहवाहना अम्बिका की कई स्थानक मूर्तियां हैं। इनमें अम्बिका का बायां हाथ पुत्र के मस्तक पर स्थित है।[4] त्रावनकोर राज्य के किसी स्थल से प्राप्त एक मूर्ति (९ वीं–१० वीं शती ई०) में सिंहवाहना अम्बिका का दाहिना हाथ वरदमुद्रा में है और बायां नीचे लटक रहा है।[5] वाम पार्श्व में दोनों पुत्र बने हैं। कलुगुमलाई (तमिलनाडु) की एक मूर्ति (१० वी–११ वी शती ई०) मे सिंहवाहना अम्बिका का दाहिना हाथ एक बालिका के मस्तक पर है[6] और बायां फल (या आम्रलुम्बि) लिये है। वाम पार्श्व में दो बालक आकृतियां उत्कीर्ण है।[7] एलोरा की जैन गुफाओ में अम्बिका की कई मूर्तियां (१० वी–११ वी शती ई०) हैं। इनमें आम्रवृक्ष के नीचे विराजमान अम्बिका के करों में आम्रलुम्बि और पुत्र (गोद में) प्रदर्शित है। यक्षी का दूसरा पुत्र सामान्यतः सिंहवाहन के समीप आमूर्तित है (चित्र ५२)। अंगदि के जैन बस्ती (कर्नाटक) की मूर्ति में यक्षी के दाहिने हाथ मे आम्रलुम्बि है और बायां पुत्र के मस्तक पर स्थित है। दक्षिण पार्श्व में सिंहवाहन और दूसरा पुत्र आमूर्तित है। मुर्तजापुर (अकोला, महाराष्ट्र) की एक द्विभुज मूर्ति नागपुर संग्रहालय में है। इसमें सिंहवाहना अम्बिका आम्रलुम्बि एवं फल से युक्त है। प्रत्येक पार्श्व में उसका एक पुत्र खड़ा है। समान विवरणों वाली एक मूर्ति श्रवणबेलगोला के चामुण्डराय बस्ती से मिली है।[8]

दक्षिण भारत से अम्बिका की कुछ चतुर्भुज मूर्तियां भी मिली हैं। जिनकांची के भित्ति चित्रों में अम्बिका चतुर्भुजा है।[9] पद्मासन में विराजमान यक्षी के ऊपरी हाथों में अंकुश और पाश तथा शेष में अभय–और वरदमुद्राएं

---

१ मित्रा, देबला, 'शासनदेवीज इन दि खण्डगिरि केव्स', ज०ए०सो०, खं० १, अं० २, पृ० १२९
२ वही, पृ० १३२
३ कजिन्स, एच०, दि चालुक्यन आर्किटेक्चर, आर्किअलाजिकल सर्वे आव इण्डिया, खं० ४२, न्यू इम्पीरियल सिरीज, पृ० ३१, फलक ४
४ देसाई, पी०बी०, 'यक्षी इमेजेज इन साऊथ इण्डियन जैनिजम', डा० मिराशी फेलिसिटेशन वाल्यूम, नागपुर, १९६५, पृ० ३४५
५ देसाई, पी०बी०, जैनिजम इन साऊथ इण्डिया ऐण्ड सम जैन एपिग्राफ्स, शोलापुर, १९६३, पृ० ६९
६ पुत्र के स्थान पर पुत्री का चित्रण अपारम्परिक है।
७ देसाई, पी०बी०, पू०नि०, पृ० ६४
८ शाह, यू०पी०, 'आइकानोग्राफी ऑव दि जैन गाडेस अम्बिका', ज०यू०बा०, खं० ९, भाग २, पृ० १५४–५६
९ वही, पृ० १५८

प्रदर्शित हैं। बर्जेस ने कन्नड़ परम्परा पर आधारित चतुर्भुजा कूष्माण्डिनी का एक चित्र भी प्रकाशित किया है जिसमें सिंह-वाहना यक्षी के दोनों पुत्र गोद में स्थित हैं और उसके दो ऊपरी हाथों में खड्ग और चक्र प्रदर्शित हैं।[1]

विश्लेषण

अध्ययन से स्पष्ट है कि उत्तर भारत में दक्षिण भारत की अपेक्षा अम्बिका की अधिक मूर्तियां उत्कीर्ण हुईं। जैन देवकुल की प्राचीनतम यक्षी होने के कारण ही शिल्प में सबसे पहले अम्बिका को मूर्त अभिव्यक्ति मिली। ल० छठी-सातवीं शती ई० में अम्बिका की स्वतन्त्र एवं जिन-संयुक्त मूर्तियों का निरूपण प्रारम्भ हुआ।[2] सभी क्षेत्रों में अम्बिका का द्विभुज रूप ही विशेष लोकप्रिय था। जिन-संयुक्त मूर्तियों में तो अम्बिका सदैव द्विभुजा ही है।[3] उसके साथ सिंहवाहन एवं आम्रलुम्बि और पुत्र का चित्रण सभी क्षेत्रों में लोकप्रिय था। शीर्षभाग में आम्रफल के गुच्छक और पार्श्व में दूसरे पुत्र का अंकन भी नियमित था। श्वेतांबर स्थलों पर उपर्युक्त लक्षणों का प्रदर्शन दिगंबर स्थलों की अपेक्षा कुछ पहले ही प्रारम्भ हो गया था। श्वेतांबर स्थलों (अकोटा) पर इन विशेषताओं का प्रदर्शन छठी-सातवीं शती ई० में और दिगंबर स्थलों[4] पर नवीं-दसवीं शती ई० में प्रारम्भ हुआ। दिगंबर स्थलों की जिन-संयुक्त मूर्तियों में सिंहवाहन एवं दूसरे पुत्र का प्रदर्शन दुर्लभ है। यह भी ज्ञातव्य है कि श्वेतांबर स्थलों पर नेमि के साथ सदैव अम्बिका ही निरूपित है, पर दिगंबर स्थलों पर कभी-कभी सामान्य लक्षणों वाली अपारम्परिक यक्षी भी आमूर्तित है।

उल्लेखनीय है कि दिगंबर ग्रन्थों में द्विभुजा अम्बिका का ध्यान किया गया है।[5] पर दिगंबर स्थलों पर अम्बिका की द्विभुज और चतुर्भुज दोनों ही मूर्तियां उत्कीर्ण हुईं। दिगंबर परम्परा की सर्वाधिक चतुर्भुजी मूर्तियां खजुराहो से मिली हैं। दूसरी ओर श्वेतांबर परम्परा में अम्बिका का चतुर्भुज रूप में ध्यान किया गया है, पर श्वेतांबर स्थलों पर उसकी द्विभुज मूर्तियां ही अधिक संख्या में उत्कीर्ण हुईं। केवल कुम्भारिया, विमलवसही, जालोर एवं तारंगा से ही कुछ चतुर्भुजी मूर्तियां मिली हैं। श्वेतांबर स्थलों पर परम्परा के अनुरूप चतुर्भुजा अम्बिका के ऊपरी हाथों में पाश एवं अंकुश नहीं मिलते हैं।[6] पर दिगंबर स्थलों[7] की मूर्तियों में ऊपरी हाथों में पाश एवं अंकुश (या त्रिशूलयुक्त घंटा) प्रदर्शित हुए हैं। श्वेतांबर स्थलों पर अम्बिका की स्थानक मूर्तियां दुर्लभ हैं[8], पर दिगंबर स्थलों से आसीन और स्थानक दोनों ही मूर्तियां मिली हैं।

श्वेतांबर स्थलों पर जहां अम्बिका के निरूपण में एकरूपता प्राप्त होती है[9], वहीं दिगंबर स्थलों पर विविधता देखी जा सकती है। दिगंबर स्थलों पर चतुर्भुजा अम्बिका के दो हाथों में आम्रलुम्बि एवं पुत्र और शेष दो हाथों में पद्म, पद्म-पुस्तक, पुस्तक, अंकुश, पाश, दर्पण एवं त्रिशूल-घण्टा में से कोई दो आयुध प्रदर्शित हैं। खजुराहो की एक अम्बिका मूर्ति (पुरातात्विक संग्रहालय, खजुराहो, १६०८) में देवी के साथ यक्ष-यक्षी युगल का उत्कीर्णन अम्बिका-मूर्ति के विकास की पराकाष्ठा का सूचक है।

---

१ बर्जेस, जे०, 'दिगंबर जैन आइकानोग्राफी', इण्डि०एण्टि०, खं० ३२, पृ० ४६३, फलक ४, चित्र २२

२ प्रारम्भिकतम मूर्तियां अकोटा (गुजरात) से मिली हैं।

३ कुंभारिया एवं विमलवसही की कुछ नेमिनाथ मूर्तियों में अम्बिका चतुर्भुजा भी है।

४ देवगढ़, खजुराहो, ग्यारसपुर (मालादेवी मन्दिर) एवं राज्य संग्रहालय, लखनऊ

५ केवल दिगंबर परम्परा के तांत्रिक ग्रन्थ में ही चतुर्भुजा एवं अष्टभुजा अम्बिका का ध्यान किया गया है।

६ विमलवसही एवं तारंगा की दो मूर्तियों में चतुर्भुजा अम्बिका के साथ पाश प्रदर्शित है।

७ खजुराहो, देवगढ़ एवं राज्य संग्रहालय, लखनऊ

८ एक स्थानक मूर्ति तारंगा के अजितनाथ मन्दिर पर है।

९ तारंगा, जालोर एवं विमलवसही की तीन चतुर्भुज मूर्तियों में अम्बिका के निरूपण में रूपगत भिन्नता प्राप्त होती है। अन्य उदाहरणों में अम्बिका के तीन हाथों में आम्रलुम्बि और चौथे में पुत्र हैं।

(२३) पार्श्व (या धरण) यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

पार्श्व (या धरण) जिन पार्श्वनाथ का यक्ष है। श्वेतांबर परम्परा में यक्ष को पार्श्व[1] और दिगंबर परम्परा में धरण कहा गया है। दोनों परम्पराओं में सर्पफणों के छत्र से युक्त चतुर्भुज यक्ष का वाहन कूर्म है। श्वेतांबर परम्परा में पार्श्व को गजमुख बताया गया है।

श्वेतांबर परम्परा—**निर्वाणकलिका** में गजमुख पार्श्व यक्ष का वाहन कूर्म है। सर्पफणों के छत्र से युक्त पार्श्व के दक्षिण करों में मातुलिंग एवं उरग और वाम में नकुल एवं उरग वर्णित हैं।[2] अन्य ग्रन्थों में भी सामान्यतः इन्हीं लक्षणों के उल्लेख हैं।[3] केवल दो ग्रन्थों में दाहिने हाथ में उरग के स्थान पर गदा के प्रदर्शन का निर्देश है।[4]

दिगंबर परम्परा—**प्रतिष्ठासारसंग्रह** में कूर्म पर आरूढ़ धरण के आयुधों का अनुल्लेख है।[5] **प्रतिष्ठासारोद्धार** में सर्पफणों से शोभित धरण के दो ऊपरी हाथों में सर्प और निचले हाथों में नागपाश एवं वरदमुद्रा उल्लिखित हैं।[6] **अपराजितपृच्छा** में सर्परूप पार्श्व यक्ष को षड्भुज बताया गया है और उसके करों में धनुष, बाण, भृण्डि, मुद्गर, फल एवं वरदमुद्रा के प्रदर्शन का निर्देश है।[7]

यक्ष का नाम (धरणेन्द्र या धरणीधर) सम्भवतः शेषनाग (नागराज) से प्रभावित है। शीर्षभाग में सर्पछत्र एवं हाथ में सर्प का प्रदर्शन भी यही सम्भावना व्यक्त करता है। यक्ष के हाथ में वासुकि के प्रदर्शन का निर्देश है जो हिन्दू परम्परा के अनुसार सर्पराज और काश्यप का पुत्र है। यक्ष के साथ कूर्मवाहन का प्रदर्शन सम्भवतः कमठ (कूर्म) पर उसके प्रभुत्व का सूचक है, जो उसके स्वामी (पार्श्वनाथ) का शत्रु था।[8]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ में पांच सर्पफणों से आच्छादित चतुर्भुज यक्ष का वाहन कूर्म कहा गया है। यक्ष के ऊपरी हाथों में सर्प और निचले में अभय एवं कटक मुद्राओं का उल्लेख है। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में

---

१ **प्रवचनसारोद्धार** में वामन नाम से उल्लेख है।

२ पार्श्वयक्षं गजमुखमुरगफणामण्डितशिरसं श्यामवर्णं कूर्मवाहनं चतुर्भुजं बीजपूरकोरगयुतदक्षिणपाणिं नकुलकाहियुत-वामपाणिं चेति। **निर्वाणकलिका** १८.२३

३ **त्रि०श०पु०च०** ९.३.३६२–६३; **मन्त्राधिराजकल्प** ३.४७; **देवतामूर्तिप्रकरण** ७.६२; **पार्श्वनाथचरित्र** (भावदेव-सूरिप्रणीत) ७.८२७–२८; **रूपमण्डन** ६.२०

४ मातुलिंगगदायुक्तौ बिभ्राणो दक्षिणौ करौ।
वामौ नकुलसर्पाङ्कौ कूर्माङ्कः कुन्जराननः॥
मूर्ध्नि फणिफणच्छत्रो यक्षः पार्श्वोऽसितद्युतिः। **पद्मानन्दमहाकाव्यः परिशिष्ट—पार्श्वनाथ** ९२–९३
द्रष्टव्य, **आचारदिनकर** ३४, पृ० १७५

५ पार्श्वस्य धरणो यक्षः श्यामांगः कूर्मवाहनः। **प्रतिष्ठासारसंग्रह** ५.६७

६ ऊर्ध्वद्विहस्तधृतवासुकिरुद्भटाधः सव्यान्यपाणिफणिपाशवरप्रणंता।
श्रीनागराजककुदं धरणोऽभ्रनीलः कूर्मश्रितो भजतु वासुकिमौलिरिज्याम्॥ **प्रतिष्ठासारोद्धार** ३.१५१
द्रष्टव्य, **प्रतिष्ठातिलकम्** ७.२३, पृ० ३३८

७ पार्श्वो धनुर्बाण भृण्डि मुद्गरश्च फलं वरः।
सर्परूपः श्यामवर्णः कर्तव्यः शान्तिमिच्छता॥ **अपराजितपृच्छा** २२१.५५

८ भट्टाचार्य, बी० सी०, **पू०नि०**, पृ० ११८

कूर्म पर आरूढ़ चतुर्भुज यक्ष के करों में कलश, पाश, अंकुश एवं मातुलिंग वर्णित हैं। यक्ष-यक्षी-लक्षण में कलश के स्थान पर पद्म (? उत्फुल्लपद्म) एवं शीर्षभाग में एक सर्पफण के छत्र के प्रदर्शन का उल्लेख है।[1]

मूर्ति-परम्परा

पार्श्व या धरण यक्ष के निरूपण में केवल सर्पफणों[2] एवं कभी-कभी हाथ में सर्प के प्रदर्शन में ही ग्रन्थों के निर्देशों का पालन हुआ है। ल० नवीं शती ई० में यक्ष की मूर्तियों का उत्कीर्णन प्रारम्भ हुआ।

(क) स्वतन्त्र मूर्तियां—पार्श्व यक्ष की स्वतन्त्र मूर्तियां (९ वीं–१३ वीं शती ई०) केवल ओसिया (महावीर मन्दिर), ग्यारसपुर (मालादेवी मन्दिर) एवं लूणवसही से मिली हैं। लूणवसही की मूर्ति में यक्ष चतुर्भुज है और अन्य उदाहरणों में द्विभुज है। ओसिया के महावीर मन्दिर (श्वेतांबर, ल० ९ वीं शती ई०) से पार्श्व की दो मूर्तियां मिली हैं। एक मूर्ति गूढ़मण्डप की पूर्वी भित्ति पर है जिसमें सात सर्पफणों के छत्र से युक्त यक्ष स्थानक-मुद्रा में है और उसके सुरक्षित बायें हाथ में पुष्प है। दूसरी मूर्ति अर्धमण्डप के स्तम्भ पर उत्कीर्ण है। इसमें त्रिसर्पफणों से शोभित एवं ललित-मुद्रा में आसीन यक्ष के दाहिने हाथ का आयुध अस्पष्ट है, पर बायें में सम्भवतः सर्प है। ग्यारसपुर के मालादेवी मन्दिर (दिगंबर, १० वीं शती ई०) की मूर्ति[3] में पांच सर्पफणों के छत्र से युक्त धरण पद्मासन पर त्रिभंग में खड़ा है। उसका दाहिना हाथ अभयमुद्रा में है और बायें में कमण्डलु है। लूणवसही (श्वेतांबर, १३ वीं शती ई० का पूर्वार्ध) की मूर्ति गूढ़मण्डप के दक्षिणी प्रवेश-द्वार पर है जिसमें तीन अवशिष्ट करों में वरदाक्ष, सर्प एवं सर्प प्रदर्शित हैं।

(ख) जिन-संयुक्त मूर्तियां—पार्श्वनाथ की मूर्तियों में यक्ष-यक्षी का अंकन ल० दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० में प्रारम्भ हुआ। ज्ञातव्य है कि दिगंबर स्थलों पर पार्श्वनाथ की मूर्तियों में सिंहासन या पीठिका के छोरों पर यक्ष-यक्षी का चित्रण नियमित नहीं था।[4] गुजरात और राजस्थान की सातवीं से बारहवीं शती ई० की श्वेतांबर परम्परा की पार्श्वनाथ की मूर्तियों में यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका है। अकोटा, ओसिया (१०१९ ई०) एवं कुम्भारिया (पार्श्वनाथ मन्दिर, १२ वीं शती ई०) की कुछ पार्श्वनाथ की मूर्तियों में सर्वानुभूति एवं अम्बिका के सिरों पर सर्पफणों के छत्र भी प्रदर्शित हैं जो पार्श्वनाथ का प्रभाव है। विमलवसही की देवकुलिका ४ (११८८ ई०) की अकेली मूर्ति में पार्श्वनाथ के साथ पारम्परिक यक्ष निरूपित है। कूर्म पर आरूढ़ एवं तीन सर्पफणों के छत्र से युक्त चतुर्भुज पार्श्व गजमुख है और करों में मोदक-पात्र, सर्प, सर्प एवं धन का थैला[5] लिये है। एक हाथ में मोदकपात्र का प्रदर्शन और यक्ष का गजमुख होना गणेश का प्रभाव है।

उत्तरप्रदेश एवं मध्यप्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों की पार्श्वनाथ की मूर्तियों में भी यक्ष-यक्षी अंकित हैं। देवगढ़ की तीस मूर्तियों में से केवल सात ही में (१० वीं-११ वीं शती ई०) यक्ष-यक्षी निरूपित हैं।[6] छह उदाहरणों में द्विभुज यक्ष-यक्षी

---

१ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २१०

२ शीर्षभाग के सर्पफणों की संख्या (१, ३, ५, ७) कभी स्थिर नहीं हो सकी।

३ यह मूर्ति मण्डप के उत्तरी जंघा पर है।

४ दिगंबर स्थलों की अधिकांश मूर्तियों में यक्ष-यक्षी के स्थान पर मूलनायक के पार्श्वों में सर्पफणों के छत्रों से युक्त दो स्त्री-पुरुष आकृतियां उत्कीर्ण हैं, जो धरण और पद्मावती हैं। यह उस समय का अंकन है जब कमठ के उपसर्ग से पार्श्वनाथ की रक्षा के लिए धरणेन्द्र पद्मावती के साथ देवलोक से पार्श्वनाथ के निकट आया था। ऐसी मूर्तियों में धरण सामान्यतः चामर (या घट) और पद्म (या फल) से युक्त है तथा पद्मावती के दोनों हाथों में एक लम्बा छत्र प्रदर्शित है जिसका ऊपरी भाग पार्श्व के मस्तक के ऊपर है। यह चित्रण परम्परासम्मत है। कुछ मूर्तियों (विशेषतः देवगढ़) में इन आकृतियों के साथ ही सिंहासन छोरों पर यक्ष-यक्षी भी निरूपित हैं।

५ यह नकुल भी हो सकता है।

६ अन्य उदाहरणों में सामान्यतः चामरधारी धरणेन्द्र एवं छत्र या चामरधारिणी पद्मावती आमूर्तित हैं।

सामान्य लक्षणों वाले हैं।[१] मन्दिर ९ की दसवीं शती ई० की एक मूर्ति में यक्ष-यक्षी तीन सर्पफणों के छत्र से युक्त हैं। मन्दिर १२ के समीप की एक अरक्षित मूर्ति (११ वीं शती ई०) में एक सर्पफण के छत्र से युक्त यक्ष-यक्षी चतुर्भुज हैं। यक्ष के हाथों में अभयमुद्रा, सर्प, पाश एवं कलश हैं। इस मूर्ति के अतिरिक्त अन्य किसी उदाहरण में देवगढ़ में पार्श्व के साथ पारम्परिक यक्ष-यक्षी नहीं निरूपित हुए।

खजुराहो की केवल चार मूर्तियों (११ वीं-१२ वीं शती ई०) में यक्ष-यक्षी आमूर्तित हैं।[२] स्थानीय संग्रहालय (के १००) की एक मूर्ति (११ वीं शती ई०) में पांच सर्पफणों से शोभित द्विभुज यक्ष फल (?) एवं फल से युक्त है। पुरातात्विक संग्रहालय, खजुराहो की एक मूर्ति (१६१८, १२ वीं शती ई०) में सर्पफणों की छत्रावली से युक्त यक्ष नमस्कार-मुद्रा में निरूपित है। स्थानीय संग्रहालय (के ५) की एक मूर्ति (११ वीं शती ई०) में चतुर्भुज यक्ष के दो अवशिष्ट करों में पद्म एवं फल हैं। स्थानीय संग्रहालय (के ६८) की एक अन्य मूर्ति में पांच सर्पफणों के छत्र वाले चतुर्भुज यक्ष के करों में अभयमुद्रा, शक्ति (?), सर्प एवं कलश प्रदर्शित हैं। खजुराहो में यद्यपि धरण का कोई निश्चित स्वरूप नहीं नियत हुआ, पर शीर्षभाग में सर्पफणों के छत्र का चित्रण अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा नियमित था। राज्य संग्रहालय, लखनऊ की पार्श्वनाथ की केवल चार ही मूर्तियों में यक्ष-यक्षी उत्कीर्णित हैं। नवीं-दसवीं शती ई० की तीन मूर्तियों में द्विभुज यक्ष की दाहिनी भुजा में फल और बायीं में धन का थैला है।[3] ग्यारहवीं शती ई० की चौथी मूर्ति (जे ७९४) में पांच सर्पफणों वाले चतुर्भुज यक्ष के सुरक्षित दाहिने हाथों में फल एवं पद्म प्रदर्शित हैं।

दक्षिण भारत—उत्तर भारत के दिगंबर स्थलों के समान ही दक्षिण भारत में भी पार्श्वनाथ के सिंहासन के छोरों पर यक्ष-यक्षी का निरूपण लोकप्रिय नहीं था।[४] दक्षिण कन्नड़ क्षेत्र की एक पार्श्वनाथ मूर्ति (१० वीं-११ वीं शती ई०) में एक सर्पफण के छत्र से युक्त यक्ष चतुर्भुज है। यक्ष के तीन सुरक्षित करों में गदा, कलश और अभयमुद्रा हैं।[५] कन्नड़ शोध संस्थान संग्रहालय (एस० सी० ५३) की मूर्ति में चतुर्भुज यक्ष के हाथों में पद्म (?), पाश, परशु एवं फल हैं।[६] प्रिंस ऑव वेल्स म्यूजियम, बम्बई में दो स्वतन्त्र चतुर्भुज मूर्तियां हैं।[७] एक उदाहरण में तीन सर्पफणों के छत्र से युक्त यक्ष कूर्म पर आरूढ़ है और उसके करों में वरदमुद्रा, सर्प, सर्प एवं नागपाश प्रदर्शित हैं। तीन सर्पफणों के छत्र से युक्त दूसरी मूर्ति (१२ वीं शती ई०) में यक्ष के हाथों में सनाल पद्म, गदा, पाश (नाग ?) एवं वरदमुद्रा हैं।[८] यक्ष ललितमुद्रा में है।

विश्लेषण

सम्पूर्ण अध्ययन से स्पष्ट है कि उत्तर भारत में जैन परम्परा के विपरीत यक्ष का द्विभुज स्वरूप में निरूपण ही विशेष लोकप्रिय था। केवल कुछ ही उदाहरणों में यक्ष चतुर्भुज है।[९] यक्ष की स्वतन्त्र मूर्तियों का उत्कीर्णन नवीं शती ई०

---

१ इनके करों में अभयमुद्रा (या गदा) एवं कलश (या फल या धन का थैला) प्रदर्शित हैं।

२ अन्य उदाहरणों में धरण एवं पद्मावती की क्रमशः चामर एवं छत्र (या चामर) से युक्त आकृतियां उत्कीर्ण हैं।

३ जी ३१०, जे ८८२, ४०.१२१

४ बादामी एवं अयहोल की मूर्तियों में दोनों पार्श्वों में धरणेन्द्र और पद्मावती को क्रमशः नमस्कार-मुद्रा में (या अभय-मुद्रा व्यक्त करते हुए) और छत्र धारण किये हुए दिखाया गया है। धरणेन्द्र सर्पफण के छत्र से रहित और पद्मावती उससे युक्त हैं।

५ हाडवे, डब्ल्यू० एस०, 'नोट्स आन टू जैन मेटल इमेजेज', रूपम, अं० १७, पृ० ४८–४९

६ अन्निगेरी, ए० एम०, ए गाइड टू दि कन्नड़ रिसर्च इन्स्टिट्यूट म्यूजियम, धारवाड़, १९५८, पृ० १९

७ संकलिया, एच० डी०, 'जैन यक्षज ऐण्ड यक्षिणीज', बु०डे०का०रि०इं०, खं० १, अं० २–४, पृ० १५७–५८; जै०क०स्था०, खं० ३, पृ० ५८३–८४

८ यह पाताल यक्ष की भी मूर्ति हो सकती है।

९ चतुर्भुज मूर्तियां देवगढ़, खजुराहो, राज्य संग्रहालय, लखनऊ, विमलवसही एवं लूणवसही से मिली हैं। दिगंबर स्थलों पर चतुर्भुज यक्ष की अपेक्षाकृत अधिक मूर्तियां हैं।

में प्रारम्भ हुआ। यक्ष की प्रारम्भिक मूर्तियां ओसिया के महावीर मन्दिर से मिली हैं। पार्श्वनाथ की मूर्तियों में पारम्परिक यक्ष का चित्रण दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० में प्रारम्भ हुआ।[१] यक्ष के साथ कूर्मवाहन केवल एक ही मूर्ति (विमलवसही की देवकुलिका ४) में उत्कीर्ण है। जिन-संयुक्त एवं स्वतन्त्र मूर्तियों में यक्ष के साथ केवल सर्पफणों के छत्र और हाथ में सर्प के प्रदर्शन में ही परम्परा का निर्वाह किया गया है। पुरातात्विक स्थलों पर मूर्तिविज्ञान की दृष्टि से यक्ष का कोई स्वतन्त्र रूप भी नहीं निश्चित हुआ। केवल विमलवसही की देवकुलिका ४ की मूर्ति में ही यक्ष के निरूपण में पारम्परिक विशेषताएं प्रदर्शित हैं।[२] एक उदाहरण के अतिरिक्त[३] श्वेतांबर स्थलों की अन्य सभी जिन-संयुक्त मूर्तियों में यक्ष सर्वानुभूति है। पर दिगंबर स्थलों पर सामान्य लक्षणों वाले यक्ष के साथ ही कभी-कभी स्वतन्त्र लक्षणों वाले यक्ष भी निरूपित हैं। कई उदाहरणों में सर्पफणों के छत्र वाले यक्ष के हाथ में सर्प भी प्रदर्शित है।

(२३) पद्मावती यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

पद्मावती जिन पार्श्वनाथ की यक्षी है। दोनों परम्पराओं में पद्मावती का वाहन कुक्कुट-सर्प (या कुक्कुट) है[४] तथा देवी के मुख्य आयुध पद्म, पाश एवं अंकुश हैं।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका में चतुर्भुजा पद्मावती का वाहन कुर्कुट है और उसके दक्षिण करों में पद्म, और पाश तथा वाम में फल और अंकुश वर्णित हैं।[५] समान लक्षणों का उल्लेख करने वाले अन्य सभी ग्रन्थों में कुर्कुट के स्थान पर वाहन के रूप में कुर्कुट-सर्प का उल्लेख है।[६] मन्त्राधिराजकल्प में पद्मावती के मस्तक पर तीन सर्पफणों के छत्र के प्रदर्शन का निर्देश है।[७]

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह में पद्मवाहना पद्मावती का चतुर्भुज, षड्भुज एवं चतुर्विंशतिभुज रूपों में ध्यान किया गया है।[८] चतुर्भुजा पद्मावती के तीन हाथों में अंकुश, अक्षसूत्र एवं पद्म; तथा षड्भुजा यक्षी के करों में पाश,

---

१ देवगढ़, खजुराहो एवं राज्य संग्रहालय, लखनऊ

२ मोदकपात्र के अतिरिक्त।   ३ विमलवसही की देवकुलिका ४ की मूर्ति

४ प्रतिष्ठासारसंग्रह मे वाहन पद्म है।

५ पद्मावतीं देवीं कनकवर्णां कुर्कुटवाहनां चतुर्भुजां पद्मपाशान्वितदक्षिणकरां फलांकुशाधिष्ठित वामकरां चेति ॥ निर्वाणकलिका १८.२३

६ त्रि०श०पु०च० ९.३.३६४–६५; पद्मानन्दमहाकाव्य: परिशिष्ट—पार्श्वनाथ ९३–९४; पार्श्वनाथचरित्र ७.८२९–३०; आचारदिनकर ३४, पृ० १७७; देवतामूर्तिप्रकरण ७.६३; रूपमण्डन ६.२१

७ मन्त्राधिराजकल्प ३.६५

८ देवी पद्मावती नाम्ना रक्तवर्णा चतुर्भुजा।
पद्मासनांकुशं धत्ते अक्षसूत्रं च पंकजं।
अथवा षड्भुजा देवी चतुर्विंशति सद्भुजा ॥
पाशासिकुंतबालेन्दुगदामुशलसंयुतं।
भुजाषट्कं समाख्यातं चतुर्विंशतिरुच्यते ॥
शंखासिचक्रबालेन्दु पद्मोत्पलशरासनं।
पाशांकुशं घंट (वायु) बाणं मुशलखेटकं।
त्रिशूलंपरशुं कुन्तं भिण्डमालं फलं गदा।
पत्रंचपल्लवं धत्ते वरदा धर्मवत्सला ॥ प्रतिष्ठासारसंग्रह ५.६७–७१

खड्ग, शूल, अर्धचन्द्र (बालेन्दु), गदा एवं मुसल वर्णित हैं। चतुर्विंशतिभुज यक्षी के करों में शंख, खड्ग, चक्र, अर्धचन्द्र (बालेन्दु), पद्म, उत्पल, धनुष (शरासन), शक्ति, पाश, अंकुश, घण्टा, बाण, मुसल, खेटक, त्रिशूल, परशु, कुंत, भिण्ड, माला, फल, गदा, पत्र, पल्लव एवं वरदमुद्रा के प्रदर्शन का निर्देश है।[1] प्रतिष्ठासारोद्धार में भी कुक्कुट-सर्प पर आरूढ़ एवं तीन सर्पफणों के छत्र से युक्त यक्षी का सम्भवतः चतुर्विंशतिभुज रूप में ही ध्यान है। पद्म पर आसीन यक्षी के करों में अंकुश, पाश, शंख, पद्म एवं अक्षमाला आदि प्रदर्शित है।[2] प्रतिष्ठातिलकम्[3] में भी सम्भवतः चतुर्विंशतिभुज पद्मावती का ही ध्यान किया गया है। पद्मस्थ यक्षी के छह हाथों में पाश आदि और शेष में शंख, खड्ग, अंकुश, पद्म, अक्षमाला एवं वरदमुद्रा आदि के प्रदर्शन का निर्देश है। ग्रन्थ में वाहन का अनुल्लेख है। अपराजितपृच्छा में चतुर्भुजा पद्मावती का वाहन कुक्कुट और करों के आयुध पाश, अंकुश, पद्म एवं वरदमुद्रा हैं।[4]

धरणेन्द्र (पाताल देव) की भार्या होने के कारण ही पद्मावती के साथ सर्प (कुक्कुट-सर्प एवं सर्पफण का छत्र) को सम्बद्ध किया गया। जैन परम्परा में उल्लेख है कि पार्श्वनाथ का जन्म-जन्मान्तर का शत्रु कमठ दूसरे भव में कुक्कुट-सर्प के रूप में उत्पन्न हुआ था। पद्मावती के वाहन के रूप में कुक्कुट-सर्प का उल्लेख सम्भवतः उसी कथा से प्रभावित और पार्श्वनाथ के शत्रु पर उसकी यक्षी (पद्मावती) के नियन्त्रण का सूचक है। यक्षी के नाम, पद्मा या पद्मावती को यक्षी की भुजा में पद्म के प्रदर्शन से सम्बन्धित किया जा सकता है। पद्मावती को हिन्दू देवकुल की सर्प से सम्बद्ध लोक-देवी मनसा से भी सम्बद्ध किया जाता है। मनसा को पद्मा या पद्मावती नामो से भी सम्बोधित किया गया है।[5] पर जैन यक्षी की लाक्षणिक विशेषताएं मनसा से पूर्णतः भिन्न हैं। हिन्दू परम्परा में शिव की शक्ति के रूप में भी पद्मावती (या परा) का उल्लेख है। ऐसे स्वरूप में नाग पर आरूढ़ एवं नाग की माला से शोभित चतुर्भुजा पद्मावती त्रिनेत्र, अर्धचन्द्र से सुशोभित तथा करों में माला, कुम्भ, कपाल एवं नीरज से युक्त है।[6] ज्ञातव्य है कि नाग से सम्बद्ध जैन पद्मावती को दिगंबर परम्परा में पद्म, माला एवं अर्धचन्द्र से युक्त बताया गया है। भैरव-पद्मावती कल्प में यक्षी को त्रिनेत्र भी कहा गया है।

---

१ बी० सी० भट्टाचार्य ने प्रतिष्ठासारसंग्रह की आरा की पाण्डुलिपि के आधार पर वज्र एवं शक्ति का उल्लेख किया है। द्रष्टव्य, भट्टाचार्य, बी० सी०, पू०नि०, पृ० १४४

२ येष्टुं कुर्कटसर्पगात्रिफणकोत्तंसाद्विषोयात षट्
पाशादिः सदसत्कृते च धृतशंखास्यादिदो अष्टका।
तां शान्तामरुणां स्फुरच्छृणिसरोजन्माक्षव्यालाम्बरां
पद्मस्थां नवहस्तकप्रभुनतां यायज्मि पद्मावतीम्॥ प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१७४

३ पाशाद्यन्वितषड्भुजारिजयदा ध्याता चतुर्विंशति।
शंखास्याद्रियुतान्करांस्तु दधती या क्रूरशान्त्यर्थदा॥
शान्त्यै सांकुशवारिजाक्षमणिसद्दानैश्चतुर्भिः करैर्युक्ता।
तां प्रयजामि पार्श्वविनतां पद्मस्थपद्मावतीम्॥ प्रतिष्ठातिलकम् ७.२३, पृ० ३४७–४८

४ पाशाङ्कुशौ पद्मवरे रक्तवर्णा चतुर्भुजा।
पद्मासना कुक्कुटस्था ख्याता पद्मावतीति च॥ अपराजितपृच्छा २२१.३७

५ बनर्जी, जे० एन०, पू०नि०, पृ० ५६३

६ ॐ नागाधीश्वरविष्टरां फणिफणोत्तंसोरुरत्नावली-
भास्वद्देहलतां दिवाकरनिभां नेत्रत्रयोद्भासिताम्।
मालाकुम्भकपालनीरजकरां चन्द्रार्धचूडां परां
सर्वज्ञेश्वर भैरवाङ्कनिलयां पद्मावतीं चिन्तये॥ मारकण्डेयपुराण : अध्याय ८६ ध्यानम्

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ में पांच सर्पफणों के छत्र से शोभित चतुर्भुजा पद्मावती का वाहन हंस है। यक्षी के ऊपरी हाथों में कुठार एवं कुलिश और निचले में अभय एवं कटक मुद्राएं वर्णित हैं।[१] भैरव-पद्मावती कल्प में पद्म पर अवस्थित चतुर्भुजा पद्मा को त्रिनेत्र और हाथों में पाश, फल, वरदमुद्रा एवं सृणि से युक्त कहा गया है। पद्मावती को त्रिपुरा एवं त्रिपुरभैरवी जैसे नामों से भी सम्बोधित किया गया है।[२] अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में कुक्कुट-सर्प पर आरूढ़ चतुर्भुजा यक्षी को त्रिलोचना बताया गया है और उसके हाथों में सृणि, पाश, वरदमुद्रा एवं पद्म का उल्लेख है। यक्ष-यक्षी-लक्षण में सर्पफण से आच्छादित चतुर्भुजा एवं त्रिलोचना यक्षी का वाहन सर्प तथा करों के आयुध पाश, अंकुश, फल एवं वरदमुद्रा हैं।[३] श्वेतांबर ग्रन्थों के विवरण सामान्यतः उत्तर भारतीय श्वेतांबर परम्परा के विवरण से मेल खाते हैं।

मूर्ति-परम्परा

पद्मावती की प्राचीनतम मूर्तियां नवीं-दसवीं शती ई० की हैं। ये मूर्तियां ओसिया के महावीर एवं ग्यारसपुर के मालादेवी मन्दिरों से मिली हैं। इनमें पद्मावती द्विभुजा है।[४] सभी क्षेत्रों की मूर्तियों में सर्पफणों के छत्र से युक्त पद्मावती का वाहन सामान्यतः कुक्कुट-सर्प (या कुक्कुट)[५] है और उसके करों में सर्प, पाश, अंकुश एवं पद्म प्रदर्शित हैं।

गुजरात-राजस्थान (क) स्वतन्त्र मूर्तियां—इस क्षेत्र में ल० नवीं शती ई० में पद्मावती की स्वतन्त्र मूर्तियों का उत्कीर्णन प्रारम्भ हुआ।[६] इस क्षेत्र की स्वतन्त्र मूर्तियां (९वीं-१३वीं शती ई०) ओसिया (महावीर मन्दिर), झालावाड़ (झालरापाटन), कुम्भारिया (नेमिनाथ मन्दिर), और आबू (विमलवसही एवं लूणवसही) से मिली हैं। ओसिया के महावीर मन्दिर की मूर्ति उत्तर भारत में पद्मावती की प्राचीनतम मूर्ति है जो मन्दिर के मुखमण्डप के उत्तरी छज्जे पर उत्कीर्ण है। कुक्कुटसर्प पर विराजमान द्विभुजा पद्मावती के दाहिने हाथ में सर्प और बायें में फल हैं। अष्टभुजा पद्मावती की एक मूर्ति झालरापाटन (झालावाड़, राजस्थान) के जैन मन्दिर (१०४३ ई०) के दक्षिणी अधिष्ठान पर है। ललितमुद्रा में विराजमान यक्षी के मस्तक पर सात सर्पफणों का छत्र और करों में वरदमुद्रा, वज्र, पद्मकलिका, कृपाण, खेटक, पद्म-कलिका, घण्टा एवं फल प्रदर्शित हैं।

बारहवीं शती ई० की दो चतुर्भुज मूर्तियां कुम्भारिया के नेमिनाथ मन्दिर की पश्चिमी देवकुलिका की बाह्य भित्ति पर हैं (चित्र ५६)। दोनों उदाहरणों में पद्मावती ललितमुद्रा में भद्रासन पर विराजमान है और उसके आसन के समक्ष कुक्कुट-सर्प उत्कीर्ण है। एक मूर्ति में यक्षी के मस्तक पर पांच सर्पफणों का छत्र भी प्रदर्शित है। हाथों में वरदाक्ष, अंकुश, पाश एवं फल हैं। सर्पफण से रहित दूसरी मूर्ति में यक्षी के करों में पद्मकलिका, पाश, अंकुश एवं फल हैं। विमलवसही के गूढ़मण्डप के दक्षिणी द्वार पर भी चतुर्भुजा पद्मावती की एक मूर्ति (१२ वीं शती ई०) उत्कीर्ण है जिसमें कुक्कुट-सर्प पर आरूढ़ पद्मावती सनालपद्म, पाश, अंकुश (?) एवं फल से युक्त है। उपर्युक्त तीनों ही मूर्तियों के निरूपण में

---

१ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २१०

२ पाशफलवरदगजवशकरणकरा पद्मविष्टरा पद्मा।
　सा मां रक्षतु देवी त्रिलोचना रक्तपुष्पाभा॥
　तोतला त्वरिता नित्या त्रिपुरा कामसाधिनी।
　देव्या नामानि पद्मायास्तथा त्रिपुरभैरवी॥ भैरवपद्मावतीकल्प (दीपार्णव से उद्धृत, पृ० ४३९)

३ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २१०

४ पद्मावती की बहुभुजी मूर्तियां देवगढ़, शहडोल, बारभुजी गुफा एवं झालरापाटन से मिली हैं।

५ कभी-कभी यक्षी को सर्प, पद्म और मकर पर भी आरूढ़ दिखाया गया है।

६ इस क्षेत्र में पद्मावती की स्वतन्त्र मूर्तियां केवल श्वेतांबर स्थलों से मिली हैं।

श्वेतांबर परम्परा का निर्वाह किया गया है। लूणवसही के गूढ़मण्डप के दक्षिणी प्रवेश-द्वार के दहलीज पर चतुर्भुजा पद्मावती की एक छोटी मूर्ति उत्कीर्ण है। यक्षी का वाहन मकर है और उसके हाथों में वरदाक्ष, सर्प, पाश एवं फल प्रदर्शित हैं। मकर वाहन का प्रदर्शन परम्परासम्मत नहीं है, पर हाथों में सर्प एवं पाश के प्रदर्शन के आधार पर देवी की पद्मावती से पहचान की जा सकती है। फिर दहलीज के दूसरे छोर पर पार्श्व यक्ष की मूर्ति भी उत्कीर्ण है। मकर वाहन का प्रदर्शन सम्भवतः पार्श्व यक्ष के कूर्म वाहन से प्रभावित है।

विमलवसही की देवकुलिका ४१ के मण्डप के वितान पर षोडशभुजा पद्मावती की एक मूर्ति है।[1] सप्तसर्पफणों के छत्र से युक्त एवं ललितमुद्रा में विराजमान देवी के आसन के समक्ष नाग (वाहन) उत्कीर्ण है। देवी के पार्श्वों में नागी की दो आकृतियां अंकित हैं। देवी के दो ऊपरी हाथों में सर्प है, दो हाथ पार्श्व की नागी मूर्तियों के मस्तक पर हैं तथा शेष में वरदमुद्रा, त्रिशूल-घण्टा, खड्ग, पाश, त्रिशूल, चक्र (छल्ला), खेटक, दण्ड, पद्मकलिका, वज्र, सर्प एवं जलपात्र प्रदर्शित हैं।

(ख) जिन-संयुक्त मूर्तियां—इस क्षेत्र की पार्श्वनाथ की मूर्तियों में यक्षी के रूप में अम्बिका निरूपित है। केवल विमलवसही (देवकुलिका ४) एवं ओसिया (बलानक) की पार्श्वनाथ की दो मूर्तियों (११ वीं-१२ वीं शती ई०) में ही पारम्परिक यक्षी आमूर्तित है। विमलवसही की मूर्ति मे तीन सर्पफणों के छत्र से युक्त चतुर्भुजा यक्षी कुक्कुट-सर्प पर आरूढ़ है और हाथों में पद्म, पाश, अंकुश एवं फल धारण किये है। ओसिया की मूर्ति में सात सर्पफणों के छत्र से युक्त यक्षी का वाहन सर्प है। द्विभुजा यक्षी की अवशिष्ट एक भुजा में खड्ग है।

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश (क) स्वतन्त्र मूर्तियां—इस क्षेत्र की प्राचीनतम मूर्ति देवगढ़ के मन्दिर १२ (८६२ ई०) पर है। पार्श्वनाथ के साथ 'पद्मावती' नाम की चतुर्भुजा यक्षी आमूर्तित है जिसके हाथों में वरदमुद्रा, चक्राकार सनालपद्म, लेखनी पट्ट (या फलक) एवं कलश प्रदर्शित हैं।[2] यक्षी का निरूपण परम्परासम्मत नहीं है। दसवीं शती ई० की चार द्विभुजी मूर्तियां ग्यारसपुर के मालादेवी मन्दिर से मिली हैं।[3] तीन मूर्तियां मण्डप के जंघा पर उत्कीर्ण हैं। इनमें त्रिभंग में खड़ी यक्षी के मस्तक पर सर्पफणों के छत्र प्रदर्शित हैं। उत्तरी और दक्षिणी जंघा की दो मूर्तियों में यक्षी के करों में व्याख्यान-मुद्रा-अक्षमाला एवं जलपात्र हैं। पश्चिमी जंघा की मूर्ति में दाहिने हाथ में पद्म है और बायां एक गदा पर स्थित है।[4] ज्ञातव्य है कि देवगढ़ एवं खजुराहो की ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० की मूर्तियों में भी पद्मावती के साथ पद्म एवं गदा प्रदर्शित हैं। मालादेवी मन्दिर के गर्भगृह की पश्चिमी भित्ति की मूर्ति में तीन सर्पफणों के छत्र से युक्त यक्षी के अवशिष्ट दाहिने हाथ में पद्म है। ल० दसवीं शती ई० की एक चतुर्भुज मूर्ति त्रिपुरी के बालसागर सरोवर के मन्दिर में सुरक्षित है।[5] सात सर्पफणों के छत्र से युक्त पद्मवाहना पद्मावती के करों में अभयमुद्रा, सनालपद्म, सनालपद्म एवं कलश हैं। उपर्युक्त से स्पष्ट है कि दिगंबर स्थलों पर दसवीं शती ई० तक पद्मावती के साथ केवल सर्पफणों के छत्र (३, ५ या ७) एवं हाथ में पद्म का प्रदर्शन ही नियमित हो सका था। यक्षी के साथ कुक्कुट-सर्प (वाहन) एवं पाश और अंकुश का प्रदर्शन ग्यारहवीं शती ई० में प्रारम्भ हुआ।

ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० की दिगंबर परम्परा की कई मूर्तियां देवगढ़, खजुराहो, राज्य संग्रहालय, लखनऊ एवं शहडोल से ज्ञात हैं। इन स्थलों की मूर्तियों में पद्मावती के मस्तक पर सर्पफणों के छत्र और करों में पद्म, कलश, अंकुश,

---

१ देवी महाविद्या वैरोट्या भी हो सकती है। पद्मावती से पहचान के मुख्य आधार करों के आयुध एवं शीर्षभाग में सर्पफणों के छत्र के चित्रण हैं।

२ जि०इ०दे०, पृ० १०२, १०५, १०६

३ दिगंबर ग्रन्थों में द्विभुजा पद्मावती का अनुल्लेख है। पर दिगंबर स्थलों पर द्विभुजा पद्मावती का निरूपण लोकप्रिय था।

४ गदा का निचला भाग अंकुश की तरह निर्मित है।

५ शास्त्री, अजयमित्र, 'त्रिपुरी का जैन पुरातत्व', जैन मिलन, वर्ष १२, अं० २, पृ० ७१

पाश एवं पुस्तक का प्रदर्शन लोकप्रिय था। वाहन का चित्रण केवल खजुराहो और देवगढ़ में ही हुआ है। राज्य संग्रहालय, लखनऊ में पद्मावती की दो मूर्तियां हैं। इनमें पद्मावती चतुर्भुजा और ललितमुद्रा में विराजमान है। एक मूर्ति (जी ३१६, ११ वीं शती ई०) में सात सर्पफणों के छत्र से युक्त पद्मावती पद्म पर आसीन है और उसके तीन सुरक्षित हाथों में पद्म, पद्मकलिका एवं कलश हैं। उपासकों, मालाधरों एवं चामरधारिणी सेविकाओं से वेष्टित पद्मावती के शीर्षभाग में तीन सर्पफणों के छत्र से युक्त पार्श्वनाथ की छोटी मूर्ति उत्कीर्ण है। वाराणसी से मिली दूसरी मूर्ति (जी ७३) में पद्मावती पांच सर्पफणों के छत्र एवं हाथों में अभयमुद्रा, पद्मकलिका, पुस्तिका एवं कलश से युक्त है।

खजुराहो में चतुर्भुजा पद्मावती की तीन मूर्तियां (११ वीं शती ई०) हैं। ये सभी मूर्तियां उत्तरंगों पर उत्कीर्ण हैं। आदिनाथ मन्दिर एवं मन्दिर २२ की दो मूर्तियों में पद्मावती के मस्तक पर पांच सर्पफणों के छत्र प्रदर्शित हैं। दोनों उदाहरणों में वाहन सम्भवतः कुक्कुट है। आदिनाथ मन्दिर की मूर्ति में ललितमुद्रा में विराजमान पद्मावती के करों में अभयमुद्रा, पाश, पद्मकलिका एवं जलपात्र हैं। मन्दिर २२ की स्थानक मूर्ति में यक्षी के दो सुरक्षित हाथों में वरदमुद्रा एवं पद्म हैं। जार्डिन संग्रहालय, खजुराहो (१४६७) की तीसरी मूर्ति में ललितमुद्रा में विराजमान पद्मावती सात सर्पफणों के छत्र से युक्त है और उसका वाहन कुक्कुट है (चित्र ५७)। यक्षी के तीन अवशिष्ट करों में वरदमुद्रा, पाश एवं अंकुश प्रदर्शित हैं। अन्तिम मूर्ति के निरूपण में अपराजितपृच्छा की परम्परा का निर्वाह किया गया है।

देवगढ़ से पद्मावती की द्विभुजी, चतुर्भुजी एवं द्वादशभुजी मूर्तियां मिली हैं।[1] उल्लेखनीय है कि पद्मावती के निरूपण में सर्वाधिक स्वरूपगत वैविध्य देवगढ़ की मूर्तियों में ही प्राप्त होता है। चतुर्भुजी एवं द्वादशभुजी मूर्तियां ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० की और द्विभुजी मूर्तियां बारहवीं शती ई० की हैं। द्विभुजा पद्मावती की दो मूर्तियां हैं, जो क्रमशः मन्दिर १२ (दक्षिणी भाग) एवं १६ के मानस्तम्भों पर उत्कीर्ण हैं। दोनों उदाहरणों में यक्षी के मस्तक पर तीन सर्पफणों के छत्र हैं। एक मूर्ति में पद्मावती वरदमुद्रा एवं सनालपद्म और दूसरी में पुष्प एवं फल से युक्त है। पद्मावती की चतुर्भुजी मूर्तियां तीन हैं। इनमें ललितमुद्रा में विराजमान पद्मावती पांच सर्पफणों के छत्र से युक्त है। मन्दिर १ के मानस्तम्भ (११ वीं शती ई०) की मूर्ति में कुक्कुट-सर्प पर आरूढ़ यक्षी के तीन अवशिष्ट करों में धनुष, गदा एवं पाश प्रदर्शित हैं। मन्दिर के समीप के दो अन्य मानस्तम्भों (१२ वीं शती ई०) की मूर्तियों में पद्मावती पद्मासन पर आसीन है और उसके हाथों में वरदमुद्रा, पद्म, पद्म एवं जलपात्र हैं। एक उदाहरण में यक्षी के मस्तक के ऊपर पांच सर्पफणों के छत्र वाली जिन मूर्ति भी उत्कीर्ण है। द्वादशभुजा पद्मावती की मूर्ति मन्दिर ११ के समक्ष के मानस्तम्भ (१०५९ ई०) पर बनी है। ललितमुद्रा में आसीन पद्मावती का वाहन कुक्कुट-सर्प है। पांच सर्पफणों के छत्र से युक्त यक्षी के करों में वरदमुद्रा, बाण, अंकुश, सनालपद्म, शृंखला, दण्ड, छत्र, वज्र, सर्प, पाश, धनुष एवं मातुलिंग प्रदर्शित हैं। देवगढ़ की मूर्तियों के अध्ययन से स्पष्ट है कि वहां दिगंबर परम्परा के अनुरूप ही पद्मावती के साथ पद्म और कुक्कुट-सर्प दोनों को यक्षी के वाहन के रूप में प्रदर्शित किया गया है। पद्मावती के शीर्षभाग में सर्पफणों के छत्र (३ या ५) एवं करों में पद्म, गदा, पाश एवं अंकुश का प्रदर्शन भी लोकप्रिय था। यक्षी के आयुध सामान्यतः परम्परासम्मत हैं।

द्वादशभुजा पद्मावती की एक मूर्ति (११ वीं शती ई०) शहडोल (म० प्र०) से भी मिली है। यह मूर्ति सम्प्रति ठाकुर साहब संग्रह, शहडोल में है (चित्र ५५)।[2] पद्मावती के शीर्षभाग में सात सर्पफणों के छत्र से युक्त पार्श्वनाथ की मूर्ति उत्कीर्ण है। किरीटमुकुट एवं पांच सर्पफणों के छत्र से युक्त यक्षी पद्म पर ध्यानमुद्रा में विराजमान है। आसन के नीचे कूर्मवाहन अंकित है।[3] देवी के करों में वरदमुद्रा, खड्ग, परशु, बाण, वज्र, चक्र (छल्ला), फलक, गदा, अंकुश, धनुष, सर्प एवं पद्म प्रदर्शित हैं। पार्श्वों में दो नाग-नागी आकृतियां बनी हैं। मध्यप्रदेश के मालवा क्षेत्र से मिली ल० दसवीं-

---

१ द्विभुज एवं द्वादशभुज स्वरूपों में पद्मावती का अंकन परम्परासम्मत नहीं है।

२ अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, चित्र संग्रह ए ७.५२

३ कूर्मवाहन का प्रदर्शन परम्परा विरुद्ध और सम्भवतः धरण यक्ष के कूर्मवाहन से प्रभावित है।

ग्यारहवीं शती ई० की एक चतुर्भुज पद्मावती मूर्ति (?) ब्रिटिश संग्रहालय, लन्दन में है।[१] तीन सर्पफणों के छत्र वाली पद्मावती के हाथों में खड्ग, सर्प, खेटक और पद्म हैं। शीर्षभाग में छोटी जिन मूर्ति और चरणों के समीप सर्पवाहन तथा दो सेविकाएं प्रदर्शित हैं।

(ख) जिन-संयुक्त मूर्तियां—पार्श्व (या धरण) यक्ष की मूर्तियों के अध्ययन के सन्दर्भ में हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं कि पार्श्वनाथ की मूर्तियों में यक्ष-यक्षी का अंकन नियमित नहीं था। अधिकांश उदाहरणों में यक्षी के स्थान पर पार्श्वनाथ के समीप सर्पफणों के छत्र से युक्त एक स्त्री आकृति (पद्मावती) उत्कीर्ण है जिसके हाथ में लम्बा छत्र है। पार्श्वनाथ की मूर्तियों में यक्षी सामान्यतः द्विभुजा और सामान्य लक्षणों वाली है। ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० की कुछ मूर्तियों में चतुर्भुजा यक्षी भी निरूपित है। जिन-संयुक्त मूर्तियों में पद्मावती के साथ वाहन नहीं उत्कीर्ण है। चतुर्भुज मूर्तियों में शीर्षभाग में सर्पफणों के छत्र और हाथ में पद्म प्रदर्शित हैं। यक्षी के साथ अन्य पारम्परिक आयुध (पाश एवं अंकुश) नहीं प्रदर्शित हैं।

जिन-संयुक्त मूर्तियों में सामान्य लक्षणों वाली द्विभुजा यक्षी के करों में अभयमुद्रा (या वरदमुद्रा या पद्म) एवं फल (या कलश) प्रदर्शित हैं। खजुराहो एवं देवगढ़ की कुछ मूर्तियों में सामान्य लक्षणों वाली यक्षी के मस्तक पर सर्पफणों के छत्र भी देखे जा सकते हैं। राज्य संग्रहालय, लखनऊ की पार्श्वनाथ की एक मूर्ति (जे ७९४, ११ वीं शती ई०) में पीठिका के मध्य में पांच सर्पफणों के छत्र वाली चतुर्भुजा पद्मावती निरूपित है। यक्षी के हाथों में अभयमुद्रा, पद्म, पद्म एवं कलश हैं। देवगढ़ के मन्दिर १२ के समीप की एक अरक्षित मूर्ति (११ वीं शती ई०) में तीन सर्पफणों के छत्र से युक्त चतुर्भुजा यक्षी के दो ही हाथों के आयुध-अभयमुद्रा एवं कलश-स्पष्ट हैं। खजुराहो के स्थानीय संग्रहालय की दो मूर्तियों (११ वीं शती ई०) में यक्षी चतुर्भुजा है। एक उदाहरण (के १००) में सर्पफणों से युक्त यक्षी के दो अवशिष्ट हाथों में अभयमुद्रा और पद्म हैं। दूसरी मूर्ति (के ६८) में पांच सर्पफणों के छत्रवाली यक्षी ध्यानमुद्रा में विराजमान है और उसके तीन सुरक्षित हाथों में अभयमुद्रा, सर्प एवं जलपात्र प्रदर्शित हैं।

बिहार-उड़ीसा-बंगाल—ल० नवीं-दसवीं शती ई० की एक पद्मावती मूर्ति (?) नालन्दा (मठ संख्या ९) से मिली है और सम्प्रति नालन्दा संग्रहालय में सुरक्षित है।[२] ललितमुद्रा में पद्म पर विराजमान चतुर्भुजा देवी के मस्तक पर पांच सर्पफणों का छत्र और करों में फल, खड्ग, परशु एवं चिनमुद्रा-पद्म प्रदर्शित हैं। उड़ीसा के नवमुनि एवं बारभुजी गुफाओं (११वीं-१२वीं शती ई०) में पद्मावती की दो मूर्तियां हैं। नवमुनि गुफा की मूर्ति में द्विभुजा यक्षी ललितमुद्रा में पद्म पर विराजमान है। जटामुकुट से शोभित यक्षी त्रिनेत्र है और उसके हाथों में अभयमुद्रा एवं पद्म प्रदर्शित हैं। यक्षी का निरूपण अपारम्परिक है। आसन के नीचे सम्भवतः कुक्कुट-सर्प उत्कीर्ण है।[3] बारभुजी गुफा की मूर्ति में पांच सर्पफणों के छत्र से युक्त पद्मावती अष्टभुजा है। पद्म पर विराजमान यक्षी के दक्षिण करों मे वरदमुद्रा, बाण, खड्ग, चक्र (?) एवं वाम में धनुष, खेटक, सनालपद्म, सनालपद्म प्रदर्शित हैं।[४] यक्षी की मुख्य विशेषताएं (पद्मवाहन, सर्पफणों का छत्र एवं हाथ में पद्म) परम्परासम्मत हैं।

दक्षिण भारत—पद्मावती दक्षिण भारत की तीन सर्वाधिक लोकप्रिय यक्षियों (अम्बिका, पद्मावती एवं ज्वालामालिनी) में एक है। कर्नाटक में पद्मावती सर्वाधिक लोकप्रिय थी।[५] कन्नड़ शोध संस्थान संग्रहालय की पार्श्वनाथ की मूर्ति में चतुर्भुजा पद्मावती पद्म, पाश, गदा (या अंकुश) एवं फल से युक्त है। संग्रहालय में चतुर्भुजा पद्मावती की ललितमुद्रा में आसीन दो स्वतन्त्र मूर्तियां भी सुरक्षित हैं। एक में (एम ८४) सर्पफण से मण्डित यक्षी का वाहन कुक्कुट-सर्प है। यक्षी के दो अवशिष्ट हाथों में पाश एवं फल हैं। दूसरी मूर्ति में पद्मावती पांच सर्पफणों के छत्र से शोभित है और उसके हाथों में

---

१ जै०क०स्था०, खं० ३, पृ० ५५३
२ स्ट०जै०आ०, पृ० १७
३ मित्रा, देबला, पू०नि०, पृ० १२९
४ वही, पृ० १३३
५ देसाई, पी० बी०, पूर्वनि०, पृ० १०, १६३

फल, अंकुश, पाश एवं पद्म प्रदर्शित हैं। यक्षी का वाहन हंस है।[१] बादामी की गुफा ५ की दीवार की मूर्ति में चतुर्भुजा पद्मावती (?) का वाहन सम्भवतः हंस (या क्रौंच) है। यक्षी के करों में अभयमुद्रा, अंकुश, पाश एवं फल हैं।[२] कलुगुमलाई (तमिलनाडु) से भी चतुर्भुजा पद्मावती की एक मूर्ति (१०वीं-११वीं शती ई०) मिली है। इसमें सर्पफणों के छत्र से युक्त यक्षी के करों में फल, सर्प, अंकुश एवं पाश प्रदर्शित हैं।[३] कर्नाटक से मिली पद्मावती की तीन चतुर्भुजी मूर्तियां प्रिंस ऑव वेल्स संग्रहालय, बम्बई में सुरक्षित हैं।[४] तीनों ही उदाहरणों में एक सर्पफण से शोभित पद्मावती ललितमुद्रा में विराजमान है। पहली मूर्ति में यक्षी की तीन अवशिष्ट भुजाओं में पद्म, पाश एवं अंकुश हैं। दूसरी मूर्ति की एक अवशिष्ट भुजा में अंकुश है। तीसरी मूर्ति में आसन के नीचे सम्भवतः कुक्कुट (या शुक) उत्कीर्ण है। यक्षी वरदमुद्रा, अंकुश, पाश एवं सर्प से युक्त है।

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि दक्षिण भारत में पद्मावती के साथ पाश, अंकुश एवं पद्म का प्रदर्शन लोकप्रिय था। शीर्षभाग में सर्पफणों के छत्र एवं वाहन के रूप में कुक्कुट-सर्प (या कुक्कुट) का अंकन विशेष लोकप्रिय नहीं था। कुछ में हंसवाहन भी उत्कीर्ण है।

विश्लेषण

विभिन्न क्षेत्रों की मूर्तियों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि अम्बिका एवं चक्रेश्वरी के बाद उत्तर भारत में पद्मावती की ही सर्वाधिक मूर्तियां उत्कीर्ण हुईं। पद्मावती की स्वतन्त्र मूर्तियों का निरूपण ल० नवीं शती ई० में और जिन-संयुक्त मूर्तियों का चित्रण ल० दसवीं शती ई० में आरम्भ हुआ। पद्मावती के साथ वाहन (कुक्कुट-सर्प) और हाथ में सर्प का प्रदर्शन ल० नवीं शती ई० में ही प्रारम्भ हो गया।[५] दसवीं शती ई० तक यक्षी का द्विभुज रूप में निरूपण ही लोकप्रिय था।[६] ग्यारहवीं शती ई० में यक्षी के चतुर्भुज रूप का निरूपण भी प्रारम्भ हुआ। जिन-संयुक्त मूर्तियों में पद्मावती केवल द्विभुजा और चतुर्भुजा है, पर स्वतन्त्र मूर्तियों में द्विभुज और चतुर्भुज के साथ-साथ पद्मावती का द्वादशभुज रूप भी मिलता है। जिन-संयुक्त मूर्तियों में पद्मावती के साथ वाहन एवं विशिष्ट आयुध (पद्म, सर्प,[७] पाश, अंकुश) केवल कुछ ही उदाहरणों में प्रदर्शित हैं। दिगंबर स्थलों पर पार्श्वनाथ के साथ या तो पद्मावती[८] या फिर सामान्य लक्षणों वाली यक्षी निरूपित है। पर श्वेतांबर स्थलों पर दो उदाहरणों के अतिरिक्त अन्य सभी में यक्षी के रूप में अम्बिका आमूर्तित है। विमलवसही (देवकुलिका ४) एवं ओसिया (महावीर मन्दिर का बलानक) की दो श्वेतांबर मूर्तियों में सर्पफणों के छत्रों वाली पारम्परिक यक्षी निरूपित है।

श्वेतांबर स्थलों पर पद्मावती की केवल द्विभुजी एवं चतुर्भुजी मूर्तियां उत्कीर्ण हुईं पर दिगंबर स्थलों पर द्विभुजी एवं चतुर्भुजी के साथ ही द्वादशभुजी मूर्तियां भी बनीं। श्वेतांबर स्थलों पर दिगंबर स्थलों की अपेक्षा वाहन एवं मुख्य आयुधों (पद्म, पाश, अंकुश) के सन्दर्भ में परम्परा का अधिक पालन किया गया है। तीन, पांच या सात सर्पफणों से शोभित यक्षी के साथ वाहन सामान्यतः कुक्कुट-सर्प (या कुक्कुट) है।[९] दिगंबर स्थलों पर परम्परा के अनुरूप यक्षी के दो हाथों में पद्म का प्रदर्शन विशेष लोकप्रिय था।

---

१ अन्निगेरी, ए० एम०, पू०नि०, पृ० १९, २९
२ संकलिया, एच० डी०, पू०नि०, पृ० १६१
३ देसाई, पी० बी०, पू०नि०, पृ० ६५
४ संकलिया, एच० डी०, पू०नि०, पृ० १५८–५९
५ ओसिया के महावीर मन्दिर की मूर्ति में ये विशेषताएं प्रदर्शित हैं।
६ केवल देवगढ़ (मन्दिर १२) की ही मूर्ति में पद्मावती चतुर्भुजा है।
७ ग्रन्थ में पद्मावती की भुजा में सर्प के प्रदर्शन के अनुल्लेख के बाद भी मूर्तियों में सर्प का चित्रण लोकप्रिय था।
८ पद्मावती के साथ वाहन एवं अन्य पारम्परिक विशेषताएं सामान्यतः नहीं प्रदर्शित हैं।
९ खजुराहो

कुछ स्थलों की मूर्तियों में पद्म, नाग, कूर्म और मकर को भी पद्मावती के वाहन के रूप में दरशाया गया है।[1] परम्परा के अनुरूप यक्षी के करों में पाश एवं अंकुश का प्रदर्शन मुख्यतः देवगढ़, खजुराहो, विमलवसही, कुम्भारिया एवं कुछ अन्य स्थलों की ही मूर्तियों में प्राप्त होता है। नागराज धरण से सम्बन्धित होने के कारण ही देवगढ़, खजुराहो, शहडोल, ओसिया, विमलवसही एवं लूणवसही की मूर्तियों में पद्मावती के हाथ में सर्प प्रदर्शित किया गया।[2]

(२४) मातंग यक्ष

शास्त्रीय परम्परा

मातंग जिन महावीर का यक्ष है। दोनों परम्पराओं में मातंग को द्विभुज और गजारूढ़ बताया गया है। दिगंबर परम्परा में मातंग के मस्तक पर धर्मचक्र के प्रदर्शन का भी निर्देश है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका में गजारूढ़ मातंग के हाथों में नकुल एवं बीजपूरक वर्णित हैं।[3] अन्य ग्रन्थों में भी इन्हीं लक्षणों के उल्लेख हैं।[4]

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह में द्विभुज मातंग के मस्तक पर धर्मचक्र के चित्रण का निर्देश है और उसका वाहन मुद्ग[5] बताया गया है।[6] यक्ष के करों में वरदमुद्रा एवं मातुलिंग वर्णित हैं।[7] समान आयुधों का उल्लेख करने वाले अन्य सभी ग्रन्थों में मातंग का वाहन गज है।[8]

यक्ष का गजवाहन उसके मातंग (गज) नाम से प्रभावित हो सकता है। मस्तक पर धर्मचक्र का प्रदर्शन यक्ष के महावीर द्वारा पुनः स्थापित एवं व्यवस्थित जैन धर्म एवं संघ के रक्षक होने का सूचक हो सकता है।[9] गजवाहन एवं हाथ में नकुल का प्रदर्शन हिन्दू कुबेर का भी प्रभाव हो सकता है। एक ग्रन्थ में मातंग को यक्षराज भी कहा गया है, जो कुबेर का ही दूसरा नाम है।[10]

---

१ विमलवसही, राज्य संग्रहालय, लखनऊ (जी ३१६), लूणवसही, त्रिपुरी, देवगढ़, शहडोल एवं बारभुजी गुफा

२ झालरापाटन एवं बारभुजी गुफा की मूर्तियों में भुजा में सर्प नहीं प्रदर्शित है।

३ मातंगयक्षं श्यामवर्णं गजवाहनं द्विभुजं दक्षिणे नकुलं वामे बीजपूरकमिति। निर्वाणकलिका १८.२४

४ त्रि०श०पु०च० १०.५.११; पद्मानन्दमहाकाव्यः परिशिष्ट—महावीर २४७; मन्त्राधिराजकल्प ३.४८; आचारदिनकर ३४, पृ० १७५; देवतामूर्तिप्रकरण ७.६४; रूपमण्डन ६.२२

५ एक प्रकार का समुद्री पक्षी या मूंगा।

६ बी० सी० भट्टाचार्य ने प्रतिष्ठासारसंग्रह की आरा की पाण्डुलिपि के आधार पर गजवाहन का उल्लेख किया है। द्रष्टव्य, भट्टाचार्य, बी० सी०, पू०लि, पृ० ११८

७ वर्धमान जिनेन्द्रस्य यक्षो मातंगसंज्ञकः।
द्विभुजो मुद्गवर्णोसौ वरदो मुद्गवाहनः॥
मातुलिंगं करे धत्ते धर्मचक्रं च मस्तके। प्रतिष्ठासारसंग्रह ५.७२–७३

८ मुद्गप्रभो मूर्धनि धर्मचक्रं बिभ्रत्फलं वामकरेथयच्छन्।
वरं करिस्थो हरिकेतुभक्तो मातंग यक्षोंगतु तुष्टिमिष्टया॥ प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१५२
द्रष्टव्य, प्रतिष्ठातिलकम् ७.२४, पृ० ३३८, अपराजितपृच्छा २२१.५६

९ भट्टाचार्य, बी० सी०, पू०लि०, पृ० ११९

१० मातंगो यक्षराट् च द्विरदकृतगतिः श्यामरुक् रातु सौख्यम्॥
वर्द्धमानद्वात्रिंशिका (चतुरविजयमुनि प्रणीत)।
(जैन स्तोत्र सन्दोह, सं० अमरविजय मुनि, खं० १, अहमदाबाद, १९३२, पृ० ६६ से उद्धृत)।

दक्षिण भारतीय परम्परा—उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा के विपरीत दक्षिण भारतीय दिगंबर ग्रन्थ में यक्ष को चतुर्भुज बताया गया है। गजारूढ़ यक्ष के ऊपरी हाथ आराधना की मुद्रा में मुकुट के समीप और नीचे के हाथ अभय एवं एक अन्य मुद्रा में वर्णित हैं। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में मातंग को षड्भुज और धर्मचक्र, कशा, पाश, वज्र, दण्ड एवं वरदमुद्रा से युक्त कहा गया है; वाहन का अनुल्लेख है। यक्ष-यक्षी-लक्षण में उत्तर भारतीय दिगंबर परम्परा के अनुरूप गजारूढ़ मातंग द्विभुज है। शीर्षभाग में धर्मचक्र से युक्त यक्ष के हाथों में वरदमुद्रा एवं मातुलिंग का उल्लेख है।[1]

मूर्ति-परम्परा

मातंग की एक भी स्वतन्त्र मूर्ति नहीं मिली है। जिन-संयुक्त मूर्तियों में भी यक्ष के साथ पारम्परिक विशेषताएं नहीं प्रदर्शित हैं। महावीर की मूर्तियों में द्विभुज यक्ष अधिकांशतः सामान्य लक्षणों वाला है। केवल खजुराहो एवं देवगढ़ की कुछ दिगंबर मूर्तियों में ही चतुर्भुज एवं स्वतन्त्र लक्षणों वाला यक्ष निरूपित है। महावीर की मूर्तियों में यक्ष-यक्षी का निरूपण दसवीं शती ई० में प्रारम्भ हुआ। राज्य संग्रहालय, लखनऊ, ग्यारसपुर (मालादेवी मन्दिर), खजुराहो, देवगढ़ एवं अन्य स्थलों की मूर्तियों में सामान्य लक्षणों वाले द्विभुज यक्ष के करों में अभयमुद्रा (या गदा) एवं धन का थैला (या फल या कलश) प्रदर्शित हैं।[2] गुजरात और राजस्थान की श्वेतांबर मूर्तियों में सर्वानुभूति यक्ष निरूपित है। कुम्भारिया के शान्तिनाथ मन्दिर (११ वीं शती ई०) की भ्रमिका के वितान पर महावीर के जीवनदृश्यों में उनका यक्ष-यक्षी युगल भी आमूर्तित है। चतुर्भुज यक्ष का वाहन गज है और उसके करों में वरदमुद्रा, पुस्तक, छत्रपद्म एवं जलपात्र प्रदर्शित हैं। यह ब्रह्मशान्ति यक्ष की मूर्ति है जिसे महावीर के यक्ष के रूप में निरूपित किया गया है।

दिगंबर स्थलों की कुछ मूर्तियों में महावीर के साथ स्वतन्त्र लक्षणों वाला यक्ष भी आमूर्तित है। देवगढ़ के मन्दिर ११ की एक मूर्ति (१०४८ ई०) में चतुर्भुज यक्ष के तीन अवशिष्ट करों में अभयमुद्रा, पद्म एवं फल हैं। खजुराहो के मन्दिर २ की मूर्ति (१०९२ ई०) में चतुर्भुज यक्ष का वाहन सम्भवतः सिंह है और उसके हाथों में धन का थैला, शूल, पद्म (?) एवं दण्ड हैं। खजुराहो के मन्दिर २१ की दीवार की मूर्ति (के २८/१, ११वीं शती ई०) में द्विभुज यक्ष का वाहन अज है। यक्ष के दक्षिण कर में शक्ति है और बायां हाथ अज के शृंग पर स्थित है। खजुराहो के स्थानीय संग्रहालय (के १७, ११वीं शती ई०) की एक मूर्ति में चतुर्भुज यक्ष का वाहन सम्भवतः सिंह है और उसके तीन सुरक्षित हाथों में गदा, पद्म एवं धन का थैला हैं। भरतपुर (राजस्थान) से मिली और सम्प्रति राजपूताना संग्रहालय, अजमेर (२७९) में सुरक्षित मूर्ति (१००४ ई०) में द्विभुज यक्ष का वाहन गज और एक अवशिष्ट भुजा में धन का थैला हैं। उपर्युक्त से स्पष्ट है कि दिगंबर स्थलों पर यक्ष का कोई स्वतन्त्र रूप नियत नहीं हो सका था।

दक्षिण भारत—बादामी (कर्नाटक) की गुफा ४ की ल० सातवीं शती ई० की दो महावीर मूर्तियों में गजारूढ़ यक्ष चतुर्भुज है और उसके करों में अभयमुद्रा, गदा, पाश एवं खड्ग प्रदर्शित हैं।[3] एलोरा, अकोला एवं हरीदास स्वाली संग्रह की महावीर मूर्तियों में सर्वानुभूति यक्ष निरूपित है।[4]

---

१ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि, पृ० २११

२ खजुराहो के पार्श्वनाथ मन्दिर के गर्भगृह की भित्ति की मूर्ति में यक्ष के दोनों हाथों में फल हैं।

३ अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, वाराणसी, चित्र संग्रह ए २१–६०, ए २१–६१

४ शाह, यू० पी०, 'जैन ब्रोन्जेज इन हरीदास स्वालीज कलेक्शन', बु०प्रि०वे०म्यू०वे०इं०, अं० ९, १९६४–६६, पृ० ४७–४९; डगलस, बी०, 'ए जैन ब्रोन्ज फ्राम दि डेकन,' ओ० आर्ट, खं० ५, अं० १, पृ० १६२–६५

(२४) सिद्धायिका (या सिद्धायिनी) यक्षी

शास्त्रीय परम्परा

सिद्धायिका (या सिद्धायिनी) जिन महावीर की यक्षी है। सिद्धायिका जैन देवकुल की चार प्रमुख यक्षियों (चक्रेश्वरी, अम्बिका, पद्मावती, सिद्धायिका) में एक है।[1] श्वेतांबर परम्परा में चतुर्भुजा यक्षी का वाहन सिंह (या गज) और दिगंबर परम्परा में द्विभुजा यक्षी का वाहन सिंह (या भद्रासन) बताया गया है।

श्वेतांबर परम्परा—निर्वाणकलिका में सिंहवाहना सिद्धायिका के दक्षिण करों में पुस्तक एवं अभयमुद्रा और वाम में मातुलिंग एवं बाण उल्लिखित हैं।[2] कुछ ग्रन्थों में बाण के स्थान पर वीणा का उल्लेख है।[3] पद्मानन्दमहाकाव्य में यक्षी को गजवाहना बताया गया है।[4] आचारदिनकर मे बायें हाथों में मातुलिंग एवं वीणा (या बाण) के स्थान पर पाश एवं पद्म के प्रदर्शन का निर्देश है।[5] मन्त्राधिराजकल्प में सिद्धायिका के षड्भुज रूप का ध्यान किया गया है। ग्रन्थ के अनुसार यक्षी करों में पुस्तक, अभयमुद्रा, वरदमुद्रा, खरायुध, वीणा एवं फल धारण किये है।[6]

दिगंबर परम्परा—प्रतिष्ठासारसंग्रह में भद्रासन पर विराजमान द्विभुजा सिद्धायिनी के करों में वरदमुद्रा और पुस्तक का वर्णन है।[7] प्रतिष्ठासारोद्धार मे भद्रासन पर विराजमान यक्षी का वाहन सिंह बताया गया है।[8] अपराजितपृच्छा में वरदमुद्रा के स्थान पर अभयमुद्रा का उल्लेख है।[9] दिगंबर परम्परा के एक तान्त्रिक ग्रन्थ विद्यानुशासन में उल्लेख है

---

१ रूपमण्डन ६.२५–२६

२ सिद्धायिकां हरितवर्णां सिंहवाहनां चतुर्भुजां पुस्तकाभययुक्तदक्षिणकरां मातुलिंगबाणान्वितवामहस्तां चेति।
निर्वाणकलिका १८.२४; द्रष्टव्य, देवतामूर्तिप्रकरण ७.६५; रूपमण्डन ६.२३

३ समातुलिंगवल्लक्यौ वामबाहू च बिभ्रती।
पुस्तकाभयदौ चोभौ दधाना दक्षिणौभुजौ ॥ त्रि०श०पु०च० १०.५.१२–१३
द्रष्टव्य, प्रवचनसारोद्धार २४, पृ० ९४; पद्मानन्दमहाकाव्यः परिशिष्ट—महावीर २४८–४९। देवतामूर्तिप्रकरण में बाण का ही उल्लेख है।

४ पद्मानन्दमहाकाव्यः परिशिष्ट—महावीर २४८–४९

५ ''''पाशाम्भोरुहराजिवामकरभाग सिद्धायिका'''' । आचारदिनकर ३४, पृ० १७८

६ सिद्धायिका नवतमालदलालिनीलरुक्—
पुस्तिकाभयकरा (ग्रा) नखरायुधांका।
वीणाफलाङ्कितभुजद्वितया हि
भव्यानव्याज्जिनेन्द्रपदपङ्कजबद्धभक्तिः ॥ मन्त्राधिराजकल्प ३.६६

७ सिद्धायिनी तथा देवी द्विभुजा कनकप्रभा।
वरदा पुस्तकं धत्ते सुभद्रासनमाश्रिता ॥ प्रतिष्ठासारसंग्रह ५.७३–७४

८ सिद्धायिकां सप्तकरोच्छ्रितांगजिनाश्रयांपुस्तकदानहस्ताम्।
श्रितां सुभद्रासनमत्र यज्ञे हेमद्युतिं सिंहगतिं यजेहम्। प्रतिष्ठासारोद्धार ३.१७८
द्रष्टव्य, प्रतिष्ठातिलकम् ७.२४, पृ० ३४८

९ द्विभुजा कनकाभा च पुस्तकं चाभयं तथा।
सिद्धायिका तु कर्तव्या भद्रासनसमन्विता ॥ अपराजितपृच्छा २२१.३८

कि वर्धमान की यक्षी का नाम कामचण्डालिनी भी है[1] जो निर्वस्त्र और चतुर्भुजा है। विभिन्न आभूषणों से सज्जित देवी के केश मुक्त हैं और उसके हाथों में फल, कलश, दण्ड एवं डमरु दृष्टिगत होते हैं।

सिद्धायिका के निरूपण में पुस्तक एवं वीणा (श्वेतांबर) का प्रदर्शन सरस्वती (वाग्देवी) का प्रभाव प्रतीत होता है। यक्षी का सिंहवाहन सम्भवतः महावीर के सिंह लांछन से ग्रहण किया गया है।[2]

दक्षिण भारतीय परम्परा—दिगंबर ग्रन्थ में द्विभुजा यक्षी का वाहन हंस है और उसके हाथों में अभयमुद्रा एवं मुद्रा (वरद ?) हैं। अज्ञातनाम श्वेतांबर ग्रन्थ में यक्षी द्वादशभुजा है और उसका वाहन गरुड है। उसके करों में असि, फलक, पुष्प, शर, चाप, पाश, चक्र, दण्ड, अक्षसूत्र, वरदमुद्रा, नीलोत्पल एवं अभयमुद्रा वर्णित हैं। यक्ष-यक्षी-लक्षण में यक्षी को द्विभुजा बताया गया है, पर आयुधों का अनुल्लेख है।[3]

मूर्ति-परम्परा

अम्बिका, चक्रेश्वरी एवं पद्मावती की तुलना में सिद्धायिका की स्वतन्त्र मूर्तियों की संख्या नगण्य है। मूर्त अंकनों में यक्षी का पारम्परिक और स्वतन्त्र स्वरूप दसवीं-ग्यारहवीं शती ई० में अभिव्यक्त हुआ। जिन-संयुक्त मूर्तियों में यक्षी अधिकांशतः सामान्य लक्षणों वाली है। राजपूताना संग्रहालय, अजमेर (२७९), कुम्भारिया (शान्तिनाथ मन्दिर), ग्यारसपुर (मालादेवी मन्दिर), खजुराहो एवं देवगढ़ की कुछ महावीर मूर्तियों में स्वतन्त्र लक्षणों वाली यक्षी आमूर्तित है।

गुजरात-राजस्थान (क) स्वतन्त्र मूर्तियां—यू० पी० शाह ने श्वेतांबर स्थलों से प्राप्त चतुर्भुजा सिद्धायिका की तीन स्वतन्त्र मूर्तियों (१२ वीं शती ई०) का उल्लेख किया है।[4] सभी उदाहरणों में श्वेतांबर परम्परा के अनुरूप सिंह-वाहना सिद्धायिका पुस्तक एवं वीणा से युक्त है। विमलवसही के रंगमण्डप के स्तम्भ की मूर्ति में सिंहवाहना यक्षी त्रिभंग में खड़ी है। यक्षी के तीन अवशिष्ट करों में वरदमुद्रा, पुस्तक एवं वीणा हैं। दूसरी मूर्ति कैम्बे के मन्दिर से मिली है। ललितमुद्रा में विराजमान सिंहवाहना यक्षी के हाथों में अभयमुद्रा, पुस्तक, वीणा एवं फल प्रदर्शित हैं। समान विवरणों वाली तीसरी मूर्ति प्रभासपाटण से प्राप्त हुई है।

(ख) जिन-संयुक्त मूर्तियां—इस क्षेत्र की दो महावीर मूर्तियों के अतिरिक्त अन्य सभी में यक्षी के रूप में अम्बिका निरूपित है। राजपूताना संग्रहालय, अजमेर की मूर्ति (२७९) में द्विभुजा यक्षी का वाहन सिंह है और उसकी एक सुरक्षित भुजा में खड्ग प्रदर्शित है। यहां उल्लेखनीय है कि दिगंबर परम्परा के विपरीत सिंहवाहना सिद्धायिका के हाथ में खड्ग का प्रदर्शन खजुराहो एवं देवगढ़ की दिगंबर मूर्तियों में भी प्राप्त होता है। कुम्भारिया के शान्तिनाथ मन्दिर के वितान की मूर्ति में पक्षीवाहन वाली यक्षी चतुर्भुजा है और उसके हाथों में वरदमुद्रा, सनालपद्म, सनालपद्म एवं फल प्रदर्शित हैं। यक्षी का निरूपण निर्वाणी यक्षी या शान्तिदेवी से प्रभावित है।

---

१ वर्द्धमान जिनेन्द्रस्य यक्षी सिद्धायिका मता।
तद्देव्यपरनाम्ना च कामचण्डालिसंज्ञका॥
भूषिताभरणैः सर्वैर्मुक्तकेशा दिगंबरी।
पातु मां कामचण्डाली कृष्णवर्णा चतुर्भुजा॥
फलकांचनकलशकरा शाल्मलिदण्डोप्यडमरुयुग्मोपेता।
जपत (?) त्रिभुवनवंद्या वस्या जगति श्रीकामचण्डाली॥ विद्यानुशासन। शाह, यू० पी०, 'यक्षिणी ऑव दि ट्वेन्टी-फोर्थ जिन महावीर', ज०ओ०इ०, खं० २२, अं० १–२, पृ० ७७

२ भट्टाचार्य, बी० सी०, पू०नि०, पृ० १४६–४७; विस्तार के लिए द्रष्टव्य, तिवारी, एम० एन० पी०, 'दि आइ-कानोग्राफी ऑव यक्षी सिद्धायिका', ज०ए०सो०, खं० १५, अं० १–४, पृ० ९७–१०३

३ रामचन्द्रन, टी० एन०, पू०नि०, पृ० २११–१२ ४ शाह, यू० पी०, पू०नि०, पृ० ७१

उत्तरप्रदेश-मध्यप्रदेश—(क) **स्वतन्त्र मूर्तियां**—इस क्षेत्र से यक्षी की तीन मूर्तियां मिली हैं।[1] देवगढ़ के मन्दिर १२ (८६२ ई०) के सामूहिक चित्रण में वर्धमान के साथ 'अपराजिता' नाम की सामान्य लक्षणों वाली द्विभुजा यक्षी आमूर्तित है। यक्षी का दाहिना हाथ जानु पर है और बायें में चामर या पद्म है।[2] खजुराहो के मन्दिर २४ के उत्तरंग (११ वीं शती ई०) पर चतुर्भुजा यक्षी ललितमुद्रा में आसीन है। सिंहवाहना यक्षी के करों में वरदमुद्रा, खड्ग, खेटक एवं जलपात्र हैं। बिल्कुल समान लक्षणों वाली दूसरी मूर्ति देवगढ़ के मन्दिर ५ के उत्तरंग (११ वीं शती ई०) पर उत्कीर्ण है। उपर्युक्त दोनों मूर्तियों में यक्षी का चतुर्भुज होना और उसके करों में खड्ग एवं खेटक का प्रदर्शन दिगंबर परम्परा के विरुद्ध है। सिंहवाहना यक्षी के साथ खड्ग एवं खेटक का प्रदर्शन १६ वीं जैन महाविद्या महामानसी का भी प्रभाव हो सकता है।[3]

(ख) **जिन-संयुक्त मूर्तियां**—इस क्षेत्र में महावीर की मूर्तियों में ल० दसवीं शती ई० में यक्ष-यक्षी का अंकन प्रारम्भ हुआ। अधिकांश उदाहरणों में सामान्य लक्षणों वाली द्विभुजा यक्षी अभयमुद्रा (या पुष्प) एवं फल (या कलश) से युक्त है। मालादेवी मन्दिर (ग्यारसपुर, म० प्र०) की महावीर मूर्ति (१० वीं शती ई०) में द्विभुजा यक्षी के दोनों हाथों में वीणा है।[4] देवगढ़ की छह महावीर मूर्तियों में सामान्य लक्षणों वाली द्विभुजा यक्षी अभयमुद्रा (पुष्प) एवं कलश (या फल) से युक्त है। साहू जैन संग्रहालय, देवगढ़ के चौबीसी जिन पट्ट (१२ वीं शती ई०) की महावीर मूर्ति में द्विभुजा यक्षी अभय-मुद्रा एवं पुस्तक से युक्त है। पुस्तक का प्रदर्शन दिगंबर परम्परा का पालन है। देवगढ़ के मन्दिर १ की मूर्ति (१० वीं शती ई०) में चतुर्भुजा यक्षी के करों में अभयमुद्रा, पद्मकलिका, पद्मकलिका एवं फल प्रदर्शित हैं। देवगढ़ के मन्दिर ११ की मूर्ति (१०४८ ई०) में द्विभुजा यक्षी पद्मावती एवं अम्बिका की विशेषताओं से युक्त है। तीन सर्पफणों के छत्र वाली यक्षी के हाथों में फल एवं बालक हैं। उपर्युक्त से स्पष्ट है कि देवगढ़ में सिद्धायिका का कोई स्वतन्त्र स्वरूप नियत नहीं हुआ।

खजुराहो की तीन महावीर मूर्तियों में द्विभुजा यक्षी अभयमुद्रा एवं फल (या पद्म) से युक्त है। खजुराहो के मन्दिर २ की मूर्ति में सिंहवाहना यक्षी चतुर्भुजा है और उसके करों में फल, चक्र, पद्म एवं शंख स्थित हैं। मन्दिर २१ की दीवार की मूर्ति में भी सिंहवाहना यक्षी चतुर्भुजा है और उसके हाथों में वरदमुद्रा, खड्ग, चक्र एवं फल हैं। खजुराहो के स्थानीय संग्रहालय की तीसरी मूर्ति (के १७) में भी चतुर्भुजा यक्षी का वाहन सिंह है और उसके तीन सुरक्षित हाथों में चक्र (छल्ला), पद्म एवं शंख प्रदर्शित हैं। ग्यारहवीं शती ई० की उपर्युक्त तीनों ही मूर्तियों में यक्षी के निरूपण की एकरूपता से ऐसा आभास होता है कि खजुराहो में चतुर्भुजा सिद्धायिका के एक स्वतन्त्र स्वरूप की कल्पना की गई। यक्षी के साथ वाहन (सिंह) तो पारम्परिक है, पर हाथों में चक्र एवं शंख का प्रदर्शन हिन्दू वैष्णवी से प्रभावित प्रतीत होता है।

बिहार-उड़ीसा-बंगाल—इस क्षेत्र में केवल बारभुजी गुफा (उड़ीसा) से ही यक्षी की एक मूर्ति मिली है (चित्र ५९)। महावीर के साथ विंशतिभुजा यक्षी निरूपित है। गजवाहना यक्षी के दाहिने हाथों में वरदमुद्रा, शूल, अक्षमाला, बाण, दण्ड (?), मुद्गर, हल, वज्र, चक्र एवं खड्ग और बायें में कलश, पुस्तक, फल (?), पद्म, घण्टा (?), धनुष, नागपाश एवं खेटक स्पष्ट हैं।[5] पुस्तक एवं गजवाहन[6] का प्रदर्शन पारम्परिक है।

दक्षिण भारत—दक्षिण भारत में यक्षी का न तो पारम्परिक स्वरूप में अंकन हुआ और न ही उसका कोई स्वतन्त्र स्वरूप निर्धारित हुआ। महावीर की मूर्तियों में यक्ष-यक्षी का निरूपण ल० सातवीं शती ई० में ही प्रारम्भ हो गया। बादामी

---

१ ये मूर्तियां खजुराहो एवं देवगढ़ से मिली हैं।

२ जि०इ०दे०, पृ० १०२, १०५

३ महाविद्या महामानसी का वाहन सिंह है और उसके करों में वरद-(या अभय-) मुद्रा, खड्ग, कुण्डिका एवं खेटक प्रदर्शित हैं।

४ स्मरणीय है कि सिद्धायिका की भुजा में वीणा का उल्लेख श्वेतांबर परम्परा में प्राप्त होता है।

५ मित्रा, देबला, पू०लि०, पृ० १३३ : दो वाम करों के आयुध स्पष्ट नहीं हैं।

६ गजवाहन का उल्लेख केवल श्वेतांबर परम्परा में प्राप्त होता है।

गुफा की महावीर मूर्तियों में चतुर्भुजा यक्षी के करों में अभयमुद्रा, अंकुश, पाश एवं फल (या जलपात्र) प्रदर्शित हैं। वाहन की पहचान सम्भव नहीं है। करंजा (अकोला, महाराष्ट्र) की एक महावीर मूर्ति (ल० ९वीं शती ई०) में चतुर्भुजा यक्षी पुष्प (?), पद्म, परशु एवं फल से युक्त है। सेट्टिपोडव (मदुराई) की एक चतुर्भुजी मूर्ति में केवल दो हाथों के ही आयुध स्पष्ट हैं, जो धनुष और बाण हैं। अन्य उदाहरणों में यक्षी द्विभुजा है। द्विभुजा यक्षी के साथ कभी-कभी सिंहवाहन उत्कीर्ण है। हाथों में पद्म एवं फल (या पुस्तक) प्रदर्शित हैं।[1]

विश्लेषण

सम्पूर्ण अध्ययन से स्पष्ट है कि उत्तर भारत में पारम्परिक एवं स्वतन्त्र लक्षणोंवाली सिद्धायिका की मूर्तियां दसवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य उत्कीर्ण हुईं। उत्तर भारत में सिद्धायिका का पूरी तरह पारम्परिक स्वरूप में अंकन केवल श्वेतांबर स्थलों की तीन मूर्तियों में ही दृष्टिगत होता है।[2] इनमें सिंहवाहना यक्षी के हाथों में अभय-(या वरद-) मुद्रा, पुस्तक, वीणा एवं फल प्रदर्शित हैं। दिगंबर स्थलों पर केवल सिंहवाहन के प्रदर्शन में ही परम्परा का पालन किया गया है।[3] देवगढ़ एवं बारभुजी गुफा की दो मूर्तियों में दिगंबर परम्परा के अनुरूप पुस्तक भी प्रदर्शित है। मालादेवी मन्दिर की मूर्ति में यक्षी के साथ वीणा का प्रदर्शन श्वेतांबर परम्परा का पालन है। अन्य आयुधों की दृष्टि से दिगंबर स्थलों की सिद्धायिका की मूर्तियां परम्परासम्मत नहीं हैं। दिगंबर स्थलों[4] पर यक्षी का चतुर्भुज स्वरूप में निरूपण और उसके करों में परम्परा से भिन्न आयुधों (खड्ग, खेटक, पद्म, चक्र, शंख) का प्रदर्शन इस बात का संकेत देते हैं कि उन स्थलों पर चतुर्भुजा सिद्धायिका के निरूपण से सम्बन्धित ऐसी परम्परा प्रचलित थी, जो सम्प्रति हमें उपलब्ध नहीं है। सभी क्षेत्रों में यक्षी का द्विभुज और चतुर्भुज रूपों में निरूपण ही लोकप्रिय था।[5]

●

---

१ शाह, यू० पी०, पूर्वनि०, पृ० ७४, ७५; देसाई, पी० बी०, पूर्वनि०, पृ० ३८, ५६, ५७; संकलिया, एच० डी०, पूर्वनि०, पृ० १६१

२ ये मूर्तियां विमलवसही, कैम्बे एवं प्रभासपाटण से मिली हैं।

३ केवल बारभुजी गुफा की मूर्ति में वाहन गज है।

४ खजुराहो एवं देवगढ़

५ केवल बारभुजी गुफा की मूर्ति में ही यक्षी विंशतिभुज है।

सप्तम अध्याय

निष्कर्ष

जैन परम्परा में उत्तर भारत के केवल कुछ ही शासकों के जैन धर्म स्वीकार करने के उल्लेख हैं, जिनमें खारवेल, नागभट द्वितीय और कुमारपाल प्रमुख हैं। तथापि बारहवीं शती ई० तक के अधिकांश राजवंशों (पालों के अतिरिक्त) के शासकों का जैन धर्म के प्रति दृष्टिकोण उदार था, जिसके दो मुख्य कारण थे; प्रथम, भारतीय शासकों की धर्मसहिष्णु नीति और दूसरा, जैन धर्म की व्यापारियों, व्यवसायियों एवं सामान्य जनों के मध्य विशेष लोकप्रियता। इसी सम्बन्ध में एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि जैन धर्म और कला को शासकों से अधिक व्यापारियों, व्यवसायियों एवं सामान्य जनों का समर्थन और सहयोग मिला। मथुरा के कुषाणकालीन मूर्तिलेखों तथा ओसिया, खजुराहो, जालोर एवं अन्य अनेक स्थलों के लेखों से इसकी पुष्टि होती है।

जैन कला, स्थापत्य एवं प्रतिमाविज्ञान की दृष्टि से प्रतिहार, चन्देल और चौलुक्य राजवंशों का शासन काल (८ वीं-१२ वीं शती ई०) विशेष महत्वपूर्ण है। इन राजवंशों के समय में गुजरात, राजस्थान, उत्तर प्रदेश एवं मध्य प्रदेश के विस्तृत क्षेत्र में अनेक जैन मन्दिर बने और प्रचुर संख्या में मूर्तियों का निर्माण हुआ। इसी समय देवगढ़, खजुराहो, ओसिया, ग्यारसपुर, कुम्भारिया, आबू, जालोर, तारंगा एवं अन्य अनेक महत्वपूर्ण जैन कलाकेन्द्र पल्लवित और पुष्पित हुए। ल० आठवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य जैन कला के प्रभूत विकास में उपर्युक्त क्षेत्रों की सुदृढ़ आर्थिक पृष्ठभूमि का भी महत्व था। गुजरात के भड़ौंच, कैम्बे और सोमनाथ जैसे व्यापारिक महत्व के बन्दरगाहों, राजस्थान के पोरवाड़, श्रीमाल, ओसवाल, मोढेरक जैसी व्यापारिक जैन जातियों एवं मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश में विदिशा, उज्जैन, मथुरा, कौशाम्बी, वाराणसी जैसे महत्वपूर्ण व्यापारिक स्थलों के कारण ही इन क्षेत्रों में अनेक जैन मन्दिर एवं विपुल संख्या में मूर्तियां बनीं।

पटना के समीप लोहानीपुर से मिली मौर्ययुगीन मूर्ति प्राचीनतम जिन मूर्ति है (चित्र २)। चौसा और मथुरा से शुंग-कुषाण काल की जैन मूर्तियां मिली हैं। मथुरा से ल० १५० ई० पू० से ग्यारहवीं शती ई० के मध्य की प्रभूत जैन मूर्तियां मिली हैं। ये मूर्तियां आरम्भ से मध्ययुग तक के प्रतिमाविज्ञान की विकास-शृंखला को प्रदर्शित करती हैं। शुंग-कुषाण काल में मथुरा में सर्वप्रथम जिनों के वक्षःस्थल पर श्रीवत्स चिह्न का उत्कीर्णन और जिनों का ध्यानमुद्रा में निरूपण प्रारम्भ हुआ। तीसरी से पहली शती ई० पू० की अन्य जिन मूर्तियां कायोत्सर्ग-मुद्रा में निरूपित हैं। ज्ञातव्य है कि जिनों के निरूपण में सर्वदा यही दो मुद्राएं प्रयुक्त हुई हैं। मथुरा में कुषाणकाल में ऋषभ, सम्भव, मुनिसुव्रत, नेमि, पार्श्व एवं महावीर की मूर्तियां, ऋषभ एवं महावीर के जीवनदृश्य, आयागपट, जिन-चौमुखी तथा सरस्वती एवं नैगमेषी की मूर्तियां उत्कीर्ण हुई (चित्र १२, १६, ३०, ३४, ३९, ६६)।

गुप्तकाल में मथुरा एवं चौसा के अतिरिक्त राजगिर, विदिशा, वाराणसी एवं अकोटा से भी जैन मूर्तियां मिली हैं (चित्र ३५)। इस काल में केवल जिनों की स्वतन्त्र एवं जिन चौमुखी मूर्तियां ही उत्कीर्ण हुई। इनमें ऋषभ, चन्द्रप्रभ, पुष्पदन्त, नेमि, पार्श्व एवं महावीर का निरूपण है। श्वेतांबर जिन मूर्तियां (अकोटा, गुजरात) भी सर्वप्रथम इसी काल में बनीं (चित्र ३६)।

ल० दसवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की जैन प्रतिमाविज्ञान की प्रभूत ग्रन्थ एवं शिल्प सामग्री प्राप्त होती है। सर्वाधिक जैन मन्दिर और फलतः मूर्तियां भी दसवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य बनें। गुजरात और राजस्थान में श्वेतांबर एवं अन्य क्षेत्रों में दिगंबर सम्प्रदाय की मूर्तियों की प्रधानता है। गुजरात और राजस्थान के श्वेतांबर जैन

मन्दिरों में २४ देवकुलिकाओं को संयुक्त कर उनमें २४ जिनों की मूर्तियां स्थापित करने की परम्परा लोकप्रिय हुई। श्वेतांबर स्थलों की तुलना में दिगंबर स्थलों पर जिनों की अधिक मूर्तियां उत्कीर्ण हुई जिनमें स्वतन्त्र तथा द्वितीर्थी, त्रितीर्थी एवं चौमुखी मूर्तियां हैं। तुलनात्मक दृष्टि से जिनों के निरूपण में श्वेतांबर स्थलों पर एकरसता और दिगंबर स्थलों पर विविधता दृष्टिगत होती है। श्वेतांबर स्थलों पर जिन मूर्तियों के पीठिका-लेखों में जिनों के नामोल्लेख तथा दिगंबर स्थलों पर उनके लांछनों के अंकन की परम्परा दृष्टिगत होती है। जिनों के जीवन-दृश्यों एवं समवसरणों के अंकन के उदाहरण केवल श्वेतांबर स्थलों पर ही सुलभ हैं। ये उदाहरण (११ वीं-१३ वीं शती ई०) ओसिया, कुम्भारिया, आबू (विमलवसही, लूणवसही) एवं जालोर से मिले हैं (चित्र १३, १४, २२, २९, ४०, ४१)।

श्वेतांबर स्थलों पर जिनों के बाद १६ महाविद्याओं और दिगंबर स्थलों पर यक्ष-यक्षियों के चित्रण सर्वाधिक लोकप्रिय थे। १६ महाविद्याओं में रोहिणी, वज्रांकुशी, वज्रशृंखला, अप्रतिचक्रा, वज्रकुशा एवं वैरोट्या की ही सर्वाधिक मूर्तियां मिली हैं। शान्तिदेवी, ब्रह्मशान्ति यक्ष, जीवन्तस्वामी महावीर, गणेश एवं २४ जिनों के माता-पिता के सामूहिक अंकन (१० वीं-१२ वीं शती ई०) भी श्वेतांबर स्थलों पर ही लोकप्रिय थे। सरस्वती, बलराम, कृष्ण, अष्टदिक्पाल, नवग्रह एवं क्षेत्रपाल आदि की मूर्तियां श्वेतांबर और दिगंबर दोनों ही स्थलों पर उत्कीर्ण हुई। श्वेतांबर स्थलों पर अनेक ऐसी देवियों की भी मूर्तियां दृष्टिगत होती हैं, जिनका जैन परम्परा में अनुल्लेख है। इनमें हिन्दू शिवा और कौमारी तथा जैन सर्वानुभूति के लक्षणों के प्रभाववाली देवियों की मूर्तियां सबसे अधिक हैं।

जैन युगलों और राम-सीता तथा रोहिणी, मनोवेगा, गौरी, गान्धारी यक्षियों और गरुड यक्ष की मूर्तियां केवल दिगंबर स्थलों से ही मिली हैं। दिगंबर स्थलों से परम्परा विरुद्ध और परम्परा में अवर्णित दोनों प्रकार की कुछ मूर्तियां मिली हैं। द्वितीर्थी, त्रितीर्थी जिन मूर्तियों का अंकन और दो उदाहरणों में त्रितीर्थी मूर्तियों में सरस्वती और बाहुबली का अंकन, बाहुबली एवं अम्बिका की दो मूर्तियों (देवगढ़ एवं खजुराहो) में यक्ष-यक्षी का अंकन तथा ऋषभ की कुछ मूर्तियों में पारम्परिक यक्ष-यक्षी के साथ ही अम्बिका, लक्ष्मी एवं सरस्वती आदि का अंकन इस कोटि के कुछ प्रमुख उदाहरण हैं (चित्र ६०-६५, ७५)। श्वेतांबर और दिगंबर स्थलों की शिल्प-सामग्री के अध्ययन से ज्ञात होता है कि पुरुष देवताओं की मूर्तियां देवियों की तुलना में नगण्य हैं। जैन कला में देवियों की विशेष लोकप्रियता तान्त्रिक प्रभाव का परिणाम हो सकती है।

पांचवीं शती ई० के अन्त तक जैन देवकुल का मूलस्वरूप निर्धारित हो गया था, जिसमें २४ जिन, यक्ष और यक्षियां, विद्याएं, सरस्वती, लक्ष्मी, कृष्ण, बलराम, राम, नैगमेषी एवं अन्य शलाकापुरुष तथा कुछ और देवता सम्मिलित थे। इस काल तक जैन-देवकुल के सदस्यों के केवल नाम और कुछ सामान्य विशेषताएं ही निर्धारित हुई। उनकी लाक्षणिक विशेषताओं के विस्तृत उल्लेख आठवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य के जैन ग्रन्थों में ही मिलते हैं। पूर्ण विकसित जैन देवकुल में २४ जिनों एवं अन्य शलाकापुरुषों सहित २४ यक्ष-यक्षी युगल, १६ विद्याएं, दिक्पाल, नवग्रह, क्षेत्रपाल, गणेश, ब्रह्मशान्ति यक्ष, कपर्दि यक्ष, बाहुबली, ६४-योगिनी, शान्तिदेवी, जिनों के माता-पिता एवं पंचपरमेष्ठि आदि सम्मिलित हैं। श्वेतांबर और दिगंबर सम्प्रदायों के ग्रन्थों में जैन देवकुल का विकास बाह्य दृष्टि से समरूप है। केवल विभिन्न देवताओं के नामों एवं लाक्षणिक विशेषताओं के सन्दर्भ में ही दोनों परम्पराओं में भिन्नता दृष्टिगत होती है। महावीर के गर्भापहरण, जीवन्तस्वामी महावीर की मूर्ति एवं मल्लिनाथ के नारी तीर्थंकर होने के उल्लेख केवल श्वेतांबर ग्रन्थों में ही प्राप्त होते हैं।

२४ जिनों की कल्पना जैन धर्म की धुरी है। ई० सन् के प्रारम्भ के पूर्व ही २४ जिनों की सूची निर्धारित हो गई थी। २४ जिनों की प्रारम्भिक सूचियां समवायांगसूत्र, भगवतीसूत्र, कल्पसूत्र एवं पउमचरिय में मिलती हैं। शिल्प में जिन मूर्ति का उत्कीर्णन ल० तीसरी शती ई० पू० में प्रारम्भ हुआ। कल्पसूत्र में ऋषभ, नेमि, पार्श्व और महावीर के जीवन-वृत्तों के विस्तार से उल्लेख हैं। परवर्ती ग्रन्थों में भी इन्हीं चार जिनों की सर्वाधिक विस्तार से चर्चा है। शिल्प में भी इन्हीं जिनों का अंकन सबसे पहले (कुषाणकाल में) प्रारम्भ हुआ और विभिन्न स्थलों पर आगे भी इन्हीं की

सर्वाधिक मूर्तियां उत्कीर्ण हुईं। मूर्तियों के आधार पर लोकप्रियता के क्रम में ये जिन ऋषभ, पार्श्व, महावीर और नेमि हैं। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि इन जिनों की लोकप्रियता के कारण ही उनके यक्ष-यक्षी युगलों को भी जैन परम्परा और शिल्प में सर्वाधिक लोकप्रियता मिली। उपर्युक्त जिनों के बाद अजित, सम्भव, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, शान्ति एवं मुनिसुव्रत की सर्वाधिक मूर्तियां बनीं। अन्य जिनों की मूर्तियां संख्या की दृष्टि से नगण्य हैं। तात्पर्य यह कि उत्तर भारत में २४ में से केवल १० ही जिनों का अंकन लोकप्रिय था। दक्षिण भारत में पार्श्व और महावीर की सर्वाधिक मूर्तियां मिलती हैं।

जिन मूर्तियों में सर्वप्रथम पार्श्व का लक्षण स्पष्ट हुआ। ल० दूसरी-पहली शती ई० पू० में पार्श्व के साथ शीर्षभाग में सात सर्पफणों के छत्र का प्रदर्शन किया गया। पार्श्व के बाद मथुरा एवं चौसा की पहली शती ई० की मूर्तियों में ऋषभ के साथ जटाओं का प्रदर्शन हुआ। कुषाण काल में ही मथुरा में नेमि के साथ बलराम और कृष्ण का अंकन हुआ। इस प्रकार कुषाण काल तक ऋषभ, नेमि और पार्श्व के लक्षण निश्चित हुए। मथुरा में कुषाण काल में सम्भव, मुनिसुव्रत एवं महावीर की भी मूर्तियां उत्कीर्ण हुईं, जिनकी पहचान पीठिका-लेखों में उत्कीर्ण नामों के आधार पर की गई है। मथुरा में ही कुषाण काल में सर्वप्रथम जिन मूर्तियों में सात प्रातिहार्यों, धर्मचक्र, मांगलिक चिह्नों एवं उपासकों आदि का अंकन हुआ।

गुप्तकाल में जिनों के साथ सर्वप्रथम लांछनों, यक्ष-यक्षी युगलों एवं अष्ट-प्रातिहार्यों का अंकन प्रारम्भ हुआ। राजगिर एवं भारत कला भवन, वाराणसी की नेमि और महावीर की दो मूर्तियों में पहली बार लांछन का, और अकोटा की ऋषभ की मूर्ति में यक्ष-यक्षी (सर्वानुभूति एवं अम्बिका) का चित्रण हुआ। गुप्त काल में सिंहासन के छोरों एवं परिकर में छोटी जिन मूर्तियों का भी अंकन प्रारम्भ हुआ। अकोटा की श्वेतांबर जिन मूर्तियों में पहली बार पीठिका के मध्य में धर्मचक्र के दोनों ओर दो मृगों का अंकन किया गया जो सम्भवतः बौद्ध कला का प्रभाव है।

ल० आठवीं-नवीं शती ई० में २४ जिनों के स्वतन्त्र लांछनों की सूची बनी, जो कहावली, प्रवचनसारोद्धार एवं तिलोयपण्णत्ति में सुरक्षित है। श्वेतांबर और दिगंबर परम्पराओं में सुपार्श्व, शीतल, अनन्त एवं अरनाथ के अतिरिक्त अन्य जिनों के लांछनों में कोई भिन्नता नही है। मूर्तियों में सुपार्श्व तथा पार्श्व के साथ क्रमशः स्वस्तिक और सर्प लांछनों का अंकन दुर्लभ है क्योंकि पांच और सात सर्पफणों के छत्रों के प्रदर्शन के बाद जिनों की पहचान के लिए लांछनों का प्रदर्शन आवश्यक नहीं समझा गया। पर जटाओं से शोभित ऋषभ के साथ वृषभ लांछन का चित्रण नियमित था क्योंकि आठवीं शती ई० के बाद के दिगंबर स्थलों पर ऋषभ के साथ-साथ अन्य जिनों के साथ भी जटाएं प्रदर्शित की गयीं हैं।

ल० नवीं-दसवीं शती ई० तक मूर्तिविज्ञान की दृष्टि से जिन मूर्तियां पूर्णतः विकसित हो गईं। पूर्णविकसित जिन मूर्तियों में लांछनों, यक्ष-यक्षी युगलों एवं अष्ट-प्रातिहार्यों के साथ ही परिकर में छोटी जिन मूर्तियों, नवग्रहों, गजाकृतियों, धर्मचक्र, विद्याओं एवं अन्य आकृतियों का अंकन हुआ (चित्र ७)। सिंहासन के मध्य में पद्म से युक्त शान्तिदेवी तथा गजों एवं मृगों का निरूपण केवल श्वेतांबर स्थलों पर लोकप्रिय था (चित्र २०, २१)। ग्यारहवीं से तेरहवीं शती ई० के मध्य श्वेतांबर स्थलों पर ऋषभ, शान्ति, मुनिसुव्रत, नेमि, पार्श्व एवं महावीर के जीवनदृश्यों का विशद अंकन भी हुआ, जिसके उदाहरण ओसिया की देवकुलिकाओं, कुम्भारिया के शान्तिनाथ एवं महावीर मन्दिरों, जालोर के पार्श्वनाथ मन्दिर और आबू के विमलवसही और लूणवसही से मिले हैं। इनमें जिनों के पंचकल्याणकों (च्यवन, जन्म, दीक्षा, कैवल्य, निर्वाण) एवं कुछ अन्य महत्वपूर्ण घटनाओं को दरशाया गया है, जिनमें भरत और बाहुबली के युद्ध, शान्ति के पूर्वजन्म में कपोत की प्राणरक्षा की कथा, नेमि के विवाह, मुनिसुव्रत के जीवन की अश्वावबोध और शकुनिका-विहार की कथाएं तथा पार्श्व एवं महावीर के उपसर्ग प्रमुख हैं।

उत्तरप्रदेश एवं मध्यप्रदेश के दिगंबर स्थलों पर मध्ययुग में नेमि के साथ बलराम और कृष्ण, पार्श्व के साथ सर्पफणों के छत्र वाले चामरधारी धरण एवं छत्रधारिणी पद्मावती तथा जिन मूर्तियों के परिकर में बाहुबली, जीवन्तस्वामी,

क्षेत्रपाल, सरस्वती, लक्ष्मी आदि के अंकन विशेष लोकप्रिय थे (चित्र २७, २८)। बिहार, उड़ीसा एवं बंगाल की जिन मूर्तियों में यक्ष-यक्षी युगलों, सिंहासन, धर्मचक्र, गजों, दुन्दुभिवादकों आदि का अंकन लोकप्रिय नहीं था। ल० दसवीं शती ई० में जिन मूर्तियों के परिकर में २३ या २४ छोटी जिन मूर्तियों का अंकन प्रारम्भ हुआ। बंगाल की छोटी जिन मूर्तियां अधिकांशतः लांछनों से युक्त हैं (चित्र ९)। जैन ग्रन्थों में द्वितीर्थी एवं त्रितीर्थी जिन मूर्तियों के उल्लेख नहीं मिलते। पर दिगंबर स्थलों पर, मुख्यतः देवगढ़ एवं खजुराहो में, नवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य इनका उत्कीर्णन हुआ। इन मूर्तियों में दो या तीन भिन्न जिनों को एक साथ निरूपित किया गया है।

जिन चौमुखी मूर्तियों का उत्कीर्णन पहली शती ई० में मथुरा में प्रारम्भ हुआ और आगे की शताब्दियों में भी लोकप्रिय रहा (चित्र ६६–६९)। चौमुखी मूर्तियों में चार दिशाओं में चार ध्यानस्थ या कायोत्सर्ग जिन मूर्तियां उत्कीर्ण होती हैं। इन मूर्तियों को दो मुख्य वर्गों में बांटा जा सकता है। पहले वर्ग में वे मूर्तियां हैं जिनमें चारों ओर एक ही जिन की चार मूर्तियां उत्कीर्ण हैं। इस वर्ग की मूर्तियां समवसरण की धारणा से प्रभावित हैं और ल० सातवीं-आठवीं शती ई० में इनका निर्माण हुआ। दूसरे वर्ग की मूर्तियों में चारों ओर चार अलग-अलग जिनों की चार मूर्तियां हैं। मथुरा की कुषाण कालीन चौमुखी मूर्तियां इसी वर्ग की हैं। मथुरा की कुषाण कालीन चौमुखी मूर्तियों के समान ही इस वर्ग की अधिकांश मूर्तियों में केवल ऋषभ और पार्श्व की ही पहचान सम्भव है। कुछ मूर्तियों में अजित, सम्भव, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, नेमि, शान्ति एवं महावीर भी निरूपित हैं। बंगाल में चारों जिनों के साथ लांछनों और देवगढ़ एवं विमलवसही में यक्ष-यक्षी युगलों का चित्रण प्राप्त होता है। ल० दसवीं शती ई० में चतुर्विंशति-जिन-पट्टों का निर्माण प्रारम्भ हुआ। ग्यारहवीं शती ई० का एक विशिष्ट पट्ट देवगढ़ में है।

भगवतीसूत्र, तत्त्वार्थसूत्र, अन्तगड्दसाओ एवं पउमचरिय जैसे प्रारम्भिक जैन ग्रन्थों में यक्षों के प्रचुर उल्लेख हैं। इनमें माणिभद्र और पूर्णभद्र यक्षों और बहुपुत्रिका यक्षी की सर्वाधिक चर्चा है। जिनों से संश्लिष्ट प्राचीनतम यक्ष-यक्षी सर्वानुभूति एवं अम्बिका हैं, जिनकी कल्पना प्राचीन परम्परा के माणिभद्र-पूर्णभद्र यक्षों और बहुपुत्रिका यक्षी से प्रभावित है।[1] ल० छठी शती ई० में शिल्प में जिनों के शासन और उपासक देवों के रूप में यक्ष और यक्षी का निरूपण प्रारम्भ हुआ। यक्ष एवं यक्षी को जिन मूर्तियों के सिंहासन या पीठिका के क्रमशः दायें और बायें छोरों पर अंकित किया गया।

ल० छठी से नवीं शती ई० तक के ग्रन्थों में केवल यक्षराज (सर्वानुभूति), धरणेन्द्र, चक्रेश्वरी, अम्बिका एवं पद्मावती की ही कुछ लाक्षणिक विशेषताओं के उल्लेख हैं। २४ जिनों के स्वतन्त्र यक्ष-यक्षी युगलों की सूची ल० आठवीं-नवीं शती ई० में निर्धारित हुई। सबसे प्रारम्भ की सूचियां कहावली, तिलोयपण्णत्ति और प्रवचनसारोद्धार में हैं। २४ यक्ष-यक्षी युगलों की स्वतन्त्र लाक्षणिक विशेषताएं ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० में नियत हुईं जिनके उल्लेख निर्वाणकलिका, त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र एवं प्रतिष्ठासारसंग्रह तथा अन्य कई ग्रन्थों में हैं। श्वेतांबर ग्रन्थों में दिगंबर परम्परा के कुछ पूर्व ही यक्ष और यक्षियों की लाक्षणिक विशेषताएं निश्चित हो गयीं थीं। दोनों परम्पराओं में यक्ष एवं यक्षियों के नामों और उनकी लाक्षणिक विशेषताओं की दृष्टि से पर्याप्त भिन्नता दृष्टिगत होती है। दिगंबर ग्रन्थों में यक्ष और यक्षियों के नाम और उनकी लाक्षणिक विशेषताएं श्वेतांबर ग्रन्थों की अपेक्षा स्थिर और एकरूप हैं।

दोनों परम्पराओं की सूचियों में मातंग, यक्षेश्वर एवं ईश्वर यक्षों तथा नरदत्ता, मानवी, अच्युता एवं कुछ अन्य यक्षियों के नामोल्लेख एक से अधिक जिनों के साथ किये गये हैं। भृकुटि का यक्ष और यक्षी दोनों के रूप में उल्लेख है। २४ यक्ष और यक्षियों की सूची में से अधिकांश के नाम एवं उनकी लाक्षणिक विशेषताएं हिन्दू और कुछ उदाहरणों में बौद्ध देवकुल से प्रभावित हैं। हिन्दू देवकुल से प्रभावित यक्ष-यक्षी युगल तीन भागों में विभाज्य हैं। पहली कोटि में ऐसे यक्ष-यक्षी युगल हैं जिनके मूल देवता आपस में किसी प्रकार सम्बन्धित नहीं हैं। अधिकांश यक्ष-यक्षी युगल इसी वर्ग के हैं।

---

१ शाह, यू०पी०, 'यक्ष वरशिप इन अर्ली जैन लिट्रेचर', ज०ओ०इ०, खं० ३, अं० १, पृ० ६१–६२। सर्वानुभूति को मातंग, गोमेध या कुबेर भी कहा गया है।

दूसरी कोटि में ऐसे यक्ष-यक्षी युगल हैं जो मूलरूप में हिन्दू देवकुल में भी आपस में सम्बन्धित हैं, जैसे श्रेयांशनाथ के ईश्वर एवं गौरी यक्ष-यक्षी युगल। तीसरी कोटि में ऐसे यक्ष-यक्षी युगल हैं जिनमें यक्ष एक और यक्षी दूसरे स्वतन्त्र सम्प्रदाय के देवता से प्रभावित हैं। ऋषभनाथ के गोमुख यक्ष एवं चक्रेश्वरी यक्षी इसी कोटि के हैं, जो शिव और वैष्णवी से प्रभावित हैं; शिव और वैष्णवी क्रमशः शैव एवं वैष्णव धर्म के प्रतिनिधि देव हैं।

ल० छठी शती ई० में सर्वप्रथम सर्वानुभूति एवं अम्बिका को अकोटा में मूर्त अभिव्यक्ति मिली। इसके बाद धरणेन्द्र और पद्मावती की मूर्तियां बनीं और ल० दसवीं शती ई० से अन्य यक्ष-यक्षियों की भी मूर्तियां बनने लगीं। ल० छठी शती ई० में जिन मूर्तियों में और ल० नवीं शती ई० में स्वतन्त्र मूर्तियों के रूप में यक्ष-यक्षियों का निरूपण प्रारम्भ हुआ।[1] ल० छठी से नवीं शती ई० के मध्य की ऋषभ, शान्ति, नेमि, पार्श्व एवं कुछ अन्य जिनों की मूर्तियों में सर्वानुभूति एवं अम्बिका ही आमूर्तित हैं। ल० दसवीं शती ई० से ऋषभ, शान्ति, नेमि, पार्श्व एवं महावीर के साथ सर्वानुभूति एवं अम्बिका के स्थान पर पारम्परिक या स्वतन्त्र लक्षणों वाले यक्ष-यक्षी युगलों का निरूपण प्रारम्भ हुआ, जिसके मुख्य उदाहरण देवगढ़, ग्यारसपुर, खजुराहो एवं राज्य संग्रहालय, लखनऊ में हैं। इन स्थलों की दसवीं शती ई० की मूर्तियों में ऋषभ और नेमि के साथ क्रमशः गोमुख-चक्रेश्वरी और सर्वानुभूति-अम्बिका तथा शान्ति, पार्श्व एवं महावीर के साथ स्वतन्त्र लक्षणों वाले यक्ष-यक्षी उत्कीर्ण हैं।

नवीं शती ई० के बाद बिहार, उड़ीसा और बंगाल के अतिरिक्त अन्य सभी क्षेत्रों की जिन मूर्तियों में यक्ष-यक्षी युगलों का नियमित अंकन हुआ है। स्वतन्त्र अंकनों में यक्ष की तुलना में यक्षियों के चित्रण अधिक लोकप्रिय थे। २४ यक्षियों के सामूहिक अंकन के हमें तीन उदाहरण मिले हैं, पर २४ यक्षों के सामूहिक चित्रण का सम्भवतः कोई प्रयास ही नहीं किया गया। यक्षों की केवल द्विभुजी और चतुर्भुजी मूर्तियां बनीं, पर यक्षियों की दो से बीस भुजाओं तक की मूर्तियां मिली हैं।

यक्ष और यक्षियों की सर्वाधिक जिन-संयुक्त और स्वतन्त्र मूर्तियां उत्तरप्रदेश एवं मध्यप्रदेश के दिगंबर स्थलों पर उत्कीर्ण हुई। अतः यक्ष एवं यक्षियों के मूर्तिविज्ञानपरक विकास के अध्ययन की दृष्टि से इस क्षेत्र का विशेष महत्व है। इस क्षेत्र में दसवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य ऋषभ, नेमि एवं पार्श्व के साथ पारम्परिक, और सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, शान्ति एवं महावीर के साथ स्वतन्त्र लक्षणों वाले यक्ष-यक्षी युगल निरूपित हुए। अन्य जिनों के यक्ष-यक्षी द्विभुज और सामान्य लक्षणों वाले हैं। इस क्षेत्र में चक्रेश्वरी एवं अम्बिका की सर्वाधिक मूर्तियां बनीं (चित्र ४४-४६, ५०, ५१)। साथ ही रोहिणी, मनोवेगा, गौरी, गान्धारी, पद्मावती एवं सिद्धायिका की भी कुछ मूर्तियां मिली हैं (चित्र ४७, ५५)। चक्रेश्वरी एवं पद्मावती की मूर्तियों में सर्वाधिक विकास दृष्टिगत होता है। यक्षों में केवल सर्वानुभूति, गरुड (?) एवं धरणेन्द्र की ही कुछ स्वतन्त्र मूर्तियां मिली हैं (चित्र ४९)। इस क्षेत्र में २४ यक्षियों के सामूहिक अंकन के भी दो उदाहरण हैं जो देवगढ़ (मन्दिर १२, ८६२ ई०) एवं पतियानदाई (अम्बिका मूर्ति, ११वीं शती ई०) से मिले हैं (चित्र ५३)। देवगढ़ के उदाहरण में अम्बिका के अतिरिक्त अन्य किसी यक्षी के साथ पारम्परिक विशेषताएं नहीं प्रदर्शित हैं। देवगढ़ समूह की अधिकांश यक्षियां सामान्य लक्षणों वाली और समरूप, तथा कुछ अन्य जैन महाविद्याओं एवं सरस्वती आदि के स्वरूपों से प्रभावित हैं।

गुजरात और राजस्थान में अम्बिका की सर्वाधिक मूर्तियां बनीं (चित्र ५४)। चक्रेश्वरी, पद्मावती एवं सिद्धायिका की भी कुछ मूर्तियां मिली हैं (चित्र ५६)। यक्षों में केवल गोमुख, वरुण (?), सर्वानुभूति एवं पार्श्व की ही स्वतन्त्र मूर्तियां हैं (चित्र ४३)। सर्वानुभूति की मूर्तियां सर्वाधिक हैं। इस क्षेत्र में छठी से बारहवीं शती ई० तक सभी जिनों के साथ एक ही यक्ष-यक्षी युगल, सर्वानुभूति एवं अम्बिका, निरूपित हैं। केवल कुछ उदाहरणों में ऋषभ, पार्श्व एवं महावीर के साथ पारम्परिक या स्वतन्त्र लक्षणों वाले यक्ष-यक्षी उत्कीर्ण हैं।

---

१ केवल अकोटा से छठी शती ई० के अन्त की एक स्वतन्त्र अम्बिका मूर्ति मिली है।

बिहार, उड़ीसा एवं बंगाल में यक्ष-यक्षियों की मूर्तियां नगण्य हैं। केवल चक्रेश्वरी, अम्बिका एवं पद्मावती (?) की कुछ स्वतन्त्र मूर्तियां मिली हैं। उड़ीसा की नवमुनि एवं बारभुजी गुफाओं (११ वीं-१२ वीं शती ई०) में क्रमशः सात और चौबीस यक्षियों की मूर्तियां उत्कीर्ण हैं (चित्र ५९)। दक्षिण भारत में गोमुख, कुबेर, धरणेन्द्र एवं मातंग यक्षों तथा चक्रेश्वरी, ज्वालामालिनी, अम्बिका, पद्मावती एवं सिद्धायिका यक्षियों की मूर्तियां बनीं। यक्षियों में ज्वालामालिनी, अम्बिका एवं पद्मावती सर्वाधिक लोकप्रिय थीं।

प्रारम्भिक जैन ग्रन्थों में २४ जिनों सहित जिन ६३ शलाकापुरुषों के उल्लेख हैं, उनकी सूची सदैव स्थिर रही है। इस सूची में २४ जिनों के अतिरिक्त १२ चक्रवर्ती, ९ बलदेव, ९ वासुदेव और ९ प्रतिवासुदेव सम्मिलित हैं। जैन शिल्प में २४ जिनों के अतिरिक्त अन्य शलाकापुरुषों में से केवल बलराम, कृष्ण, राम और भरत की ही मूर्तियां मिलती हैं। बलराम और कृष्ण के अंकन कुषाण युग में तथा राम और भरत के अंकन दसवीं-बारहवीं शती ई० में हुए। श्रीलक्ष्मी और सरस्वती के उल्लेख प्रारम्भिक जैन ग्रन्थों में हैं। सरस्वती का अंकन कुषाण युग में और श्री लक्ष्मी का अंकन दसवीं शती ई० में हुआ। जैन परम्परा में इन्द्र का जिनों के प्रधान सेवक के रूप में उल्लेख है और उसकी मूर्तियां ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० में बनीं। प्रारम्भिक जैन ग्रन्थों में उल्लिखित नैगमेषी को कुषाण काल में ही मूर्त अभिव्यक्ति मिली। शान्तिदेवी, गणेश, ब्रह्मशान्ति एवं कपर्दि यक्षों के उल्लेख और उनकी मूर्तियां दसवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य की हैं (चित्र ७७)।

जैन देवकुल में जिनों एवं यक्ष-यक्षियों के बाद सर्वाधिक प्रतिष्ठा विद्याओं को मिली। *स्थानांगसूत्र*, *सूत्रकृतांग*, *नायाधम्मकहाओ* और *पउमचरिय* जैसे प्रारम्भिक एवं *हरिवंशपुराण*, *वसुदेवहिण्डी* और *त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र* जैसे परवर्ती (छठी-१२ वीं शती ई०) ग्रन्थों में विद्याओं के अनेक उल्लेख हैं। जैन ग्रन्थों में वर्णित अनेक विद्याओं में से १६ विद्याओं को लेकर ल० नवी शती ई० में १६ विद्याओं की एक सूची निर्धारित हुई। ल० नवीं से बारहवीं शती ई० के मध्य इन्ही १६ विद्याओं के ग्रन्थों में प्रतिमालक्षण निर्धारित हुए और शिल्प में मूर्तियां बनीं। १६ विद्याओं की प्रारम्भिकतम सूचियां *तिजयपहुत्त* (९ वीं शती ई०), *संहितासार* (९३९ ई०) एवं *स्तुति चतुर्विंशतिका* (ल० ९७३ ई०) में हैं। बप्पभट्टिसूरि की *चतुर्विंशतिका* (७४३–८३८ ई०) में सर्वप्रथम १६ में से १५ विद्याओं की लाक्षणिक विशेषताएं निरूपित हुई। सभी १६ विद्याओं की लाक्षणिक विशेषताओं का निर्धारण सर्वप्रथम शोभनमुनि की *स्तुति चतुर्विंशतिका* में हुआ। विद्याओं की प्राचीनतम मूर्तियां ओसिया के महावीर मन्दिर (ल० ८ वीं-९ वीं शती ई०) से मिली हैं। नवीं से तेरहवीं शती ई० के मध्य गुजरात और राजस्थान के श्वेतांबर जैन मन्दिरों में विद्याओं की अनेक मूर्तियां उत्कीर्ण हुई। १६ विद्याओं के सामूहिक चित्रण के भी प्रयास किये गये जिसके चार उदाहरण क्रमशः कुम्भारिया के शान्तिनाथ मन्दिर (११ वीं शती ई०) और आबू के विमलवसही (दो उदाहरण : रंगमण्डप और देवकुलिका ४१, १२ वीं शती ई०) एवं लूणवसही (रंगमण्डप, १२३० ई०) से मिले हैं (चित्र ७८)। दिगंबर स्थलों पर विद्याओं के चित्रण का एकमात्र सम्भावित उदाहरण खजुराहो के आदिनाथ मन्दिर की भित्ति पर है।

•

परिशिष्ट

परिशिष्ट—१

जिन-मूर्तिविज्ञान-तालिका

सं०	जिन	लांछन	यक्ष	यक्षी
१	ऋषभनाथ (या आदिनाथ)	वृषभ	गोमुख	चक्रेश्वरी (श्वे०, दि०)[1], अप्रतिचक्रा (श्वे०)
२	अजितनाथ	गज	महायक्ष	अजिता (श्वे०), रोहिणी (दि०)
३	सम्भवनाथ	अश्व	त्रिमुख	दुरितारी (श्वे०), प्रज्ञप्ति (दि०)
४	अभिनन्दन	कपि	यक्षेश्वर (श्वे०, दि०), ईश्वर (श्वे०)	कालिका (श्वे०), वज्रशृंखला (दि०)
५	सुमतिनाथ	क्रौंच	तुम्बरु (श्वे०, दि०), तुम्बर (दि०)	महाकाली (श्वे०), पुरुषदत्ता, नरदत्ता (दि०), सम्मोहिनी (श्वे०)
६	पद्मप्रभ	पद्म	कुसुम (श्वे०), पुष्प (दि०)	अच्युता, मानसी (श्वे०), मनोवेगा (दि०)
७	सुपार्श्वनाथ	स्वस्तिक (श्वे०, दि०), नंद्यावर्त (दि०)	मातंग	शान्ता (श्वे०), काली (दि०)
८	चन्द्रप्रभ	शशि	विजय (श्वे०), श्याम (दि०)	भृकुटि, ज्वाला (श्वे०), ज्वालामालिनी, ज्वालिनी (दि०)
९	सुविधिनाथ (श्वे०), पुष्पदंत (श्वे०, दि०)	मकर	अजित (श्वे०, दि०), जय	सुतारा (श्वे०), महाकाली (दि०)
१०	शीतलनाथ	श्रीवत्स (श्वे०,दि०) स्वस्तिक (दि०)	ब्रह्म	अशोका (श्वे०), मानवी (दि०)
११	श्रेयांशनाथ	खड्गी (गेंडा)	ईश्वर (श्वे०, दि०), यक्षराज, मनुज (श्वे०)	मानवी, श्रीवत्सा (श्वे०), गौरी (दि०)
१२	वासुपूज्य	महिष	कुमार	चण्डा, प्रचण्डा, अजिता, चन्द्रा (श्वे०), गान्धारी (दि०)
१३	विमलनाथ	वराह	षण्मुख (श्वे०, दि०), चतुर्मुख (दि०)	विदिता (श्वे०), वैरोटी (दि०)
१४	अनन्तनाथ	श्येनपक्षी (श्वे०), रीछ (दि०)	पाताल	अंकुशा (श्वे०), अनन्तमती (दि०)
१५	धर्मनाथ	वज्र	किन्नर	कन्दर्पा, पन्नगा (श्वे०), मानसी (दि०)
१६	शान्तिनाथ	मृग	गरुड	निर्वाणी (श्वे०), महामानसी (दि०)
१७	कुंथुनाथ	छाग	गन्धर्व	बला, अच्युता, गान्धारिणी (श्वे०), जया (दि०)

१ श्वे० = श्वेतांबर, दि० = दिगंबर

सं० जिन	लांछन	यक्ष	यक्षी
१८ अरनाथ	नन्द्यावर्त (श्वे०), मत्स्य (दि०)	यक्षेन्द्र, यक्षेश्वर (श्वे०), खेन्द्र (दि०)	धारणी, धारिणी (श्वे०), तारावती (दि०)
१९ मल्लिनाथ	कलश	कुबेर	वैरोट्या, धरणप्रिया (श्वे०), अपराजिता (दि०)
२० मुनिसुव्रत	कूर्म	वरुण	नरदत्ता, वरदत्ता (श्वे०), बहुरूपिणी (दि०)
२१ नमिनाथ	नीलोत्पल	भृकुटि	गांधारी (श्वे०), चामुण्डा (दि०)
२२ नेमिनाथ (या अरिष्टनेमि)	शंख	गोमेध	अम्बिका (श्वे०, दि०), कुष्माण्डी (श्वे०), कुष्माण्डिनी (दि०)
२३ पार्श्वनाथ	सर्प	पार्श्व, वामन (श्वे०), धरण (दि०)	पद्मावती
२४ महावीर (या वर्धमान)	सिंह	मातंग	सिद्धायिका (श्वे०, दि०), सिद्धायिनी (दि०)

परिशिष्ट–२

यक्ष-यक्षी-मूर्तिविज्ञान-तालिका

(क) २४–यक्ष

सं० यक्ष	वाहन	भुजा-सं०	आयुध	अन्य लक्षण
१ गोमुख–(क) श्वे०	गज (या वृषभ)	चार	वरदमुद्रा, अक्षमाला, मातुलिंग, पाश	गोमुख, पार्श्वों में गज एवं वृषभ का अंकन
(ख) दि०	वृषभ	चार	परशु, फल, अक्षमाला, वरदमुद्रा	शीर्षभाग में धर्मचक्र
२ महायक्ष–(क) श्वे०	गज	आठ	वरदमुद्रा, मुद्गर, अक्षमाला, पाश (दक्षिण); मातुलिंग, अभयमुद्रा, अंकुश, शक्ति (वाम)	चतुर्मुख
(ख) दि०	गज	आठ	खड्ग (निस्त्रिंश), दण्ड, परशु, वरदमुद्रा (दक्षिण); चक्र, त्रिशूल, पद्म, अंकुश (वाम)	चतुर्मुख
३ त्रिमुख–(क) श्वे०	मयूर (या सर्प)	छह	नकुल, गदा, अभयमुद्रा (दक्षिण); फल, सर्प, अक्षमाला (वाम)	त्रिमुख, त्रिनेत्र (या नवाक्ष)
(ख) दि०	मयूर	छह	दण्ड, त्रिशूल, कटार (दक्षिण); चक्र, खड्ग, अंकुश (वाम)	त्रिमुख, त्रिनेत्र
४ (i) ईश्वर–श्वे०	गज	चार	फल, अक्षमाला, नकुल, अंकुश	
(ii) यक्षेश्वर–दि०	गज (या हंस)	चार	संकपत्र (या बाण), खड्ग, कार्मुक, खेटक। सर्प, पाश, वज्र, अंकुश (अपराजितपृच्छा)	चतुरानन
५ तुम्बरु–(क) श्वे०	गरुड	चार	वरदमुद्रा, शक्ति, नाग (या गदा), पाश	
(ख) दि०	गरुड	चार	सर्प, सर्प, वरदमुद्रा, फल	नागयज्ञोपवीत
६ कुसुम (या पुष्प)– (क) श्वे०	मृग (या मयूर या अश्व)	चार	फल, अभयमुद्रा, नकुल, अक्षमाला	
(ख) दि०	मृग	दो या चार	(i) गदा, अक्षमाला (ii) शूल, मुद्रा, खेटक, अभयमुद्रा (या खेटक)	
७ मातंग–(क) श्वे०	गज	चार	बिल्वफल, पाश (या नागपाश), नकुल (या वज्र), अंकुश	
(ख) दि०	सिंह (या मेष)	दो	वज्र (या शूल), दण्ड। गदा, पाश (अपराजितपृच्छा)	
८ (i) विजय–श्वे०	हंस	दो	चक्र (या खड्ग), मुद्गर	त्रिनेत्र
(ii) श्याम–दि०	कपोत	चार	फल, अक्षमाला, परशु, वरदमुद्रा	त्रिनेत्र

सं० यक्ष	वाहन	भुजा-सं०	आयुध	अन्य लक्षण
९ अजित-(क) श्वे०	कूर्म	चार	मातुलिंग, अक्षसूत्र (या अभयमुद्रा), नकुल, शूल (या अतुल रत्नराशि)	
(ख) दि०	कूर्म	चार	फल, अक्षसूत्र, शक्ति, वरदमुद्रा	
१० ब्रह्मा-(क) श्वे०	पद्म	आठ या दस	मातुलिंग, मुद्गर, पाश, अभयमुद्रा या वरदमुद्रा (दक्षिण); नकुल, गदा, अंकुश, अक्षसूत्र (वाम); मातुलिंग, मुद्गर, पाश, अभयमुद्रा, नकुल, गदा, अंकुश, अक्षसूत्र, पाश, पद्म (आचारदिनकर)	त्रिनेत्र, चतुर्मुख
(ख) दि०	सरोज	आठ	बाण, खड्ग, वरदमुद्रा, धनुष, दण्ड, खेटक, परशु, वज्र	चतुर्मुख
११ ईश्वर-(क) श्वे०	वृषभ	चार	मातुलिंग, गदा, नकुल, अक्षसूत्र	त्रिनेत्र
(ख) दि०	वृषभ	चार	फल, अक्षसूत्र, त्रिशूल, दण्ड (या वरदमुद्रा)	त्रिनेत्र
१२ कुमार-(क) श्वे०	हंस	चार	बीजपूरक, बाण (या वीणा), नकुल, धनुष	
(ख) दि०	हंस (या मयूर)	चार या छह	वरदमुद्रा, गदा, धनुष, फल (प्रतिष्ठासारोद्धार); बाण, गदा, वरदमुद्रा, धनुष, नकुल, मातुलिंग (प्रतिष्ठातिलकम्)	त्रिमुख या षण्मुख
१३ (i) षण्मुख-श्वे०	मयूर	बारह	फल, चक्र, बाण (या शक्ति), खड्ग, पाश, अक्षमाला, नकुल, चक्र, धनुष, फलक, अंकुश, अभयमुद्रा	
(ii) चतुर्मुख-दि०	मयूर	बारह	ऊपर के आठ हाथों में परशु और शेष चार में खड्ग, अक्षसूत्र, खेटक, दण्डमुद्रा	
१४ पाताल-(क) श्वे०	मकर	छह	पद्म, खड्ग, पाश, नकुल, फलक, अक्षसूत्र	त्रिमुख, त्रिनेत्र
(ख) दि०	मकर	छह	अंकुश, शूल, पद्म, कशा, हल, फल। वज्र, अंकुश, धनुष, बाण, फल, वरदमुद्रा (अपराजितपृच्छा)	त्रिमुख, शीर्षभाग में त्रिसर्पफण
१५ किन्नर-(क) श्वे०	कूर्म	छह	बीजपूरक, गदा, अभयमुद्रा, नकुल, पद्म, अक्षमाला	त्रिमुख
(ख) दि०	मीन	छह	मुद्गर, अक्षमाला, वरदमुद्रा, चक्र, वज्र, अंकुश; पाश, अंकुश, धनुष, बाण, फल, वरदमुद्रा (अपराजितपृच्छा)	त्रिमुख

सं० यक्ष	वाहन	भुजा-सं०	आयुध	अन्य लक्षण
१६ गरुड–(क) श्वे०	वराह (या गज)	चार	बीजपूरक, पद्म, नकुल (या पाश), अक्षसूत्र	वराहमुख
(ख) दि०	वराह (या शुक)	चार	वज्र, चक्र, पद्म, फल। पाश, अंकुश, फल, वरदमुद्रा (अपराजितपृच्छा)	
१७ गन्धर्व–(क) श्वे०	हंस (या सिंह ?)	चार	वरदमुद्रा, पाश, मातुलिंग, अंकुश	
(ख) दि०	पक्षी (या शुक)	चार	सर्प, पाश, बाण, धनुष; पद्म, अभयमुद्रा, फल, वरदमुद्रा (अपराजितपृच्छा)	
१८ (i) यक्षेन्द्र–श्वे०	शंख (या वृषभ या शेष)	बारह	मातुलिंग, बाण (या कपाल), खड्ग, मुद्गर, पाश (या शूल), अभयमुद्रा, नकुल, धनुष, खेटक, शूल, अंकुश, अक्षसूत्र	षण्मुख, त्रिनेत्र
(ii) खेन्द्र या यक्षेश–दि०	शंख (या खर)	बारह या छह	बाण, पद्म, फल, माला, अक्षमाला, लीलामुद्रा, धनुष, वज्र, पाश, मुद्गर, अंकुश, वरदमुद्रा। वज्र, चक्र, धनुष, बाण, फल, वरदमुद्रा (अपराजितपृच्छा)	षण्मुख, त्रिनेत्र
१९ कुबेर या यक्षेश–				
(क) श्वे०	गज	आठ	वरदमुद्रा, परशु, शूल, अभयमुद्रा, बीजपूरक, शक्ति, मुद्गर, अक्षसूत्र	चतुर्मुख, गरुडवदन (निर्वाणकलिका)
(ख) दि०	गज (या सिंह)	आठ या चार	फलक, धनुष, दण्ड, पद्म, खड्ग, बाण, पाश, वरदमुद्रा। पाश, अंकुश, फल, वरदमुद्रा (अपराजितपृच्छा)	चतुर्मुख
२० वरुण–(क) श्वे०	वृषभ	आठ	मातुलिंग, गदा, बाण, शक्ति, नकुलक, पद्म (या अक्षमाला), धनुष, परशु	जटामुकुट, त्रिनेत्र, चतुर्मुख, द्वादशाक्ष (आचारदिनकर)
(ख) दि०	वृषभ	चार या छह	खेटक, खड्ग, फल, वरदमुद्रा। पाश, अंकुश, कार्मुक, शर, उरग, वज्र (अपराजितपृच्छा)	जटामुकुट, त्रिनेत्र, अष्टानन
२१ भृकुटि–(क) श्वे०	वृषभ	आठ	मातुलिंग, शक्ति, मुद्गर, अभयमुद्रा, नकुल, परशु, वज्र, अक्षसूत्र	चतुर्मुख, त्रिनेत्र (द्वादशाक्ष-आचारदिनकर)
(ख) दि०	वृषभ	आठ	खेटक, खड्ग, धनुष, बाण, अंकुश, पद्म, चक्र, वरदमुद्रा	चतुर्मुख
२२ गोमेध–(क) श्वे०	नर	छह	मातुलिंग, परशु, चक्र, नकुल, शूल, शक्ति	त्रिमुख, समीप ही अम्बिका के निरूपण का निर्देश (आचारदिनकर)

सं०	यक्ष	वाहन	भुजा-सं०	आयुध	अन्य लक्षण
	(ख) दि०	पुष्प (या नर)	छह	मुद्गर (या द्रुघण), परशु, दण्ड, फल, वज्र, वरदमुद्रा। प्रतिष्ठातिलकम् में द्रुघण के स्थान पर धन के प्रदर्शन का निर्देश है।	त्रिमुख
२३	(i) पार्श्व–श्वे०	कूर्म	चार	मातुलिंग, उरग (या गदा), नकुल, उरग	गजमुख, सर्पफणों के छत्र से युक्त
	(ii) धरण–दि०	कूर्म	चार या छह	नागपाश, सर्प, सर्प, वरदमुद्रा। धनुष, बाण, भृण्डि, मुद्गर, फल, वरदमुद्रा (अपराजितपृच्छा)	सर्पफणों के छत्र से युक्त
२४	मातंग–(क) श्वे०	गज	दो	नकुल, बीजपूरक	
	(ख) दि०	गज	दो	वरदमुद्रा, मातुलिंग	मस्तक पर धर्मचक्र

परिशिष्ट—२

यक्ष-यक्षी-मूर्तिविज्ञान-तालिका

(ख) २४—यक्षी

सं०	यक्षी	वाहन	भुजासं०	आयुध
१	चक्रेश्वरी (या अप्रति-चक्रा)—(क) श्वे०	गरुड	आठ या बारह	(i) वरदमुद्रा, बाण, चक्र, पाश (दक्षिण); धनुष, वज्र, चक्र, अंकुश (वाम) (ii) आठ हाथों में चक्र, शेष चार में से दो में वज्र और दो में मातुलिंग, अभयमुद्रा
	(ख) दि०	गरुड	चार या बारह	(i) दो में चक्र और अन्य दो में मातुलिंग, वरदमुद्रा (ii) आठ हाथों में चक्र और शेष चार में से दो में वज्र और दो में मातुलिंग और वरदमुद्रा (या अभयमुद्रा)
२	(i) अजिता या अजित-बला—श्वे०	लोहासन (या गाय)	चार	वरदमुद्रा, पाश, अंकुश, फल
	(ii) रोहिणी—दि०	लोहासन	चार	वरदमुद्रा, अभयमुद्रा, शंख, चक्र
३	(i) दुरितारी—श्वे०	मेष (या मयूर या महिष)	चार	वरदमुद्रा, अक्षमाला, फल (या सर्प), अभयमुद्रा
	(ii) प्रज्ञप्ति—दि०	पक्षी	छह	अर्द्धेन्दु, परशु, फल, वरदमुद्रा, खड्ग, इढ़ी (या पिंडी)
४	(i) कालिका (या काली)—श्वे०	पद्म	चार	वरदमुद्रा, पाश, सर्प, अंकुश
	(ii) वज्रश्रृंखला—दि०	हंस	चार	वरदमुद्रा, नागपाश, अक्षमाला, फल
५	(i) महाकाली—श्वे०	पद्म	चार	वरदमुद्रा, पाश (या नागपाश), मातुलिंग, अंकुश
	(ii) पुरुषदत्ता (या नर-दत्ता)—दि०	गज	चार	वरदमुद्रा, चक्र, वज्र, फल
६	(i) अच्युता (या श्यामा या मानसी)—श्वे०	नर	चार	वरदमुद्रा, वीणा (या पाश या बाण), धनुष (या मातुलिंग), अभयमुद्रा (या अंकुश)
	(ii) मनोवेगा—दि०	अश्व	चार	वरदमुद्रा, खेटक, खड्ग, मातुलिंग
७	(i) शान्ता—श्वे०	गज	चार	वरदमुद्रा, अक्षमाला (मुक्तामाला), शूल (या त्रिशूल), अभयमुद्रा, वरदमुद्रा, अक्षमाला, पाश, अंकुश (मन्त्राधिराजकल्प)
	(ii) काली—दि०	वृषभ	चार	घण्टा, त्रिशूल (या शूल), फल, वरदमुद्रा

सं०	यक्षी	वाहन	भुजा सं०	आयुध
८	(i) भृकुटि (या ज्वाला)-श्वे०	वराह (या वराल या मराल या हंस)	चार	खड्ग, मुद्गर, फलक (या मातुलिंग), परशु
	(ii) ज्वालामालिनी-दि०	महिष	आठ	चक्र, धनुष, पाश (या नागपाश), चर्म (या फलक), त्रिशूल (या शूल), बाण, मत्स्य, खड्ग
९	(i) सुतारा (या चाण्डालिका)-श्वे०	वृषभ	चार	वरदमुद्रा, अक्षमाला, कलश, अंकुश
	(ii) महाकाली-दि०	कूर्म	चार	वज्र, मुद्गर (या गदा), फल (या अभयमुद्रा), वरदमुद्रा
१०	(i) अशोका (या गोमेधिका)-श्वे०	पद्म	चार	वरदमुद्रा, पाश (या नागपाश), फल, अंकुश
	(ii) मानवी-दि०	शूकर (नाग)	चार	फल, वरदमुद्रा, झष, पाश
११	(i) मानवी (या श्रीवत्सा)-श्वे०	सिंह	चार	वरदमुद्रा, मुद्गर (या पाश), कलश (या वज्र या नकुल), अंकुश (या अक्षसूत्र)
	(ii) गौरी-दि०	मृग	चार	मुद्गर (या पाश), अब्ज, कलश (या अंकुश), वरदमुद्रा
१२	(i) चण्डा (या प्रचण्डा या अजिता)-श्वे०	अश्व	चार	वरदमुद्रा, शक्ति, पुष्प (या पाश), गदा
	(ii) गान्धारी-दि०	पद्म (या मकर)	चार या दो	मुसल, पद्म, वरदमुद्रा, पद्म। पद्म, फल (अपराजितपृच्छा)
१३	(i) विदिता-श्वे०	पद्म	चार	बाण, पाश, धनुष, सर्प
	(ii) वैरोट्या (या वैरोटी)-दि०	सर्प (या व्योमयान)	चार या छह	सर्प, सर्प, धनुष, बाण। दो में वरदमुद्रा, शेष में खड्ग, खेटक, कार्मुक, शर (अपराजितपृच्छा)
१४	(i) अंकुशा-श्वे०	पद्म	चार या दो	खड्ग, पाश, खेटक, अंकुश। फलक, अंकुश (पद्मानन्दमहाकाव्य)
	(ii) अनन्तमती-दि०	हंस	चार	धनुष, बाण, फल, वरदमुद्रा
१५	(i) कन्दर्पा (या पन्नगा)-श्वे०	मत्स्य	चार	उत्पल, अंकुश, पद्म, अभयमुद्रा
	(ii) मानसी-दि०	व्याघ्र	छह	दो में पद्म और शेष में धनुष, वरदमुद्रा, अंकुश, बाण। त्रिशूल, पाश, चक्र, डमरु, फल, वरदमुद्रा (अपराजितपृच्छा)

सं०	यक्षी	वाहन	भुजा-सं०	आयुध	अन्य लक्षण
१६	(i) निर्वाणी–श्वे०	पद्म	चार	पुस्तक, उत्पल, कमण्डलु, पद्म (या वरदमुद्रा)	
	(ii) महामानसी–दि०	मयूर (या गरुड)	चार	फल, सर्प (या इढ़ि या खड्ग ?), चक्र, वरदमुद्रा बाण, धनुष, वज्र, चक्र (अपराजितपृच्छा)	
१७	(i) बला–श्वे०	मयूर	चार	बीजपूरक, शूल (या त्रिशूल), मुषुण्ढि (या पद्म), पद्म	
	(ii) जया–दि०	शूकर	चार या छह	शंख, खड्ग, चक्र, वरदमुद्रा वज्र, चक्र, पाश, अंकुश, फल, वरद-मुद्रा (अपराजितपृच्छा)	
१८	(i) धारणी (या काली)–श्वे०	पद्म	चार	मातुलिंग, उत्पल, पाश (या पद्म), अक्षसूत्र	
	(ii) तारावती (या विजया)–दि०	हंस (या सिंह)	चार	सर्प, वज्र, मृग (या चक्र), वरदमुद्रा (या फल)	
१९	(i) वैरोट्या–श्वे०	पद्म	चार	वरदमुद्रा, अक्षसूत्र, मातुलिंग, शक्ति	
	(ii) अपराजिता–दि०	शरभ	चार	फल, खड्ग, खेटक, वरदमुद्रा	
२०	(i) नरदत्ता–श्वे०	भद्रासन (या सिंह)	चार	वरदमुद्रा, अक्षसूत्र, बीजपूरक, कुम्भ (या शूल या त्रिशूल)	
	(ii) बहुरूपिणी–दि०	कालानाग	चार या दो	खेटक, खड्ग, फल, वरदमुद्रा खड्ग, खेटक (अपराजितपृच्छा)	
२१	(i) गान्धारी (या मालिनी)–श्वे०	हंस	चार या आठ	वरदमुद्रा, खड्ग, बीजपूरक, कुम्भ (या शूल या फलक) अक्षमाला, वज्र, परशु, नकुल, वरद-मुद्रा, खड्ग, खेटक, मातुलिंग (देवतामूर्तिप्रकरण)	
	(ii) चामुण्डा (या कुसुम-मालिनी)–दि०	मकर (या मर्कट)	चार या आठ	दण्ड, खेटक, अक्षमाला, खड्ग शूल, खड्ग, मुद्गर, पाश, वज्र, चक्र, डमरु, अक्षमाला (अपराजितपृच्छा)	
२२	अम्बिका (या कुष्माण्डी या आम्रा-देवी)–(क) श्वे०	सिंह	चार	मातुलिंग (या आम्रलुम्बि), पाश, पुत्र, अंकुश	एक पुत्र समीप ही निरूपित होगा

सं०	यक्षी	वाहन	भुजा-सं०	आयुध	अन्य लक्षण
	(ख) दि०	सिंह	दो	आम्रलुम्बि, पुत्र । फल, वरदमुद्रा (अपराजितपृच्छा)	दूसरा पुत्र आम्र-वृक्ष की छाया में अवस्थित यक्षी के समीप होगा
२३	पद्मावती-(क) श्वे०	कुक्कुट-सर्प (या कुक्कुट)	चार	पद्म, पाश, फल, अंकुश	शीर्षभाग में त्रिसर्पफणछत्र
	(ख) दि०	पद्म (या कुक्कुट-सर्प या कुक्कुट)	चार, छह, चौबीस	(i) अंकुश, अक्षसूत्र (या पाश), पद्म, वरदमुद्रा (ii) पाश, खड्ग, शूल, अर्धचन्द्र, गदा, मुसल (iii) शंख, खड्ग, चक्र, अर्धचन्द्र, पद्म, उत्पल, धनुष, शक्ति, पाश, अंकुश, घण्टा, बाण, मुसल, खेटक, त्रिशूल, परशु, कुन्त, भिण्ड, माला, फल, गदा, पत्र, पल्लव, वरदमुद्रा	शीर्षभाग में तीन सर्पफणों का छत्र
२४	(i) सिद्धायिका–श्वे०	सिंह (या गज)	चार या छह	पुस्तक, अभयमुद्रा, मातुलिंग (या पाश), बाण (या वीणा या पद्म) । पुस्तक, अभयमुद्रा, वरदमुद्रा, खरायुध, वीणा, फल (मन्त्राधिराजकल्प)	
	(ii) सिद्धायिनी–दि०	भद्रासन (या सिंह)	दो	वरदमुद्रा (या अभयमुद्रा), पुस्तक	

परिशिष्ट–३

महाविद्या-मूर्तिविज्ञान-तालिका

सं० महाविद्या	वाहन	भुजा-सं०	आयुध
१ रोहिणी–(क) श्वे०	गाय	चार	शर, चाप, शंख, अक्षमाला
(ख) दि०	पद्म	चार	शंख (या शूल), पद्म, फल, कलश (या वरदमुद्रा)
२ प्रज्ञप्ति–(क) श्वे०	मयूर	चार	वरदमुद्रा, शक्ति, मातुलिंग, शक्ति (निर्वाणकलिका); त्रिशूल, दण्ड, अभयमुद्रा, फल (मन्त्राधिराजकल्प)
(ख) दि०	अश्व	चार	चक्र, खड्ग, शंख, वरदमुद्रा
३ वज्रशृंखला–(क) श्वे०	पद्म	चार	वरदमुद्रा, दो हाथों में शृंखला, पद्म (या गदा)
(ख) दि०	पद्म (या गज)	चार	शृंखला, शंख, पद्म, फल
४ वज्रांकुशा–(क) श्वे०	गज	चार	वरदमुद्रा, वज्र, फल, अंकुश (निर्वाणकलिका); खड्ग, वज्र, खेटक, शूल (आचारदिनकर); फल, अक्षमाला, अंकुश, त्रिशूल (मन्त्राधिराजकल्प)
(ख) दि०	पुष्पयान (या गज)	चार	अंकुश, पद्म, फल, वज्र
५ अप्रतिचक्रा या			
चक्रेश्वरी–श्वे०	गरुड	चार	चारों हाथों में चक्र प्रदर्शित होगा
जांबूनदा–दि०	मयूर	चार	खड्ग, शूल, पद्म, फल
६ नरदत्ता (या पुरुषदत्ता)–			
(क) श्वे०	महिष (या पद्म)	चार	वरदमुद्रा (या अभयमुद्रा), खड्ग, खेटक, फल
(ख) दि०	चक्रवाक (कलहंस)	चार	वज्र, पद्म, शंख, फल
७ काली या कालिका–			
(क) श्वे०	पद्म	चार	अक्षमाला, गदा, वज्र, अभयमुद्रा (निर्वाणकलिका); त्रिशूल, अक्षमाला, वरदमुद्रा, गदा (मन्त्राधिराजकल्प)
(ख) दि०	मृग	चार	मुसल, खड्ग, पद्म, फल
८ महाकाली–(क) श्वे०	मानव	चार	वज्र (या पद्म), फल (या अभयमुद्रा), घण्टा, अक्षमाला
(ख) दि०	शरभ (अष्टापदपशु)	चार	शर, कार्मुक, असि, फल
९ गौरी–(क) श्वे०	गोधा (या वृषभ)	चार	वरदमुद्रा, मुसल (या दण्ड), अक्षमाला, पद्म
(ख) दि०	गोधा	हाथों की सं० का अनुल्लेख	भुजाओं में केवल पद्म के प्रदर्शन का निर्देश है।
१० गान्धारी–(क) श्वे०	पद्म	चार	वज्र (या त्रिशूल), मुसल (या दण्ड), अभयमुद्रा, वरदमुद्रा
(ख) दि०	कूर्म	चार	हाथों में केवल चक्र और खड्ग का उल्लेख है।

सं०	महाविद्या	वाहन	भुजा-सं०	आयुध
११	(i) सर्वास्त्रमहाज्वाला या ज्वाला–श्वे०	शूकर (या कलहंस या बिल्ली)	चार	दो हाथों में ज्वाला; या चारों हाथों में सर्प
	(ii) ज्वालामालिनी–दि०	महिष	आठ	धनुष, खड्ग, बाण (या चक्र), फलक आदि। देवी ज्वाला से युक्त है।
१२	मानवी–(क) श्वे०	पद्म	चार	वरदमुद्रा, पाश, अक्षमाला, वृक्ष (विटप)
	(ख) दि०	शूकर	चार	मत्स्य, त्रिशूल, खड्ग, एक भुजा की सामग्री का अनुल्लेख है
१३	(i) वैरोट्या–श्वे०	सर्प (या गरुड या सिंह)	चार	सर्प, खड्ग, खेटक, सर्प (या वरदमुद्रा)
	(ii) वैरोटी–दि०	सिंह	चार	करों में केवल सर्प के प्रदर्शन का उल्लेख है
१४	(i) अच्छुप्ता–श्वे०	अश्व	चार	शर, चाप, खड्ग, खेटक
	(ii) अच्युता–दि०	अश्व	चार	ग्रन्थों में केवल खड्ग और वज्र धारण करने के उल्लेख हैं।
१५	मानसी–(क) श्वे०	हंस (या सिंह)	चार	वरदमुद्रा, वज्र, अक्षमाला, वज्र (या त्रिशूल)
	(ख) दि०	सर्प	हाथों की संख्या का अनुल्लेख है	दो हाथों के नमस्कार-मुद्रा मे होने का उल्लेख है।
१६	महामानसी–(क) श्वे०	सिंह (या मकर)	चार	खड्ग, खेटक, जलपात्र, रत्न (या वरद-या-अभय-मुद्रा)
	(ख) दि०	हंस	चार	देवी के हाथ प्रणाम-मुद्रा मे होंगे (प्रतिष्ठासारसंग्रह); वरदमुद्रा, अक्षमाला, अंकुश, पुष्प हार (प्रतिष्ठासारोद्धार एवं प्रतिष्ठातिलकम्)

परिशिष्ट–४

पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या

अभयमुद्रा : संरक्षण या अभयदान की सूचक एक हस्तमुद्रा जिसमें दाहिने हाथ की खुली हथेली दर्शक की ओर प्रदर्शित होती है।

अष्ट-महाप्रातिहार्य : अशोक वृक्ष, दिव्य-ध्वनि, सुरपुष्पवृष्टि, त्रिछत्र, सिंहासन, चामरधर, प्रभामण्डल एवं देव-दुन्दुभि।

अष्टमांगलिक चिह्न : स्वस्तिक, श्रीवत्स, नन्द्यावर्त, वर्धमानक, भद्रासन, कलश, दर्पण एवं मत्स्य (या मत्स्य-युग्म)। श्वेतांबर और दिगंबर परम्परा की सूचियों में कुछ भिन्नता दृष्टिगत होती है।

आयागपट : जिनों (अर्हतों) के पूजन के निमित्त स्थापित वर्गाकार प्रस्तर पट्ट जिसे लेखों में आयागपट या पूजाशिला पट कहा गया है। इन पर जिनों की मानव मूर्तियों और प्रतीकों का साथ-साथ अंकन हुआ है।

उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी : जैन कालचक्र का विभाजन। प्रत्येक युग में २४ जिनों की कल्पना की गई है। उत्सर्पिणी धर्म एवं संस्कृति के विकास का और अवसर्पिणी अवसान या ह्रास का युग है। वर्तमान युग अवसर्पिणी युग है।

उपसर्ग : पूर्व जन्मों की वैरी एवं दुष्ट आत्माओं तथा देवताओं द्वारा जिनों की तपस्या में उपस्थित विघ्न।

कायोत्सर्ग-मुद्रा या खड्गासन : जिनों के निरूपण से सम्बन्धित मुद्रा जिसमें समभंग में खड़े जिन की दोनों भुजाएं लंबवत् घुटनों तक प्रसारित होती हैं। दोनों चरण एक दूसरे से और हाथ शरीर से सटे होने के स्थान पर थोड़ा अलग होते हैं।

जिन : शाब्दिक अर्थ विजेता, अर्थात् जिसने कर्म और वासना पर विजय प्राप्त कर लिया हो। जिन को ही तीर्थंकर भी कहा गया। जैन देवकुल के प्रमुख आराध्य देव।

जिन-चौमुखी या प्रतिमा-सर्वतोभद्रिका : वह प्रतिमा जो सभी ओर से शुभ या मंगलकारी है। इसमें एक ही शिलाखण्ड में चारों ओर चार जिन प्रतिमाएं ध्यानमुद्रा या कायोत्सर्ग में निरूपित होती हैं।

जिन-चौबीसी या चतुर्विंशति-जिन-पट्ट : २४ जिनों की मूर्तियों से युक्त पट्ट; या मूलनायक के परिकर में लांछन-युक्त या लांछन-विहीन अन्य २३ जिनों की लघु मूर्तियों से युक्त जिन-चौबीसी।

जीवन्तस्वामी महावीर : वस्त्राभूषणों से सज्जित महावीर की तपस्यारत कायोत्सर्ग मूर्ति। महावीर के जीवन-काल में निर्मित होने के कारण जीवन्तस्वामी या जीवितस्वामी संज्ञा। दिगंबर परम्परा में इसका अनुल्लेख है। अन्य जिनों के जीवन्तस्वामी स्वरूप की भी कल्पना की गई।

तीर्थंकर : कैवल्य प्राप्ति के पश्चात् साधु-साध्वियों एवं श्रावक-श्राविकाओं के सम्मिलित चतुर्विध तीर्थ की स्थापना के कारण जिनों को तीर्थंकर कहा गया।

त्रितीर्थी-जिन-मूर्ति : इन मूर्तियों में तीन जिनों को साथ-साथ निरूपित किया गया। प्रत्येक जिन अष्ट-प्रातिहार्यों, यक्ष-यक्षी युगल एवं अन्य सामान्य विशेषताओं से युक्त हैं। कुछ में बाहुबली और सरस्वती भी आमूर्तित हैं। जैन परम्परा में इन मूर्तियों का अनुल्लेख है।

देवताओं के चतुर्वर्ग : भवनवासी (एक स्थल पर निवास करने वाले), व्यंतर या वाणमन्तर (भ्रमणशील), ज्योतिष्क (आकाशीय-नक्षत्र से सम्बन्धित) एवं वैमानिक या विमानवासी (स्वर्ग के देवता)।

द्वितीर्थी-जिन-मूर्ति : इन मूर्तियों में दो जिनों को साथ-साथ निरूपित किया गया। प्रत्येक जिन अष्ट-प्रातिहार्यों, यक्ष-यक्षी युगल और अन्य सामान्य विशेषताओं से युक्त हैं। जैन परम्परा में इन मूर्तियों का अनुल्लेख है।

ध्यानमुद्रा या पर्यंकासन या पद्मासन या सिद्धासन : जिनों के दोनों पैर मोड़कर (पद्मासन) बैठने की मुद्रा जिसमें खुली हुई हथेलियां गोद में (बायीं के ऊपर दाहिनी) रखी होती हैं।

नंदीश्वर द्वीप : जैन लोकविद्या का आठवां और अन्तिम महाद्वीप, जो देवताओं का आनन्द स्थल है। यहां ५२ शाश्वत् जिनालय हैं।

पंचकल्याणक : प्रत्येक जिन के जीवन की पांच प्रमुख घटनाएं-च्यवन, जन्म, दीक्षा, कैवल्य (ज्ञान) और निर्वाण (मोक्ष)।

पंचपरमेष्ठि : अर्हत् (या जिन), सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु। प्रथम दो मुक्त आत्माएं हैं। अर्हत् शरीरधारी हैं। पर सिद्ध निराकार हैं।

परिकर : जिन-मूर्ति के साथ की अन्य पार्श्ववर्ती या सहायक आकृतियां।

बिंब : प्रतिमा या मूर्ति।

मांगलिक स्वप्न : संख्या १४ या १६। श्वेतांबर सूची-गज, वृषभ, सिंह, श्रीदेवी (या महालक्ष्मी या पद्मा), पुष्पहार, चन्द्रमा, सूर्य, सिंहध्वज-दण्ड, पूर्णकुम्भ, पद्म सरोवर, क्षीरसमुद्र, देवविमान, रत्नराशि और निर्धूम अग्नि। दिगंबर सूची में सिंहध्वज-दण्ड के स्थान पर नागेन्द्रभवन का उल्लेख है तथा मत्स्य-युगल और सिंहासन को सम्मिलित कर शुभ स्वप्नों की संख्या १६ बताई गई है।

मूलनायक : मुख्य स्थान पर स्थापित प्रधान जिन-मूर्ति।

ललितमुद्रा या ललितासन या अर्धपर्यंकासन : जैन मूर्तियों में सर्वाधिक प्रयुक्त विश्राम का एक आसन जिसमें एक पैर मोड़कर पीठिका पर रखा होता है और दूसरा पीठिका से नीचे लटकता है।

लांछन : जिनों से सम्बन्धित विशिष्ट लक्षण जिनके आधार पर जिनों की पहचान सम्भव होती है।

वरदमुद्रा : वर प्रदान करने की सूचक हस्त-मुद्रा जिसमें दाहिने हाथ की खुली हथेली बाहर की ओर प्रदर्शित होती है और उंगलियां नीचे की ओर झुकी होती हैं।

शलाकापुरुष : ऐसी महान आत्माएं जिनका मोक्ष प्राप्त करना निश्चित है। जैन परम्परा में इनकी संख्या ६३ है। २४ जिनों के अतिरिक्त इसमें १२ चक्रवर्ती, ९ बलदेव, ९ वासुदेव और ९ प्रतिवासुदेव सम्मिलित हैं।

शासनदेवता या यक्ष-यक्षी : जिन प्रतिमाओं के साथ संयुक्त रूप से अंकित देवों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण। जैन परम्परा में प्रत्येक जिन के साथ एक यक्ष-यक्षी युगल की कल्पना की गई जो सम्बन्धित जिन के चतुर्विध संघ के शासक एवं रक्षक देव हैं।

समवसरण : देवनिर्मित सभा जहां केवल-ज्ञान के पश्चात् प्रत्येक जिन अपना प्रथम उपदेश देते हैं और देवता, मनुष्य एवं पशु जगत के सदस्य आपसी कटुता भूलकर उसका श्रवण करते हैं। तीन प्राचीरों तथा प्रत्येक प्राचीर में चार प्रवेश-द्वारों वाले इस भवन में सबसे ऊपर पूर्वाभिमुख जिन की ध्यानस्थ मूर्ति बनी होती है।

सहस्रकूट जिनालय : पिरामिड के आकार की एक मन्दिर अनुकृति जिस पर एक सहस्र या अनेक लघु जिन आकृतियां बनी होती हैं।

●

सन्दर्भ-सूची

(क) मूल ग्रंथ-सूची

अंगविज्जा, सं० मुनिपुण्यविजय, प्राकृत ग्रन्थ परिषद् १, बनारस, १९५७

अंतगडदसाओ, सं० पी० एल० वैद्य, पूना, १९३२; अनु० एल० डी० बर्नेट, वाराणसी, १९७३ (पु० मु०)

अपराजितपृच्छा (भुवनदेव कृत), सं० पोपटभाई अंबाशंकर मांकड, गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज, खण्ड ११५, बड़ौदा, १९५०

अभिधान-चिन्तामणि (हेमचंद्रकृत), सं० हरगोविन्द दास बेचरदास तथा मुनि जिनविजय, भावनगर, भाग १, १९१४; भाग २, १९१९

आचारदिनकर (वर्धमानसूरिकृत), बंबई, भाग २, १९२३

आचारांगसूत्र, अनु० एच० जैकोबी, सेक्रेड बुक्स ऑव दि ईस्ट, खण्ड २२, भाग १, (आक्सफोर्ड, १८८४), दिल्ली, १९७३ (पु० मु०)

आदिपुराण (जिनसेनकृत), सं० पन्नालाल जैन, ज्ञानपीठ मूर्ति देवी जैन ग्रन्थमाला, संस्कृत ग्रन्थ संख्या ८, वाराणसी, १९६३

आवश्यकचूर्णि (जिनदासगणि महत्तर कृत), रतलाम, खण्ड १, १९२८; खण्ड २, १९२९

आवश्यकसूत्र (भद्रबाहुकृत), मलयगिरि सूरि की टीका सहित, भाग १, आगमोदय समिति ग्रन्थ ५६, बंबई, १९२८; भाग २, आगमोदय समिति ग्रन्थ ६०, सूरत, १९३२; भाग ३, देवचंदलाल भाई जैन पुस्तकोद्धार ग्रन्थ ८५, सूरत, १९३६

उत्तराध्ययनसूत्र, अनु० एच जैकोबी, सेक्रेड बुक्स ऑव दि ईस्ट, खण्ड ४५, भाग २, (आक्सफोर्ड, १८९५), दिल्ली, १९७३ (पु० मु०); सं० रतनलाल दोशी, सैलन (म० प्र०)

उवासगदसाओ, सं० पी० एल० वैद्य, पूना, १९३०

कल्पसूत्र (भद्रबाहुकृत), अनु० एच० जैकोबी, सेक्रेड बुक्स ऑव दि ईस्ट, खण्ड २२, भाग १ (आक्सफोर्ड, १८८४), दिल्ली, १९७३ (पु० मु०); सं० देवेन्द्र मुनि शास्त्री, शिवान, १९६८

कुमारपालचरित (जयसिंहसूरि कृत), निर्णय सागर प्रेस, बंबई, १९२६

चतुर्विंशतिका (बप्पभट्टिसूरि कृत), अनु० एच० आर० कापडिया, बंबई, १९२६

चन्द्रप्रभचरित्र (वीरनन्दि कृत), सं० अमृतलाल शास्त्री, शोलापुर, १९७१

जैन स्तोत्र सन्दोह, सं० अमरविजय मुनि, खण्ड १, अहमदाबाद, १९३२

तत्त्वार्थसूत्र (उमास्वाति कृत), सं० सुखलाल संघवी, बनारस, १९५२

तिलकमंजरी-कथा (धनपाल कृत), सं० भवदत्त शास्त्री तथा काशीनाथ पाण्डुरंग परब, काव्यमाला ८५, बंबई, १९०३

तिलोयपण्णत्ति (यतिवृषभ कृत), सं० आदिनाथ उपाध्ये तथा हीरालाल जैन, जीवराज जैन ग्रन्थमाला १, शोलापुर, १९४३

त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र (हेमचन्द्रकृत), अनु० हेलेन एम० जानसन, गायकवाड़ ओरियण्टल सिरीज, बड़ौदा, खण्ड १ (१९३१), खण्ड २ (१९३७), खण्ड ३ (१९४९), खण्ड ४ (१९५४), खण्ड ५ (१९६२), खण्ड ६ (१९६२)

दसवेयालिय सुत्त, सं० इ० ल्यूमन, अहमदाबाद, १९३२

देवतामूर्तिप्रकरण, सं० उपेन्द्र मोहन सांख्यतीर्थ, संस्कृत सिरीज १२, कलकत्ता, १९३६

नायाधम्मकहाओ, सं० एन० वी० वैद्य, पूना, १९४०

निर्वाणकलिका (पादलिप्तसूरि कृत), सं० मोहनलाल भगवानदास, मुनि श्रीमोहनलालजी जैन ग्रन्थमाला ५, बंबई, १९२६

नेमिनाथ चरित (गुणविजयसूरि कृत), निर्णयसागर प्रेस, बंबई

पउमचरियम (विमलसूरि कृत), भाग १, सं० एच० जैकोबी, अनु० शांतिलाल एम० वोरा, प्राकृत टेक्स्ट सोसाइटी सिरीज ६, वाराणसी, १९६२

पद्मपुराण (रविषेण कृत), भाग १, सं० पन्नालाल जैन, ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला, संस्कृत ग्रंथांक २०, वाराणसी, १९५८

पद्मानन्दमहाकाव्य या चतुर्विंशति जिन चरित्र (अमरचन्द्रसूरि कृत), पाण्डुलिपि, लाल भाई दलपत भाई भारतीय संस्कृत विद्या मंदिर, अहमदाबाद

पार्श्वनाथ चरित्र (भवदेवसूरि कृत), सं० हरगोविन्द दास तथा बेचर दास, वाराणसी, १९११

पासणाह चरिउ (पद्मकीर्ति कृत), सं० प्रफुल्लकुमार मोदी, प्राकृत ग्रन्थ सोसाइटी, संख्या ८, वाराणसी, १९६५

प्रतिष्ठातिलकम् (नेमिचंद्र कृत), शोलापुर

प्रतिष्ठापर्वन, अनु० जे० हार्टेल, लीपिज, १९०८

प्रतिष्ठापाठ सटीक (जयसेन कृत), अनु० हीराचन्द नेमिचन्द दोशी, शोलापुर, १९२५

प्रतिष्ठासारसंग्रह (वसुनन्दि कृत), पाण्डुलिपि, लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृत विद्या मन्दिर, अहमदाबाद

प्रतिष्ठासारोद्धार (आशाधर कृत), सं० मनोहरलाल शास्त्री, बंबई, १९१७ (वि० सं० १९७४)

प्रबन्धचिन्तामणि (मेरुतुंग कृत), भाग १, सं० जिनविजय मुनि, सिंघी जैन ग्रन्थमाला १, शान्तिनिकेतन (बंगाल), १९३३

प्रभावक चरित (प्रभाचंद्र कृत), सं० जिनविजय मुनि, सिंघी जैन ग्रन्थमाला १३, कलकत्ता, १९४०

प्रवचनसारोद्धार (नेमिचंद्रसूरि कृत), सिद्धसेनसूरि की टीका सहित, अनु० हीरालाल हंसराज, देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार संख्या ५८, बंबई, १९२८

बृहत्संहिता (वराहमिहिर कृत), सं० ए० झा, वाराणसी, १९५९

भगवतीसूत्र (गणधर सुधर्मस्वामी कृत), सं० घेवरचंद भाटिया, शैलान, १९६६

मंत्राधिराजकल्प (सागरचन्दसूरि कृत), पाण्डुलिपि, लालभाई दलपत भाई भारतीय संस्कृत विद्या मन्दिर, अहमदाबाद

मल्लिनाथ चरित्र (विनयचंद्रसूरि कृत), सं० हरगोविन्ददास तथा बेचरदास, यशोविजय जैन ग्रन्थमाला २९, वाराणसी

महापुराण (पुष्पदंत कृत), सं० पी० एल० वैद्य, मानिकचंद दिगंबर जैन ग्रन्थमाला ४२, बंबई, १९४१

महावीर चरितम (गुणचंद्रसूरि कृत), देवचंद लालभाई जैन सिरीज ७५, बंबई, १९२९

मानसार, सं० ३, अनु० प्रसन्न कुमार आचार्य, इलाहाबाद

रूपमण्डन (सूत्रधार मण्डन कृत), सं० बलराम श्रीवास्तव, वाराणसी, वि० सं० २०२१

वसुदेवहिण्डी (संघदास कृत), खण्ड १, सं० मुनि श्रीपुण्यविजय, आत्मानन्द जैन ग्रंथमाला ८०, भावनगर, १९३०

वास्तुविद्या (विश्वकर्मा कृत), दीपार्णव (सं० प्रभाशंकर ओघडभाई सोमपुरा, पालिताणा, १९६०) का २२ वाँ अध्याय

वास्तुसार प्रकरण (ठक्कुर फेरू कृत), अनु० भगवानदास जैन, जैन विविध ग्रन्थमाला, जयपुर, १९३६

विविधतीर्थकल्प (जिनप्रभसूरि कृत), सं० मुनि श्री जिनविजय, सिंघी जैन ग्रंथमाला १०, कलकत्ता-बंबई, १९३४

शान्तिनाथ महाकाव्य (मुनिभद्रसूरि कृत), सं० हरगोविन्ददास तथा बेचरदास, यशोविजय जैन ग्रन्थमाला २०, बनारस, १९४६

समराइच्चकहा (हरिभद्रसूरि कृत), सं० एच० जैकोबी, कलकत्ता, १९२६

समवायांगसूत्र, अनु० घासीलाल जी, राजकोट, १९६२; सं० कन्हैयालाल, दिल्ली, १९६६

स्तुति चतुर्विंशतिका या शोभन स्तुति (शोभनसूरि कृत), सं० एच० आर० कापडिया, बंबई, १९२७

स्थानांगसूत्र, सं० घासीलाल जी, राजकोट, १९६४

हरिवंशपुराण (जिनसेन कृत), सं० पन्नालाल जैन, ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला, संस्कृत ग्रंथांक २७, वाराणसी, १९६२

(ख) आधुनिक ग्रंथ-एवं-लेख-सूची

अग्रवाल, आर० सी०,

(१) 'जोधपुर संग्रहालय की कुछ अज्ञात जैन धातु मूर्तियां', जैन एण्टि०, खं० २२, अं० १, जून १९५५, पृ० ८–१०

(२) 'सम इन्टरेस्टिंग स्कल्पचर्स ऑव दि जैन गाडेस अम्बिका फ्राम मारवाड़', इं०हि०क्वा०, खं० ३२, अं० ४, दिसंबर १९५६, पृ० ४३४–३८

(३) 'सम इन्टरेस्टिंग स्कल्पचर्स ऑव यक्षज़ ऐण्ड कुबेर फ्राम राजस्थान', इं०हि०क्वा०, खं० ३३, अं० ३, सितंबर १९५७, पृ० २००–०७

(४) 'ऐन इमेज ऑव जीवन्तस्वामी फ्राम राजस्थान', अ०ला०बु०, खं० २२, भाग १–२, मई १९५८, पृ० ३२–३४

(५) 'गाडेस अम्बिका इन दि स्कल्पचर्स ऑव राजस्थान', क्वा०ज०मि०सो०, खं ४९, अं० २, जुलाई १९५८, पृ० ८७–९१

(६) 'न्यूली डिस्कवर्ड स्कल्पचर्स फ्राम विदिशा', ज०ओ०इं०, खं० १८, अं० ३, मार्च १९६९, पृ० २५२-५३

अग्रवाल, पी० के०,

'दि ट्रिपल यक्ष स्टैचू फ्राम राजघाट', छवि, वाराणसी, १९७१, पृ० ३४०–४२

अग्रवाल, वी० एस०,

(१) 'दि प्रेसाइडिंग डीटी ऑव चाइल्ड वर्थ अमंग्स्ट दि ऐन्शण्ट जैनज', जैन एण्टि०, खं० २, अं० ४, मार्च १९३७, पृ० ७५–७९

(२) 'सम ब्राह्मेनिकल डीटीज इन जैन रेलिजस आर्ट', जैन एण्टि०, खं० ३, अं० ४, मार्च १९३८, पृ०८३-९२

(३) 'सम आइकानोग्राफिक टर्म्स फ्राम जैन इन्स्क्रिप्शन्स', जैन एण्टि, खं० ५, १९३९–४०, पृ० ४३–४७

(४) 'ए फ्रैग्मेण्टरी स्कल्प्चर ऑव नेमिनाथ इन दि लखनऊ म्यूजियम', जैन एण्टि०, खं० ८, अं० २, दिसंबर १९४२, पृ० ४५-४९

(५) 'मथुरा आयागपट्टज', ज०यू०पी०हि०सो०, सं० १६, भाग १, १९४३, पृ० ५८-६१
(६) 'दि नेटिविटी सीन आन ए जैन रिलीफ फ्राम मथुरा', जैन एण्टि०, सं० १०, १९४४-४५, पृ० १-४
(७) 'ए नोट आन दि गाड नैगमेष', ज०यू०पी०हि०सो०, सं० २०, भाग १-२, १९४७, पृ० ६८-७३
(८) 'कैटलाग आँव दि मथुरा म्यूजियम', ज०यू०पी०हि०सो०, सं० २३, भाग १-२, १९५०, पृ० ३५-१४७
(९) इण्डियन आर्ट, भाग १, वाराणसी, १९६५

अन्निगेरी, ए० एम०,

ए गाइड टू दि कन्नड़ रिसर्च इन्स्टिट्यूट म्यूजियम, धारवाड़, १९५८

अमर, गोपीलाल,

'पतियानदाइ का गुप्तकालीन जैन मन्दिर', अनेकान्त, सं० १९, अं० ६, फरवरी १९६७, पृ० ३४०-४६

अय्यंगर, कृष्णस्वामी,

'दि बप्पभट्टिचरित ऐण्ड दि अर्ली हिस्ट्री ऑव दि गुर्जर एम्पायर', ज०बां०ब्रां०रा०ए०सो०, न्यू सिरीज, सं० ३, अं० १-२, १९२७, पृ० १०१-३३

आडया, जी० एल०,

अर्ली इण्डियन ईकनॉमिक्स (सरका २०० बी० सी०-३०० ए० डी०), बंबई, १९६६

आल्तेकर, ए० एस०,

'ईकनॉमिक कण्डीशन', दि वाकाटक गुप्त एज (सं० आर० सी० मजूमदार तथा ए० एस० आल्तेकर), दिल्ली, १९६७, पृ० ३५५-६२

उन्नियन, एन० जी०,

'रेलिक्स ऑव जैनिजम-आलतूर', ज०इं०हि०, सं० ४४, भाग १, सं० १३०, अप्रैल १९६६, पृ० ५३७-४३

उपाध्याय, एस० सी०,

'ए नोट आन सम मेडिवल इन्स्क्राइब्ड जैन मेटल इमेजेज इन दि आर्किअलाजिकल सेक्सन, प्रिंस ऑव वेल्स म्यूजियम, बाम्बे', ज०गु०रि०सो०, सं० १, अं० ४, पृ० १५८-६१

उपाध्याय, वासुदेव,

(१) दि सोशियो-रेलिजस कण्डीशन ऑव नार्थ इण्डिया (७००-१२०० ए० डी०), वाराणसी, १९६४
(२) 'मिश्रित जैन प्रतिमाएं', जैन एण्टि०, सं० २५, अं० १, जुलाई १९६७, पृ० ४०-४६

एण्डरसन, जे०,

कैटलाग ऐण्ड हैण्डबुक टू दि आर्किअलाजिकल कलेक्शन इन दि इण्डियन म्यूजियम, कलकत्ता, भाग १, कलकत्ता, १८८३

कनिंघम, ए०,

आर्किअलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया रिपोर्ट, वर्ष १८६२-६५, सं० १-२, वाराणसी, १९७२ (पु० मु०); वर्ष १८७१-७२, सं० ३, वाराणसी, १९६६ (पु० मु०)

कापड़िया, एच० आर०,

हिस्ट्री ऑव दि कैनानिकल लिट्रेचर ऑव दि जैनज, बंबई, १९४१

कीलहार्न, एफ०,

'आन ए जैन स्टैचू इन दि हार्निमन म्यूजियम', ज०रा०ए०सो०, १८९८, पृ० १०१–०२

कुमारस्वामी, ए० के०,

(१) 'नोट्स आन जैन आर्ट', जर्नल इण्डियन आर्ट ऐण्ड इण्डस्ट्री, खं० १६, अं० १२०, लन्दन, १९१४, पृ० ८१–९७

(२) केटलाग ऑव दि इण्डियन कलेक्शन्स इन दि म्यूजियम ऑव फाइन आर्ट्स, बोस्टन-जैन पेंटिंग, भाग ४, बोस्टन, १९२४

(३) यक्ष, (वाशिंगटन, १९२८), दिल्ली, १९७१ (पु० मु०)

(४) इण्ट्रोडक्शन टू इण्डियन आर्ट, दिल्ली, १९६९ (पु० मु०)

कुरेशी, मुहम्मद हमीद,

(१) लिस्ट ऑव ऐन्शण्ट मान्युमेण्ट्स इन दि प्राविन्स ऑव बिहार ऐण्ड उड़ीसा, आर्कियलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, न्यू इम्पिरियल सिरीज, खं० ५१, कलकत्ता, १९३१

(२) राजगिर, भारतीय पुरातत्व विभाग, दिल्ली, १९६०

कृष्ण देव,

(१) 'दि टेम्पल्स ऑव खजुराहो इन सेन्ट्रल इण्डिया', एंशि०इ०, अं० १५, १९५९, पृ० ४३–६५

(२) 'मालादेवी टेम्पल् ऐट ग्यारसपुर', म०जै०वि०गो०जु०वा०, बंबई, १९६८, पृ० २६०–६९

(३) टेम्पल्स आव नार्थ इण्डिया, नई दिल्ली, १९६९

क्लाट, जोहान्स,

'नोट्स आन ऐन इन्स्क्राइब्ड स्टैचू ऑव पार्श्वनाथ', इण्डि० एण्टि०, खं० २३, जुलाई १८९४, पृ० १८३

गर्ग, आर० एस०,

'मालवा के जैन प्राच्यावशेष', जै०सि०भा०, खं० २४, अं० १, दिसम्बर १९६४, पृ० ५३–६३

गांगुली, एम०,

हैण्डबुक टू दि स्कल्पचर्स इन दि म्यूजियम ऑव दि बंगीय साहित्य परिषद, कलकत्ता, १९२२

गांगुली, कल्याण कुमार,

(१) 'जैन इमेजेज् इन बंगाल', इण्डि० क०, खं० ६, जुलाई १९३९-अप्रैल १९४०, पृ० १३७–४०

(२) 'सम सिम्बालिक रिप्रेजेन्टेशन्स इन अर्ली जैन आर्ट', जैन जर्नल, खं० १, अं० १, जुलाई १९६६, पृ० ३१–३६

गाड्रे, ए० एस०,

'सेवेन ब्रोन्जेज इन दि बड़ौदा स्टेट म्यूजियम', बु०ब०म्यू०, खं० १, भाग २, १९४४, पृ० ४७–५२

गुप्त, एस० पी० तथा शर्मा, बी० एन०,

'गंधावल और जैन मूर्तियां', अनेकान्त, खं० १९, अं० १–२, अप्रैल-जून १९६६, पृ० १२९–३०

गुप्त, पी० एल०,

दि पटना म्यूजियम केटलाग ऑव दि एन्टिक्विटीज, पटना, १९६५

गुप्ते, आर० एस० तथा महाजन, बी० डी०,

अजन्ता, एलोरा ऐण्ड औरंगाबाद केव्स, बंबई, १९६२

गोपाल, एल०,

दि इकनॉमिक लाईफ ऑव नार्दर्न इण्डिया (सरका ए० डी० ७००–१२००), वाराणसी, १९६५,

घटगे, ए० एम०,

(१) 'पार्श्वंज हिस्टारिसिटी रीकन्सिडर्ड', प्रो०इं०ओ०कां०, १३ वां अधिवेशन, नागपुर यूनिवर्सिटी, अक्तूबर १९४६, नागपुर, १९५१, पृ० ३९५–९७
(२) 'जैनिजम', दि एज ऑव इम्पिरियल यूनिटी (सं० आर० सी० मजूमदार तथा ए० डी० पुसाल्कर), बंबई, १९६० (पु० मु०), पृ० ४११–२५
(३) 'जैनिजम', दि क्लासिकल एज (सं० आर० सी० मजूमदार तथा ए० डी० पुसाल्कर), बंबई, १९६२ (पु० मु०), पृ० ४०८–१८

घोष, अमलानंद (संपादक),

जैन कला एवं स्थापत्य (३ खण्ड), भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, १९७५

घोषाल, यू० एन०,

(१) 'ईकनॉमिक लाईफ', 'दि एज ऑव इम्पिरियल कन्नौज (सं० आर० सी० मजूमदार तथा ए० डी० पुसाल्कर), बंबई, १९५५, पृ० ३९९–४०८
(२) 'ईकनॉमिक लाईफ', दि स्ट्रगल फार एम्पायर (सं० आर० सी० मजूमदार तथा ए० डी० पुसाल्कर), बंबई, १९५७, पृ० ५१७–२१

चक्रवर्ती, एस० एन,

'नोट आन ऐन इन्स्क्राइब्ड ब्रोन्ज जैन इमेज इन दि प्रिंस ऑव वेल्स म्यूजियम', बु०प्रि०वे०म्यू०वे०इं०, अं०३, १९५२–५३ (१९५४), पृ० ४०–४२

चंदा, आर० पी०,

(१) 'इण्डियन म्यूजियम, कलकत्ता', आ०स०इं०ऐ०रि०, १९२५–२६, पृ० १५१–५४
(२) 'जैन रिमेन्स ऐट राजगिर', आ०स०इं०ऐ०रि०, १९२५–२६, पृ० १२१–२७
(३) 'दि श्वेतांबर ऐण्ड दिगंबर इमेजेज ऑव दि जैनज', आ०स०इं०ऐ०रि०, १९२५–२६, पृ० १७६–८२
(४) 'सिन्थ फाइव थाऊजण्ड इयर्स एगो', माडर्न रिव्यू, खं० ५२, अं० २, अगस्त १९३२, पृ० १५१–६०
(५) मेडिवल इण्डियन स्कल्पचर इन दि ब्रिटिश म्यूजियम, लन्दन, १९३६

चंद्र, जगदीश,

'जैन आगम साहित्य में यक्ष', जैन एण्टि०, खं० ७, अं० २, दिसम्बर १९४१, पृ० ९७–१०४

चंद्र, प्रमोद,

स्टोन स्कल्पचर इन दि एलाहाबाद म्यूजियम, बंबई, १९७०

चंद्र, मोती,

सार्थवाह, पटना, १९५३

चौधरी, रवीन्द्रनाथ,

(१) 'आर्कियालाजिकल सर्वे रिपोर्ट ऑव बांकुरा डिस्ट्रिक्ट', माडर्न रिव्यू, खं० ८६, अं० १, जुलाई १९४९, पृ० २११–१२

(२) 'परपत टेम्पल्', माडर्न रिव्यू, खं० ८८, अं० ४, अक्तूबर १९५०, पृ० २९६–९८

चौधरी, गुलाबचंद्र,

पालिटिकल हिस्ट्री ऑव नार्दर्न इण्डिया फ्राम जैन सोर्सेज (सरका ६५० ए० डी० टू १३०० ए० डी०), अमृतसर, १९६३

जयन्तविजय, मुनिश्री,

होली आबू (अनु० यू० पी० शाह), भावनगर, १९५४

जानसन, एच० एम०,

'श्वेतांबर जैन आइकानोग्राफी', इण्डि०एण्टि, खं० ५६, १९२७, पृ० २३–२६

जायसवाल, के० पी०,

(१) 'जैन इमेज ऑव मौर्य पिरियड', ज०बि०उ०रि०सो०, खं० २३, भाग १, १९३७, पृ० १३०–३२

(२) 'ओल्डेस्ट जैन इमेजेज डिस्कवर्ड', जैन एण्टि०, खं० ३, अं० १, जून १९३७, पृ० १७–१८

जेनास, ई० तथा ऑबोयर, जे०,

खजुराहो, हेग, १९६०

जैन, कामताप्रसाद,

(१) 'जैन मूर्तियां', जैन एण्टि०, खं० २, अं० १, १९३५, पृ० ६–१७

(२) 'दि एण्टिक्विटी ऑव जैनिजम इन साऊथ इण्डिया', इण्डि०क०, खं० ४, अप्रैल १९३८, पृ० ५१२-१६

(३) 'मोहनजोदड़ो एण्टिक्विटीज ऐण्ड जैनिजम', जैन एण्टि०, खं० १४, अं० १, जुलाई १९४८, पृ० १-७

(४) 'शासनदेवी अम्बिका और उनकी मान्यता का रहस्य', जैन एण्टि, खं० २०, अं० १, जून १९५४, पृ० २८–४१

(५) 'दि स्टैचू ऑव पद्मप्रभ ऐट ऊदंमऊ', आ०ऑह्०, खं० १३, अं० ९, सितम्बर १९६३, पृ० १९१–९२

जैन, के० सी०,

जैनिजम इन राजस्थान, शोलापुर, १९६३

जैन, छोटेलाल,

जैन बिबलिओग्राफी, कलकत्ता, १९४५

जैन, जे० सी०,

लाईफ इन ऐन्शण्ट इण्डिया : ऐज डेपिक्टेड इन दि जैन केनन्स, बम्बई, १९४७

जैन, ज्योतिप्रसाद, *

(१) 'जैन एन्टिक्विटीज इन दि हैदराबाद स्टेट', जैन एण्टि०, खं० १९, अं० २, दिसम्बर १९५३, पृ० १२-१७

(२) 'देवगढ़ और उसका कला वैभव', जैन एण्टि, खं० २१, अं० १, जून १९५५, पृ० ११–२२

(३) 'आइकानोग्राफी ऑव दि सिक्सटीन्थ तीर्थंकर', बा०ऑहि०, सं०९, अं०९, सितम्बर १९५९, पृ०२७८-७९
(४) दि जैन सोर्सेज ऑव दि हिस्ट्री ऑव ऐन्शण्ट इण्डिया (१०० बी० सी०-ए० डी० ९००), दिल्ली, १९६४
(५) 'जेनिसिस ऑव जैन लिट्रेचर ऐण्ड दि सरस्वती मूवमेण्ट', सं०पु०प०, अं० ९, जून १९७२, पृ० ३०-३३

जैन, नीरज,

(१) 'नवागढ़ : एक महत्वपूर्ण मध्ययुगीन जैन तीर्थ', अनेकान्त, वर्ष १५, अं० ६, फरवरी १९६३, पृ० २७७-७८
(२) 'पतियानदाई मन्दिर की मूर्ति और चौबीस जिन शासनदेवियां', अनेकान्त, वर्ष १६, अं० ३, अगस्त १९६३, पृ० ९९-१०३
(३) 'ग्वालियर के पुरातत्व संग्रहालय की जैन मूर्तियां', अनेकान्त, वर्ष १५, अं० ५, दिसम्बर १९६३, पृ० २१४-१६
(४) 'तुलसी संग्रहालय, रामवन का जैन पुरातत्व', अनेकान्त, वर्ष १६, अं० ६, फरवरी १९६४, पृ० २७९-८०
(५) 'बजरंगगढ़ का विशद जिनालय', अनेकान्त, वर्ष १८, अं० २, जून १९६५, पृ० ६५-६६
(६) 'अतिशय क्षेत्र अहार', अनेकान्त, वर्ष १८, अं० ४, अक्तूबर १९६५, पृ० १७७-७९
(७) 'अहार का शान्तिनाथ संग्रहालय', अनेकान्त, वर्ष १८, अं० ५, दिसम्बर १९६५, पृ० २२१-२२

जैन, बनारसीदास,

'जैनिजम इन दि पंजाब', सरूप भारती : डॉ० लक्ष्मण सरूप स्मृति अंक (सं जगन्नाथ अग्रवाल तथा भीमदेव शास्त्री), विश्वेश्वरानन्द इण्डोलाजिकल सिरीज ६, होशियारपुर, १९५४, पृ० २३८-४७

जैन, बालचंद्र,

(१) 'महाकोशल का जैन पुरातत्व', अनेकान्त, वर्ष १७, अं० ३, अगस्त १९६४, पृ० १३१-३३
(२) 'जैन प्रतिमालक्षण', अनेकान्त, वर्ष १९, अं० ३, अगस्त १९६६, पृ० २०४-१३
(३) 'धुबेला संग्रहालय के जैन मूर्ति लेख', अनेकान्त, वर्ष १९, अं० ४, अक्तूबर १९६६, पृ० २४४-४५
(४) 'जैन ब्रोन्जेज फ्राम राजनपुर खिनखिनी', ज०इं०म्यू०, खं० ११, १९५५, पृ० १५-२०
(५) जैन प्रतिमाविज्ञान, जबलपुर, १९७४

जैन, भागचन्द्र,

देवगढ़ की जैन कला, नयी दिल्ली, १९७४

जैन, शशिकान्त,

'सम कामन एलिमेण्ट्स इन दि जैन ऐण्ड हिन्दू पैन्थिआन्स-I-यक्षज ऐण्ड यक्षिणीज', जैन एण्टि०, खं० १८, अं० २, दिसम्बर १९५२, पृ० ३२-३५; खं० १९, अं० १, जून १९५३, पृ० २१-२३

जैन, हीरालाल,

(१) जै०शि०सं० (सं०), भाग १, माणिकचन्द्र दिगंबर जैन ग्रन्थमाला २८, बम्बई, १९२८
(२) 'जैनिजम', दि स्ट्रगल फार एम्पायर (सं० आर० सी० मजूमदार तथा ए० डी० पुसाल्कर), बम्बई, १९६० (पु० मु०), पृ० ४२७-३५
(३) भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, भोपाल, १९६२

जैनी, जे० एल०,

'सम नोट्स ऑन दि दिगंबर जैन आइकानोग्राफी', इण्डि०एण्टि०, खं०३२, दिसम्बर १९०४, पृ० ३३०-३२

जोशी, अर्जुन,

(१) 'ए यूनीक इमेज ऑव ऋषभ फ्राम पोट्टासिंगीदी', उ०हि०रि०ज०, खं०१०, अं०३, १९६१, पृ०७४-७६

(२) 'फर्दर लाइट ऑन दि रिमेन्स ऐट पोट्टासिंगीदी', उ०हि०रि०ज०, खं०१०, अं०४, १९६२, पृ०३०-३२

जोशी, एन० पी०,

(१) 'यूस ऑव आस्पिशस सिम्बल्स इन दि कुषाण आर्ट ऐट मथुरा', डॉ० मिराशी फेलिसिटेशन वाल्यूम (सं० वी० टी० देशपाण्डे आदि), नागपुर, १९६५, पृ० ३११-१७

(२) मथुरा स्कल्पचर्स, मथुरा, १९६६

जोहरापुरकर, विद्याधर (सं०),

जै०शि०सं०, माणिकचंद्र दिगंबर जैन ग्रन्थमाला, भाग ४, वाराणसी, १९६४, भाग ५, दिल्ली, १९७१

झा, शक्तिधर,

'हिन्दू डीटीज इन दि जैन पुराणज', डा० सतकारी मुकर्जी फेलिसिटेशन वाल्यूम (सं० बी० पी० सिन्हा आदि) चौखम्बा संस्कृत स्टडीज खण्ड ६९, वाराणसी, १९६९, पृ० ४५८-६५

टाड, जेम्स,

एनाल्स ऐण्ड एन्टिक्विटीज ऑव राजस्थान, खं० २, लन्दन, १९५७

ठाकुर, उपेन्द्र,

'ए हिस्टारिकल सर्वे ऑव जैनिजम इन नार्थ बिहार', ज०बि०रि०सो०, खं० ४५, भाग १-४, जनवरी-दिसम्बर १९५९, पृ० १८८-२०३

ठाकुर, एस० आर०,

केटलाग ऑव स्कल्पचर्स इन दि आर्किअलाजिकल म्यूजियम, ग्वालियर, लश्कर

डगलस, बी०,

'ए जैन ब्रोन्ज फ्राम दि डेकन', ओ०आर्ट, खं० ५, अं० १ (न्यू सिरीज), १९५९, पृ० १६२-६५

डे, सुधीन,

(१) 'टू यूनीक इन्स्क्राइब्ड जैन स्कल्पचर्स', जैन जर्नल, खं० ५, अं० १, जुलाई १९७०, पृ० २४-२६

(२) 'चौमुख—ए सिम्बालिक जैन आर्ट', जैन जर्नल, खं० ६, अं० १, जुलाई १९७१, पृ० २७-३०

ढाकी, एम० ए०,

(१) 'सम अर्ली जैन टेम्पल्स इन वेस्टर्न इण्डिया', म०जै०वि०गो०जु०वा०, बंबई, १९६८, पृ० २९०-३४७

(२) 'विमलवसही की डेट की समस्या' (गुजराती), स्वाध्याय, खं० ९, अं० ३, पृ० ३४९-६४

तिवारी, एम० एन० पी०,

(१) 'भारत कला भवन का जैन पुरातत्व', अनेकान्त, वर्ष २४, अं० २, जून १९७१, पृ० ५१-५२, ५८

(२) 'ए नोट आन दि आइडेन्टिफिकेशन ऑव ए तीर्थंकर इमेज ऐट भारत कला भवन, वाराणसी', जैन जर्नल, खं० ६, अं० १, जुलाई १९७१, पृ० ४१-४३

(३) 'खजुराहो के पार्श्वनाथ मन्दिर की रथिकाओं में जैन देवियां', अनेकान्त, वर्ष २४, अं० ४, अक्तूबर १९७१, पृ० १८३-८४
(४) 'खजुराहो के आदिनाथ मन्दिर के प्रवेश-द्वार की मूर्तियां', अनेकान्त, वर्ष २४, अं० ५, दिसंबर १९७१, पृ० २१८-२१
(५) 'खजुराहो के जैन मन्दिरों के डोर-लिंटल्स पर उत्कीर्ण जैन देवियां', अनेकान्त, वर्ष २४, अं० ६, फरवरी १९७२, पृ० २५१-५४
(६) 'उत्तर भारत में जैन यक्षी चक्रेश्वरी की मूर्तिगत अवतारणा', अनेकान्त, वर्ष २५, अं० १, मार्च-अप्रैल १९७२, पृ० ३५-४०
(७) 'कुम्भारिया के सम्भवनाथ मन्दिर की जैन देवियां', अनेकान्त, वर्ष २५, अं० ३, जुलाई-अगस्त १९७२, पृ० १०१-०३
(८) 'चन्द्रावती का जैन पुरातत्व', अनेकान्त, वर्ष २५, अं० ४, सितंबर-अक्तूबर १९७२, पृ० १४५-४७
(९) 'रिप्रेजेन्टेशन ऑव सरस्वती इन जैन स्कल्पचर्स ऑव खजुराहो', ज०यू०पि०हि०सो०, खं० ३४, अं० ४, अक्तूबर १९७२, पृ० ३०७-१२
(१०) 'ए ब्रीफ सर्वे ऑव दि आइकानोग्राफिक डेटा ऐट कुम्भारिया, नार्थ गुजरात', संबोधि, खं० २, अं० १, अप्रैल १९७३, पृ० ७-१४
(११) 'ए नोट आन ऐन इमेज ऑव राम ऐण्ड सीता आन दि पार्श्वनाथ टेम्पल, खजुराहो, जैन जर्नल, खं० ८, अं० १, जुलाई १९७३, पृ० ३०-३२
(१२) 'ए नोट आन सम बाहुबली इमेजेज फ्राम नार्थ इण्डिया,' ईस्ट वे०, खं० २३, अं० ३-४, सितम्बर-दिसम्बर १९७३, पृ० ३४७-५३
(१३) 'ऐन अन्पब्लिश्ड इमेज ऑव नेमिनाथ फ्राम देवगढ़', जैन जर्नल, खं० ८, अं० २, अक्तूबर १९७३, पृ० ८४-८५
(१४) 'दि आइकानोग्राफी ऑव दि इमेजेज ऑव सम्भवनाथ ऐट खजुराहो', ज०यू०पि०हि०सो०, खं० ३५, अं० ४, अक्तूबर १९७३, पृ० ३-९
(१५) 'दि आइकानोग्राफी ऑव दि सिक्सटीन जैन महाविद्याज ऐज रिप्रेजेण्टेड इन दि सीलिंग ऑव दि शान्तिनाथ टेम्पल, कुम्भारिया', संबोधि, खं० २, अं० ३, अक्तूबर १९७३, पृ० १५-२२
(१६) 'ओसिया से प्राप्त जीवन्तस्वामी की अप्रकाशित मूर्तियां', विश्वभारती, खं० १४, अं० ३, अक्तूबर-दिसम्बर १९७३, पृ० २१५-१८
(१७) 'उत्तर भारत में जैन यक्षी पद्मावती का प्रतिमानिरूपण', अनेकान्त, वर्ष २७, अंक २, अगस्त १९७४, पृ० ३४-४१
(१८) 'ए यूनीक इमेज ऑव ऋषभनाथ ऐट आर्किअलाजिकल म्यूजियम, खजुराहो', ज०ओ०इं०, खं० २४, अं० १-२, सितम्बर-दिसम्बर १९७४, पृ० २४७-४९
(१९) 'इमेजेज ऑव अम्बिका आन दि जैन टेम्पल्स ऐट खजुराहो', ज०ओ०इं०, खं० २४, अं० १-२, सितम्बर-दिसम्बर १९७४, पृ० २४३-४६
(२०) 'ए नोट आन ऐन इमेज ऑव ऋषभनाथ इन दि स्टेट म्यूजियम, लखनऊ', ज०यू०पि०हि०सो०, खं० ३६, अं० ४, अक्तूबर १९७४, पृ० १७-२०
(२१) 'उत्तर भारत में जैन यक्षी अम्बिका का प्रतिमानिरूपण', संबोधि, खं० ३, अं० २-३, दिसम्बर १९७४, पृ० २७-४४

(२२) 'ए यूनीक त्रि-तीर्थिक जिन इमेज फ्राम देवगढ़', ललित कला, अं० १७, १९७४, पृ० ४१–४२

(२३) 'सम अन्पब्लिश्ड जैन स्कल्पचर्स ऑव गणेश फ्राम वेस्टर्न इण्डिया', जैन जर्नल, खं० ९, अं० ३, जनवरी १९७५, पृ० ९०–९२

(२४) 'ऐन अन्पब्लिश्ड जिन इमेज इन दि भारत कला भवन, वाराणसी', वि०इं०ज०, खं० १३, अं० १–२, मार्च-सितम्बर १९७५, पृ० ३७३–७५

(२५) 'दि जिन इमेजेज ऑव खजुराहो विद् स्पेशल रेफरेन्स टु अजितनाथ', जैन जर्नल, खं० १०, अं० १, जुलाई १९७५, पृ० २२–२५

(२६) 'जैन यक्ष गोमुख का प्रतिमानिरूपण', श्रमण, वर्ष २७, अं० ९, जुलाई १९७६, पृ० २९–३६

(२७) 'दि आइकानोग्राफी ऑव यक्षी सिद्धायिका', ज०ए०सो०, खं० १५, अं० १–४, १९७३ (मई १९७७), पृ० ९७–१०३

(२८) 'जिन इमेजेज इन दि आर्किअलाजिकल म्यूजियम, खजुराहो', महावीर ऐण्ड हिज टीचिंग्स, (सं० ए०एन० उपाध्ये आदि), भगवान् महावीर २५०० वां निर्वाण महोत्सव समिति, बंबई, १९७७, पृ० ४०९–२८

त्रिपाठी, एल० के०,

(१) एवोल्यूशन ऑव टेम्पल् आर्किटेक्चर इन नार्दर्न इण्डिया, पी–एच्० डी० की अप्रकाशित थीसिस, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, १९६८

(२) 'दि एराटिक स्कल्पचर्स ऑव खजुराहो ऐण्ड देयर प्राबेबल एक्सप्लानेशन', भारती, अं० ३, १९५९–६०, पृ० ८२–१०४

दत्त, कालीदास,

(१) 'दि एन्टिक्विटीज ऑव खारी', ऐनुअल रिपोर्ट, वारेन्द्र रिसर्च सोसाइटी, १९२८–२९, पृ० १–११

(२) 'सम अर्ली आर्किअलाजिकल फाइन्ड्स ऑव दि सुन्दरबन', माडर्न रिव्यू, खं० ११४, अं० १, जुलाई १९६३, पृ० ३९–४४

दत्त, जी० एस०,

'दि आर्ट ऑव बंगाल', माडर्न रिव्यू, खं० ५१, अं० ५, पृ० ५१९–२९

दयाल, आर०पी०,

'इम्पार्टेण्ट स्कल्पचर्स ऐडेड टु दि प्राविन्शियल म्यूजियम लखनऊ', ज०यू०पी०हि०सो०, खं० ७, भाग २, नवम्बर १९३४, पृ० ७०–७४

दश, एम० पी०,

'जैन एन्टिक्विटीज फ्राम चरंपा', उ०हि०रि०ज०, खं० ११, अं० १, १९६२, पृ० ५०–५३

दि वे ऑव बुद्ध, पब्लिकेशन डिविजन, गवर्नमेण्ट ऑव इण्डिया, दिल्ली

दीक्षित, एस० के०,

ए गाइड टु दि स्टेट म्यूजियम धुबेला (नवगांव), विन्ध्यप्रदेश, नवगांव, १९५६

दीक्षित, के० एन०,

'सिक्स स्कल्पचर्स फ्राम महोबा', मे०आ०स०इं०, अं० ८, कलकत्ता, १९२१, पृ० १–४

देवकर, वी० एल०,

(१) 'टू रीसेन्टली एक्वायर्ड जैन ब्रोन्जेज इन दि बड़ौदा म्यूजियम', बु०म्यू०पि०गै०, सं० १४, १९६२, पृ० ३७–३८

(२) 'दू जैन तीर्थंकर इमेज रीसेन्टली एक्वायर्ड बाइ दि बड़ौदा म्यूजियम', बु०म्यू०पि०गै०, सं० १९, १९६५–६६, पृ० ३५–३६

देशपाण्डे, एम० एन०,

'कृष्ण लिजेण्ड इन दि जैन केनानिकल लिट्रेचर', जैन एण्टि०, सं० १०, अं० १, जून १९४४, पृ० २५–३१

देसाई, पी० बी०,

(१) जैनिजम इन साऊथ इण्डिया ऐण्ड सम जैन एपिग्राफ्स, जीवराज जैन ग्रन्थमाला ६, शोलापुर, १९६३

(२) 'यक्षी इमेजेज इन साऊथ इण्डियन जैनिजम', डॉ० मिराशी फेलिसिटेशन वाल्यूम, (सं० वी०टी० देशपाण्डे आदि), नागपुर, १९६५, पृ० ३४४–४८

दोशी, बेचरदास,

जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग १, वाराणसी, १९६६

नाहटा, अगरचन्द,

(१) 'तालघर में प्राप्त १६० जिन प्रतिमाएं', अनेकान्त, वर्ष १९, अं० १–२, १९६६, (अप्रैल-जून), पृ० ८१–८३

(२) 'भारतीय वास्तुशास्त्र में जैन प्रतिमा सम्बन्धी ज्ञातव्य', अनेकान्त, वर्ष २०, अं० ५, दिसम्बर १९६७, पृ० २०७–१५

नाहटा, भंवरलाल,

'तालागुडी की जैन प्रतिमा', जैन जगत, वर्ष १३, अं०९–११, दिसम्बर १९५९-फरवरी १९६०, पृ०६०-६१

नाहर, पी०सी०,

(१) जैन इन्स्क्रिप्शन्स, भाग १, जैन विविध साहित्य शास्त्रमाला ८, कलकत्ता, १९१८

(२) 'नोट्स आन दू जैन इमेजेज फाम साऊथ इण्डिया', इण्डि०क०, सं० १, अं० १–४, जुलाई १९३४-अप्रैल १९३५, पृ० १२७–२८

निगम, एम० एल०,

(१) 'इम्पैक्ट ऑव जैनिजम ऑन मथुरा आर्ट', ज०यू०पी०हि०सो० (न्यू सिरीज), सं० १०, भाग १, १९६१, पृ० ७–१२

(२) 'ग्लिम्पसेस ऑव जैनिजम थ्रू आर्किअलाजी इन उत्तर प्रदेश', म०जै०वि०गो०जु०वा०, बंबई, १९६८, पृ० २१३–२०

पाटिल, डी० आर०,

दि एण्टिक्वेरियन रिमेन्स इन बिहार, हिस्टारिकल रिसर्च सिरीज ४, पटना, १९६३

पुरी, बी० एन०,

(१) दि हिस्ट्री ऑव दि गुर्जर-प्रतिहारज, बंबई, १९५७

(२) 'जैनिजम इन मथुरा इन दि अर्ली सेन्चुरीज ऑव दि क्रिश्चियन एरा', म०जै०वि०गो०जु०वा०, बंबई, १९६८, पृ० १५६–६१

पुसालकर, ए० डी०,

'जैनिजम', दि एज ऑव इम्पिरियल कन्नौज (सं० आर० सी० मजूमदार तथा ए० डी० पुसालकर), बंबई, १९६४, पृ० २८८-९६

प्रसाद, एच० के०,

'जैन ब्रोन्ज़ेज इन दि पटना म्यूज़ियम', म०जै०वि०गो०जु०वा०, बंबई, १९६८, पृ० २७५-८१

प्रसाद, त्रिवेणी,

'जैन प्रतिमाविधान', जैन एण्टि०, खं० ४, अं० १, जून १९३७, पृ० १६-२३

प्रेमी, नाथूराम,

जैन साहित्य और इतिहास, बंबई, १९५६

फ्लीट, जे० एफ०,

कार्पस इन्स्क्रिप्शनम इण्डिकेरम, खं० ३, वाराणसी, १९६३ (पु०मु०)

बनर्जी, आर० डी०,

ईस्टर्न इण्डियन स्कूल ऑव मेडिवल स्कल्पचर, दिल्ली, १९३३

बनर्जी, ए०,

(१) 'टू जैन इमेजेज', ज०बि०उ०रि०सो०, खं० २८, भाग १, १९४२, पृ० ४४

(२) 'जैन एन्टिक्विटीज इन राजगिर', इं०हि०क्वा०, खं० २५, अं० ३, सितम्बर १९४९, पृ० २०५-१०

(३) 'ट्रेसेज़ ऑव जैनिजम इन बंगाल', ज०यू०पी०हि०सो०, खं० २३, भाग १-२, १९५०, पृ० १६४-६८

(४) 'जैन आर्ट थ्रू दि एजेज', आचार्य भिक्षु स्मृति ग्रन्थ (सं० सतकारि मुखर्जी आदि), कलकत्ता, १९६१, पृ० १६७-९०

बनर्जी, जे० एन०,

(१) 'जैन इमेजेज', दि हिस्ट्री ऑव बंगाल (सं० आर० सी० मजूमदार), खं० १, ढाका, १९४३, पृ० ४६४-६५

(२) दि डीवेलपमेण्ट ऑव हिन्दू आइकानोग्राफी, कलकत्ता, १९५६

(३) 'जैन आइकन्स', दि एज ऑव इम्पिरियल यूनिटी (सं० आर० सी० मजूमदार तथा ए० डी० पुसालकर), बंबई, १९६०, पृ० ४२५-३१

(४) 'आइकानोग्राफी', दि क्लासिकल एज (सं० आर० सी मजूमदार तथा ए० डी० पुसालकर), बंबई, १९६२, पृ० ४१८-१९

(५) 'आइकानोग्राफी', दि एज ऑव इम्पिरियल कन्नौज (सं० आर० सी० मजूमदार तथा ए० डी० पुसालकर), बंबई, १९६४, पृ० २९६-३००

बनर्जी, प्रियतोष,

'ए नोट ऑन दि वरशिप ऑव इमेजेज इन जैनिजम (सरका २०० बी० सी०-२०० ए० डी०), ज०बि०रि०सो०, खं० ३६, भाग १-२, १९५०, पृ० ५७-६५

बनर्जी-शास्त्री, ए०,

'मौर्यन स्कल्पचर्स फ्राम लोहानीपुर, पटना', ज०बि०उ०रि०सो०, सं० २६, भाग २, जून १९४०, पृ० १२०–२४

बर्जेस, जे०,

'दिगंबर जैन आइकानोग्राफी', इण्डि०एण्टि०, सं० ३२, १९०३, पृ० ४५९–६४

वाजपेयी, के० डी०,

(१) 'जैन इमेज ऑव सरस्वती इन दि लखनऊ म्यूजियम', जैन एण्टि, सं० ११, अं० २, जनवरी १९४६, पृ० १–४

(२) 'न्यू जैन इमेजेज इन दि मथुरा म्यूजियम', जैन एण्टि, सं० १३, अं० २, जनवरी १९४८, पृ० १०-११

(३) 'सम न्यू मथुरा फाइन्ड्स', ज०यू०पी०हि०सो०, सं० २१, भाग १–२, १९४८, पृ० ११७–३०

(४) 'पार्श्वनाथ किले के जैन अवशेष', चन्दाबाई अभिनन्दन ग्रन्थ (सं० श्रीमती सुशीला सुल्तान सिंह जैन आदि), आरा, १९५४, पृ० ३८८–८९

(५) 'मध्यप्रदेश की प्राचीन जैन कला', अनेकान्त, वर्ष १७, अं० ३, अगस्त १९६४, पृ० ९८–९९; वर्ष २८, १९७५, पृ० ११५–१६

बाल सुब्रह्मण्यम, एस० आर० तथा राजू०, वी० वी०,

'जैन वेस्टिजेज इन दि पुडुकोट्टा स्टेट', क्वा०ज०मै०स्टे०, सं० २४, अं० ३, जनवरी १९३४, पृ० २११–१५

बैरेट, डगलस,

(१) 'ए ग्रुप ऑव ब्रोन्जेज फ्राम दि डॅकन', ललित कला, अं० ३–४, १९५६–५७, पृ० ३९–४५

(२) 'ए जैन ब्रोन्ज फ्राम दि डॅकन', ओ०आर्ट, सं० ५, अं० १ (न्यू सिरीज), १९५९, पृ० १६२–६५

ब्राउन, डब्ल्यू० एन०,

ए डेस्क्रिप्टिव ऐण्ड इलस्ट्रेटेड केटलाग ऑव मिनियेचर पेन्टिंग्स ऑव दि जैन कल्पसूत्र, वाशिंगटन, १९३४

ब्राउन, पर्सी,

इण्डियन आर्किटेक्चर (बुद्धिस्ट ऐण्ड हिन्दू पिरियड्स), बंबई, १९७१ (पु० मु०)

ब्रुन, क्लाज,

(१) 'दि फिगर ऑव दि टू लोअर रिलिफ्स आन दि पार्श्वनाथ टेम्पल् ऐट खजुराहो', आचार्य श्रीविजयवल्लभ सूरि स्मारक ग्रन्थ (सं० मोतीचन्द्र आदि), बंबई, १९५६, पृ० ७–३५

(२) 'आइकानोग्राफी ऑव दि लास्ट तीर्थंकर महावीर', जैनयुग, वर्ष १, अप्रैल १९५८, पृ० ३६–३७

(३) 'जैन तीर्थज इन मध्य देश : दुदही', जैनयुग, वर्ष १, नवम्बर १९५८, पृ० २९–३३

(४) 'जैन तीर्थज इन मध्य देश : चांदपुर', जैनयुग, वर्ष २, अप्रैल १९५९, पृ० ६७–७०

(५) दि जिन इमेजेज ऑव देवगढ़, लिडेन, १९६९

ब्यूहलर, जी०,

(१) 'दि दिगंबर जैनज', इण्डि०एण्टि०, सं० ७, १८७८, पृ० २८–२९

(२) 'न्यू जैन इन्स्क्रिप्शन्स फ्राम मथुरा', एपि०इण्डि०, सं० १, कलकत्ता, १८९२, पृ० ३७१–९३

(३) 'फर्दर जैन इन्स्क्रिप्शन्स फ्राम मथुरा', एपि०इण्डि०, सं० १, कलकत्ता, १८९२, पृ० ३९३–९७

(४) 'फर्दर जैन इन्स्क्रिप्शन्स फ्राम मथुरा', एपि०इण्डि०, खं० २ (कलकत्ता, १८९४), दिल्ली, १९७० (पु० मु०), पृ० १९५–२१२

(५) 'स्पेसिमेन्स ऑव जैन स्कल्पचर्स फ्राम मथुरा', एपि०इण्डि०, खं० २ (कलकत्ता, १८९४), दिल्ली, १९७० (पु० मु०), पृ० ३११–२३

(६) आन दि इण्डियन सेक्ट ऑव दि जैनज, लन्दन, १९०३

ब्लाक, टी०,

सप्लेमेण्ट्री केटलाग ऑव दि आर्किअलाजिकल सेक्शन ऑव दि इण्डियन म्यूजियम, कलकत्ता, १९११

भट्टाचार्य, ए० के०,

(१) 'सिम्बालिजम ऐण्ड इमेज वरशिप इन जैनिजम', जैन एण्टि०, खं० १५, अं० १, जून १९४९, पृ०१-६

(२) 'आइकानोग्राफी ऑव सम माइनर डीटीज इन जैनिजम', इं०हि०क्वा०, खं० २९, अं० ४, दिसम्बर १९५३, पृ० ३३२–३९

(३) 'जैन आइकानोग्राफी', आचार्य भिक्षु स्मृति ग्रंथ (सं० सतकारि मुखर्जी आदि), कलकत्ता, १९६१, पृ० १९१–२००

भट्टाचार्य, बी०,

'जैन आइकानोग्राफी', जैनाचार्य श्री आत्मानन्द जन्म शताब्दी स्मारक ग्रंथ (सं० मोहनलाल दलीचन्द देसाई), बंबई, १९३६, पृ० ११४–२१

भट्टाचार्य, बी० सी०,

दि जैन आइकानोग्राफी, लाहौर, १९३९

भट्टाचार्य, बेनायतोष,

दि इण्डियन बुद्धिस्ट आइकानोग्राफी, कलकत्ता, १९६८

भट्टाचार्य, यू० सी०,

'गोमुख यक्ष', ज०यू०पी०हि०सो, खं० ५, भाग २ (न्यू सिरीज), १९५७, पृ०८–९

भण्डारकर, डी० आर०,

(१) 'जैन आइकानोग्राफी', आ०स०इं०ऐ०रि, १९०५–०६, कलकत्ता, १९०८, पृ० १४१–४९

(२) 'जैन आइकानोग्राफी-समवसरण', इण्डि०एण्टि०, खं० ४०, मई १९११, पृ० १२५–३०

(३) 'दि टेम्पल्स ऑव ओसिया', आ०स०इं०ऐ०रि०, १९०८–०९, कलकत्ता, १९१२, पृ० १००–१५

मजमूदार, एम० आर०,

(१) कल्चरल हिस्ट्री ऑव गुजरात, बंबई, १९६५

(२) 'ट्रीटमेण्ट ऑव गाडेस इन जैन ऐण्ड ब्राह्मनिकल पिक्टोरियल आर्ट', जैनयुग, दिसंबर १९५८, पृ० २२–२९

(३) क्रोनोलाजी ऑव गुजरात : हिस्टारिकल ऐण्ड कल्चरल, भाग १, बड़ौदा, १९६०

मजूमदार, आर० सी०,

'जैनिजम इन ऐन्शण्ट बंगाल', म०जै०वि०गो०जु०वा०, बंबई, १९६८, पृ० १३०–३८

मजूमदार, ए० के०,

चौलुक्याज ऑव गुजरात, बंबई, १९५६

मार्शल, जॉन,

मोहनजोदड़ो ऐण्ड दि इण्डस सिविलिजेशन, खंड १, लन्दन, १९३१

मित्र, कालीपद,

(१) 'नोट्स ऑन टू जैन इमेमेज', ज०बि०उ०रि०सो०, खं० २८, भाग २, १९४२, पृ० १९८–२०७

(२) 'आन दि आइडेन्टिफिकेशन ऑव ऐन इमेज', इं०हि०क्वा०, खं० १८, अं० ३, सितंबर १९४२, पृ० २६१–६६

मित्रा, देवला,

(१) 'सम जैन एन्टिक्विटीज फ्राम बांकुड़ा, वेस्ट बंगाल', ज०ए०सो०बं०, खं० २४, अं० २, १९५८ (१९६०), पृ० १३१–३४

(२) 'आइकानोग्राफिक नोट्स', ज०ए०सो०, खं० १, अं० १, १९५९, पृ० ३७–३९

(३) 'शासनदेवीज इन दि खण्डगिरि केव्स', ज०ए०सो०, खं० १, अं० २, १९५९, पृ० १२७–३३

मिराशी, वी० वी०,

कार्पस इन्स्क्रिप्शनम इण्डिकेरम, खं० ४, भाग १, उटकमण्ड, १९५५

मेहता, एन० सी,

'ए मेडिवल जैन इमेज ऑव अजितनाथ—१०५३ ए० डी०', इण्डि०एण्टि०, खं० ५६, १९२७, पृ० ७२-७४

मैती, एस० के०,

इकनॉमिक लाइफ ऑव नार्दर्न इण्डिया इन दि गुप्त पिरियड (सरका ए० डी० ३००–५५०), कलकत्ता, १९५७

यादव, झिनकू,

समराइच्चकहा : एक सांस्कृतिक अध्ययन, वाराणसी, १९७७

रमन, के० वी०,

'जैन वेस्टिजेज अराऊण्ड मद्रास', क्वा०ज०मि०सो, खं० ४९, अं० २, जुलाई १९५८, पृ० १०४–०७

रामचन्द्रन, टी० एन०,

(१) तिरुप्परुत्तिकुणरम ऐण्ड इट्स टेम्पल्स, बु०म०ग०म्यू०न्यू०सि०, खं० १, भाग ३, मद्रास, १९३४

(२) जैन माण्युमेण्ट्स ऐण्ड प्लेसेज ऑव फर्स्ट क्लास इम्पार्टेन्स, कलकत्ता, १९४४

(३) 'हरप्पा ऐण्ड जैनिजम' (अनु० जयभगवान), अनेकान्त, वर्ष १४, जनवरी १९५७, पृ० १५७–६१

रायचौधरी, पी० सी०,

जैनिजम इन बिहार, पटना, १९५६

राव, एस० आर०,

'जैन ब्रोन्जेज फ्राम लिल्वादेव', ज०ई०म्यू०, खं० ११, १९५५, पृ० ३०–३३

राव, एस० एच०,

'जैनिजम इन दि डेकन', ज०इं०हि०, खं० २६, भाग १–३, १९४८, पृ० ४५–४९

राव, टी० ए० गोपीनाथ,

एलिमेण्ट्स ऑव हिन्दू आइकानोग्राफी, खं० १, भाग २, दिल्ली, १९७१ (पु०मु०)

राव, बी० वी० कृष्ण,

'जैनिजम इन आन्ध्रदेश', ज०आं०हि०रि०सो०, खं० १२, पृ० १८५–९६

राव, वाई० वी०,

'जैन स्टैचूज इन आन्ध्र', ज०आं०हि०रि०सो०, खं० २९, भाग ३–४, जनवरी-जुलाई १९६४, पृ० १९

रे, निहाररंजन,

मौर्य ऐण्ड शुंग आर्ट, कलकत्ता, १९६५

रोलैण्ड, बेन्जामिन,

दि आर्ट ऐण्ड आर्किटेक्चर ऑव इण्डिया : बुद्धिस्ट-हिन्दू-जैन, लन्दन, १९५३

लालवानी, गणेश (सं०),

जैन जर्नल (महावीर जयंती स्पेशल नंबर), खं० ३, अं० ४, अप्रैल १९६९

ल्यूजे-डे-ल्यू, जे० ई० वान,

दि सीथियन पिरियड, लिडेन, १९४९

वत्स, एम० एस०,

'ए नोट ऑन टू इमेजेज फ्राम बनीपार महाराज ऐण्ड बैजनाथ', आ०स०इं०ऐ०रि०, १९२९-३० पृ०२२७-२८

विजयमूर्ति (सं०),

जै०शि०सं०, माणिकचंद्र दिगंबर जैन ग्रंथमाला, भाग २, बंबई, १९५२; भाग ३, बंबई, १९५७

विण्टरनित्ज, एम०,

ए हिस्ट्री ऑव इण्डियन लिट्रेचर, खं० २ (बुद्धिस्ट ऐण्ड जैन लिट्रेचर), कलकत्ता, १९३३

विरजी, कृष्णकुमारी जे०,

ऐन्शण्ट हिस्ट्री ऑव सौराष्ट्र, बंबई, १९५२

वेंकटरमन, के० आर०,

'दि जैनज इन दि पुडुकोट्टा स्टेट', जैन एण्टि०, खं० ३, अं० ४, मार्च १९३८, पृ० १०३–०६

वैशालीय, महेन्द्रकुमार,

'कृष्ण इन दि जैन केनन्', भारतीय विद्या, खं० ८ (न्यू सिरीज), अं० ९–१०, सितंबर-अक्टूबर १९४६, पृ० १२३-३१

वोगेल, जे० पीएच्०,

केटलाग ऑव दि आर्कियालाजिकल म्यूजियम ऐट मथुरा, इलाहाबाद, १९१०

शर्मा, आर० सी०,

(१) 'दि अर्ली फेज ऑव जैन आइकानोग्राफी', जैन एण्टि०, खं० २३, अं० २, जुलाई १९६५, पृ० ३२-३८
(२) 'जैन स्कल्पचर्स ऑव दि गुप्त एज इन दि स्टेट म्यूजियम, लखनऊ', म०जै०वि०गो०जु०वा०, बंबई, १९६८, पृ० १४३-५५
(३) 'आर्ट डेटा इन रायपसेणिय', सं०पु०प०, अं० ९, जून १९७२, पृ० ३८-४४

शर्मा, दशरथ,

(१) अर्ली चौहान डाइनेस्टिज, दिल्ली, १९५९
(२) राजस्थान थ्रू दि एजेज, खं० १, बीकानेर, १९६६

शर्मा, बृजनारायण,

सोशल लाइफ इन नार्दर्न इण्डिया, दिल्ली, १९६६

शर्मा, ब्रजेन्द्रनाथ,

(१) 'तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ की प्रस्तर प्रतिमा', अनेकान्त, वर्ष १८, अं० ४, अक्तूबर १९६५, पृ० १५७
(२) 'अनपब्लिश्ड जैन ब्रोन्जेज इन दि नेशनल म्यूजियम', ज०ओ०इं०, खं० १९, अं० ३, मार्च १९७०, पृ० २७५-७८
(३) सोशल ऐण्ड कल्चरल हिस्ट्री आव नार्दर्न इण्डिया, दिल्ली १९७२
(४) जैन प्रतिमाएं, दिल्ली, १९७९

शास्त्री, अजय मित्र,

(१) इण्डिया ऐज सीन इन दि बृहत्संहिता ऑव वराहमिहिर, दिल्ली, १९६९
(२) 'त्रिपुरी का जैन पुरातत्व', जैन मिलन, वर्ष १२, अं० २, दिसंबर १९७०, पृ० ६९-७२
(३) त्रिपुरी, भोपाल, १९७१

शास्त्री, परमानन्द जैन,

'मध्यभारत का जैन पुरातत्व', अनेकान्त, वर्ष १९, अं० १-२, अप्रैल-जून १९६६, पृ० ५४-६९

शास्त्री, हीरानन्द,

'सम रिसेन्टलि ऐडेड स्कल्पचर्स इन दि प्राविन्शियल म्यूजियम, लखनऊ', मे०आ०स०इं०, अं०११, कलकत्ता, १९२२, पृ० १-१५

शाह, सी० जे०,

जैनिजम इन नार्थ इण्डिया : ८०० बी० सी०-ए० डी० ५२६, लन्दन, १९३२

शाह, यू० पी०,

(१) 'आइकानोग्राफी ऑव दि जैन गाडेस अम्बिका', ज०यू०बा०, खं० ९, १९४०-४१, पृ० १४७-६९
(२) 'आइकानोग्राफी ऑव दि जैन गाडेस सरस्वती', ज०यू०बा०, खं० १० (न्यू सिरीज), सितम्बर १९४१, पृ० १९५-२१८
(३) 'जैन स्कल्पचर्स इन दि बड़ौदा म्यूजियम', बु०ब०म्यू०, खं० १, भाग २, फरवरी-जुलाई १९४४, पृ० २७-३०

(४) 'सुपरनेचुरल बीइंग्स इन दि जैन तन्त्रज', आचार्य ध्रुव स्मारक ग्रन्थ (सं० आर० सी० पारिख आदि), भाग ३, अहमदाबाद, १९४६, पृ० ६७–६८

(५) 'आइकानोग्राफी ऑव दि सिक्सटीन जैन महाविद्याज', ज०इं०सो०ओ०आ०, खं० १५, १९४७, पृ० ११४–७७

(६) 'एज ऑव डिफरेन्शियेशन ऑव दिगंबर ऐण्ड श्वेतांबर इमेजेज ऐण्ड दि अर्लिएस्ट नोन श्वेतांबर ब्रोन्जेज', बु०प्रि०वे०म्यू०वे०इं०, अं० १, १९५०–५१ (१९५२), पृ० ३०–४०

(७) 'ए यूनीक जैन इमेज ऑव जीवन्तस्वामी', ज०ओ०इं०, खं० १, अं० १, सितम्बर १९५१ (१९५२), पृ० ७२–७९

(८) 'साइड्लाइट्स आन दि लाईफ-टाइम सेण्डलवुड इमेज ऑव महावीर', ज०ओ०इं०, खं० १, अं० ४, जून १९५२, पृ० ३५८–६८

(९) 'ऐन्शियन्ट स्कल्पचर्स फ्राम गुजरात ऐण्ड सौराष्ट्र', ज०इं०म्यू०, खं० ८, १९५२, पृ० ४९–५७

(१०) 'श्रीजीवन्तस्वामी' (गुजराती), जै०स०प्र०, वर्ष १७, अं० ५–६, १९५२, पृ० ९८–१०९

(११) 'हरिनैगमेषिन्', ज०इं०सो०ओ०आ०, खं० १९, १९५२–५३, पृ० १९–४१

(१२) 'ऐन अर्ली ब्रोन्ज इमेज ऑव पार्श्वनाथ इन दि प्रिंस ऑव वेल्स म्यूज़ियम, बंबई', बु०प्रि०वे०म्यू०वे०इं०, अं० ३, १९५२–५३ (१९५४), पृ० ६३–६५

(१३) 'जैन स्कल्पचर्स फ्राम लाडोल', बु०प्रि०वे०म्यू०वे०इं०, अं० ३, १९५२–५३ (१९५४), पृ० ६६–७३

(१४) 'सेवेन ब्रोन्जेज फ्राम लिल्वा-देवा', बु०ब०म्यू०, खं०९, भाग १-२, अप्रैल १९५२-मार्च १९५३ (१९५५), पृ० ४३–५१

(१५) 'फारेन एलिमेण्ट्स इन जैन लिट्रेचर', इं०हि०क्वा०, खं० २९, अं०३, सितम्बर १९५३, पृ०२६०-६५

(१६) 'यक्षज वरशिप इन अर्ली जैन लिट्रेचर', ज०ओ०इं०, खं० ३, अं० १, सितम्बर १९५३, पृ० ५४–७१

(१७) 'बाहुबली : ए यूनीक ब्रोन्ज इन दि म्यूज़ियम', बु०प्रि०वे०म्यू०वे०इं०, अं०४, १९५३–५४, पृ०३२-३९

(१८) 'मोर इमेजेज ऑव जीवन्तस्वामी', ज०इं०म्यू०, खं० ११, १९५५, पृ० ४९–५०

(१९) स्टडीज इन जैन आर्ट, बनारस, १९५५

(२०) 'ब्रोन्ज होर्ड फ्राम वसन्तगढ़', ललितकला, अं० १–२, अप्रैल १९५५-मार्च १९५६, पृ० ५५–६५

(२१) 'पेरेण्ट्स ऑव दि तीर्थंकरज', बु०प्रि०वे०म्यू०वे०इं०, अं० ५, १९५५–५७, पृ० २४–३२

(२२) 'ए रेयर स्कल्पचर ऑव मल्लिनाथ', आचार्य विजयवल्लभ सूरि स्मृति ग्रन्थ (सं०मोतीचन्द्र आदि), बंबई, १९५६, पृ० १२८

(२३) 'ब्रह्मशान्ति ऐण्ड कपर्दि यक्षज', ज०एम०एस०यू०ब०, खं० ७, अं० १, मार्च १९५८, पृ० ५९–७२

(२४) अकोटा ब्रोन्जेज, बंबई, १९५९

(२५) 'जैन स्टोरीज इन स्टोन इन दि दिलवाड़ा टेम्पल, माउण्ट आबू', जैन युग, सितम्बर १९५९, पृ० ३८–४०

(२६) 'इण्ट्रोडक्शन ऑव शासनदेवताज इन जैन वरशिप', प्रो०ट्रां०ओ०कां०, २० वां अधिवेशन, भुवनेश्वर, अक्तूबर १९५९, पूना, १९६१, पृ० १४१–५२

(२७) 'जैन ब्रोन्जेज फ्राम कैम्बे', ललित कला, अं० १३, पृ० ३१–३४

(२८) 'ऐन ओल्ड जैन इमेज फ्राम खेड्ब्रह्मा (नार्थ गुजरात)', ज०ओ०इं०, खं० १०, अं० १, सितम्बर १९६०, पृ० ६१–६३

(२९) 'जैन ब्रोन्जेज इन हरीदास स्वालीज कलेक्शन', बु०प्रि०वे०म्यू०वे०इं०, अं० ९, १९६४–६६, पृ० ४७–४९
(३०) 'ए जैन ब्रोन्ज फ्राम जेसलमेर, राजस्थान', ज०इं०सो०ओ०आ० (स्पेशल नंबर), १९६५–६६, मार्च १९६६, पृ० २५–२६
(३१) 'ए जैन मेटल इमेज फ्राम सूरत', ज०इं०सो०ओ०आ० (स्पेशल नंबर), १९६५–६६, मार्च १९६६, पृ० ३
(३२) 'टू जैन ब्रोन्जेज फ्राम अहमदाबाद', ज०ओ०इं०, खं० १५, अं० ३–४, मार्च-जून १९६६, पृ० ४६३-६४
(३३) 'आइकानोग्राफी ऑव चक्रेश्वरी, दि यक्षी ऑव ऋषभनाथ', ज०ओ०इं०, खं० २०, अं० ३, मार्च १९७१, पृ० २८०–३११
(३४) 'ए फ्यू जैन इमेजेज इन दि भारत कलाभवन, वाराणसी', छवि, वाराणसी, १९७१, पृ० २३३–३४
(३५) 'बिगिनिंग्स ऑव जैन आइकानोग्राफी', सं०पु०प०, अं० ९, जून १९७२, पृ० १–१४
(३६) 'यक्षिणी ऑव दि ट्वेन्टी-फोर्थ जिन महावीर', ज०ओ०इं०, खं० २२, अं० १–२, सितम्बर-दिसम्बर १९७२, पृ० ७०–७८

शाह, यू० पी० तथा मेहता, आर० एन,

'ए फ्यू अर्ली स्कल्पचर्स फ्राम गुजरात', ज०ओ०इं०, खं० १, १९५१–५२, पृ० १६०–६४

श्रीवास्तव, वी० एन०,

'सम इन्टरेस्टिंग जैन स्कल्पचर्स इन दि स्टेट म्यूजियम, लखनऊ', सं०पु०प०, अं० ९, जून १९७२, पृ० ४५–५२

श्रीवास्तव, वी० एस०,

केटलाग ऐण्ड गाईड टू गंगा गोल्डेन जुबिली म्यूजियम, बीकानेर, बंबई, १९६१

संकलिया, एच० डी०,

(१) 'दि अर्लिएस्ट जैन स्कल्पचर्स इन काठियावाड़', ज०रा०ए०सो०, जुलाई १९३८, पृ० ४२६–३०
(२) 'ऐन अनयुजुअल फार्म ऑव ए जैन गाडेस', जैन एण्टि०, खं० ४, अं० ३, दिसम्बर १९३८, पृ० ८५-८८
(३) 'जैन आइकानोग्राफी', न्यू इण्डियन एण्टिक्वेरी, खं० २, १९३९–४०, पृ० ४९७–५२०
(४) 'जैन यक्षज ऐण्ड यक्षिणीज', बु०ड०का०रि०इं०, खं० १, अं० २–४, १९४०, पृ० १५७–६८
(५) 'दि सो-काल्ड बुद्धिस्ट इमेजेज फ्राम दि बड़ौदा स्टेट', बु०ड०का०रि०इं०, खं० १, अं० २–४, १९४०, पृ० १८५–८८
(६) 'दि स्टोरी इन स्टोन ऑव दि ग्रेट रिनन्शियेशन ऑव नेमिनाथ', इं०हि०क्वा०, खं० १६, १९४०–४१, पृ० ३१४–१७
(७) 'जैन मान्युमेण्ट्स फ्राम देवगढ़', ज०इं०सो०ओ०आ०, खं० ९, १९४१, पृ० ९७–१०४
(८) दि आर्किअलाजी ऑव गुजरात, बंबई, १९४१
(९) 'दिगंबर जैन तीर्थंकर फ्राम माहेश्वर ऐण्ड नेवासा', आचार्य विजयवल्लभ सूरि स्मारक ग्रंथ (सं० मोतीचंद्र आदि), बंबई, १९५६, पृ० ११९–२०

सरकार, डी० सी०,

सेलेक्ट इन्सक्रिप्शन्स, खं० १, कलकत्ता, १९६५

सरकार, शिवशंकर,

'आन सम जैन इमेजेज फाम बंगाल', माडर्न रिव्यू, खं० १०६, अं० २, अगस्त १९५९, पृ० १३०-३१

सहानी, रायबहादुर दयाराम,

(१) केटलाग ऑव दि म्यूजियम ऑव आर्किअलाजी ऐट सारनाथ, कलकत्ता, १९१४
(२) 'ए नोट आन टू ब्रास इमेजेज', ज०यू०पी०हि०सो०, खं० २, भाग २, मई १९२१, पृ० ६८-७१

सिंह, जे० पी०,

आस्पेक्ट्स ऑव अर्ली जैनिज्म, वाराणसी, १९७२

सिकदार, जे० सी०,

स्टडीज इन दि भगवतीसूत्र, मुजफ्फरपुर, १९६४

सुन्दरम, टी० एस०,

'जैन ब्रोन्जेज फाम पुडुकोट्टई', ललित कला, अं० १-२, १९५५-५६, पृ० ७९

सोमपुरा, कांतिलाल फूलचंद,

(१) दि स्ट्रक्चरल टेम्पल्स ऑव गुजरात, अहमदाबाद, १९६८
(२) 'दि आर्किटेक्चरल ट्रीटमेण्ट ऑव दि अजितनाथ टेम्पल् ऐट तारंगा', विद्या, खं० १४, अं० २, अगस्त १९७१, पृ० ५०-७७

स्टिवेन्सन, एस०,

दि हार्ट ऑव जैनिज्म, आक्सफोर्ड, १९१५

स्मिथ, वी० ए०,

दि जैन स्तूप ऐण्ड अदर एन्टिक्विटीज ऑव मथुरा, वाराणसी, १९६९ (पु० मु०)

स्मिथ, वी० ए० तथा ब्लैक, एफ० सी०,

'आब्जरवेशन आन सम चन्देल एन्टिक्विटीज', ज०ए०सो०बं०, खं० ५८, अं० ४, १८७९, पृ० २८५-९६

हस्तीमल,

जैन धर्म का मौलिक इतिहास, खं० १, इतिहास समिति प्रकाशन ३, जयपुर, १९७१

चित्र-सूची

चित्र-संख्या

आभार-प्रदर्शन

(चित्र संख्या १३, १७–२०, २२, २४–२६, २९, ३३, ४३, ४४, ५०, ५३–५५, ५७, ६७, ६९, ७१, ७२ अमेरिकन इन्स्टिट्यूट ऑव इण्डियन स्टडीज, रामनगर, वाराणसी; चित्र संख्या १–३, ५, ६, ९–१२, २३, ३०, ३८, ३९, ५२, ५८–६०, ६८, ७३ जैन जर्नल, कलकत्ता; चित्र संख्या २१, ३५ भारत कला भवन, वाराणसी एवं चित्र संख्या ७९ एल० डी० इन्स्टिट्यूट, अहमदाबाद के सौजन्य से साभार।)

LIST OF ILLUSTRATIONS

11. Jina Ṛṣabhanātha (Ist), sky-clad and standing in *kāyotsarga-mudrā* with *prātihāryas*, bull cognizance and tiny Jina figures, Saṅka (Purulia, Bengal), *ca.* 10th-11th century A. D.

12. Narrative Panel, from the life of Jina Ṛṣabhanātha (Ist) : Dance of Nīlāñjanā (the divine dancer), the cause of the renunciation of Ṛṣabhanātha, Kaṅkālī Ṭīlā (Mathura, U. P.), *ca.* first century A. D., State Museum, Lucknow (J 354).

13. Narratives, from the life of Jina Ṛṣabhanātha (Ist), showing *pañcakalyāṇakas* (*cyavana*-coming on earth, *janma*—birth, *dīkṣā*—renunciation, *jñāna*-omniscience and *nirvāṇa*-emancipation) and some other important events; and also the figures of *yakṣa-yakṣī* pair, ceiling of Mahāvīra Temple, Kumbhāriā (Banaskantha, Gujarat), 11th century A. D.

14. Narratives, from the life of Jina Ṛṣabhanātha (Ist), exhibiting *pañcakalyāṇakas*, scene of fight between Bharata and Bāhubalī, and Gomukha *yakṣa* and Cakreśvarī *yakṣī*, ceiling of Śāntinātha Temple, Kumbhāriā (Banaskantha, Gujarat), 11th century A. D.

15. Jina Ajitanātha (2nd), seated in *dhyāna-mudrā* with elephant cognizance, *yakṣa-yakṣī* pair *aṣṭa-mahāprātihāryas*, Temple No 12 (enclosure wall), Deogarh (Lalitpur, U. P.), *ca.* 10th-11th century A. D.

16. Sambhavanātha (3rd), seated in *dhyāna-mudrā* on a *siṁhāsana* (lion-throne), Kaṅkālī Ṭīlā (Mathura, U. P.), Kuṣāṇa Period—126 A. D., State Museum, Lucknow (J 19). The name of the Jina is inscribed in the pedestal inscription.

17. Jina Candraprabha (8th), seated in *dhyāna-mudrā* with crescent cognizance, *yakṣa-yakṣī* pair and *aṣṭa-mahāprātihāryas*, Kauśāmbī (Allahabad, U. P.), ninth century A. D., Allahabad Museum (295).

18. Jina Vimalanātha (13th) sky-clad and standing in *kāyotsarga-mudrā* with boar as cognizance and flywhisk bearers as attendants, Varanasi (U. P.), *ca.* ninth century A. D., Sarnath Museum, Varanasi (236).

19. Jina Śāntinātha (16th), seated in *dhyāna-mudrā* and joined by two sky-clad Jinas standing in *kāyotsarga-mudrā*, Pabhosā (Allahabad, U. P.), 11th century A. D., Allahabad Museum (533). The *mūlanāyaka* is shown with deer *lāñchana*, *yakṣa-yakṣī* pair, *aṣṭa-mahāprātihāryas* and small Jina figures.

20. Jina Śāntinātha (16th), standing in *kāyotsarga-mudrā* and wearing a *dhotī* (Śvetāmbara) and accompanied by cortége of *aṣṭa-mahāprātihāryas*, Śāntidevī, Mahāvidyās, *yakṣa-yakṣī* pair and *dharmacakra* (flanked by two deers), Pārśvanātha Temple (*Gūḍhamaṇḍapa*), Kumbhāriā (Banaskantha, Gujarat), 1119-20 A. D.

21. Cauvīsī of Jina Śāntinātha (16th), seated in *dhyāna-mudrā* with tiny figures of 23 Jinas and *yakṣa-yakṣī* pair, Western India, 1510 A. D., Bharat Kala Bhavan, Varanasi (21733). The name of the Jina is inscribed in the inscription.

22. Narratives, from the lives of Śāntinātha (16th-right half) and Neminātha (22nd-left half) Jinas, showing the usual *pañcakalyāṇakas*, the scenes of trial of strength between Kṛṣṇa and Neminātha (in which Nemi emerged victor), and the marriage and consequent renunciation of Neminātha, ceiling of Mahāvīra Temple, Kumbhāriā (Banaskantha, Gujarat), 11th century A. D.

23. Jina Mallinātha (19th), seated in meditation, Unnao (U. P.), 11th century A. D., State Museum, Lucknow (J 885). The figure is the product of the Śvetāmbara sect in asmuch as the Jina here is rendered as female which is in conformity with the Śvetāmbara tradition.

24. Jina Munisuvrata (20th), standing in *kāyotsarga-mudrā* and wearing a *dhotī* (Śvetāmbara), tortoise emblem on pedestal, Western India, 11th century A. D., Government Central Museum, Jaipur.

25. Jina Neminātha (22nd), standing as sky-clad in *kāyotsarga-mudrā* on a *siṁhāsana* with the figures of Balarāma and Kṛṣṇa Vāsudeva (the cousin brothers of Neminātha) and Jinas (3), Mathura (U. P.), *ca.* fourth century A. D., State Museum, Lucknow (J 121).

26. Jina Neminātha (22nd), seated in meditation on a *siṁhāsana* with *aṣṭa-mahāprātihāryas* and *yakṣa-yakṣī* pair (*yakṣī* being Ambikā, traditionally associated with Neminātha), the latter being carved below the *siṁhāsana, Rājghāṭ* (Varanasi, U. P.), *ca.* seventh century A. D., Bharat Kala Bhavan, Varanasi (212).

27. Jina Neminātha (22nd), standing as sky-clad in *kāyotsarga-mudrā* with *aṣṭa-mahāprātihāryas* and *yakṣa-yakṣī* pair and also accompanied by two-armed Balarāma and four-armed Kṛṣṇa Vāsudeva on two flanks, Temple No.2, Deogarh (Lalitpur, U. P.), 10th century A.D.

28. Jina Neminātha (22nd), standing in *kāyotsarga-mudrā* and wearing a *dhotī* (Śvetāmbara) with *prātihāryas*, tiny Jina figures and four-armed Balarāma and Kṛṣṇa Vāsudeva, Mathura (? U. P.), 11th century A. D., State Museum, Lucknow (66.53). The lower portion of the image is, however, damaged.

29. Narratives, from the life of Jina Neminātha (22nd), portraying usual *pañcakalyāṇakas* along with scenes from his marriage and also showing the temple of his *yakṣī* Ambikā, ceiling of Śāntinātha Temple, Kumbhāriā (Banaskantha, Gujarat), 11th century A. D.

30. Jina Pārśvanātha (23rd), seated in meditation with sevenheaded snake canopy overhead, Kaṅkālī Ṭīlā (Mathura, U. P.), *ca* Ist-2nd century A. D., State Museum, Lucknow (J39).

31. Jina Pārśvanātha (23rd), standing as sky-clad in *kāyotsarga-mudrā* with sevenheaded snake canopy overhead and *kukkuṭa-sarpa* (cognizance) on the pedestal, Temple No. 12 (enclosure wall), Deogarh (Lalitpur, U. P.), 11th century A. D.

32. Jina Pārśvanātha (23rd), standing as sky-clad in *kāyotsarga-mudrā* with two snakes flanking the Jina, Temple No. 6, Deogarh (Lalitpur, U. P.), 10th century A. D.

33. Jina Pārśvanātha (23rd), standing as sky-clad in *kāyotsarga-mudrā* with sevenheaded snake canopy overhead and its coils being extended down to the feet of the Jina; hovering *mālādharas* and flanking attendants, Rajasthan, 11th-12th century A.D., National Museum, New Delhi (39.202).

34. Jina Mahāvīra (24th), seated in meditation on a *simhāsana* with his name 'Vardhamāna' being carved in the pedestal inscription, Kaṅkālī Ṭīlā (Mathura, U. P.), Kuṣāṇa Period, State Museum, Lucknow (J53).

35. Jina Mahāvīra (24th), seated in meditation on lotus seat *(viśva-padma)* with *prātihāryas*, small Jina figures and lion cognizance (carved on two sides of the *dharmacakra)*, Varanasi (U. P.), *ca.* sixth century A. D., Bharat Kala Bhavan, Varanasi (161).

36. Jīvantasvāmī Mahāvīra (prior to renunciation and performing *tapas* in the palace), standing in *kāyotsarga-mudrā* and wearing a *dhotī* (Śvetāmbara) and usual royal ornaments, Akoṭā (Baroda, Gujarat), *ca.* sixth century A. D., Baroda Museum.

37. Jīvantasvāmī Mahāvīra, standing in *kāyotsarga-mudrā* and wearing a *dhotī* (Śvetāmbara) and usual royal ornaments, Osia (Jodhpur, Rajasthan),*Toraṇa*, 11th century A. D.

38. Jina Mahāvīra (24th), seated in *dhyāna-mudrā* with usual *aṣṭa-mahāprātihāryas*, *yakṣa-yakṣī* pair and lion cognizance, Temple No. 12, Deogarh (Lalitpur, U. P.), *ca.* 11th century A. D.

39. Narrative Panel, from the life of Jina Mahāvīra (24th) : Transfer of embryo *(garbhāpa-haraṇa)* by god Naigameṣī (goat-faced), Kaṅkālī Ṭīlā (Mathura, U. P.), first century A. D., State Museum, Lucknow (J 626).

40. Narratives, from the life of Jina Mahāvīra (24th), showing usual *pañcakalyāṇakas* and also the *upasargas* (hindrances) created by demons and *yakṣas* at the time of Mahāvīra's *tapas*, and the story of Candanabālā and scenes from previous births, ceiling of Mahāvīra Temple, Kumbhāriā (Banaskantha, Gujarat), 11th century A. D.

41. Narratives, from the life of Jina Mahāvīra (24th), showing usual *pañcakalyāṇakas* and also the *upasargas*, story of Candanabālā and scenes from previous births, ceiling of Śāntinātha Temple, Kumbhāriā (Banaskantha, Gujarat), 11th century A. D.

42. Jina Images, exhibiting Mahāvīra (24th) and Ṛṣabhanātha (Ist), Khajurāho (Chatarpur, M. P.), *ca.* 10th-11th century A. D., Śāntinātha Museum, Khajurāho (K 4-7).

43. Gomukha, *yakṣa* of Ṛṣabhanātha (Ist), seated in *lalitāsana*, 4-armed, showing *abhaya-mudrā*, *paraśu*, *sarpa* and *mātuliṅga* (fruit), Hathmā (Rajasthan), *ca.* 10th century A. D., Rajputana Museum, Ajmer (270).

44. Cakreśvarī, *yakṣī* of Ṛṣabhanātha (Ist), standing in *samabhaṅga*, *garuḍa vāhana*, 10-armed, discs in nine surviving hands, Mathura (U. P.), 10th century A. D., Archaeological Museum, Mathura (D6).

45. Cakreśvarī, *yakṣī* of Ṛṣabhanātha (1st), seated in *lalitāsana*, *garuḍa vāhana* (human), 10-armed, showing *varada-mudrā*, arrow, mace, sword, disc, disc, shield, thunderbolt, bow and conch, Temple No. 11 *(Mānastambha)*, Deogarh (Lalitpur, U. P.), 11th century A. D.

46. Cakreśvarī, *yakṣī* of Ṛṣabhanātha (1st), seated in *lalita*-pose, *garuḍa* mount (human), 20-armed, showing discs in two upper hands, disc, sword, quiver (?), *mudgara*, disc, mace, rosary, axe, thunderbolt, bell, shield, staff with flag, conch, bow, disc, snake, spear and disc, Deogarh (Lalitpur, U. P.), 11th century A. D., Sāhū Jaina Museum, Deogarh.

47. Rohiṇī, *yakṣī* of Ajitanātha (2nd), seated in *lalita*-pose, cow as conveyance, 8-armed, bears *varada-mudrā*, goad, arrow, disc, noose, bow, spear and fruit, Temple No. 11 (*Mānastambha*), Deogarh (Lalitpur, U. P.), 11th century A. D.

48. Sumālinī, *yakṣī* of Candraprabha (8th), standing, lion vehicle, 4-armed, carries sword, *abhaya-mudrā*, shield and thigh-posture, Temple No. 12, Deogarh (Lalitpur, U. P.), 862 A. D.

49. Sarvānubhūti (or Kubera), *yakṣa* of Neminātha (22nd), seated in *lalitāsana*, 2-armed, holds fruit and purse (made of mongoose-skin), Deogarh (Lalitpur, U. P.), 10th century A. D.

50. Ambikā, *yakṣī* of Neminātha (22nd), seated in *lalita*-pose, lion *vāhana*, 2-armed, bears *abhaya-mudrā* and a child, Provenance not known, ninth century A. D., Archaeological Museum, Mathura (D7). The figures of Jina, Gaṇeśa, Kubera, Balarāma, Kṛṣṇa Vāsudeva, *aṣṭa-mātṛkās* and second son are also rendered.

51. Ambikā, *yakṣī* of Neminātha (22nd), standing, lion as conveyance, 2-armed, holds a bunch of mangoes and a child (clasping in the lap), nearby second son, Temple No. 12, Deogarh (Lalitpur, U. P.), 10th century A. D.

52. Ambikā, *yakṣī* of Neminātha (22nd), seated in *lalita-mudrā*, lion vehicle, 2-armed, one surviving hand supports a child seated in lap, Ellora (Aurangabad, Maharashtra), *ca* 10th centu y A. D.

53. Ambikā, *yakṣī* of Neminātha (22nd), standing, lion vehicle, 4-armed, all the hands being damaged, two sons on two sides, tiny figures of Jinas (nude) and 23 *yakṣīs* in *parikara*, Patiāndāī Temple, Satna (M. P.), 11th century A. D., Allahabad Museum (293). The 23 *yakṣī* figures of the *parikara* are 4-armed and their respective names are inscribed under their figures. However, the names of the *yakṣīs* in some cases are not in conformity with the lists available in Digambara texts, The image is unique in the sense that all the 24 *yakṣīs* of Jaina pantheon have been carved at one place,

54. Ambikā, *yakṣī* of Neminātha (22nd), seated in *lalitāsana*, lion mount, 4-armed, holds bunches of mangoes in three hands while with one she supports a child (clasped in the lap), second son standing nearby and branch of mango tree overhead, Vimala Vasahī, Ābū (Sirohi, Rajasthan), 12th century A. D.

55. Padmāvatī, *yakṣī* of Pārśvanātha (23rd), seated cross-legged, *kūrma vāhana*, fiveheaded cobra overhead, 12-armed, bears *varada-mudrā*, sword, axe, arrow, thunderbolt, disc (ring), shield, mace, goad, bow, snake and lotus; *nāga-nāgī* figures on two flanks and the figure of Pārśvanātha with sevenheaded snake canopy over the head of Padmāvatī, Shahdol (M. P.), 11th century A. D., Thakur Sahib Collection, Shahdol.

56. Padmāvatī, *yakṣī* of Pārśvanātha (23rd), seated in *lalitāsana*, *kukkuṭa-sarpa* as *vāhana*, fiveheaded snake canopy overhead, 4-armed, holds *varadākṣa*, goad, noose and fruit, Neminātha Temple (western *Devakulikā*), Kumbhāriā (Banaskantha, Gujarat), 12th century A. D.

57. Door-lintel, showing the figures of 4-armed (from left) Ambikā, Cakreśvarī and Padmāvatī *yakṣīs*, all seated in *lalitāsana*, and 2-armed Navagrahas, Khajurāho (Chatarpur, M. P.), 11th century A. D., Jardin Museum, Khajurāho (1467). Ambikā with lion vehicle shows rolled lotuses in upper hands, while in two lower hands, she carries a bunch of mangoes and a child. Cakreśvarī rides a *garuḍa* (human) and holds *varada-mudrā*, mace, disc and conch (mutilated). Padmāvatī, shaded by sevenheaded snake canopy, rides a *kukkuṭa* and bears in three surviving hands *varada-mudrā*, noose and goad.

58. Jina Ṛṣabhanātha (Ist), standing as sky-clad in *kāyotsarga-mudrā* with tall *jaṭā-mukuṭa*, bull cognizance and usual *prātihāryas* and 2-armed Ambikā standing at right extremity, Khaṇḍagiri (Puri, Orissa), *ca.* 10th-11th century A. D.

59. Jina Pārśvanātha (23rd-with sevenheaded cobra overhead) and Mahāvīra (24th-with lion cognizance), both seated in *dhyāna-mudrā* with their respective *yakṣīs* (Padmāvatī and Siddhāyikā). Bārabhujī Gumphā, Khaṇḍagiri (Puri, Orissa), *ca.* 11th-12th century A. D.

60. *Dvitīrthī* Jina Image, showing Ṛṣabhanātha (Ist) and Mahāvīra (24th) with bull and lion cognizances and standing as sky-clad in *kāyotsarga-mudrā* with usual *prātihāryas*, Khaṇḍagiri (Puri, Orissa), *ca.* 10th-11th century A. D., British Museum, London (99).

61. *Dvitīrthī* Jina Images, without emblems but with usual *aṣṭa-mahāprātihāryas*, tiny Jina figures and *yakṣa-yakṣī* pairs, Jinas standing as sky-clad in *kāyotsarga-mudrā*, Khajurāho (Chatarpur, M. P.), *ca.* 11th century A. D., Śāntinātha Museum, Khajurāho.

62. *Dvitīrthī* Jina Image, exhibiting Vimalanātha (13th) and Kunthunātha (17th) with their respective cognizances, boar and goat, and *prātihāryas*, standing as sky-clad in *kāyotsarga-mudrā*, Temple No. 1, Deogarh (Lalitpur, U. P.), 11th century A. D.

63. *Dvitīrthī* Jina Image, portraying Jinas as standing sky-clad in *kāyotsarga-mudrā* without cognizances but with usual *aṣṭa-mahāprātihāryas* and diminutive Jina figures, Temple No. 3, Khajurāho (Chatarpur, M. P.) *ca.* 11th century A. D.

64. *Tritīrthī* Jina Image, exhibiting Neminātha (22nd), seated in meditation in the centre, with Sarvānubhūti *yakṣa* and Ambikā *yakṣī* at throne and Pārśvanātha (23rd-with sevenheaded snake canopy) and Supārśvanātha (7th-with fiveheaded cobra hoods overhead) on right and left flanks, Temple No. 29 (*śikhara*), Deogarh (Lalitpur, U. P.), *ca.* 10th century A. D. The flanking Jinas are, however, standing as sky-clad in *kāyotsarga-mudrā*. All the Jinas are provided with usual *aṣṭa-prātihāryas*.

65. *Tritīrthī* Image, portraying two Jinas (Ajitanātha-2nd and Sambhavanātha-3rd) and Sarasvatī (the goddess of learning and music), Temple No. 1, Deogarh (Lalitpur, U. P.), 11th century A. D. The Jinas are standing as sky-clad in *kāyotsarga-mudrā* with usual *aṣṭa-prātihāryas* and cognizances (elephant and horse). Sarasvatī (4-armed) stands in *tribhaṅga* with peacock *vāhana* and carries *varada-mudrā*, rosary, lotus and manuscript.

66. Jina-*Caumukhī (Pratimā-Sarvatobhadrikā)*, an image auspicious from all sides, portraying four Jinas standing as sky-clad in *kāyotsarga-mudrā* on four sides, Kaṅkālī Ṭīlā (Mathura, U. P.), Kuṣāṇa Period, State Museum, Lucknow. Of the four, only two Jinas are identifiable on the strength of identifying marks; they are Ṛṣabhanātha (Ist—with hanging hair-locks) and Pārśvanātha (23rd—with sevenheaded snake canopy).

67. Jina-*Caumukhī*, exhibiting four Jinas seated in meditation on four sides with usual *aṣṭa-prātihāryas* and *yakṣa-yakṣī* pairs and its top being modelled after the *śikhara* of a North Indian Temple (*Devakulikā*), Ahar (Tikamgarh, M. P.), *ca.* 11th century A. D., Dhubela Museum (32).

68. Jina-*Caumukhī*, in the form of *Devakulikā* (small shrine) and portraying four Jinas standing as sky-clad in *kāyotsarga-mudrā* and identifiable with Ṛṣabhanātha (Ist), Śāntinātha (16th), Kunthunātha (17th) and Mahāvīra (24th) on account of bull, deer, goat and lion emblems, Pakbirā (Purulia, Bengal), *ca.* 11th century A. D.

69. *Caumukhī*, Jinālaya (*Sarvatobhadrikā* Shrine), showing four principal Jinas seated in *dhyāna-mudrā* with usual *aṣṭa-prātihāryas* and *yakṣa-yakṣī* pairs, Indor (Guna, M. P.), 11th century A. D. A number of small Jinas, Ācāryas and tutelary couples (with child in lap) are also depicted all around.

70. Bharata Cakravartin, standing as sky-clad in *kāyotsarga-mudrā* with some of the *prātihāryas* (triple parasol, drum-beater, hovering *mālādharas*) and conventional nine treasures (*navanidhis*-in the form of nine vases topped by the figure of Kubera) and fourteen jewels (*ratnas-cakra, chatra,* thunderbolt, sword, elephant, horse etc.), Temple No.2, Deogarh (Lalitpur, U. P.), 11th century A. D.

71. Bāhubalī (or Gommaṭeśvara), the second son of first Jina Ṛṣabhanātha, standing as sky-clad in *kāyotsarga-mudrā* with the rising creepers entwining round legs and hands, Śrvaṇabeḷgolā (Hassan, Karnataka), *ca.* ninth century A. D., Prince of Wales Museum, Bombay (105). According to Jaina Works, Bāhubalī obtained *kevala-jñāna* (omniscience) through rigorous austerities and stood in *kāyotsarga-mudrā* for one whole year and during

the course of his *tapas* snakes, lizards and scorpions crept on his body and meandering vines entwined round his hands and legs, which all suggest the deep meditation of Bāhubalī and also that he remained immune to his surroundings.

72. Bāhubalī, standing as sky-clad in *kāyotsarga-mudrā* with *mādhavī* creepers and also the figures of deer, snakes, mice, scorpions and a dog carved nearby, Cave 32 (Indra Sabhā), Ellora (Aurangabad, Maharashtra), *ca.* ninth century A. D. Bāhubalī is flanked by the figures of two *Vidyādharīs*, who according to Digambara Purāṇas removed the entwining creepers from the body of Bāhubalī. Besides, the figure of a devotee (probably his elder brother Bharata Cakravartin), the *chatra*, hovering *mālādharas* and a drum-beater are also carved.

73. Bāhubalī Gommaṭeśvara (57 ft.), standing as sky-clad in *kāyotsarga-mudrā* with climbing plant fastened round his thighs and hands, and ant-hills, carved nearby, with snakes issuing out of them, Śravaṇabeḷgolā (Hassan, Karnataka), *ca.* 983 A. D. The half-shut eyes of Bāhubalī suggest deep meditation and inward look. The nudity of the figure indicates the absolute renunciation of a *kevalin*, and the stiff erectness of posture firm determination and self-control. The face has a benign smile, serenity and contemplative gaze. James Fergusson observes : "Nothing grander or more imposing exists anywhere out of Egypt, and, even there, no known statue surpasses it in height"—(*History of Indian and Eastern Architecture*, London, 1910, p. 72). The image was got prepared by Cāmuṇḍarāya, the minister of the Gaṅga King Rācamalla IV (974-984 A. D.).

74. Bāhubalī, standing as nude in *kāyotsarga-mudrā* with *aṣṭa-prātihāryas*, devotees, climbing plant (entwining legs and hands), lizards, snakes, scorpions (creeping on leg) and a royal figure (probably Bharata Cakravartin), sitting on left, Temple No. 2, Deogarh (Lalitpur, U. P.), 11th century A. D.

75. *Tritīrthī* Image, showing Bāhubalī with two Jinas, namely, Śītalanātha (10th) and Abhinandana (4th), all standing as sky-clad in *kāyotsarga-mudrā* and accompanied by usual cortége of *aṣṭa-prātihāryas*, adorers, and meandering vines entwining round the hands and legs of Bāhubalī, Temple No. 2, Deogarh (Lalitpur, U. P.), 11th Century A. D.

76. Sarasvatī, seated in *lalita*-pose, peacock *vāhana*, 4-armed, holds *varada-mudrā*, lotus, *vīṇā* and manuscript, Neminātha Temple (Western *Devakulikā*), Kumbhāriā (Banaskantha, Gujarat), 12th century A. D.

77. Gaṇeśa, elephant-headed, pot-bellied, seated in *lalitāsana*, *mūṣaka vāhana*, 4-armed, bears tusk, axe, long-stalked lotus and pot filled with sweetballs (*modaka-pātra*), Neminātha Temple (*adhiṣṭhāna*), Kumbhāriā (Banaskantha, Gujarat), 12th century A. D.

78. Sixteen Jaina Mahāvidyās (only 12 are seen in the figure), all possessing four hands and seated in *lalitāsana* with distinguishing attributes, *Bhramikā* ceiling of Śāntinātha Temple, Kumbhāriā (Banaskantha, Gujarat), 11th century A. D-

79. Exterior wall, showing figures of Mahāvidyās, *yakṣas* and *yakṣīs*, Ajitanātha Temple, Tāraṅgā (Mehasana, Gujarat), 12th century A. D.

शब्दानुक्रमणिका[1]

[1] शब्दानुक्रमणिका में केवल मूलपाठ के ही सन्दर्भों को सम्मिलित किया गया है।

चित्र १ हड़प्पा से प्राप्त मूर्ति

चित्र २ जिन, लोहानीपुर (बिहार), ल० तीसरी शती ई० पू०
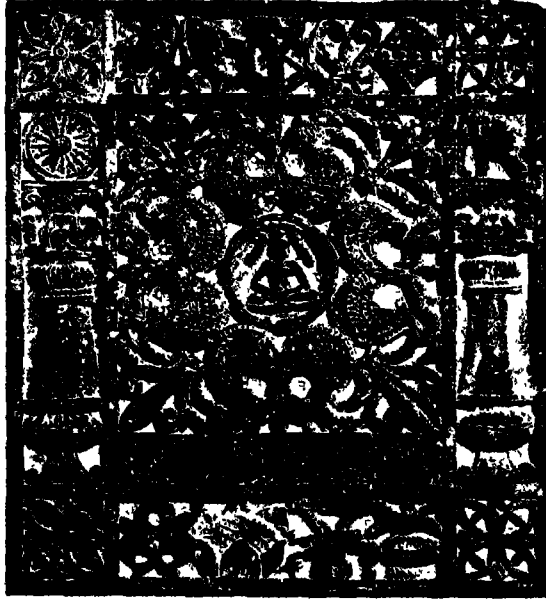
चित्र ३ आयागपट, मथुरा (उ० प्र०), ल० पहली शती
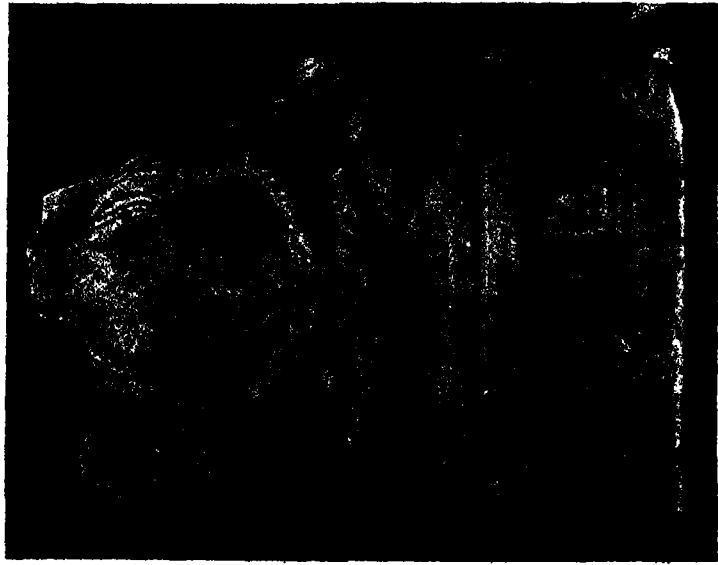
चित्र ४ ऋषभनाथ, मथुरा (उ०प्र०), ल० पांचवीं शती
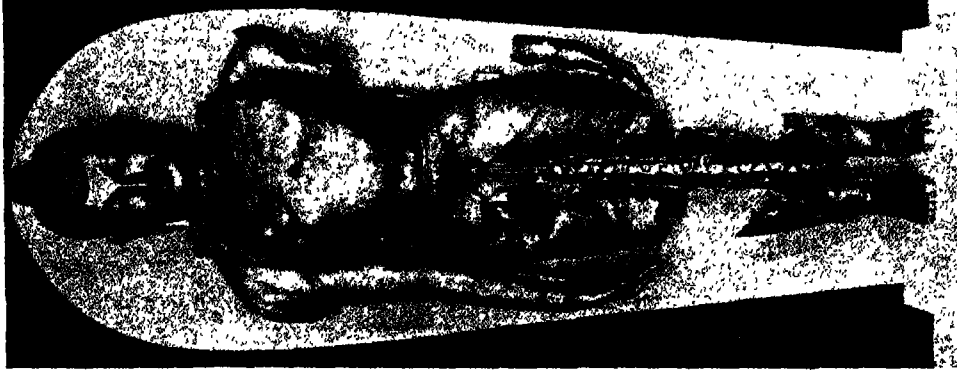
चित्र ५ ऋषभनाथ, अकोटा (गुजरात)
ल० पांचवी शती

चित्र ६ ऋषभनाथ, कोसम (उ० प्र०)
ल० नवीं-दसवीं शती
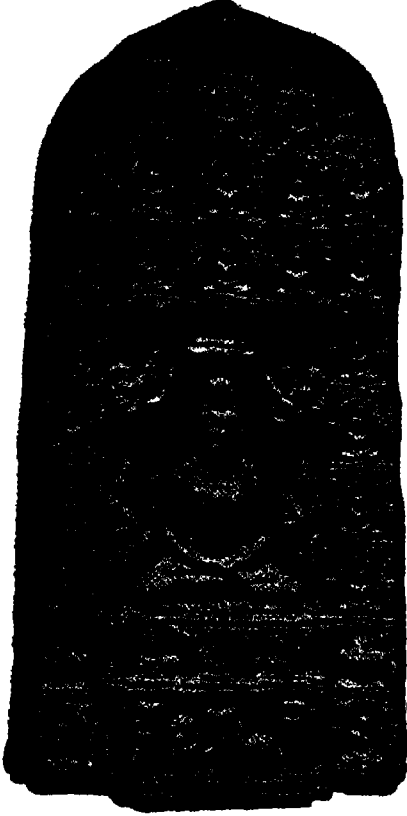
चित्र ९

चित्र ७

चित्र ८

७ ऋषभनाथ, उरई (उ० प्र०), ल० १०वीं-११वीं शती

८ ऋषभनाथ, मंदिर १, देवगढ़ (उ० प्र०), ल० ११वीं शती

९ ऋषभनाथ चौवीसी, सुरोहर (बांगलादेश), ल० १०वीं शती
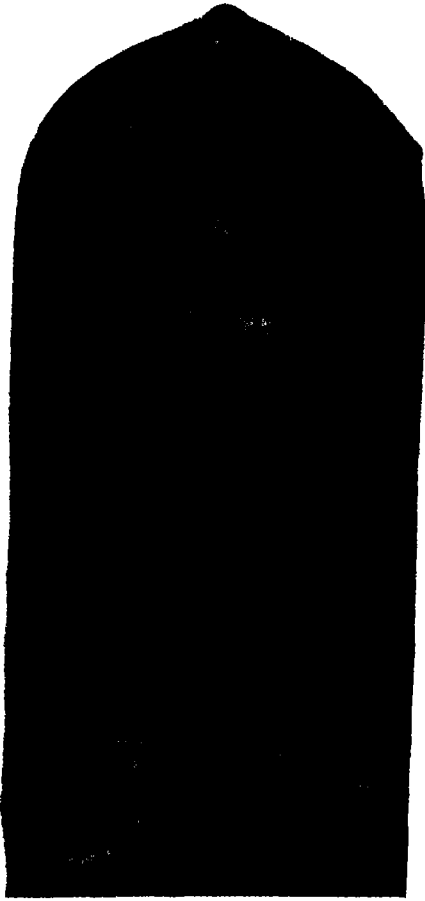
चित्र १० ऋषभनाथ, भेलोवा (बांगलादेश)
ल० ११वीं शती

चित्र ११ ऋषभनाथ, संक (बंगाल)
ल० १०वीं-११वीं शती

चित्र १२ ऋषभनाथ-जीवनदृश्य (नीलांजना का नृत्य), मथुरा (उ० प्र०), ल० पहली शती
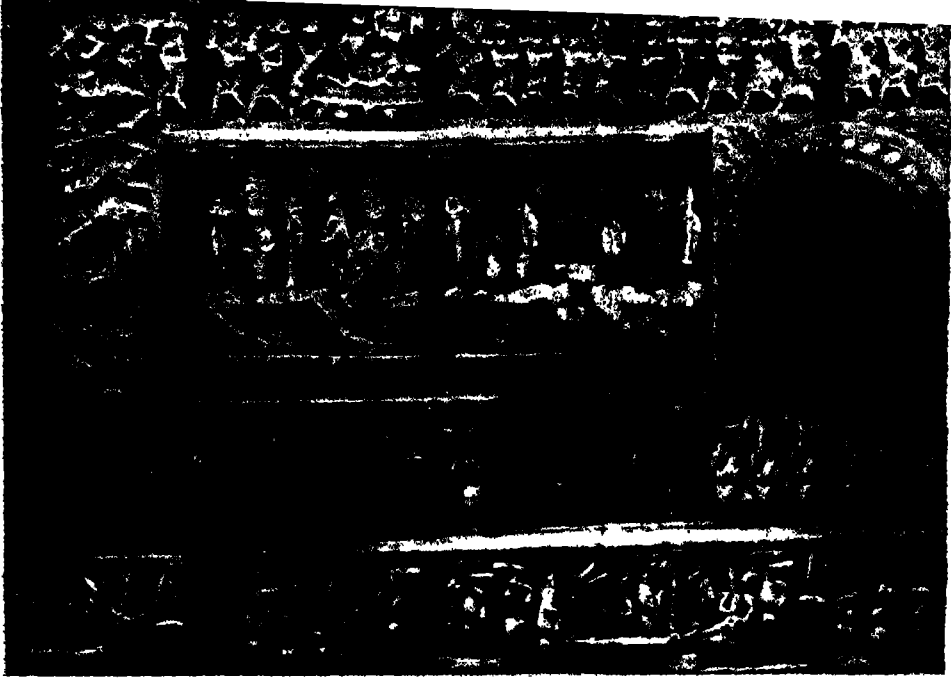
चित्र १३ ऋषभनाथ-जीवनदृश्य, महावीर मंदिर, कुंभारिया (गुजरात), ११वीं शती
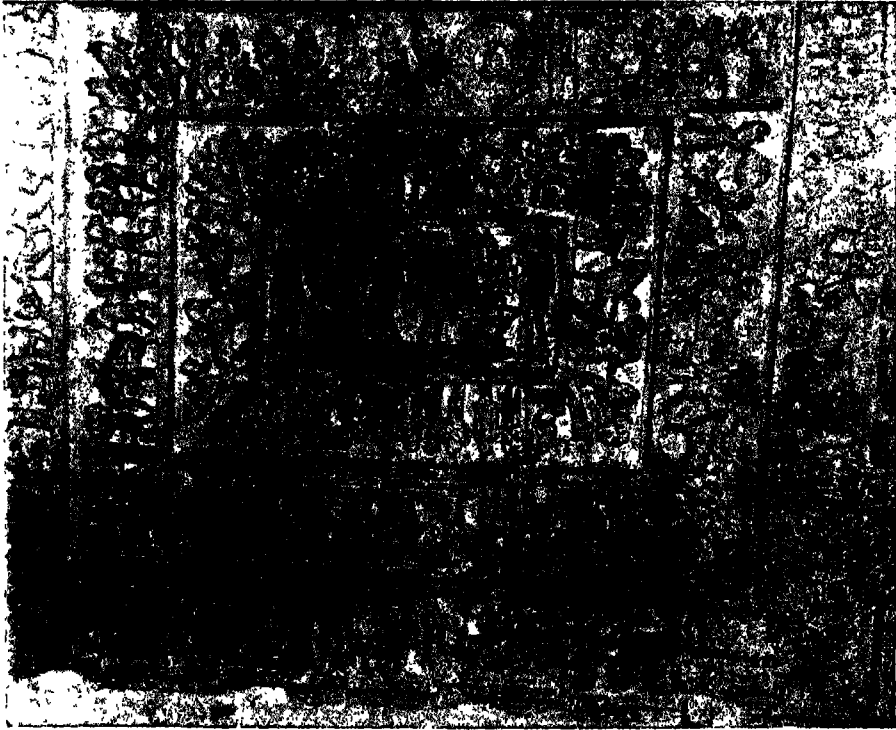
चित्र १४ ऋषभनाथ-जीवनदृश्य, शांतिनाथ मंदिर, कुंभारिया (गुजरात), ११वीं शती
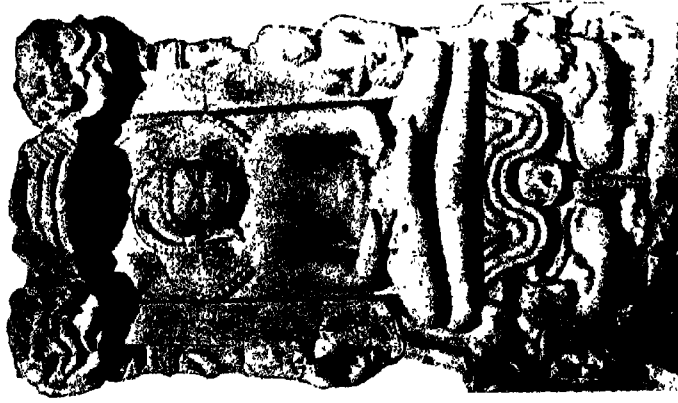
चित्र १५ अजितनाथ, मंदिर १२ (चहारदीवारी), देवगढ (उ० प्र०), ल० १०वीं-११वीं शती

चित्र १७ चंद्रप्रभ, कौशाम्बी (उ० प्र०), नवीं शती
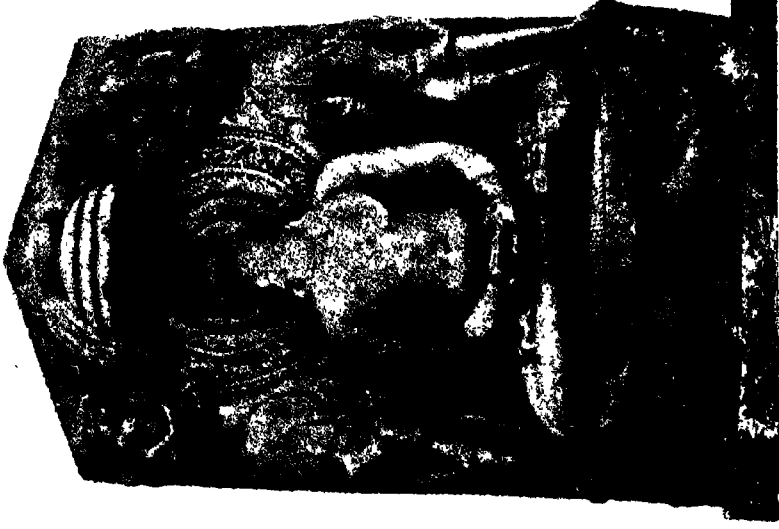
चित्र १६ संभवनाथ, मथुरा (उ० प्र०), १२६ ई०
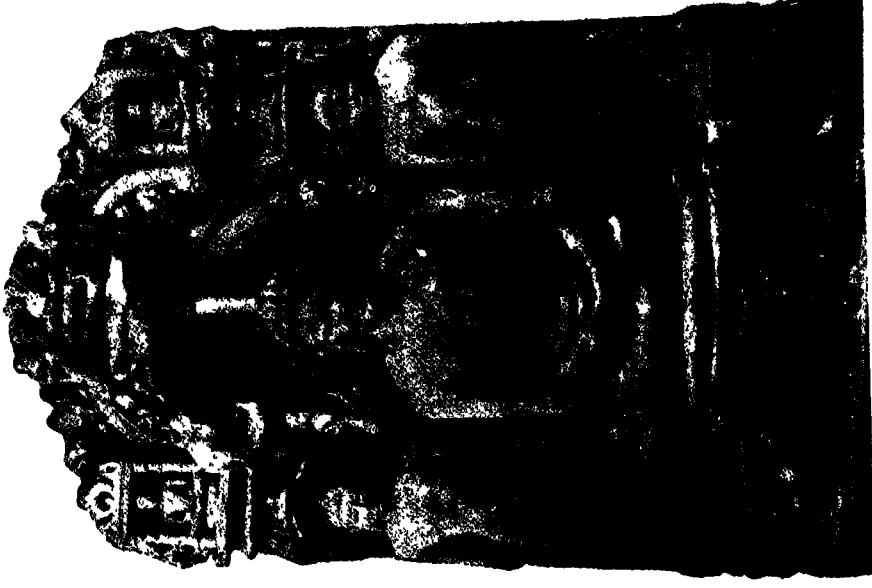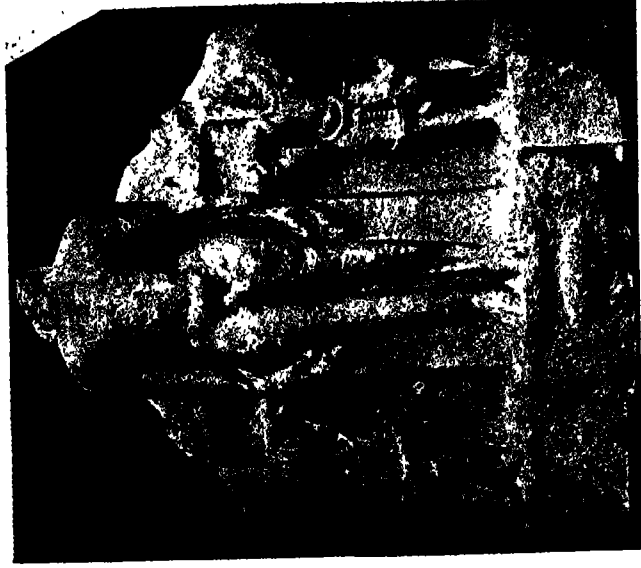
चित्र १८ विमलनाथ, वाराणसी (उ० प्र०), ल० नवीं शती

चित्र १९ शांतिनाथ, पभोसा (उ० प्र०), ११वीं शती

चित्र २० शांतिनाथ, पार्श्वनाथ मंदिर, कुंभारिया (गुजरात), १११९-२० ई०
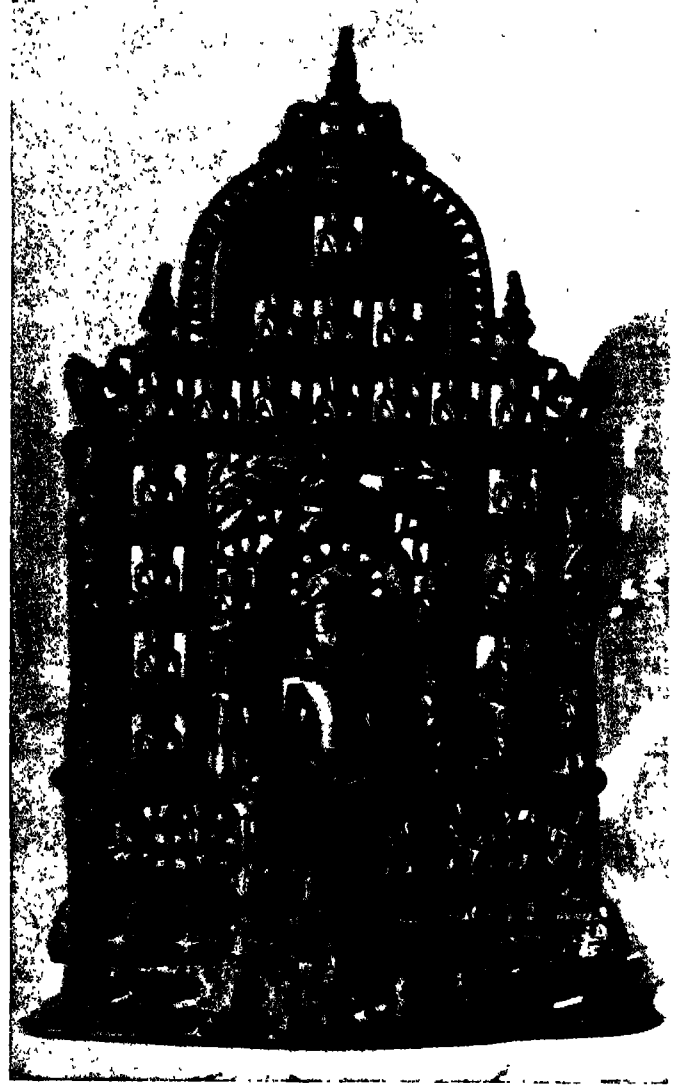
चित्र २१ शांतिनाथ चौवीसी, पश्चिमी भारत, १५१० ई०
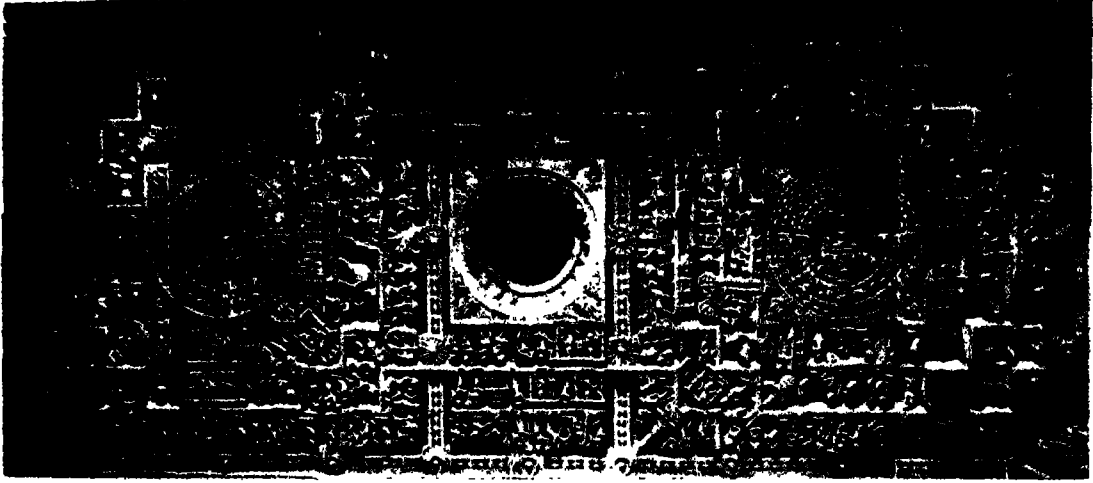
चित्र २२ शांतिनाथ और नेमिनाथ के जीवनदृश्य, महावीर मंदिर, कुंभारिया (गुजरात), ११वीं शती
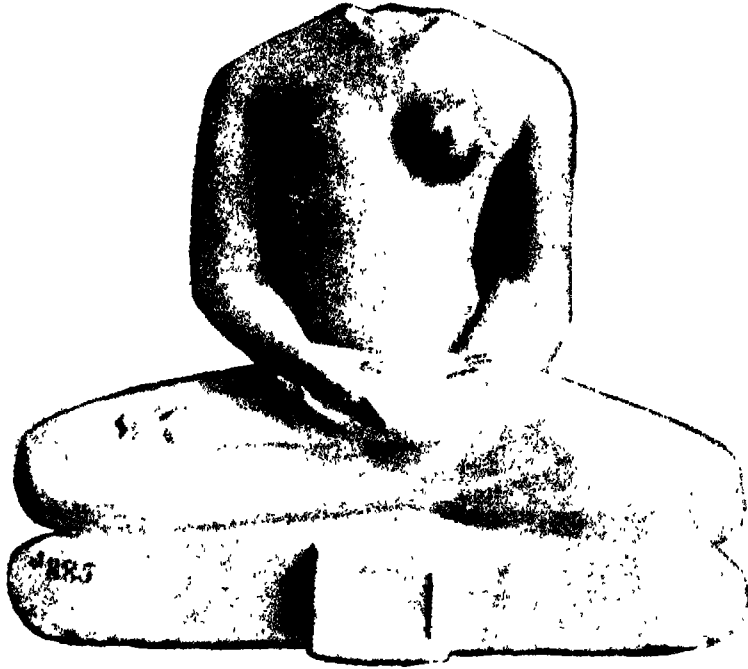
चित्र २३ मल्लिनाथ, उन्नाव (उ० प्र०), ११वी शती

चित्र २४ मुनिसुव्रत, पश्चिमी भारत, ११वी शती

चित्र २५ नेमिनाथ, मथुरा (उ०प्र०), ल० चौथी शती

चित्र २६ नेमिनाथ, राजघाट (उ० प्र०), ल० सातवीं शती

चित्र २७ नेमिनाथ, मंदिर २, देवगढ़ (उ० प्र०), १०वीं शती

चित्र २८ नेमिनाथ, मथुरा (?उ० प्र०), ११वीं शती
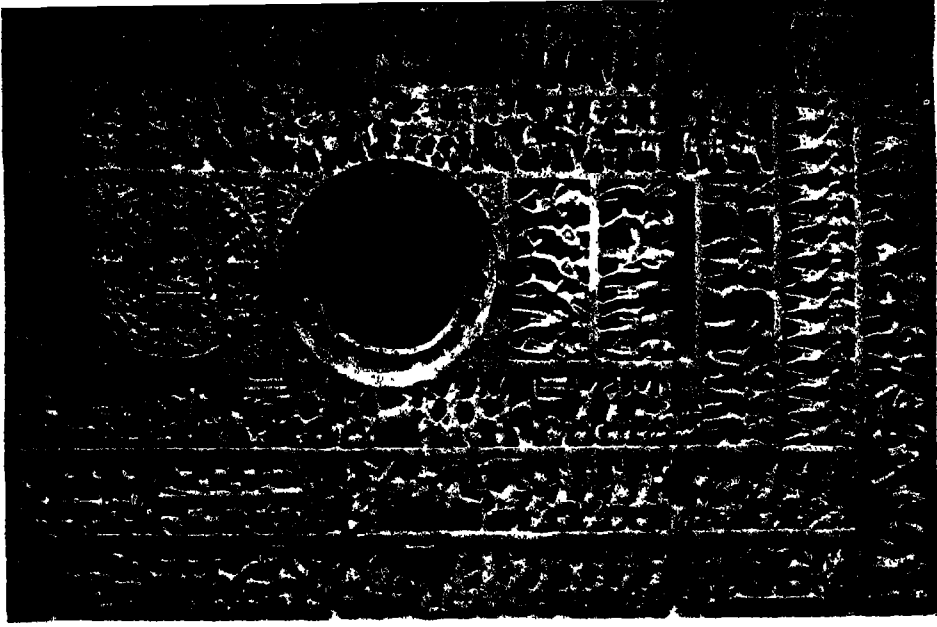
चित्र २९ नेमिनाथ-जीवनदृश्य, शांतिनाथ मंदिर, कुभारिया (गुजरात), ११वीं शती

चित्र ३० पार्श्वनाथ, मथुरा (उ० प्र०), कुषाण काल

चित्र ३१ पार्श्वनाथ, मंदिर १२ (चहारदीवारी), देवगढ़ (उ० प्र०), ११वीं शती

चित्र ३२

चित्र ३३

चित्र ३४

३२ पार्श्वनाथ, मंदिर ६, देवगढ़ (उ०प्र०), १०वीं शती

३३ पार्श्वनाथ, राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली,
११वीं-१२वीं शती

३४ महावीर, मथुरा (उ० प्र०), कुषाणकाल

चित्र ३५

३५ महावीर, वाराणसी (उ० प्र०), ल० छठी शती

चित्र ३७ जीवन्तस्वामी महावीर, ओसिया (राजस्थान), ११वी शती
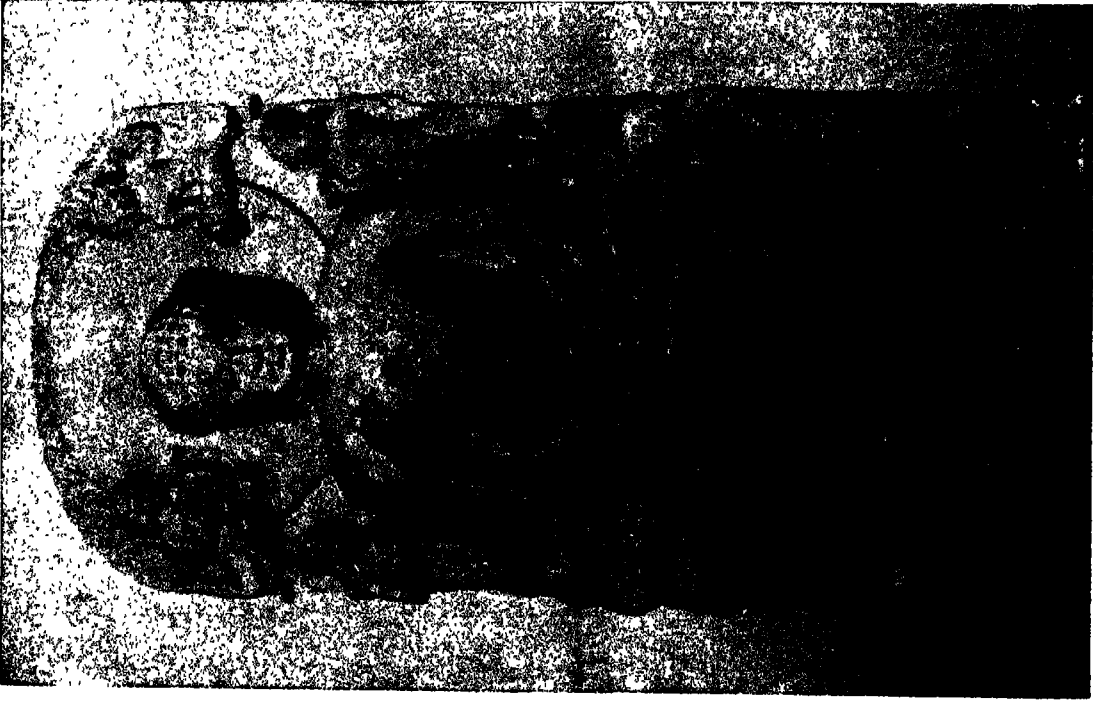
चित्र ३६ जीवन्त स्वामी महावीर, अकोटा (गुजरात), ल० छठी शती

चित्र ३८ महावीर, मन्दिर १२, देवगढ़ (उ० प्र०), ल० ११वीं शती
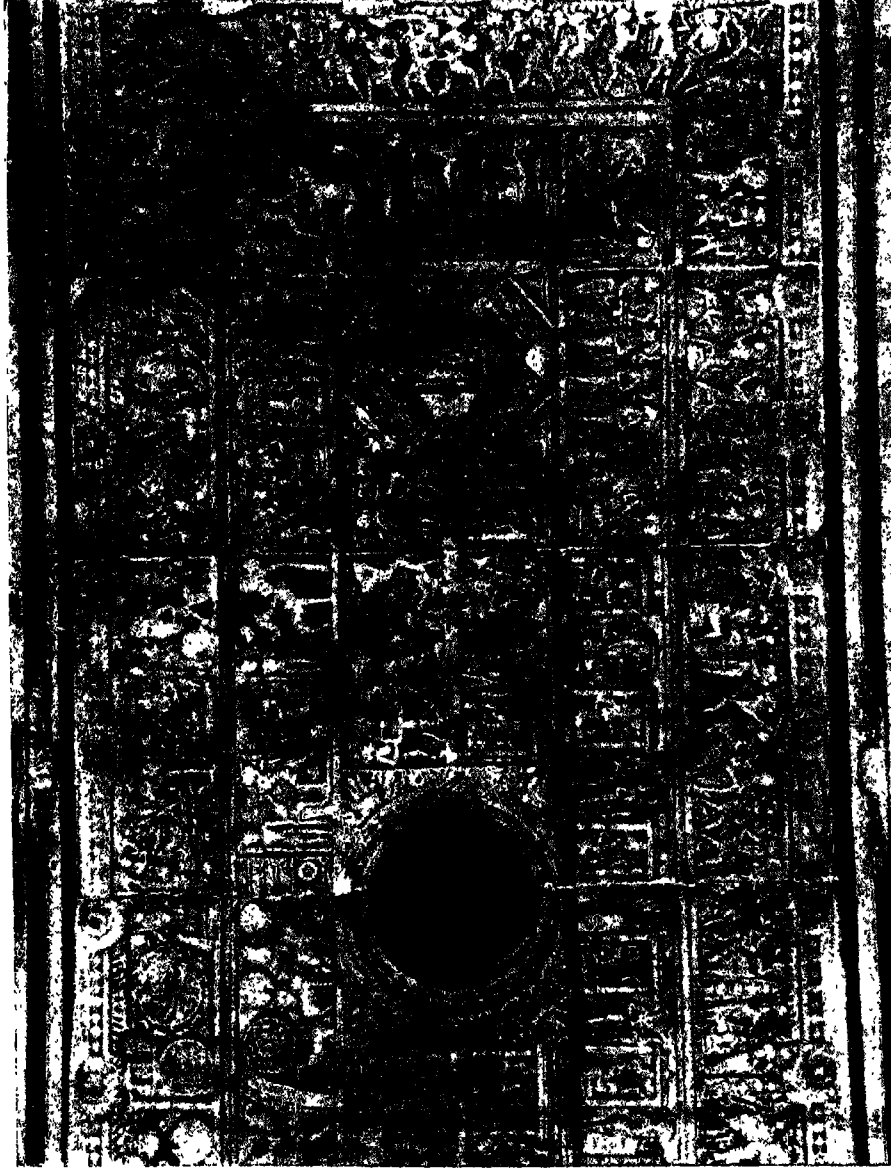
चित्र ४० महावीर-जीवनदृश्य, महावीर मंदिर, कुंभारिया (गुजरात), ११वीं शती

चित्र ३९ महावीर-जीवनदृश्य, (गर्भापहरण), मथुरा (उ० प्र०), पहली शती
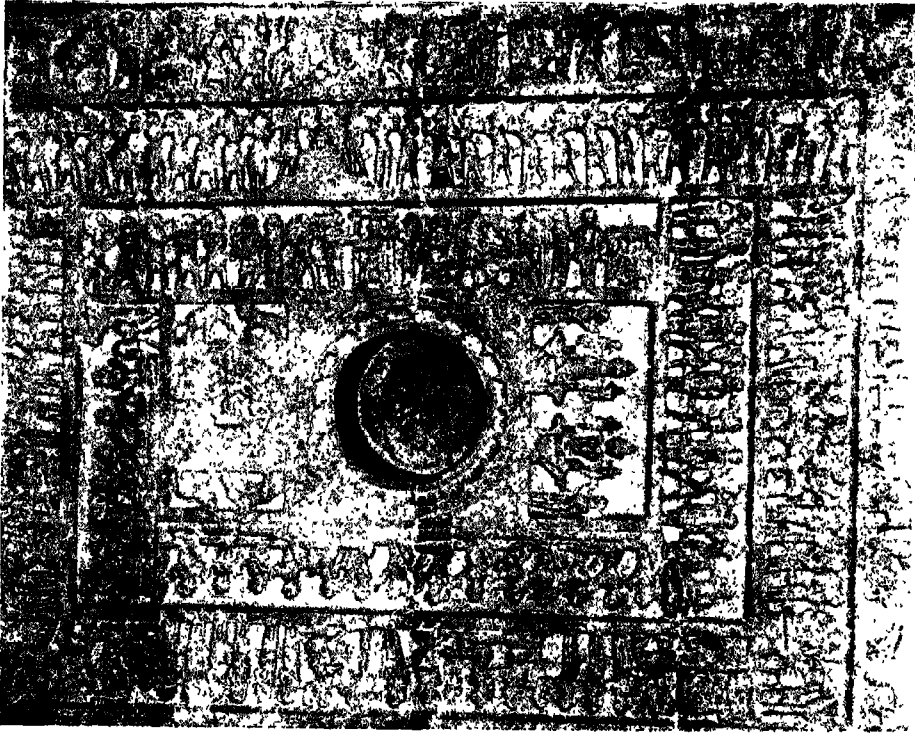
चित्र ४१ महावीर-जीवनदृश्य, शांतिनाथ मंदिर, कुंभारिया (गुजरात), ११वीं शती

चित्र ४२ जिन-मूर्तियां, खजुराहो (म०प्र०), ल० १०वी-११वी शती

चित्र ४३ गोमुख, हथमा (राजस्थान), ल० १०वी शती

चित्र ४४ चक्रेश्वरी, मथुरा (उ० प्र०)
१०वीं शती

चित्र ४६

चित्र ४५

चित्र ४७

४५ चक्रेश्वरी, मदिर ११, देवगढ़ (उ० प्र०) ११वी शती

४६ चक्रेश्वरी, देवगढ़ (उ० प्र०), ११वी शती

४७ रोहिणी, मन्दिर ११, देवगढ़ (उ० प्र०) ११वी शती

चित्र ४८

चित्र ४९

चित्र ५०

४८ सुमालिनी यक्षी (चन्द्रप्रभ), मंदिर १२, देवगढ़ (उ० प्र०). ८६२ ई०

४९ सर्वानुभूति, देवगढ़ (उ० प्र०), १०वीं शती

५० अंबिका, पुरातत्व संग्रहालय, मथुरा, नवीं शती

चित्र ५१ अंबिका, मंदिर १२, देवगढ़ (उ०प्र०) १०वीं शती

चित्र ५२ अबिका, एलोरा (महाराष्ट्र), ल० १०वी शती

चित्र ५३ अंबिका, सतना (म० प्र०), ११वीं शती

चित्र ५४ अंबिका, विमलवसही, आबू (राजस्थान), १२वीं शती

चित्र ५५ पद्मावती, शहडोल (म० प्र०), ११वीं शती

चित्र ५६ पद्मावती, नेमिनाथ मंदिर (देवकुलिका), कुंभारिया (गुजरात), १२वी शती
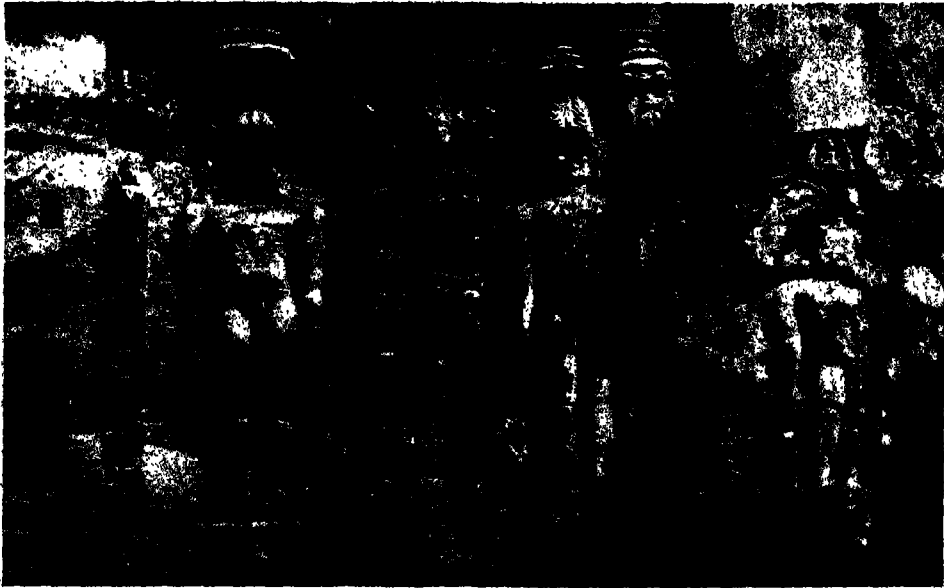
चित्र ५८ ऋषभनाथ एवं अंबिका, खण्डगिरि (उड़ीसा), ल० १०वीं-११वीं शती
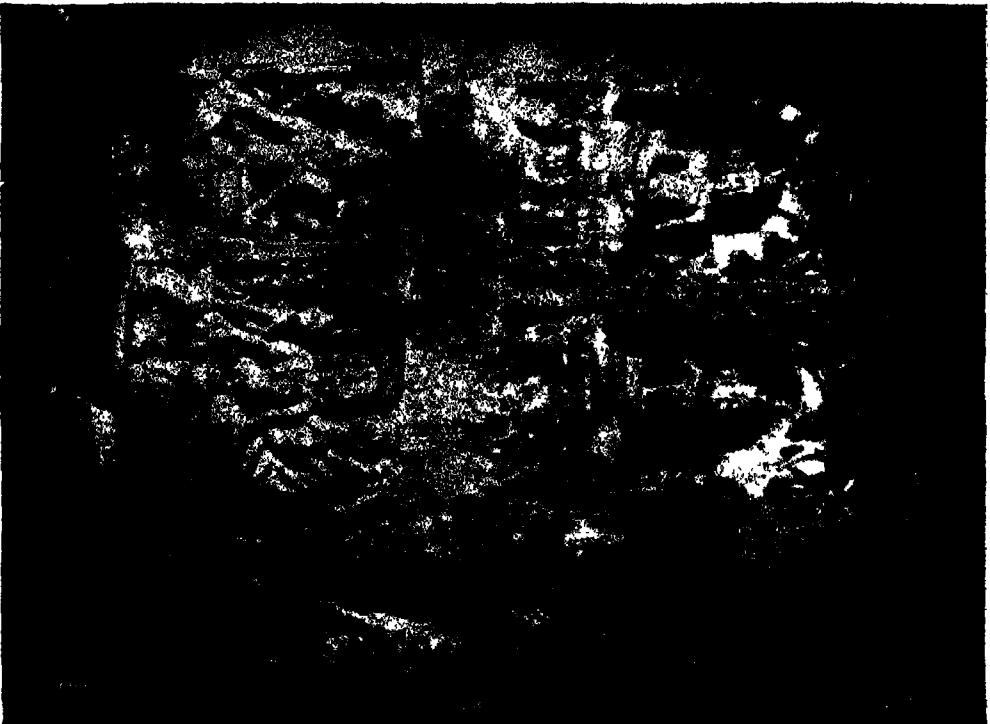
चित्र ५९ पार्श्वनाथ एवं महावीर और शासनदेवियाँ, खण्डगिरि (उड़ीसा) ल० ११वीं-१२वीं शती

चित्र ६२ द्वितीर्थी मूर्ति-विमलनाथ एवं कुंथुनाथ, मंदिर १, देवगढ़ (उ० प्र०), ११वीं शती
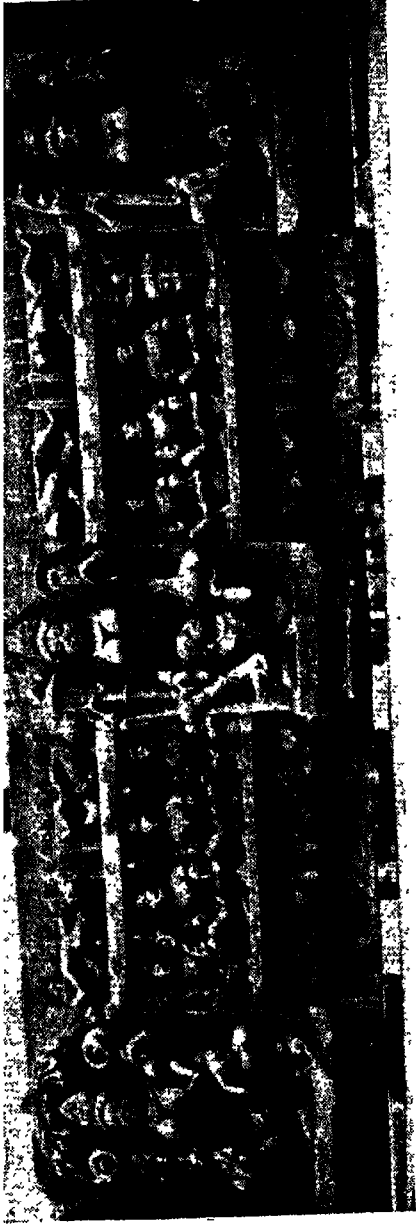
चित्र ५७ यक्षियां एवं नवग्रह, उत्तरंग, खजुराहो (म० प्र०), ११वीं शती
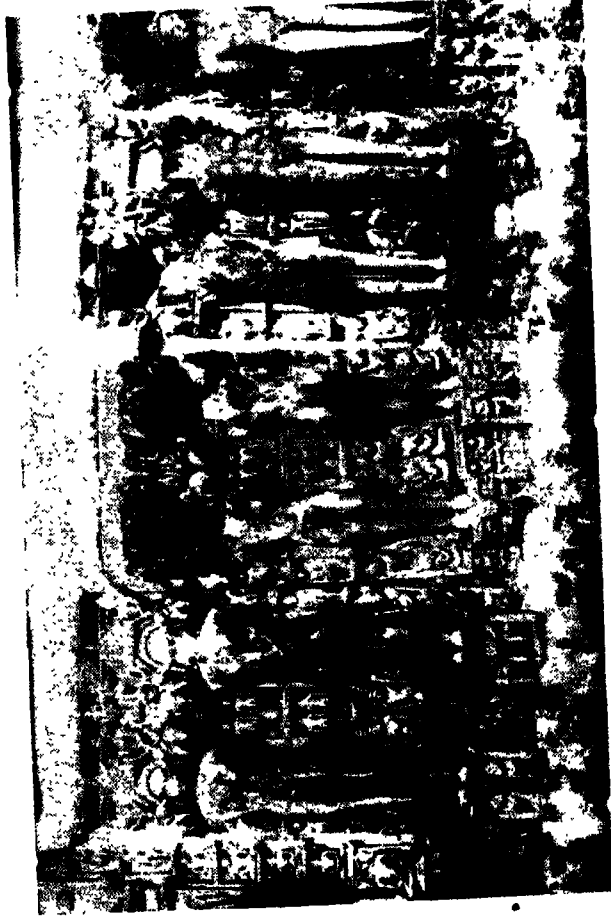
चित्र ६१ द्वितीर्थी जिन मूर्तियां, खजुराहो (म० प्र०), ल० ११वी श॰

चित्र ६० द्वितीर्थी मूर्ति-ऋषभनाथ और महावीर, खण्डगिरि (उड़ीसा)
ल० १०वीं-११वीं शती
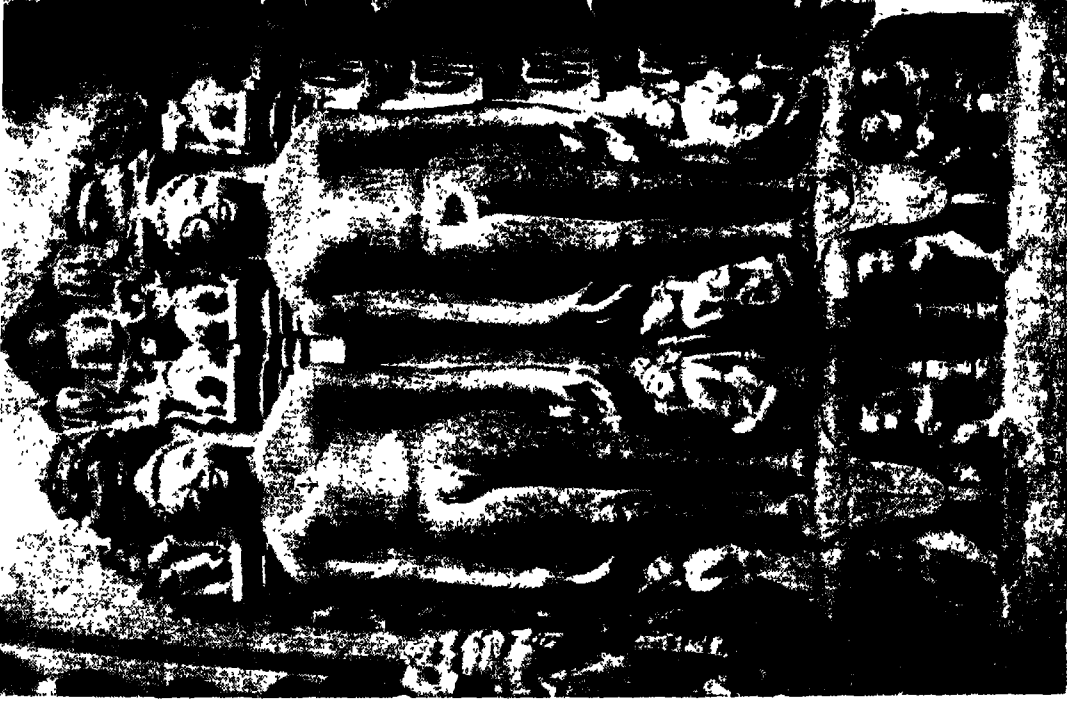
चित्र ६३ द्वितीर्थी जिन मूर्ति, मंदिर ३, खजुराहो (म० प्र०), ल० ११वीं शती

चित्र ६४ त्रितीर्थी जिन मूर्ति, मंदिर २९, देवगढ़ (उ०प्र०), ल० १०वीं शती
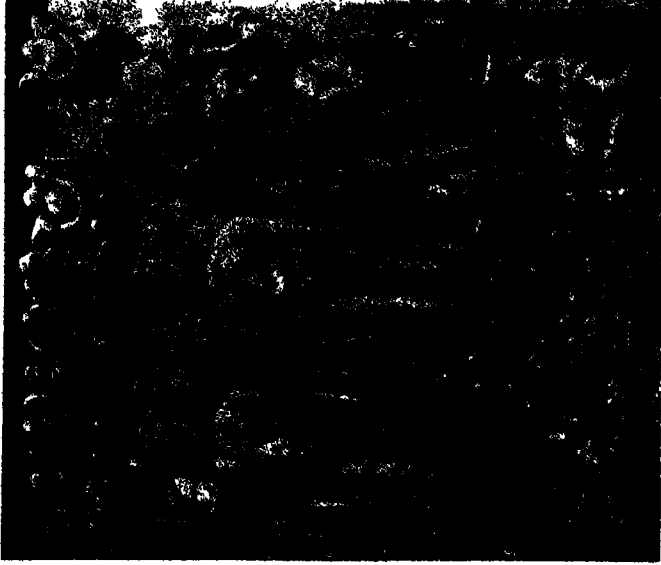
चित्र ६५ त्रितीर्थी मूर्ति-सरस्वती एवं जिन, मंदिर १, देवगढ़ (उ० प्र०), ११वीं शती

चित्र ६६ जिन चौमुखी, मथुरा (उ० प्र०), कुषाणकाल

चित्र ६७ जिन चौमुखी, अहाड (म० प्र०) ल० ११वीं शती
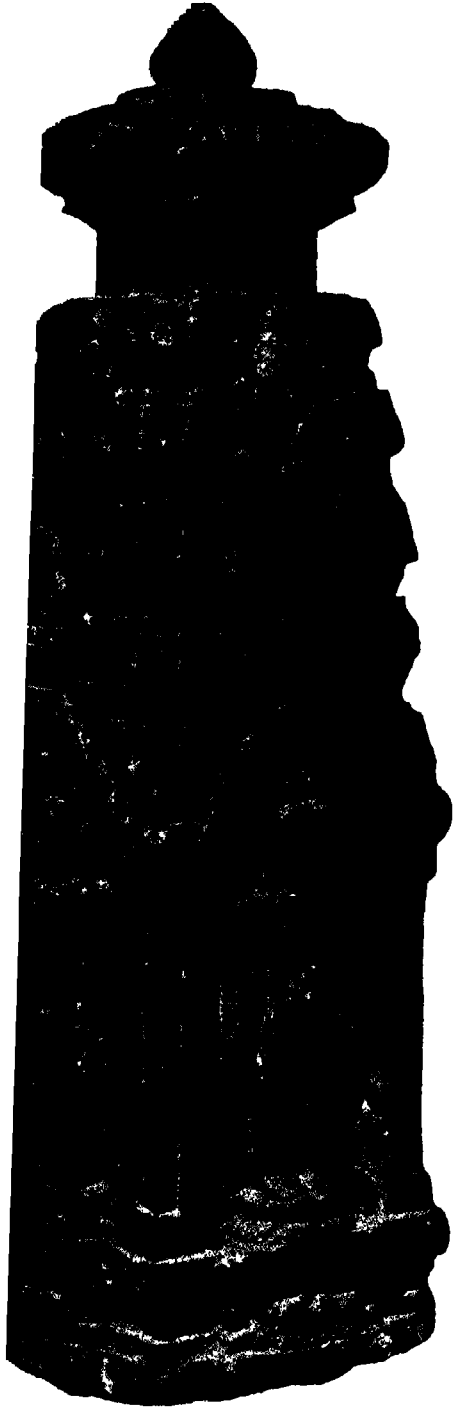
चित्र ६८ जिन चौमुखी, पक्बीरा (बंगाल)
ल० ११वीं शती

चित्र ६९ चौमुखी जिनालय, इन्दौर (म० प्र०), ११वीं शती

चित्र ७० भरत चक्रवर्ती, मंदिर २, देवगढ़ (उ० प्र०), ११वीं शती
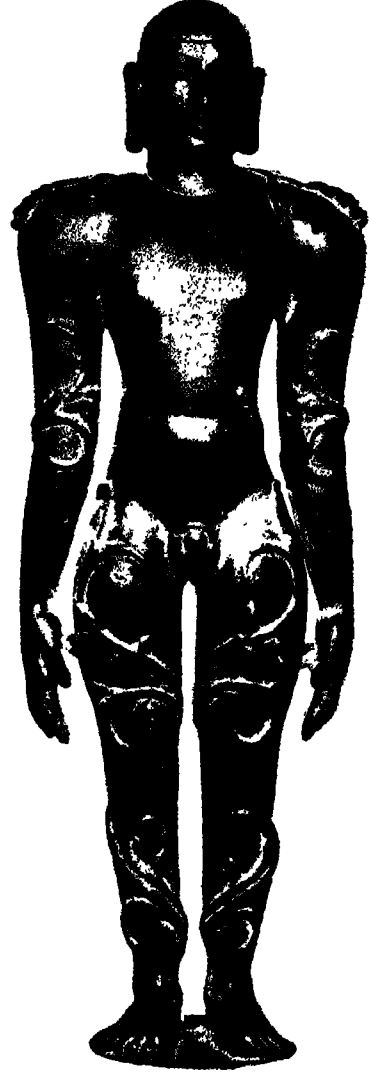
चित्र ७१ बाहुबली, श्रवणबेलगोला (कर्नाटक), ल० नवीं शती

चित्र ७२ बाहुबली, गुफा ३२, एलोरा (महाराष्ट्र), ल० नवीं शती

चित्र ७३ बाहुबली गोम्मटेश्वर, श्रवणबेलगोला (कर्नाटक) ल० ९८३ ई०

चित्र ७४ बाहुबली, मंदिर २, देवगढ़ (उ०प्र०), ११वीं शती
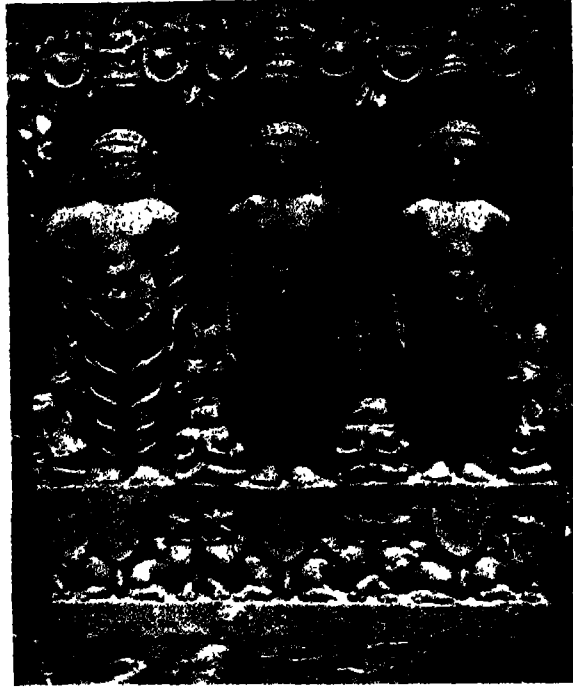
चित्र ७५ त्रितीर्थी मूर्ति-बाहुबली एवं जिन, मंदिर २,
देवगढ़ (उ० प्र०), ११वीं शती

चित्र ७६ सरस्वती, नेमिनाथ मंदिर
(देवकुलिका), कुंभारिया (गुजरात)
१२वीं शती

चित्र ७७ गणेश, नेमिनाथ मंदिर, कुंभारिया
(गुजरात), १२वीं शती

चित्र ७८ सोलह महाविद्याएं, शांतिनाथ मंदिर, कुभारिया (गुजरात), ११वीं शती
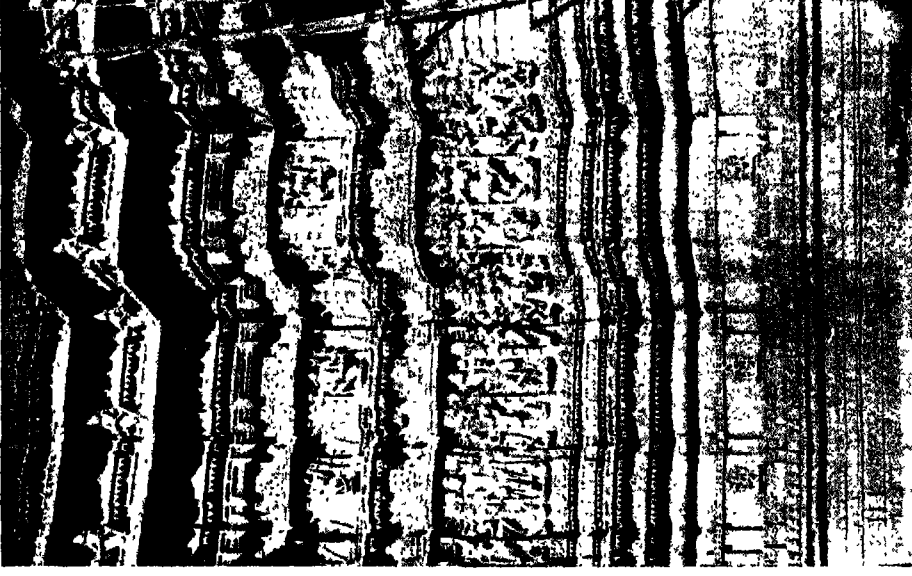
चित्र ७९ बाह्यभित्ति, अजितनाथ मंदिर, तारंगा (गुजरात)
१२वीं शती